ऋग्वेद संहिता
भाषा-भाष्य
भाग १

॥ ओ३म् ॥

# ऋग्वेद-संहिता

## भाषा-भाष्य

( प्रथम खण्ड )

भाष्यकार—
श्री पण्डित जयदेवजी शर्मा,
विद्यालंकार, मीमांसातीर्थ.

प्रकाशक—
आर्य्यसाहित्यमण्डल, लिमिटेड, अजमेर.

प्रथमावृत्ति २००० } सं० १९८७ वि० { मूल्य ४) रुपये

148

# ऋग्वेद के प्रथम खण्ड की भूमिका

नम ऋषिभ्यः पूर्वकृद्भ्यः ॥ तै० आ० ॥

## १. ऋग्वेद का परिचय

चारों वेदों में से सबसे प्रथम ऋग्वेद गिना जाता है। ऋग्, यजुः साम और अथर्व इन चारों में कौन प्रथम उत्पन्न हुआ यह प्रश्न करना निरर्थक है। वेद ज्ञान नित्य है। क्योंकि उस ज्ञान का आश्रय परमेश्वर नित्य है। हमारे बोल चाल के व्यवहार में ऋग्वेद के नाम को प्रायः प्रथम कहते हैं इससे ऋग्वेद का प्राथम्य है। सहोदर भाइयों में ज्येष्ठ भाई के समान ऋग्वेद की उत्पत्तिक्रम से प्रथमता नहीं है। क्योंकि वैदिक साहित्य में जहां कहीं भी वेदों की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है वहां चारों वेदों का एक साथ ही उल्लेख प्राप्त होता है। जैसे पुरुष सूक्त में—

तस्माद् यज्ञात् सर्वहुत ऋचः सामानि जज्ञिरे।
छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद् यजुस्तस्मादजायत॥

ऋ० १०। ९०। ९। यजु० ३१। ७॥

उस 'सर्वहुत् यज्ञ' अर्थात् सर्वोपास्य परमेश्वर प्रजापति से ऋचाएं, साम, छन्द अर्थात् अथर्व और यजुः उत्पन्न हुए।

यस्माद् ऋचोऽपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमानि अथर्वाङ्गिरसो मुखम्।
स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥ अथर्व० १०।७।२०॥

हे विद्वन्! तू उस महान्, सर्वाश्रय 'स्कम्भ', सर्वाधार परमेश्वर का वर्णन कर और बतला इन अनेक महती शक्तियों में वह कौनसा है जिसमें से मन्त्र द्रष्टा ऋषि ऋग्वेद, यजुर्वेद साक्षात् किया करते हैं। सामवेद जिसके लोमों के समान अंश २ को अनुभव करानेवाला है अथर्वाङ्गिरसवेद जिसका मुख के समान साक्षात् उपदेश करता है।

गरुत्मान् सुपर्ण के वर्णन में—

**०स्तोम आत्मा छन्दांसि अंगानि यजूंषि नाम। साम तनूः०**

यजु० १२। ४॥

स्तोम अर्थात् ऋग्वेद उस महान् परमेश्वर का आत्मा, छन्द अर्थात् अथर्व अंग, यजुर्वेद नाम और सामवेद तनु है।

व्रात्य प्रजापति की आसन्दी के वर्णन में—

**ऋचः प्राञ्चस्तन्तवः यजूंषि तिर्यञ्चः॥ ६॥ वेद आस्तरणं ब्रह्म उपबर्हणम् साम आसद उद्गीथ उपाश्रयः॥ अथर्व० १५।३।६॥**

ऋग्वेद ताना और यजुः बाना, वेद बिछौना, ब्रह्मवेद (अथर्व) सिर-हाना और साम पीढ़ा और ओंकार टेक है।

**कालादृचः समभवन् यजुः कालादजायत। अथर्व १६।५६।३॥**

काल से ऋचाएं और यजुर्वेद प्रकट हुए।

उक्त सब उदाहरणों में सर्वहुत् यज्ञ सुपर्ण, काल, स्कम्भ ये सब वेद प्रतिपादित पदार्थ कोई भिन्न २ पदार्थ नहीं, प्रत्युत सभी परमेश्वर के नाम हैं। इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। तब उस परम ज्ञानमय परमेश्वर के बीच में ओत प्रोत इन वेदों की अर्वाचीनता और प्राचीनता की विधि बैठाना बड़ा हास्यजनक है। परमेश्वर ने सृष्टि उत्पन्न की और जीवों को भी उत्पन्न किया, और साथ ही उनके लिये ज्ञानमय वेदों का भी प्रकाश किया। वेद के शब्दों से ही समस्त संसार को प्रकट किया इसी को दूसरे शब्दों

में विद्वान् कह देते हैं कि वेद के शब्दों से ही संसार को बनाया। जैसे सायण ने लिखा है—

वेदशब्देभ्य एवादौ निर्ममे स महेश्वरः।

उस महान् ईश्वर ने वेद के शब्दों से ही संसार को प्रकट किया। वेद ने भी इस भाव को दर्शाया है कि—

'यावद् ब्रह्म विष्ठितं तावती वाक्।' ऋ० ०।११४।८॥

जितना महान् यह परमेश्वर का जगन्मय प्रकट स्वरूप है उतनी ही वाणी भी विस्तृत है।

ईश्वरीय वेद के अनादि होने के आन्तरीय साक्षियों का तो यह संक्षेप है। उसके विपरीत पीछे के विद्वानों ने भी अपनी मति के अनुसार जैसे तैसे वर्णन किया है। जिसे पुराणवादी मानते हैं कि ब्रह्मा के चारों मुखों से एक साथ ही चारों वेद प्रकट हुए। इस कल्पना में भी वेदों का आगे पीछे होना नहीं माना गया।

## २. वेद कैसे प्रकट हुए?

वेद कैसे प्रकट हुए यह प्रश्न सभी विद्वानों ने अपने २ ढंग से सरल किया है। वेदों को अनादि काल का ईश्वरीय ज्ञान मानने वालों ने ऋषियों को वेद मन्त्रों का कर्त्ता नहीं माना, प्रत्युत मन्त्रों का द्रष्टा स्वीकार किया है। जैसा निरुक्त में यास्काचार्य ने लिखा है कि—

साक्षात्-कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः। ते अवरेभ्योऽसाक्षात्-कृतधर्मभ्य उपदेशेन मन्त्रान् सम्प्रादुः। निरु० अ० १। ६। ४॥

ऋषियों ने धर्म साक्षात् किया। उन्होंने दूसरे लोग जिन्होंने साक्षात् नहीं किया उनको उपदेश द्वारा ज्ञान प्रदान किया।

## ३. सबसे प्रथम किसने साक्षात् किया ?

ब्राह्मण ग्रन्थों में लिखा है—

तेभ्यस्तप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त । अग्नेर्ऋग्वेदो वायोर्यजुर्वेदः सूर्यात्सामवेदः । श० ११ । अ० ५ ॥

अग्नि, वायु और आदित्य तपस्या युक्त इन तीनों से ऋग्वेद, यजुर्वेद और सामवेद तीनों प्रकट हुए। इसी का मनु ने अनुवाद किया है।

अग्निवायुरविभ्यस्तु त्रयं ब्रह्म सनातनम् ।
दुदोह यज्ञसिद्ध्यर्थमृग्-यजुः-सामलक्षणम् ॥

ब्रह्मा ने अग्नि, वायु, आदि इनसे सनातन 'त्रय' ऋग्, यजुः, साम इनका दोहान किया अर्थात्, उनसे प्राप्त किया । अग्नि आदि जड़ पदार्थ नहीं । प्रत्युत लक्षण से वे सजीव चेतन पुरुष हैं । क्योंकि पुरुषों को ही ज्ञान होना सम्भव है, जड़ों को नहीं ।

शांखायन श्रौत सूत्र में ऋग्वेद के सम्बन्ध में सबसे प्रथम प्रवक्ता अग्नि को ही स्वीकार किया है । ऋग्वेदी होता जब वेदि में आता है तब प्रार्थित होकर नीचे लिखा वाक्य कहता है—

कं प्रपद्ये, तं प्रपद्ये, यत्ते प्रजापते शरणं छन्दस्तत्प्रपद्ये। यावत्ते विष्णो वेद तावत् ते करिष्यामि। देवेन सवित्रा प्रसूत आर्त्विज्यं करिष्यामि। नमो अग्नय उपदेष्ट्रे, नमो वायव उपश्रोत्रे, नम आदित्यायानुख्यात्रे। जुष्टामद्य देवेभ्यो वाचं वदिष्यामि, शुश्रूषेण्यां मनुष्येभ्यः स्वधावतीं पितृभ्यः। प्रतिष्ठां विश्वस्मै भूताय, प्रशास्त्र आत्मना प्रजया पशुभिः। इत्यादि।

इस संकल्प में अग्नि को उपदेष्टा, वायु को उपश्रोता और आदित्य को अनुख्याता स्वीकार किया है । इससे यह स्पष्ट हुआ कि सम्प्रदाय परम्परा

से ऋग्वेद का प्रथम उपदेष्टा अग्नि है। उपदेश-परम्परा से ही ऋग्वेद अभी तक वैसे का वैसी ही प्राप्त है।

## ४. क्या ऋग्वेद के कुछ अंश पीछे बने हैं।

इसके विपरीत मानने वाले मतवादियों के नाना प्रकार के मतभेद हैं। वे वेद को अनादि, परमेश्वरीय ज्ञान नहीं मान कर मनुष्यकृत मानते हैं। वे ऋग्वेद के भिन्न २ स्थलों को भिन्न २ समय का बना बतलाते हैं। इस प्रकार के मानने वाले प्रायः योरोपीयन पण्डित और उनके पीछे चलने वाले भारतवर्षीय विद्वान् हैं। उनकी युक्तियें संक्षेप से ये हैं।

१—प्रथम मण्डल की अपेक्षा द्वितीय मण्डल अर्वाचीन है क्योंकि उसके सम्बन्ध में अनुक्रमणिका में लिखा है कि इसको आंगिरस शौनहोत्र उर्फ शौनक भार्गव गृत्समदने देखा।

२—ऋग्वेद के द्वितीय मण्डल में 'तवाग्ने होत्रं तव पोत्रम्०, इत्यादि मन्त्र में यज्ञ का प्रकरण है। यज्ञादि कर्म बहुत पीछे चले हैं इसलिये द्वितीय मण्डल बहुत बाद का बना हुआ है।

३—पूर्व वेद की भाषा की अपेक्षा दशम मण्डल की भाषा में बहुत भेद है।

४—किसी शाखा में बालखिल्य सूक्त (ऋ० ८। सू० ४९–५९॥) हैं, किसी में नहीं हैं। तो ये सूक्त पीछे से गढ़ कर बनाये हैं।

५—भिन्न २ स्थानों में कहीं नूतन ऋषि और पूर्व ऋषियों का वर्णन है।

६—कहीं नव्य ब्रह्म और पुरातन ब्रह्म कहकर नये पुराने मन्त्रों का उल्लेख है।

७—स्थान २ पर गंगा, यमुना सरस्वती, सप्त सिन्धु, आदि नदियों और नगरों का वर्णन है।

८—इसमें युद्धों का वर्णन है, नाना देवताओं की स्तुतियां संगृहीत हैं, भिन्न २ ऋषियों ने उसके मन्त्रों को बनाया है। उसकी भाषा शैली में भेद है।

इनका संक्षेप से समाधान यह है कि—(१) द्वितीय मण्डल के प्रारम्भ में वेद संहिता में कुछ नहीं लिखा। प्रत्युत भाष्यकार सायण ने कात्यायन की सर्वानुक्रमणी की एक पंक्ति का उल्लेख किया है। इससे दूसरे मण्डल की अर्वाचीनता कैसे सिद्ध हुई। यह समझ में नहीं आता। क्या किसी के देख लेने भर से कोई वस्तु नवीन होजाती है। गृत्समद ने द्वितीय मण्डल को देखा तो द्वितीय मण्डल अर्वाचीन हो गया और मधुच्छन्दा आदि ने प्रथम मण्डल देखा, इस लिये वह प्राचीन होगया। यह क्यों ? सभी मन्त्र और सूक्त किसी न किसी ने देखे इससे किसी की प्राचीनता और अर्वाचीनता सिद्ध नहीं हो सकती। न्यूटनने गुरुत्वाकर्षण के सत्य ज्ञान को देखा इस लिये वह सत्य अर्वाचीन हो गया। पोइनकेर महाशय ने विद्युत् के ऊपर ग्रन्थ रचा इस लिये विद्युत् सम्बन्धी सत्यज्ञान अर्वाचीन हो गया यह कैसे ? वह ज्ञान तो पहले भी विद्यमान था, केवल इन विद्वानों ने प्रकट मात्र किया। प्रकट कर देने मात्र से किसी नित्य पदार्थ की नवीनता नहीं हो सकती फिर शौनकादि ऋषिगण तो स्वयं अन्य ऋषियों के शिष्य थे। तो उन्होंने वे वेद मन्त्र अपने से भी पूर्व के आचार्यों से प्राप्त किये इसमें संदेह नहीं। ठीक इसी प्रकार दशम मण्डल आदि की अर्वाचीनता का भी समाधान जानना चाहिये।

( २ ) दूसरी युक्ति भाषा-भेद की है। सरल और कठिन भाग तो आप ऋग्वेद के सभी मण्डलों में पावेंगे। हम लोग साधारण लौकिक संस्कृत के ज्ञान की अपेक्षा करके वेद की भाषा की सरलता और कठिनता का विचार करते हैं और उसीसे उसकी अर्वाचीनता का अनुमान करने लगते है। यह नितराम् असंगत है। यदि किसी व्यक्ति को केवल वैदिक संस्कृत के व्याकरण का ही बोध करावें तो उसे कदाचित् वासवदत्ता और कादम्बरी आदि साहित्य ग्रन्थ कठिन, दुर्गम जंचे और उन ग्रन्थों में भी कोई भाग सरल और कोई दुर्गम हों। उनमें यह कहना कि सरल भाग कविने

पहले या पीछे बनाये और दुर्गम भाग पीछे या पहले बनाये होंगे, यह बड़ा हास्यास्पद है। कवि तो यथास्थान औचित्य देख कर भाषा का प्रयोग कर देता है।

( ३ ) यज्ञादि का वर्णन होना भी वेद के किसी अंश को अर्वाचीन नहीं सिद्ध कर सकता क्योंकि प्रथम मण्डल ( सू० ७६ । ४ ॥ ) में अनेक स्थलों में यज्ञ का वर्णन है। वहां भी होता आदि का वर्णन है। इसके अतिरिक्त वेद में मण्डल विभाग को देखकर दसवें मण्डल पर अर्वाचीनता का दोष है जिस शाखा में अष्टक, अध्याय, वर्ग आदि के विच्छेद हैं उसमें यह कुछ भी नहीं जा सकता।

( ४ ) वालखिल्य सूक्तों का पीछे से प्रविष्ट हो जाना यह भी युक्ति ठीक नहीं। भिन्न २ शाखा में वालखिल्य का होना और न होना है। परन्तु वालखिल्य सूक्त को ऋग्वेद का अंश सभी मानते हैं। यज्ञ कर्म में उन सूक्तों का भी विनियोग अन्य सूक्तों के समान ऋषियों ने किया है। आश्वलायन और शांखायन दोनों ही श्रौतसूत्रों में उसका यथा स्थान प्रयोग है।

(५–६) नूतन ऋषि और पूर्व ऋषि शब्द आजाने से या नव्य ब्रह्म और प्रत्न ब्रह्म यह शब्द आजाने से भी कोई वेद मन्त्र नये पुराने नहीं कहे जा सकते। क्योंकि ऋषियों अर्थात् मन्त्र द्रष्टाओं की सत्ता तथा नव्य और पूर्व ब्रह्म अर्थात् नये, शिष्यों द्वारा जाने गये और पूर्व के, विद्वानों द्वारा उपदेश किये वेदोक्त ज्ञानों की सत्ता तो सदा विद्यमान रहती है।

( ७ ) गंगा यमुना आदि नदियों और देशों का वर्णन वेद में नहीं है। यह ऐतिहासिक, दृष्टि से वेद को लौकिक संस्कृत के द्वारा समझने वालों का वेद मन्त्रों पर बलात्कार है जो वे वेद के शब्दों को नदी वाचक तथा नगर और देश वाचक समझते हैं। अक्षर समान देख कर उसमें इतिहास की कल्पना करना यह बड़ा भ्रमजनक है। जब तक वेद में से कोई सम्बद्ध इतिहास और सुसम्बद्ध भूगोल का वर्णन नहीं दिखा सके तबतक

वेद के भिन्न २ स्थान से प्रचलित नदियों और नगरों के नामों को देख कर उसमें इतिहास निकालने का यत्न करना वेद-साहित्य से अपनी अन-भिज्ञता दर्शाना है।

( ८ ) इसी प्रकार नाना युद्धों का वर्णन इत्यादि कहना भी असंगत है। वेद में रामायण महाभारतादि के समान कहीं भी युद्ध का वर्णन नहीं दिखाया जासकता।

युरोप निवासी पण्डितों ने ही कोई वेद में नया इतिहास नहीं खोज लिया, प्रत्युत भारतीय विद्वानों में भी एक ऐतिहासिक पक्ष सदा विद्यमान रहा है। परन्तु थोड़ा विचार पूर्वक उन इतिहासों पर दृष्टि डालें तो पता लगेगा कि उन इतिहासों या कथा कहानियों की कल्पना कितनी असम्भव तथा अनहोनी है कि उसकी कभी त्रिकाल में भी सत्ता प्रमाणित नहीं हो सकती। उदाहरण रूप से प्यासे गौतम के पास मरुतों का कूआ उखाड़ कर ले आना और उसे मरु भूमि में पलट देना आदि घटनाएं सर्वथा असम्भव हैं। तब ये विचित्र कथाएं लौकिक भाषा की दृष्टि से केवल नये शिष्यों को गम्भीर विषय तक पहुंचाने के लिये प्ररोचना मात्र के लिये कल्पित की गयी हैं। जिससे विनोद जनक विचित्र कथाओं के साथ २ शिष्य गण वेद को सुगमता से याद रखें। वास्तव में वेद के उन शब्दों के अर्थ भिन्न हैं और उन कथाओं का कोई भी अंश सत्य नहीं है।

पंण्डित कोलब्रुक, पं० माक्समूलर, पं० ग्रीफिथ, पं० बेनफी आदि योरोपीयन विद्वानों तथा पं० सत्यव्रत सामश्रमी, पं० उमेशचन्द्र विद्यारत्न, पं० बालगंगाधर तिलक, पं० अविनाशचन्द्र आदि भारतीय विद्वानों ने अपने २ स्वाध्याय के अनुसार अपनी ही अपनी भिन्न २ कल्पनाओं को पुष्ट करने के लिये बड़े २ विस्तृत ग्रन्थ लिखें हैं। उनकी विस्तार से आलोचना प्रत्यालोचना करने के लिये बहुत अधिक स्थान और समय की अवश्य-कता है। संक्षेप से उनकी समस्त युक्तियां ऊपर संगृहीत होगयी हैं। इसके

अतिरिक्त उन सबकी कल्पनाएं किसी एक श्रृंखला से बद्ध नहीं हैं। एक पूर्व की ओर जाता है तो दूसरा पश्चिम की ओर जा रहा है। एक कल्पना दूसरे की कल्पना को प्रबलता से काटती है। इस लिये वेद के सत्यांश का निर्णय इस शैली से होही नहीं सकता।

जिस शैली से प्राचीन ऋषि विचार करते थे उस शैली से वेदों के समस्त व्याख्यान केन्द्रित होजाते हैं। इसी कारण एक व्याकरण, एक प्रातिशाख्य, एक ब्राह्मण, एक श्रौत सूत्र, एक निरुक्त, एक ज्योतिष, एक शिक्षा सब एक ही एक वेदज्ञ विद्वानोंने समान रूप से प्रमाण मान लिये हैं। भिन्न २ वेदों के भिन्न २ ब्राह्मणों शिक्षाओं और उपनिषदों, आरण्यकों में सिद्धान्त भेद न होकर समस्त श्रुतिवाक्यों और व्याख्यानों की परस्पर संगति लग जाती है। जिन २ अंशों में वे ऐतिहासिकवाद के प्रभाव में रूढिवाद में फंस कर निरुक्त दर्शित दिशा से छूट जाते हैं वहां ही उनमें परस्पर मत भेद हो जाते हैं। इससे भी तात्विक सिद्धान्त में कोई भेद नहीं आता।

## ५. क्या ऋषि मन्त्रों को रचनेवाले हैं ?

वेद पर ऐतिहासिक आपत्तियें तब आती हैं जब ऋषियों को वेद मन्त्रों का कर्त्ता मान लिया जाता है। इस लिये प्रथम इसी पर कुछ विचार करना चाहिये कि क्या जिन ऋषियों का मन्त्रों के साथ नाम लिखा मिलता है वे उसके द्रष्टा हैं या कर्त्ता हैं। उक्त सब पण्डित प्रमुख ऋषियों को वेद मन्त्रों के कर्त्ता मानते हैं। द्रष्टा नहीं मानते हैं। इसके लिये वे नीचे लिखी युक्तियां देते हैं।

( १ ) ऋषि मन्त्रकृत् या मन्त्रकार कहाते हैं।

( २ ) सर्वानुक्रमणी में सूक्तों के रचयिता ऋषियों के नाम दिये हैं।

( ३ ) मन्त्रों में भी उन ऋषियों के नामों का उल्लेख है। जैसे प्रायः कवि लोग अपना संकेत नाम दे देते हैं।

( ४ ) वेद मन्त्र में ही वेद के बनाने की सूचनाएं मिलती हैं।

इनसे अधिक युक्ति कोई प्रति पक्षी नहीं दे पाया। और शेष सब युक्तियां इन चार शीर्षकों में ही आजाती हैं। ये चारों भी प्रथम युक्ति के अन्तर्गत ही हैं। 'मन्त्रकृत्' या 'मन्त्रकार' या इनके समान अर्थ के वाचक अन्य शब्दों का चाहे कहीं भी प्रयोग हो तो भी समस्त विचार मन्त्रकृत् वा मन्त्रकार शब्द पर ही केन्द्रित हो जाता है। अब हम क्रम से इस पर विचार करते हैं।

## ६. मन्त्रकृत्, मन्त्रकार आदि शब्दों का प्रयोग।

( १ ) चारों वेदों में ( ऋ० ९। ११४। २ ) में केवल एक स्थान पर मन्त्रकृत् शब्द का प्रयोग है।

ऋषे मन्त्रकृतां स्तोमैः कश्यपोद्वर्धयन् गिरः।
सोमं नमस्य राजानं यो जज्ञे वीरुधांपतिरिन्द्रायेन्दो परिस्रव।
ऋ० ९। २१४। ३०॥

हे (कश्यप) द्रष्टः! तू मन्त्रकृतों के स्तोमों से वाणियों की वृद्धि करता हुआ राजा सोम जो वीरुधों का पालक है उसका आदर कर। हे (इन्दो) शिष्य! तू इन्द्र अर्थात् आचार्य के लिये गमन कर।

( २ ) शिशुर्वा अङ्गिरसां मन्त्रकृतां मन्त्रकृदासीत्। स पितॄन् पुत्रका इत्यामन्त्रयत्। तां० ब्रा० १३।३।२४॥

आङ्गिरस शिशु मन्त्रकृतों में उत्तम मन्त्रकृत् था। उसने अपने बूढ़े जनों को पुत्र कह कर पुकारा।

( ३ ) नम ऋषिभ्यो मन्त्रकृद्भ्यः मन्त्रपतिभ्यो मा मामृषयो

मन्त्रकृतो मन्त्रपतयः परादुः माऽहम् ऋषीन् मन्त्रकृतो मन्त्रपतीन् परादाम् । तै० आ० ४ । १ । १॥

( ४ ) मन्त्रकृतो वृणीते । यथर्षि मन्त्रकृतो वृणीत इति विज्ञायते । आप० श्रौ० २४ । ५ । ६ ॥

( ५ ) तान्होवाच काद्रवेयः सर्प ऋषि र्मन्त्रकृत् ॥ ऐ० ब्रा० ६ । १ ॥

( ६ ) अथ येषामु ह मन्त्रकृतो न स्युः स पुरोहितप्रवरास्ते प्रवृणीरन् । आप० श्रौ० २४ । १० । १३ ।

( ७ ) इत ऊर्ध्वान्मन्त्रकृतोऽध्वर्युर्वृणीते । यथर्षि मन्त्रकृतोवृणीत इति विज्ञायते । सत्या० श्रौ० २ । १ । ३ ॥

( ८ ) दक्षिणत उदङ्मुखो मन्त्रकारः । मा० गृ० सू० १।८।२॥

( ९ ) दक्षिणतस्तिष्ठन् मन्त्रवान् ब्राह्मण आचार्यायैकाञ्जलिं पूरयेत् । खा० गृ० सू० २।४।१०॥

(१०) सुकर्मपापमन्त्रपुण्येषु कृञः ॥ पाणिनि अ० ३।२।८९॥ कर्मकृत् । पापकृत् । मन्त्रकृत् । पुण्यकृत् ।

उपरोक्त १० उद्धरणों में मन्त्रकृत् शब्द का प्रयोग आया है । जिनमें सं० ३, ५, ७ में ऋषिशब्द भी साथ ही पढ़ा है । सं० २ में शिशु आंगिरस स्वतः ऋषि है । सं० ३ में मन्त्रकृत् के साथ मन्त्रपति शब्द का भी प्रयोग है । सं० ८, ९ में मन्त्रवान् और मन्त्रकार दोनोंशब्द एक ही प्रकार के व्यक्ति के लिये हैं । १० वें में मन्त्र उपपद होने पर कृञ् धातु से 'क्विप्' प्रत्य करने पर मन्त्रकृत् रूप की सिद्धि मात्र की गयी है । फलतः ऋषि शब्द के साहचर्य से कृत् का अर्थ द्रष्टा ही है । अन्य स्थानों पर यज्ञादि के किये वरणार्थ विद्वान् मन्त्रवक्ता ब्राह्मण के लिये ही 'मन्त्रवान्' और 'मन्त्रकार' शब्द का प्रयोग है । 'मन्त्रकृत्' शब्दका मन्त्र बनाने वाला ऐसा अर्थ एक

स्थान पर भी स्पष्ट नहीं होता। औतसूत्र और ब्राह्मणग्रन्थों के समय में मन्त्र बनाने वाले ऋषियों को वरण होना ही असम्भव था। उनकी दृष्टि में मन्त्रार्थ के उपदेष्टा विद्वान् को ही मन्त्रकृत् शब्द से कहा गया है। स्वयं आचार्य सायण को यह बात खटकी कि जब वेद अपौरुषेय हैं तो 'मन्त्रकृत्' अर्थात् मन्त्र बनाने वाले कैसे हैं? सायण ने ऋषि शब्द के साहचर्य से स्पष्टार्थ कर दिया।

यद्यप्यपौरुषेये वेदे कर्त्तारो न सन्ति तथापि कल्पादावीश्वरानुग्रहेण मन्त्राणां लब्धारो मन्त्रकृदित्युच्यन्ते। तै० आ० सा० भा० ४। १।। १ ॥

अपौरुषेय वेद में मन्त्रों के बनाने वाले नहीं होते तो भी कल्प के आदि में ईश्वर के अनुग्रह से मन्त्रों के पाने वाले 'मन्त्रकृत्' कहाते हैं। इसमें सायणने 'कल्प के आदि में' यह शर्त्त व्यर्थ ही लगाई है। मन्त्रों का लाभ करना और उनका अर्थ दर्शन करना आगे भी हो सकता है। ईश्वर के अनुग्रह के अतिरिक्त गुरु के अनुग्रह से भी मन्त्रों का लाभ या दर्शन होता है। ऐतरेय ब्राह्मण के उद्धरण के भाष्य में सायण ने अपना अभिप्राय ठीक प्रकार से खोल दिया है।

ऋषिरतीन्द्रियार्थद्रष्टा मन्त्रकृत्। करोतिधातुस्तत्र दर्शनार्थः ॥

ऋषि अर्थात् अतीन्द्रिय अर्थों को देखने वाला 'मन्त्रकृत्' है। 'करोति' धातु का यहां अर्थ देखना है। मन्त्र का दर्शन अर्थात् मन्त्रार्थ का साक्षात्कार करने वाला 'मन्त्रकृत्' है। परन्तु इस शब्द का अर्थ-विस्तार और भी अधिक है। सुवर्ण आदि उपपद लगकर 'कृ' धातु से बने अन्य प्रयोगों पर भी दृष्टि करनी चाहिये। सुवर्णकार, चर्मकार, लोहकार आदि शब्दों से सुवर्ण, चर्म, लोहादि के नाना विकृत पदार्थ बनाने वाले पुरुष ही सुवर्णकार ( सुनार ), चर्मकार (चमार), और लोहकार ( लोहार ) कहाते हैं। ठीक उसी प्रकार मन्त्रकार का भी अर्थ मन्त्र बनाने वाला नहीं, प्रत्युत मन्त्र के विकार उत्पन्न करके उन द्वारा कल्पोक्त यज्ञादि विधान करने में कुशल पुरुष ही मन्त्रकृत् या मन्त्रकार

शब्द से कहा जाता है। वही 'मन्त्रवान्' ब्राह्मण भी कहा गया है। ताण्ड्य ब्राह्मण के उद्धरण सं० ( २ ) में आंगिरस शिशु को पितरों का 'मन्त्रकृत्' कहा है। आगे स्वयं ब्रह्मणकार लिखते हैं—

देवा वै अब्रुवन्नेष वाव पिता यो मन्त्रकृत्।

देवगण ने कहा कि वही पिता है जो मन्त्रकृत् है। इस ब्राह्मणवाक्य का अनुवाद मनुस्मृति में इसी आख्यायिका को देकर किया है।

अध्यापयामास पितॄन् शिशुराङ्गिरसः कविः।
पुत्रका इति होवाच ज्ञानेन परिगृह्य तान्।
ते तमर्थमपृच्छन्त देवानां गतमन्यवः।
देवाश्चैतान् समेत्योचुर्न्याय्यं वः शिशुरुक्तवान्।
अज्ञो भवति वै बालः पिता भवति मन्त्रदः।
अज्ञं हि बालमित्याहुः पितेत्येव तु मन्त्रदम्॥

आङ्गिरस शिशु विद्वान् ने अपने पितृजनों को पढ़ाया और ज्ञान से उनको अपना शिष्य स्वीकार करके 'पुत्रकाः' ऐसा कहा। उनको सुनकर क्रोध हुआ। वे विद्वान् जनों के पास आकर पूछने लगे कि बालकने हमें 'पुत्रक' कह कर सम्बोधन किया क्या सो ठीक कहा? देव बोले—ठीक कहा। मूर्ख अज्ञानी बालक होता है और मन्त्र का देने वाला पिता होता है। अज्ञानी को बालक और मन्त्र दाता गुरु को पिता कहते हैं।

इसी मन्त्र का दूसरा पर्याय मनुस्मृति में 'ब्रह्म' आया है।

उत्पादकब्रह्मदात्रोर्गरीयान् ब्रह्मदः पिता।

पैदा करने वाले पिता और वेद ज्ञान के देने वाले आचार्य दोनों में 'ब्रह्मद' पिता अर्थात् वेदाध्यापक आचार्य अधिक बड़ा है।

वैदिक साहित्य में ऋषि आदि शब्द का प्रयोग बिलकुल उसी अर्थ में होता रहा है जिस अर्थ में अर्वाचीन साहित्य में 'आचार्य' शब्द का प्रयोग

हुआ है। उसी गुरु या आचार्य के अर्थ में 'मन्त्रकृत्' शब्द का भी प्रयोग होता रहा है। जैसे रघुवंश ( सर्ग ५ । ४ ) में कविकुल गुरु कालिदासने प्रयोग किया है। राजा रघुने विद्वान् आचार्य वरतन्तु के शिष्य कौत्स से उसके गुरु का कुशल प्रश्न किया है।

अप्यग्रणीर्मन्त्रकृतामृषीणां कुशाग्रबुद्धे कुशली गुरुस्ते।
यस्मात् त्वया ज्ञानमशेषमाप्तं लोकेन चैतन्यमिवोष्णरश्मेः ॥

हे तीक्ष्णबुद्धे! जगत् जिस प्रकार सूर्य से जीवन धारण करता है उसी प्रकार जिससे तैने समस्त ज्ञान प्राप्त किया है वह, 'मन्त्रकृत्' ऋषियों का अग्रणी, तेरा गुरु कुशल से है? यहां वरतन्तु आचार्य शाखा संहिताकार अवश्य हुए हैं, वार्त्तन्तवेय याजुषशाखा है। परन्तु वे मन्त्रों के बनाने वाले नहीं कहे जा सकते। गुरु और आचार्य का स्वरूप तो स्वयं कवि ने स्पष्ट कह दिया है। महर्षि दयानन्द ने भी ऋषि शब्द का वैदिक प्रयोग विद्वान् गुरु शिष्यों में ही होता हुआ बतलाया है। जैसे ऋग्वेद मण्डल १ सू० १ मन्त्र २ ॥

**अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवाँ एह वक्षति।**

इस मन्त्र के भाष्य करते हुए महर्षि दयानन्द लिखते हैं—

( १ ) ( पूर्वेभिः ऋषिभिः ) अधीतविद्यैः वर्त्तमानैः प्राक्तनैर्वा मन्त्रार्थ द्रष्टृभिरध्यापकैः स्वैः कारणरूपैः प्राणैर्वा। ऋषिप्रशंसा चैवमुच्चावचैरभि प्रायैर्ऋषीणां मन्त्रदृष्टयो भवन्ति। निरु० ७। ३ ॥ इयमेव ऋषीणां प्रशंसा यतस्त एवमुच्चावचैर्महदल्पाभिप्रायैः मन्त्रार्थैः विदितैः प्रशंसनीया भवन्ति। तेषामृषीणां मन्त्रेषु दृष्टयोऽर्थादत्यन्तपुरुषार्थेन मन्त्रार्थानां यथावद्दर्शनानि ज्ञानानि भवन्ति......इत्यादि०।

भावार्थ में पुनः ऋषि लिखते हैं—

( २ ) ये मन्त्रार्थान् विदितवन्तो धर्मविद्ययोः प्रचारस्यैवानुष्ठातारः

सत्योपदेशेन सर्वाननुग्रहीतारो निश्छलाः पुरुषार्थिनो मोक्षधर्मसिद्धयर्थ मीश्वरस्यैवोपासकाः कामार्थसिद्धयर्थं भौतिकाग्नेर्गुणज्ञानेन कार्यसिद्धिं सम्पादयन्तो मनुष्यास्ते ऋषिशब्देन गृह्यन्ते ।

'नूतनैः' शब्द का भाष्य करते हुए महर्षि लिखते हैं—

( ३ ) ( नूतनैः ) वेदार्थाध्येतृभिर्ब्रह्मचारिभिस्तर्कैः कार्यस्थै र्विद्यमानैः प्राणैर्वा ।

अर्थात्—( १ ) विद्या को पढ़े हुए, अबके और पुराने मन्त्रार्थ देखने वाले, अध्यापक, तर्क, कारण पदार्थों विद्यमान प्राण ये 'पूर्व ऋषि' का अर्थ है। निरुक्तकार का यह कथन है कि—ऋषियों की इसी में प्रशंसा है कि नाना प्रकार के अभिप्रायों से ऋषियों की मन्त्रदृष्टियां होती हैं। इसका अभिप्राय यह है कि—न्यून वा अधिक अभिप्राय से मन्त्रार्थों के ज्ञानों से वे प्रशंसायोग्य होते हैं। ऋषियों की मन्त्रों में नाना दृष्टि का तात्पर्य यह है कि उनको बड़े पुरुषार्थ से मन्त्रों के अर्थ ठीक २ प्रकार साक्षात् हो जाते हैं। (२) जो लोग मन्त्रार्थों को जान लेते हैं वे धर्म विद्या का प्रचार करते हैं, सत्योपदेश से सब पर अनुग्रह करते हैं छल रहित, मोक्ष धर्म की साधना के लिये ईश्वर की उपासना करते हैं और इच्छानुरूप फल प्राप्त करने लिये भौतिक अग्नि के गुणों को जान कर कार्य साधते हैं वे मनुष्य भी ऋषि शब्द से ग्रहण किये जाते हैं। ( ३ ) नूतन ऋषि वेद के पढ़ने वाले ब्रह्मचारी, नवीन तर्क, कार्य पदार्थ में स्थित प्राण हैं। फलतः, महर्षि दयानन्द ने ऋषि शब्द से अध्यापक, आचार्य, गुरु तथा उत्तम तपस्वी शिष्य और वेदाध्यायी ब्रह्मचारी का भी वास्तविक अर्थ दर्शाया है।

(२) कात्यायन ऋषि की जिस सर्वानुक्रमणी की पंक्तियों को योरोपीयन लोग अपने पक्ष के पोषण में उद्धृत करते हैं कात्यायन की वही सर्वानुक्रमणी उनके मन्तव्य का खण्डन कर देती है उसमें प्रत्येक मण्डल-द्रष्टा ऋषि के विषय में स्पष्ट लिख दिया है।

( १ ) गृत्समदो द्वितीयं मण्डलमपश्यत् । ( २ )...गाथिनो वैश्वामित्रः स तृतीयं मण्डलमपश्यत् । ( ३ )......वामदेवो गौतमश्चतुर्थं मण्डलमपश्यत् । ( ४ )......बार्हस्पत्यो भरद्वाजः षष्ठं मण्डलमपश्यत् । ( ५ )......सप्तमं मण्डलं वसिष्ठो ऽपश्यत् । इत्यादि ।

अर्थात्, गृत्समद ने दूसरा मण्डल देखा । गाथी वैश्वामित्र ने तीसरा मण्डल देखा । वामदेव गौतमने चौथा मण्डल देखा । बार्हस्पत्य भरद्वाज ने छठा मण्डल देखा, सातवां मण्डल वसिष्ठ ने देखा । इत्यादि सर्वत्र 'दृश' धातु का ही प्रयोग है किसी स्थान पर ऋषियों का प्रतिपादन करते हुए कल्यायनने 'चकार', 'कृतवान्' इत्यादि का प्रयोग नहीं किया ।

जिस प्रकार लोक में राजकृत् आदि शब्दों का प्रयोग नियत करने अर्थ में हैं । इसी प्रकार वेद मन्त्रों को नियत रूप से स्थिर सुरक्षित रखने वाले विद्वान 'मन्त्रकृत्' थे । 'राज्यकृत्' शब्द राज्य-व्यवस्थापक के लिये है । 'ज्योतिष्कृत्' प्रकाश को प्रकट करने और देने वाला है । 'हविष्कृत्' हवि, चरु आदि कूट पीस कर बनाने वाला, 'स्तेयकृत् पुण्यकृत् सुकृत्' आदि शब्दों से चोरी, दान आदि पुण्य कार्य और अच्छे कार्य करने वाले कहाते हैं । इसीप्रकार मन्त्रकृत् शब्द से मन्त्र को प्रकट करने वाले उनके क्रम, जटा, घन आदि विकारों को करने वाले, और उसके अनुकूल अध्ययनाध्यापना और यज्ञ आदि करने वाले ही कहाते हैं ।

इस प्रकार पाश्चात्य विद्वानों और ऐतिहासिक पक्ष के पोषक विद्वानों का प्रधान मूल ही खण्डित हो जाता है, फिर उसके आधार पर खड़े होने वाला समग्र कल्पना वृक्ष भी आप से आप टूट जाता है ।

## ७. दूसरा आक्षेप

(२) उक्त विद्वानों का कथन है कि जिन ऋषियों का नाम मन्त्रों पर

लिखा है वही मन्त्रों के रचने वाले हैं। आर्य लोगों ने वेद को अपौरुषेय सिद्ध करने के लिये मन्त्र रचने वाले ऋषियों को मन्त्रद्रष्टा नाम दे दिया है। उनही की स्तुतियों को संग्रह करके पीछे से ऋग्वेद बना है।

उत्तर—१. जिन ऋषियों ने उपनिषदों और गीता जैसे शान्तिदायक सत्यों को प्रकट किया वे वेद के मन्त्रों के विषय में असत्य लिखते, यह कौन विश्वास करेगा। लाञ्छन लगाने वालों को इस प्रकार का लाञ्छन लगाते हुए लज्जा होनी चाहिये।

२. बहुत से वेद मन्त्रों के द्रष्टा एक ऋषि न होकर कई ऋषि हैं। जैसे गोपथ में लिखा है—

तान् वा एतान् सम्पातान् विश्वामित्रः प्रथममपश्यत्। एवा-त्वामिन्द्र वज्रिन्० ( ऋ० ४। १९ )...तान् विश्वामित्रेण दृष्टान् वामदेवो असृजत। गो० ब्रा० ६। १॥

सम्पातों को विश्वामित्र ने प्रथम देखा और फिर उनको वामदेव ने देखा। इस उद्धरण में दो बातें स्पष्ट हैं एक तो यह कि मन्त्र ( ऋ० ४। ११ ) पहले विद्यमान थे उनको प्रथम विश्वामित्र ने देखा अर्थात् उसने उनका क्रियाकाण्ड सबसे प्रथम साक्षात् किया। और फिर वामदेवने पुनः उनको ही देखा। दो ऋषि एक ही सूक्त मन्त्रों के कर्त्ता नहीं हो सकते। दूसरे 'सम्पात' यह मन्त्रों द्वारा किये कर्मकाण्ड का संकेत है। उस कर्मकाण्ड के नाम से ही मन्त्रों का नाम भी सम्पात मन्त्र हुआ। वह विशेष कर्मयोग का देखना ही विश्वामित्र और वामदेव के ऋषि वेदमन्त्रद्रष्टा होने का कारण है। अनुक्रमणीकारों ने ब्राह्मण ग्रन्थों में कर्मकाण्ड के देखने वाले ऋषियों को ब्राह्मण ग्रन्थों से देख कर ही मन्त्रों के ऋषि आदि का निर्णय किया है।

३. प्राचीन विद्वानों के मन्तव्यानुसार ऋषियों का आप्त होना भी इसी

आधार पर था कि वे वेद मन्त्रों के भीतर सत्य धर्मों का साक्षात् करके उनके सत्यार्थों का प्रवचन करते थे। जैसा कि गोतमप्रणीत न्यायदर्शन के भाष्यकार वास्यायन ने लिखा है—

आप्तः खलु साक्षात्-कृतधर्मा । न्याय० १ । १ । ७ ॥ य एवाप्ता वेदार्थानां द्रष्टारः प्रवक्तारश्च । न्याय २ । २ । ६७ ॥

धर्म का साक्षात् करने वाले आप्त हैं। वे आप्त ही वेदार्थ के देखने और प्रवचन करने वाले होते हैं।

वेद में ऐसे बहुत से सूक्त हैं जिनके दो दो ( ऋ० ८ । १४ ) तीन २ पांच २ ( ऋ० १ । १०० ) ऋषि हैं। एक सूक्त के ( ऋ० ९ । ६६ ) सौ ऋषि हैं। अनुक्रमणी के सूत्रों में 'वा' का लिखना संदेह जनक नहीं है प्रत्युत पूर्व कहे ऋषि की अनुवृत्ति को दिखाता है। अर्थात् प्रयोग काल में किसी भी एक ऋषि का स्मरण होना चाहिये।

## ८. तीसरा आक्षेप

( ३ ) मन्त्रों में भी उन ऋषियों के नामों का उल्लेख है जैसा प्रायः कवि लोग अपना संकेत देते हैं।

उत्तर—१. यह आक्षेप सर्वथा निराधार है। प्राचीन संस्कृत साहित्य में यह शैली किसी काल में भी विद्यमान नहीं रही। जिन कवियों ने अपने परिचय दिये हैं वे ग्रन्थ से सर्वथा पृथक् हैं। यदि यह कवि के नामोल्लेख की शैली प्राचीन होती तो मध्यकाल के कवि कभी ऐसा करने से न चूकते। क्या वे यश के अभिलाषी भी न थे। अस्तु। अब वेद के मन्त्रों और सूक्तों पर दृष्टि कीजिये। स्पष्ट प्रतीत होता है कि अर्वाचीन सोरठे आदि में कविका नाम अनर्थक, असम्बद्ध सा रहता है। वेद के सूक्तों में वे पद जो ऋषि नाम भी हैं विशेष अभिप्राय को लिये होते हैं। यदि उनका वास्तविक अर्थ लुप्त कर दिया जाय तो वेद मन्त्र का सत्यार्थ समझ में ही नहीं आ सकता। सत्य

बात तो यह है कि द्रष्टा ऋषि का नाम भी उन विशेष पदों के कारण ही पड़ा है। जैसे शुष्क व्याकरण के पण्डित को 'टिड्डाणञ्' पण्डित कह दिया जाता है इसी प्रकार ऋजिश्वा, वृषागिर, भयमान आदि वेद के रहस्य भरे शब्दों वाली ऋचाओं के द्रष्टा ऋषि भी उपचार से उन्ही नामों से पुकारे गये। ऐसा ही एक दृष्टान्त हमने अथर्व वेद भाषाभाष्य चौथे खण्ड की भूमिका में दर्शाया था। वहां कुन्ताप सूक्तों के द्रष्टा ऋषि 'एतश' हैं। यह नाम उनका सूक्त के प्रथम पद 'एता अश्वा' इन दो पदों का विकृत रूप है।

## ६. चतुर्थ आक्षेप

(४) वेद मन्त्रों में मन्त्र, ब्रह्म, स्तोम आदि बनाने की सूचना प्राप्त होती।

१. आवोचाम कवये मेध्याय वचो वन्दारु वृषभाय वृष्णे।
ऋ० ५। १। १२॥

२. इन्द्र ब्रह्म क्रियमाणं जुषस्व मा ते शविष्ठ नव्या अकर्म।
वस्त्रेव भद्रा सुकृता वसूयूरथं न धीरः स्वपा अतक्षं।
ऋ० ५। २६। १५।

३. अकारि ते हरिवो ब्रह्म नव्यं धिया स्याम रथ्यः सदासाः।
ऋ० ४। १७। २१॥

४. उत ब्रह्माण्यङ्गिरो जुषस्व।

५. आ सुष्टुत इन्द्र याह्यर्वाङ् उप ब्रह्माणि मान्यस्य कारोः॥

६. अकारि त इन्द्र गोतमेभि र्ब्रह्माणि० १। ६३। ६॥

इन सभी स्थानों पर नये ब्रह्म अर्थात् वेद मन्त्र बनाये जाकर इष्ट देव को अर्पित किये गये प्रतीत होते हैं।

उत्तर—थोड़ा सा भी विचार करें तो आक्षेप कर्त्ता कुछ भ्रम में पड़े प्रतीत होते हैं। वे 'अकारि' आदि प्रयोगों को भूत कालका कैसे मान लेते हैं? वेद में

जितने भी लकार प्रयुक्त हैं उनके लिये काल का कोई अवधारण नहीं । वेद में केवल लकारों को देखकर काल का निर्णय करना बड़ी गहरी भूल है । थोड़ा भी व्याकरण देख लें तो यह समाधान हो जाता है । धातु सम्बन्धाधिकरण में पाणिनिसूत्र है—छन्दसि लुङ्लङ्लिटः ।३।४।६॥ इस सूत्र से सबकालों में लुङ्, लङ्, लिट् होते हैं । ये तीनों ही लकार लौकिक संस्कृत में भूतकाल में ही होते हैं । धातुसम्बन्ध का तात्पर्य यह है कि धातु का किसी भी लकार में प्रयोग हो वहां काल की अपेक्षा बिना किये वर्त्तमान या अपेक्षित काल का अर्थ प्राप्त होगा । इस प्रकार से 'अकारि ते इन्द्र गोतमेभिः' इस वेदवाक्य का अर्थ है—हे इन्द्र! गोतम जन तेरी स्तुति करते हैं, या करें। यहां हे इन्द्र ! गोतमों ने तेरी स्तुति की। यह अर्थ वेद के व्याकरण को न समझ कर किया गया है । साथ ही इसमें कोई कारण नहीं कि गोतम का अर्थ यहां गोतम के सन्तान या शिष्य ऋषि ही लिये जावें। और इन्द्र का अर्थ कोई कल्पित देव ही लिया जावे । जिस रीति से 'ब्रह्माणि' का अर्थ स्तुतियां या वेद मन्त्र है क्या उसी रीति से गोतम का अर्थ विद्वान् जन और इन्द्र का अर्थ परमेश्वर नहीं होता है ? तब वेद मन्त्र का सरल स्पष्ट अर्थ यह है कि उत्तम वेदवाणी के ज्ञाता पुरुष परमेश्वर के विषयक वेद मन्त्रों का ज्ञान करें । यहां लुङ् लकार केवल धातुसम्बन्ध में कालों की अपेक्षा बिना किये ही हुआ है । इसी प्रकार सर्वत्र जहां भी 'ब्रह्म', 'ब्रह्माणि' आदि पद और 'ततक्ष' आदि पदों का प्रयोग है वहां २ इसी प्रकार निरुक्त के अनुसार अर्थ लेना चाहिये । ऐसा न करने से ये निरुक्त तथा छन्दोविषयक व्याकरण सूत्र निरर्थक हो जायेंगे ।

## १०. ऋग्वेद संहिता, प्रकृति और विकृति ।

शौनकीय चरण व्यूह में ऋग्वेद के सम्बन्ध में नीचे लिखा परिचय दिया गया है ।

( १ ) तत्र ऋग्वेदस्याष्टौ स्थानानि भवन्ति ।

ऋग्वेद के आठ स्थान हैं (७) शाकल ( २ ) वाष्कल, ( ३ ) ऐतरेय ब्राह्मण और ( ४ ) ऐतरेयारण्यक, ( ५ ) शांखायन और ( ६ ) माण्डूक, ( ७ ) कौषीतकी ब्राह्मण और ( ८ ) कौषीतकी आरण्यक। अथवा वेद संहिता की आठ प्रकार की विकृतियें जैसे जटा, माला, शिखा, लेखा, ध्वज, दण्ड, रथ, और घन ये ८ भेद कहाते हैं।

( २ ) चर्चा श्रावकश्चर्चकः श्रवणीयपारः ॥

चर्चा, श्रावक, चर्चक और श्रवणीयपार ये ऋग्वेद के चार पाद कहाते हैं। ऋग्वेद के ये चारपाद अनुबन्ध चतुष्टय के समान हैं। केवल अध्ययन करना अर्थात् मुख द्वारा उच्चारण मात्र करना 'चर्चा' है। उस अध्ययन का उपदेश करने वाला गुरु 'श्रावक' कहाता है। उसका अध्येता शिष्य चर्चक कहाता है। श्रवण करने योग्य वेद का समाप्त करना श्रवणीयपार कहाता है। इन चार पादों से ऋग्वेद का अध्ययन होता है।

( ३ ) क्रमपारः क्रमपदः क्रमजटः क्रमदण्डश्चेति चतुष्पारायणम् ।

क्रमपार, क्रमपद, क्रमजटा, क्रमदण्ड, ये चार प्रकार के पारायण कहे हैं। जिस क्रम से संहिता पढ़ी गयी है उसको क्रमपार कहते हैं। संहितानुसार पद पाठ क्रमपद कहाता है। अग्निम् ईळे। ईळे अग्निम्। अग्निम् ईळे। ईळे पुरोहितम्। पुरोहितम् इळे। ईळे० इत्यादि क्रम से पारायण करना क्रमजटा कहाती है। इसी प्रकार अग्निमीळे, ईळेग्निम् अग्निमीळे ईळे पुरोहितमीळेग्निमीळे पुरोहितम्। इस प्रकार क्रमदण्ड कहा जाता है। जटा, माला, शिखा, आदि आठ प्रकार के विकार भी केवल विद्यार्थियों को संहिता के स्मरण करने के उपकारक होने

१. ऋग्वेदस्याष्टौ भेदा भवन्ति इति पाठभेदः।

से बाद के अध्यापकों ने नाना भेद कर लिये हैं। उनको अनावश्यक होने से नहीं लिखते।

## ११. ऋग्वेद की शाखाएं

चरणव्यूह के अनुसार—

( १ ) एतेषां शाखाः पञ्चविधा भवन्ति ॥ ७ ॥

पूर्व कहे वेद पारायणों की पांच शाखा होती हैं।

( २ ) शाकला वाष्कला आश्वलायनाः शांखायना माण्डूकायनाश्चेति ॥ ८ ॥

शाकल, वाष्कल, आश्वलायन, शांखायन, और माण्डूकायन।

( ३ ) अध्यायाश्चतुष्षष्टिः मण्डलानि दशैव तु।

अध्याय ६४ चौसठ और मण्डल दश हैं।

( ४ ) ऋचां दशसहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च।
ऋचामशीति पादश्चैतत् पारायणमुच्यते ॥

दस सहस्र पांच सौ अस्सी १०५८० और एक चरण ऋचाएं है। महर्षि दयानन्द की गणना से ऋग्वेद की १०५८९ मन्त्र संख्या है मन्त्र संख्या के विषय पर और अधिक अनुशीलन करना है अतः इस विषय को भविष्य के लिये रख छोड़ते हैं।

संहिता के दो प्रकार के पाठ होते हैं एक निर्भुज पाठ जो संहिता का पाठ है और दूसरा प्रतृण्ण पाठ। पदपाठ क्रम को प्रतृण्ण पाठ कहा जाता है।

## १२. पुराण और ऋग्वेद की शाखाएं

पुराणों ने वेद के सम्बन्ध में बहुत से अनर्थकारी विचारों को फैलाया है। इसलिये उनपर भी विचार करना आवश्यक है।

( १ ) पुराणों का यह मन्तव्य है कि प्रत्येक चतुर्युगी में द्वापर के अन्त में एक वेदव्यास उत्पन्न होता है। वह वेदों का व्यास करता है। अभी तक २८ चतुर्युगी गुज़री हैं और उनमें २८ व्यास हो चुके हैं। अन्तिम वेदव्यास कृष्ण द्वैपायन हैं। विष्णुपुराण में उन २८ व्यासों के नाम भी भी दिये हैं। इस मत को विष्णुपुराण ने इस प्रकार लिखा है—

पराशर उवाच—

वेदद्रुमस्य मैत्रैय शाखाभेदाः सहस्रशः।
न शक्तो विस्तराद् वक्तुं संक्षेपेण श्रृणुष्व तम्॥
द्वापरे द्वापरे विष्णुर्व्यासरूपी महामुनिः।
वेदमेकं तु बहुधा कुरुते जगतो हितः।
वीर्यं तेजो बलं चाल्पं मनुष्याणामवेक्ष्य च
हिताय सर्वभूतानां वेदभेदान् करोति सः।

अर्थात्, पराशर कहते हैं—हे मैत्रेय ! वेद वृक्ष के हज़ारों शाखा-भेद हैं, उनको विस्तार से नहीं कहा जा सकता। संक्षेप से सुनो। प्रति-द्वापर व्यासरूप महामुनि एक वेद को बहुत भेद वाला करता है। मनुष्यों के वीर्य, तेज और बल अल्प देखकर वह सब प्राणियों के हित के लिये वेदों का भेद करता है।

इसका तात्पर्य यह हो गया कि प्रति द्वापर व्यास ही वेद के शाखा भेद किया करता है। फिर प्रश्न यह उठता है उन भिन्न २ शाखाओं का समास कौन करता है। अर्थात् सब शाखाओं को एक कौन करता है। चतुर्युग के आदि में एक समास करने वाले ऋषि की भी कल्पना करनी

चाहिये। यदि समास कोई नहीं करता तो व्यास करने वाले की भी कोई आवश्यकता नहीं। शाखा भेद तो अध्ययन भेद से आप से आप हो जाते हैं उनके लिये व्यास की कल्पना व्यर्थ है। व्यासदेव ने तो केवल पैल को पूर्ण ऋग्वेद पढ़ाया इतने से वह समस्त शाखाओं को भेद करने वाला भी कैसे हो सकता है।

प्रत्येक द्वापर में एक व्यास होता है यह कल्पना भी सर्वथा असत्य है, क्योंकि जिन २८ व्यासों के नाम लिखे गये हैं उनमें पिछले तीन व्यास क्रम से शक्ति, पराशर और कृष्ण द्वैपायन हैं। ये क्रम से पितामह, पिता और पुत्र हैं। तब इनमें से एक २ का एक २ द्वापर में होना नहीं बनता। शेष नामों में से भी बहुत से ऋषि ऋग्वेद के मन्त्रद्रष्टा हैं।

( २ ) वायुपुराण में लिखा है—

द्वापरे तु पुरावृत्ते मनोः स्वायंभुवेऽन्तरे।
ब्रह्मा मनुमुवाचेदं तद् वदिष्ये महामते॥
परिवृत्ते युगे तात स्वल्पवीर्या द्विजातयः।
संवृत्ता युगदोषेण सर्वं चैव यथाक्रमम्।
भ्रश्यमानं युगवशादल्पशिष्टं हि दृश्यते।
दशसाहस्रभागेन ह्यवशिष्टं कृतादिदम्।
वीर्यं तेजो बलं वाक्यं सर्वं चैव प्रणश्यति।
वेदभेदा हि कार्याः स्यु र्माभूद् वेदविनाशनम्।
वेदे नाशमनुप्राप्ते यज्ञो नाशं गमिष्यति।
यज्ञे नाशे देवनाशस्ततः सर्वं प्रणश्यति।
आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसंम्मितः।
पुनर्दशगुणः कृत्स्नो यज्ञो वै सर्वकामधुक्।
एवमुक्तस्तथेत्युक्त्वा मनुर्लोकहिते रतः।
वेदमेकं चतुष्पादं चतुर्धा व्यभजत् प्रभुः॥

अर्थात्, स्वायंभुव मन्वन्तर में, द्वापर में ब्रह्मा ने मनु को कहा— युग बदलने पर युग के दोष से ब्राह्मण स्वल्प वीर्य हो गये हैं। सब कुछ न्यून होता चला जा रहा है। थोड़ा सा रह गया है। कृतयुग की अपेक्षा दस हज़ार मन्त्र भाग बचा है। वेद का विनाश न हो जाय इसलिये वेद के भेद करने हैं। वेद के नाश हो जाने से यज्ञ और देव आदि सब नष्ट हो जावेंगे। पहला वेद चार चरण का था। उसका परिमाण 'शतसाहस्र' था उससे दसगुना यज्ञ था। ऐसा सुनकर मनु ने चतुष्पाद् वेद को चार भागों में बांट दिया।

विष्णुपुराण (३।६) में लिखा है—

आद्य एको यजुर्वेदः तं चतुर्धा व्यकल्पयत्।

इसी प्रकार अग्नि पुराण में—

आद्यो वेदश्चतुष्पादः शतसाहस्रसम्मितः।
एक आसीद् यजुर्वेदस्तं चतुर्धा व्यकल्पयत्॥

अर्थात् एक आद्य यजुः वेद था उसको चार विभाग में बांट दिया। उसका परिमाण शतसाहस्र अर्थात् ( १००००० ) एक लक्ष मन्त्र था।

ये सब कल्पनाएं निराधार हैं। चतुष्पाद वेद की बात इन पुराण गढ़ने वालों ने सुन भर रक्खी थी। ये वेद का अभ्यास नहीं करते थे। केवल व्यासजी की बड़ाई करने के लिये वेद का सारा कारबार व्यासजी के नाम जैसी कल्पना सूझी, कर दिया। चतुष्पाद वेद का वर्णन हमने चर्चा, श्रावक आदि रूप से पहले कर दिया है। इसी प्रकार पहले एक लक्ष मन्त्रों का होना और युग दोष से मन्त्रों का नष्ट हो जाना और केवल दस सहस्र मन्त्रों का रह जाना यह कल्पना भी निराधार हैं। क्योंकि स्वयंभू से लेकर ब्राह्मणकार तक की अविच्छिन्न गुरु परम्परा प्राप्त होती है। वेद के मन्त्रों, पदों और अक्षरों तक की गणना नियत है फिर उनके लोप हो

जाने और संग्रह करने आदि की सब कपोल कल्पित बातें उन लोगों की जो वेद के साथ कोई सम्बन्ध नहीं रखते थे, गढ़ी हुई हैं और वे मन-माना, उटपटांग बातें योरोपीयन लेखकों और उनके अनुयायियों के समान गढ़ लेते थे। इन पुराणों की फैलाई निराधार बातों पर योरोपीयन विद्वानों ने अपनी विचित्र २ कल्पनाओं का जाल फैलाया है।

पुराणों की इस कल्पना के असत्य होने में एक प्रबल प्रमाण यह भी है कि एक वेद होने की कल्पना वेद और ब्राह्मणों में कहीं नहीं है। उनमें आदि काल से ही चार वेदों की सत्ता का वर्णन है। इसके अतिरिक्त शाखा-भेद के सम्बन्ध में विष्णुपुराण ( ३।६ ) में लिखा है—

( १ ) ऋग्वेदपाठकं पैलं जग्राह स महामुनिः।

( २ ) बिभेद प्रथमं पैलो विप्रं ऋग्वेदपादपम्।
इन्द्रप्रमितये प्रादाद् बाष्कलाय च संहिते।

( ३ ) चतुर्धा स विभेदाथ वाष्कलोऽपि च संहिताम्।
बौधादिभ्यो ददौ ताश्च शिष्येभ्यः स महामुनिः।
बोध्याग्निमाठरौ तद्वत् याज्ञवल्क्यपराशरौ।
प्रतिशाखास्तु शाखायास्तस्यास्ते जगृहुर्मुने।

( ४ ) इन्द्रप्रमतिरेकां तु संहितां स सुतं ततः।
माण्डुकेयं महात्मानं मैत्रेयाध्यापयत् तदा।

( ५ ) तस्य शिष्यप्रशिष्येभ्यः पुत्रशिष्यक्रमाद् ययौ।
वेदमित्रस्तु शाकल्यः संहितां तामधीतवान्।
चकार संहिताः पञ्च शिष्येभ्यः प्रददौ च ताः।
तस्य शिष्यास्तु वै पञ्च तेषां नामानि मे श्रृणु।
मुद्गलो गोमुखश्चैव वात्स्यः शालीय एव च।
शरीरः पञ्चमश्चासीत् मैत्रेय सुमहामतिः।

( ६ ) संहितात्रितयं चक्रे शाकपूर्णस्तथेतरः ।
निरुक्तमकरोत्तद्वत् चतर्थं मुनिसत्तम ।
क्रौञ्चो वैतालिकस्तद्वत् बलाकश्च महामुनिः ।
निरुक्तश्च चतुर्थोऽभूत् वेदवेदांगपारगः ।
इत्येताः प्रतिशाखाभ्यो ह्यनुशाखा द्विजोत्तम ।

( ७ ) वाष्कलश्चापरास्तिस्त्रः संहिताः कृतवान् द्विजः ।
शिष्यः कालायनिर्गार्ग्यस्तृतीयश्च कथाजपः ।
इत्येता बह्वचः प्रोक्ताः संहिताः यै प्रवर्त्तिताः ॥

भागवत पुराण १२।६। में—

( १ ) पैलाय संहितामाद्यां बह्वचाख्यामुवाच ह ।

( २ ) पैलः स्वसंहितामूचे इन्द्रप्रमितये मुनिः । वाष्कलाय च

( ३ ) सोप्याह शिष्येभ्यः संहितां स्वकाम् । चतुर्धा व्यस्य बोध्याय याज्ञवल्क्याय भार्गव । पराशरायाग्निमित्रे

( ४ ) इन्द्रप्रमितिरात्मवान् अध्यापयत्संहितां स्वां माण्डूकेममृषिं कविम्

( ५ ) तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान् । शाकल्यस्तत्सुतः स्वांतु पञ्चधा व्यस्य संहितां । वात्स्यमुद्गलशालीयगोखल्यशिशिरेष्वधात् ।

( ६ ) जातूकर्ण्यश्च तच्छिष्यः सनिरुक्तां स्वसंहिताम् । वलाकपैजवैतालविरजेभ्यौ ददौ मुनिः ।

( ७ ) वाष्कलिः प्रतिशाखाभ्यो बालखिल्याख्यसंहिताम् । चक्रे बालायनि भंज्यः कासारश्चैव तां दधुः । बह्वृचः संहिता ह्येता एभिर्ब्रह्मर्षिभिर्धृताः ॥

वायु पुराण ( अ० ६१, ६२ ) में—

( १ ) ऋग्वेदश्रावकं पैलं जग्राह विधिविद् द्विज ।

( २ ) ऋचो। गृहीत्वा पैलस्तु व्यभजत् तद् द्विधा पुनः। द्विः कृत्वा संहिते चैव शिष्याभ्यामददात् प्रभुः॥ इन्द्रप्रमतये चैकां द्वितीयां वाष्कलाय च।

( ३ ) चतस्रः संहिताः कृत्वा वाष्कलिर्द्विजसत्तमः। शिष्यानध्यापयामास शुश्रूषाभिरतान् हितान्। बोध्यं तु प्रथमां शाखां द्वितीयामग्निमाठरम्। पराशरं तृतीयां तु याज्ञवल्क्यमथापराम्।

( ४ ) इन्द्रप्रमतिरेकां तु संहितां द्विजसत्तमः। अध्यापयत् महाभागं मार्कण्डेयं यशस्विनम्।

( ५ ) सत्यश्रवसमग्रयं तु पुत्रं सतु महायशाः। सत्यश्रवाः सत्यहितं पुनरध्यापयद्द्विजः। सोपि सत्यतरं पुत्रं पुनरध्यापयद्विभुः। सत्यश्रियं महात्मानं सत्यधर्मपरायणं। अभवंस्तस्य वै शिष्यास्त्रयस्तु सुमहौजसः।सत्यश्रियस्तु विद्वांसः।सत्यग्रहणतत्पराः शाकल्यः प्रथमस्तेषां तस्मादन्यो रथान्तरः। वाष्कलिश्च भरद्वाज इति शाखाप्रवर्त्तकाः। देवमित्रस्तु शाकल्यो ज्ञानाहंकारगर्वितः। जनकस्य स यज्ञे वै विनाशमगमद् द्विजः। देवमित्रस्तु शाकल्यो महात्मा द्विजसत्तमः। चकार संहिताः पञ्च बुद्धिमान् पदवित्तमः। तच्छिष्या ह्यभवन् पञ्च मुद्गलो गालकस्तथा। खालीकश्च तथा मत्स्यः शैशिरेयस्तु पञ्चमः।

( ६ ) प्रोवाच संहितास्तिस्रः शाकपूणीरथीतरः। निरुक्तं च तथा चक्रे चतुर्थं द्विजसत्तमः। तस्य शिष्यास्तु चत्वारः केतवो दालकिस्तथा। धीमान् शतबलाकश्च तेगश्च द्विजोत्तमः।

( ७ ) वाष्कलिश्च भरद्वाजस्तिस्रः प्रोवाच संहिताः। रथीतरो निरुक्तं च पुनश्चक्रे चतुर्थकम्। त्रयस्तस्याभवन् शिष्या महात्मानो गुणान्विताः। धीमानन्दायनीयश्च पन्नगारिश्च बुद्धिमान्। तृतीयश्चा-

भवस्ते च तपसा संशितव्रताः। वैतरागा महातेजा संहिताज्ञान पारगाः। इत्येते वहचः प्रोक्ताः संहिताः यैः प्रवर्त्तिताः॥

इस पुराण मत की आलोचना कीजिये।

( १ ) व्यासने पैलको ऋग्वेद दिया।

टि०—भागवत इस संहिता का नाम बह्वृचसंहिता कहता है।

( २ ) पैलने इन्द्रप्रमिति और वाष्कल इन दो शिष्यों को दो संहिताएं दी।

टि०—वायु पुराण ने 'इन्द्रप्रमति' नाम भी लिखा है। वासिष्ठ इन्द्र-प्रमति नाम ऋषि ऋग्वेद के मन्त्रों का द्रष्टा हुआ है। अन्यों ने इस नाम को 'इन्द्रप्रमिति' लिखा है।

( ३ ) वाष्कल ने संहिता के ४ विभाग करके बोध ( बोध्य ) अग्नि-माठर, याज्ञवल्क्य, और पराशर इन ४ शिष्यों को दी।

टि०—विष्णु पु० में ही 'बोधादि' और बौध्याग्निमाठरौ ऐसा नाम भेद हो गया है। भागवत और वायु पु० 'बोध्य' नाम बतलाते हैं। और भागवत ने अग्निमाठर के स्थान पर अग्निमित्र नाम बतलाया है।

( ४ ) इन्द्रप्रमति ने एक संहिता अपने पुत्र माण्डुकेय को दी—

टि०—वायु पु० ने मार्कण्डेय नाम लिखा है।

( ५ ) वह संहिता उसके शिष्य प्रशिष्य क्रम से उसके शिष्य प्रशिष्यों को प्राप्त हुई। वेदमित्र शाकल्य ने उस संहिता को पढ़ा। उसने पांच संहिताएं करके मुद्गल, गोमुख, वात्स्य, शालीय, और शरीर इन पांच शिष्यों को दिया।

टि०—भागवत् ने देवमित्र नाम दिया है। और देवमित्र के शिष्य सौभरि आदि और उसका पुत्र शाकल्य बतलाया है। भागवतने गोमुख के स्थान पर गोखल्य और शरीर के स्थान पर शिशिर नाम पढ़ा है। वायु ने

शालीय को खालीक और गोमुख को गालक, वात्स्य को मत्स्य और शरीर या शिशिर को 'शैशिरेय' लिखा है।

( ६ ) शाकपूर्ण [ तथेतर ? राथीतर ? ] ने तीन संहिताएं की। चौथा निरुक्त बनाया। क्रौञ्च, वैतालिक, वलाक और निरुक्त चौथा वेद पारग हुआ।

टि०—वायु पुराणने शाकपूणि रथीतर का नाम दिया है। भागवत ने जातुकर्ण्य का नाम दिया है। विष्णुपुराण के लेख से संदेह होता है कि क्या निरुक्त भी किसी शिष्य का नाम है ? भागवतने चार शिष्य वलाक, पैज, वैताल और विरज बतलाये हैं। वायु ने केतव, दालकि, शतबलाक, और तेग ये चार नाम दिये हैं। शाकपूर्ण या रथीतर किसका शिष्य है यह भागवत और विष्णु में स्पष्ट नहीं होता।

( ७ ) वाष्कलने तीन संहिताएं बनाई। उसके तीन शिष्य हुए कालायनि, गार्ग्य और कथाजप। ये बह्वृच हैं जिन्होंने संहिताएं प्रचारित कीं।

टि०—यह वाष्कल संख्या ( २, ३, ) में कहा वाष्कल है या दूसरा यह संदेह होता है। भागवत और वायु ने इसका नाम वाष्कलि लिखा है। यह वही पूर्व कहा वाष्कल नहीं है, इसके शिष्य और उसके शिष्यों मे नाम भेद और संख्या भेद है। वायु ने माण्डुकेय की शिष्यपरम्परा में वाष्कलि भारद्वाज का नाम लिखा है उसही को रथन्तर का नाम भी दिया है। उसही के तीन शिष्य धीमानन्दायनि, पन्नगारि, और आर्भव बतलाये हैं। वायु ने एक टूटी श्रृंखला और दिखाई है। वह यह कि मार्कण्डेय ( मान्डुकेय ? ) के ज्येष्ठ पुत्र का नाम सत्यश्रवा हुआ। उसका पुत्र सत्य हित, उसका पुत्र सत्यतर, उसका सत्यश्री हुआ। सत्यश्री के तीन शिष्य शाकल्य, रथान्तर और वाष्कलि भारद्वाज। देवमित्र शाकल्य ज्ञानाहंकार से गर्वित होकर जनक के यज्ञ में परास्त हुआ, नाश को प्राप्त हुआ। उसके पांच शिष्य हुए मुद्गल, गालक, खालीक, मत्स्य और शैशिरेय। वायुपुराण में इस

स्थल पर १०, १२ श्लोक निष्प्रयोजन प्रक्षिप्त भी हैं। जिनका प्रसंग से कोई सम्बन्ध भी नहीं है। विष्णु और भागवत का वाष्कल और वाष्कलि एक ही है। वायु ने भी देवमित्र को ही शाकल्य माना है। उपसंहार में सभी ने समान रूप से लिखा है।

विष्णु, वायु, भागवत तीन पुराणों को तुलना से स्पष्ट हो जाता है कि पुराणकर्त्ताओं को न तो ऋषियों के शुद्ध नामों का ज्ञान है, न शिष्य परम्परा की समानता है। हम अनायास इस परिणाम पर पहुंचते हैं कि पुराणकर्त्ताओं का इस सम्बन्ध में सब ज्ञान सुना सुनाया है। वे वैदिक साहित्य से सर्वथा अनभिज्ञ रहे हैं। सारी परम्परा में केवल शाकपूर्ण को निरुक्तकार लिख दिया है। यास्क, कौत्सव्य आदि निरुक्त कारों का पता ही नहीं चलता। शाकपूर्ण शब्द का शुद्ध रूप 'शाकपूणि' है। परन्तु इसके पहले निरुक्त ही नहीं था यह नहीं माना जा सकता।

पतञ्जलि ने महाभाष्य में लिखा है। 'एकविंशतिर्बाह्वृच्यम्'। ये २१ शाखाएं कैसी थी कुछ पता नहीं चलता। पुराणकार का यह कहना कि इखरी विखरी ऋचाओं को व्यास ने संग्रह करके ऋग्वेद बना डाला यह पुराणकारों का सर्वथा मिथ्या प्रलाप है। यदि व्यास देव के आगे के शिष्यों से ही शाखा भेद हुआ है तो उसके पूर्व २७ चतुयुर्गों तक शाखा भेद न हुआ होगा यह कल्पना नहीं हो सकती जब कि शिष्यपरम्परा उससे पूर्व भी विद्यमान रही है। पुराणकारों ने शांखायन आदि का तो नाम ही कहीं नहीं लिया, जैसे उनके कानों में कदाचित् शांखायन शाखा का नाम ही सुनाई नहीं दिया होगा। इससे भी पुराणकारों की अनभिज्ञता प्रकट होती है।

## १३. अथर्व-परिशिष्ट का चरणव्यूह

तत्र ऋग्वेदस्य सप्त भेदा भवन्ति। तद्यथा आश्वलायनीयाः।

शांखायनाः । साध्यायनाः [शाव्यायनाः ?] शाकलाः । वाष्कलाः [ वाष्कलायनाः ] औदुम्बरायणाः । माण्डूकाश्चेति । तेषामध्ययनम्—ऋचां दश सहस्राणि ऋचां पञ्चशतानि च । ऋचामशीतिः पादश्च एतत्पारण [ पारायण ] मुच्यते ।

अर्थात् ऋग्वेद के सात भेद होते हैं ? आश्वलायनीय, शांखायन, साध्यायन, [ शाव्यायन ] शाकल वाष्कल, औदुम्बर, और माण्डूक । उनका अध्ययन १०५८० पूर्ण ऋचा और एक पाद यह पारायण अर्थात् संहिता का परिमाण है । अथर्व परिशिष्ट ने साध्यायन और औदुम्बर दो शाखाओं का और परिचय दिया है । साध्यायन कदाचित् शाव्यायन है ।

## १४. शाखाओं की गणना

उक्त शाखाओं में से माण्डूकेयों[१] की माण्डूक्य उपनिषत् प्राप्त है । आश्वलायनों[२] का श्रौतसूत्र और गृह्यसूत्र दोनों प्राप्त हैं । शांखायनों[३] का श्रौतसूत्र ब्राह्मण और आरण्यक, तीनों प्राप्त हैं । ऐतरेय[४] ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषत् तीनों प्राप्त हैं परन्तु ऐतरेय शाखा का चरणव्यूहों में उल्लेख न होना विस्मयजनक है । इसी प्रकार कौषीतकी[५] ब्राह्मण और आरण्यक दोनों का अष्ट स्थानों, में परिगणन मिलता है परन्तु चरणव्यूह के मूल में उसको भी स्थान प्राप्त नहीं है । जिस प्रकार पुराणों में शाकपूणि[६] या शाकपूर्ण के साथ निरुक्त का प्रणयन लिखा है । इसी प्रकार यास्क[७] का भी निरुक्त प्रसिद्ध है । यास्क ने भी दशतयी ऋग्वेद को ही अपनाया है उसके मन्त्रों को अपने निरुक्त में बहुत स्थान दिया है शाकलशाखा से उसके उद्धृत मन्त्रों में पाठभेद भी है । इस शाखा को भी चरणव्यूह में स्थान नहीं प्राप्त हुआ । पुराणोक्त नामों में मुद्गल, वात्स्य और शैशिर नामों का उल्लेख है । मुद्गल से मुद्गल[८] शाखा, वात्स्य से वात्स्यायन[९] शाखा, शिशिर से शैशिरीय[१०] ये तीन शाखाएं भी प्रकट होती हैं । वात्स्यायन का अर्थशास्त्र और कामशास्त्र दोनों प्राप्त हैं । कामशास्त्रकार ने कामशास्त्र का आदि स्रोत ऋग्वेद को ही स्वीकार किया है ।

शास्त्रमेवेदं चतुःषष्टिरित्याचार्यवादः कलानां चतुःषष्टित्वात्। तासां च संप्रयोगाङ्गभूतत्वात्। कलासमूहो वा चतुःषष्टिरिति। ऋचां दशतयीनां च संज्ञितत्वात्। इहापि तदर्थसम्बन्धात्। पञ्चालसम्बन्धाच्च बह्वृचैरेवैषा पूजार्थं संज्ञा प्रवर्त्तिता।

अर्थात्, कामशास्त्र का नाम 'चतुः षष्टि'शास्त्र प्राचीन आचार्यों में प्रसिद्ध है। क्योंकि ( १ ) उसमें चौसठ कलाएं हैं, वे चौसठ कलाएं संप्रयोग के अंग हैं। (२) दशतयी ऋचाओं २ अर्थात् ऋग्वेद का भी वही नाम है। अर्थात् प्रति अष्टक में आठ २ अध्याय होने से ६४ अध्यायों के ऋग्वेद का नाम भी 'चतुःषष्टि' है। ( ३ ) काम शास्त्र में ऋग्वेद के मन्त्रों से ही कामशास्त्र गत अर्थ का भी सन्बन्ध है। (४) पञ्चाल नाम ऋषि का ऋग्वेद और कामशास्त्र दोनों से सम्बन्ध है। अर्थात् पञ्चाल बाभ्रव्य[११] कामशास्त्र का प्रणेता और ऋग्वेद शाखा का प्रवर्त्तक भी है। बह्वृचों अर्थात् ऋग्वेद शाखाध्यायियों ने ही चतुःषष्टि यह नाम कामशास्त्र का प्रचलित किया है। इस प्रकार बाभ्रवीय और वात्स्यायन ये दोनों कुल क्रम से ऋक् शाखी हैं। शैशिरी शाखा का उल्लेख कात्यायनीय अनुवाकानुक्रमणी में है।

ऋग्वेदे शैशिरीयायां संहितायां यथाक्रमम्॥
प्रमाणमनुवाकानां सूक्तैः शृणुत शाकलाः॥

वायुपुराण ने देवमित्र शाकल्य की शिष्य परम्परा में वाष्कलि भारद्वाज के तीन शिष्यों में पन्नगारि[१२] का नाम दिया है। पन्नगारि आचार्य को वैयाकरणों ने प्राचीन आचार्यों में गणना की है। 'इञः प्राचाम्' पा० २।४।६१॥ सूत्र के उदाहरण में 'पान्नागारिः पिता पुत्रश्च' ऐसा उदाहरण दिया है। प्रतीत होता है यह भी कोई शाखा प्रवर्त्तक हैं। पुराणोक्त नामों में रथीतर सत्यश्रवा का नाम आते हैं। तैत्तिरीय में सत्य वचा राथीतर[१३] का उल्लेख हैं। उसी स्थान पर मौद्गल्य नाक ऋषि का भी नाम आता है। अतः रथीतर और मुद्गल यह दोनों भी बह्वृच वेद के शाखा प्रवर्त्तक ऋषि हैं।

'पैल'[१४] नाम भी प्राचीन* ऋषियों ( पा० २।४।५९ ) में परिगणित है। इन्द्रप्रमति[१५] वसिष्ठ गोत्री है। पुराण प्रोक्त नामों में वलाक नाम आया है। कौपीतकी ब्राह्मण और आरण्यक में गार्ग्य बालाकि का नाम आता है उसने काश्य अजात शत्रु के प्रति ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया है। फलतः बालाक गोत्र[१६] भी शाखा प्रवर्त्तक रहा। इस प्रकार पुराणोक्त कुछ नामों की तुलना ब्राह्मण उपनिषद् आरण्यकादि आर्ष ग्रन्थों में आये नामों से हो जाती है। शाखा प्रवर्त्तक ऋषियों और शाखाओं का अनुसन्धान कर हम ऋग्वेदीय नीचे लिखी शाखाओं का अवधारण करते हैं—

१. शाकल, २. वाष्कल, ३. आश्वलायन, ४. शांखायन, ५. माण्डूक [ माण्डूकायन ], ६. साध्यायन [ शाट्यायन ], ७. औदुम्बर, ८. ऐतरेय ९. कौपीतकी, १०. शाकपूणि, ११. यास्क, १२. मुद्गल, १३. वात्स्य, [ वात्स्यायन ] १४. शैशिरीय, १५. बाभ्रवीय, १६. पान्नगारि, १७. राथीतर, १८. बलाक ( बालाकिः ) १९. इन्द्रप्रमति ( वासिष्ठ ) २०. पैल, २१. अग्निमाठर, २२. जातुकर्ण्य, २३. गार्ग्य, इनमें से मुख्य मुख्य २१ शाखाओं का प्रायः उल्लेख होता है।

इसके अतिरिक्त ऋग्वेदीय आश्वलायन गृह्यसूत्र में ऋषि तर्पण प्रकरण में लिखा है—

**सुमन्तुजैमिनिवैशम्पायनपैल-सूत्र-भाष्यभारतमहाभारत-धर्माचार्याः। जानन्ति बाहवि गार्ग्य गौतम शाकल्य बाभ्रव्य माण्डव्यमाण्डुकेया गार्गीवाचक्नवीवडवाप्राचेथेयी, सुलभा मैत्रेयी, कहोलं कौषीतकं, पैङ्ग्यं महापैग्यं सुयज्ञं शांखायनं एतरेयं महैतरेयं शाकलं वाष्कलं सुजातवक्त्रमौदवाहिं सौजामिं शौनकमाश्वलायनं ये चान्ये आचार्यास्ते सर्वे तृप्यन्तु। इति॥**

---

* पैलादयः इञन्तास्तेभ्यः इञः प्रचामिति लुकिसिद्धे प्रप्रागर्थःपाठ इति काशिका ( पा० २।४।५९ )

इस उद्धरण के आधार पर श्री पं० सत्यव्रतसामश्रमी जी ने इन सब को तीन गणों में बाट दिया है जैसे ( १ ) माण्डुकेय गण—जानन्ति, वाहवि, गार्ग्य, गौतम, शाकल्य, बाभ्रव्य, माण्डव्य। ( २ ) शांखायन गण—कहोल, कौषीतक, पैंग्य, महापैंग्य, सुयज्ञ। ( ३ ) आश्वलायन गण—ऐतरेय, महैतरेय, शाकल, वाष्कल, सुजातवक्त्र, औदवाहि, महौदवाहि, सौजामि, शौनक। ये सब मिल कर २२ आचार्य हैं। इसके अतिरिक्त शौनकीय ऋक् प्रातिशाख्य में कुछ शाखाध्यायियों के नाम आते हैं जैसे काण्वायन, कौत्स, वैमद, शाकल, बाभ्रव्य, आंगिरस, बालखिल्य, शैशिरीय, वेदमित्र, स्थविर शाकल्य, माण्डुकेय, अन्यतरेय, व्याड़ि। ये १३ नाम भी उस समय विद्यमान भिन्न २ शाखाध्यायी जनों के भेद के सूचक हैं।

## १४. शाकलशाखा

वर्त्तमान में जो ऋग्वेद संहिताएं प्रचलित हैं उनमें से एक बम्बई में छपी है, दूसरी मैक्समूलर द्वारा संपादित है। दोनों के सूक्तक्रमों में भेद हैं। पं० उमेशचन्द्र विद्यारत्न के कथनानुसार मुम्बई प्रकाशित ऋक् संहिता आश्वलायन शाखा है और मैक्समूलर प्रकाशित वाष्कल शाखा है वंगदेश में भी आश्वलायन शाखा का विशेष प्रचार है। वहां ऋग्वेद शाखाध्यायी विद्वानों को प्राप्त ताम्रलिपि दान पत्र प्राप्त हुए हैं। परन्तु अधिक लोगों के विचार से प्रचलित वेदसंहिता शाकलशाखा है। इसी ऋग्वेद संहिता को सामान्य रूप से शाकल संहिता वा शाकलक कहते हैं। जैसा कि कात्यायनीय ऋक् सर्वानुक्रमणी में लिखा है—

अथ ऋग्वेदाम्नाये शाकलके सूक्त-प्रतीक-ऋक्-संख्य-ऋषि-देवतच्छन्दांस्यनुक्रमिष्यामः।

सर्वानुक्रमणी भाष्य में भी श्री षड् गुरुशिष्य ने लिखा है।

शाकलस्य संहितैका वाष्कलस्य तथा परा।

आश्वलायन श्रौतसूत्र के भाष्य में—

'शाकलस्य वाष्कलस्य चाम्नायद्वयस्यैतदाश्वलायनसूत्रं नाम प्रयोगशास्त्रमध्येतृप्रसिद्धं सम्बन्धाविशेषं द्योतयति।

विकृति वल्ली में १। ४। लिखा है—

शाकलस्य शतं शिष्याः नैष्ठिक-ब्रह्मचारिणः।
पञ्च तेषां गृहस्थास्ते धर्मिष्ठाश्च कुटुम्बिनः।
शिशिरो वाष्कलः शांखो वात्स्यश्चैवाश्वलायनः।
पञ्चैते शाकला शिष्याः शाखाभेदप्रवर्त्तकाः॥

वायु पुराणने सत्यश्रिय के शिष्यों के वर्णन में लिखा है—

अभवंस्तस्य वै शिष्याः त्रयस्तु सुमहौजसः
शाकल्यः प्रथमस्तेषां तस्मादन्यो रथन्तरः
वाष्कलिश्च भरद्वाजः इति शाखा प्रवर्त्तकाः
देवमित्रस्तु शाकल्यो ज्ञानांहंकार गर्वितः।
जनकस्य स यज्ञे वै विनाशमगमद् द्विजः।

विष्णुने इन्द्रप्रमति के शिष्य माण्डुकेय के शिष्य परंम्परा में लिखा है—

तस्य शिष्यप्रशिष्येभ्यः पुत्रशिष्यक्रमाद् ययौ।
वेदमित्रस्तु शाकल्यः संहितां तामधीतवान्।

भागवत ने भी माण्डुकेय के शिष्य-वर्णन में लिखा है—

तस्य शिष्यो देवमित्रः सौभर्यादिभ्य ऊचिवान्।
शाकल्यस्तत्सुतः स्वां तु पञ्चधा व्यस्य संहिताम्।
वात्स्य-मुद्गल-शालीय-गोखल्य-शिशिरेष्वधात्॥

इस प्रकार केवल शाकल संहिता के प्रवर्त्तक ऋषि के विषय में ही जितने मुख उतनी बातें सुनने में आ रही हैं। कोई शाकल्य को देवमित्र शाकल्य

कहता है। कोई देवमित्र का शिष्य और कोई पुत्र बतलाता है। इसी प्रकार उसके शिष्यों के नामों में भी भेद है। हमें तो यह बात मालूम होती है कि पुराणकारों ने बहुत से नाम सुन रखे थे, उन सबको किसी प्रकार व्यास-देव की महत्ता को बढ़ाने के लिये व्यासदेव की शिष्यादि परम्परा में जंचाने का प्रयत्न किया है। और बाद के शेष सब लेखकों पर पुराणों की छाप है।

हम यदि किन्हीं द्वारों से ठीक निर्णय पर पहुंचना चाहते हैं तो केवल आर्ष ग्रन्थों की पंक्तियों से पहुंच सकते हैं। उनमें भी ब्राह्मण ग्रन्थ अच्छा विवरण दे सकते हैं। उनमें अपने समकालिक विद्वानों के मतों का उल्लेख तथा स्थान २ पर वंशब्राह्मण प्राप्त होते हैं। उन पर दृष्टि डालते हैं तो बहुत सी बातें विचार योग्य प्राप्त होती हैं—

( २ ) ऐतरेय ब्राह्मण में शाकल का उल्लेख है। अग्निष्टोम की स्तुति में लिखा है—

स वा एषोऽपूर्वोऽनपरो यज्ञक्रतुर्यथा रथचक्रमनन्तमेवं यद-ग्निष्टोमः। तस्य यथैव प्रायणम् तथा उदयनम्। तदेषा अभि यज्ञगाथा गीयते।

यदस्य पूर्वमपरं तदस्य यद्वस्यापरं तद्वस्य पूर्वम्।
अहेरिव सर्पणं शाकलस्य न विजानन्ति यतरत् परस्तात्॥

अर्थात्, यज्ञक्रतु अग्निष्टोम प्रारम्भ और समाप्ति रहित प्रतीत होता है। जैसे रथचक्र। रथचक्र में नहीं कह सकते कौनसा भाग प्रारम्भ और कौनसा अन्त का है। उसी प्रकार अग्निष्टोम यज्ञ का जैसा प्रायण अर्थात् प्रारम्भ की इष्टि है उसी प्रकार उदयन अर्थात् समाप्ति की इष्टि है। इसी ही आशय की एक यज्ञ की गाथा अर्थात् श्लोक गाया जाता है—जो ही इसका पूर्व भाग है वही इसका पिछला भाग है। जो इसका पिछला भाग है वही इसका पूर्व भाग है। (अहेः) साप की गति के समान शाकल की

गति है विद्वान् जन नहीं जानते कि उसका कौनसा भाग अगला और कौनसा भाग पिछला है।

आचार्य सायण के मत से शाकल सर्प विशेष का नाम है। शाकल नाम का सांप चलने के समय अपनी पूछ को मुख से पकड़ कर कुण्डल सा बन जाता है उस समय उसकी पूंछ और मुंह नहीं पहिचाना जाता। उसी प्रकार का यह यज्ञ है।

अन्य विद्वान्* इस स्थान पर शाकल का अर्थ सर्प विशेष न जान कर शाकल प्रोक्त ऋग्वेद या शाकल्य की शिक्षा सूत्र आदि मानते हैं। और अहि का अर्थ सूर्य, मेघ आदि मानते हैं। हमें इस स्थान पर सायण का कथन युक्तिसंगत प्रतीत होता है। और श्लेषवृत्ति से यहां शाकल्य प्रोक्त यज्ञ कर्मकाण्ड भी प्रतीत होता है, इसमें भी संदेह नहीं।

पाणिनि सूत्र—शाकलाद्वा (पां० ४। २। १२८॥) से भी 'शाकल' ऐसा सिद्ध होता है। शाकल शास्त्र, शाकल संघ आदि प्रयोग गतार्थ होते हैं। इस स्थान पर महर्षि दयानन्द ने 'शकलात्।वा' पाठ माना है। यञन्त शकल शब्द से वैकल्पिक अण् करके 'शाकल, शाकलक' दो प्रयोग साधते हैं। दूसरे वैयाकरण गर्गाद्यन्तर्गत कण्वादि गण में पढ़े यञन्त शकल शब्द से कण्वादिभ्यो गोत्रे (४। २। ११।) से अण् करके 'शाकलाः' साधते हैं। +

अब प्रश्न यह है कि ऋग्वेद के सर्वानुक्रमणी कारने जो ऋग्वेदाम्नाये शाकलके यह प्रयोग दिया है इसका क्या अभिप्राय है। क्या शाकल्य प्रोक्त ऋग्वेद या कुछ और पदार्थ।

शकलात्। वा॥ सूत्र के व्याख्यान से शाकल से शाकल्य का प्रोक्त

---

* १. श्री हरिप्रसादजी २. श्री भगवद्दत्तजी बी० ए०

+ महाभाष्य [ ४। १। १८ ]

लक्षण या शास्त्र ही सूचित है। शाकल्यने क्या शास्त्र कहा। वेद मन्त्र तो नित्य ही हैं। उनको वह क्या रचेगा, प्रत्युत उस पर पद पाठादि का उपदेश प्रवचनादि कर सकता है। फलतः शाकल्य ने ऋग्वेद के पदपाठ तथा उच्चारण आदि के जो विशेष नियम निर्धारित किये वही समस्त शाकल या 'शाकलक' कहाया इसके ही उपचार से ऋग्वेद संहिता भी उसी नाम से कही जाती है। जैसा कि षड्गुरुशिष्य ने लिखा है—

तत्राम्नाये सम्यगभ्यासयुक्ते खिलरहिते शाकलके। शाकल्यस्योच्चारणं शाकलकम्।* शाकल ने संहिता को नहीं बनाया। प्रत्युत पदपाठ का अन्यों से भिन्न उपदेश किया है। अन्य शाखा-प्रवर्त्तकों के पद पाठों से और व्याख्याओं से शाकल्य कृत पदपाठ और व्याख्यान अवश्य भिन्न २ रहे हैं जैसा कि शौनकीय ऋक् प्रातिशाख्य में भिन्न २ अचार्यों के मतों को दर्शाया है। और वह मत भेद प्रायः पदपाठ और उच्चारण योग्य संहिताध्ययन में हैं। जैसे—शौनकोक्त ऋग्वेदीय प्राति शाख्य में—

१. उकारश्चेतिकरणेन युक्तो रक्तोऽपृक्तो द्राघितः शाकलेन। १।१।२६॥

शाकल आचार्य ने 'उ' इस निपात को पदपाठ में इति के योग में प्रायः अनुस्वारसहित दीर्घ कर दिया है।

संहिता में है 'अवेद्विन्द्र जल्गुलः' (ऋ० १।२८।४)। पदपाठ है अवेत्। इत्। ऊँ इति। इन्द्र। जल्गुलः। यहां 'ऊँ इति' ऐसा पदपाठ शाकल सम्मत है। यही बात पाणिनिने स्वीकार की है उञः ऊँ॥ पा० १।१।८॥ उ को ऊँ आदेश हो शाकल्य के मत में।

२. तत् त्रिमात्रे शाकला दर्शयन्ति आचार्यशास्त्रापरिलोप हेतवः।१।१।२६।

---

* शाकल्येन दृष्टः शाकलः शाकल एव शाकलकः। इति क्वचित्।

शाकल्य के शिष्य आचार्य शास्त्र की रक्षा के लिये अन्तिम विग्रुत को सानुस्वार कर देते हैं जैसे० 'नत्वा भीरिव विन्दतीँ'[3]। ऋ० १०।१४६।१॥

३. क्वचित् स्थितौ चैवमतोऽधिशाकला क्रमे स्थितोपस्थित माचरन्ति २।५।५॥

संहिता क्रम से पदपाठ 'स्थिति' कहाती है। पद के पीछे इति लगाना 'उपस्थिति' है। शाकल संम्प्रदाय के विद्वान क्रम से पढ़े हुए पदपाठ के साथ ही साथ इत्यन्त पद भी पढ़ देते हैं।

इत्यादि निदर्शनों से हमने स्पष्ट कर दिया कि ऋग्वेद की शाकल आदि शाखाओं के प्रवर्त्तक पदपाठ आदि के विशेष प्रवक्ता थे। वे वेद को बनाने या अपने मानमाना वेद संहिता को विकृत करने वाले नहीं थे। संहिता के पदपाठों में भिन्न २ आचार्य के मतों में भेद होना स्वाभाविक है। जैसा कि निरुक्तकार यास्क [निरु० ६।२८] ने शाकलकृत पदपाठ का स्वयं खण्डन किया है।

**वनेन वायो न्यधायि चाकन्। वा इति च य इति च चकार शाकल्यः। उदात्तं त्वेवमाख्यातमभविष्यदसुसमाप्तश्चार्थः।**

अर्थात् शाकल्य ने 'वायो' पद का 'वा'। 'यो' ऐसा छेद किया, सो ठीक नहीं है। इसी प्रकार शाकल्य के अतिरिक्त अन्य शाखाप्रवर्त्तकों के विषय में जानना चाहिये कि वे वेद की संहिता को बनाने या रूपान्तर करने वाले नहीं थे प्रत्युत मन्त्र के ऊपर विचार करके पदपाठ, तदनुसार निर्वचन और व्याख्या प्रकट करने वाले और मन्त्रों में नाना सत्य तत्वों का साक्षात् करने वाले ही ऋषि जन शाखा प्रवर्त्तक थे। उनके ही उपदिष्ट व्याख्यागत पर्याय शब्दों को पिछले शिष्यों ने संहिता का रूप देकर स्थान २ पर पाठ भेद कर दिया है। पाठ भेद होने के और भी बहुत से कारण हैं जिनमें लेखक का प्रमाद तथा वक्ता और श्रोता जनों का मुखोच्चारण और श्रवण में दोष होना भी बहुत कारण हैं। जहां २ भी पाठ भेद दिखाई देते हैं वहां २

इस प्रकार के कारणों की खोज होनी चाहिये और शुद्ध वेद संहिता का स्वरूप निर्धारित कर लेना चाहिये।

श्री महर्षि दयानन्द ने अपने वेद भाष्य में नाना स्थानों पर प्रायः वेद मन्त्र की संहिता को साम्प्रदायिक पाठ विकृति से बचाया है। परन्तु वैदिक यन्त्रालय के कर्त्ता धर्त्ता जन मूल संहिताओं में महर्षि दयानन्द के इस स्तुत्य कार्य की रक्षा नहीं कर सके। यह तथ्य मुझे भी बहुत देर बाद पता लगा है अतः हमारे प्रकाशित मन्त्र संहिता में भी हम उसका पालन नहीं कर सके। उदाहरणार्थ, बहवृचशाखाध्यायी प्रायः ड, ढ को ळ और 'ळ्ह' पढ़ते हैं। परन्तु महर्षि के वेद भाष्य के साथ छपी मन्त्र संहिता में स्थान २ पर ढ का ही प्रयोग किया है ळ, ळ्ह का नहीं। जैसे—'प्रोढः समुद्रमव्यथिः० (ऋ० १।११७।१५) ऐसे तथ्यों पर अभी और अनुशीलन होना चाहिये तभी शुद्ध वेद की संहिता का स्वरूप प्राप्त होगा। अस्तु।

इस शाखा प्रकरण को हम वंश ब्राह्मण दर्शा कर समाप्त करते हैं। शांखायनारण्यक में नीचे लिखे अनुसार वंश ब्राह्मण प्राप्त होता है।

## वंश-ब्राह्मण

१. ब्रह्मा स्वयंभूः। २. प्रजापतिः। ३. इन्द्रः। ४. विश्वामित्रः। ५. देवरातः। ६. साकमश्वः। ७. व्यश्वः। ८. विश्वमनाः। ९. उद्दालकः। १०. सुम्नयुः। ११. बृहद्दिवः। १२. सोमः प्रातिवेश्यः। १४. सोमपः। १५. प्रियव्रतः सोमापिः। १६. उद्दालकः आरुणिः। १७. कहोलः कौषीतकिः। १८. गुणाख्यः शांखायनः। १९. वयम्।

## प्रस्तुत भाष्य

प्रस्तुत भाष्य में हमने यथा सम्भव सरल सुबोध भाषा में वेद मन्त्र गत ज्ञान को प्रकट करने का यत्न किया गया है। इस खण्ड में हम पाठकों

की सेवा में वेद मन्त्रों में कल्पित इतिहासों की आलोचना स्थानाभाव से नहीं कर सके। केवल शाखा भेद आदि का विवेचना कर सके हैं। ऋग्वेद के सम्बन्ध में अभी सहस्रों बातें ज्ञातव्य और विवेचना योग्य हैं। जिनमें से सबसे मुख्य वेद मन्त्रों में कल्पित इतिहास हैं। इसकी विवेचना हम अगले खण्डों की भूमिका में स्पष्ट रूप से करेंगे। ज्ञातव्य विषयों का ज्ञान विस्तृत विषय सूची से यथावत् हो जावेगा। भाष्य में भी स्थान २ पर नाना रहस्यों को खोल दिया है जिसकी सूचना विषय सूची में ही देदीगयी है। पाठक जन वहां ही देखें। ऋग्वेद परहमें अभी तक दोही भाष्य देखने को प्राप्त हुए हैं। एक सायण भाष्य, दूसरा महर्षि दयानन्दकृत भाष्य। अंग्रेजी बंगला और मराठी का अनुवाद भी देखे हैं। वे सब सायण को नहीं छोड़ सके। महर्षि दयानन्द के पदार्थ भाष्य में बहुत अधिक कौशल दर्शाया गया है। जिसको भाषाकार नहीं निभा सका। स्थान २ पर वाचक लुप्तोपमा आदि की सूचनाओं को दृष्टि में रख कर ऋग्वेद का सरल अर्थ तथा उपमा के बल से प्राप्त पक्षान्तरों में नाना प्रकार के श्लेषमूलक अर्थों का चमत्कार देखना आवश्यक है, जिसको दर्शाने का थोड़ा सा यत्न प्रस्तुत आलोक भाष्य में किया है। इसमें भी कितना ही लेख्य विषय जो मन्त्र के आशय को स्पष्ट करता है, विस्तार भय से सर्वथा छोड़ दिया गया है।

महर्षि दयानन्द की बनायी ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में बहुत से वेद विषयक प्रश्नों को सरल कर दिया है उनको पुनः दोहराना पिष्टपेषण जानकर इस भूमिका में स्थान नहीं दिया गया। वे ज्यों के त्यों वहां से ही देख लेने चाहिये।

मानुष दृष्टि दोष, स्वभाव दोष, स्मृति दोष, आदि नाना दोषों से मनुष्य की कृति में नाना त्रुटियां अवश्यंभावी हैं। उनकी सत्ता मेरे इस कार्य में भी सदा सम्भव है उनका यथासाध्य शोधन शुद्धाशुद्ध पत्र में ग्रन्थ के अन्त में कर दिया है। तदनुसार सुधार लेना चाहिये। इसी प्रकार की त्रुटियों

को लेकर कुचोदना करने वाले दुर्विदग्धों की कुचोदनाओं का एक मात्र उपाय मौन है। सद्भाव से प्रेरित होकर त्रुटि दर्शाने वाले महानुभावों की दर्शायी सद्भावनाओं का मैं सदा स्वागत करता हूं। यदि वे महानुभाव मुझे कुछ और भी नवीन विचार तथा मेरी त्रुटि आदि दर्शावेंगे मैं तो उनके बड़े कृतज्ञ होऊंगा और उस उपकार का संस्मरण अगले संस्करणों में भी धन्य-वाद पूर्वक किया जावेगा।

दुर्जनों का स्वभाव है—

न विना परवादेन रमते दुर्जनो जनः।
काकः सर्वरसान् भुक्त्वा विनाऽमेध्यैर्न तृप्यति।

दुर्जन पुरुष विना परनिन्दा के चैन नहीं लेता। कौवा सब उत्तम रस खाकर भी विना गन्दगी खाये तृप्त नहीं होता। और इसके विपरीत सज्जन—

गुणी च गुणरागी च सरलो विरलो जनः।

स्वयं गुणवान् दूसरों के गुणों का प्रेमी और अति सरल स्वभाव का होता है। इस लिये—

दुर्जनो दोषमादत्ते दुर्गन्धिमिव सूकरः।
सज्जनश्च गुणग्राही हंसः क्षीरमिवाम्भसः॥

दुर्जन दोष ही पकड़ा करता है, जैसे शूकर मल ही खाता है। सज्जन गुणग्राही होता है, जैसे हंस जल में से भी दूध ही लेता है।

इस प्रकार सद् विवेक से सभी जन सदा गुणग्राही होकर परम सुख लाभ करें।

उस अपार ज्ञानमय प्रभु के परम रहस्यमय वाणी के सहस्रों प्रकार के आध्यात्मिक, आधिभौतिक अधि दैविक रचनाओं, और यज्ञों के रहस्यों का विवरण मुझ सा तुच्छ व्यक्ति क्या कर सकता है। तो भी देवतुल्य विद्वान जनों की सेवा में जो भी 'पत्र-पुष्प' रूप से निवेदन कर दिया है हमें आशा

है वे उससे ही प्रसन्न होकर मुझे आशीष् देकर मेरी वृद्धि करेंगे। ईश्वर से प्रार्थना है कि वह मुझे उसके ही इस महागुणज्ञानमय वेदानुशीलन रूप यज्ञ में सफल करे।

ये नाम केचिदिह नः प्रथयन्त्यवज्ञां।
जानन्तु ते, किमपि तान् प्रति नैष यत्नः॥

अर्थात्, जो व्यर्थ निन्दा अवज्ञा आदि का प्रकाश करते हैं उनके लिये इस ग्रन्थ में एक शब्द भी नहीं लिखा गया। सज्जनों को तो क्या कहूं।

गच्छतः स्खलनं क्वापि भवत्येव प्रमादतः।
हसन्ति दुर्जनास्तत्र समादधति सज्जनाः॥
आगमप्रवणश्चाहं नापवाद्यः स्खलन्नपि।
नहि सद्-वर्त्मना गच्छन् स्खलितेष्वप्यपोद्यते॥

पौष, शुक्ला दशमी,
कैसरगंज, अजमेर
१९८७ वि०

विद्वानों का अनुचर
जयदेव शर्मा
मीमांसातीर्थ, विद्यालंकार

---

॥ ओ३म् ॥

# ऋग्वेद-विषय-सूची

## प्रथमं मण्डलम् । प्रथमोऽष्टकः ।

### प्रथमोऽध्यायः

भौतिक अग्नि, आत्मा का वर्णन । ( ५ ) आत्मा, गृहस्थ और राष्ट्र पक्ष का विवरण । ( ६ ) द्वारों और सेनाओं का वर्णन । ( ७ ) दिन और रात्रि के समान स्त्री पुरुष और दो राज्य संस्थाओं का वर्णन । (८) दो विद्वान् । ( ९ ) तीन देवियों का विवरण । ( १० ) संसार का कर्त्ता विश्वरूप त्वष्टा । ( ११ ) ऊखल के दृष्टान्त से वनस्पति नाम से ईश्वर की स्तुति, ( १२ ) यज्ञ । ( पृ० ६२–७९ )

सू० [ १४ ]—ईश्वरोपासना । पक्षान्तर में आत्मा का वर्णन, (४–७) वीर विद्वानों और योगियों का वर्णन । ( ८ ) वषट् कृति । ( ९ ) ईश्वर से ज्ञान । और ( १०–१२ ) सुख प्राप्ति, पक्षान्तर में राजा का वर्णन । ( पृ० ७०–७७ )

सू० [ १५ ]—सूर्य के दृष्टान्त से राजा का वर्णन । वायुओं के दृष्टान्त से वीरों, विद्वानों का वर्णन । ( ३–६ ) गृहस्थों के कर्त्तव्य । विद्वान् पुरुषों के कर्त्तव्य । द्रविणोदा नाम ऐश्वर्यवान् पुरुषों का वर्णन । ( ११ ) राजा रानी, प्राण अपान का वर्णन, ( १२ ) गृहपति की राजा से तुलना । ( पृ० ७६–८२ )

सू० [ १६ ]—परमेश्वर उपासक, राजा, विद्वान जन, आत्मा और प्राण गण का वर्णन । (२) सूर्य चन्द्र के दृष्टान्त से राजा का वर्णन । (३) प्रातः ईश्वरस्मरण । ( ४ ) स्वप्रकाश परमात्मा का दर्शन । ( ५ ) पिपासित भक्त का ईश्वर को रस रूप से स्मरण । ( ६ ) महाशक्तिमान् सर्व धारक प्रभु । ( ७ ) शान्ति प्रद, ( ८ ) आनन्द रसमय, ( ९ ) काम पूरक प्रभु । पक्षान्तर में राजा का वर्णन ( पृ० ८३–८७ )

सू० [ १७ ]—इन्द्र, वरुण, राजा और सेनापति । अध्यात्म में जीव परमेश्वर । पक्षान्तर में अग्नि और जल ( ८–९ ) इन्द्र वरुण-वायु और जल । ( पृ० ८७–९० )

सू० [ १८ ]—ब्रह्मणस्पति वेदज्ञ विद्वान्। आचार्य, परमेश्वर। राजा, ( ६ ) सदसस्पति, सभापति ( ९ ) नाराशंस सर्वस्तुत्य परमेश्वर। (पृ० ८०–९५ )

सू० [ १९ ]—अग्नि, विद्वान्, परमेश्वर, राजा, भौतिकाग्नि, का वर्णन। ( ४–९ ) अग्नि, अग्रणी राजा, और मरुत् वीर भटों का वर्णन। ( पृ० ९५–९९ )

## द्वितीयोऽध्यायः

सू० [ २० ]—ऋभुगण, विद्वान ज्ञानी ईश्वरोपासक जन। शिल्पी जन। ( ६ ) देवकृत चमस का वर्णन ( ७ ) इक्कीस प्रकार के रत्नों का धारण ( पृ० ९९–१०३ )

सू० [ २१ ]—इन्द्र और अग्नि, अर्थात् वायु और आग, अग्नि और सूर्य के समान सेनापति और राजा। पक्षान्तर में परमेश्वर। ( ६ )राज प्रजावर्ग को सावधान रहने का आदेश। (पृ० १०३–१०६ )

सू० [ २२ ]—दो अश्वी, स्त्री पुरुष, दो उत्तम अधिकारी, राजारानी, अग्नि जल, अध्यात्म में आत्मा, परमात्मा। ( ५ ) सविता, जगदुत्पादक परमेश्वर, राजा। ( ७ ) चित्रवसु के विभक्ता का स्मरण। सबकी मिलकर स्तुति। राष्ट्रपालक संस्थाओं और गृहपत्नियों की प्राप्ति। (१०) भारती, वेदवाणी। ( ११ ) सेना और गृह पत्नियों के कर्त्तव्य। ( १२ ) इन्द्राणी, वरुणानी, अग्नायी, तीन शक्तियों का वर्णन। पक्षान्तर में गृहपत्नी का वर्णन। ( १३ ) पृथिवी शासन और गृहस्थ का वर्णन ( १४ ) राजा प्रजा का व्यवहार ( १५ ) पृथ्वी के दृष्टान्त से स्त्री का वर्णन, ( १६ ) परमेश्वर, राजा, ( १७–२१) विष्णु, परमेश्वर। ( पृ० १०६—११६ )

सू० [ २३ ]—सोम, जीवगण, वीरजन विद्वानों के कर्त्तव्य। ( ३ ) सहस्राक्ष इन्द्र वायु, की व्याख्या ( ४ ) मित्र वरुण, प्राण और अपान की

साधना, मित्र, वरुण या वायु और सूर्य, दो अधिकारी। (६) राजा, न्याया-धीश, (७) मरुत्वान् इन्द्र, सेनापति। (८) मरुद्गण वीर पुरुष, इनकी वायु से तुलना। ( ९ ) वायु, विद्युत्, वृष्टि द्वारा युद्ध वीरों के कर्त्तव्य। (१०) उग्रों का यर्णन, ( ११ ) विजयी वीर, ( १२–१५ ) राजा का वर्णन। ( १६–२७ ) आप्त पुरुषों, जलों और प्रजाजनों के कर्त्तव्य। ( २४, २५ ) गुरु शिष्य का वर्णन ( पृ० ११६–१२६ )

सू० [ २४ ]—जीव का प्रभुस्मरण। पुनर्जन्म। ईश्वर से उत्तम ऐश्वर्य, की प्रार्थना। ( ६ ) सबसे महान् प्रभु। ( ७ ) राजा, वरुण, सूर्य परमेश्वर। राजा, के कर्त्तव्य ( १२–१४ ) शुनःशेप अर्थात् सुखाभिलाषी मुमुक्षु बद्ध जीव की प्रार्थना, ( पृ० १२७–१३४ )

सू० [ २५ ] वरुण, परमेश्वर, और राजा, के प्रति भक्तों और प्रजाओं की प्रार्थना। राजा के कर्त्तव्य। विद्वान् पुरुष। ( पृ० १३४–१४२ )

सू० [ २६ ]—विद्वान् पुरुषों की सेवा। परमेश्वर से प्रार्थना। अग्नि, विद्वान्, राजा, नायक, परमेश्वर। ( पृ० १४२–१४६ )

सू० [ २७ ]—अग्नि, सम्राट् के कर्त्तव्य। भौतिक अग्नि। परमेश्वर और विद्वान्। पराक्रमी सेनापति, विद्वान् नायक, ( १२ ) विश्पति बृहद्भानु। ( १३ ) सबका यथा योग्य आदर। ( पृ० १४३–१५१ )

सू० [ २८ ]—ऊलूखल के दृष्टान्त से, विद्वान्, ज्ञानोपदेष्टा के कर्त्तव्य। गृहस्थ स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य। सारथी के दृष्टान्त से गृहस्थों के कर्त्तव्य। राजा नायक को उपदेश। ( दृ० १४२–२५६ )

सू० [ २९ ]—राजा और परमेश्वर से ऐश्वर्यों की प्रार्थना। ( ८–६ ) राजा के कर्त्तव्य। ( पृ० १५६–१५९ )

सू० [ ३० ]—वीर पुरुषों का सेनापति या नायक से सम्बन्ध। ( ६ ) संग्रामार्थ सेनापति की प्रधान पद पर प्रतिष्ठा। ( १३ ) प्रजाओं की

आशाएं । ( १४–१५ ) अक्ष या धुरे के दृष्टान्त से मुख्य पुरुष का कर्त्तव्य। ( १६ ) अक्ष के दृष्टान्त से सेनापति का वर्णन । पक्षान्तर में परमेश्वर ( १७ ) अश्वावती शवीरा का रहस्य । सेना द्वारा शत्रु पर आक्रमण । दो अश्वी, दो नायक। पक्षान्तर में—देह में प्राणापान । ( २१ ) दो शिल्पियों के दृष्टान्त से अध्यात्म तत्व । ( २०–२० ) विभावरी, ईश्वरीय शक्ति । चित्रा, अश्वा और दिव्रो दुहिता का रहस्य । ( पृ० १५९–१६९ )

सू० [ ३१ ]—अग्नि, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर से विद्वानों की ज्ञान प्राप्ति । राजा के राज्य में विद्वानों के प्रति कर्त्तव्य, ( ३ ) ईश्वर का महान् सामर्थ्य, ( ४ ) ईश्वर और आचार्य के कर्त्तव्य । ( ६ ) पापनाशक प्रभु । ( ७ ) मोक्षप्रद, सर्वोत्पादक । पक्षान्तर में राजा और विद्वान् आचार्य के कर्त्तव्य । पक्षान्तर में—देह में स्थित प्रजोत्पादक वीर्य का वर्णन । सर्वैश्वर्यप्रद, ज्ञानप्रद पिता, और कवच के समान रक्षक, ( १६ ) शरण्य, ( १७ ) सर्वगुण सम्पन्न । ( पृ० १६९–१८४ )

सू० [ ३२ ]—सूर्य, वायु, विद्युत् और मेघ के वर्णन से वीर सेनापतियों के कर्मों का वर्णन । वृष्टि विद्या का वर्णन । वृत्रहनन का रहस्य । ( पृ० १८४–१९४ )

## तृतीयोऽध्यायः

सू० [ ३३ ]—ज्ञानवर्धक, रक्षक प्रभु की शरणप्राप्ति । पक्षान्तर में आचार्य । राजा ( ३ ) वीर योद्धा का शत्रु विजय, सेनापति । (१२) शुष्ण और इलीविश का रहस्य । ( १३–१५ ) योद्धा और वृषभ की तुलना। ( २९४–२९४ )

सू० [ ३४ ]—विद्वान् स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । (१) परस्पर विवाह, स्वयं वरण । (२) मधुवाह त्रिचक्र रथ का रहस्य । (३–६) स्त्री पुरुष, राजा मन्त्री रथी सारथी का वर्णन । ( ७ ) प्रथम विवाहित स्त्री पुरुषों का प्रथम तीन

रात्रि ब्रह्मचर्य पालन। ( ८ ) यज्ञ द्वारा वायु शुद्धि का आदेश। ( ९ ) त्रिवृत त्रिचक्र रथ। ( १०–१२ ) स्त्री पुरुषों को उत्तम जल, अन्न, दीर्घ जीवन ऐश्वर्य प्राप्ति आदि का उपदेश [ २०४–२१२ ]

सू० [ ३५ ]—( १ ) परमेश्वर का नाना रूपों में स्मरण। ( २ ) सूर्य के दृष्टान्त से सर्व साक्षी ईश्वर का वर्णन। ( ३ ) सूर्य, वायु और वीर के, दृष्टान्त से ईश्वर का वर्णन। ( ४ ) विश्वरूप प्रभु ( ५ ) सर्व भुवनाधार, सर्वोत्पादक प्रभु। ( ६ ) तीन द्यौ का वर्णन। ( ७–१ ) सूर्य के दृष्टान्त से तेजस्वी सुपर्ण रूप से राजा का वर्णन। [ ६१२–२२० ]

सू० [ ३६ ]—ईश्वर और राजा का अग्नि रूप से वर्णन। अग्नि, अग्रणी नायक, ( ३४ ) विद्वान् ज्ञानी का दूत और होता रूप से वरण। (५) गृहपति और राजा की तुलना। राजा में सब देवांशों की सत्ता। (६) नायक, राजा, परमेश्वर का समान रूप से वर्णन (७) स्वराट् की उपासना। ( ८ ) शत्रुओं का दमन। ( ९ ) राजा की अग्नि के समान तेजस्वी स्थिति। ( १०–११ ) राजा को विद्वानों का साहाय्य। ( १२ ) राजा का ऐश्वर्य द्वारा प्रजा को सुखी करने का कर्त्तव्य। ( १३ ) राजा का सर्वोच्च-पद। (१४–१९) प्रजाभक्षकों का दमन। और दुष्टों से प्रजा की रक्षा ( पृ० २२०–२३० )

सू० [ ३७ ]—मरुद्गणों, वीरों, विद्वानों का वर्णन। वायुओं के दृष्टान्त से वीरों का वर्णन। ( ६ ) वायुओं के दृष्टान्त से देहगत प्राणों तथा वीरों का वर्णन। ( पृ० २३०–२३६ )

सू० [ ३८ ]—मरुद्-गणों, वीरों, विद्वानों वैश्यों और प्राणों का वर्णन। ( पृ० २३७–२३३ )

सू० [ ३९ ]—मरुद् गण, वायुओं, प्राणों, विद्वानों का समान रूप से वर्णन। ( ६ ) 'पृषतीः' का रहस्य। ( पृ० २४३–२४८ )

सू० [ ४० ]—बृहस्पति, वेदज्ञ विद्वान के कर्त्तव्यों का वर्णन । राजा सभापति और सेनापति के कर्त्तव्यों का वर्णन । गुरु शिष्य के कर्त्तव्य । (३) स्त्री का उन्नत पद । ( ४ ) कन्यादान, भूमिदान । ( ५ ) आचार्य और ईश्वर का ज्ञानोपदेश ( ६ ) वेदाभ्यासका उत्तम फल, ( ७, ८ ) वीर राजा की प्रतिष्ठा पद । ( पृ० २४८-५५२ )

सू० [ ४१ ]—वरुण मित्र, अर्यमा, आदित्य इन अधिकारियों का वर्णन । ( ९ ) चार भय स्थानों का वर्णन ( पृ० २५२-२५६ )

सू० [ ४२ ]—पूषा, पृथ्वी के समान प्रजापालक राजा के कर्त्तव्य । नानाप्रकार के दुष्टों का दमन, ऐश्वर्यों का संञ्चय । ( पृ० २५२-५५९ )

सू० [ ४३ ]—रुद्र, मित्र, वरुण इन अधिकारिथों का वर्णन । (४) रुद्र, वैद्य, परमेश्वर । ( पृ० ३६०-२६२ )

सू० [ ४४ ]—अग्नि, परमेश्वर, राजा, सभाध्यक्ष और विद्वान् का समान रूप से वर्णन ( १२ ) सिन्धु के दृष्टान्त से वर्णन, ( १४ ) धृतव्रत वरुण के सोमपान का रहस्य । ( पृ० २६३-२७१ )

सू० [ ४५ ]—प्रमुख विद्वान् और अग्रणी नायक सेनापति के कर्तव्य। ( पृ० १६१-२७५ )

सू० [ ४६ ]—स्त्री पुरुषों के कर्त्तव्य । ( २ ) अश्वियों की सिन्धु से उत्पत्ति का रहस्य । ( ७ ) नदियों के उपयोग का आदेश । शिल्पियों का वर्णन । ( १० ) ताल और प्रतिक्षेपक द्वारा अग्नि उत्पन्न करने की विधि । ( पृ० २७५-२८२ )

## चतुर्थोऽध्यायः

सू० [ ४७ ]—आचार्य उपदेशक, सभाध्यक्ष सेनाध्यक्षों और राजा और पुरोहितों तथा विद्वान् स्त्री पुरुषों के कर्तव्यों का वर्णन । (९) सूर्य-त्वक रथ का रहस्य । ( पृ० २८२-२८७ )

सू० [ ४८ ] उषा के वर्णन के साथ, कमनीय गुणों से युक्त कन्या और विदुषी स्त्री के गुण और कर्त्तव्य। ( १ ) 'दिवो दुहिता' का रहस्य। ( २८७–२९७ )

सू० [ ४९ ]—उषा के वर्णन के साथ २ कान्तिमती कन्या के कर्तव्यों का वर्णन। ( पृ० २९७–२९९ )

सू० [ ५० ]—सूर्य के दृष्टान्त से उत्तम पति का वर्णन। स्वयंवरण, सर्वप्रकाशक परमेश्वर की उपासना। ( ८ ) शोचिष्केश का रहस्य। ( ९ ) सूर्य के सात अश्वों का रहस्य। ( ११, १२ ) सूर्य के द्वारा पाण्डु-रोग का निवारण। तथा उसका आध्यात्मिक रहस्य। (पृ० २९९–३०५)

सू० [ ५१ ]—इन्द्र, राजा और परमेश्वर का भेद और सूर्य के दृष्टान्त से वर्णन, सेनापति की प्रतिष्ठा। राजा के कर्तव्य। वृष्टि विज्ञान का उपदेश। ( १ ) इन्द्र मेघ। ( ४ ) वृत्रवध। ( ५ ) ऋजिश्वा की रक्षा, पिप्रु का नाश, ( ६ ) कुत्स की रक्षा, अतिथि के लिये शम्बर का नाश, अर्बुद का नाश, ( ७ ) इन्द्र का वज्र, ( ८ ) शाकी इन्द्र, (९) उशना, ( १२ ) शार्यात अनर्वा श्लोक ( १३ ) वृषणश्व की मेना, ( १५ ) स्वराट् वृषभ इन सबका रहस्य। ( पृ० ३०६—३१७ )

सू० [ ५२ ]—वर्षते हुए मेघ से सेनापति राजा और परमेश्वर की तुलना। और उनके कर्तव्यों और सामर्थ्यों का वर्णन। वृष्टि विज्ञान। (पृ० ३१७—३२९ )

सू० [ ५३–५८ ]—परमेश्वर, राजा, सभा और सेना के अध्यक्षों के कर्तव्यों और सामर्थ्यों का वर्णन। ( पृ० ३२९—३६७ )

सू० [ ५९ ]—अग्नि, वैश्वानर नाम से अग्नि विद्युत् या सूर्य के दृष्टान्त से अग्रणी नायक, सेनापति और राजा के कर्तव्यों और परमेश्वर की महिमा का वर्णन। ( पृ० ३६७—३७२ )

सू० [ ६०]—वायु के दृष्टान्त से विजिगीषु राजा का वर्णन। पक्षान्तर में परमेश्वर की स्तुति। ( पृ० ३७२—३७६ )

सू० [ ६१ ]—इन्द्र, परमेश्वर की स्तुति। राजा के गुणों का वर्णन। ( ६ ) विद्वान् शिल्पी का कर्तव्य, ( ७ ) शत्रु विजय की नीति, ( ८ ) गृह पत्नियों के दृष्टान्त से सेनाओं के कर्तव्य। ( ९ ) स्वराट् इन्द्र का स्वरूप। ( १० ) उसके प्रजा और शत्रुओं के प्रति कर्तव्य। (११) प्रजाओं के हाथ में शासन का देना। ( १२ ) वायु मेघ और सूर्य के दृष्टान्त से शत्रु विजय का उपदेश। (१३) युद्ध विद्या के नित्य अभ्यास का उपदेश, ( १४ ) बलसाली सेनापति का स्वरूप ( १५ ) इन्द्र का लक्षण। (१६) हारियोजन इन्द्र का रहस्य। ( पृ० ३७६-३८७ )

## पञ्चमोऽध्यायः

सू० [ ६२ ]—परमेश्वर की स्तुति। बलवान् राजा के कर्तव्य। (२) विद्वानों के कर्तव्य। आंगिरस, विद्वान्। ( ३ ) माता पुत्र के दृष्टान्त से सेना के कर्तव्य। मेघ और सूर्य के समान सेनापति का कर्तव्य। सरमा का रहस्य। ( ४ ) शत्रु विजय के लिये घोर गर्जनाकारी तोपों का प्रयोग। ( ५ ) राष्ट्र की वृद्धि और प्रजा के उपकार। ( ६ ) विद्युत् के समान राजा का कर्तव्य। ( ७ ) प्राण और सूर्य के समान राजा, सेनापति के कर्तव्य, ( ८ ) दिन रात्रि के समान स्त्री पुरुष तथा राजा प्रजा का कर्तव्य। ( ९ ) सूर्य के समान पुत्र और राजा के कर्तव्य। ( १० ) अंगुलियों के समान प्रजाओं और सेनाओं का कर्तव्य। ( ११ ) स्त्रियों के समान विद्वानों का कर्तव्य। ( १२ ) ऐश्वर्य वर्धक राजा। ( १३ ) विद्वान् सुशासक का कर्तव्य। ( पृ० ३८७–३९७ )

सू० [ ६३ ] राजा, परमेश्वर और आचार्य का वर्णन। ( २ ) राजा के हाथ में राजदण्ड का समर्पण। ( १ ) शत्रुनाश के उपाय। ( ४ )

दुष्टों का दमन। (४) हतौड़े से लोहे के समान शत्रु के बल को तोड़ने का आदेश। ( ६ ) मेघ के समान प्रजारक्षक का कर्त्तव्य। ( ७ ) सप्ताङ्ग राष्ट्र-बल से सप्ताङ्ग शत्रुबल का भेदन। ( ८ ) जल और अन्न के समान प्रजा का पोषण। ( ९ ) ऐश्वर्यदान ( पृ० ३९७ )

सू० [ ६४ ]—विद्वान् का कर्तव्य। ( २ ) दीक्षा द्वारा बलवान् होने का उपदेश। वीर सैनिकों और व्रतनिष्ट ब्रह्मचारियों को उपदेश। ( ३ ) ब्रह्मचारी रुद्रों, और सैनिकों का वर्णन। ( ५-६ ) वायुओं के समान रुद्र वीरों का वर्णन। ( ७ ) पर्वतों और हस्तियों के समान वीर जन। (८) सिहों के समान वीर जन। ( ९-१० ) उनके कर्तव्य। ( ११ ) रथ के समान वीर पुरुष का वर्णन। मरुतों, वीर भटों का वर्णन। ( १२ ) वेतनों पर सैन्यों की नियुक्ति। विद्वानों और मरुद्गण का वर्णन, रुद्र सूनु का रहस्य। ( १३ ) वीरों और सेनापति तथा प्राणों और आत्मा का वर्णन। ( १४-१५ ) प्रमुख नायकों की स्थापना, ( पृ० ४०३-४१५ )

सू० [ ६५ ]—अग्नि, परमेश्वर, विद्वान्, का वर्णन। ( २ ) आप्त विद्वानों के कर्तव्य। ( ३-५ ) नाना दृष्टान्तों से परमेश्वर, वीर पुरुष, नायक, आदि का वर्णन। ( पृ० ४१५-४१९ )

सू० [ ६६-६७ ]—नाना दृष्टान्तों से वीर पुरुष, नायक, राजा अग्नि तथा परमेश्वर का वर्णन ( पृ० ४२९-४२६ )

सू० [ ६८-६९ ]—परमेश्वर ( २ ) जीव। आचार्य उत्तम, शासक, सभाध्यक्ष आदि का वर्णन ( पृ० ४२७-१३३ )

सू० [ ७० ]—अग्नि के समान भोक्ता राजा, स्वामी, ईश्वर का वर्णन। ( पृ० ४३३-४३८ )

सू० [ ७१ ]—बहिनों और गौओं के समान प्रजाओं का वर्णन। ( २ ) वायु और तोपों के समान वीरों और विद्वानों का वर्णन। ( ३ )

वैश्यों के समान स्त्रियों का कर्तव्य ( ४ ) तीव्र वायु के समान वीर राजा के कर्तव्य। ( ५-६ ) योगी, गृहपति, सूर्य और राजा का समान वर्णन ( ७ ) समुद्र के समान आचार्य राजा और परमेश्वर ( ८ ) गृहपति और राजा का समान वर्णन। ( ९ ) शूरवीर और ज्ञानी का वर्णन। ( १० ) प्रभु राजा से प्रार्थना। ( पृ० ४३८-४४५ )

सू० [ ७२ ]—विद्वान् का वर्णन। ( २ ) विद्वानों के कर्तव्य। (३) ईश्वर और गुरु की उपासना। ( ४ ) ईश्वर का साक्षात् करना। पक्षान्तर में राजा का वर्णन। गुरूपासना और ईश्वरोपासना। शिष्टाचार ( ६ ) परमेश्वर, गुरु, राजा, आत्मा का वर्णन। ( ७ ) उनके कर्तव्य। ( ८ ) सप्त प्राणमय देह और सप्ताङ्ग राज्य। ( ९ ) मुमुक्षुत्व का अधिकारी, परमेश्वर का माता के समान वर्णन। ( १० ) ज्ञानियों और विद्वानों का वर्णन, राज्याभिषेक। ( पृ० ४४५-४५२ )

सू० [ ७३ ]—अग्नि, राजा का वर्णन। उसके सूर्य के समान कर्तव्य ( ४ ) ईश्वर और राजा का आश्रय। ( ५ ) धनाढ्यों और ज्ञानवृद्धों के कर्तव्य। ( ६ ) नदियों और गौवों के समान ज्ञानैश्वर्यवानों का कर्तव्य। ( ७ ) गुरु के अधीन शिष्य का रहना। ईश्वर और उपासक की स्थिति। विरूप रात्रि दिन का रहस्य। शुक्ल कृष्ण का रहस्य। ( ८ ) परमेश्वर और मध्यस्थ राजपद। (९-१०) मनुष्यों को उत्तम उपदेश। (पृ० ४५३-४५९)

सू० [ ७४-७५ ]—परमेश्वर की स्तुति। राजा और विद्वान् के कर्तव्योपदेश। ( पृ० ४५९-४७२ )

सू० [ ७८-७९ ]—पुरुषों और स्त्रियों को उपदेश। वे किस प्रकार के बनें। ( २ ) विद्वान की गृहपति से तुलना। गृहस्थ के कर्तव्य। मेघादि की उत्पत्ति, ( ३ ) वृष्टि के समान गर्भ निषेक तथा वीर्य की उत्पत्ति तथा उसके निषेक और पुरुषोत्पत्ति का विज्ञान। पक्षान्तर में गुरू

करण और ब्रह्मचर्यपालन। (४) परमेश्वर और आचार्य से प्रार्थना। (५-१२) राजा, विद्वान्, परमेश्वर से प्रार्थना। ( पृ० ४७२-४७८ )

सू० [ ८० ]—स्वराज्य की वृद्धि, और उनके उपायों का उपदेश। पक्षान्तर में ईश्वरोपासना और परमेश्वर के स्वराट् रूप की अर्चना। ( पृ० ४७८—४८७ )

## षष्ठोऽध्यायः

सू० [ ८१ ]—राजा का नायकों के प्रति कर्तव्य। उसके गुणों का वर्णन। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। ( ३ ) ऐश्वर्य संञ्चय, दो प्रमुखों की स्थापना, अनुग्रह और निग्रह के योग्य मित्र शत्रु का विवेक। ( ४ ) ऐश्वर्य वृद्धि, बल संञ्चय का उपदेश। ( ६ ) ऐश्वर्य का विभाग, राष्ट्र ऐश्वर्य का प्रजा द्वारा भोग। ( पृ० ४८७-४९२ )

सू० [ ९२ ]—राजा और विद्वानों के कर्तव्य। पक्षान्तर में ईश्वर की स्तुति। ( ४ ) महारथी का अधिकार। पक्षान्तर में योगी का और अध्यात्म का वर्णन ( ५ ) वीर पुरुष। ( पृ० ४९२-४९५ )

सू० [ ८३ ]—राजा के पालने के कर्तव्य। ( २ ) स्त्रियों और विद्वानों के कर्तव्य। (३) परमेश्वर और विद्वान् आचार्य का वर्णन। (४) ब्रह्मचर्य का उत्तम फल। (५) उत्तम आचार्य और शासक की रक्षा में वृद्धि करना। ( ६ ) उत्तम शासक के कर्तव्य। पक्षान्तर में परमेश्वर का वर्णन। ( पृ० ४९५-५०० )

सू० [ ८४ ]—वीर राजा, सेनापति के कर्तव्यों का वर्णन। ( ४ ) सर्व-राज्याभिषेक। ( ६ ) सर्वोच्च महारथी पद। सर्वोच्च इन्द्र। ( ७ ) सर्व-ईशान। ( ८ ) शक्तिमान्। ( ९ ) ऐश्वर्यवान्। ( १०-१२ ) प्रजाओं

के कर्तव्य । (१३) सेनापति के कर्तव्य । दधीचि की अस्थियों का रहस्य । (१४) विजिगीषु को उपदेश । अश्व के शिर तथा शर्यणावत् का रहस्य । (१५) दमन और प्रजारञ्जन दोनों का उत्तम परिणाम । (१६) प्रमुख सर्वनियोक्ता नायक के लक्षण। (१७–१८) यथायोग्य का विवेचन। (१९) प्रजारञ्जक राजा । (२०) राजा के सुखदायी ऐश्वर्यों और रक्षा साधना की कामना । (पृ० ५००–५१०)

सू० [८५]—पदाभिषिक्त विद्वानों और वीर पुरुषों का वायु के दृष्टान्त से वर्णन । उनके कर्तव्य । (३–४) उनको मातृभूमि का सेवक होना अवश्यक है। 'पृश्निमातरः' का रहस्य (४५) मरुतों के रथ में 'पृषती' नाम अश्वाओं के जोड़ने का रहस्य । वृष्टि विज्ञान । (६) वेगवान् यान और विशाल भवनों के उपयोग की आज्ञा । बाहुबल से विजय करने का आदेश । (७) वीरों और उसके नायक का सूर्य के समान कर्तव्य । (८) विद्वानों और वीरों का प्राणों के समान कर्तव्य । सूर्य के समान शस्त्रबल धारण करने का उपदेश । (९) त्वष्टा का वज्र बनाने और इन्द्र का उससे वृत्र हनन का रहस्य । (१०) वीरों का अवनत राष्ट्र की उन्नति और शत्रु नाश का कर्तव्य । और वृष्टि रहस्य । (११) प्रजा की रक्षा और शत्रुनाश का कर्तव्य । दानी लोगों का कर्तव्य । वृष्टि विज्ञान । मरुतों का प्यासे गोतम के लिये कूप उखाड़ लाने की कथा का रहस्य । (१२) त्रिधातु गृह, विद्वानों को दान तथा 'त्रिधातु शर्म' का रहस्य । (पृ०५१०—५१९)

सू० [८६]—उत्तम रक्षक और परमेश्वर का वर्णन । विद्वानों, वीर भटों तथा मरुतों का वर्णन । उनके कर्तव्य । अध्यात्म में प्राणों का वर्णन। (पृ० ५१९–५२२)

सू० [८७]—वीर उत्तम नायकों का वर्णन । उनके कर्तव्य । पक्षान्तर में वृष्टि विद्या और वायुओं का वर्णन (५२३–५२७)

सू० [ ८८ ]—वीर पुरुषों और विद्वानों के कर्तव्यों का उपदेश। ( ३ ) शत्रु नाश। राज्यसमृद्धि के लिये शस्त्रास्त्रों का धारण। ( ४ ) वार्कार्या धी का रहस्य। जल विद्या का उपदेश। ( ५ ) आक्रमण करने वाले वीरों का वर्णन। अयोदंष्ट्र वराहुओं का रहस्य। (पृ० ५२७–५३३)

सू० [ ८९ ]—धर्मात्मा विद्वान् पुरुषों के कर्तव्यों का वर्णन। (५) परमेश्वर की उपासना, प्रार्थना। ( ९ ) पूर्णायु का लाभ, ( १० ) अदिति के नाना प्रकार। अदिति का रहस्य। ( ६३४—६२९ )

सू० [ ९० ]—धर्मात्मा विद्वान् राजा और उसके अधीन वीर जनों और विद्वानों का कर्तव्य। ( ६-८ ) मधुमती ऋचाएं। ( ९ ) शान्ति की कामना। ( पृ० ५३९-५४३ )

सू० [ ९१ ]—परमेश्वर विद्वान, राजा, सोम का वर्णन। उसके कर्तव्य। प्रजा की कामना। ( २–३ ) श्रेष्ठ राजा वरुण का वर्णन, उसके कर्तव्य। ( ५–२३ ) उसी का सोम रूप से वर्णन। पक्षान्तर में उत्पादक परमेश्वर और विद्वान् का वर्णन। ( पृ० ५४३–५५५ )

सू० [ ९२ ]—उषा के वर्णन के साथ, उसके दृष्टान्त से उत्तम गृह-पत्नी के कर्तव्यों का वर्णन। ( १० ) पुराणी देवी का रहस्य। (११–१५) उत्तम गृहपत्नी का स्वरूप। ( १६ ) प्रिय वर वधू के कर्तव्य। ( पृ० ५५५–५६८ )

सू० [ ९३ ]—उत्तम विद्वान आचार्य शिक्षकों के कर्तव्य। राष्ट्र के दो प्रमुख अधिकारी अग्नि और सोम। भौतिक अग्नि और वायु का वर्णन। (३) दीर्घायु प्राप्त करने का वैज्ञानिक उपाय। (पृ० ५६८–५७५)

सू० [ ९४ ]—परमेश्वर की प्रार्थना, विद्वान् और अग्रणी नायक के प्रति कर्तव्यों का उपदेश। अग्नि का भी वर्णन। ( पृ० ५७५–५८६ )

## सप्तमोऽध्यायः

सू० [ ९५ ]—(१) दो स्त्रियों के दृष्टान्त से दिन रात्रि का, आकाश पृथिवी का, और ब्राह्मण, क्षत्र वर्ग का वर्णन।(२) स्त्रियों के पति वरण के दृष्टान्त से प्रधान नायक का वरण। नायक के तीन रूप, अग्नि के तीन रूप, अध्यात्म में आत्मा और परमेश्वर के तीन रूप। ( ४ ) सूर्य के समान राजा की उत्पत्ति, मातृ गर्भ से प्रजा की उत्पत्ति। ( ५ ) गर्भ-गत बालक की वृद्धि के समान राजा की वृद्धि, उदय, तथा सिंह के समान विजय। मेघगत विद्युत् और काष्ठगत अग्नि का वर्णन। (६-७) उभय पक्ष की सेनाओं के बीच में वीर की स्थिति। ( ७ ) उसका पराक्रम, साथ ही सूर्य का जलाकर्षण आदि वर्णन। ( ८-११ ) सूर्य के समान राजा का तेजस्वी होना। देवसमिति का निर्माण। (पृ० ५८६-५९६)

सू० [ ९६ ]—द्रविणोदा अग्नि, ऐश्वर्यवान् राजा और परमेश्वर और विद्वान् आचार्य का वर्णन। ( ४ ) वायु और अग्नि के समान विद्वानों के कर्तव्यों का दर्शन। ( ५ ) दिन रात्रि के समान स्त्री पुरुषों का विद्वानों के धारण पोषण का कार्य। (६) विद्वानों का नायक के प्रति और उसका प्रजाजनों के प्रति कर्तव्य। ( पृ० ५९६—६०२ )

सू० [ ९७ ]—परमेश्वर से पाप नाश कर देने की प्रार्थना। राजा से पाप कर्म करने वाले को दण्डित करने का निवेदन। और उसके साथ प्रजा की उन्नति के नाना उपाय। ( पृ० ६०२-६०४ )

सू० [ ९८ ]—सर्वहितकारी परमेश्वर की स्तुति। सर्वहितैषी राजा को अग्नि और सूर्य के दृष्टान्त से उपदेश। (पृ० ६०४-६०७)

सू० [ ९९ ]—आचार्य और परमेश्वर की आराधनार्थ ऐश्वर्यप्राप्ति ( पृ० ६०७ )

सू० [ १०० ]—वायुगणों के स्वामी सूर्य के समान पृथिवी के सम्राट् का वर्णन । पक्षान्तर में परमेश्वर की स्तुति । मरुत्वान् इन्द्र का निरूपण । ( ४ ) परम विद्वान्, परम सखा, आचार्य भी मरुत्वान् इन्द्र है । वह संग्रामविजय, न्याय प्रकाश, अनुग्रह आदि का कर्त्ता हो । उसके कर्तव्य । ( पृ० ६०७–६१८ )

सू० [ १०१ ]—आचार्य, विद्वान्, परमेश्वर और राजा और सेनाध्यक्ष का वर्णन । उनके सखित्व, प्रेम और सौहार्द की याचना । ( १० ) इन्द्र के शिष्यों का रहस्य । ( पृ० ६१८–६२६ )

सू० [ १०२ ]—परमेश्वर की स्तुति । पक्षान्तर में राजा और सेना पति का वर्णन । ( पृ० ६२६–६३२ )

सू० [ १०३ ]—परमेश्वर की स्तुति । पक्षान्तर में राजा और सेनाध्यक्ष के कर्तव्य । ( पृ० ६३२–६३८ )

सू० [ १०४ ]—राजा का सिंहासन पर अभिषेक । ( २ ) कर्मानुरूप पुरस्कार । (३) स्वार्थ और अन्याय से धन हरने की निन्दा । ( ४ ) तेजस्वी की सेना बलों और ऐश्वर्यों से वृद्धि । ( ५ ) बुरे राजा में अच्छे होने के भ्रम की सम्भावना । राजा को अपने स्वार्थों में प्रजा के बरबाद न करने का उपदेश ( ६–८ ) प्रजापालन सम्बन्धी राजा के कर्तव्य । ( ६ ) राजा की आदर्श प्रतिष्ठा । ( पृ० ६३८–६५४ )

सू० [ १०५ ]—चन्द्र तथा अन्यान्य आकाशचारी पिंडों के सम्बन्ध में ज्ञान । पक्षान्तर में प्रजानुरञ्जक राजा का वर्णन । ( २ ) वृष्टि जल के आदान प्रतिदान में सूर्य पृथिवी के दृष्टान्त से स्त्री पुरुष और प्रजा राजा के कर्तव्यों का वर्णन । ( ३ ) प्रजाओं और शिष्यों के राजा और आचार्य के प्रति आवश्यक विनय भाव । ( ४ ) ईश्वर विषयक प्रश्न

और प्रतिवचन तथा वेद ज्ञान के पुराने और नये धारण करने वालों का प्रतिपादन। ( ५ ) परम मूल और सर्वाश्रय का निरूपण। ( ६ ) मूल कारण का अन्वेषण। ( ७ ) अमृत जीवात्मा का वर्णन। ( ८ ) जीवात्मा को रुलाने वाली व्याधियों का दूर करने की प्रार्थना। ( ९ ) युद्धार्थी, वीर पुरुष की केन्द्र में स्थापना। आप्त्य त्रित का रहस्य। (१०) देह गत पांच प्राणों के समान पांच प्रमुख, पञ्चायत तथा बृहद् बल वाले पंच तत्त्वों का वर्णन। ( ११ ) नक्षत्रों और चन्द्रमा का वर्णन। ( १२ ) उसी प्रकार ज्ञानियों का परमेश्वर दर्शन। ( १३ ) वेद ज्ञान प्राप्त करने के लिये प्रार्थना। ( १४ ) आचार्य का कर्तव्य। ( १५ ) ज्ञानोपदेश, ( १६ ) वेदोपदिष्ट मार्ग। ( १७ ) आचार्य का वेदोपदेश द्वारा जिज्ञासु का भवकूप से उद्धार। कूप में पड़े हुए त्रित की कथा का रहस्य। (१८) वृक और तक्षा के दृष्टान्त से चन्द्र विज्ञान। गुरु शिष्य के कर्तव्य। ( १९ ) आशीः प्रार्थना। ( पृ० ६४५–६५७ )

सू० [ १०६ ]—ऐश्वर्य और ज्ञान के दानी धनाढ्यों और विद्वानों के कर्तव्य। (३) सुप्रवाचन पितरों का रहस्य। ( ४–५ ) सर्व हितकारी ज्ञानवान्, ऐश्वर्यवान् पुरुष का कर्तव्य। बृहस्पति मनु, कुत्स, इन्द्र आदि का रहस्य। ( पृ० ६५७–६६० )

सू० [ १०७ ]—विद्वान् और शक्तिशाली पुरुषों के कर्तव्य। ( पृ० ६६१–६६२ )

सू० [ १०८ ]—इन्द्र और अग्नि, के समान राजा अमात्य, प्रकाशप्रद आचार्य और अध्यात्म में जीव परमेश्वर का वर्णन (५–८) क्षत्र, ब्रह्म, और स्त्री पुरुषों के परस्पर कर्तव्य। ( ९, १० ) सभाध्यक्ष, न्यायाध्यक्षों का वर्णन। विद्वानों के कर्तव्य। ( पृ० ६६३–६७० )

सू० [ १०९ ]—आचार्य और शिक्षकों के कर्तव्य। पक्षान्तर में बल-

अष्टमोऽध्यायः

सू० [ ११७ ]—विद्वान् प्रमुख नायकों तथा स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। ( १७ ) सौ मेषों का रहस्य ऋज्राश्व की कथा का रहस्य ( ७४०–७५३ )

सू० [ ११८–१२० ]—विद्वान् प्रमुख नायकों और स्त्री पुरुषों के कर्तव्य। ( पृ० ७५७–७७७ )

सू० [ १११ ]—राजा का कर्तव्य। परमेश्वर की स्तुति। (पृ० ७७७–७१५ )

इत्यष्टमोऽध्यायः ।

इति प्रथमोऽष्टकः ॥

* ओ३म् *

# ऋग्वेद-संहिता

## प्रथमोऽष्टकः । प्रथमं मण्डलम् ।

### प्रथमोऽध्यायः । प्रथमोऽनुवाकः ।

### [ १ ]

मधुच्छन्दा वैश्वामित्र ऋषिः । अग्निर्देवता । गायत्र्यः । नवर्चं सूक्तम् ॥

ओ३म् ॥ अ॒ग्निमी॑ळे पु॒रोहि॑तं य॒ज्ञस्य॑ दे॒वमृ॒त्विज॑म् ।
होता॑रं रत्न॒धात॑मम् ॥ १ ॥

भा०—परमेश्वर पक्ष में—मैं ( यज्ञस्य ) यज्ञ, सुसंगत ब्रह्माण्ड सर्ग के ( होतारम् ) सम्पादन और धारण करनेवाले, ( पुरः-हितम् ) पहले ही समस्त परमाणु, प्रकृति और सृष्टि को धारण करनेवाले, (ऋत्विजम्) प्रति ऋतु, अर्थात् प्रत्येक सृष्टि-उत्पत्ति काल में सृष्टि के घटक पदार्थों को मिलाने हारे, ( रत्न-धातमम् ) समस्त रमण करने योग्य, पृथिवी आदि लोकों को सबसे बढ़कर धारण करनेवाले, ( देवम् ) सब पदार्थों के दाता, द्रष्टा और प्रकाशक ( अग्निम् ) सबसे पूर्व विद्यमान, ज्ञानवान् प्रकाशस्वरूप परमेश्वर की ( ईळे ) स्तुति करता हूं ।

राजा और विद्वान् के पक्ष में—( यज्ञस्य होतारम् ) प्रजापालन रूप,

---

( १ ) अग्निं नव मधुच्छन्दा वैश्वामित्रः । सर्वा० ॥ आद्यमण्डलस्था ऋषयः शतर्चिनश्छत्रिन्यायेनेति षड्गुरुशिष्यः ।

परस्पर सत्संग से होने योग्य यज्ञ, अर्थात् प्रजापति के कार्य को अपने वश करनेवाले, ( पुरः-हितम् ) सब के समक्ष प्रमाण रूप से स्थित, एवं सब के पूर्व धारण करने वाले, ( ऋत्विजम् ) सभा के सदस्यों के प्रेरक, सभापति, ( रत्नधातमम् ) रमणीय गुणों को सब से बढ़ के धारण करनेवाले, एवं रम्य, रत्न सुवर्णादि के धारण और प्रदान करनेवाले ( अग्निम् ) अग्रणी, नायक, (देवम्) दानशील, विजयशील राजा, सभापति, सेनापति पुरुष का मैं प्रजाजन (ईले) आदर सत्कार करता हूं ।

भौतिक पक्ष में—यज्ञ, शिल्पादि के कर्त्ता, ( पुरोहितम् ) पहले से ही छेदन, भेदन आदि गुणों को धारण करनेवाले ( देवम् ) प्रकाशयुक्त, ( ऋत्विजम् ) गति देनेवाले साधनों, यन्त्रों एवं पदार्थों को सुसंगत करनेवाले ( रत्न-धातमम् ) रमण करने योग्य रथ आदि यन्त्रों के धारक, किरणों के धारक, ( अग्निम् ईले ) आग को मैं प्रेरित करता हूं, उसका यन्त्रों में और यज्ञों में सदुपयोग करूं ।

यज्ञाग्नि पक्ष में—यज्ञ के आहुति ग्रहण करनेवाले, ऋत्विक् के समान प्रति ऋतु यज्ञ करनेवाले पुरोहित के समान आगे आदर पूर्वक आधान किये गये प्रकाशयुक्त अग्नि को मैं प्रज्वलित करता हूं ।

'अग्निः'—अग्निः कस्माद् अग्रणीर्भवति । अग्रं यज्ञेषु प्रणीयते । अङ्गं नयति संनममानः । अक्नोपनो भवति इति स्थौलाष्ठीविः । न क्नोपयति न स्नेहयति । त्रिभ्य आख्यातेभ्यो जायते इति शाकपूणिः, इताद्, अक्ताद्, दग्धाद्वा नीतात् ।

'ईळे'—ईलिरध्येषणाकर्मा, पूजाकर्मा वा ।

'देवम्'—देवो दानाद्वा, दीपनाद्वा, द्योतनाद्वा, द्यु:स्थानो भवतीति वा । 'रत्नधातमम्' रमणीयानां धनानां दातृतमम् । इति निरु० ७ । १४ । १५ ॥ अग्रणी होने से नायक, सेनापति, राजा, परमेश्वर अग्नि कहाते हैं । यज्ञ में उपासना में साक्षी रूप रहने से परमात्मा अग्नि है । अंगों को झुका कर

आगे आता है इससे विनीत नायक और विद्वान् 'अग्नि' है । गीला नहीं करता प्रत्युत सुखाता है इससे आग अग्नि है । इण् गतौ, अञ्जु व्यक्षणे, दह भस्मीकरणे, णीञ् प्रापणे इन धातुओं के योग से अग्नि शब्द बनता है । इससे गतिमान्, प्रकाशक, तेजस्वी, दाहकारी, परसंतापक सभी पदार्थ 'अग्नि' कहे जाते हैं ।

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत ।
स देवाँ एह वक्षति ॥ २ ॥

भा०—वही ज्ञानस्वरूप, सब पदार्थों का प्रकाशक परमेश्वर (पूर्वेभिः) पूर्व के, शास्त्रों के विज्ञ विद्वानों ( ऋषिभिः ) मन्त्रार्थों के द्रष्टा ऋषियों, विद्वान् अध्यापकों और तर्कों द्वारा ( उत ) और ( नूतनैः ) नये अर्थात् वेदार्थों के पढ़नेवाले ब्रह्मचारियों द्वारा ( ईड्यः ) स्तुति, वन्दना, ज्ञान, मनन और अन्वेषण करने योग्य है। ( सः ) वह ही ( देवान् ) सूर्य के समान ऋतुओं को, आत्मा के समान प्राणों को, भोक्ता के समान भोगों को, आचार्य के समान विद्यादि दिव्य गुणों को, ( इह ) इस जगत् में या इस जन्म में (आ वक्षति) धारण करता, एवं सब को प्राप्त कराता है।

आत्मा के पक्ष में—वह आत्मा ( पूर्वैः नूतनैः ) कारण और कार्यरूप से विद्यमान ( ऋषिभिः ) प्राणों द्वारा ( ईड्यः ) अन्वेषण करने योग्य है वह ही ( देवान् ) ग्राह्य विषयों के प्रकाशक इन्द्रियों को धारण करता है ।

'ऋषिभिः'—ऋषी गतौ । औणादिक इन् । अजान् ह वै पृश्नीन् तपस्यमानान् स्वयम्भ्वभ्यानर्षत् तद् ऋषयोऽभवन् ॥ श० ······॥ अर्त्तेः सनोतेश्चेति षड्गुरुशिष्यः । साक्षात् कृतधर्माण ऋषयो बभूवुः । निरु० १ । २० ॥ पुरस्तात् मनुष्या वा ऋषिषु उत्क्रामत्सु देवानब्रुवन् को न ऋषिर्भविष्यतीति तेभ्य एतं तर्कमृषिं प्रायच्छन् । मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूढम् । तस्माद् यदेव किंचानूचानोऽभ्यूहति आर्षं तद् भवति । निरु० १३ । १२ ॥ अविज्ञाततत्त्वेऽर्थे कारणोपपत्तितस्तत्त्वज्ञानार्थमूहस्तर्कः ॥ न्या० सू० १ । १ । ४४ ॥ प्राणाः ऋषयः । श० ७।२।१।५॥

अग्निना रयिमश्नवत्पोषमेव दिवेदिवे ।
यशसं वीरवत्तमम् ॥ ३ ॥

भा०—( दिवे दिवे ) प्रतिदिन मनुष्य ( अग्निना ) ज्ञानवान् परमेश्वर के भजन से ( पोषम् ) पुष्टि द्वारा सुख देने वाले, या स्वयं निरन्तर बढ़ने और बढ़ाने वाले, ( यशसं ) कीर्त्तिजनक, ( वीरवत्-तमम् ) बहुत अधिक वीर, वीर्यवान्, शूरवीरों और विद्वान् पुरुषों से युक्त ( रयिम् ) ऐश्वर्य, धन समृद्धि को ( अश्नवत् ) प्राप्त करता है ।

राजा के पक्ष में—(अग्निना) तेजस्वी राजा के सहारे ही राष्ट्र निरन्तर बढ़ते हुए, समृद्ध वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य को प्राप्त करता है ।

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि ।
स इद्देवेषु गच्छति ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! सब के अग्रणी, सर्वप्रकाशक परमेश्वर ! तू ( यं ) जिस ( अध्वरं ) हिंसा आदि दोषों से रहित, एवं कभी विनष्ट न होने वाले, नित्य, ( यज्ञं ) यज्ञ, प्रकृति के कारण तत्वों के परस्पर मिलने के सृष्टि, प्रलय आदि व्यवहारों से युक्त अन्तरिक्ष या ब्रह्माण्डमय जगत् सर्ग को ( विश्वतः ) सब ओर से और समस्त जल पृथिवी आदि पदार्थों के भीतर और बाहर भी ( परिभूः असि ) व्यापक है । ( सः, इत् ) वह यज्ञ ही ( देवेषु ) समस्त दिव्य पदार्थों के बीच में सर्ग रूप से संयोग, विभाग, और विद्वानों में उपासना रूप से ( गच्छति ) होता रहता है, बराबर चलता रहता है ।

'अध्वरम्'—अध्वर इति यज्ञ नाम, ध्वरतिर्हिंसाकर्मा । तत्प्रतिषेधः ॥ इति निरु० १।३।२ ॥ अध्वरमित्यन्तरिक्षनामसु पठितम् । निघ० १।३॥ अध्वानं मार्गं राति ददाति । यद्वा अध्वा मार्गो विद्यतेऽस्मिन् । रोम त्वर्थीयः । ध्वरो हिंसा तदभावो यत्र । अविद्यमानो ध्वरो यस्य सः । अहिंसित इत्यर्थः । देवान् वै यज्ञेन यजमानान् सपत्ना असुरा दुधूर्षाञ्चक्रुः । ते दुधूर्षन्त

एव न शेकुर्धूर्वितुं, ते पराबभूवुः । तस्माद् यज्ञोऽध्वरो नाम । श० १ । ४ । १ । ४ ॥ अध्वरो वै यज्ञः । श० १ । ४ । १ । ३८ ॥ प्राणोऽध्वरः । श० ७ । ३ । १ । ५ ॥ रसोऽध्वरः । श० ७ । ३ । १ । ६ ॥

राजा के पक्ष में—हे विद्वन् ! जिस अहिंसनीय वीर यज्ञ = प्रजापति के तुम सब प्रकार से आश्रित हो वह यज्ञ = प्रजापालक व्यवस्था या राजा, देव अर्थात् विद्वानों के आधार पर चल रहा है ।

अध्यात्म में—अध्वर, यज्ञ नित्य आत्मा है वह देव नाम विषयों में क्रीड़ाशील प्राणों के आधार पर है । अध्यात्म में अग्नि = जाठर ।

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः ।
देवो देवेभिरागमत् ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—( अग्निः ) ज्ञानवान्, सर्व प्रकाशक, परमेश्वर, ( होता ) समस्त पदार्थों का दाता सबको अपने भीतर लेने वाला, ( कविक्रतुः ) सर्वज्ञ होकर समस्त संसार को बनानेहारा, मेधावी और क्रियावान्, ( सत्यः ) सत्, पदार्थों में व्यापक, सज्जनों का हितकारी, सत्यस्वरूप, अमृत और मर्त्य दोनों को नियम में रखनेवाला, ( चित्रश्रवस्तमः ) अद्भुत यश, कीर्त्ति और वेदमय ज्ञानोपदेश करने वालों में सब से बड़ा, ( देवः ) देव, दाता, सर्वप्रकाशक है । वह ( देवेभिः ) विद्वानों और दिव्य गुणों सहित ( आ गमत् ) हमें प्राप्त हो ।

ज्ञानी पुरुष भी दानशील, मेधावी, क्रियानिष्ठ, सत्यभाषी, कीर्त्तिमान्, बहुश्रुत हो, वह विद्वानों या उत्तम गुणों सहित हमें प्राप्त हो ।

'कविक्रतुः'—कविः क्रान्तदर्शनो भवति । कवतेर्वा । निरु० १२।२।२॥ करोति यो येन वा स क्रतुः । दया० ।

'सत्यः'—सत्सु तायते । सत्प्रभवं भवति इति वा । निरु० ३ । ३ ॥ तानि हवा एतानि त्रीण्यक्षराणि 'स-ती-यम्' इति । तद् यत् 'सत्' तदमृतं । अथ यत् 'ती' तन्मर्त्यम् । अथ यत् 'यम्' तेन उभे यच्छति। तदनेन उभे य-

च्छति तस्माद् 'यम्' । अहरहर्वा एवंवित् स्वर्गं लोकमेति ।

अध्यात्म में—देह से देहान्तर में जाने वाला होने से जीव 'अग्नि' है । संकल्प करने और कर्त्ता होने से 'क्रतु' । 'सत' होने से सत्य, सब प्राणों में बल और ज्ञानयुक्त होने से 'श्रवस्तम' । अद्भुत होने से 'चित्र' और द्रष्टा होने से 'देव' है । वह प्राणों सहित देह में आता है । इति प्रथमोवर्गः ॥

यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि ।
तवेत्तत्सत्यमङ्गिरः ॥ ६ ॥

भा०—( अङ्ग अग्ने ) हे परमेश्वर ! सर्वप्रकाशक ! ( यत् ) जो कुछ भी ( त्वम् ) तू ( दाशुषे ) अपने सर्वस्व दानशील, आत्मसमर्पक, उपासक के लिये ( भद्रं ) कल्याणकारी सुख और ऐश्वर्य ( करिष्यसि ) प्रदान करता है, हे ( अंगिरः ) समस्त ब्रह्माण्ड के अंग २ में व्यापक और प्राणों के भी भीतर व्यापक और अग्नि के समान प्रकाशक ! वह सब ( तव इत् ) तेरा ही है । ( तत् सत्यम् ) और वह सत् पदार्थों में सुखप्रद या सद्गुणों से उत्पन्न होने वाला, अथवा इह और या दोनों लोकों में सुखकर है ।

'भद्रम्'—भगेन व्याख्यातम् । भजनीयं, भूतानामभिद्रवणीयम् । भवद् रमयतीति वा, भाजनवद्वा । निरु० ४ । १ ॥ यद्वै पुरुषस्य वित्तं तद् भद्रं, गृहं भद्रं, प्रजा भद्रं, पशवो भद्रमिति शाट्यायनिनः ॥

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयं ।
नमो भरन्त एमसि॥ ७ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानप्रकाशक ! परमेश्वर ! और विद्वन् ! ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन, अथवा प्रत्येक प्रकार के ज्ञान प्रकाश के प्राप्त करने के लिये और (दोषा-वस्तः) दिन रात, ( वयम् ) हम लोग ( धिया ) अपनी बुद्धि और क्रिया से भी ( नमः भरन्तः ) नम्र भाव, आदरभाव धारण करते हुए तुझे ( आ इमसि ) प्राप्त होते हैं । विद्वानों के पास नित्य हम ज्ञान प्राप्त करने के लिये जावें और उनका (नमः) अन्नादि से सत्कार करें ।

नमः इत्यन्न नाम । निघ० ।

राज॑न्तमध्व॒राणां॑ गो॒पामृ॒तस्य॒ दीदि॑विम् ।
वर्ध॑मानं॒ स्वे दमे॑ ॥ ८ ॥

भा०—( अध्वराणाम् ) नित्य पदार्थों के और ( ऋतस्य ) सत्य अनादि, अनन्त, संसार के प्रवर्तक, ज्ञान और नियमव्यवस्था एवं सर्ग चक्र के ( गोपाम् ) रक्षक, ( दीदिविम् ) सबके प्रकाशक और (राजन्तम्) स्वयं प्रकाशस्वरूप और ( स्वे ) अपने ( दमे ) सर्व दुःखहारी परमपद या स्वरूप में ( वर्धमानं ) सदा सब से बढ़े हुए महान् परमेश्वर की शरण में हम ( एमसि ) प्राप्त हों ।

'दमः'—दाम्यन्ति शाम्यन्ति दुःखानि यस्मिन् । अथवा मदयति सुखयति इति मदो वर्णविपर्ययेण दमः ।

विद्वान् भी जो श्रेष्ठ कर्मों के बीच में प्रकाशमान, ऋत्, सत्य ज्ञान, वेद का रक्षक अपने गृह में और दमन, तप में बड़ा हो उसका हम सत्संग करें ।

स नः॑ पि॒तेव॑ सू॒नवेऽग्ने॑ सूपाय॒नो भ॑व ।
सच॑स्वा नः स्व॒स्तये॑ ॥ ९ ॥ २ ॥

भा०—( सः ) वह परमेश्वर और विद्वान् पुरुष ( सूनवे पिता इव ) पुत्र के प्रति पिता के समान परिपालक है । वह तू ( नः ) हमारे लिये पिता के समान ही ( सु-उपायनः ) सुख से प्राप्त होने योग्य, उत्तम और सुख साधनों के उत्तम ज्ञानों को देने वाला होकर ( नः ) हमारे (स्वस्तये) सुख-कल्याण के लिये ( भव ) हो । और ( नः सचस्व ) हमें प्राप्त हो, हमारे बीच में विद्यमान रह । इति द्वितीयो वर्गः ॥

## [ २ ]

मधुच्छन्दाः ऋषिः ॥ १-३ वायुर्देवता । ४-६ इन्द्रवायू । ७-९ मित्रा वरुणौ । गायत्र्यः ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

वायवा याहि दर्शतेमे सोमा अरंकृताः ।
तेषां पाहि श्रुधी हवम् ॥ १ ॥

भा०—हे ( वायो ) ज्ञानवन्, वायु के समान सब के प्राणेश्वर ! जीवनप्रद एवं सर्वव्यापक ! हे ( दर्शत ) ज्ञानदृष्टि से देखने योग्य ! सब को देखनेहारे परमेश्वर ! ( इमे ) ये ( सोमाः ) समस्त उत्पन्न पदार्थ आपके रचना-कौशल से ( अरंकृताः ) उत्तम रीति से सुभूषित हैं, बड़े सुन्दर बने हुए हैं । ( तेषां ) उनको आप ( पाहि ) पालन करते हो । आप ( हवम् ) हमारी स्तुति ( श्रुधि ) श्रवण करें । इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष ज्ञान करने और पदार्थों के तत्वों तक पहुंचने से 'वायु' है । ज्ञान से देखने से 'दर्शत' है । उसके कौशल से नाना उत्तम पदार्थ बनते हैं । एवं बहुत से सौम्य गुणों से युक्त शिष्य उसको प्राप्त होते हैं । वह उनकी रक्षा करे और सबको ( हवं श्रुधि ) उत्तम ज्ञानोपदेश श्रवण करावे । भौतिक पक्ष में—गतिमान् होने से 'वायु' है स्पर्श से देखने योग्य होने से दर्शनीय है, वह सब जगत् के जीवों और वृक्षादि को जल और प्राण से सुशोभित करता है । उनको प्राण द्वारा पालन करता शब्द का श्रवण करने का साधन है । शब्द को देशान्तर तक पहुंचाता है ।

'वायुः—वातेर्वेतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः । एतेरिति स्थौलाष्ठीविरनर्थको वकारः । निरु० १० । १–२ ॥ वायुः सोमस्य रक्षिता । वायुमस्य रक्षितारमाह । साहचर्यात् रसहरणाद् वा । निरु० ११।५॥ वेः पुत्रश्चायन् इति वा । कामयमान इति वा। वेति च य इति च चकार शाकल्यः । निरु० ६।५।६॥

वाय उक्थेभिर्जरन्ते त्वामच्छा जरितारः ।
सुतसोमा अहर्विदः ॥ २ ॥

भा०—हे (वायो) शक्तिमन्! सर्वव्यापक ! ज्ञानवन् ! ( सुतसोमाः ) सोम आदि ओषधियों का सेवन करनेवाले, सोम अर्थात् विद्वान् पुरुषों को उच्चपद प्रदान कर उनका सत्कार करनेवाले और ( अहर्विदः ) ज्ञान

प्रकाश के लाभ करनेवाले, दिन आदि के कालज्ञ विद्वान्, एवं अगम्य और अमृत का लाभ करनेवाले ब्रह्मवित्, ( जरितारः ) स्तुतिशील, विद्वान् पुरुष ( त्वाम् ) तेरी ( उक्थेभिः ) उत्तम स्तुति मन्त्रों से (अच्छ) साक्षात् ( जरन्ते ) स्तुति करते हैं।

वायो तव॑ प्रपृञ्चती धेना॑ जिगाति दाशुषे॑ ।
उरूची सोम॑पीतये ॥ ३ ॥

भा०—हे ( वायो ) ज्ञानप्रकाशक ईश्वर ! ( तव ) तेरी ( धेना ) वेद वाणी ( प्रपृञ्चती ) उत्कृष्ट अर्थों का ज्ञान कराकर समस्त विद्याओं को सम्पर्क करानेवाली अर्थात् उनको हृदय में प्रकाश करनेवाली होकर ( दाशुषे ) दानशील, दूसरों के विद्या देने हारे, विद्याभ्यासी और वेदानुशीलन में आत्मसमर्पण करनेवाले पुरुष को ही ( जिगाति ) प्राप्त होती है। और वह वाणी ( सोमपीतये ) उत्पन्न पदार्थों के रस या ज्ञान को ग्रहण करनेवाले को ( उरूची ) बहुत अधिक ज्ञानों और विद्याओं का ज्ञान करानेवाली होती है।

इन्द्र॑वायू इमे सुता उप प्रयो॑भिरा ग॑तम् ।
इन्द॑वो वामुशन्ति हि ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्रवायू ) सूर्य के समान सब अर्थों के प्रकाशक और वायु के समान सब के जीवनप्रद ! ( वां ) तुम दोनों को ( इमे सुताः ) ये समस्त उत्पन्न ( इन्दवः ) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थ और क्रियामय यज्ञ और प्राप्त करने योग्य भोग्य पदार्थ भी ( हि ) निश्चय से ( उशन्ति ) चाहते हैं और तुम्हें ही प्राप्त होते हैं। तुम ( प्रयोभिः ) अन्नादि उत्तम पदार्थों के सहित ( आ गतम् ) हमें प्राप्त होवो।

जैसे सूर्य और पवन जलों को अपने में धारण करते हैं वे दोनों हमें अन्नादि पदार्थों सहित प्राप्त होते हैं। अर्थात् वे दोनों हमें अन्न प्रदान करते हैं। उसी प्रकार इनके गुणों के धारक विद्वान् और बलवान् पुरुषों को

प्राप्त पदार्थ और ऐश्वर्य चाहते हैं ये सब ऐश्वर्य उनके हैं। वे ( प्रयोभिः ) ज्ञान और बलों सहित हमें प्राप्त हों।

अथवा—(इमे सुताः इन्दवः) ये पुत्र के समान, आज्ञावशवर्त्ती, जलों के समान सौम्य और शीतल स्वभाव वाले शिष्य और पुत्र गण सूर्य और पवन के समान ज्ञानप्रद और प्राणप्रद, पिता माता और गुरु, आचार्य को चाहते हैं। वे ज्ञानों और अन्नों सहित हमें प्राप्त हों।

वाय॒विन्द्र॑श्च चेतथः सु॒ताना॑ वाजिनीवसू।
तावा या॑त॒मुप॑ द्र॒वत् ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—वायु और इन्द्र दोनों का स्वरूप दर्शाते हैं—हे ( वायो ) वायो ! ज्ञानवन् ! और ( इन्द्रः च ) हे इन्द्र ! ऐश्वर्यवन् ! 'ज्ञानप्रद' ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! तुम दोनों भी ( वाजिनीवसू ) उषःकाल में प्रकट होने वाले, उदयकालिक सूर्य और प्राभातिक वायु के समान तमो-निवारक सर्वप्रकाशक और प्राणप्रद और रोगहारक तुम दोनों भी ( वाजिनी वसू ) अन्न से युक्त यज्ञक्रियाओं में, अथवा, ज्ञान सम्पादन करनेवाली शिक्षा आदि में बसने वाले अथवा 'वाज' अर्थात् ज्ञानैश्वर्य को धारण करनेवाली वेदवाणी के धनी होकर (सुतानां) प्राप्त शिष्यों और पुत्रों को ( चेतथः ) ज्ञान प्रदान करते हो। (तौ) वे दोनों तुम ( द्रवत् ) शीघ्र ही ( उप आयातम् ) हमें प्राप्त होओ। आप लोग हम जिज्ञासुओं को प्राप्त होकर हमें अपना कर उपनयन द्वारा दीक्षित कर शिक्षित करो।

गुरु और आचार्य दोनों वायु और सूर्य के समान हों। वे वेद के धनी होकर पुत्रों शिष्यों का उपनयन करें, शिष्यों को पढ़ावें—ज्ञानवान् करें। इति तृतीयोवर्गः ॥

वाय॒विन्द्र॑श्च सुन्व॒त आ या॑त॒मुप॑ निष्कृ॒तम्।
म॒क्ष्वि॑१॒॑त्था धि॒या न॑रा ॥ ६ ॥

भा०—हे (वायो) वायो! ज्ञानवन्! हे (इन्द्र) सर्व प्रकाशक! तुम दोनों हे ( नरा ) शिष्यों को गम्भीर विज्ञान मार्ग में ले चलनेहारे ! तुम दोनों ( इत्था ) ऐसी रीति से ( मक्षु ) शीघ्र ही ( सुन्वतः ) ज्ञान का सम्पादन करा देते हो, इसलिये ( धिया ) धारणवती बुद्धि और कर्म द्वारा ( निष्कृतम् ) भली प्रकार सर्वथा 'कृत' अर्थात् निश्चित बुद्धिवाले दृढ़ निश्चयी, व्रती, निष्ठ शिष्य को ( उप आयाताम् ) प्राप्त करो, उसका उपनयन करो। जीव और प्राण के पक्ष में—हे इन्द्र ! जीव और वायो ! प्राण ! तुम दोनों (नरा) शरीर के उठाने वाले, दोनों ऐसी धारण शक्ति से अन्नादि रस को उत्पन्न करते हो वे तुम दोनों ही ( निष्कृतम् उप आयातं ) कर्मफल, भोग्य पदार्थ को प्राप्त करते हो ।

मित्रं हुवे पूतदक्षं वरुणं च रिशादसम् ।
धियं घृताचीं साधन्ता ॥ ७ ॥

भा०—( पूतदक्षं ) जल के समान, पवित्र करनेवाले बल से युक्त सूर्य और प्राण के समान ( मित्रम् ) सब के स्नेही, और ( रिशादसम् ) देह के नाशक रोगों को नाश करनेवाले अपान के समान, घातकों के घातक ( वरुणं च ) शत्रुओं के वारक पुरुष को ( हुवे ) प्राप्त करता हूं । ये दोनों (घृताचीम्) जलको आकर्ष करनेवाले सूर्य के समान ही दोनों 'घृत' अर्थात् पुष्टिकारक अन्न, बल और तेज को प्राप्त करनेवाली ( धियं ) क्रिया शक्ति की ( साधन्ता ) साधना करने वाले हो ।

ऋतेन मित्रावरुणावृतावृधावृतस्पृशा ।
क्रतुं बृहन्तमाशाथे ॥ ८ ॥

भा०—( मित्रावरुणौ ) सब को स्नेह करने वाला मित्र, और सर्व श्रेष्ठ वरुण, न्यायाधीश और राजा दोनों ( ऋतेन ) सत्यस्वरूप वेद-ज्ञान से ( ऋतवृधौ ) सत्य व्यवहार को बढ़ाने वाले और ( ऋतस्पृशौ ) सत्य परिणाम और सिद्धान्त तक पहुंचने वाले होते हैं । वे दोनों (बृहन्तम्) बड़े

भारी ( क्रतुम् ) राष्ट्ररूप कर्म, व्यवहार और ज्ञान को भी ( आशाते ) प्राप्त होते हैं, उसको अपने वश करते हैं ।

मित्र और वरुण, प्राण और अपान ( ऋतेन ) जल के बल से जीवन के वर्धक और प्राणों को प्राप्त होते हैं वे दोनों महान् आत्मा को भी व्याप्त हैं । सूर्य और वायु दोनों जल से जीवन और प्राण की वृद्धि करते हैं । वे महान् ( क्रतुम् ) क्रियामय संसार रूप यज्ञ को व्याप्त होते हैं । अथवा सत्य नियमों से बंधे रहकर जगत् को व्यापते हैं ।

कवी नो॑ मि॒त्रावरु॑णा तुवि॒जा॒ता उ॑रु॒क्षया॑ ।
दक्षं॑ दधाते अ॒पस॑म् ॥ ६ ॥ ४ ॥

भा०—(कवी) क्रान्तदर्शी, दूरदर्शी, परम विद्वान् (मित्रावरुणौ) पूर्व कहे मित्र और वरुण दोनों (तुविजाता) बहुतसे सहकारी जनों से सामर्थ्य-वान् एव बहुतों में प्रसिद्ध, ( उरुक्षया ) बहुतों से निवास स्थानों में, अथवा विशाल निवासस्थानों में रहनेवाले होकर ( अपसम् ) कर्म ( दक्षं च ) और बल ( दधाते ) धारण करते हैं । वे राष्ट्र के सब कार्यों और अधिकारों को अपने वश करते हैं । भौतिक पक्ष में—अग्नि वायु दोनों, समस्त व्यवहारदर्शक होने से 'कवि' हैं । बहुत कारणों से उत्पन्न होने से 'तुविजात' हैं । महान् अन्तरिक्ष में व्यापक होने से 'उरुक्षय' हैं वे ज्ञान और क्रियाओं को उत्पन्न करते हैं। इति चतुर्थो वर्गः ॥

[ ३ ]

१–१२ मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ देवता–१–३ अश्विनौ । ४–६ इन्द्रः । ७–९ विश्वे देवाः । १०–१२ सरस्वती ॥ गायत्र्यः ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

अश्वि॑ना यज्व॑री॒रिषो॒ द्रव॑त्पाणी॒ शुभ॑स्पती ।
पुरु॑भुजा च॒न॒स्यत॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे ( अश्विनौ ) शीघ्र जाने वाले रथ और अश्व के स्वामी

स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( द्रवत्पाणी ) शीघ्र गतिशील हाथों, या व्यवहारों वाले, ( शुभस्पती ) उत्तम गुणों के पालक और ( पुरुभुजौ ) बहुतसे भोग्य पदार्थों से युक्त होकर ( यज्वरीः इषः ) बल देने वाले, उत्तम अन्नों को ( चनस्यतम् ) प्राप्त करो ।

'इषः चनस्यतम्' यह प्रयोग 'समूल काषं कषति' के समान जानना चाहिये । जल और अग्नि के पक्ष में—जल और अग्नि, रस और प्रकाश, वेग आदि व्यापक गुणों से युक्त होने से दोनों 'अश्विनौ' हैं । वे दोनों शीघ्र वेग के लिये व्यवहार में आने से 'द्रवत्पाणी' हैं । दीप्ति के पालक होने से 'शुभस्पती' हैं । नाना भोग्य सुखकर पदार्थों को उत्पन्न करते हैं । उन दोनों को उचित रीति सेवन किया जाय । इसी प्रकार राजा और अमात्य या राजा रानी, दोनों ( यज्वरीः इषः ) परस्पर सुसंगत, प्रेमयुक्त प्रजाओं को या अन्नादि ऐश्वर्यों को (चनस्यतम्) अन्न के समान भोग करें । वे दोनों ( शुभस्पती ) तेजस्वी और अति ऐश्वर्य के भोक्ता हों ।

'अश्विनौ'—अथातो द्युस्थाना देवतास्तासामश्विनौ प्रथमगामिनौ-भवतः । अश्विनौ यद् व्यश्नुवाते सर्वं, रसेन अन्यो, ज्योतिषा अन्यः । अश्वैर-श्विनावित्यौर्णवाभः । तत्कावश्विनौ ? द्यावापृथिव्यावित्येके । अहोरात्रा-वित्येके । सूर्याचन्द्रमसावित्येके । राजानौ पुण्यकृतावित्यैतिहासिकाः । निरु० १० । १ ॥ १ ॥

इमे ह वै द्यावापृथिव्यौ प्रत्यक्षमश्विनौ । इमे हि इदं सर्वमश्नुवातां । पुष्करस्रजौ इत्यग्निरेवास्यै ( पृथिव्यै ) पुष्करमादित्योऽमुष्यै ( दिवे ) । श० ४ । १ । ५ । १६ ॥ श्रोत्रे अश्विनौ । नासिके अश्विनौ । तद्यौ ह वा इमौ पुरुषाविवाक्ष्यौः । एतावेवाश्विनौ । श० १२ । ९ । १२–१४ ॥ मुख्यौ वा अश्विनौ । श० ४ । १ । ५ । १९ ॥

द्युस्थान देवगण में अश्वि दोनों मुख्य हैं । एक रस से और दूसरा तेज से जगत् को व्यापता है । इसी से दोनों 'अश्वि' हैं । आचार्य और्णवाभ के

मत में अश्वों, किरणों वाले सूर्य, चन्द्र, राजा, सेनापति 'अश्वी' हैं। द्यौ पृथिवी, दिन रात्रि, सूर्य, चन्द्र और राजा रानी ये 'अश्वि' कहाते हैं। पृथिवी में अग्नि और द्यौलोक में सूर्य दोनों पुष्टिकारक होने से पुष्कर हैं। उनके धारक द्यौ और पृथिवी दोनों पुष्कर-स्त्रक् अश्वि हैं। देह में कान, नाक, आंख दोनों जोड़े 'अश्वि' हैं। दो मुख्य पुरुष भी 'अश्वि' कहाते हैं।

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया।
धिष्ण्या वनतं गिरः ॥ २ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) मुख्य २ अधिकार के भोगने वाले स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ! ( पुरुदंससा ) बहुत से कर्म करने में कुशल ( नरा ) सब प्रजाओं के नायक हो। आप दोनों ( धिष्ण्या ) शत्रु और प्रतिपक्षियों को दमन करने में समर्थ होकर ( शवीरया धिया ) ज्ञानयुक्त बुद्धि से ( गिरः वनतम् ) वाणियों का सेवन करो, प्रयोग करो, परस्पर वचन कहो और सुनो। और उत्तम वेदवाणियों का अभ्यास करो।

'शवीरया धिया'—शव गतौ। अतो रन्। गतिर्ज्ञानं प्राप्तिश्चेति तद्युक्तया। धीरिति कर्मप्रज्ञयोर्नाम।

अग्नि और जल पक्ष में—अग्नि और जल दोनों वेग उत्पन्न करनेवाली क्रिया से युक्त होकर बहुत से कर्म करते हैं। वे दृढ़ बल से युक्त होकर उपयोगी नाना ज्ञानों को प्रकट करते हैं। प्राण और अपान दोनों पुरु नाम इन्द्रियों के भीतर कर्म प्रवर्त्तक हों। वे दोनों अति तीव्र गति वाली ज्ञानशक्ति से नाना श्रोत्रादि स्थानों पर स्थिर होकर नाना वाणियों का पात्र होते हैं।

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः।
आ यातं रुद्रवर्तनी ॥ ३ ॥

भा०—( युवाकवः ) नाना सन्धिविग्रहादि, संयोग और विभागों से युक्त (सुताः) अभिषिक्त हुए हुए (वृक्त-बर्हिषः) आसनों के समान ही प्रजाओं

को शासन के लिये प्राप्त करनेहारे हैं। इनके बीच में ( दस्रा ) दुःखों और दुःखदायी शत्रुओं के नाश करनेवाले, ( नासत्या ) कभी असत्याचरण न करने वाले आप दोनों ( रुद्रवर्त्तनी ) नासिका गत प्राणों के समान राष्ट्र में मुख्य पद पर विराजमान रहकर ( आयातम् ) आवें, प्राप्त हों।

विज्ञान पक्ष में—मिश्रण और अमिश्रण क्रिया करने में चतुर विद्वान् पुरुषो ! आप लोगों को रोगनाशक, सदा सत्य गुण कर्म वाले, प्राण के मार्गों में गतिशील जल और अग्नि के तत्व प्राप्त हों।

'वृक्तबर्हिषः'—इति ऋत्विङ्नाम। बर्हिः कुशादिवाचकः। कुशला इत्यर्थः।

इन्द्रा याहि चित्रभानो सुता इमे त्वायवः।
अण्वीभिस्तना पूतासः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! राजन् ! हे ( चित्रभानो ) अद्भुत आश्चर्यकारक दीप्तियों वाले ! तू ( आयाहि ) आ, हमें प्राप्त हो। ( इमे ) ये ( सुताः ) उत्पन्न समस्त पदार्थ, ऐश्वर्य ( त्वायवः ) तुझे प्राप्त हों। और वे ( तना ) विस्तृत धनसम्पत्तियुक्त, ( अण्वीभिः ) किरणों या तेजों से युक्त ( पूतासः ) परम पवित्र हैं। इसी प्रकार हे राजन् ! ( इमे त्वायवः सुताः ) ये तुझे प्राप्त अभिषिक्त राजगण भी ( अण्वीभिः पूतासः ) किरणों के समान तेजस्विनी शक्तियों या प्रजाओं से पवित्र आचारवान् एवं अभिषिक्त हैं। तू उनको प्राप्त हो। छोटे २ राजा भी अपने मण्डलों की प्रजाओं द्वारा अभिषिक्त हों और। वे अपने बीच में सूर्य के समान महाराजा के अधीन रहें। परमेश्वर पक्ष में—ये समस्त पदार्थ ( अण्वीभिः ) सूक्ष्म कारण द्रव्यों से बने हैं, ये सब तुझे ही प्राप्त कराते, तेरी महिमा गाते हैं ॥ सूर्य पक्ष में—ये सब पदार्थ किरणों से शुद्ध पवित्र होते हैं वे तुझे ही प्राप्त हों।

इन्द्रा याहि धियेषितो विप्रजूतः सुतावतः।
उप ब्रह्माणि वाघतः ॥ ५ ॥

भा०—हे (इन्द्र) सूर्य के समान तेजस्वी और ऐश्वर्यवन् ! तू (धिया) उत्तम ज्ञान वाली बुद्धि और उत्तम कर्म से ( इषितः ) प्राप्त होने योग्य है । तू ( विप्रजूतः ) विद्वान् मेधावि पुरुषों से जाना जाता है । तू ( सुतावतः ) उत्तम ज्ञानवान्, मेधावी ( ब्रह्माणि ) वेदज्ञ ब्राह्मण पुरुषों को ( उप आयाहि ) प्राप्त हो ।

ब्रह्म वै ब्राह्मणः । शत० १३ । १ । ५ । ३ ॥

इन्द्रा याहि तूतुजान उप ब्रह्माणि हरिवः ।
सुते दधिष्व नश्चनः ॥ ६ ॥ ५ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ईश्वर अथवा वीर पुरुष ! ( तूतुजानः ) अति वेग से जाने वाला वायु जिस प्रकार ( ब्रह्माणि ) महान् कर्मों को करता है उसी प्रकार तू भी ( ब्रह्माणि ) वेद के ज्ञानस्रोतों को, या ऐश्वर्यों को (उप आयाहि) प्राप्त हो । उनमें प्रतिपादित गुण स्तवनों को धारण कर । हे ( हरिवः ) जलों के रस हरण करने वाली एवं तमो नाशक किरणों से युक्त सूर्य के समान वेगवान् अश्वों, अश्वारोहियों के स्वामिन् ! तू ( नः ) हमें ( सुते ) अपने इस अभिषेक द्वारा प्राप्त राष्ट्र में (चनः) अन्न आदि सञ्चय करने योग्य पदार्थों को (दधिष्व) धारण कर।

प्राण के पक्ष में—हे इन्द्र ! प्राण वायो ! तू गतिशील होकर हमारे ( ब्रह्माणि ) अन्नों के पचाने की शक्ति प्राप्त कर । और हमारे (चनः) किये भोजनादि को धारण कर । शरीर को पुष्ट कर । इति पञ्चमो वर्गः ॥

ओमासश्चर्षणीधृतो विश्वे देवास आ गत ।
दाश्वांसो दाशुषः सुतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे ( विश्वे देवासः ) समस्त देव अर्थात् विद्वज्जनो ! वीर दान

---

७—९–तदेतदेकमेव वैश्वदेवं गायत्रं तृचं दशतयीषु विद्यते । यत्तु-किञ्चिद् बहुदेवतं तद्वैश्वदेवानां स्थाने युज्यते । निरु० १२ । ४० ॥

शील, एवं युद्धविजयी तेजस्वी पुरुषो ! आप लोग ( ओमासः ) रक्षा करने हारे, तेजस्वी, ज्ञानवान्, प्रेमयुक्त, शत्रुहिंसक, वृद्धिशील, उत्तम पदार्थों के याचक एवं प्रदाता और दूसरों के रक्षक और रक्षण करने योग्य, एवं ( चर्षणीधृतः ) मनुष्यों को उत्तम व्यवस्था से धारण करने वाले हैं । आप लोग ( दाश्वांसः ) दानशील, अभयप्रद होकर ( दाशुषः ) दानशील, कर-प्रद, एवं आत्मसमर्पक के ( सुतम् ) उत्तम पदार्थ, राष्ट्र या प्रस्तुत आदर सत्कार को प्राप्त करने के लिये ( आ गत ) आओ । विद्वान् आदि योग्य पुरुषों को इसी प्रकार से निमन्त्रण करना चाहिये । 'ओमासः'—अवितारो चाऽवनीया वा मनुष्यधृतः । निरु० १२।४१॥

विश्वे॑ दे॒वासो॑ अ॒प्तुरः॑ सु॒तमा ग॑न्त॒ तूर्ण॑यः ।
उ॒स्रा इ॑व॒ स्वस॑राणि ॥ ८ ॥

भा०—( उस्राः ) सूर्य के किरण ( स्वसराणि इव ) जिस प्रकार दिनों को प्रकाशित करने के लिये नित्य नियम से आते हैं, उसी प्रकार हे ( विश्वे देवासः ) विद्वान् ज्ञान-प्रकाश से युक्त पुरुषो ! आप लोग (अप्तुरः) मेघों के समान मनुष्यों को जल वृष्टि द्वारा अन्नादि वृद्धि और कर्मों का उपदेश देने वाले, (तूर्णयः ) स्वयं अति शीघ्रता से प्राप्त होने में समर्थ होकर ( सुतम् ) ज्ञान प्रदान करने के लिये, अथवा ( सुतम् ) अभिषिक्त राजा या समृद्ध राष्ट्र को ( आ गन्त ) प्राप्त होओ ।

'स्वसराणि'—अहानि भवन्ति । स्वयं सारीणि। अपि वा स्वरादित्यो भवति स एनानि सारयति । निरु० ।

विश्वे॑ दे॒वासो॑ अ॒स्रिध॒ एहि॑मायासो अ॒द्रुहः॑ ।
मेधं॑ जुषन्त॒ वह्न॑यः ॥ ९ ॥

भा०—( विश्वे देवासः ) समस्त विद्वान् पुरुष ( अस्रिधः ) अक्षय विज्ञान और कोष से युक्त, ( एहिमायासः ) सब विषयों में चतुर बुद्धि वाले, (अद्रुहः) किसी के प्रति द्रोह बुद्धि न करनेवाले, अहिंसक, (वन्हयः)

राष्ट्र और समाज के कार्यों को धारण करनेवाले विद्वान् पुरुष ( मेधं जुषन्त ) यज्ञ, परस्पर के सत्संग और सेवनीय अन्न को सेवन करें।

'एहिमायासः'—आङ्पूर्वस्य ईहतेश्चेष्टार्थस्य इनिः। एहिः सर्वतो गामिनी माया प्रज्ञा येषां ते। जिनकी बुद्धियां सब तरफ़ यत्नशील हैं वे विद्वान्, अर्थात् (Proficiant in all arts & branches of knowledge) विद्या की सब शाखा प्रशाखाओं में निष्णात।

## वेदवाणी का वर्णन

पावका नः सरस्वती वाजेभिर्वाजिनीवती।
यज्ञं वष्टु धियावसुः ॥ १० ॥

भा०—( वाजेभिः ) बलों, ज्ञानों, ऐश्वर्यों और अन्नों से (वाजिनीवती) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि को सिद्ध करनेवाली क्रिया से युक्त (पावकाः) सबको पवित्र करनेवाली ( सरस्वती ) शुद्ध जलों से युक्त नदी के समान उत्तम ज्ञानमयी और गुरु परम्परा से बहनेवाली वेदवाणी और उसको धारण करनेवाले विद्वान्जन ( धियावसुः ) परस्पर संग उत्तम कर्म और ज्ञान के ऐश्वर्य को धारण करनेवाले होकर यज्ञ, शिल्प व्यवहार विद्याभ्यास और आत्मा और राष्ट्र को ( वष्टु ) प्रकाशित करें।

चोदयित्री सूनृतानां चेतन्ती सुमतीनां।
यज्ञं दधे सरस्वती ॥ ११ ॥

भा०—( सरस्वती ) उत्तम ज्ञानों से युक्त वेदवाणी ( सू-नृतानां ) उत्तम सत्य ज्ञानों को ( चोदयित्री ) उपदेश करनेवाली और ( सुमतीनां ) उत्तम बुद्धि वाले विद्वान् पुरुषों को ( चेतन्ती ) ज्ञान प्रदान करती हुई उनके ( यज्ञं ) यज्ञ, श्रेष्ठ कर्म और देव-उपासना को ( दधे ) धारण करती, उसका उपदेश करती है।

महो अर्णः सरस्वती प्र चेतयति केतुना ।
धियो विश्वा वि राजति ॥ १२ ॥ ६ ॥

भा०—( सरस्वती ) ज्ञानमयी वेदवाणी ( केतुना ) अपने ज्ञान से ही ( महः अर्णः ) बड़े भारी ज्ञानसागर का ( प्रचेतयति ) उत्तम रीति से ज्ञान कराती है । और ( विश्वा ) समस्त ( धियः ) ज्ञानों और कर्मों को ( वि राजति ) विविध प्रकार से प्रकाशित करती है । जिस प्रकार निरन्तर बहती जलधारा यह सूचना देती है कि उसके निकास में अनन्त जल सागर है जो कभी समाप्त नहीं होता उसी प्रकार वेदवाणी भी उपदेश परम्परा से बराबर विस्तृत होकर अपने निकास में स्थित अनन्त ज्ञान और शब्दराशि का ज्ञान कराती है । इति षष्ठो वर्गः ॥

इति प्रथमोऽनुवाकः ।

[ ४ ]

मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । दशर्चं सूक्तम् ॥

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे ।
जुहूमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

भा०—( गोदुहे ) दुग्ध दोहने के लिये ( सुदुघाम् इव ) उत्तम दूध देने वाली गौ को जिस प्रकार प्राप्त करते और उसको पालते हैं उसी प्रकार ( ऊतये ) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने के लिये हम ( द्यविद्यवि ) प्रतिदिन ( सुरूप-कृत्नुम् ) उत्तम, मनोहर, रुचिकर पदार्थों के उत्पन्न करने में चतुर विद्यावान्, कलाविज्ञ, विद्वान् पुरुष को या परमेश्वर को और उत्तम गुणों के उत्पादक परमेश्वर को ( जुहूमसि ) प्राप्त करें । दूध के लिये जैसे,

नित्य गौ को दोहते हैं उसी प्रकार उत्तम गुण प्राप्त करने के लिये गुणी को, ज्ञान प्रप्ति के लिये आचार्य को, रक्षा के लिये राजा को और शिल्प के लिये शिल्पज्ञ पुरुष को प्राप्त करें और उसकी आराधना करें ।

'सुरूप-कृत्नुः'—स्वप्रकाशेन सुरूपां करोति इति दया० । शोभनरूपोपेतकर्मणः कर्त्तेति सायणः ।

उप॑ नः॒ सव॒ना ग॑हि॒ सोम॑स्य सोमपाः पिब ।
गो॒दा इद्रे॒वतो॒ मदः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे ( सोमपाः ) उत्तम पदार्थों या राष्ट्रों के रक्षक राजन् ! तू ( नः ) हमारे ( सोमस्य ) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के ( सवना ) ऐश्वर्यों या राज्य-कार्यों को ( आगहि ) प्राप्त हो । और ( सोमस्य पिब ) ओषधिरस के समान ऐश्वर्य का पान कर, भोग कर । तू ( गोदाः ) सूर्य जिस प्रकार चक्षु आदि को सामर्थ्य प्रदान करता है उसी प्रकार वह भूमि और ज्ञानवाणी का प्रदान करता है । और ( रेवतः ) धन-ऐश्वर्य और पुरुषार्थवान् पुरुष को (मदः) हर्षित, तृप्त और आनन्दित करता है । परमेश्वर पक्षमें—हे (सोमपाः ) जीवों के रक्षक ! तू ( सोमस्य सवना आ गहि ) जीव की उपासनाओं को प्राप्त हो । धनाढ्य जिस प्रकार प्रसन्न होकर गौ और भूमि प्रदान करता है, इसी प्रकार सब तुझ ( रेवतः ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर का ( मदः ) हृदय को तृप्त करने वाला आनन्दरस भी ( गोदाः ) ज्ञान वाणियों का प्रदान करने वाला है ।

अथ॑ ते॒ अन्त॑मानां वि॒द्याम॑ सुम॒तीना॑म् ।
मा नो॒ अति॑ ख्य॒ आ ग॑हि ॥ ३ ॥

भा०—(अथ) और हे परमेश्वर ! हे राजन् ! ( ते ) तेरे (अन्तमानां) अति समीप प्राप्त, ( सुमतीनां ) उत्तम ज्ञानयुक्त श्रेष्ठ, धर्मात्मा पुरुषों के उत्तम उपदेश से तेरा (विद्याम) ज्ञान करें । तू ( नः ) हमें (मा अति ख्यः)

त्याग मत कर, हमारी उपेक्षा मत कर। ( नः आगहि ) हमें प्राप्त हो।

परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्।
यस्ते सखिभ्य आ वरम् ॥ ४ ॥

भा०—हे मनुष्य ! तू ( विग्रम् ) विशेष ज्ञान का उपदेश करने वाले ( अस्तृतम् ) अहिंसक, दयालुस्वभाव के ( विपश्चितम् ) ज्ञान का सञ्चय करने वाले ( इन्द्रम् ) आत्मज्ञान के साक्षात् करने वाले उस विद्वान् पुरुष को ( परा इहि ) प्राप्त हो और उसी से ( पृच्छ ) सब प्रश्न पूछ। ( यः ) जो ( ते ) तेरे ( सखिभ्यः ) समान अन्य शिष्य गण को भी ( वरम् आ ) उत्तम उपदेश करता है।

'विग्रः'—'विपूर्वाद् गृणातेः अन्येष्वपि दृश्यते इति डः। विविधं गृणात्यर्थान्, इति देवराजः। विग्र इति मेधाविनाम। निघं० ३।१५ ॥ वेर्ग्रोवक्तव्य इति नासिकायाः ग्रः। विग्रः विशेषाघ्राणकुशलनासिकावान्, चतुर इत्यर्थः।

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत।
दधाना इन्द्र इद्दुवः ॥ ५ ॥ ७ ॥

भा०—( उत ) और चाहे ( नः ) हमारे ( निदः ) निन्दा करनेवाले जन भी ( नः ) हमें ( ब्रुवन्तु ) कहें कि ( अन्यतः चित् ) दूसरे स्थान में ( निर्-आरत ) निकल जाओ। तब भी हम लोग ( इन्द्रे इत् ) उस परमेश्वर में ( दुवः ) नाना स्तुति, परिचर्या ( दधानाः ) करते रहें। अथवा ( इन्द्रे, इत् दुवः दधानाः ) परमेश्वर की ही परिचर्या करते हुए विद्वान् जन ( नः ब्रुवन्तु ) हमें उपदेश करें। और हे ( निदः ) हमारे निन्दाजनक दुष्ट पुरुषो ! ( अन्यतः चित् ) तुम अन्यत्र दूर देश में ( निर्-आरत ) निकल जाओ।

उत नः सुभगाँ अरिर्वोचेयुर्दस्म कृष्टयः।
स्यामेदिन्द्रस्य शर्मणि ॥ ६ ॥

भा०—हे ( दस्म ) शत्रुओं और दुष्ट भावों के नाशक इन्द्र !

good

2 meanings nicely done

साधारण

विद्वन् ! राजन् ! ( उत ) और ( अरिः ) हमारा शत्रु ( कृष्टयः ) और साधाारण जन भी ( नः ) हमें ( सुभगान् ) ऐश्वर्यवान् और कल्याणकारी ( वोचेयुः ) कहें। हम सदा ( इन्द्रस्य शर्मणि इत् ) ऐश्वर्यवान् राजा और परमेश्वर के शरण में ही ( स्याम ) रहें।

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्।
पतयन्मन्दयत्सखम् ॥ ७ ॥

भा०—हे विद्वन् ! शीघ्रता के कार्य करने के लिये जिस प्रकार वेगवान् अश्व को नियुक्त किया जाता है उसी प्रकार ( आशुम् ) आशु, शीघ्रकारी, ( यज्ञश्रियम् ) प्रजापति या सुव्यवस्थित राष्ट्र के आश्रय, उसके शोभाजनक ( नृमादनम् ) समस्त प्रजाओं और नेता पुरुषों को सुप्रसन्न करनेवाले और ( मन्दयत्-सखम् ) समस्त मित्रों को प्रसन्न रखने वाले ( पतयत् ) स्वामी होने योग्य पुरुष को ( आशवे ) शीघ्र कार्य सम्पादन के लिये ( ईम् ) इस पृथिवी पर ( आ भर ) नियुक्त कर।

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः।
प्रावो वाजेषु वाजिनम् ॥ ८ ॥

भा०—हे ( शतक्रतो ) सैकड़ों प्रज्ञा और कर्म सामर्थ्य वाले ! तू ( अस्य ) इस राष्ट्र के ऐश्वर्य का ( पीत्वा ) उपभोग करके मेघों को सूर्य के समान ( वृत्राणाम् ) सैकड़ों विघ्नकारी शत्रुओं को ( घनः ) मारने में समर्थ ( अभवः ) हो। और ( वाजेषु ) संग्रामों में ( वाजिनम् ) संग्राम करने में कुशल ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र या अश्ववान् पुरुष की ( प्र अवः ) उत्तम रीति से रक्षा कर।

तं त्वा वाजेषु वाजिनं वाजयामः शतक्रतो।
धनानामिन्द्र सातये ॥ ९ ॥

भा०—हे ( शतक्रतो ) सैकड़ों सामर्थ्यवान् राजन् ! ( वाजेषु ) संग्रामों में ( वाजिनं ) विजय प्राप्त कराने वाले ऐश्वर्यवान्, ( तं त्वा )

उस तुझको हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुनाशक ! ( धनानां सातये ) धनों के प्राप्त करने के लिये ( वाजयामः ) आदरपूर्वक प्रार्थना करते हैं, तुझे ऐश्वर्य पद से विभूषित करते हैं ।

यो रायो३ऽवनिर्महान्त्सुपारः सुन्वतः सखा ।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ १० ॥ ८ ॥

भा०—( यः ) जो परमेश्वर या राजा ( रायः ) ऐश्वर्य का ( महान् ) बड़ा भारी ( अवनिः ) रक्षक और दाता है। और जो ( सुपारः ) उत्तम पालन पोषण करने हारा ( सुन्वतः सखा ) उपासना करने वाले, धर्मात्मा पुरुषो और अभिषेक करनेवाले प्रजाजन का ( सखा ) मित्र है । ( तस्मै इन्द्राय ) उस इन्द्र, प्रभु की (गायत) स्तुति गान करो। इत्यष्टमो वर्गः ॥

[ ५ ]

१–१० मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्यः । दशर्चं सूक्तम् ॥

आ त्वेता नि षीदतेन्द्रमभि प्र गायत ।
सखायः स्तोमवाहसः ॥ १ ॥

भा०—हे ( स्तोमवाहसः ) स्तुति मन्त्रों को धारण करने वाले ( सखायः ) मित्रजनो ! ( आ एत ) आओ, ( तु ) और ( निषीदत ) विराजो । (इन्द्रम् अभि) उस ईश्वर या आत्मा को लक्ष्य करके (प्र गायत) उसकी स्तुति करो ।

पुरूतमं पुरूणामीशानं वार्याणाम् ।
इन्द्रं सोमे सचा सुते ॥ २ ॥

भा०—(पुरूणां) आकाश से लेकर पृथिवी तक के बहुत से (वार्याणाम्) वरण करने योग्य, श्रेष्ठ ऐश्वर्यों के ( ईशानं ) स्वामी, ( पुरूतमम् ) नाना दुष्ट स्वभाव के जीवों को कर्म फल से कष्ट देने वाले ( इन्द्रम् ) परमेश्वर की ( सुते सोमे ) इस उत्पन्न संसार में स्तुति करो । राजा के पक्षमें—

( वार्याणाम् ) वरण योग्य सम्पदाओं के स्वामी और ( पुरूणाम् ) राष्ट्र के पालक पोषकों में से ( पुरु-तमं ) सब से श्रेष्ठ पालक, ( इन्द्रं ) शत्रु-हन्ता ( सचा ) एकत्र स्थित होकर राजा को ( सुते सोमे ) ऐश्वर्य युक्त सोम = राष्ट्र या प्रेरक पद पर नियुक्त करो। आत्मा के पक्षमें—ज्ञानों को पूर्ण करने वाले इन्द्रियों के बीच में सब से श्रेष्ठ ज्ञाता और वरण योग्य समस्त आशाओं के स्वामी ( इन्द्रं ) आत्मा की ( सुते सोमे ) ब्रह्मानन्द रस में ( सचा ) समवेत हो कर स्तुति करो।

स घा नो योग आ भुवत्स राये स पुरन्ध्याम्।
गमद्वाजेभिरा स नः ॥ ३ ॥

भा०—( सः घ ) वह परमेश्वर ही ( योगे ) योगाभ्यास काल में (आ भुवत्) सब प्रकार से सुखदायी हो। अथवा-(योगे) अप्राप्त पुरुषार्थ के प्राप्त करने में सहायक हो। ( सः राये ) वह परमेश्वर उत्तम धनैश्वर्य के प्राप्त करने में सहायक हो। ( सः पुरन्ध्याम् ) वह परमेश्वर ही नाना शास्त्रों को धारण करने वाली बुद्धि के प्राप्त करने में सहायक हो। ( सः ) वह ( नः ) हमें ( वाजेभिः ) नाना ऐश्वर्यों सहित ( आगमत् ) प्राप्त हो। राजा के पक्षमें—वह हमारे अप्राप्त धन को प्राप्त कराने, ऐश्वर्य और 'पुरन्धी' अर्थात् स्त्री अर्थात् गृहस्थपालन अथवा पुर, राष्ट्र के पालन की नीति में ( आ भुवत् ) समर्थ हो। वह ( नः वाजेभिः आगमत् ) हमें अन्न आदि ऐश्वर्यों सहित प्राप्त हो। हमें ऐश्वर्य प्रदान करे।

यस्य संस्थे न वृण्वते हरी समत्सु शत्रवः।
तस्मा इन्द्राय गायत ॥ ४ ॥

भा०—राजा के पक्षमें—युद्धों में ( यस्य हरी ) जिसके अश्वों को ( शत्रवः ) शत्रुगण ( संस्थे ) रथ में लगे देखकर ( समत्सु ) संग्रामों में ( न वृण्वते ) डट नहीं सकते अर्थात् भयभीत होकर भागते हैं, ( तस्मै ) उस ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् राजा के ( गायत ) गुणगान करो। परमेश्वर

पक्षमें—जिस परमेश्वर के ( संस्थे ) उत्तम रीति से स्थित होने योग्य जगत् में (हरी) सूर्य के प्रकाश और आकर्षण के समान बल पराक्रम हैं। संग्रामों में शत्रु जिसके सहाय से बल नहीं पकड़ते उस ईश्वर की स्तुति करो।

सुतपाव्ने सुता इमे शुचयो यन्ति वीतये।
सोमासो दध्याशिरः ॥ ५ ॥ ६ ॥

भा०—( सुतपाव्ने ) ऐश्वर्यों के रक्षा करने वाले राजा के ( वीतये ) उपभोग के लिये ही ( इमे ) ये ( दध्याशिरः ) प्रजाओं को धारण पोषण करने वालों के आश्रय योग्य ( शुचयः ) शुद्ध, पवित्र, सदाचारी ( सोमासः ) राष्ट्र के पदाधिकारी गण ( यन्ति ) प्राप्त होते हैं। जीव के पक्षमें—उत्पन्न पदार्थों के रक्षा करने या उनको भोगने में समर्थ पुरुष के भोग के लिये ये समस्त पवित्र ऐश्वर्य प्राप्त होते हैं। इति नवमो वर्गः ॥

त्वं सुतस्य पीतये सद्यो वृद्धो अजायथाः।
इन्द्र ज्यैष्ठ्याय सुक्रतो ॥ ६ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः हे ( सुक्रतो ) उत्तम कर्म और प्रज्ञा वाले ! ( त्वं ) तू ( सुतस्य पीतये ) उत्तम ओषधि रस के समान जगत् के उत्पन्न ऐश्वर्य या अधिकार पद के भोग, पान या प्राप्त करने के लिये और ( ज्यैष्ठ्याय ) सबसे उत्तमपद को प्राप्त करने के लिये ( सद्यः ) शीघ्र ही सब दिन ( वृद्धः ) सबसे बड़ा, सर्वश्रेष्ठ ( अजायथाः ) होकर रह। परमेश्वर के पक्ष में—हे परमेश्वर ! हे शुद्ध प्रज्ञावन् ! इस उत्पन्न संसार को अपने में ले लेने और सबसे महान् होने के कारण तू ही सदा सबसे बड़ा है।

आ त्वा विशन्त्वाशवः सोमास इन्द्र गिर्वणः।
शं ते सन्तु प्रचेतसे ॥ ७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् राजन् ! हे ( गिर्वणः ) वाणी द्वारा स्तुति करने योग्य ! ( आशवः ) तीव्र वेग से जाने वाले ( सोमासः )

सेनाओं के प्रेरक, संचालक, अधिकारीगण ( त्वा आविशन्तु ) तेरे में प्रविष्ट हों, तेरे अधीन होकर रहें और वे ( ते प्रचेतसे ) सबसे उत्कृष्ट ज्ञान से युक्त तुझे ( शं सन्तु ) कल्याणकारी हों। जीवपक्ष में—( आशवः सोमासः ) सब क्रिया में व्याप्त पदार्थ तुझे प्राप्त हों। ज्ञानवान् तुझको सुखकारक हों।

त्वां स्तोमा॑ अवीवृधन्त्वामु॒क्था, श॑तक्रतो।
त्वां व॑र्धन्तु नो॒ गिर॑ः ॥ ८ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) असंख्य ज्ञान और कर्मों के स्वामिन्! राजन्! एवं परमेश्वर! ( त्वाम् ) तुझको ( स्तोमाः ) स्तुति समूह ( अवीवृधन् ) बढ़ाते हैं, तेरी ही महिमा गान करते हैं। ( उक्था त्वाम् ) वेद के सूक्त भी तेरा ही गान करते हैं। ( नः गिरः ) हमारी वाणियां भी ( त्वां वर्धन्तु ) तुझे बढ़ावें। तेरी महिमा का प्रकाश करें।

अक्षि॑तोतिः सनेदि॒मं वाज॒मिन्द्र॑ः सह॒स्रिण॑म्।
यस्मि॒न्विश्वा॑नि॒ पौंस्या॑ ॥ ९ ॥

भा०—( अक्षितोतिः ) अक्षय रक्षा सामर्थ्य से युक्त, ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा ( इमं ) इस ( सहस्रिणम् ) सहस्रों बल, वीर्य, और सुखों वाले ( वाजम् ) ऐश्वर्य को ( सनेत् ) प्राप्त हो, या प्रदान करे ( यस्मिन् ) जिसमें ( विश्वानि ) समस्त प्रकार के (पौंस्या) पुरुषोपयोगी बल हैं। परमात्मा के पक्ष में—परमेश्वर अक्षय ज्ञान और रक्षा के सामर्थ्य से युक्त हैं। वह सहस्रों सुखों के देने वाला ( वाजम् ) ऐसा ज्ञान, अन्न और बल प्रदान करे। उस परमेश्वर में सब प्रकार के बल विद्यमान हैं।

मा नो॒ मर्ता॑ अ॒भि द्रु॑हन् त॒नूना॑मिन्द्र गिर्वणः।
ईशा॑नो यवया व॒धम् ॥ १० ॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! हे ( गिर्वणः ) आज्ञा प्रदान करने वाले! ( मर्त्ताः ) मरणधर्मा मनुष्य ( नः तनूनाम् ) हमारे शरीरों का ( मा

अभि द्रुहन् ) द्रोह न करें, हम पर द्वेष से प्रहार न करें। तू ( ईशानः ) सब का सामर्थ्यवान् स्वामी होकर ( वयम् ) इस घात या हिंसा कार्य को ( यवय ) दूर कर। परमेश्वर पक्ष में—हे ( गिर्वणः ) वेद वाणियों से स्तुति योग्य ! हे परमेश्वर ! लोग हमारे शरीरों का नाश न करें। तू हिंसा कार्य को दूर कर। इति दशमो वर्गः ॥

## [ ६ ]

१–१० मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ १–३ इन्द्रो देवता । ४, ६, ८, ९ मरुतः । ५, ७ मरुत इन्द्रश्च । १० इन्द्रः ॥ गायत्र्यः । दशर्चं सूक्तम् ।

युञ्जन्ति ब्रध्नमरुषं चरन्तं परि तस्थुषः ।
रोचन्ते रोचना दिवि ॥ १ ॥

भा०—विद्वान् योगी जन ( ब्रध्नम् ) सबको नियम व्यवस्था में बांधने वाले महान्, सर्वाश्रय, ( अरुषम् ) रोषरहित, अहिंसक, तेजस्वी, ( तस्थुषः परि ) समस्त स्थावर, अचेतन प्राकृतिक संसार में व्यापक परमेश्वर को ( युञ्जन्ति) समाहित चित्त होकर ध्यान करते हैं, उसका योगाभ्यास से साक्षात् करते हैं। और वे ही ( रोचनाः ) ज्ञानमय प्रकाश और परम ज्योतिर्मय तप से तेजस्वी होकर ( दिवि ) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर या मोक्ष में ( रोचन्ते ) प्रकाशित होते हैं, विराजते हैं। सूर्य पक्ष में—( अरुषं ) तेजस्वी, महान्, विचरने वाले सूर्य को उसके चारों ओर स्थित सूर्य, नक्षत्र आदि लोकों को भी ( युञ्जन्ति ) आकर्षण से बांधते हैं। जो आकाश में चमक रहे हैं। राजा के पक्ष में—( ब्रध्नम् ) सूर्य के समान सबको बांधने वाले, वायु के समान स्वच्छन्द विचरने वाले को (तस्थुषः परि ) स्थिर प्रजाजनों के ऊपर नियुक्त करते हैं। ( रोचनाः ) ज्ञानवान् पुरुष ( दिवि ) राजसभा में विराजते हैं।

असौ वा आदित्यो ब्रध्नः। अग्निर्वा अरुषः। इमे वै लोकाः, परि-

तस्थुषः । नक्षत्राणि वै रोचनानि । वायुर्वै चरन् । इति शत० ब्राह्मणम् ।

युञ्जन्त्यस्य काम्या हरी विपक्षसा रथे ।
शोणा धृष्णू नृवाहसा ॥ २ ॥

भा०—( अस्य ) इस आत्मा के प्राप्त करने के लिये ( रथे ) रमण करने योग्य इस देह में ( काम्या ) कामना करने योग्य ( हरी ) गतिशील, एवं इन्द्रियों को गति देने वाले ( विपक्षसा ) विविध पार्श्वों में स्थित, ( शोणा ) गतिशील, ( धृष्णू ) दृढ़, ( नृवाहसा ) नेता आत्मा को वहन करने वाले प्राण और अपान दोनों को ( युञ्जन्ति ) योगी जन योगाभ्यास द्वारा वश करते हैं । सूर्य और अग्नि के पक्ष में—( रथे हरी ) रथ में जिस प्रकार दोनों पार्श्वों पर दो अश्व लगाये जाते हैं उसी प्रकार वे दोनों (धृष्णू, शोणा, नृवाहसा ) दृढ़ और रक्तवर्ण, क्षत्रिय रथस्थ मनुष्यों को उठाने में समर्थ होते हैं उसी प्रकार ( अस्य हरी ) इस सूर्य और अग्नि के हरणशील आकर्षण और वेग दोनों गुण जो ( विपक्षसा ) विविध यन्त्रकला जलचक्रादि को पार्श्वों पर धारण करने में समर्थ, ( काम्या ) उत्तम इच्छा योग्य, ( शोणा ) गतिप्रद, दृढ़, बहुत मनुष्यों को उठाकर लेजाने में समर्थ हैं उनको ( रथे युञ्जन्ति ) विद्वान् शिल्पी रथ आदि यानों में लगावें । राजा के पक्ष में—इस राजा के रथ में कामनानुकूल गति करने वाले दोनों बाजू पर दृढ़ अश्वों को नियुक्त करते हैं ।

केतुं कृण्वन्नकेतवे पेशो मर्या अपेशसे ।
समुषद्भिरजायथाः ॥ ३ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे राजन् ! हे विद्वन् ! हे (मर्याः) मनुष्यो ! तू (अकेतवे) अज्ञानी के अज्ञान को नाश करने के लिये उसको (केतुम्) विशेष ज्ञान और ( अपेशसे ) सुवर्णादि रहित धनहीन पुरुष के दारिद्र्य को नाश करने के लिये (पेशः) सुवर्णादिधन (कृण्वन्) प्रदान करता हुआ (उषद्भिः)

सूर्य जिस प्रकार उषाकालों सहित उदय को प्राप्त होता है उसी प्रकार ( उषद्भिः ) प्रजा के अज्ञान और पाप दोषों को नष्ट कर डालने वाले विद्वान् और वीर पुरुषों सहित ( अजायथाः ) सामर्थ्यवान् प्रबल और प्रसिद्ध हो। हे ( मर्याः ) मनुष्यो ! आप लोग भी उसका सत्संग करो। सूर्य के पक्ष में—सूर्य रात्रि में सोते हुए अचेत को प्रातः सचेत करता और अन्धकार में रूपरहित पदार्थ को पुनः रूप प्रदान करता है। अध्यात्म में-हे जीव तू (अकेतवे) केतु अर्थात् ज्ञान रहित देह को ज्ञानवान् और ( अपेशासे पेशः कृण्वन् ) रूप रहित प्राणों को रूपवान् करता हुआ ( उषद्भिः सम् अजायथाः ) प्राणों के सहित देहवान् होकर प्रकट होता है।

आदह स्वधामनु पुनर्गर्भत्वमेरिरे।
दधाना नाम यज्ञियम् ॥ ४ ॥

भा—( आत् अह ) सूर्य ताप के अनन्तर ही ( स्वधाम् अनु ) जल को प्राप्त करके, अथवा अपनी धारण शक्ति के अनुसार वायुएं ( पुनः ) बार २ ( गर्भत्वम् ) जल को ग्रहण करनेवाले स्वरूप को ( एरिरे ) प्राप्त करते हैं और उसी समय ( यज्ञियम् ) परस्पर मिलने या संयोग से उत्पन्न होने वाले ( नाम ) जल को भी धारण करते हैं। सूर्योत्ताप के बाद वायुगण अपने भीतर जल को धारण करने के सामर्थ्य के अनुसार, परस्पर संयोग से उत्पन्न जल को धारण कर लेते हैं वही दशा 'गर्भ' रूप कहाती है। वृष्टि आदि के पूर्व वायु जलों से गर्भित हो जाते हैं। अध्यात्म में— ( यज्ञियं नाम दधानाः ) परस्पर स्त्री पुरुष के रजोवीर्यांश के संयोग से उत्पन्न स्वरूप को धारण करते हुए प्राण गण ( स्वधाम् अनु ) स्वधा अर्थात् जीव के साथ ही उसके लिङ्ग शरीर सहित प्रविष्ट हो कर माता की कुक्षि में गर्भ रूप को प्राप्त होते हैं।

'स्वधा'—अन्ननामसु उदकनामसु च स्वधाशब्दः पठ्यते। स्वं दधाति इति वा।

वीळु चिदारुजत्नुभिर्गुहा चिदिन्द्र वह्निभिः ।
अविन्द उस्रिया अनु ॥ ५ ॥ ११ ॥

भा०—( आरुजत्नुभिः ) तोड़ फोड़ करनेवाले ( वह्निभिः ) बलवान्, उठाकर फेंकने वाले अग्नियों से जिस प्रकार ( वीलु चित् ) दृढ़, बलवान् दुर्ग को भी तोड़ डाला जाता है और ( गुहाचित् ) गुफा में जैसे ( उस्रियाः ) ऊपर निकलने वाले रत्न आदि पदार्थ प्राप्त किये जाते हैं उसी प्रकार (आरुजत्नुभिः) शत्रुओं का गढ़ तोड़ने वाले ( वह्निभिः ) सेना के मुख्य पदों को धारण करने वाले नायकों के साथ ( गुहाचित् ) पर्वतों के गुप्त भागों में भी ( वीलु ) दृढ़ता से ( उस्रियाः ) नाना ऐश्वर्य देनेवाली भूमियों, गौवों-प्रजाओं को भी ( अनु अविन्दः ) प्राप्त कर। आत्मा के पक्ष में—हे ( इन्द्र ) आत्मन्! अज्ञान के आवरणों को तोड़ने में समर्थ (वह्निभिः) शरीर के धारक प्राणों द्वारा ही ( वीळुचित्)अति दृढ़ता से तू ( गुहाचित् ) भीतरी पुरीतत् नाम गुहा में प्रवेश करके ( अनु ) अनन्तर ( उस्रियाः ) प्रकाशमय किरणों को प्राप्त कर। सूर्य के पक्ष में—( आरुजत्नुभिः ) छेदन भेदन, संयोग विभाग करने वाले वायुओं द्वारा (गुहाचित्) आकाश में ही गति उत्पन्न करके (उस्रियाः अनु ) किरणों से ही जलादि पदार्थों को धारण करता है [दया०]। अथवा—इन्द्र = विद्युत् ही वायुओं द्वारा(उस्रियाः) बह निकलने वाली जल-धाराओं को प्रकट करता है [ग्री०]। सूर्य अन्तरिक्ष में ( उस्रियाः ) दिनों को प्रकट करता है। [ मैक्स० ] विद्वान् के पक्ष में—अज्ञान का नाश करने वाले ( वह्निभिः ) अग्निस्वरूप आचार्यों से ( वीलु ) दृढ़ सत्य, ज्ञान प्राप्त कर हृदय गुहा में ज्ञान वाणियों को प्राप्त करता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

देवयन्तो यथा मतिमच्छा विदद्वसुं गिरः ।
महामनूषत श्रुतम् ॥ ६ ॥

भा०—विद्वान् पुरुष (यथा) जिस प्रकार से (देवयन्तः) देव, परमेश्वर की उपासना करना चाहते हैं उसी प्रकार ( गिरः ) स्तोता विद्वान् पुरुष (विदद्-वसुम्) ऐश्वर्य को प्राप्त कराने वाले, (मतिम्) मननशील, (महाम्) बड़े भारी ( श्रुतम् ) विद्वान्, बहुश्रुत, एवं प्रसिद्ध परमेश्वर की ( अनूषत ) स्तुति करते हैं।

इन्द्रे॑ण॒ सं हि दृक्ष॑से संजग्मा॒नो अबि॑भ्युषा ।
म॒न्दू स॑मा॒नव॑र्चसा ॥ ७ ॥

भा०—वायु जिस प्रकार सूर्य से युक्त होता है, दोनों समान रूप से तेजस्वी और हर्षजनक होते हैं उसी प्रकार हे वायु के समान तीव्र गति से शत्रु पर आक्रमण करने वाले निर्भय! (इन्द्रेण) शत्रुहन्ता सेनापति के साथ (संजग्मानः ) युक्त होकर ही (सं दिदृक्षसे)तू शोभा पाता है। तुम दोनों (समान वर्चसा ) समान रूप से, तेज को धारण करनेवाले और ( मन्दू ) सदा प्रसन्न और एक दूसरे को आनन्दित करने वाले हो । विद्वान् के पक्ष में— हे विद्वन् जीव ! तू ( अबिभ्युषा इन्द्रेण ) अभयस्वरूप आचार्य या परमेश्वर के साथ संगत होकर दीख रहा है। हे प्राणगण ! तू अभय आत्मा के साथ संगत है । दोनों समान तेजस्वी और एक दूसरे को आनन्दप्रद हों ।

अ॒न॒व॒द्यैर॒भिद्यु॑भिर्म॒खः सह॑स्वदर्चति ।
ग॒णैरिन्द्र॑स्य॒ काम्यैः॑ ॥ ८ ॥

भा०—( मखः ) यह महान् यज्ञ ही ( अनवद्यैः ) निन्दनीय दोषों से रहित, ( अभिद्युभिः ) खूब तेजस्वी, ( गणैः ) गणों सहित ( इन्द्रस्य ) शत्रुहन्ता सेनापति के ( सहस्वत् ) शत्रुपराजयकारी सामर्थ्य का (अर्चति) वर्णन करता है। सूर्य पक्ष में—(मखः) यह संसाररूप यज्ञ अति कामना योग्य, निर्दोष, त्रुटि रहित, अति तेजस्वी वायुगणों या किरणों से ही (इन्द्रस्य सहस्वत् ) सूर्य के बलयुक्त कार्य का वर्णन करता है । अध्यात्म में—शरीर का जीवन रूप यज्ञ ही आत्मा को प्रिय प्राणगणों सहित ( इन्द्रस्य ) जीव

के सर्वातिशायी स्वरूप का वर्णन करता है।

अतः परिज्मन्ना गहि दिवो वा रोचनादधि ।
समस्मिन्नृञ्जते गिरः ॥ ९ ॥

भा०—हे वायो! हे ( परिज्मन् ) सब दिशाओं में जाने में समर्थ! एवं सब पदार्थों को ऊपर नीचे फेकने में समर्थ! तू (दिवः) सूर्य के प्रकाश से ( वा) और (रोचनात् ) मेघमण्डल से (अधि आगहि) आ। (अस्मिन् ) इस तुझ में ही ( गिरः ) वाणियां ( सम् ऋञ्जते ) प्रकट होती हैं। जिस प्रकार वायु ही सब दिशाओं में बहता है, वही मेघों में विचरता है उसीके कारण मेघ गर्जनरूप अन्तरिक्षस्थ वाणियें प्रकट होती हैं। अध्यात्म में—हे सर्वत्र व्याप्त प्राण! तू (दिवः) मूर्धा भाग और ( रोचनात् ) अन्तःकरण से भी आता है। तेरे ही आश्रय पर कण्ठ की वाणियां प्रकट होती हैं। सेनापति के पक्ष में—हे ( परिज्मन् ) क्षत्रुक्षेप्तः, तू राजसभा या अपने ( रुचिकर) गृह से भी हमें प्राप्त हो। सब आज्ञाएं, या प्रजा की स्तुतियां तुझमें ही आश्रित हैं।

इतो वा सातिमीमहे दिवो वा पार्थिवादधि ।
इन्द्रं महो वा रजसः ॥ १० ॥ १२ ॥

भा०—(इतः) इस (पार्थिवात्) पृथिवी लोक से, (वा) और (दिवः) द्यौलोक से, (वा) और (रजसः) अन्तरिक्ष लोक से भी (महः) बड़े (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान् और उनके ) अधि ) ऊपर शासकरूप से विद्यमान् सूर्य को ही हम ( सातिम् ) सब पदार्थों के संयोग विभाग करने और प्रदान करने वाला ( ईमहे ) जानते हैं। इति द्वादशो वर्गः ॥

[ ७ ]

मधुच्छन्दा ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ गायत्र्यः । दशर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रमिद् गाथिनो बृहदिन्द्रमर्केभिरर्किणः ।
इन्द्रं वाणीरनूषत ॥ १ ॥

भा०—( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को ( इत् ) ही ( गाथिनः ) सामगान करनेहारे विद्वान् पुरुष गान करते हैं । ( अर्किणः ) अर्चना योग्य मन्त्रों और विचारों से युक्त विद्वान् पुरुष ( अर्केभिः ) अर्चनाओं और सत्य-भाषणादि व्यवहारों, शिल्पादि साधक कर्मों और वेदमन्त्रों से भी उस ( बृहत् इन्द्रम् ) महान् परमेश्वर की स्तुति या साधना करते हैं और विद्वान् पुरुष ( वाणीः ) वाणियों से भी (इन्द्रम् अनूषत) उस ईश्वर की स्तुति करते हैं ।

वाणीः—यजूरूपाभिरिति सायणः । वेदचतुष्टयीरिति दयानन्दः ।

इन्द्र इद्धर्योः सचा संमिश्ल आ वचोयुजा ।
इन्द्रो वज्री हिरण्ययः ॥ २ ॥

भा०—( इन्द्रः इत् ) वायु ही ( वचोयुजा ) वाणी या शब्द के साथ योग करने वाले ( हर्योः ) लाने और ले जाने के गुणों को ( सचा ) एक साथ ( संमिश्लः ) सब पदार्थों में युक्त करता है, उसी प्रकार (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् सूर्य भी ( वज्री ) संवत्सर और तप से युक्त और ( हिरण्ययः ) प्रकाश से युक्त है। राजा के पक्ष में—(वचोयुजा हर्योः सचा संमिश्लः इन्द्रः इत् ) वाणीमात्र से रथ में जुड़ जाने वाले, आज्ञाकारी घोड़ों से युक्त वह राजा ही है । और वही (वज्री) शक्तिशाली खड्ग धारण करता और तेजस्वी धन-सम्पन्न है। अध्याम में—वह जीव ही वाणी के साथ युक्त होकर प्राण और अपान से युक्त है । वही ( वज्री ) बलवान् और तेजस्वी है । परमेश्वर भी वेदवाणी से युक्त होने वाले गुरु शिष्यों को मिलाने वाला है । वही ( वज्री ) ज्ञान-मय और प्रकाशमय है ।

इन्द्रो दीर्घाय चक्षस आ सूर्यं रोहयद्दिवि ।
वि गोभिरद्रिमैरयत् ॥ ३ ॥

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ( दीर्घाय ) चिरकाल तक

( चक्षसे ) देखने के लिए ( दिवि ) प्रकाश के लिए, आकाश में ( सूर्यम् आरोहयत् ) सूर्य को स्थापित करता है। और वह सूर्य ( गोभिः ) किरणों से ( अद्रिम् ) मेघ को ( वि ऐरयत् ) विविध दिशाओं में गति देता है। राजा के पक्ष में—वह राजा दीर्घ दर्शन के लिए राजसभा में सबके ऊपर सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष को सभापतिरूप से स्थापित करे वह अपनी ( गोभिः ) वाणियों, आज्ञाओं से ( अद्रिम् ) अखण्ड शासक-गज को विशेष रूप से संचालन करे।

इन्द्र वाजेषु नोऽव सहस्रप्रधनेषु च।
उग्र उग्राभिरूतिभिः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! राजन्! तू ( नः ) हमें ( सहस्रप्रधनेषु ) सहस्रों, अनेक उत्तम धनों के देनेवाले (वाजेषु) संग्रामों में, हे ( उग्र ) सदा बलवान्, प्रचण्ड शक्तिमन्! तू ( उग्राभिः ) शत्रुओं को उद्वेग उत्पन्न करने वाले (ऊतिभिः) रक्षाकारी साधनों और रक्षाकारिणी सेनाओं से ( नः अव ) हमारी रक्षा कर।

इन्द्रं वयं महाधन इन्द्रमर्भे हवामहे।
युजं वृत्रेषु वज्रिणम् ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान्, परमेश्वर और शत्रुहन्ता राजाको (वयं) हम ( महाधने ) बड़े संग्राम में ( हवामहे ) बुलाते हैं। ( इन्द्रम् ) उसी शत्रुहन्ता को हम ( अर्भे ) छोटे युद्ध में भी स्मरण करते हैं। ( वृत्रेषु ) घेरनेवाले मेघों पर प्रकाशमान् सूर्य के समान ( वृत्रेषु ) नगरों को रोकने वाले शत्रुओं पर ( वज्रिणम् ) वज्र या शत्रुवारक घोर अस्त्रों को प्रयोग करने वाले ( युजम् ) सदा सहायक, प्रजा के स्नेही राजा को हम स्मरण करते हैं। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

स नो वृषन्नमुं चरुं सत्रादावन्नपा वृधि।
अस्मभ्यमप्रतिष्कुतः ॥ ६ ॥

भा०—हे (वृषन्) मेघ के समान सुखों के वर्षण करने हारे! हे (सत्रा-दावन्) हमारे अभीष्ट फलों को एक साथ ही देने वाले, अथवा मेघ के समान ही समस्त उत्तम फलों के दातः! तू सूर्य के समान (नः) हमारे लिए (अपावृधि) द्वार खोल दे, जिससे हमें ज्ञान प्रकाश प्राप्त हो। (सः) वह तू ही (अस्मभ्यम्) हमारे लिए (अप्रतिष्कुतः) कभी पराजित न होने वाला, वीर विजेता के समान अप्रकम्प रहने वाला है।

तुञ्जेतुञ्जे य उत्तरे स्तोमा इन्द्रस्य वज्रिणः।
न विन्धे अस्य सुष्टुतिम् ॥ ७ ॥

भा०—(वज्रिणः) अनन्त वीर्यवान्, सर्वशक्तिमान् (इन्द्रस्य) परमेश्वर के (तुञ्जे तुञ्जे) प्रत्येक दान को लक्ष्य करके (ये) जो (उत्तरे) उत्तम २ (स्तोमाः) स्तुति मन्त्र हैं उनसे अतिरिक्त (अस्य) उसकी (सुस्तुतिम्) और अधिक उत्तम स्तुति को मैं (न विन्धे) नहीं पाता।

वृषा यूथेव वंसगः कृष्टीरियर्त्योजसा।
ईशानो अप्रतिष्कुतः ॥ ८ ॥

भा०—(वृषा) वीर्य सेचन में समर्थ सांढ जिस प्रकार (यूथा इव) गो-समूहों को (ओजसा) अपने बल पराक्रम से (इयर्ति) प्राप्त होता है और वही जिस प्रकार (ओजसा) अपने पराक्रम से (कृष्टीः इयर्ति) क्षेत्र में हलादि के और मार्ग में रथ, शकट आदि के खींचने के कार्य करता है उसी प्रकार (वृषा) सुखों का वर्षक राजा और परमेश्वर (वंसगः) अति सेवनीय स्वरूप, मनोहर, एवं धर्मात्माओं को प्राप्त होने वाला होकर (ओजसा) अपने बल, पराक्रम से (कृष्टीः) मनुष्यों को (इयर्ति) प्राप्त होता, उनको संचालित करता है। और वही (अप्रतिष्कुतः) कभी प्रति-पक्षियों से विचलित न होने वाला, दृढ़ निश्चयी होकर (ईशानः) समस्त राष्ट्र को और जगत् का स्वामी है।

य एकश्चर्षणीनां वसूनामिरज्यति ।
इन्द्रः पञ्च क्षितीनाम् ॥ ९ ॥

भा०—( यः ) जो राजा ( एकः ) अकेला, ( वसूनाम् ) राष्ट्र में वसनेवाले ( पंच क्षितिनाम् ) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, निषाद, इन पांचों प्रकार के निवास करने वाले ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों के बीच में (इरज्यति) ऐश्वर्य भोगने में समर्थ है वह (इन्द्रः) राजा 'इन्द्र' कहाने योग्य है। परमेश्वरपक्ष में—जो पांचों पृथिवी आदि लोकों का स्वामी और ( एकः ) अकेला ही ( वसूनां चर्षणीनाम् इरज्यति ) निवासयोग्य लोकों और मनुष्यों को ऐश्वर्य प्रदान करने में समर्थ है ।

इन्द्रं वो विश्वतस्परि हवामहे जनेभ्यः ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥ १४ ॥ २ ॥

भा०—(जनेभ्यः) समस्त प्रजाजनों से (परि) ऊपर, सबसे उत्कृष्ट, ( विश्वतः ) सर्वत्र विद्यमान, ( इन्द्रम् ) राजा के समान परमेश्वर की हम ( हवामहे ) स्तुति करते हैं। वह ( केवलः ) एकमात्र अद्वितीय, मोक्षमय परमेश्वर ही (अस्माकम्, वः) हमारे और तुम्हारे कल्याणकारी (अस्तु) हो। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

इति द्वितीयोऽनुवाकः ॥

---

[ ८ ]

१-१० मधुच्छन्दा ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्र्यः । दशर्चं सूक्तम् ॥

एन्द्र सानसिं रयिं सजित्वानं सदासहम् ।
वर्षिष्ठमूतये भर ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! परमेश्वर ! तू सदा ( सान-

(सानसिम्) उत्तम रीति से सेवन करने योग्य, (सजित्वानम्) अपने बराबरी के शत्रुओं का विजय करने वाले ( सदासहम् ) सदा शत्रुओं को पराजित करने वाले और समस्त दुःखों के सहन कराने वाले, ( वर्षिष्ठम् ) अत्यन्त अधिक ( रयिम् ) धनैश्वर्य को हमारे ( ऊतये ) रक्षा के लिए ( आ भर ) प्राप्त करा।

('वर्षिष्ठम्'—वृद्धशब्दादतिशायने इष्ठन्। वर्षिरादेशः।)

नि येन मुष्टिहत्यया नि वृत्रा रुणधामहै।
त्वोतासो न्यर्वता ॥ २ ॥

भा०—( येन ) जिस ऐश्वर्य से हम लोग ( मुष्टिहत्यया ) मुक्कों की मार मार २ कर ही (वृत्रा) हमारे सुख सम्पदाओं को रोक लेनेवाले विघ्नकारी, शत्रुओं को ( नि रुणधामहै ) सर्वथा रोक दें और ( त्वोतासः ) हे राजन्! परमेश्वर! तेरे द्वारा सुरक्षित रहकर ही हम ( अर्वता ) अश्वबल से भी शत्रुओं को हम विनष्ट करें। वह धन हमें प्रदान कर। अर्थात् धन से, शरीर से बलवान् और युद्धोपयोगी सामग्री, रथ, अश्वादि में प्रबल होकर शत्रुओं को मार मार कर अपने देश से दूर रक्खें।

इन्द्र त्वोतास आ वयं वज्रं घना ददीमहि।
जयेम संयुधि स्पृधः ॥ ३ ॥ शत्रूनित्यर्थः

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुनाशक! राजन्! परमेश्वर! ( त्वा-उतासः ) तेरे अधीन सुरक्षित रहकर ( वयम् ) हम ( वज्रम् ) शत्रु के वरण करनेवाले शस्त्रास्त्र और ( घना ) उनको हनन करने वाले संहारकारी साधनों को ( आददीमहि ) हम ग्रहण करें। ( युधि ) युद्ध में हम ( स्पृधः ) स्पर्धा करने वाले शत्रुओं को ( जयेम ) विजय करें।

वयं शूरेभिरस्तृभिरिन्द्र त्वया युजा वयं।
सासह्याम पृतन्यतः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) सेनापते! राजन्! परमेश्वर! ( वयम् ) हम

( अस्तृभिः ) शस्त्रास्त्रों के फेंकने में कुशल ( शूरेभिः ) शूरवीर पुरुषों और ( त्वया युजा ) तुझ सहायक से युक्त होकर ( पृतन्यतः ) सेनाओं को बढ़ा कर युद्ध में आने वाले शत्रुओं को ( सासह्याम ) बराबर पराजित करें।

महाँ इन्द्रः परश्च नु महित्वमस्तु वज्रिणे।
द्यौर्न प्रथिना शवः ॥ ५ ॥ १५ ॥

भा०—( इन्द्रः ) समस्त जगत् का राजा, सर्वैश्वर्यवान्, परमेश्वर और शत्रुहन्ता राजा ही ( महान् ) बड़ा है और वही ( परः चन ) सबसे बढ़कर सर्वोत्कृष्ट है। ( वज्रिणे ) न्यायानुसार दण्ड बल से युक्त वीर्यवान् पुरुष को ही ( महित्वम् ) पूजनीय बड़प्पन का पद ( अस्तु ) प्राप्त हो। वह ही ( प्रथिना ) अति विस्तृत ( शवः ) बल से ( द्यौः न ) सूर्य और आकाश के समान महान् और सर्वोपरि है। उसको ही ( शवः ) बल और ज्ञान भी प्राप्त हो।

समोहे वा य आशत नरस्तोकस्य सनितौ।
विप्रासो वा धियायवः ॥ ६ ॥

भा०—( ये ) जो ( नरः ) नेता पुरुष (समोहे) संग्राम में (आशत) लगे रहते हैं ( वा ) और जो लोग ( स्तोकस्य ) पुत्र, पौत्र आदि सन्तानों के ( सनितौ ) प्राप्त करने में गृहस्थ होकर लगे रहते हैं ( वा ) और जो ( धियायवः ) विज्ञान को प्राप्त करने और गुरुओं से ज्ञान लाभ करने के इच्छुक, (विप्रासः) मेधावी पुरुष हैं वे सब भी आदर के योग्य हैं। अर्थात् संग्राम विजयी, वीर क्षत्रिय, पुत्रवान् गृहस्थ और ज्ञानवान् ब्रह्मिष्ठ विद्वान् तीनों समानरूप से आदरणीय हैं।

यः कुक्षिः सोमपातमः समुद्र इव पिन्वते।
उर्वीरापो न काकुदः ॥ ७ ॥

भा०—( यः ) जो सूर्य के समान ( कुक्षिः ) समस्त पदार्थों द्वारा भाग रस को ले लेने में समर्थ है, जो (सोमपातमः) मेघ के समान उत्तम

उत्तम ऐश्वर्य का सबसे उत्तम पालक, एवं सोम अर्थात् राजपद का पालक, अथवा उपभोक्ता जल का ग्रहणकर्त्ता होकर (समुद्रः इव) जलों को बरसा देने वाले अन्तरिक्ष या मेघ या सूर्य के समान ही प्रजाओं पर (काकुदः) शब्द पूर्वक वर्षण करने वाले मेघ के समान ( उर्वीः ) पृथिवियों, उन पर बसने वाली प्रजाओं पर (आपः) और प्राप्त करने योग्य पदार्थों को या जलधाराओं के समान आप्तों का ( पिन्वते) सेवन करता है वही राजा आदरयोग्य है। अथवा—( आपः ) प्राणगण जिस प्रकार ( काकुदः ) वाणियों को सेवन करते हैं और जिस प्रकार (सोमपातमः) सर्व पदार्थों का रक्षक सूर्य या जल ग्रहण करने वाला मेघ ( उर्वीः ) पृथ्वियों को सींचता है उसी प्रकार जो राजा प्रजाओं को बढ़ाता है वह आदरयोग्य है।

एवा ह्यस्य सूनृता विरप्शी गोमती मही।
पक्वा शाखा न दाशुषे ॥ ८ ॥

भा०—पृथ्वी के समान वेदवाणी का वर्णन–( अस्य ) इस परमेश्वर की ( एव ही ) ही निश्चय से ( सूनृता ) उत्तम ज्ञान को प्रकाशित करने वाली, प्रिय और सत्य प्रकाशक अथवा अप्रियों को नाश करनेवाली सत्यमयी वाणी (विरप्शी) विविध विद्याओं का उपदेश करनेवाली, अति विस्तृत, ( गोमती) नानाविध वेदवाणियों से युक्त (मही) सर्वाश्रय पृथ्वी के समान ही पूजनीय है। वह ( दाशुषे ) दानशील, एवं दूसरों को ब्रह्मविद्या का प्रदान करनेवाली गुप्त और अपने को भक्तिश्रद्धापूर्ण शिष्य रूप से सौंप देने वाले, नित्य विद्याभ्यासी पुरुष के लिए (पक्वा शाखा न) पके फलों से लदी वृक्ष की शाखा के समान नाना सुखप्रद होती है। पृथ्वी के पक्ष में—वह राजा की पृथिवी (सूनृता) उत्तम अन्न और जल से युक्त, (विरप्शी) विविध पदार्थों की दात्री, अतएव बड़ी भारी, (गोमती ) गौ आदि पशुओं से समृद्ध, ( मही ) पृथिवी है। वह ( दाशुषे ) भूमि में बीजवपन करने वाले, एवं राजा को कर आदि देने वाले, या ध्यान और मनोयोग देने वाले उद्योगी

पुरुष को (पक्का शाखा न) पके फलों से लदी शाखा के समान सदा परिपक्व धान्यसम्पदों से युक्त होकर उसे नाना भोग्य सुख प्रदान करती है।

'सूनृता'—सुष्ठु ऋतं यस्या सा। ऋतमिति उदकान्नजलज्ञानादिनामसु पठितम्। सुतरामूनयति अप्रियम् इति सून्, सा चासौ ऋता सत्या चेति सुनृता प्रिया सत्यावागिति सायणः।

'विरप्शी'—महन्नामसु विरप्शी इति पठितम्। विविधं रपणं विरप् तदेषामस्तीति विरप्शानि वाक्यानि। तानि यस्यां वाचि सा विरप्शी। अत इनि-ठनावितीनिः। ङीप्। नलोपश्छान्दसः। इति सायणः।

एवा हि ते विभूतय ऊतय इन्द्र मावते।
सद्यश्चित्सन्ति दाशुषे॥ ९॥

भा०—(एव) निश्चय से, हे (इन्द्र) ईश्वर! (ते विभूतयः) तेरी ये विविध ऐश्वर्यों से युक्त विभूतियां सब (मावते) मेरे जैसे (दाशुषे) अपने को आत्मसमर्पण कर देने वाले जीव की (ऊतये) रक्षा के लिए उसके व्यवहार साधन, ज्ञानवर्धन और ऐश्वर्य बढ़ाने के लिए ही (सद्यः चित्) सदा ही, तुरन्त (सन्ति) हो जाती है। राजा के पक्ष में—हे राजन्! ये तेरे समस्त ऐश्वर्य अपने के तेरे अधीन सौंपनेवाले मुझ जैसे प्रजाजन की रक्षा आदि के लिए ही हैं।

'ऊतये'—रक्षणाद्यर्थस्यावतेरूतिर्निपातनात्।

एवा ह्यस्य काम्या स्तोम उक्थं च शंस्या।
इन्द्राय सोमपीतये॥ १०॥ १६॥

भा०—(अस्य) इस परमेश्वर के वर्णन करने वाले (एवा हि) ही (काम्या) मनोहर (शंस्या) और स्तुति करने योग्य (स्तोमः उक्थं च) मन्त्र समूह और सूक्त हैं। (सोमपीतये) सोम, अर्थात् जगत् के पदार्थों को अपने वश में लेने हारे (इन्द्राय) परमेश्वर्यवान् परमेश्वर के गुण वर्णन के लिए ही उनका उच्चारण करो। राजा के पक्ष में—राजा के ही (स्तोमाः

उक्थं च ) उत्तम स्तुत्य पदाधिकार या बल वीर्य के कार्य, आज्ञाएं और दण्डविधान उत्तम स्तुति योग्य हैं। वे ही ( सोमपीतये इन्द्राय ) राष्ट्र के भोग करने वाले राजा के योग्य हैं।

[ ९ ]

१-१० मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। गायत्र्यः। दशर्चं सूक्तम्॥

इन्द्रेहि मत्स्यन्धसो विश्वेभिः सोमपर्वभिः।
महाँ अभिष्टिरोजसा॥ १॥

भा०—हे ( इन्द्र ) सूर्य के समान तेजस्विन्! परमेश्वर! सूर्य जिस प्रकार ( विश्वेभिः ) समस्त ( सोमपर्वभिः ) चन्द्र के पर्वों से और ( अन्धसः ) अन्धकार के नाश करने वाले प्रकाश से प्रतिदिन आता है और समस्त प्राणियों के हर्ष का कारण होता है और जैसे सूर्य ( ओजसा) तेज से (अभिष्टिः) सर्वत्र व्यापक और (महान्) बड़े भारी सामर्थ्यवाला है उसी प्रकार परमेश्वर ( विश्वेभिः सोमपर्वभिः ) समस्त उत्पन्न पदार्थों और प्राणियों के पोरु पोरु में स्थित नाना उत्पादक और प्रेरक सामर्थ्यों से, अथवा समस्त प्रेरक और उत्पादक सामर्थ्य और पालन सामर्थ्यों से और ( अन्धसः ) सबको प्राण धारण करानेवाले अन्न और पृथिवी आदि तत्त्वों से (मत्सि) सबको प्रसन्न, आनन्दित और तृप्त करता है वह तू (आ इहि) आ, हमें प्राप्त हो, हम ज्ञान-विज्ञान के रहस्यों के साथ तेरी अद्भुत शक्तियों के साथ तुझे प्राप्त करें। तू ( ओजसा ) अपने बल पराक्रम और सकल संसार के धारण करने वाले व्यापक तेज से ( अभिष्टिः ) सब पदार्थों के अणु अणु में व्यापक होकर ( महान् ) बड़े भारी सामर्थ्यवान् है।

अन्धसः—'अन्धकार रूपस्यान्यायस्य निवर्त्तकम्' अथवा 'अधर्माचरणस्य नाशकम्' इति दया० यजुर्भाष्ये ( १९। ७५। ७७ )।

राजा के पक्ष में—हे राजन् ! तू ( सोमपर्वभिः ) सोम राज्य के अंग प्रत्यंगों से ( अन्धसः ) अन्याय और अधर्माचरण के नाशक बल और व्यवस्था तथा अन्नादि सम्पत्ति से सबको तृप्त आनन्दित, और प्रसन्न करता है और ( ओजसा ) बल पराक्रम से सबको सन्मार्ग व्यवस्था को जनाने हारा और सब शत्रुओं का पराजयकारी होकर (महान्) बड़ा सामर्थ्यवान् है।

एमेनं सृजता सुते मन्दिमिन्द्राय मन्दिने ।
चक्रिं विश्वानि चक्रये ॥ २ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (ईम् एनं आ सृजत ) इस अग्नितत्त्व और जलतत्त्व को नाना प्रकार से प्रकाशित करो और साधो । ( सुते ) उत्पन्न हो जाने पर ( मन्दिम् ) हर्षदायक ( चक्रिम् ) क्रिया उत्पन्न करने वाले इस अग्नितत्त्व, विद्युत् को ( विश्वानि ) समस्त कार्यों और पुरुषार्थों के ( चक्रये ) करने हारे ( इन्द्राय ) ऐश्वर्य के इच्छुक जीव के सुख के लिए करो । राजा के पक्ष में—( ईम् एनम् ) इस समस्त ऐश्वर्यमय, ( चक्रिम् ) सबको नाना सम्पदाओं से प्रसन्न और तृप्त करने वाले ( चक्रिम् ) सब कार्यों के करनेवाले राष्ट्र चक्र को (सुते) अभिषेककाल में ( मन्दये विश्वानि चक्रये ) सबके प्रसन्न करनेवाले सब राष्ट्र कार्यों के सम्पादन में समर्थ पुरुष के हाथों ( आ सृजत ) प्रदान करो । अध्यात्म में—समस्त विश्व को बसानेवाला आनन्दस्वरूप परमेश्वर, इन्द्र, मन्दी और चक्री हैं उसको प्रसन्न करने के लिए ज्ञान में मन्द, कर्मकर्त्ता और भोक्ता जीव भी मन्दी और चक्री है । उसको ( आ सृजत ) उस परमेश्वर पर वार दो, न्योछावर कर दो ।

मत्स्वा सुशिप्र मन्दिभिः स्तोमेभिर्विश्वचर्षणे ।
सचैषु सवनेष्वा ॥ ३ ॥

भा०—हे (सुशिप्र) उत्तम ज्ञानवन् ! सूर्य के समान उत्तम प्रकाश-स्वरूप ! हे (विश्वचर्षणे) समस्त संसार के द्रष्टः ! समस्त विश्व को अपने भीतर आकर्षण करने या संचालन करनेहारे परमेश्वर ! तू ( मन्दिभिः ) सबको

हर्षित करने वाले (स्तोमेभिः) अपने गुणों के प्रकाशक वेद के स्तुति वचनों से (एषु सवनेषु) इन ऐश्वर्यों में, या ध्यान वन्दनादि में, अथवा जगत् सर्गों में विद्यमान हमको ( मत्स्व ) हर्षित कर। आत्मपक्ष में—हे ज्ञानवन् ! आत्मन् ! हे ( विश्वचर्षणे ) विश्वरूप परमेश्वर के देखनेहारे ! ज्ञानवन् ! तू (एषु सवनेषु सचा) इन सब सर्गों में विद्यमान अपने आपको ( मन्दिभिः स्तोमैः ) आत्मानन्द के उत्पादक ईश्वर स्तुतियों से अपने आपको हर्षित रख। राजा के पक्ष में—हे उत्तम बलशालिन् ! राष्ट्र के देखनेहारे ! (एषु सवनेषु) इन अभिषेक कार्यों में या ऐश्वर्यों के हर्षजनक स्तुति वचनों से प्रसन्न हो। एवं ( स्तोमैभिः ) नाना आज्ञा और अधिकार दोनों से हम अधीनस्थों को प्रसन्न कर।

असृ॑ग्रमिन्द्र ते॒ गिरः॒ प्रति॒ त्वामुद॑हासत ।
अजो॑षा वृष॒भं पति॑म् ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( ते ) तेरी ( गिरः ) वेदवाणियां ( वृषभम् ) समस्त सुखों के वर्षक ( पतिम् ) सबके पालक (त्वाम् प्रति) तुझको ही ( उत् अहासत ) सर्वोच्च बतलाती हैं। तूही उनको (अजोषाः) स्वयं सेवन करता, अर्थात् उनकी यथार्थता का विषय है। अतः मैं भी उनको (त्वाम् प्रति असृग्रम्) तेरे ही स्तुतिवर्णन के लिए प्रयोग करता हूं। राजा के पक्ष में—हे राजन् ! तेरी आज्ञाएं तुझ पालक के ही महत्व को बतलाती हैं, उन ही को तू चाहता है। तेरे लिए उनको ही मैं ( असृग्रम् ) अन्यत्र प्रकट करूँ और कार्य में लाऊँ।

सं चो॑दय चि॒त्रम॒र्वाग्राध॑ इन्द्र॒ वरे॑ण्यम् ।
अस॒दित्ते॑ वि॒भु प्र॒भु ॥ ५ ॥ १७ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् राजन् ! परमेश्वर ! तू ( वरेण्यम् ) वरण करने योग्य, अति श्रेष्ठ (चित्रम्) सञ्चय करने योग्य, चक्रवर्ती राज्य, विद्या, मणि, सुवर्ण, हाथी आदि सम्पत्ति को हमें (सं चोदय) प्रदान कर। (ते)

तेरा ( विभु ) व्यापक, सर्वत्र नाना सुखप्रद और ( प्रभु ) उत्तम प्रभाव-जनक सामर्थ्य ( असत् ) है। इति सप्तदशो वर्गः ॥

अस्मान्त्सु तत्र चोदयेन्द्र राये रभस्वतः।
तुविद्युम्न यशस्वतः ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ईश्वर ! हे ( तुविद्युम्न ) बहुतसे ऐश्वर्यों के स्वामी! एवं राजन् ! तू ( रभस्वतः ) कार्य करने के सामर्थ्यवान् ( अस्मान् ) हम ( यशस्वतः ) यशस्वी एवं बलवीर्य से सम्पन्न पुरुषों को ( राये ) ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिए ( सुचोदय ) उत्तम मार्ग में चला।

सं गोमदिन्द्र वाजवदस्मे पृथु श्रवो बृहत्।
विश्वायुर्धेह्यक्षितम् ॥ ७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( अस्मे ) हमें ( गोमत् ) उत्तम वाणी, गौ आदि पशु और पृथ्वी से युक्त, ( वाजवत् ) अन्न, ऐश्वर्य और ज्ञान से युक्त ( पृथु ) विस्तृत, ( बृहत् ) बड़े भारी ( अक्षितम् ) अक्षय ( श्रवः ) यश और धन और ( विश्वायुः ) पूर्ण आयु १०० सौ वर्षों की और उससे भी अधिक द्विगुण, त्रिगुण आयु ( सं धेहि ) प्रदान कर।

अस्मे धेहि श्रवो बृहद् द्युम्नं सहस्रसातमम्।
इन्द्र ता रथिनीरिषः ॥ ८ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! हे राजन् ! ( अस्मे ) हमें और हमारी रक्षा के लिए ( बृहत् श्रवः ) बड़ा भारी अन्न और ( सहस्र-सातमम् ) सहस्रों को, और सहस्रों सुखोपभोग देने में भी अति अधिक ( शुभम् ) ऐश्वर्य और ( रथिनीः ) रथादि चतुरंग ( ताः ) नाना ( इषः) आज्ञावर्तिनी सेनाएं ( धेहि ) प्रदान कर और राष्ट्र में रख, उनको पालन पोषण कर।

वसोरिन्द्रं वसुपतिं गीर्भिर्गृणन्त ऋग्मियम्।
होम गन्तारमूतये ॥ ९ ॥

भा०—( वसोः ) समस्त बसनेहारे प्रजाजन और उनके निवास हेतु ऐश्वर्य के स्वामी, ( ऋग्मियम् ) ऋचाओं, वेदमन्त्रों के बनानेहारे या उनके प्रतिपाद्य ( गन्तारम् ) ज्ञानवान् , सर्वव्यापक परमेश्वर की ( गीर्भिः गृणन्तः) वाणियों से स्तुति करते हुए (ऊतये) रक्षा और ज्ञानप्राप्ति के लिए ( होम ) स्तुति करते हैं। राजा के पक्ष में—ऐश्वर्यों और प्रजाओं के पालक ( ऋग्मियम्) ऋचाएं, वेदमन्त्रों के ज्ञाता विद्वान् और ( गन्तारम् ) शत्रुओं पर चढ़ाई करनेहारे को हम ( गीर्भिः गृणन्तः ) नाना वाणियों से स्तुति या उपदेश करते हुए ( होम ) स्वीकार करें।

सुतेसुते न्योकसे बृहद् बृहत एदरिः ।
इन्द्राय शूषमर्चति ॥ १० ॥ १८ ॥

भा०—( अरिः इत् ) शत्रु भी ( सुते सुते ) प्रत्येक अभिषेक में ( नि ओकसे ) नियत स्थान बनाकर रहनेवाले दृढ़ दुर्ग के स्वामी (बृहते) अपने से शक्ति में बड़े ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् राजा और सेनापति के बृहत् ( शरणम् ) बड़े भारी बल का ( अर्चति ) आदर करता है। उसके आगे सिर झुकाता है। परमेश्वर के पक्ष में—( अरिः ) सुखों का लिप्सु पुरुष ( सुते सुते) प्रत्येक उत्पन्न पदार्थ या प्रत्येक ऐश्वर्य के प्राप्ति में उस महान् परमेश्वर के महान् बल की बड़ी स्तुति करता है। अथवा ( बृहत् शूषम् ) उसके निमित्त बड़े भारी सुखों को (अर्चति) उसके प्रति समर्पित करता है।

'अरिः'—ऋच्छति गृह्णाति अन्यायेन इत्यरिः, ऋच्छति सुखानि च यः सोऽरिः इति दया०। इयर्त्ति गच्छति अनुष्ठेयकर्म इति अरिःर्यजमानः इति सायणः। इत्यष्टादशो वर्गः।

[ १० ]

मधुच्छन्दा ऋषिः। इन्द्रो देवता। १–३, ५, ६, ७, ६–१२ अनुष्टुभः॥ भुरिगुष्णिक् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

गायन्ति त्वा गायत्रिणोऽर्चन्त्यर्कमर्किणः ।
ब्रह्माणस्त्वा शतक्रत उद्वंशमिव येमिरे ॥ १ ॥

भा०—(गायत्रिणः) गायत्र, साम के गान करनेहारे गायकजन (त्वा) तेरा ही ( गायन्ति ) गान करते हैं। ( अर्किणः ) वेदमन्त्रों के ज्ञाता जन भी ( अर्क त्वा ) अर्चना करने योग्य तेरी ही (अर्चन्ति) अर्चना पूजा करते हैं। हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्मों के करने और विज्ञानों के जाननेहारे परमेश्वर! ( ब्रह्माणः ) वेदज्ञ विद्वान् ब्राह्मणजन भी ( वंशम् इव ) वंश अथवा ध्वजा दण्ड के समान ( त्वा ) तुझको ही ( उद्येमिरे ) उत्तम पद पर नियत करते हैं। सबसे ऊँचे पद पर राजा के समान तुझे ही सर्वोपरि मानते हैं।

'अर्कम्'—अर्को देवो भवति यदेनमर्चन्ति। अर्को मन्त्रो भवति यदनेनार्चति अर्कमन्नं भवति अर्चति भूतानि। अर्को वृक्षो भवति संवृतः कटुकिम्नेति। निरु० ५।४॥ राजा को भी, गायक गाते, स्तुति कर्त्ता स्तुति करते, विद्वान् जन ध्वजा के समान उच्च पद पर बैठाते हैं। ध्वजा राजा और उपास्य देव दोनों का प्रतिनिधि है।

यत्सानोः सानुमारुहद्भूर्यस्पष्ट कर्त्वम् ।
तदिन्द्रो अर्थं चेतति यूथेन वृष्णिरेजति ॥ २ ॥

भा०—( यत् ) जिस प्रकार मनुष्य जब (सानोः) एक पर्वत शिखर से ( सानुम् ) दूसरे पर्वत शिखर पर ( आरुहत् ) चढ़ता है तब वह और ( भूरि ) बहुत से कर्तव्य करने योग्य कार्यों को और जाने योग्य स्थानों को दूर दूर तक ( अस्पष्ट ) देख सकता है। ( तत् ) उसी प्रकार ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर भी ( अर्थम् ) प्राप्त होने योग्य समस्त पदार्थों को ( चेतति ) सर्वोपरि होने से जानता है। ( वृष्णिः ) वर्षण करने वाला मेघ जिस प्रकार ( यूथेन ) वायुगण से भी प्रेरित होकर आगे बढ़ता है उसी प्रकार वह परमेश्वर भी समस्त काम्य सुखों का वर्षण करनेहारा

होकर ( यूथेन ) सुख प्रदान करने वाले समस्त साधनों से ( राजति ) संसार को चलाता है । । सूर्य के पक्ष में—जब सूर्य पर्वत से पर्वतान्तर के शिखर पर चढ़ता है तो ही वह बहुत से कार्यों को प्रकाशित करता है और वही ( वृष्णिः ) वर्षणशील मेघ होकर वायुगणों सहित आकाश में गति करता है । अथवा 'वृष्णिः' संवत्सर होकर ऋतुगण सहित गति करता है । राजा के पक्ष में—पर्वतों पर पद से पदान्तर पर चढ़कर वह बहुत से विजेतव्य देशों को देखता है । कर्त्तव्य कर्म पर विचार करता है । और बलवान् शस्त्रवर्षी होकर सेनायूथसहित प्रयाण करता है । अध्यात्म में—कुण्डलिनी प्रबोध के अवसर पर मेरु दण्ड में एक पोरु से दूसरे पोरु को चढ़ता हुआ अथवा एक मानस भूमि से दूसरी भूमि को पहुंचते हुए बहुत से लोकोत्तर कर्मों का साक्षात् करता है और तब प्राप्य अर्थ, परमपद को जानता है और धर्ममेघ में सुखवर्षी मेघ के समान आनन्दघन होकर प्राणगण सहित उत्क्रमण करता है ।

युक्ष्वा हि केशिना हरी वृषणा कक्ष्यप्रा ।
अथा न इन्द्र सोमपा गिरामुपश्रुतिं चर ॥ २ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! प्रकाशस्वरूप ! ( केशिना हरी ) जिस प्रकार कोई तेजस्वी राजा अपने दो अयाल वाले, बलवान्, कोखों पर भरे पूरे हुए हृष्ट-पुष्ट ( वृषणा कक्ष्यप्रा ) घोड़ों को रथ में जोड़ता है उसी प्रकार तू भी ( केशिना ) प्रकाशयुक्त किरणरूप केशों वाले ( हरी ) व्यापनशील ( वृषणा ) वृष्टि के करानेवाले ( कक्ष्यप्रा ) सब पदार्थों के अवयव अवयव में व्याप्त, धन व ऋण दोनों बलों को ( युक्ष्वा हि ) निश्चय से जोड़ता है । ( अथ ) और हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! विद्युत् के समान व्यापक ! हे ( सोमपाः ) प्रेरक बल और ऐश्वर्य के पालक ! तू ( गिराम् ) वाणियों की ( उपश्रुतिम् ) श्रवण ( चर ) कर ।

एहि स्तोमाँ अभि स्वराभि गृणीह्या रुव ।

ब्रह्म च नो वसो सचेन्द्र यज्ञं च वर्धय ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वन् ! हे परमेश्वर ! ( आ इहि ) आ, हमें प्राप्त हो । हे ( इन्द्र ) वाणी के प्रदान करनेहारे ज्ञानप्रद गुरो ! ( स्तोमान् ) वेदमन्त्र समूहों को ( अभिस्वर ) साक्षात् ज्ञान करा । ( अभि गृणीहि ) सन्मुख साक्षात् उपदेश कर । ( आ रुव ) प्रतिपद की व्याख्या कर । हे ( वसो ) समस्त भूत में निवास करने वाले और सबको अपने में बसानेहारे एवं ब्रह्मचारियों को अपने कुल में बसानेहारे, मेघ के समान ज्ञानप्रद गुरो ! ( नः ) हमारे ( ब्रह्म च ) ब्रह्म अर्थात् वेदज्ञान और ब्रह्मचर्य की (सचा) और ( यज्ञं च ) यज्ञ कर्म और परस्पर मिलके करने योग्य वेदाध्ययन रूप यज्ञ एवं आत्मा के बल और ईश्वरोपासना को भी (वर्धय) बढ़ा । अध्यात्म में—(वसो) आत्मन् ! (स्तोमान् अभि स्वर) प्राण समूहों के प्रति आ, गति कर, ज्ञान कर । ( ब्रह्म च यज्ञं च वर्धय ) बल और जीवन की वृद्धि कर ।

'वसो'—स एषोऽग्निरत्र वसुः । श० ९ । ३ । २ । २॥ वायुर्वै वसुरन्तरिक्षसत् । श० ६ । ७ । ३ । ११ ॥ एष (सूर्यः) वसुरन्तरिक्षसत् । ऐ० ४ । २० ॥ वसोर्धारायै अभ्रमूधः । श० ९ । ३ । १५। विद्युत्स्तनः । मेघपक्ष में—हमारे ( ब्रह्म च यज्ञं च ) अन्न और जीवन दोनों को बढ़ा ।

उक्थमिन्द्राय शंस्यं वर्धनं पुरुनिष्षिधे ।
शक्रो यथा सुतेषु णो रारणत्सख्येषु च ॥ ५ ॥

भा०— ( पुरु-निष्षिधे ) अनेक शास्त्रों को ज्ञान करने हारे अथवा अनेक अज्ञान आदि दोषों को दूर करने में समर्थ ( इन्द्राय ) ज्ञानवाणी का उपदेश करने वाले आचार्य को प्रसन्न करने के लिए ( वर्धनम् ) मान आदर के बढ़ाने वाले ( उक्थम् ) वचन ( शंस्यम् ) कहने योग्य है । ( यथा ) जिससे वह (शक्रः) ज्ञानवाणी में रमण करने वाला अथवा याचनानुसार फल देने वाला आचार्य ( नः ) हमारे ( सख्येषु ) मित्रों, समान रूप से नाम, यश को धारण करने वाले, पुत्र, स्त्री, भृत्य, बन्धुओं में और

( नः सुतेषु च ) हमारे पुत्रों में भी (रारणत्) बराबर उत्तम उपदेश करे। राजा के पक्ष में—बहुत से शत्रुओं के मारक राजा को बढ़ोतरी देने वाले वचन कहे जिससे वह शक्तिमान् हमारे मित्रों और पुत्रों पर अनुग्रह करे। अथवा—( यथा नः तुचे सख्येषु रारणत् ) जैसे कोई गुरु पुत्रों और मित्रों को उपदेश करता है उसी प्रकार ( शक्रः ) शक्तिशाली ज्ञानप्रद परमेश्वर ( इन्द्राय ) जीव को (वर्धनं उक्थं शंस्यं रारणत्) ज्ञानवर्धक स्तुति योग्य ज्ञान वेद का उपदेश करता है।

'शक्रः'—शक्नोति यः स शक्रः। शकेरक् औणादिकः। शग्धि इति याञ्चाकर्मा पठ्यते निघ०। शक विभाषितो मर्षणे दिवादिः। शक्लृ शक्तौ स्वादिः। शच व्यक्तायां वाचि। शचीति वाक्प्रज्ञाकर्मनामसु। तां राति ददाति इति शक्रः। शक्रः समर्थ, उपदेशको, वाग्मिप्रदो, याचितप्रदः, सहनशील इत्यादयः शक्रार्थाः। अथवा—

तमित्संखित्व ईमहे तं राये सुवीर्यै।
स शक्र उत नः शकदिन्द्रो वसु दयमानः ॥ ६ ॥ १९ ॥

भा०—( तम् इत् ) उसको हम ( सखित्वे ) अपना मित्र होने के लिए ( ईमहे ) प्रार्थना करते हैं। ( तं राये ) और उसी से ऐश्वर्य प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं। (सुवीर्ये) उत्तम वीर्य, बल प्राप्त करने के लिए भी ( तम् ) उसीसे प्रार्थना करते हैं। और ( सः ) वही ( शक्रः ) 'शक्र' कहाता है जो हमारे याचित फलप्रदान करता है ( उत ) और जो (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् होकर ( दयमानः ) दान देता हुआ, रक्षा करता हुआ, शत्रुओं का नाश करता हुआ, सबको शरण में लेता हुआ ( नः ) हमें ( वसु शकत् ) सुख से बसने योग्य धन प्रदान करता है।

'शक्रः'—दयमानो यो नो वसु दातुम् शकत् स शक्र इति वेदाभिप्रायः।

सुविवृतं सुनिरजमिन्द्र त्वादातमिद्यशः।
गवामप व्रजं वृधि कृणुष्व राधो अद्रिवः ॥ ७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( सुविवृतम् ) सुखपूर्वक अच्छी प्रकार विकसित, एवं फैला हुआ और ( सु-निरजम् ) अच्छी प्रकार सर्वत्र व्याप्त ( यशः ) जल के समान अन्न, बल और ज्ञान ( त्वादातम् इत् ) तेरा ही शोधा हुआ, या प्रकाशित, या प्रदान किया हुआ है । अर्थात् जिस प्रकार समस्त ( यशः ) जल या अन्न सूर्य द्वारा ही परिशोधित होता है उसी प्रकार समस्त ( यशः ) कर्म फल और ज्ञान परमेश्वर द्वारा ही प्रदत्त एवं प्रशस्त है । वह भी व्यापक जल के समान सुप्रकट, सुविस्तृत है। हे ईश्वर! हे गुरो ! ( गवाम् व्रजम् ) जैसे कोई गवाला गौओं के बाड़े को खोल दे तो गौएँ बहुत प्राप्त होती हैं उसी प्रकार हे प्रभो ! गुरो ! (गवां व्रजम्) सूर्य के किरण समूहों के समान ज्ञानवासियों के समूह को ( अप वृधि ) खोल दे, उनके आवरण को दूर करके प्रकट कर । और हे ( अद्रिवः ) मेघों से युक्त जिस प्रकार जल प्रदान करता है उसी प्रकार अखण्ड शक्ति से सम्पन्न बलवन् !एवं ऐश्वर्यवन् ! तू ही ( राधः कृणुष्व ) ऐश्वर्य, धन और आराध्य, एवं साधना योग्य ज्ञानोपदेश प्रदान कर ।

नहि त्वा रोदसी उभे ऋघायमाणमिन्वतः ।
जेषः स्वर्वतीरपः सं गा अस्मभ्यं धूनुहि ॥ ८ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! ( उभे रोदसी ) आकाश और पृथिवी दोनों भी ( ऋघायमाणम् ) उपासना करने योग्य ( त्वा ) तुझको (नहि इन्वतः) नहीं व्यापते । तू उन दोनों से भी बड़ा है । तू ( स्वर्वतीः अपः ) प्रकाश-युक्त या आकाश में स्थित समस्त लोकों को, अथवा आकाशस्थ सर्वोत्पादक प्रकृति के सूक्ष्म परिमाणुओं को भी (जेषः) विजय करता है, उनपर अपना वश रखता है । ( गाः ) सूर्य जिस प्रकार किरण प्रदान करता है उसी प्रकार तू ( अस्मभ्यम् ) हमें ( गाः ) ज्ञानवाणियों को ( सं धूनुहि ) भली प्रकार प्रदान कर । अध्यात्म में—( ऋघायमाणम् ) परिचरण या सेवा करने योग्य तुझको प्राण और अपान दोनों भी नहीं प्राप्त होते । तू ( स्वः-

वती अपः ) प्रकाशयुक्त लिङ्ग-शरीरों को अथवा सुखप्रद प्राणों को अपने वश करता है। तू ( गाः ) इन्द्रियों को प्रेरित करता है। राजा के पक्ष में—( ऋघायमाणं ) शत्रु वध करने योग्य एवं पूजनीय तेरा राजवर्ग और प्रजावर्ग अथवा शत्रु और मित्र दोनों भी पार नहीं पाते। ( स्वर्वतीः अपः) ऐश्वर्ययुक्त सुखी प्रजाओं, विज्ञानयुक्त आप्तजनों को भी तू अपने वश करता है। हमें ( गाः ) आज्ञाएं दे, अथवा भूमियों, या गौएं प्रदान कर।

'ऋघायमाणम्'—ऋघ्नोतिः परिचरणकर्मा। ऋघ्यत इति ऋघः पूज्यः। ऋघवदाचरति इति ऋघायमाणः। इति दया०। नॄन् हन्तीति ऋघा। अनृघा ऋघाभवतीति ऋघायमाणः। सा०।

'स्वर्वतीः—' असौ लोकः स्वः। ऐ० ६।७॥ देवाः वै स्वः। श०१।९।३।१०॥ देवाः किरणाः। स्वरिति विशम् अजनयत्। स्वरिति पशून् अजनयत्। श० २।१।४।१३॥

आचार्य पक्ष में—( स्वर्वती अपः ) ज्ञान प्रकाश से युक्त विज्ञानों और कर्मों को। ( गाः ) वाणी ( रोदसी ) माता और पिता दोनों ही तेरे पूज्य पद तक नहीं पहुंचते।

आश्रु॑त्कर्ण श्रु॒धी हवं॒ नू चि॑द्दधिष्व मे॒ गिरः॑।
इन्द्र॒ स्तोम॑मि॒मं मम॑ कृ॒ष्वा यु॒जश्चि॒दन्त॑रम्॥ ९॥

भा०—हे ( आश्रुत्कर्ण इन्द्र ) सर्वत्र श्रवण करनेवाले कानों से युक्त परमेश्वर! तू ( नु ) निश्चय से ( मे हवं ) मेरी स्तुति को ( श्रुधि ) श्रवण करता है। तू ( गिरः दधिष्व ) मेरी स्तुति वाणियों को धारण कर, सुन। ( मम युजः ) युक्त समाहित चित्त वाले योगाभ्यासी साधक मित्र के ( इमं स्तोमं चित् ) इस स्तुति समूह को ( अन्तरम् कृष्व ) भीतर कर। अथवा ( मम अन्तरं शुद्धं कृष्व ) मेरे हृदय को शुद्ध कर। आचार्य पक्ष में (अश्रुत्कर्ण) हे विज्ञानमय कर्णों से युक्त! बहुश्रुत! राजा के पक्ष में—सब तरफ़ के वृत्तान्त सुनने हारे साधनों से युक्त।

विद्मा हि त्वा वृषन्तमं वाजेषु हवनश्रुतम् ।
वृषन्तमस्य हूमह ऊतिं सहस्रसातमाम् ॥ १० ॥

भा०—हे राजन् ! हे परमेश्वर ! ( त्वा हि ) तुझको ही हम ( वृषन्तमम् ) सब कामना योग्य सुखों को सबसे अधिक वर्षाने वाला और ( वाजेषु ) यज्ञों और संग्रामों में ( हवनश्रुतम् ) भक्तों के आह्वानों को सुननेवाला और प्रजाओं की पुकार और शत्रुओं की ललकारों को सुनने वाला ( विद्म ) जानते हैं। ( वृषन्तमस्य ) समस्त सुखों के वर्षक तेरी (सहस्रसातमाम् ) सहस्रों सुखों और ऐश्वर्यों के देनेवाली ( ऊतिम् ) रक्षा की ( हूमहे ) याचना करते हैं।

आ तू न इन्द्र कौशिक मन्दसानः सुतं पिब ।
नव्यमायुः प्र सू तिर कृधी सहस्रसामृषिम् ॥ ११ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! सर्वानन्दकारक ! हे ( कौशिक ) समस्त पदार्थों का यथार्थ उपदेश करने वाले परमेश्वर ! गुरो ! तू मन्दसानः ) ज्ञान प्रकाश से अति उज्वल होकर ( सुतं ) प्रयत्न से उत्पन्न किये ज्ञान-रस का ओषधि रस के समान ( पिब ) पान कर, श्रवण कर, उसका मनन कर और ( नव्यम् ) नये ( आयुः ) जीवन को ( सु प्रतिर ) खूब अधिक बढ़ा। और ( ऋषिम् ) वेदमन्त्रों के अर्थ देखने वाले विद्वान् पुरुष को ( सहस्रसाम् ) सहस्रों ज्ञानों और ऐश्वर्यों को लाभ करने में समर्थ ( कृधि ) कर। अथवा अध्यात्म में—हे ( इन्द्र) हे जीव (कौशिक) पंचकोशों में विराजमान् ! तू ( मन्दसानः ) अति प्रमोदयुक्त और प्रकाशयुक्त होकर ( सुतं ) ब्रह्म रस का पान कर। नये और दीर्घ आयु को प्राप्त कर। और ( ऋषिम् ) प्राण को ( सहस्रसाम् ) सहस्रों वर्षों के जीवन को भोगने अथवा पूर्ण आयु को भोगने वाला बना। सर्वं वै सहस्रम्। शत० ॥ ( ऋषिम् ) सहस्रों ज्ञानलाभ कराने वाले तर्क को उत्पन्न कर।

परि त्वा गिर्वणो गिर इमा भवन्तु विश्वतः ।

वृद्धायुमनु वृद्धयो जुष्टा भवन्तु जुष्टयः ॥ १२ ॥ २० ॥

भा०—हे (गिर्वणः) वेदवाणियों और विद्वज्जनों की वाणियों को सेवन करने वाले, उन वाणियों के एकमात्र लक्ष्य ! ( इमाः गिरः ) ये समस्त वाणियें ( विश्वतः ) सब प्रकार से ( त्वा परि भवन्तु ) तुझे ही लक्ष्य करके हों, तेरे ही गुणों का वर्णन करें। ( वृद्धयः ) वृद्धि को प्राप्त होने वाली, ( जुष्टयः ) सेवन करने योग्य वाणियां तुझ (वृद्धायुम्) महान् को ही लक्ष्य कर (जुष्टाः) अति प्रीतिकर (अनु भवन्तु) हों। आचार्य या विद्वान् के पक्ष में—हे वाणियों के सेवन करनेहारे ! ये सब वाणियां तुझे प्राप्त हों। वृद्धि उन्नति करनेवाली प्रीति उत्पादक वाणियां दीर्घायु तुझको प्रिय लगे। इति विंशोवर्गः ॥

## [ ११ ]

१—८ जेता माधुच्छन्दस ऋषिः। इन्द्रो देवता ॥ अनुष्टुभः। अष्टर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रं विश्वा अवीवृधन्त्समुद्रव्यचसं गिरः।
रथीतमं रथीनां वाजानां सत्पतिं पतिम् ॥ १ ॥

भा०—( समुद्र-व्यचसम् ) समुद्र के समान अति विस्तृत, अथवा आकाश और अन्तरिक्ष में भी व्यापक, ( रथीनाम् ) रथवान् सैनिकों के बीच ( रथीतमम् ) सबसे श्रेष्ठ रथारोही वीर, सेनापति महारथी के समान रमण साधनरूप देहधारी जीवों में भी ( रथीतमम् ) सर्वश्रेष्ठ पृथिवी आदि रमण साधन लोकों में भी व्यापक और ( सत् पतिम् ) सत्, नाश-रहित कारण द्रव्यों के भी परिपालक, स्वामी और ( वाजानां ) समस्त ऐश्वर्यों के भी स्वामी परमेश्वर को ही ( विश्वाः गिरः अवीवृधन् ) समस्त वेदवाणियां बढ़ाती हैं। उसकी महिमा का गान करती हैं। राजा और सेनापति पक्ष में—समुद्र के समान गम्भीर, रथियों में महारथी, सज्जनों के पालक और अन्नों, ऐश्वर्यों और संग्रामों के स्वामी, विजेता को ही सब स्तुतियां बढ़ाती हैं, उसके यश और उत्साह को बढ़ाती हैं।

सख्ये त इन्द्र वाजिनो मा भेम शवसस्पते ।
त्वामभि प्र णोनुमो जेतारमपराजितम् ॥ २ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! हे शत्रुनाशक राजन् ! सेनापते ! ( वाजिनः ) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष, उत्तम वेगवान् अश्वारोही ऐश्वर्यवान् और संग्रामकारी योद्धागण हम ( ते सख्ये ) तेरे मित्र भाव में रहकर ( मा भेम ) कभी भयभीत न हों । सदा निर्भय रहें । हे ( शवसस्पते ) समस्त ज्ञानों और बलों के स्वामिन् ! ( जेतारम् ) जीतने वाले और विजय दिलाने वाले और ( अपराजितम् ) कभी स्वयम् पराजित न होने वाले, अजेय, ( त्वाम् अभि ) तुझे ही लक्ष्य करके ( प्र नोनुमः ) सदा हम स्तुति करते हैं । तुझे बराबर नमस्कार करते हैं ।

पूर्वीरिन्द्रस्य रातयो न वि दस्यन्त्यूतयः ।
यदी वाजस्य गोमतः स्तोतृभ्यो मंहते मघम् ॥ ३ ॥

भा०—( यदि ) जिससे ( गोमतः ) उत्तम गौ आदि पशु, वाणी आदि इन्द्रियों से सम्पन्न ( वाजस्य ) सुख प्राप्त करने वाले सामर्थ्य के ( मघम् ) ऐश्वर्य को ( स्तोतृभ्यः ) स्तुतिकर्ता विद्वान् पुरुषों को ( मंहते ) दान करता है, इसी कारण से ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के दिये ( पूर्वीः ) सनातन से चले आये ( रातयः ) दान और (ऊतयः) ज्ञान और रक्षाएं भी ( न विदस्यन्ति ) कभी विनष्ट नहीं होतीं । राजा के पक्ष में— राजा विद्वानों को भूमि आदि धन प्रदान करता है । ( इसीसे उसके दिये दान और रक्षाएं नष्ट नहीं होतीं । सत्पात्र में दिया दान नष्ट नहीं होता ।

पुरां भिन्दुर्युवा कविरमितौजा अजायत ।
इन्द्रो विश्वस्य कर्मणो धर्त्ता वज्री पुरुष्टुतः ॥ ४ ॥

भा०—परमेश्वर ( पुरां भिन्दुः ) मुमुक्षु जनों के देह रूप पुरों को तोड़ने वाला होने से 'पुरभित्' है । कभी वृद्ध और परिणामी न होने से ( युवा ) युवा है । अथवा नाना पदार्थों को मिलाने, जुदा करने में समर्थ

होने से 'युवा' है। ( कविः ) क्रांतदर्शी होने से 'कवि' है। (अमितौजाः) अनन्त पराक्रम होने से वह सर्वशक्तिमान्, बल का अक्षय भण्डार है। वह परमेश्वर ही ( वज्री ) अज्ञान का निवारक होने से ज्ञानमय वज्र का धर्त्ता 'वज्री' है। ( पुरुष्टुतः ) बहुत से विद्वानों से स्तुति किये जाने से 'पुरुस्तुत' है। वह ही ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ( विश्वस्य कर्मणः ) विश्व रूप कर्म का ( धर्त्ता ) धारण करने वाला ( अजायत ) है। सेनापति के पक्ष में—शत्रुओं के पुरों को तोड़नेवाला, सन्धि विग्रह से मिलाने तोड़ने वाला, क्रान्तदर्शी, अपरिमित बल वाला इन्द्र, सेनापति ही समस्त राष्ट्र कार्यों को धारण करता है। वही शस्त्रों अस्त्रों का स्वामी, बलवान्, प्रजाओं से स्तुति किया जाता है।

त्वं वलस्य गोमतोऽपावरद्रिवो बिलम्।
त्वां देवा अबिभ्युषस्तुज्यमानास आविषुः ॥ ५ ॥

भा०—हे ( अद्रिवः ) वज्रवन्! अखण्ड वीर्यवन्! राजन्! (गोमतः वलस्य ) सूर्य जिस प्रकार किरणों को रोकने वाले मेघ के ( बिलम् ) जल को ( अपावः ) छिन्न-भिन्न कर देता है, उसी प्रकार तू भी (गोमतः बलस्य) भूमि को रोक लेने वाले, नगर को घेर लेने वाले शत्रु को ( अप अवः ) दूर कर दे, छिन्न-भिन्न कर। ( अबिभ्युषः ) भयरहित होकर ( तुज्यमानासः ) अपना अपना आश्रय पाकर तेरे से नाना प्रकार के ऐश्वर्य प्राप्त करके ( देवाः ) विद्वान् पुरुष, युद्ध विजयी सैनिकगण भी (त्वां आविषुः) तुझे प्राप्त होते हैं। तेरा आश्रय लेते हैं। अध्यात्म में—(गोमतः वलस्य) इन्द्रियों के निरोधक एवं ज्ञानवाणियों के निरोधक अज्ञान के ( बिलम् ) भार या बाधक बल को हे आत्मन्! प्राण! तू नाश करता है। ये (देवाः) विषयों के प्रकाशक देव, इन्द्रियगण निर्भय होकर, पीड़ित होकर, श्रान्त होकर तुझे ही प्राप्त होते हैं।

तवाहं शूर रातिभिः प्रत्यायं सिन्धुमावदन्।

उपातिष्ठन्त गिर्वणो विदुष्टे तस्य कारवः ॥ ६ ॥

भा०—हे ( शूर ) शूरवीर सेनापते ! राजन् ! परमेश्वर ! ( तव रातिभिः ) तेरे अनेक दानों से मैं तुझको ( सिन्धुम् ) बहते महानद के समान अक्षय ऐश्वर्यवान् ( आ वदन् ) कहता हुआ ( प्रतिआयम् ) प्राप्त होता हूं । हे ( गिर्वणः ) वाणियों द्वारा स्तुति योग्य ! समस्त वाणियों के आश्रय ! ( तस्य ) उस समुद्र के समान गम्भीर और अक्षय ऐश्वर्यवान् ( ते ) तुझे ही ( कारवः ) स्तुतिकर्त्ता विद्वान् गण और राज्यादि कार्यों के कर्त्ता कुशल पुरुष ( ते विदः ) तेरे सामर्थ्य को जानते हैं और ( उपातिष्ठन्त ) तेरी उपासना करते हैं, तेरा ही आश्रय लेते हैं । अध्यात्म में—हे (शूर) आशुरमण करने हारे ! व्यापक आत्मन् ! (तव रातिभिः) तेरे ऐश्वर्यों से तुझको ( सिन्धुम् आवदन् ) सबको अपने में बांधने वाला मुख्य प्राण कहता हुआ तुझे जानता हूं । (ते कारवः विदुः) विक्रियाशील प्राणगण और विज्ञजन भी तेरा ध्यान करते हैं ।

मायाभिरिन्द्र मायिनं त्वं शुष्णमवातिरः ।
विदुष्टे तस्य मेधिरास्तेषां श्रवांस्युत्तिर ॥ ७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) शत्रुनाशक ! राजन् ! ( त्वं ) तू ( मायिनम् ) माया, कुटिल बुद्धि वाले ( शुष्णम् ) प्रजाओं के रक्त शोषण करने वाले, अत्याचारी, अधार्मिक पुरुष को (मायाभिः) विशेष बुद्धियों से (अव अतिरः) विनष्ट कर । ( मेधिराः ) मेधावान् विद्वान् पुरुष ( ते तस्य ) तेरे उस सामर्थ्य को ( विदुः ) भली प्रकार जानें और (तेषां) उनको तू (श्रवांसि) नाना अन्न और ऐश्वर्य ( उत् तिर ) प्रदान कर ।

इन्द्रमीशानमोजसाभि स्तोमा अनूषत ।
सहस्रं यस्य रातय उत वा सन्ति भूयसीः ॥८॥२१॥३॥

भा०—( यस्य ) जिसके ( रातयः ) दान ( सहस्रं ) हजारों, अनेक और पूर्ण हैं । ( उत वा ) और ( भूयसीः ) जिसके दान और भी बहुतसे

(सन्ति) हैं। (स्तोमाः) सब स्तुतिकर्त्ता और मन्त्रगण (ओजसा ईशानम्) बल पराक्रम से सब को अपने वश करने वाले, सबके स्वामी ( इन्द्रम् ) राजा और परमेश्वर की ( अनूषत ) स्तुति करते हैं। इत्येकविंशो वर्गः॥

[ १२ ]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः। अग्निर्देवता। गायत्री। द्वादशर्चं सूक्तम्॥

अ॒ग्निं दू॒तं वृ॑णीमहे॒ होता॑रं वि॒श्ववे॑दसम्।
अ॒स्य य॒ज्ञस्य॑ सु॒क्रतु॑म्॥ १॥

भा०—परमेश्वर केपक्ष में—हम ( अस्य यज्ञस्य ) इस ब्रह्माण्डमय यज्ञ के ( सुक्रतुम् ) उत्तम ज्ञाता और कर्त्ता, ( विश्ववेदसम् ) विश्व के ज्ञाता, समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी, ( होतारम् ) सब के दाता, ( दूतम् ) उपास्य, और सूर्य के समान दुष्टों के सन्तापकारी परमेश्वर को हम (वृणीमहे ) वरण करते हैं। विद्वान् के पक्ष में—( अग्निम् ) अग्नि के समान तेजस्वी, ( दूतं ) ईश्वरोपासना के करने वाले विद्वान् पुरुष को ( अस्य यज्ञस्य होतारम् वृणीमहे ) इस यज्ञ के होता रूप से वरण करते हैं। अग्नि के पक्ष में—प्रति कण में व्यापक होने से 'अग्नि' है। संतापजनक होने से वह 'दूत' है। वेग आदि गुणप्रद होने से 'होता' है सब शिल्पियों के शिल्पों को देने से 'विश्ववेदा' है। वह शिल्पमय यज्ञ का 'सुक्रतु' है।

अ॒ग्निम॑ग्निं॒ हवी॑मभिः॒ सदा॑ हवन्त वि॒श्पति॑म्।
ह॒व्य॒वाहं॑ पुरुप्रि॒यम्॥ २॥

भा०—( हवीमभिः ) आहुति करने योग्य या खाने योग्य पदार्थों से जिस प्रकार ( हव्यवाहम् ) हवि को लेने वाले, आहवनीयाग्नि को या अन्न को स्वीकार करने वाले जाठर अग्नि को ( सदा हवन्त ) सदा लोग अन्न आदि हवि प्रदान करते हैं उसी प्रकार ( पुरुप्रियम् ) बहुतों को प्रिय लगने वाले ( विश्पतिम् ) प्रजाओं के पालक ( अग्निम्-अग्निम् ) अग्नि

के समान प्रत्येक ज्ञानवान् और तेजस्वी पुरुष को ( हवीमभिः ) ग्रहण या स्वीकार करने योग्य अन्न आदि पदार्थों से सदा ( हवन्त ) सदा उपासना करो, आदर सत्कार करो। अध्यात्म में—( पुरु-प्रियम् ) इन्द्रियों के प्रिय आत्मा को अन्तराह्वानों द्वारा साक्षात् करो। भौतिक अग्नि पक्ष में—( हवीमभिः ) उपासनाओं द्वारा उसे प्राप्त होओ।

अग्ने देवाँ इहा वह जज्ञानो वृक्तबर्हिषे।
असि होता न ईड्यः ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) सूर्य के समान तेजस्विन् ! अग्रणी नेताः ! अथवा परमेश्वर ! विद्वन् ! तू ( इह ) यहां ( देवान् ) सूर्य जिस प्रकार किरणों को प्राप्त करता है उसी प्रकार तू विद्वान् पुरुषों को ( आवह ) प्राप्त कर। तू (वृक्तबर्हिषे) यज्ञार्थ कुशादि काट कर लाने वाले कुशल या विद्वान् पुरुष के उपकार के लिए ( जज्ञानः ) स्वयं प्रकट होकर और उत्तम ज्ञानों को प्रकट कराने वाला और ( होता ) अग्नि के समान आहुति किये या श्रद्धापूर्वक दिये पदार्थों को ग्रहण करने वाला, ( नः ) हमारा ( ईड्यः ) पूजनीय ( होता असि ) होता नामक विद्वान् या उपदेष्टा ( असि ) हो।

ताँ उशतो वि बोधय यदग्ने यासि दूत्यम्।
देवैरा सत्सि बर्हिषि ॥ ४ ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्ने ! विद्वन् ! राजन् ! ( यत् ) जब तू ( दूत्यम्) दूत कर्म, शत्रुओं के संतापदेने वाले कार्य या सामर्थ्य को ( यासि ) प्राप्त होता है तब तू ( तान् ) (उशतः) तेरी चाहना करने वालों को (विबोधयः) विशेष प्रकार से बतला और ( देवैः ) अन्य विद्वान् ज्ञानी और तेजस्वी पुरुषों सहित ( बर्हिषि ) आसन पर, प्रजा के राज्यासन पर ( आ सत्सि ) विराजमान् हो। भौतिक अग्नि पक्ष में—( देवैः ) तेजस्वी दिव्य पदार्थों के साथ ( दूत्यम् यासि ) उपतापक, नाना विज्ञानों का प्रकाशक होता है। ( बर्हिषि ) अन्तरिक्ष में स्थित होकर ( उशतः तान् विबोधय ) नाना इष्ट

ज्ञानों का बोध कराता है और (आ सत्सि) नाना दोषों का नाश करता है।

घृताहवन दीदिवः प्रति ष्म रिषतो दह।
अग्ने त्वं रक्षस्विनः॥ ५॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन्! हे ( घृताहवन ) अग्नि में जिस प्रकार घृत आदि दीप्तिकारक पदार्थों की आहुति दी जाती है उसी प्रकार घृत अर्थात् तेजोवर्धक साधनों की आहुति लेने हारे! हे (दीदिवः) दीप्यमान्! तेजस्विन्! ( त्वं ) तू (रक्षस्विनः) दुष्ट पुरुषों वाले ( रिशतः ) हिंसाकारी शत्रुसंघों को ( प्रतिदह स्म ) एक एक करके जला डाल। भौतिक पक्ष में—हे घृत की आहुति लेने वाले अग्नि! जीवन के नाशक दुष्ट रोगों से युक्त पदार्थों को जला।

अग्निनाग्निः समिध्यते कविर्गृहपतिर्युवा।
हव्यवाड् जुह्वास्यः॥ ६॥ २२॥

भा०—( अग्निना अग्निः ) जिस प्रकार एक आग से दूसरी आग को प्रज्वलित कर लिया जाता है और वही (हव्यवाड्) आहुति योग्य हविको ग्रहण कर उसको नाना देश में प्राप्त कराता और ( जुहू–आस्यः ) ज्वाला रूप मुख से ग्रहण करता है उसी प्रकार ( कविः ) क्रान्तदर्शी विद्वान् भी अग्नि के समान ज्ञानी पुरुष के साथ रहकर स्वयम् ज्ञानी हो जाता है और प्रकाशित होता है। वह भी ( हव्यवाड् ) ग्रहण करने योग्य ज्ञान को धारण करने वाला होने से 'हव्यवाड्' और ( जुहू–आस्यः ) उपदेशप्रद वाणी को मुख में धारण करने वाला होने से 'जुह्वास्य' कहाता है। इसी प्रकार ( युवा गृहपतिः ) युवा, बलवान् गृहपति भी गृहपति से ही उत्पन्न होकर और पालपोसा जाकर, अग्नि के समान ही गृहपति हो जाता है वह भी अन्नादि ग्राह्य पदार्थों के प्रदान करने से 'हव्यवाड्' जुहूनाम उत्तम वाणी को मुख में धारण करने से 'जुह्वास्य' है। इति द्वाविंशो वर्गः।

कविमग्निमुप स्तुहि सत्यधर्माणमध्वरे।

देवममीवचातनम् ॥ ७ ॥

भा०—( कविम् ) क्रान्तदर्शी, सबकी बुद्धियों से परे विद्यमान, मेधावी, ( अग्निम् ) ज्ञानस्वरूप, प्रकाशक, (सत्यधर्माणम्) सत्य धर्मों को धारण करनेवाले, ( अमीवचातनम् ) अज्ञान आदि कष्ट पीड़ाओं के नाश करने वाले, ( देवम् ) सुखप्रद परमेश्वर की स्तुति कर और इसी प्रकार ( सत्यधर्माणम् ) सत्य, अविनाशी धर्म वाले, ( देवं ) प्रकाशक ( अमीवचातनं ) रोगहारी ( अग्निम् ) अग्नि का ( स्तुहि ) सबको उपदेश कर।

यस्त्वामग्ने हविष्पतिर्दूतं देव सपर्यति।
तस्य स्म प्राविता भव ॥ ८ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर ! राजन् ! ( यः ) जो (हविष्पतिः) दानदेने और ग्रहण करने योग्य,अन्न आदि पदार्थों और उत्तम गुणों का पालक पुरुष, ( दूतम् ) ज्ञान के दाता और शत्रुओं के पीड़क ( त्वाम् ) तुझको ( सपर्यति ) उपासना और सेवा करता है, हे ( देव ) दानशील ! हे द्रष्टः ! तू ( तस्य ) उसका ( प्र अविता ) सबसे बड़ा और सबसे उत्तम रक्षा करनेवाला ( भव ) हो और है। भौतिक पक्ष में— ( दूतम् ) देशान्तर में ले जाने वाला तेरी साधना करता है, तू उसका रक्षक और प्रापक होता है।

यो अग्निं देववीतये हविष्माँ आविवासति।
तस्मै पावक मृळय ॥ ९ ॥

भा०—( यः ) जो ( हविष्मान् ) अन्नादि पदार्थों का स्वामी होकर ( देववीतये ) देवों, उत्तम विद्वान् पुरुषों को तृप्त करने और उत्तम गुणों और भोग्य पदार्थों को प्राप्त करने के लिये ( अग्निम् ) यज्ञाग्नि के समान परमेश्वर की ( आ विवासति ) आराधना करता है हे ( पावक ) परम पावन अग्नि के समान समस्त पाप-कर्मों को दग्ध करके हृदय को पवित्र करने वाले परमेश्वर ! त ( तस्मै ) उसको ( मृळय ) सुखी कर।

स नः पावक दीदिवोऽग्ने देवाँ इहा वह ।
उप यज्ञं हविश्च नः ॥ १० ॥

भा०—हे ( पावक ) परम पावन ! हे ( दीदिवः ) प्रकाशस्वरूप ! हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! तू अग्नि के समान शोधक, दीप्तियुक्त अग्रणी है । तू ( नः ) हमारे कल्याण के लिये ( देवान् इह आ वह ) उत्तम गुणों, पदार्थों और विद्वान् पुरुषों को हमें प्राप्त करा । ( नः ) हमारे ( यज्ञं ) यज्ञ और ( हविः च ) हवि अर्थात् देने लेने योग्य उत्तम अन्न को भी ( उप वह ) प्राप्त करा ।

स नः स्तवान आ भर गायत्रेण नवीयसा ।
रयिं वीरवतीमिषम् ॥ ११ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! राजन् ! ( सः ) वह तू ( नवीयसा ) अति नवीन, सदा स्तुति योग्य, ( गायत्रेण ) गायत्री छन्द से युक्त प्रगाथ से ( स्तवानः ) स्तुति किया जाकर ( नः ) हमें ( वीरवतीम् ) वीर पुरुषों से युक्त ( इषम् ) सेना, अभिलषित अन्न और सत्कार और ( रयिम् ) ऐश्वर्य ( आ भर ) प्राप्त करा । राजा—पक्ष में ( गायत्रेण ) इस भूलोक वासी प्रजाजनों द्वारा स्तुति किया जाकर वीरों से युक्त सेना और ऐश्वर्य को प्राप्त कर ।

अग्ने शुक्रेण शोचिषा विश्वाभिर्देवहूतिभिः ।
इमं स्तोमं जुषस्व नः ॥ १२ ॥ २३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! परमेश्वर ! तू ( शुक्रेण ) अति उज्वल, शुद्धिकारक ( शोचिषा ) दीप्ति से ( विश्वाभिः ) सब ( देवहूतिभिः ) विद्वानों और वेदों की वाणियों सहित ( इमं स्तोमं ) इस स्तुतिसमूह को ( जुषस्व ) स्वीकार कर । राजा के पक्ष में—(शुक्रेण शोचिषा) अति उज्वल तेज से युक्त होकर तू विद्वानों की इन स्तुतियों सहित (इमं स्तोमं) इस ऐश्वर्य, पदाधिकार और बल को प्राप्त कर । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[ १३ ]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ १ इध्मः समिद्धो वाग्निः । २ तनूनपात् । ३ नराशंसः । ४ इळः । ५ बर्हिः । ६ देवीर्द्वारः । ७ उषासानक्ता । ८ दैव्यौ होतारौ प्रचेतसौ । ९ तिस्रो देव्यः सरस्वतीळाभारत्यः । १० त्वष्टा । ११ वनस्पतिः । १२ स्वाहाकृतयः ॥ गायत्री ॥ द्वादशच माप्रीसूक्तम् ॥

सुसमिद्धो न आ वह देवाँ अग्ने हविष्मते ।
होतः पावक यक्षि च ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! अग्रणी विद्वन् ! राजन् ! हे ( होतः ) ज्ञान के देने हारे ! हवि को स्वीकार करने हारे ! हे (पावक) हृदय को पवित्र करने वाले ! मलों के शोधक ! शत्रुओं के नाशक ! ( सुसमिद्धः ) तू अग्नि के समान तेज, ज्ञान और सद्गुणों से अति उज्ज्वल होकर ( नः ) हममें से ( हविष्मते ) ज्ञान और उचित उपाय वाले पुरुष को ( देवान् आवह ) विद्वान् जन, उत्तम गुण और पदार्थ प्राप्त करा। और ( यक्षि च ) मैं तेरी उपासना करता हूं, तेरा सत्कार करता हूं, अथवा हे पुरुष ! तू उसी की उपासना कर । विद्वत् पक्ष में—( यक्षि ) तू उसी की उपासना कर । राजा के पक्ष में—हे अग्ने ! तेजस्विन् ! तू खूब युद्ध काल में शस्त्रास्त्रों से प्रज्वलित होकर ( देवान् ) विजीगीषु वीरों को अपने अधीन धारण कर। हे (होतः) बाणों के फेंकने वाले ! हे (पावक) अग्नि के समान शत्रुओं को भून डालने वाले ! तू (यक्षि च) शस्त्रों से युद्ध कर।

मधुमन्तं तनूनपाद्यज्ञं देवेषु नः कवे ।
अद्या कृणुहि वीतये ॥ २ ॥

भा०—हे ( तनूनपात् ) शरीरों के अंग प्रत्यगों की रक्षा करने हारे जाठराग्नि के समान ! हे ( कवे ) कान्तदर्शिन् ! मेधाविन् ! तू ( नः ) हमारे ( मधुमन्तम् यज्ञम् ) मधुर, अन्नादि पदार्थों से युक्त यज्ञ के समान

मधु अर्थात् शत्रुपीड़नकारी बल से युक्त परस्पर सुसंगत राष्ट्र को (वीतये) उत्तम रीति से भोग करने के लिए ( अद्य ) आज, सदा ( देवेषु ) विद्वान् विजयी पुरुषों के आश्रय ( कृणुहि ) कर। परमेश्वर पक्ष में—हमारे यज्ञ रूप आत्मा को ( मधुमन्तं कृणुहि ) ज्ञानवान् कर। अध्यात्म में—जाठराग्नि में इस देह रूप यज्ञ को ( वीतये ) कान्ति के लिए मधुर पदार्थ वीर्यादि से युक्त बनावे।

नराशंसमिह प्रियमस्मिन्यज्ञ उप ह्वये।
मधुजिह्वं हविष्कृतम् ॥ ३ ॥

भा०—(इह यज्ञे) इस यज्ञ में (प्रियम्) प्रिय, मनोहर, (नराशंसम्) सब नायक पुरुषों से स्तुति करने योग्य, ( मधु-जिह्वम् ) मधुर जिह्वा वाले, मधुर वाणी बोलने वाले, ( हविष्कृम् ) स्वीकार करने योग्य अन्न चरु के सम्पादन और ज्ञानोपदेश करने वाले विद्वान् को मैं ( उपह्वये ) आदर से बुलाता हूं। भौतिक अग्निपक्ष में—जिसके लिए हवि किया जाय, ऐसे सबसे स्तुति किये, मधुर ज्वाला वाले अग्नि को प्रज्वलित करूँ। भौतिक अग्नि की काली, कराली, मनोजवा, सुलोहिता, सुधूम्रवर्णा, स्फुलिंगिनी, विश्वरूपी ये ७ जिह्वा कही गई हैं। वे मधुर प्रकाश देनेवाली हैं। घृत से उत्पन्न जिह्वा होने भी अग्नि 'मधु-जिह्व' है। हवि को छिन्न-भिन्न करने से वह 'हविष्कृत्' है। अथवा नाना पात्र में रखे पदार्थों को क्रिया में प्रवृत्त कराने से 'हविष्कृत्' है। विद्वानों से उपदेश किये जाने योग्य होने से 'नराशंस' है। मनुष्यों से प्राणी अग्नि को उत्पन्न नहीं कर सकते। वह सब पदार्थों का साधक होने से 'प्रिय' है। अथवा 'मधुजिह्व' अर्थात् मधु, जल है ज्वाला में जिसके।

अग्ने सुखतमे रथे देवाँ ईळित आ वह।
असि होता मनुर्हितः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्ने! ज्ञानवन्! ( ईळितः ) स्तुति किया गया, चाहा गया, ( सुखतमे रथे ) अति सुख देने वाले रमण करने

योग्य साधन विमान यान आदि में तू ( देवान् ) विद्वान् पुरुषों को ( आवह ) ले आ। तू ( होता ) सब सुखों का देने वाला ( मनुः ) मनन-शील होकर ( हितः ) सबका हितकारी (असि) है। अथवा ( मनुः होता हितः असि ) तू ज्ञानवान् होकर यज्ञ के 'होता' रूप से स्थापित है। भौतिक पक्ष में—अग्नि, विद्युत् ही नाना यानों का चालक है। वह विद्वानों द्वारा जानने योग्य होने से 'मनु' है। गति देने और सुखप्रद होने से 'होता' है। यज्ञ में होतृवरण भी इसी से हुआ जानें। अध्यात्म में—आत्मा, मननशील होने से 'मनु' है। सब इन्द्रियों का वशकारी, प्रवर्त्तक होने से 'होता' है। वह देव, इन्द्रियों को अति, सुखप्रद रथ रूप देह में धारण करता है। सबसे प्रिय होने से आत्मा 'ईळित' है।

'आत्मनस्तुकामाय सर्वं प्रियं भवति।' बृहदा० ४।५॥

ईश्वर पक्ष में—स्तुति किया जाकर वह परमेश्वर विद्वान् पुरुषों को अति सुखप्रद आनन्द रस में लीन कर लेता है। वह सर्वाश्रय दाता होने से 'होता', ज्ञान योग्य होने से 'मनु' और पोषक होने से 'हित' है।

**स्तृणीत बर्हिरानुषग्घृतपृष्ठं मनीषिणः।**
**यत्रामृतस्य चक्षणम् ॥ ५ ॥**

भा०—हे (मनीषिणः) बुद्धिमान् विद्वान् पुरुषो! आप लोग (बर्हिः) यज्ञ में कुशा के बने आसनों को ऐसे ( स्तृणीत ) बिछाओ कि (आनुषक्) वे एक दूसरे से लगे रहें। (घृतपृष्ठम्) जिस पर घृत के पात्र रक्खें जाय। और ( यत्र ) जहां ( अमृतस्य ) अमृत, जल का ( चक्षणम् ) दर्शन हो। पृथिवी को वेदी मानकर भौतिक पक्ष में—हे विद्वान् पुरुषो! ( घृतपृष्ठं बर्हिः आनुषक् स्तृणीत) जल से व्याप्त विस्तृत आकाश को ऐसे धूम से आच्छादित करो। ( यत्र अमृतस्य चक्षणं ) जहां जल का मेघ रूप से दर्शन हो। परमेश्वर और आत्मा के पक्ष में—हे विद्वान् पुरुषो ( बर्हिः ) महान् ( घृतपृष्ठं ) तेजस्वरूप, ब्रह्मज्ञान का आस्वादान करो। उसमें आश्रय लो।

उसकी शरण लो। यहां (अमृतस्य चक्षणम्) अमृत आत्मानन्द, परम नित्य का दर्शन है। जहां मृत्यु का भय नहीं। गृहस्थ और राष्ट्रपक्ष में—(बर्हिः) प्रजा को राष्ट्र में फैलाओ। वे घृत आदि अन्नों से पुष्ट हों और जल को पृष्ठ पर धारण करने वाले राष्ट्र को विस्तृत करो। जहां (अमृतस्य चक्षणम्) जल और अन्न और पूर्ण आयु और सन्तति का दर्शन हो।

वि श्र॑यन्तामृता॒वृधो॒ द्वारो॑ दे॒वीर॑स॒श्चतः॑।
अ॒द्या नू॒नं च॒ यष्ट॑वे ॥ ६ ॥ २४ ॥

भा०—(अद्य) आज सदा (नूनं च) अवश्य (यष्टवे) यज्ञ करने के अवसर में (ऋतावृधः) सुख को, या निर्गमन और प्रवेश को बढ़ाने वाले (देवीः द्वारः) प्रकाश से युक्त द्वार (असश्चतः) पृथक् पृथक्, खुले, चौड़े, (वि श्रयन्ताम्) विविध रूप से लगाये जायं। गृहस्थ के पक्ष में—सब दिन यज्ञ रूप सुसंगत होने के लिए गृह में (असश्चतः) विषयों में अनासक्त होकर (ऋतावृधः) सत्य ज्ञान को बढ़ानेवाली (देवीः) देवियां (द्वारः) पापों का वर्जन करनेहारी होकर (विश्रयन्ताम्) विविध रूप से आश्रय लें। राष्ट्रपक्ष में—युद्ध यज्ञ के लिए (द्वारः) शत्रुओं का वारण करनेवाली (देवीः) विजयशालिनी सेनाएँ (ऋतावृधः) सत्य व्यवहार, और राष्ट्र बल को बढ़ाने वाली होकर विविध स्थानों पर छावनी बनाकर रहें।

नक्तो॒षासा॑ सु॒पेश॑सा॒स्मिन्य॒ज्ञ उप॑ ह्वये।
इ॒दं नो॑ ब॒र्हिरा॒सदे॑ ॥ ७ ॥

भा०—(अस्मिन् यज्ञे) इस यज्ञ में (सुपेशसा) उत्तम, सुखदायी रूप और ऐश्वर्य वाले (नक्तोषासा) रात्रि और दिन दोनों को (उप ह्वये) उपयोग में लाऊँ। जिससे (नः) हमारा (इदं) यह (बर्हिः) आसन के समान आश्रय करने योग्य गृह भी (आसदे) सब प्रकार से सुख से रहने योग्य हो। राष्ट्रपक्ष में—नक्त और उषस् दो सभाएँ हैं। 'बर्हि'

राष्ट्र है । गृहस्थ-पक्ष में--नक्त और उषस् स्त्री और पुरुष हैं । वे दोनों चन्द्र के समान शीतल और सूर्य के समान तेजस्वी हों । वे उत्तम रूपवान् ऐश्वर्यवान् होकर यज्ञ में आवें ।

ता सुजिह्वा उप ह्वये होतारा दैव्या कवी ।
यज्ञं नो यक्षतामिमम् ॥ ८ ॥

भा०--यज्ञ में दो विद्वान् पुरुषों की नियुक्ति—मैं ( होतारा ) ज्ञान के देने वाले ( दैव्या ) देवों, विद्वानों के हितकारी ( कवी ) क्रान्तदर्शी, दीर्घदर्शी ( सुजिह्वौ ) शुभ वाणी बोलने वाले, विद्वानों को ( उप ह्वये ) बुलाता हूं । वे दोनों ( नः ) हमारे ( इमम् ) इस ( यज्ञम् ) यज्ञ को ( यक्षताम् ) सम्पादित करें । भौतिक पक्ष में--अग्नि और विद्युत् दोनों उक्त प्रकार से ज्वाला वाले, सुखप्रद दिव्य पदार्थों से उत्पन्न होते हैं । वे हमारे यज्ञ और शिल्प को करें । स्त्री पुरुषों, गुरु शिष्य, राजा सभापति आदि पक्ष में भी इसी प्रकार जानना ।

इळा सरस्वती मही तिस्रो देवीर्मयोभुवः ।
बर्हिः सीदन्त्वस्रिधः ॥ ९ ॥

भा०--( इळा ) इला, ( सरस्वती ) सरस्वती और ( मही ) मही ( तिस्रः देवीः ) तीनों देवियें ( मयो भुवः ) सुख उत्पन्न करने हारी हैं । वे तीनों ( अस्रिधः ) अक्षय, अविनाशिनी, अहिंसनीय होकर ( बर्हिः ) आसन और गृह में ( सीदन्तु ) विराजें ।

'इळा'--ईड्यते स्तूयते अनेन इति सा वाणी । ईळतेरन् औणादिकः । ह्रस्वत्वं गुणाभावश्छान्दसः । दया० । निशादिवत् टापं चैव हलन्तानामिती-लेष्टाप् इति सायणः । ईडतेरिन्धतेश्चाकर्त्तरि कारके घञ् । ईडेर्ह्रस्वत्वम् । इन्धे र्नकारलोपो डकारो गुणाभावश्चेति देवराजो यज्वा । इण्गतावस्माद्वा डः । इडा गौः । यद्वा इल स्वप्नक्षेपणयोः अस्मादिगुपधलक्षणः कः । सुप्यतेऽस्यां क्षिप्यते वा बीजादिकमिति पृथ्वी, स्त्री वा । इला इत्यन्ननाम गो नाम

च । अर्शादित्वादच् । अन्नवती, गोमती । इयम् पृथिवी वा इडा । कौ० ९ । २ ॥ इडा हि गौः। श० २ । ३४ । ३४ ॥ पशवो वा इडा । श० १ । ८ । १ । २२ ॥ अन्नं वा इळा । ऐ० २ । २५ ॥ श्रद्धा इडा । श० १२ । २ । ७ । २० ॥ इडा वै मानवी यज्ञानुकाशिनी आसीत् । तै० १ । १ ४ । ४॥ इरा पत्नी विश्वसृजाम् । तै० । ३ । १२ । ९ । ५ ॥

स्तुति करने और कथन करने से 'इला' वाणी है। दीप्ति करने से प्रकाशक होने से 'इणा' वाणी और विद्युत् है। सहशयन और बीजवपन से स्त्री और भूमि दोनों 'इडा' हैं। गौ और अन्न दोनों का वाचक 'इडा' शब्द पढ़ा है। उनकी स्वामिनी भी 'इडा' है। पशु, अन्न, श्रद्धा, सत्य-धारणावती बुद्धि या मनुष्य की पत्नी और समस्त विश्वरचक कारणों की स्वामिनी प्रकृति भी इडा और इरा नाम से कहाती हैं।

'सरस्वती'—वाक् वै सरस्वती। श० २ । ५ । ४ । ६ ॥ सा वाक् ऊर्ध्वा उदातनोत् यथा अपांधारा संततम्। तां० २० । १४ । २ ॥ योषा वै सरस्वती वृषा पूषा। श० २ । ५ । १ । १२ ॥ सरस्वतीति तद् द्वितीयम् वज्ररूपम्। कौ० १२ । २ ॥ सरः सरस्वती चेति वाङ् नामनी। सरति जानाति सर्वं। ज्ञायते वा विद्वद्भिः गच्छत्येव वाहूत इति सरः वाग्। सरः इत्युदक नाम च सर्त्तेस्तद्वती। वृष्ट्यधि देवतात्वादुदकवती हि मध्यमिका वाक्। इति देवराजः। सर इति प्रशस्तम् ज्ञानं तद्वती इति दया०।

भारती—एष (अग्निः) उ वा इमाः प्रजाः प्राणो भूत्वा बिभर्ति तस्माद्वेवाह भरत इति। श० १ । ४ । २ । २ ॥ अग्निर्भरतः। सः प्राणो भूत्वा हवींषि बिभर्त्ति। तदीया भारती। अथवा भरत इति ऋत्विङ् नाम। तदीया स्तुतिसाधनत्वात्। बिभर्त्ति जगद् वर्षप्रदानेन स्वाभिधेयं वा भ्रियते प्राणिभिः व्यवहारसाधनत्वेन इति देव०।

'मही—इयमेव मही। इयम् वा आदितिर्मही। श० ६ । ५ । १० ॥ पृथिवी नाम, वाङ् नाम, गो नाम च।

तीनों नाम वाणीवाचक हैं फलतः इडा = ऋग् । सरस्वती = यजुः । मही = साम । तीनों नाम पृथ्वीवाचक हैं। इला = अन्नदात्री, सरस्वती जलदात्री, मही = उत्तम रत्न आदि दात्री । गृहस्थपक्ष में—इला = कुमारी सरस्वती = गृहपत्नी । मही = वृद्धा । राज्यपक्ष में—इला = भूमि-प्रबन्ध कर्त्री सभा । सरस्वती = विद्वत्सभा, मही = पूज्य शिक्षक समिति ।

इलादिशब्दाभिधेया बह्निमूर्त्तयस्तिस्रो देव्यः इति सायणः । तीनों प्रकार के विद्वान् ।

इह त्वष्टारमग्रियं विश्वरूपमुप ह्वये ।
अस्माकमस्तु केवलः ॥ १० ॥

भा०—(इह) यहाँ मैं (अग्रियम्) अग्र, सर्व-प्रथम, सर्वोच्च अग्रासन के योग्य, सर्वश्रेष्ठ, ( विश्वरूपम् ) समस्त रूपों को धारण करने वाले, ( त्वष्टारम् ) संसार के कर्त्ता, सब दुःखों के छेदक, एवं तेजस्वी परमेश्वर को ( उप ह्वये ) स्मरण करता हूं। वह ( केवलः ) केवल, एक अद्वितीय ( अस्माकम् ) हमारा उपास्य ( अस्तु ) हो। अग्निपक्ष में—सब पदार्थों के विभाजक सब प्रकार के रूपों के दिखाने वाले, तेजोमय अग्नि का मैं प्रयोग करूँ । आत्मापक्ष में—उस तेजोमय, दुःखों के नाशक, पुष्टि में सब से श्रेष्ठ, विश्वरूप = आत्मा की उपासना करता हूं। वह ही केवल हमारा है।

अव सृजा वनस्पते देव देवेभ्यो हविः ।
प्र दातुरस्तु चेतनम् ॥ ११ ॥

भा०—हे ( वनस्पते ) ऊखल जिस प्रकार कूट छानकर गृहस्थों को अन्न प्रदान करता है उसी प्रकार हे ( वनस्पते ) वनों के पालक ! हे उपभोग करने योग्य समस्त अन्नादि पदार्थों के पालक ! अथवा हे उपासकों के पालक ! भक्तप्रतिपाल ! परमेश्वर ! अथवा राजन् ! हे (देव) सब पदार्थों के दातः । तू ( हविः अवसृज ) चरु के समान अन्न और ज्ञान को उपलब्ध

या प्रदान कर जिससे (दातुः) दानशील अथवा आत्मा को शुद्ध करने वाले पवित्राचारवान् उपासक को (चेतनम्) ज्ञान, (प्र अस्तु) उत्तम रीति से हो।

'वनस्पति'—यज्ञ में ऊखल, देह में आत्मा, विश्व में परमेश्वर, राष्ट्र में राजा या सेनापति सब 'वनस्पति' हैं। यज्ञपक्ष में—ऊखल से कूटकर हवि, अन्नादि प्राप्त कर उससे यजमान की अग्नि प्रदीप्त हो। वृक्षपक्ष में—वृक्षादि ओषधि आदि चरु प्रदान करें जिससे ओषधिशोधक को प्राणबल प्राप्त हो।

स्वाहा॑ य॒ज्ञं कृ॑णोत॒नेन्द्रा॑य॒ यज्व॑नो गृ॒हे।
तत्र॑ दे॒वाँ उप॑ ह्वये ॥ १२ ॥ २५ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (स्वाहा) उत्तम आहुति द्वारा (यज्ञं) यज्ञ को (यज्वनः) दानशील धार्मिक पुरुष के (गृहे) घर में (इन्द्राय) उत्तम ऐश्वर्य की प्राप्ति, वायु शुद्धि और ईश्वरोपासना के लिए (कृणोतन) करें। (तत्र) उस यज्ञ में मैं (देवान्) विद्वान् पुरुषों को (उप ह्वये) आदरपूर्वक बुलाऊँ। अध्यात्म में—आत्मा के ज्ञान के लिए सत्संग करने वाले समाहित पुरुष के देह में (सु आहा) उत्तम वाणी से (यज्ञं कृणोतन) आत्मा की उपासना करो। और उसमें (देवान्) प्राणगणों को या दिव्य गुणों को अपने वश करता हूं।

१-४ मन्त्रों में विद्वानों के आह्वाता होता का वर्णन है। ५ वें में यज्ञ में आसन कुशाच्छादन है। ६ ठे में यज्ञशाला के द्वार, ७ में नक्त और उषा, ८ वें में दो दैव्य होता, ९ में ३ देवियें १० में त्वष्टा ११ वें में वनस्पति, और १२ वें में स्वाहा का वर्णन है। अध्यात्म में क्रम से मन, देह, उसके प्राण द्वार, जागृत, स्वप्नदशा प्राण, अपान, दो होता, इडा पिङ्गला, सुषुम्ना तीन नाड़ियें, त्वष्टा परमेश्वर, वनस्पति आत्मा और उनकी परस्पर आहुति यह अध्यात्म यज्ञ का वर्णन है।

[ १४ ]

१–१२ मेधातिथिः काण्व ऋषिः। विश्वे देवा देवताः। गायत्री द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

एभिरग्ने दुवो गिरो विश्वेभिः सोमपीतये ।
देवेभिर्याहि यक्षि च ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) सर्वव्यापक, ज्ञानस्वरूप, परमेश्वर ! तू (एभिः) इन ( विश्वेभिः ) समस्त ( देवेभिः ) दिव्य गुण वाले, तेजस्वी जल अग्नि आदि पदार्थों सहित, ( सोमपीतये ) सुखजनक पदार्थों को उपभोग कराने के कारण ( दुवः ) समस्त आराधना सेवा और ( गिरः ) स्तुति वाणियों को ( याहि ) प्राप्त हो। ( यक्षि च ) मैं आपकी उपासना करता हूं। अथवा आप हमें प्राप्त हों। समस्त दिव्य पदार्थों से परमेश्वर ही हमें आनन्द और सुख प्राप्त कराता है इस कारण वह समस्त आराधना और स्तुति वाणियों के योग्य है, उसी की मैं उपासना करूं। अध्यात्म में—आत्मा ही समस्त ( देवेभिः ) क्रीड़ाशील प्राणों से ज्ञान रसपान करने से वह सब उपासना और स्तुतियों का पात्र है। वह हमें प्राप्त हो। साधारण अग्नि दिव्य गुणों से वह विद्वानों द्वारा उपयुक्त होकर सुखप्रद है। राजा समस्त विद्वानों सहित सोमअर्थात् राष्ट्र और राष्ट्रपति पद का पालन और उपभोग करने के लिये सब स्तुतियों को प्राप्त होता है।

आ त्वा कण्वा अहूषत गृणन्ति विप्र ते धियः ।
देवेभिरग्न आ गहि ॥ २ ॥

भा०—हे ( विप्र ) विविध विद्याओं को और प्रजाओं को पूर्ण करने वाले विद्वन् ! ( ते धियः ) तेरे ही कर्मों और विज्ञानों को (कण्वाः) अन्य विद्वान् पुरुष ( गृणन्ति ) अन्यों को उपदेश करते हैं और ( त्वा ) तुझको ही ( अहूषत ) स्तुति करते, तेरा ही स्मरण करते, आदर से बुलाते हैं। हे (अग्ने) ज्ञानवान् अग्रणी ! तू, (देवेभिः) देव, दिव्यगुण वाले उत्तम विद्वानों

सहित ( आगहि ) आ, हमें प्राप्त हो ।

इन्द्रवायू बृहस्पतिं मित्राग्निं पूषणं भगम् ।
आदित्यान्मारुतं गणम् ॥ ३ ॥

भा०—( कण्वाः ) विद्वान् पुरुष ( इन्द्र-वायू ) विद्युत् और वायु, ( बृहस्पतिम् ) बड़े २ लोकों के पालक, सूर्य, ( मित्रा ) मित्र, प्राण, ( अग्निम् ) भौतिक अग्नि, ( पूषणम् ) सबके पोषक अन्नप्रद पृथिवी, अन्न और ओषधिवर्धक चन्द्र, ( भगम् ) सुख से सेवन करने योग्य ऐश्वर्य और ( आदित्यान् ) सूर्य और पृथिवी की गति से उत्पन्न १२ मासों और ( मारुतम् गणम् ) वायुओं के समूह इन सब का भी ( गृणन्ति ) उपदेश करें और उनको प्रयोग करें। अध्यात्म में—इन्द्र आत्मा। वायु = प्राण । बृहस्पति=परमेश्वर । मित्र = नासिकागत प्राण । अग्नि = जाठर । पूषा—अपान । भग = अष्टविध ऐश्वर्य । आदित्य = १२ प्राण, मारुत गण = प्राणादि वायुगण । इसी प्रकार राष्ट्र में इन्द्र—राजा । वायु—सेनापति । बृहस्पति—पुरोहित । मित्र—राजा । अग्नि—आयुधः । पूषा—पृथिवी और अन्न । भग—राज्य समृद्धि । आदित्य—वैश्यगण या विद्वान् गण, मारुत गण, सैनिक समूह वा प्रजाजन । इनको आदर पूर्वक बुलावें और इनके कर्त्तव्यों का उपदेश करें ।

प्र वो भ्रियन्त इन्दवो मत्सरा मादयिष्णवः ।
द्रप्सा मध्वश्चमूषदः ॥ ४ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! ( वः ) आप लोगों के सुख के लिये ही ( इन्दवः ) द्रुतगति से जाने वाले, ( मत्सराः ) हर्षपूर्वक शत्रु पर प्रयाण करने वाले, (मादयिष्णवः) सबको हर्षित करने वाले, (द्रप्साः) अति गर्वशील, ( चमूषदः ) सेना में सुसज्जित ( मध्वः ) जलों के समान वेग से गतिशील, एवं शत्रुओं का पीड़न करने वाले वीर पुरुष ( भ्रियन्ते ) राष्ट्र में भृति, अन्न आदि द्वारा रक्खे और पाले पोसे जाते हैं। जलों और

ओषधि रसों के पक्ष में—( इन्दवः ) द्रवणशील, (मत्सराः) तृप्तिकारक, (मादयिष्णवः) सुख, हर्षजनक, (द्रप्साः) तृप्तिजनक, द्रवरूप, (चमूषदः) पात्र स्थित, (मध्वः) मधुर जल (भ्रियन्ते) पात्रों में भरकर रक्खे जाते हैं।

ईळते त्वामवस्यवः कण्वासो वृक्तबर्हिषः।
हविष्मन्तो अरङ्कृतः ॥ ५ ॥

भा०—( अवस्यवः ) रक्षा, तेज और ज्ञान की इच्छा करने वाले ( वृक्त-बर्हिषः ) कुशा को काट लाकर यज्ञ को रचने वाले, फलतः, कुशल ( कण्वासः ) मेधावी, विद्वान् ( हविष्-मन्तः ) दान और ग्रहण करने योग्य नाना अन्नादि पदार्थों से युक्त ( अरंकृतः ) सब कार्यों को अच्छी प्रकार सुशोभित और सुन्दर, सुचारु रूप से करने वाले पुरुष ( त्वाम् ) तेरी ही ( ईलते) स्तुति करते हैं। 'वृक्त-बर्हिषः'—यज्ञार्थं वृक्तं छिन्नं बर्हिः यैस्ते वृक्त-बर्हिष ऋत्विजः। अर्थात् यज्ञार्थं कृतोपक्रमाः। तद्यथा कुशान् लान्तीति कुशलाः। उभयोः पदयोरेकप्रवृत्तिनिमित्तत्वात् पर्यायत्वमुचितम्।

घृतपृष्ठा मनोयुजो ये त्वा वहन्ति वह्नयः।
आ देवान्त्सोमपीतये ॥ ६ ॥ २६ ॥

भा०—हे परमेश्वर ( घृतपृष्ठाः वह्नयः ) घृत से सिंची, अग्नियों के समान अति तेजस्वी, ( मनोयुजः ) मन के बल से योग-समाधि करने वाले ( वह्नयः ) शरीर को वहन करने वाले, अथवा अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष, ( घृतपृष्ठाः ) अति तेजोमय प्रकाश से युक्त होकर ( त्वा वहन्ति ) तुझ को धारण करते हैं। तू ( सोमपीतये ) आनन्दजनक ज्ञान-रस का पान करने के लिये ( देवान् ) उन विद्वान् पुरुषों को ( आ ) स्वीकार कर। अध्यात्म में—हे आत्मन्! ( घृतपृष्ठाः ) वीर्य से आसिक्त, मन से युक्त शरीर का वहन करने वाले प्राणगण तुझको धारण करते हैं तू (सोम-पीतये) आनन्दजनक रसपान करने के लिये अथवा उत्तम पदार्थों को भोग के लिये ( देवान् आवह ) इन्द्रियों को धारण कर। हे राजन्!

(घृतपृष्ठाः वह्नयः) कान्तिजनक पदार्थों से हृष्ट पुष्ट अश्व जिस प्रकार रथको खींच ले जाते हैं, उसी प्रकार ( ये मनोयुजः ) जो वीर विद्वान् पुरुष, चित्त से तेरे साथ होकर ( त्वा वहन्ति ) तुझे धारण करते हैं तुझे सन्मार्ग पर ले जाते हैं, हे राजन्! तू उन ( देवान् ) विद्वान् और वीर पुरुषों को ( सोमपीतये आ ) राष्ट्र ऐश्वर्य के भोग के लिये धारण कर।

तान्यज॑त्राँ ऋता॒वृधोऽग्ने॒ पत्नी॑वतस्कृधि ।
मध्वः॑ सुजिह्व पायय ॥ ७ ॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! तू ( यजत्रान् ) देवोपासना करने वाले (ऋतावृधः) सत्य ज्ञान और यज्ञ और राष्ट्र की वृद्धि करने वाले (पत्नीवतः) उत्तम पत्नियों से युक्त गृहस्थ पुरुषों को ( कृधि ) ऐश्वर्यवान् कर । और हे ( सुजिह्व ) उत्तम ज्वाला से युक्त अग्नि के समान उत्तम जिह्वा अर्थात् वाणी से युक्त विद्वन् ! तू हमें ( मध्वः ) मधुर ज्ञानरस का ( पायय ) पान करा । अथवा—हे अग्ने ! विद्वान् तू ( यजत्रान् ऋतावृधः ) परस्पर संगत होने वाले, प्रेम को बढ़ाने वाले सत्य व्यवहारवान् पुरुषों को ( पत्नीवतः ) पालन शक्ति से युक्त, अथवा उत्तम पत्नियों से युक्त, गृहस्थ बना । और उनको उत्तम ज्ञान का उपदेश कर ।

ये यज॑त्रा॒ य ईड्या॒स्ते ते॑ पिबन्तु जि॒ह्वया॑ ।
मधो॑रग्ने॒ वष॑ट्कृति ॥ ८ ॥

भा०—( ये ) जो मनुष्य ( यजत्राः ) यज्ञ करने वाले, उपासना शील और जो ( ईड्याः ) स्तुति करने योग्य हैं ( ते ) वे ( जिह्वया ) अपनी वाणी द्वारा ही ( हे ) ( अग्ने ) विद्वन् ! परमेश्वर ! ( वषट्कृति ) वषट्कार युक्त यज्ञ अर्थात् बल के कार्य में और गृहस्थ के यज्ञादि कार्य में ( मधोः पिबन्तु ) मधुर रस, ज्ञान और अन्न का पान करें । 'वषट्कारः'—
( १ ) वाग् वै वषट्कारः । वाग् रेतः । रेत एव एतत् सिञ्चति, षट् इति ।
( २ ) ऋतवो वै षट् । तदृतुष्वेव एतद् रेतः सिच्यते तदृतवो रेतःसिक्त

मिमाः प्रजाः प्रजनयन्ति । तस्मा देवं वषट् करोति । श० १ । ७ । २ । २१ ॥ वाक् च प्राणापानौ च वषट्कारः । ऐ० ६ । ८ ॥ प्राणो वै वषट्-कारः । एष एव वषट्कारो य एष तपति । श० १ । ७ । २ । ११ ॥ यो धाता स वषट्कारः ॥ ऐ० ३ । ४७ ॥ त्रयो वै वषट्काराः वज्रो धामच्छद् रिक्तः । स यदेवोच्चैः बलं वषट् करोति स वज्रः । अथा यः समः सन्ततो निर्हाणच्छत् स धामच्छत् अथ येन वषट् पराध्नोति स रिक्तः । गो० उ० ३ । ३ । वज्रो वै वषट्कारः । ऐ० ३।८ एते एव वषट्कारस्य प्रियतमे तनू यदोजश्च सहश्च । कौ० ३ । ५ । २ । ऐ० ३ । ८ ॥ तस्य एतस्य ब्रह्मयज्ञस्य चत्वारो वषट्काराः—यद् वातो वाति । यद् विद्योतते । यत्स्तनयति । यदवस्फूर्जति । श० ११ । ४ । ६ । ९ ॥

[१] शरीर में वाणी और प्राण और अपान ये वषट्कार हैं । [२] वीर्य सेचन भी वषट्कार है । छः ऋतुओं में सूर्य बलाधान करता है यह उसका वषट्कार है । सूर्य स्वतःवषट्कार है । 'धाता' होना अर्थात् वीर्य आधान करने में समर्थ होना वषट्कार है । बज्र, धामच्छद् और रिक्त ये तीन स्वरूप वषट्कार के हैं । ओजः और सहः अर्थात् पराक्रम और शत्रु दमनकारी बल ये दोनों वषट्कार के दो स्वरूप हैं । ब्रह्म यज्ञ के चार वषट्कार हैं वायु का वेग से चलना, बिजुली का चमकना, गर्जना, और कड़कना । फलतः—यज्ञ में—( यजत्रना ईड्याः ) यज्ञशील स्तुति योग्य पुरुष मधुर अन्न का भोग करें । गृहस्थ कार्य, प्रजोत्पत्ति के कार्य में हे अग्ने ! काम ! परस्पर संगत एवं एक दूसरे की इच्छा पूर्ति करने वाले स्त्री पुरुष ( जिह्वया ) इस ग्रहण शक्ति से (मधोः)मधुर रस आनन्द को प्राप्त करें । विद्युत् पक्ष में—जो परस्पर नाना तत्त्वों को मिलाने में चतुर विद्वान् पुरुष हैं वे बलोकारी शक्ति के उत्पादन कार्य में उत्तम वश कारिणी शक्ति से ( मधोः ) बल का उपयोग करें ।

**आकीं सूर्यस्य रोचनाद्विश्वान्देवाँ उषर्बुधः ।**
**विप्रो होतेह वक्षति ॥ ६ ॥**

भा०—( विप्रः ) ज्ञानवान्, बुद्धिमान् ( होता ) ज्ञान के दान करने और ग्रहण करने वाला पुरुष (सूर्यस्य) सूर्य के समान चराचर के प्रकाशक और संचालक परमेश्वर के ( रोचनात् ) प्रकाश से ही (उषर्बुधः ) उषाकाल में, अर्थात् सृष्टि के आदि काल में बोध को प्राप्त कराने वाले ( विश्वान् ) समस्त ( देवान् ) ज्ञानप्रद वेदमन्त्रों को ( आकीम् वक्षति ) सब प्रकार से और सुखप्रद सब दिव्य भोगों को प्राप्त करे अर्थात्, जिस प्रकार सूर्य के प्रकाश से प्रातः चेतने वाले किरणों को या दिव्य आनन्दों को प्राप्त करता है उसी प्रकार परमेश्वर के दिये प्रकाश से विद्वान् पुरुष ज्ञानों और नाना उत्तम भोगों को प्राप्त करता है।

विश्वे॑भिः सो॒म्यं मध्व॑ग्न॒ इन्द्रे॑ण वा॒युना॑।
पिबा॑ मि॒त्रस्य॒ धाम॑भिः ॥ १० ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! जीव ! जिस प्रकार अग्नि ( इन्द्रेण वायुना ) ऐश्वर्य और तेज की वृद्धि करने वाले गतिशील वायु से और ( मित्रस्य धामभिः ) प्राण के धारण सामर्थ्य—या जल के बलों से ( सोम्यं मधु पिबति ) प्रेरक बल को उत्पन्न करने वाले ( मधु ) द्रव पदार्थ को अपने भीतर ग्रहण करता है उसी प्रकार तू ( इन्द्रेण ) ऐश्वर्य के उत्पादक ( वायुना ) वायु से और ( मित्रस्य धामभिः ) सूर्य के प्रकाशों के समान प्राण के धारण सामर्थ्यों से ( सोम्यम् मधु ) वीर्य के उत्पन्न करने वाले मधुर अन्न और ब्रह्मानन्द रस के जनक ( मधु ) मधुर ब्रह्मज्ञान का (पिब) पान कर, उसको ग्रहण कर।

त्वं होता॒ मनु॑र्हितोऽग्ने॑ य॒ज्ञेषु॑ सीदसि।
सेमं नो॑ अध्व॒रं य॑ज ॥ ११ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! ( त्वं ) तू ( होता ) यज्ञ में होता नाम ऋत्विज् के समान सब ज्ञानों को धारण करने वाला, ( मनुः ) मनन-शील, ( हितः ) सर्व हितकारी होकर ( यज्ञेषु ) यज्ञों में ( सीदसि )

विराज। ( सः ) वह तू ( नः ) हमारे ( इमं ) इस (अध्वरम्) यज्ञ, एवं न नाश करने योग्य, उत्तम, सुखजनक पदार्थ को (यज) प्राप्त करा। राजा के पक्ष में—राष्ट्र को अपने वश करने और सब को यथायोग्य मान, पद वेतन आदि देने में समर्थ, मननशील पुरुष को प्रजापालन के कार्यों में स्थापन करे। वह हमारे ( अध्वरम् ) प्रजापालन रूप यज्ञ को व्यवस्थित करे।

युक्ष्वा ह्यरुषी रथे हरितो देव रोहितः।
ताभिर्देवाँ इहा वह ॥ १२ ॥ २७ ॥

भा०—हे ( देव ) देदीप्यमान, तेजस्विन्! सूर्य के समान चमकने वाले! विद्वन्! तू ( रथे ) रमण करने योग्य रथ में ( अरुषीः ) रक्त गुण वाली, गमनशील, एक कान्तियुक्त (हरितः) हरणशील शक्तियों को (युक्ष्व) संयोजित कर ( ताभिः) उनसे ( इह ) लोक में ( देवान् ) कामना योग्य सुखकारी पदार्थों और व्यवहारों को (आवह) प्राप्त करा। भौतिक अग्नि की ज्वालाएं या ( हरितः ) गतियुक्त शक्तियां ( अरुषीः ) रक्तवर्ण की क्रान्ति वाली हैं और ( रोहितः ) रोहितअर्थात् ईषत् रक्त जिनसे वह 'देवों' अर्थात् किरणों को दूर तक पहुंचाता है। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[ १५ ]

॥ १५ ॥ १—१२ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता—ऋतवः। १ इन्द्रः। २ मरुतः। ३ त्वष्टा। ४ अग्निः। ५ इन्द्रः। ६ मित्रावरुणौ। ७—१० द्रविणोदाः। ११ अश्विनौ। १२ अग्निः। गायत्री ॥ षड्जः ॥

इन्द्र सोमं पिब ऋतुना त्वा विशन्त्विन्दवः।
मत्सरासस्तदोकसः ॥ १ ॥

भा०—हे (इन्द्र) जल का रश्मियों में मेघ रूप से धारण करने वाले सूर्य तू ( ऋतुना ) वसन्त आदि प्रत्येक ऋतु के बल से ( सोमं ) जल का ( पिब ) पान करता है, उनको रश्मियों से सोख लेता है। और तब ही

(तदोकसः) वे जल, अन्तरिक्ष, वायु, पृथिवी आदि नाना स्थानों पर आश्रय पाकर ( मत्सरासः ) प्राणियों को हर्ष और तृप्ति उत्पन्न करने वाले होकर ( इन्दवः ) द्रव रूप एवं गीला करने वाले रूप में रहते हैं ( त्वां ) तुझको ( विशन्तु) प्राप्त होते हैं। तेरे पर आश्रित हैं। राजा के पक्ष में—हे (इन्द्र) राजन् ! (ऋतुना) महामात्य और राजसभा के सदस्यों के बल से तू ( सोमं पिब) ऋतु बलसे सूर्य के समान राजपद का या ऐश्वर्य का भोगकर। हर्षजनक ( तदोकसः )नाना देशों और महलों में रहने वाले ( इन्दवः ) चन्द्र के समान प्रजारञ्जनकारी विद्वान् और ऐश्वर्यवान् पुरुष ( त्वा विशन्तु ) मुझे प्राप्त हों, वे तेरे अधीन पात्र में जल के समान आश्रित होकर रहें।

मरुतः पिबत ऋतुना पोत्राद्यज्ञं पुनीतन ।
यूयं हि ष्ठा सुदानवः ॥ २ ॥

भा०—हे ( मरुतः ) मरुत्गण ! विद्वान् जनो ! जिस प्रकार ( मरुतः ऋतुना पिबन्ति ) वायुगण ऋतुओं के अनुसार जल को सूक्ष्म रूप से पान करते हैं और सूक्ष्मरूप से अपने भीतर धारण करते हैं और (पोत्रात्) अपने पवित्र करने के सामर्थ्य से ( यज्ञं पुनन्ति ) यज्ञ अर्थात् सृष्टि यज्ञ को पवित्र करते हैं और वे ( सुदानवः ) उत्तम सुख और वृष्टि जल, कृषि फल को प्रदान करते हैं, उसी प्रकार आप विद्वान् जन भी ऋतुना, ज्ञान और बल और प्राण के सामर्थ्य से (पिबत) अन्न ओषधि आदि के रस का पान करो। और ( पोत्रात् ) पवित्र करने वाले परमेश्वर, प्राण या जल के सत्य-ज्ञान और सामर्थ्य से ( यज्ञं पुनीतन ) अपने आत्मा को, और शरीर को पवित्र करो। हे विद्वान्‌जनो !( हि ) क्योंकि आप लोग (सुदानवः) उत्तम कल्याणकारी ज्ञान और ऐश्वर्य का दान करने हारे ( स्थ ) हो। प्राणों के पक्ष में—हे ( मरुतः ) प्राणगण, ( ऋतुना ) मुख्य प्राण या ओंकार के बल से आत्मा को पवित्र करो। तुम उत्तम बलप्रद हो। सैनिकों के पक्ष में—हे शत्रुमारक वीर पुरुषो ! तुम सेनापति के बल से राष्ट्र का उपभोग

करो, पालन करो, ब्राह्मण के बल से यज्ञ रूप राष्ट्र को स्वच्छ करो, तुम ( सुदानवः ) उत्तम रक्षाकारी हो।

अभि यज्ञं गृणीहि नो ग्नावो नेष्टः पिब ऋतुना।
त्वं हि रत्नधा असि ॥ ३ ॥

भा०—हे ( ग्नावः ) सब पदार्थों को प्राप्त करने की शक्ति वाले! हे ( नेष्टः ) सब पदार्थों को शुद्ध करनेहारे! तू ( यज्ञं अभि नः गृणीहि ) यज्ञ, प्रजापति, परमेश्वर को लक्ष्य करके हमें उपदेश कर। और ( ऋतुना) सत्यज्ञान के बल पर ( पिब ) आनन्द रस का पान कर। ( हि ) क्योंकि ( हि ) निश्चय से ( त्वं हि ) तू ही ( रत्नधा ) अति रमण करने योग्य ज्ञान और आत्म तत्व को धारण करने वाला ( असि ) है। गृहस्थ पक्ष में—हे ( ग्नावन् ) सत् स्त्री से युक्त ! उसके स्वामिन् ! हे (नेष्टः) विवेकिन् तू ( यज्ञम् अभि गृणीहि) परमेश्वर की उपासना कर और ( ऋतुना पिब ) ऋतु के अनुसार अन्नादि भोग्य पदार्थों का भोग कर। तू ही (रत्नधाः)रमण योग्य भोग्य स्त्री, पुत्र, धन, ऐश्वर्य आदि के धारण पोषण करनेहारा है।

अग्ने देवाँ इहा वह सादया योनिषु त्रिषु।
परि भूष पिब ऋतुना ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! तू अग्नि या सूर्य के समान (इह) इस राष्ट्र या लोक में ( देवान् ) दिव्य गुणयुक्त पदार्थों एवं दानशील और विजयशील विद्वान्, धनवान् और बलवान् पुरुषों को (आ वह) प्राप्त करा। और उनको ( त्रिषु योनिषु ) तीनों उत्तम, मध्यम और निकृष्ट स्थानों पर (आ सादय) स्थापित कर। और (परि भूष) इन सबको सब प्रकार से सुशोभित कर। और ( ऋतुना ) बल, ऋतु और सहयोगी अमात्य आदि सहित ( पिब ) ऐश्वर्य का भोग कर।

ब्राह्मणादिन्द्र राधसः पिबा सोममृतूँरनु।
तवेद्धि सख्यमस्तृतम् ॥ ५ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! तू ( ऋतून् अनु ) प्राणों के सामर्थ्य से ( ब्राह्मणात् ) उस महान् परमेश्वर के ( राधसः ) आराधना, साधना या विभूति, ऐश्वर्य में से प्राप्त होनेवाले (सोमं ) उस परमानन्दमय रस को ( पिब ) पान कर । और हे आत्मन् ! ( तव उत् हि ) तेरा ही ( सख्यम् ) सख्य या मैत्रीभाव, प्रेम, ( अस्तृतम् ) कभी नष्ट नहीं होता । 'आत्मनःस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवति' । बृहदा उप० । राजा के पक्ष में—हे राजन् ! तू ऋतुओं या मन्त्रिगण अथवा राजसभा सदस्यों सहित ( ब्राह्मणात् ) महान् राष्ट्र के ऐश्वर्य से अथवा वेदोक्त प्राप्त अपने अंश रूप ऐश्वर्य का ग्रहण कर । तेरे सख्य का कभी नाश नहीं होता।

युवं दक्षं धृतव्रता मित्रावरुण दूळभम् ।
ऋतुना यज्ञमाशाथे ॥ ६ ॥ २८ ॥

भा०—हे ( धृतव्रता ) व्रतों, नियमों को धारण करने और उनको स्थिर रखने वाले ( मित्रावरुणा ) मित्र सब के स्नेही, दुष्टों के वारक तुम दोनों (ऋतुना) सूर्य और चन्द्र जिस प्रकार दोनों ऋतु के अनुसार संवत्सर रूप यज्ञ को धारण करते हैं और प्राण और अपान दोनों गति बल से जिस प्रकार देह को धारण करते हैं उसी प्रकार (युवं) तुम दोनों राजा और मन्त्री, गृह में गृहस्थ और गृहपत्नी ( ऋतुना ) सत्य धारक बल से ( दूळभम् ) शत्रुओं से नाश न होने वाले ( दक्षं ) बल को और ( यज्ञम् ) परस्पर संग से उत्पन्न प्रजापालन व्यवहार को ( आशाथे ) व्याप्त होकर रहो । उस पर वश रक्खो । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

द्रविणोदा द्रविणसो ग्रावहस्तासो अध्वरे ।
यज्ञेषु देवमीळते ॥ ७ ॥

भा०—( द्रविणसः ) धन ऐश्वर्य और द्रुत वेग को चाहनेवाले ज्ञानी पुरुष ( ग्रावहस्तासः ) उत्तम स्तुति करने से सिद्धहस्त होकर ( अध्वरे ) हिंसारहित, शुद्ध, पवित्र यज्ञ में और (यज्ञेषु) ईश्वरोपासना के कार्यों में

और (द्रविणोदाः) विद्या, बल, राज्य ऐश्वर्य के देने वाले (देवम्) परमेश्वर को ( ईळते ) उपासना स्तुति प्रार्थना करते हैं। अर्थात् यज्ञों में भी परमेश्वर की स्तुति करते हैं। राजा के पक्ष में—( ग्रावहस्तासः ) वज्र आदि हनन करने के शस्त्रास्त्रों को हाथ में लिये, उनको चलाने में कुशल, सिद्धहस्त होकर ( अध्वरे ) प्रजापालन और ( यज्ञेषु ) सेना संग्रामों में (द्रविणोदाः देवम् ईळते ) धन प्रदान करने वाले दाता राजा की ही कामना पूर्ण करते हैं। भौतिकाग्नि पक्ष में—प्रस्तरों को हाथ में लेकर यज्ञार्थ अग्नि को ही उत्पन्न करते हैं।

'द्रविणोदाः द्वितीयार्थे प्रथमा। अथवा—यः द्रविणोदास्तं देवमिति योजना।

द्रविणोदाः ददातु नो वसूनि यानि शृण्विरे।
देवेषु ता वनामहे ॥ ८ ॥

भा०—( यानि ) जिन भी बहुत से ( वसूनि ) प्राणियों को सुखपूर्वक बसानेवाले ऐश्वर्य ( शृण्विरे ) सुने जाते हैं, उन सबको वह ( द्रविणोदाः ) सब ऐश्वर्यों का देने वाला ही ( नः ) हमें ( ददातु ) प्रदान करे। और ( ता ) उनको ( देवेषु ) दिव्य कार्यों, राज्य व्यवहारों और विद्वानों के निमित्त ( वनामहे ) प्राप्त करें और उनके हित के लिये प्रदान करें।

द्रविणोदाः पिपीषति जुहोत प्र च तिष्ठत।
नेष्ट्राद् ऋतुभिरिष्यत ॥ ९ ॥

भा०—ऋत्विजों को ऐश्वर्य प्रदान करने वाला पुरुष जिस प्रकार सोम रसों का पान करता है उसी प्रकार ( द्रविणोदाः ) ऐश्वर्य प्रदान करने में समर्थ राजा ही ऐश्वर्य को ( पिपीषति ) भोग करने की अभिलाषा करता है। इसलिये हे वीरो! विद्वान् जनो! आप लोग ( जुहोत ) शस्त्रों का प्रहार करो, एवं परस्पर का लेन देन व्यवहार करो। और ( प्र तिष्ठत च )

आगे बढ़ो। और ( ऋतुभिः ) प्राणों के बल से जिस प्रकार मनुष्य (नेष्ट्रात्) व्यापक आत्मा या मन से ही समस्त इच्छाएं करते हैं और जिस प्रकार प्राणि ऋतुओं के सहित सबके नायक सूर्य से ही सब इष्ट फल प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे वीर पुरुषो ! तुम लोग भी ( ऋतुभिः ) ज्ञानवान् पुरुषों सहित ( नेष्ट्रात् ) सबसे आगे चलने वाले नायक पुरुष से ही ( इष्यत ) अपने इष्ट कार्यों को प्राप्त करो, उनकी आज्ञा पर चलो।

यत् त्वा तुरीयमृतुभिर्द्रविणोदो यजामहे।
अध स्मा नो ददिर्भव ॥ १० ॥

भा०—हे ( द्रविणोदः ) ऐश्वर्यों के देने हारे परमेश्वर ! ( यत् ) जिस ( तुरीयम् ) तुरीय, मोक्षस्वरूप तुझको ( ऋतुभिः ) प्राप्ति के समस्त साधनों से हम ( यजामहे ) उपासना करते हैं, ( अध ) और तू ही ( नः ) हमें ( ददिः ) सब पदार्थों का दाता, सब कष्टों और दुःखों से त्राता और रक्षक ( भव स्म ) हो। ( त्वा तुरीयम् ) हे राजन् ! तुझ चारों वर्गों के पूरक या शत्रु, मित्र और उदासीन सबसे ऊपर विद्यमान चतुर्थ तुझको हम ( ऋतुभिः यजामहे ) सब सदस्यों, एवं बलों से युक्त करें। तू हमारा दाता और रक्षक हो। परमेश्वर का तुरीय स्वरूप देखो माण्डूक्य उप०। "अमात्रश्चतुर्थोऽव्यवहार्यः प्रपञ्चोपशमः शिवोऽद्वैत एवमोङ्कार आत्मैव ॥ १२ ॥

अश्विना पिबतं मधु दीद्यग्नी शुचिव्रता।
ऋतुना यज्ञवाहसा ॥ ११ ॥

भा०—( अश्विना ) देह में व्यापक ( दीद्यग्नी ) जाठर अग्नि से स्वतः प्रदीप्त होने वाले ( शुचि-व्रता ) शरीर को शुद्ध करने वाले कर्मों के करने वाले होकर ( मधु ) अन्न का मधुर रस ( ऋतुना ) मुख्य प्राण के बल से पान करते हैं और वे दोनों ( यज्ञवाहसा ) आत्मा को धारण करते हैं। इसी प्रकार ( शुचिव्रता ) शुद्ध कर्मों और नियमों वाले (दीद्यग्नी)

अग्नि के समान स्वयं प्रकाशमान, अथवा राजारूप अग्रणी नेता पद के साथ प्रकाशित होने वाले, उसके संग विराजमान होकर ( अश्विना ) हे अश्वों पर चढ़ने वाले दो मुख्य अधिकारियो! या राजा रानियो ! तुम दोनों (यज्ञ-वाहसा ) राष्ट्ररूप यज्ञ, प्रजापालक प्रजापति पद को धारण करते हुए ( ऋतुना ) ऋतु अनुकूल, या बल से राज्य को प्राप्त करने वाले सामर्थ्य से ही ( मधु ) मधुर राष्ट्र के ऐश्वर्य का (पिबतम्) पान करो, उसका उप-भोग करो । राष्ट्र का धारण पोषण करना ही उसका उपभोग करना है । राष्ट्र को दुर्व्यसनों में नाश करना उसका भोग करना नहीं है । इसी प्रकार ( अश्विना ) एक दूसरे के हृदय में व्यापक, एक दूसरे के भोक्ता, पति पत्नी ( शुचिव्रता ) शुद्ध नियम व्रत का पालन करते हुए (दीद्यग्नी ) अग्नि-होत्र में अग्नि को प्रज्वलित करने वाले, आहिताग्नि होकर ( यज्ञवाहसा ) गार्हस्थ्य या परस्पर संगत यज्ञ को धारण करने वाले होकर ( ऋतुना ) ऋतु के अनुसार ( मधु ) मधुर गृहस्थ सुख का भोग करें ।

गार्हपत्येन सन्त्य ऋतुना यज्ञनीरसि ।
देवान् देवयते यज ॥ १२ ॥

भा०—हे (सन्त्य) दान करने और उत्तम विद्या, ऐश्वर्य आदि पदार्थों को विभाग या प्रदान करने में कुशल पुरुष ! तू (गार्हपत्येन ऋतुना) गृह-पति के पालन करने योग्य ऋतु से ही ( यज्ञनीः ) यज्ञ को सम्पादन करने वाले प्रमुख पुरुष के लिये ( देवान् यज ) उत्तम व्यवहारों को सम्पादन कर और ( देवान् यज ) उत्तम विद्वानों को सुसंगत कर । राजा के पक्ष में—( गार्हपत्येन ऋतुना ) हे राजन् ! तू गृहपति, पिता के योग्य विधान से यज्ञ रूप राष्ट्र का नायक हो । तू विजय कार्यों के करने वाले के लिये विजयी वीर पुरुषों को प्राप्त कर । इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

[ १६ ]

काण्वो मेधातिथिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । गायत्री । नवर्चं सूक्तम् ॥

आ त्वा वहन्तु हरयो वृषणं सोमपीतये ।
इन्द्र त्वा सूरचक्षसः ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! आत्मन् ! परमेश्वर ! ( हरयः ) जल ले लेने वाले किरण (सोमपीतये) रसों को पान करने के लिये जिस प्रकार ( वृषणं ) वर्षण करने वाले सूर्य या मेघ को धारण करते हैं, उसी प्रकार (सूरचक्षसः) सूर्य के समान तेजोमय, स्वतःप्रकाश परमेश्वर का साक्षात् करने वाले ( हरयः ) विद्वान् जन भी ( सोमपीतये ) आनन्दरस का पान करने के लिए ( त्वा वृषणं ) तुझ सब सुखों के वर्षक को ही ( वहन्ति ) हृदय में धारण करते हैं और ( त्वा ) तुझे ही साक्षात् करते हैं। अध्यात्म में— ( हरयः ) हे आत्मन् ! ये इन्द्रियगण तुझे धारण करते हैं। राजा के पक्ष में—हे ( इन्द्र ) राजन् ( सूरचक्षसः ) सूर्य के समान तीव्र चक्षु वाले, तेजस्वी लोग राष्ट्र के भोग और पालन के लिए तुझे ( वृषणं ) बल वान् एवं शस्त्रास्त्र वर्षक, या प्रजा पर सुख समृद्धि के वर्षाने वाले को ही मेघ के समान जानकर ( त्वा वहन्तु ) तुझे रथ को अश्वों के समान धारण करते हैं, तेरे कार्य वहन करते हैं।

इमा धाना घृतस्नुवो हरी इहोपवक्षतः ।
इन्द्रं सुखतमे रथे ॥ २ ॥

भा०—( हरी ) दो अश्व जिस प्रकार राजा को रथ द्वारा ले जाते हैं और सब पदार्थों और कालचक्र को ले जाने वाले कृष्ण और शुक्लपक्ष जिस प्रकार चन्द्र को, और दक्षिणायन और उत्तरायण जिस प्रकार सूर्य को धारण करते हैं, उसी प्रकार हे आत्मन् ! ( हरी ) हरणशील, गति मान् दोनों प्राण और अपान (इह) इस (सुखतमे) अति अधिक सुखकारी ( रथे ) रमण कराने वाले स्वरूप में ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्ययुक्त, आत्म-साक्षात्कार से देखने योग्य रसमय स्वरूप में (उपवक्षतः) धारण करते हैं। द्रष्टा को वहाँ तक पहुंचाते हैं। और जिस प्रकार दिन रात्रि या किरणें

काल को धारण करने से ( धानाः ) 'धाना' कहाती हैं सूर्य और चन्द्र की ज्योति या जल की धारणा करने से वे 'धानाः' हैं और तेजप्रद होने से 'घृतस्नु' हैं उसी प्रकार ( इमाः ) ये सब ( धानाः ) आत्मा को धारण करनेवाली नाड़ियां ( घृतस्नुवः ) आनन्द रस को स्रवण करने वाली हैं। राजा के पक्ष में—राजा के समस्त ऐश्वर्यों को धारण करने से प्रजाएँ ही 'धाना' हैं। वे तेज, अन्नादि देती हैं। उन तक दो अश्व राजा को अति सुखप्रद रथ में बैठाकर लावें।

'धानाः'—नक्षत्राणां वा एतद् रूपं यद् धानाः। तै० ३। ८। ४।५॥ अहोरात्राणां वा एतद् रूपं यद् धानाः। श० १३। २। १। ४॥ पशवो वै धानाः। कौ० १८। ६॥

इन्द्रं॑ प्रा॒तर्ह॑वामह॒ इन्द्रं॑ प्रय॒त्य॑ध्व॒रे।
इन्द्रं॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ ३ ॥

भा०—( प्रातः ) प्रातःकाल के अवसर पर प्रतिदिन हम ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर को ( हवामहे ) स्मरण करें। (प्रयति) उत्तम ज्ञान प्रदान करने वाले ( अध्वरे ) यज्ञ में भी हम उसी ( इन्द्रम् ) ईश्वर का स्मरण करें। और ( सोमस्य पीतये ) सोम, परम ब्रह्मानन्द रस के पान करने के लिए ( इन्द्रम् ) परमेश्वर को ही स्मरण करें। अथवा—( प्रातः ) नित्यप्रति, यज्ञ के अवसर पर और सोम रस के पान करने के लिए परमेश्वर, अग्नि विद्युत् और वायु की उपासना, उपयोग और साधना करें।

उप॑ नः सु॒तमा ग॑हि॒ हरि॑भिरिन्द्र के॒शिभिः॑।
सु॒ते हि त्वा॒ हवा॑महे ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर ! जिस प्रकार (केशिभिः) किरणों वाले, तेजोमय ( हरिभिः ) वेगवान् किरणों सहित जगत् को सूर्य या वायु प्राप्त होता है, उसी प्रकार तू भी किरणों वाले वेगवान् सूर्यादि पदार्थों द्वारा

(नः सुतम्) हमारे ज्ञानसे निष्पन्न आत्मा को ( आगहि ) प्राप्त हो। और ( सुते ) उपासना के अवसर में ही (त्वा) तुझे हम ( हवामहे ) पुकारते हैं। अध्यात्म में—हे इन्द्र, आत्मन्! तू ( केशिभिः ) क्लेश देनेवाले प्राणों सहित इस उत्पन्न देह को प्राप्त होता है। इस देह में आत्मा का ही ज्ञान करें। राजा के पक्ष में—केश वाले अश्वों सहित तू इस प्राप्त राष्ट्र में आ। अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्यमय राष्ट्र में तुझ को आदरपूर्वक स्मरण करते हैं।

सेमं नः स्तोममा गह्युपेदं सवनं सुतम्।
गौरो न तृषितः पिब ॥ ५ ॥ ३० ॥

भा०—( तृषितः ) पियासा (गौरः न) गौर मृग जिस प्रकार उत्सुक होकर जलाशय से जल पीता है उसी प्रकार हे परमेश्वर! तू ( गौरः ) स्तुतिवाणियों में रमण करने वाला होकर ( नः ) हमारे ( इमं स्तोमम् ) इस स्तुतिसमूह को ( आ गहि ) प्राप्त हो और ( इदम् सुतम् सवनं ) इस उत्तम रीति से सम्पादित उपासना रस का ( उप पिब ) पान कर, स्वीकार कर। राजा के पक्ष में—गौ अर्थात् पृथ्वी में रमण करने हारा राजा तृषित मृग के समान अति उत्सुक होकर प्रजा के जन संघ को प्राप्त करे और (इदं सुतम् सवनं) इस अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्यैश्वर्य को भोग करे। इति त्रिंशो वर्गः ॥

इमे सोमास इन्दवः सुतासो अधि बर्हिषि।
ताँ इन्द्र सहसे पिब ॥ ६ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर! ( इमे ) ये ( सुतासः ) उत्पन्न हुए ( इन्दवः ) परम ऐश्वर्ययुक्त ( सोमासः ) सूर्य, वायु आदि कारण पदार्थ ( बर्हिषि अधि ) अन्तरिक्ष और महान् आकाश में विद्यमान् हैं ( तान् ) उनको (सहसे) अपने बल से ( पिब ) पान कर, अपने भीतर धारण कर। अध्यात्म में ( सोमासः इन्दवः ) साक्षात् देह से देहान्तर में जाने वाले ये जीव ( बर्हिषि ) अन्न के आधार पर उत्पन्न हैं। हे परमेश्वर! उन्हें अपने

में धारण कर। जलों के पक्ष में-हे (इन्द्र) सूर्य! अन्तरिक्ष में ये द्रवणशील जल विद्यमान हैं उन्हें किरणों से पान कर । राजा के पक्ष में—( बर्हिषि ) प्रजाजन के ऊपर आज्ञा करने वाले ऐश्वर्यवान् उत्तम जन ( सुतासः ) अभिषिक्त हैं, उनको ( सहसे ) अपने बल की वृद्धि के लिये ( पिब ) पान कर, अपने में मिलाले, अपने अधीन कर ।

अयं ते स्तोमो अग्रियो हृदिस्पृगस्तु शंतमः ।
अथा सोमं सुतं पिब ॥ ७ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! ( ते ) तेरा ( अयं ) यह ( हृदिस्पृक् ) हृदय को स्पर्श करने वाला, अतिप्रिय, मनोहर ( स्तोमः ) स्तुति समूह ( अग्रियः ) सबसे श्रेष्ठ, सर्वोत्तम, ( शंतमः ) अतिशान्तिदायक ( अस्तु ) हो । ( अथ ) और तू ( सुतं ) उत्पन्न हुए इस ( सोमं ) जीव को ( पिब ) पानकर, अपनी शरण में ले । राजा के पक्ष में—( स्तोमः ) यह अधिकार सर्वश्रेष्ठ, सबके हृदयों को स्पर्श करने वाला तुझे शान्तिदायक हो । तू इस अभिषेक से प्राप्त राष्ट्र, या ( सोमं ) राजपद को स्वीकार कर ।

विश्वमित्सवनं सुतमिन्द्रो मदाय गच्छति ।
वृत्रहा सोमपीतये ॥ ८ ॥

भा०—( इन्द्रः ) वायु जिस प्रकार ( मदाय ) सब प्राणियों को आनन्दित और जीवन रस से तृप्त करने के लिये ( विश्वम् इत् ) इस समस्त ( सुतम् सवनं ) उत्पन्न जगत् को ( गच्छति ) व्यापता है और ( सोमपीतये ) जल को सर्वत्र पान कराने के लिये ही वह ( वृत्रहा ) मेघ को छिन्न भिन्न करने हारा है उसी प्रकार ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर ( सुतम् ) उत्पन्न हुए इस ( विश्वं सवनं ) समस्त सुखजनक ऐश्वर्यमय जगत् को ( मदाय ) आनन्द रस से तृप्त करने और ( सोमपीतये ) सोमरूप चैतन्य तत्व के पान कराने के लिये ( वृत्रहा ) आवरणकारी तामस आवरण को नाश करके ( गच्छति ) सर्वत्र व्याप रहा है ।

राजा के पक्ष में—शत्रुनाशक राजा अभिषेक से प्राप्त समस्त ऐश्वर्य को अपने हर्ष और राष्ट्र-भोग के लिये प्राप्त करता है।

सेमं नः काममा पृण गोभिरश्वैः शतक्रतो।
स्तवाम त्वा स्वाध्यः ॥ ९ ॥

भा०—हे ( शतक्रतो ) असंख्य कर्मों और प्रज्ञाओं वाले परमेश्वर ! या राजन् ! (सः) वह तू (नः) हमारे ( इमम् ) इस ( कामम् ) मनोरथ अभिलाषा को ( गोभिः ) गौओं और अश्वों से गृहस्थ और राष्ट्र के कार्यों के समान (आ पृण) पूर्ण कर। हम (स्वाध्यः) उत्तम रीति से तेरी चिन्ता करने वाले भक्तजन (त्वा) तेरी ही ( स्तवाम ) स्तुति करते हैं, तेरा ही गुणानुवाद करते हैं। अध्यात्म में—( गोभिः ) ज्ञानेन्द्रियों और ( अश्वैः ) कर्मेन्द्रियों से अपनी अभिलाषा को पूर्ण कर। हम शुभचिन्तक ध्यानशील होकर तेरी स्तुति करें। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

[ १७ ]

काण्वो मेध्यातिथिः। इन्द्रावरुणौ देवते। गायत्री। नवर्चं सूक्तम् ॥

इन्द्रावरुणयोरहं सम्राजोरव आ वृणे।
ता नो मृळात ईदृशे ॥ १ ॥

भा०—( अहम् ) मैं प्रजाजन ( सम्राजोः ) अच्छी प्रकार प्रकाशित होने वाले ( इन्द्रावरुणयोः ) इन्द्र और वरुण, राजा और सेनापति, दोनों के ( अवः ) रक्षा कार्य को ( आ वृणे ) स्वीकार करूँ, दोनों के रक्षा कार्य को आवश्यक जानता हूं। ( ता ) वे दोनों ( नः ) हमें सूर्य और चन्द्र के समान या वायु और मेघ या विद्युत और मेघ के समान ( ईदृशे ) इस प्रकार साक्षात् राज्यकार्य में ( मृळातः ) सुखी करते हैं। अध्यात्म में—इन्द्र=जीव, वरुण=परमेश्वर दोनों में से एक ब्रह्माण्ड और दूसरा देह में राजा के समान प्रकाशित होने से दोनों को मैं प्राप्त करूँ। वे दोनों हमें ( ईदृशे ) ऐसे लोक और परलोक में सुखी करते हैं।

गन्तारा हि स्थोऽवसे हवं विप्रस्य मावतः ।
धर्त्तारा चर्षणीनाम् ॥ २ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त इन्द्र और वरुण नामक राजा और सेनापति पुरुषो ! आप दोनों अग्नि और जल के समान ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों के (धर्त्तारौ ) धारण पोषण करने वाले हो । और ( मावतः ) मेरे समान ( विप्रस्य ) विविध ऐश्वर्यों से राष्ट्र को पूर्ण करने वाले बुद्धिमान प्रजाजन के (अवसे) रक्षा करने के लिए ( हवं ) युद्ध को भी ( गन्तारा स्थः हि ) निश्चय से जाने को सदा तैयार रहते हो । अग्नि और जल दोनों—विद्वान् पुरुष के ( हवं ) इच्छानुकूल शिल्पकलादि साधनों को प्राप्त होकर पुरुषों के धारक पालक और पोषक होते हैं।

अनुकामं तर्पयेथामिन्द्रावरुण राय आ ।
ता वां नेदिष्ठमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—हे ( इन्द्रा-वरुणा ) अग्नि और जल के समान प्रजा की समस्त अभिलाषाओं को पूर्ण करनेहारे ! तुम दोनों (रायः) ऐश्वर्य के (अनु-कामं) प्रत्येक प्रकार की अभिलाषा को (तर्पयेथाम् ) पूर्ण करो । (ता वाम् ) उन तुम दोनों को हम लोग ( नेदिष्ठम् ) अपने अति अधिक समीप ( ईमहे ) प्राप्त होकर याचना करते हैं।

युवाकु हि शचीनां युवाकु सुमतीनाम् ।
भूयाम वाजदाव्नाम् ॥ ४ ॥

भा०—हम लोग ( शचीनां ) उत्तम बुद्धियों, शक्तियों और वेदवाणियों के ( युवाकु ) साथ अपने को मिलायें रक्खें । और ( सुमतीनाम् ) उत्तम मनन करने वाली बुद्धियों वाले विद्वानों के साथ ( युवाकु ) हम सत्संग करें । और (वाज-दाव्नाम्) अन्न और ऐश्वर्य देनेवाले पुरुषों के बीच में हम ( भूयाम ) सदा रहें ।

इन्द्रः सहस्रदाव्नां वरुणः शंस्यानाम् ।
क्रतुर्भवत्युक्थ्यः ॥ ५ ॥

भा०—( सहस्रदाव्नाम् ) सहस्रों ऐश्वर्यों और सुखों के देने वालों में से ( इन्द्रः ) परमेश्वर, अग्नि, विद्युत्, सूर्य, मेघ, राजा यही ( क्रतुः ) क्रियावान्, कुशल एवं ( उक्थः ) प्रशंसायोग्य हैं । और ( शंस्यानाम् ) स्तुति करने योग्यों में से ( वरुणः ) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर, जल, वायु, चन्द्र और समुद्र ही ( क्रतुः उक्थः भवति ) क्रियावान् और प्रशंसा के योग्य हैं । इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

तयोरिदवसा वयं सनेम नि च धीमहि ।
स्यादुत प्ररेचनम् ॥ ६ ॥

भा०—( तयोः इत् ) उन दोनों के ही (अवसा) ज्ञान, रक्षण और तेजः सामर्थ्य से ( वयम् ) हम सब लोग (सनेम) समस्त सुखों का भोग करें । ( नि धीमहि च ) धन को कोष में संचय करें ( उत ) और हमारे पर ( प्र-रेचनं स्यात् ) बहुत अधिक ऐश्वर्य अपार धन हो ।

इन्द्रावरुण वामहं हुवे चित्राय राधसे ।
अस्मान्त्सु जिग्युषस्कृतम् ॥ ७ ॥

भा०—हे पूर्वोक्त ( इन्द्रावरुणा ) इन्द्र और वरुण राजन् ! और सेना-पते ! ( अहम् ) मैं प्रजाजन ( चित्राय राधसे ) अद्भुत, राज्य, सेना, भृत्य पुत्र, मित्र, सुवर्ण, रत्न, हस्ती, अश्व आदि से सम्पन्न एवं दूसरों के आश्रय-कारक धन को प्राप्त करने के लिए ( वाम् हुवे ) तुम दोनों को बुलाता हूं। आप दोनों ( अस्मान् ) हम सबको ( जिग्युषः ) विजयशील ( सुकृतम् ) भली प्रकार बनाओ ।

इन्द्रावरुण नू नु वां सिषासन्तीषु धीष्वा ।
अस्मभ्यं शर्म यच्छतम् ॥ ८ ॥

भा—हे (इन्द्रा वरुणा) इन्द्र और वरुण ! वायु और जल, या मेघ के

समान सुखप्रद ! ( वाम् ) आप दोनों को ( सिषासन्तीषु ) भजन या सेवन करनेवाली ( धीषु) प्रजाओं में आप दोनों ( अस्मभ्यम् ) हमें (शर्म) सुख ( आ यच्छतम् ) प्रदान करो ।

प्र वामश्नोतु सुष्टुतिरिन्द्रावरुण यां हुवे ।
यामृधाथे सधस्तुतिम् ॥ ६ ॥ ३३ ॥ ४ ॥

भा—हे ( इन्द्रावरुणा ) इन्द्र और वरुण ! पूर्वोक्त वायु जल ! उनके समान राजन् ! सेनापते ! ( यां ) जिस सत्य गुण वर्णन वाली स्तुति को मैं (हुवे) प्रकट करता हूं और ( याम् ) जिस सत्य ( सधस्तुतिम् ) अपने गुण वर्णनानुरूप क्रियाशक्ति को आप दोनों ( ऋधाथे ) बढ़ाते हो, वह ही गुण स्तुति और शक्ति ( वां अश्नोतु) आप दोनों को अच्छी प्रकार प्राप्त हो । इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

इति प्रथमे मण्डले चतुर्थोऽनुवाकः ।

[ १८ ]

ऋषि मेधातिथिः काण्वः । देवता—१—३ ब्रह्मणस्पतिः । ४ ब्रह्मणस्पतिरिन्द्रश्च सोमश्च । ५ बृहस्पतिदक्षिणे । ६—८ सदसस्पतिः । ९ सदस्सपतिर्नाराशंसोवा ॥ गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

सोमानं स्वरणं कृणुहि ब्रह्मणस्पते ।
कक्षीवन्तं य औशिजः ॥ १ ॥

भा—हे ( ब्रह्मणः पते ) वेदों और वेदज्ञ विद्वानों के पालन करनेहारे परमेश्वर ! तू ( सोमानं ) यज्ञ कर्म के करनेवाले, अपने उपासक को (यः) जो ( औशिजः ) तेजस्वी, वीर्यवान् पुरुष, गुरु का पुत्र या शिष्य है उसको ( स्वरणम् ) उत्तम शब्दार्थों का ज्ञाता और उपदेष्टा तथा ( कक्षीवन्तम् ) हाथों की अंगुलियों से किये जाने वाली शिल्प क्रिया में भी सिद्ध हस्त

( कृणुहि ) कर । आचार्य के पक्ष में—हे आचार्य ! ( यः औशिजः ) जो तेजस्वी माता पिता का बालक है उसको ( सोमानं ) अभिषव अर्थात् स्नान करने अर्थात् विद्या पढ़कर स्नातक बनने वाला, तथा (स्वरणम्) उत्तम शब्दार्थ का ज्ञाता, तथा ( कक्षीवन्तम् ) हाथों की क्रियाओं में कुशल, अर्थात् ज्ञानवान् और क्रियावान् ( कृणुहि ) बना । राजा के पक्ष में—हे (ब्रह्मणः पते) समस्त ब्रह्म के स्वामिन्! मुख्य पुरोहित तू (यः) जो (औशिजः) तेजस्वी, पराक्रमी या कामना, इच्छा वाले माता-पिता या प्रजाजन से उत्पन्न है, जिसको प्रजा चाहती है ऐसे ( सोमानं ) अभिषेक करने योग्य राजा को ( स्वरणम् ) सबका आज्ञापक और शत्रुओं का उपतापक और (कक्षीवन्तं) कसे कसाये घोड़े के समान बलवान्, एवं शत्रुबल को अवगाहन करने की शक्ति से युक्त, एवं राष्ट्र रूप रथको खैंच लेने में समर्थ, अथवा (कक्षीवन्तं) अगल बगल की प्रबल सेनाओं से सम्पन्न ( कृणुहि ) बना ।

'कक्षीवन्तं'—कक्षीवान् कक्ष्यावान्। अपि त्वयं मनुष्यकक्ष एवाभिप्रेतः स्यात् । नि० ६। १० ॥ कक्ष्या रज्जुः । अश्वस्य कक्षं सेवते । कक्षो गाहतेः । क्सः इति नामकरणः। ख्यातेर्वाऽनर्थकोऽभ्यासः । किमस्मिन् ख्यानमिति वा। कषतेर्वा तत्सामान्यान्मनुष्यकक्षः। बाहुमूलसामान्यादश्वस्य। निरु० २।१।२॥

'औशिजः'—उशिजः पुत्रः । उशिग् वष्टेः कान्तिकर्मणः ।

यो रे॒वान्यो अ॑मीव॒हा व॑सु॒वित्पु॑ष्टि॒वर्ध॑नः ।
स नः॑ सिषक्तु॒ यस्तु॒रः ॥ २ ॥

भा०—(यः) जो (रेवान्) विद्या और धनैश्वर्य से सम्पन्न, (अमीवहा) वैद्य के समान समस्त दुःखदायी रोगकारणों का नाश करने वाला, ( वसुवित् ) समस्त लोकों को जानने वाला, ( पुष्टि-वर्धनः ) अन्न और ज्ञान से शरीर और आत्मा को पुष्ट करने वाला है । और ( यः ) जो ( तुरः ) अति वेगवान्, शीघ्र सुख फल देने वाला है (सः) वह (नः) हमें (सिषक्तु) प्राप्त हो।

राजा के पक्ष में—जो ऐश्वर्यवान्, रोगों के समान शत्रुओं का नाशक, गौ आदि सम्पत्ति का बढ़ानेवाला, राष्ट्र का पोषक, ऐश्वर्य को युद्धादि द्वारा प्राप्त करने और प्रजा को देने वाला, ( ब्रह्मणस्पतिः ) वेदज्ञ विद्वानों का पालक ( यः तुरः ) और जो शत्रु पर वेग से आक्रमणकारी है वह ( नः सिषक्तु) हमें संगठित करे, हम में संघ बनाकर बलवान् करे ।

मा नः शंसो अररुषो धूर्तिः प्रणङ् मर्त्यस्य ।
रक्षा णो ब्रह्मणस्पते ॥ ३ ॥

भा०—( अररुषः ) अदानशील, अथवा पीड़ादायी (मर्त्यस्य) मनुष्य की (धूर्त्तिः) विनाशकारी शक्ति (प्रणङ्) नष्ट हो। और (नः शंसः मा प्रणक्) और हमारी ख्याति नष्ट न हो । हे (ब्रह्मणस्पते) महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन् परमेश्वर ! महान् राष्ट्र के पालक राजन् ! वेद के पालक आचार्य ! (नः रक्ष) हमारी तू रक्षा कर । अथवा ( अररुषः धूर्तिः शंसः नः मा प्रणक् ) दुष्ट पुरुष का नाशकारी, कष्टप्रद वचन या उपदेश हम तक न पहुंचे । अपि तु वेदज्ञ विद्वान् हमारी रक्षा करे ।

स घा वीरो न रिष्यति यमिन्द्रो ब्रह्मणस्पतिः ।
सोमो हिनोति मर्त्यम् ॥ ४ ॥

भा०—( यम् ) जिस ( मर्त्यम् ) पुरुष को (इन्द्रः) वायु, प्राणवायु (सोमः) सोमलता आदि ओषधिसमूह और (ब्रह्मणः पतिः) वेद का पालक विद्वान् और ब्रह्माण्ड का स्वामी परमेश्वर ( हिनोति) बढ़ाते हैं ( सः घ ) वह (वीरः) शत्रुबलों को तितरवितर करने में समर्थ वीर पुरुष (न रिष्यति) कभी दुःख नहीं पाता, कभी नष्ट नहीं होता । अथवा—जिस प्रजाजन को ( इन्द्रः ) शत्रुनाशक सेनापति, (ब्रह्मणस्पतिः) वेदज्ञ विद्वान् और (सोमः) ऐश्वर्यवान् राजा बढ़ाते हैं वह नष्ट नहीं होता ।

त्वं तं ब्रह्मणस्पते सोम इन्द्रश्च मर्त्यम् ।
दक्षिणा पात्वंहसः ॥ ५ ॥ ३४ ॥

भा०—हे ( ब्रह्मणः पते ) महान् ब्रह्माण्ड के स्वामिन्! वेदज्ञ विद्वन्! बृहत् राष्ट्र के पालक राजन्! ( त्वं ) तू (सोमः) ओषधि रस विद्वान् जन, और वीर्यादि सामर्थ्य, (इन्द्रः च) सेनापति, प्राण, वायु और ( दक्षिणा ) बढ़ने की उत्तम धर्म नीति ये सब (तं) उस (मर्त्यम्) पुरुष को (अंहसः) पाप से ( पातु ) पालन करें।

सदसस्पतिमद्भुतं प्रियमिन्द्रस्य काम्यम्।
सनिं मेधामयासिषम् ॥ ६ ॥

भा०—मैं (अद्भुतं) अद्भुत, आश्चर्यकारी, ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् राजवर्ग और वैश्यवर्ग के ( प्रियम् ) प्रिय लगनेहारे, ( काम्यम् ) सब प्रजा के इच्छानुकूल, ( सनिम् ) योग्य ज्ञान और उचित, श्रमानुकूल वेतन पुरस्कार आदि देने वाले ( सदसः ) विद्वानों के एकत्र बिचारार्थ बैठने की सभा के ( पतिम् ) पालक न्यायसभा या धर्मसभा के नेता सभापति को मैं ( मेधाम् ) धारणावती उत्तम बुद्धि प्राप्त करने के लिए ( अयासिषम् ) प्राप्त करूँ। अथवा—मैं प्रजाजन या राजा ( मेधाम् ) अपने आपको धारण करनेवाले, आत्मसंयमी अथवा सबके साथ प्रेम से मिलनेहारे को, प्राप्त करूँ। परमात्मपक्ष में—( इन्द्रस्य काम्यम् ) जीव के प्रिय ( सदसः पतिम् ) लोकसमूह, ब्रह्माण्ड के पालक, सबको कर्म फलों के दाता, परमेश्वर को मैं ( मेधाम् ) बुद्धि प्राप्त करने के लिए प्राप्त होऊँ, या उसकी उपासना करके उत्तम बुद्धि प्राप्त करूँ।

यस्मादृते न सिध्यति यज्ञो विपश्चितश्चन।
स धीनां योगमिन्वति ॥ ७ ॥

भा०—( यस्मात् ऋते ) जिसके बिना ( विपश्चितः चन ) बड़े भारी विद्वान् पुरुष का भी ( यज्ञः ) यज्ञ, कोई भी उत्तम कार्य, उपासना आदि ( न सिद्धयति ) सफल नहीं होता, (सः) वह परमेश्वर सर्वोपास्य, (धीनां) समस्त बुद्धियों के और कर्मों के ( योगम् ) एकाग्रचित्त से ध्यान करने

( इन्वति ) योग्य है । अथवा—( सः धीनां योगम् ) वह समस्त बुद्धियों का संयोजन या प्रेरणा करना जानता है । वही सब बुद्धियों को प्रेरणा करता और सब कर्मों का संचालक है । अथवा—(यस्मात् विपश्चितः ऋते यज्ञः चन न सिद्ध्यति ) जिस मेधावी, ज्ञानवान् के बिना कोई यज्ञ सफल नहीं होता वह सब बुद्धियों को प्रेरणा करे । विद्वान् के पक्ष में—जिस विद्वान् के विना ( यज्ञः ) कोई परस्पर का संगत राज्य आदि समवाय न चल सके वह मुख्य पुरुष सब कार्यों का नियोजन करे ।

आदृध्नोति हुविष्कृतिं प्राञ्चं कृणोत्यध्वरम् ।
होत्रा देवेषु गच्छति ॥ ८ ॥

भा०—पूर्वोक्त सभापति के समान सर्वोच्च, सर्वप्रेरक मुख्य पुरुष ही ( आत् ) तब ( हविष्कृतम् ) स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों के सम्पादन करने वाले यज्ञादि उत्तम कार्यों को ( ऋध्नोति ) सम्पन्न करता है । और ( अध्वरं ) यज्ञ को ( प्राञ्चम् ) उन्नति की ओर जाने वाला, अविनश्वर, निर्विघ्न बनाता है । और ( होत्रा ) दान देने योग्य पदार्थों को ( देवेषु ) विद्वान् पुरुषों के निमित्त (गच्छति) प्राप्त कराता है । अथवा—( देवेषु ) विद्वानों के लिए ही ( होत्रा गच्छति ) आहुति आदि यज्ञ कार्यों को प्राप्त होता है । परमेश्वर पक्ष में—अन्नादि कर्म फलों के उत्पादक, अविनश्वर जगत्मय यज्ञ को वही सम्पन्न करता, हवनादि क्रियाओं को करता और दिव्य गुणों या दिव्य पदार्थों में व्याप्त है ।

नराशंसं सुधृष्टममपश्यं सुप्रथस्तमम् ।
दिवो न सद्ममखसम् ॥ ९ ॥ ३५ ॥

भा०—मैं (नराशसं) समस्त मनुष्यों के प्रशंसा और स्तुति करने योग्य परमेश्वर को ही ( सुधृष्टमम् ) सबसे अधिक अच्छी प्रकार से ब्रह्माण्ड को धारण करने वाला और (सप्रथस्तमम्) अति विस्तृत आकाश, काल, दिशा आदि पदार्थों के साथ, उनके समान ही व्यापक और ( दिवं न ) सूर्यादि

प्रकाशवान् लोकों के समान ( सद्ममखसम् ) सबके आश्रय होकर तेज प्रकाश से युक्त अथवा—( दिवः सद्ममखसं न ) महान् आकाश और सूर्य के भी महान् आश्रय-गृह के समान ( अपश्यम् ) देखता हूं, जानता हूं। अर्थात् परमेश्वर ही जगत् को सबसे उत्तम रीति से धारण कराता है, वही आकाशादि पदार्थों में सबसे अधिक व्यापक है। वह समस्त तेजस्वी पदार्थों का आश्रय रूप तेज अर्थात् सबका प्रकाशक, उत्पादक और आश्रय गृह के के समान है। वही सब मनुष्यों के स्तुति करने योग्य है। राजा के पक्ष में—राष्ट्र के उत्तम धारक, सबसे अधिक विस्तृत यशस्वी, सूर्य के समान सर्वाश्रय, तेजस्वी पुरुष को ( नराशसं ) सर्वस्तुत्य पद के योग्य प्रजापालक जानता हूं। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः ॥

[ १६ ]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः। अग्निर्मरुतश्च देवते। गायत्री। नवर्चं सूक्तम् ॥

प्रति त्यं चारुमध्वरं गोपीथाय प्र हूयसे।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान अति तेजस्विन्! ज्ञानवन्! विद्वन्! परमेश्वर! ( त्वं ) उस जगत्प्रसिद्ध ( अध्वरम् ) नित्य विद्यमान, ब्रह्माण्ड मय ( चारुम् ) उत्तम यज्ञ की ( गोपीथाय ) रक्षा के लिये तू ( प्रति प्र हूयसे ) प्रतिदिन स्तुति किये जाने योग्य है। तू (मरुद्भिः) विद्वानों एवं वायुओं के समान व्यापक पदार्थों के साथ ( आगहि ) आ, हमें प्राप्त हो। राजा के पक्ष में —हे ( अग्ने ) तेजस्विन्! अग्रणी राजन्! (मरुद्भिः) तू शत्रुओं को मारने वाले, वायु के समान तीव्र वेग से जाने वाले वीर पुरुषों सहित आ। तू इस श्रेष्ठ, न नाश होने वाले, यज्ञ राष्ट्र के रक्षार्थ अच्छी प्रकार प्रस्तुत किया जाता है। भौतिकाग्नि पक्ष में—अग्नि ( मरुद्भिः ) वायु से अधिक प्रदीप्त होता है, वह यज्ञ की रक्षा के लिये उपदेश किया जाता है।

नुहि देवो न मर्त्यों महस्तव क्रतुं परः ।
मुरुद्भिरग्न आ गहि ॥ २ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ! ज्ञानवन् परमेश्वर ! ( तव ) तेरे ( महः ) महान् ( क्रतुम् ) कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से ( देवः ) कोई तेजस्वी पदार्थ ( परः नहि ) परे नहीं है । अर्थात् सूर्यादि पदार्थ भी तेरे ज्ञान और कार्य सामर्थ्य से कम और उसके भीतर हैं । (न) और (न) न कोई (मर्त्यः) मरणधर्मा जीव ही (तव क्रतुम् परः) तेरे कर्म और ज्ञान सामर्थ्य से परे है । तू ही ( मरुद्भिः ) वायु आकाश आदि व्यापक और प्रकाश, विद्युत् आदि तीव्र वेगवान् भूत तत्वों सहित ( आ गहि ) प्रकट होता है । ये सब परमेश्वर के ही महान् सामर्थ्य हैं ।

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोयमग्निः ।
तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति ॥ काठ०उ०॥

भौतिक अग्नि के पक्ष में—अग्नि मरुद्गणों सहित प्रकट होता है । कोई (देवः) तेजस्वी पदार्थ या जीव उसके महान् क्रियाशक्ति को पार नहीं कर सकता । राजा के पक्ष में—कोई साधारण मनुष्य राजा के सामर्थ्य से ऊंचा नहीं, वह तेजस्वी राजा अपने सेनागणों सहित आवे ।

ये महो रजसो विदुर्विश्वे देवासो अद्रुहः ।
मुरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) विज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! ( ये ) जो ( विश्वे ) समस्त ( अद्रुहः ) परस्पर द्रोह न करने वाले, एक दूसरे के साथ मिल कर, एक दूसरे के उपकारक होकर ( महः रजसः ) बड़े २ लोकों को ( विदुः ) प्राप्त हैं उन ( मरुद्भिः ) तीव्रगामी, वायु आदि तत्वों के सहित तू ( आ गहि ) प्रकट है । भौतिक पक्ष में—जो द्रोहरहित, विद्वान्-गण नक्षत्रादि लोकों को, ज्ञान करते हैं ( मरुद्भिः ) उन विद्वानों द्वारा तू जाना जाय । अध्यात्म में—द्रोहरहित दयालु ( देवासः ) विद्वान् जन को

उत्कृष्ट ज्ञानप्रकाश को प्राप्त करते हैं, तू उनको हे ( अग्ने ) आत्मन् ! प्राणों द्वारा या उन सहित प्राप्त है। राजा के पक्ष में—सब विद्वान्गण द्रोह रहित होकर बड़े लोक, जनसमुदाय या महान् ऐश्वर्य को प्राप्त करें। हे ( अग्ने ) अग्रणी राजन् ! तू गणों सहित प्राप्त हो।

य उग्रा अर्कमानृचुरनाधृष्टास ओजसा।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ४ ॥

भा०—( ये ) जो ( उग्राः ) अति बलवान्, वेगवान्, (अनाधृष्टासः) कभी शत्रुओं से धर्षण या पराजय को प्राप्त न होने हारे, ( ओजसा ) अपने बल पराक्रम के द्वारा ( अर्कम् ) सूर्य के समान तेजस्वी सम्राट् के ( आनृचुः ) गुणों को प्रकाशित करते हैं उन ( मरुद्भिः ) वायु के समान तीव्र बलवान् वीर पुरुषों सहित हे ( अग्ने ) शत्रुसंतापक, अग्रणी राजन्! तू ( आगहि ) आ, हमें प्राप्त हो। परमेश्वर के पक्ष में—जो (उग्राः) बलवान्, ( ओजसा ) बल से पराजित न होकर भी अर्चनीय परमेश्वर को उपासना करते हैं उन विद्वानों द्वारा हे ज्ञानवन्! तू हमें प्राप्त हो। भौतिक पक्ष में—जो वेगवान्, अनिवार्य, वायु गण सूर्य के ताप आदि गुणों को प्रकाशित करते हैं उन वायुओं से अग्नि भी तीव्र होती है।

ये शुभ्रा घोरवर्पसः सुक्षत्रासो रिशादसः।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ५ ॥ ३६ ॥

भा—(ये) जो वीर पुरुष ( शुभ्राः ) श्वेत वर्ण के, उज्ज्वल रूप वाले, नाना अलंकारों और गुणों से सुशोभित, ( घोरवर्पसः ) शत्रुओं का नाश करने वाले, भयानक रूप को धारण करने वाले, ( सु-क्षत्रासः ) उत्तम क्षात्र-बल से युक्त, ( रिशादसः ) हिंसक दुष्ट पुरुषों के भी नाश करने वाले हैं उन ( मरुद्भिः ) वेगवान् वीर पुरुषों सहित, हे ( अग्ने ) अग्रणी, तेजस्विन् ! तू ( आगहि ) आ। वायुपक्ष में—जो ( शुभ्राः ) उत्तम

गुण वाले, शुद्ध ( घोरवर्पसः ) आघात करने वाले, अति बलवान्, रोगों के नाश कारी वायु हैं उनके साथ अग्नि हमें प्राप्त हो ।

ये नाकस्याधि रोचने दिवि देवास आसते ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार (रोचने दिवि) प्रकाशमान सूर्य के आश्रय पर जो पृथिवी, चन्द्र, अन्यान्य ग्रह आदि है, या प्रकाश की किरणें हैं उनके साथ ही सूर्य उदय होता है उसी प्रकार ( नाकस्य ) सुखयुक्त राष्ट्र के ( अधि ) ऊपर अधिष्ठाता रूप से विद्यमान (रोचने) स्वयं ज्ञानवान् , तेजस्वी (दिवि) सर्वोपरि ज्ञानप्रद राजसभा में ( ये ) जो देवासः विद्वान् पुरुष ( आसते ) विराजते हैं उन ( मरुद्भिः ) राष्ट्र के प्राणस्वरूप विद्वान् पुरुषों के साथ हे (अग्ने) अग्रणी तेजस्विन् ! नायक ! तू (आ गहि) हमें प्राप्त हो । इति षट्त्रिंशो वर्गः

य ईङ्खयन्ति पर्वतान् तिरः समुद्रमर्णवम् ।
मरुद्भिरग्न आगहि ॥ ७ ॥

भा०—( ये ) जो ( पर्वतान् ) पर्वतों को और ( अर्णवम् ) जल-युक्त ( समुद्रम् ) समुद्र को, अथवा—( समुद्रम् ) अन्तरिक्ष और (अर्णवम् ) समुद्र को ( तिरः ईंखयन्ति ) उथलपुथल करते हैं उन ( मरुद्भिः ) वायुओं सहित हे ( अग्ने ) सूर्य एवं विद्युत् ! तू ( आ गहि ) हमें प्राप्त हो । इसी प्रकार ( ये ) जो वीर पुरुष ( पर्वतान् ) पर्वतों के समान प्रजाओं को पालन करने वाले भूमियों को कंपा देते हैं। और जो (अर्णवम्) ऐश्वर्यसम्पन्न, बलवान् , ( समुद्रम् ) जल से भरे समुद्र के समान गम्भीर सेना-बल को भी (तिरः कुर्वन्ति) नीचा दिखाते हैं उन ( मरुद्भिः ) वायु के समान तीव्र वेग से आक्रमण करने वाले वीर पुरुषों के साथ, हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! राजन् ! तू ( आ गहि ) प्राप्त हो ।

आ ये तन्वन्ति रश्मिभिस्तिरः समुद्रमोजसा ।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ८ ॥

भा०—(ये) जो वायुगण ( रश्मिभिः ) सूर्य की किरणों के ताप से ( तन्वन्ति ) फैलते हैं और (ओजसा ) बलपूर्वक ( समुद्रम् ) अन्तरिक्ष और जलमय सागर को भी ( तिरः कुर्वन्ति ) उथलपुथल कर देते हैं, उन ( मरुद्भिः ) वेगवान् प्रचण्ड वायुओं सहित हे (अग्ने) सूर्य ! तू (आ गहि) प्राप्त हो। उसी प्रकार जो वीर पुरुष सूर्य-किरणों के समान फैलने वाली अश्व की रासों से तथा उनके समान प्रजा को वश करने वाले साधनों से राष्ट्र को विस्तृत करते हैं और ( ओजसा ) बल से अपार सागर को भी ( तिरः कुर्वन्ति ) तिरस्कार करते हैं उन वीर पुरुषों के साथ, हे नायक ! तू प्राप्त हो।

अभि त्वा पूर्वपीतये सृजामि सोम्यं मधु।
मरुद्भिरग्न आ गहि ॥ ६ ॥ ३७ ॥ १ ॥

भा०—( अग्ने ) अग्ने ! राजन् ! मैं ( त्वा ) तेरे निमित्त (सोम्यम्) ऐश्वर्य अथवा राजपद योग्य, सुखजनक ( मधु ) मधुर, अन्न आदि पदार्थ एवं बल और अधिकार को ( पूर्वपीतये ) सबसे प्रथम आनन्दपूर्वक स्वीकार करने के लिये सोम रस के समान ही (अभिसृजामि) प्रस्तुत करता हूं। वे ( मरुद्भिः ) वायुओं सहित जिस प्रकार सूर्य पृथिवी पर जलों को रश्मियों द्वारा पान करने के लिये आता है उसी प्रकार तू भी ( आ गहि ) आ। इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

इति प्रथमष्टाके प्रथमोऽध्यायः समाप्तः।

---

## अथ द्वितीयोऽध्यायः ॥

## [ २० ]

॥ २० ॥ १—८ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता—ऋभवः ॥ छन्दः—३ विराड् गायत्री । ४ निचृद्गायत्री । ५, ८ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । १, २, ६, ७ गायत्री ॥ षड्जः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

अ॒यं दे॒वाय॒ जन्म॑ने॒ स्तोमो॒ विप्रे॑भिरा॒सया॑।
अका॑रि रत्न॒धात॑मः ॥ १ ॥

भा०—( विप्रेभिः ) बुद्धिमान् पुरुष ( आसया ) अपने मुख से ( देवाय ) दिव्य, उत्तम गुणों से युक्त ( जन्मने ) जन्म, इस देह रचना, एवं पुनर्जन्म ग्रहण के निमित्त ( रत्नधातमः ) उत्तम २ रमण योग्य सुखों के देने वाले ( अयम् ) इस प्रकार के ( स्तोमः ) स्तुति समूह को (अकारि) करते हैं।

य इन्द्रा॑य वचो॒युजा॑ तत॒क्षुर्मन॑सा॒ हरी॑।
शमी॑भिर्य॒ज्ञमा॑शत ॥ २ ॥

भा०—(ये) जो विद्वान् पुरुष, शिल्पी जिस प्रकार ऐश्वर्यवान् राजा या स्वामी के लिये वाणी के साथ चलने वाले दो वेगवान् अश्वों को निर्माण करते और नाना कर्म कौशलों से सब कल पुर्ज़ों की व्यवस्था करते हैं उसी प्रकार ( ये ) जो विद्वान् पुरुष ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् परमेश्वर के लिये ( मनसा ) अपने मनन सामर्थ्य से ( वचोयुजा ) वाणी के साथ योग देने वाले, उसके साथ समाहित होने वाले ( हरी ) गतिशील, प्राण और अपान दोनों को ( ततक्षुः ) साधते हैं। वे ही ( शमीभिः ) शान्ति दायक साधनाओं से ( यज्ञम् ) सर्वोपास्य परमेश्वर के स्वरूप को (आशत) प्राप्त करते हैं। आत्मा के पक्ष में—(ये) जो प्राणगण ( वचोयुजा मनसा ) वाणी के साथ समाहित, एकाग्र हुए चित्त से ( इन्द्राय ) आत्मा के लिये ही ( हरी ततक्षुः ) इन्द्रियों को वश कर लेते हैं वे लोग साधनाओं से आत्मा को साक्षात् करते हैं। अथवा—जो विद्वान् पुरुष (मनसा) विज्ञान से ( वचोयुजा ) वाणी के साथ चलने वाले ( हरी ) वेगवान् साधनों को पैदा करते हैं वे ( शमीभिः ) शिल्प क्रियाओं से ( यज्ञम् आशत ) सुसंगत शिल्प को भोगते हैं।

तक्षन्नासत्याभ्यां परिज्मानं सुखं रथं ।
तक्षन् धेनुं सबर्दुघाम् ॥ ३ ॥

भा०—और जो विद्वान् शिल्पीजन (नासत्याभ्याम्) सदा सत्य व्यवहार से वर्त्तने हारे स्त्री पुरुषों के लिये ( परिज्मानम् ) सब तरफ़ जाने वाले ( सुखं ) उत्तम सुखप्रद अवकाश युक्त ( रथम् ) रमण साधन रथ आदि यान ( तक्षन् ) बनाते हैं और उनके लिये ही ( सबर्दुघाम् ) दुग्धादि रस देने वाली ( धेनुम् ) गाय के समान अमृत, मोक्षज्ञान को पूर्ण करने वाली ( धेनुम् ) वाणी को ( तक्षन् ) उपदेश करते हैं वे मानयोग्य हैं ।

युवाना पितरा पुनः सत्यमन्त्रा ऋजूयवः ।
ऋभवो विष्ट्यक्रत ॥ ४ ॥

भा०—( सत्यमन्त्राः ) सत्य विचारों से युक्त ( ऋजूयवः ) ऋजु, धर्म मार्ग पर चलने हारे, ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले, तेजस्वी विद्वान् पुरुष ( युवाना ) युवा, गृहस्थ स्वधर्म में वृद्ध, परस्पर संगत हुए, ( पितरा ) माता पिता, स्त्री पुरुषों को ( विष्टी ) एक दूसरे में प्रेमपूर्वक आविष्ट सुसंगत एवं अनुकूल ( अक्रत ) बनाते हैं ।

'ऋभवः'—मेधाविनाम । उरु भान्तीति वा, ऋतेन भवन्तीति वा । निरु० ११ । २ । ३ ॥ आदित्यरश्मयोपि ऋभव उच्यन्ते । निरु० ११ । २ । ४ ॥ उरूपपदाद् भातेर्भवतेर्वा मृगय्वादित्वात् कुप्रत्ययः । टिलोपः सम्प्रसारणं च निपातनात् ।

सं वो मदासो अग्मतेन्द्रेण च मरुत्वता ।
आदित्येभिश्च राजभिः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! ( वः ) आप लोगों के ( मदासः ) आनन्द और हर्ष ( मरुत्वता इन्द्रेण च ) वायुओं सहित मेघ, उसके समान वीर सैनिकों और प्रजा पुरुषों से युक्त सेनापति के साथ और ( आदित्येभिः ) सूर्य की किरणों और उनके समान तेजस्वी ( राजभिः ) राजाओं के साथ

( अग्मत ) प्राप्त होते हैं। अर्थात्, जैसे सूर्य की किरणों का रस तृप्ति योग वायु युक्त विद्युत् और प्रखर किरणों के साथ है उसी प्रकार विद्वानों के विद्या-विलासादि आनन्द शिष्यों सहित आचार्य, प्रजाओं सहित राजा, और वीरों सहित सेनापति, और तेजस्वी राजाओं के साथ है। इसी प्रकार शिल्पियों के लिए भी सेनापति, राजा आदि का आश्रय आवश्यक है। वह भी 'इन्द्र' = विद्युदादि शिल्प करते हैं। इति प्रथमो वर्गः ॥

उत त्यं चमसं नवं त्वष्टुर्देवस्य निष्कृतम् ।
अकर्त चतुरः पुनः ॥ ६ ॥

भा०—(उत) और (देवस्य) दानशील, सब पदार्थों के द्रष्टा, विद्वान् ( त्वष्टुः ) शिल्पी के ( निष्कृतम् ) उत्तम रीति से बनाये गये शिल्प कार्य को देखकर जिस प्रकार अन्य शिल्पी उसके अनुकरण में और बहुत से पदार्थ बना लेते हैं उसी प्रकार ( देवस्य त्वष्टुः ) सबको ज्ञान और चेतना देनेवाले परमेश्वर के (त्यं) उस जगत्-प्रसिद्ध, (नवं) सदा नवीन, एवं सदा स्तुति-योग्य, ( चमसम् ) सुखादि प्राप्त करने योग्य ( निष्कृतम् ) सब प्रकार से उत्तम रीति से बने, सुसम्पादित वेद ज्ञान को ( पुनः ) फिर ज्ञान विज्ञान कर्म और उपासना भेद से (चतुरः) चार रूपों से (अकर्त्त) साक्षात् करते हैं।

अध्यात्म में—मुख्य एक प्राणरूप चमस को नाना प्राणों ने चक्षु, घ्राण, मुख और कान रूप से चार चार प्रकार से विभक्त किया है। इसी प्रकार सूर्य रूप महाचमस को दिशा और ऋतुभेद से चार प्रकार का कल्पित किया है।

ते नो रत्नानि धत्तन त्रिरा साप्तानि सुन्वते ।
एकमेकं सुशस्तिभिः ॥ ७ ॥

भा०—( ते ) वे विद्वान् पुरुष (सुन्वते) सवन, ऐश्वर्य, राज्याभिषेक और यज्ञ उपासना करने वाले के लिए ( साप्तानि त्रिः ) सात तिया, २१ प्रकार के ( रत्नानि ) सुख से रमण करने योग्य पदार्थों को (सुशस्तिभिः)

उत्तम उपदेशयुक्त क्रियाओं द्वारा ( एकम्-एकम् ) एक २ करके (धत्तन) धारण करें, करावें । यज्ञपक्ष में–'त्रि साप्तानि'–अग्न्याधेय, दर्श, पूर्णमास, अग्निहोत्र, आग्रायण, चातुर्मास्य, निरुढ़पशुबन्ध, सौत्रामणी ये सात हविर्यज्ञ संस्था हैं । पञ्चमहायज्ञ, अष्टकाश्राद्ध, श्रवणाकर्म प्रत्यवरोहण, शूलगव और आश्वयुजीकर्म ये सात पाकयज्ञ संस्था हैं । अग्निष्टोम, अत्यग्निष्टोम, पोडशी, वाजपेय, अतिरात्र, आप्तोर्याम ये सात सोमयज्ञसंस्था हैं (सायण)। ब्रह्मचर्य आदि चार आश्रमों के साथ पञ्चयज्ञ, अतिथिसत्कार और दान ये ७ इनको ( त्रिः ) वार २ करें करावें ( दया० ) । अध्यात्म में—प्राणगण (सुशस्तिभिः) उत्तम व्यवस्थाओं से ( त्रिःसाप्तानि ) त्रिगुण भेद से सातों सुखप्रद शरीर धातुओं को धारण करें ।

अधारयन्त वह्नयोऽभजन्त सुकृत्यया ।
भागं देवेषु यज्ञियम् ॥ ८ ॥ २ ॥

भा०—( वह्नयः ) राष्ट्र कार्य भार को धारण करनेहारे विद्वान जन, अग्नि के समान तेजस्वी, धुरन्धर ( देवेषु) विद्वानों और दानशील या विजीगीषु राजाओं के बीच में भी ( यज्ञियं भागम् ) अपने यज्ञ, सुसंगत धर्मानुकूल व्यवस्था के कार्य के योग्य ( भागं ) भाग या अंश को ( सुकृत्यया ) उत्तम रीति से सुसम्पादित करके ही ( अधारयन्त ) धारण करें । अर्थात् प्रत्येक कार्यकर्ता उत्तम रीति से करके ही अपना वेतनादि पाने का हक़दार हो, अन्यथा नहीं । इति द्वितीयो वर्गः ।

## [ २१ ]

मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवते–इन्द्राग्नी । छन्दः–२पिपीलिकामध्या निचृद्-गायत्री । ५ निचृद्गायत्री । १, ३, ४, ६ गायत्री । षड्र्चं सूक्तम् ॥

इहेन्द्राग्नी उप ह्वये तयोरित्स्तोममुश्मसि ।
ता सोमं सोमपातमा ॥ १ ॥

भा०—(इह) यहां, इस जगत् में या राष्ट्र में, मैं प्रजाजन (इन्द्राग्नी) इन्द्र अर्थात् वायु और अग्नि अथवा अग्नि या सूर्य दोनों के समान बलवान् और तेजस्वी पुरुषों को ( उप ह्वये ) स्वीकार करता हूं, पदों पर नियुक्त करता हूं। ( तयोः ) उन दोनों के ही ( स्तोमम् ) स्तुतिसमूह, गुणवर्णन एवं अधिकार आदि ( उष्मसि ) चाहते हैं। (सोमपातमा) जिस प्रकार वायु और जल मिलकर भूमि के जलांश को पान करते हैं और अन्तरिक्ष में उठाये रखते हैं अथवा जिस प्रकार वे उत्पन्न जगत् की रक्षा करते हैं, उसी प्रकार (सोमपातमा) सोम, राष्ट्र और ऐश्वर्य का पान प्राप्ति, उपभोग और पालन करने में सर्वश्रेष्ठ ( ता ) वे दोनों ( सोमं ) सोम, ऐश्वर्यमय राष्ट्र, राजपद और जगत् का पालन करें।

ता य॒ज्ञेषु॒ प्र शं॑सतेन्द्रा॒ग्नी शु॑म्भता नरः।
ता गा॑य॒त्रेषु॑ गायत ॥ २ ॥

भा०—(यज्ञेषु) यज्ञों में, उपासना के अवसरों पर जिस प्रकार जीव और परमेश्वर दोनों के गुणों का वर्णन किया जाता है और जिस प्रकार शिल्पादि में वायु, सूर्य और अग्नि आदि के गुणों का वर्णन किया जाता है उसी प्रकार (यज्ञेषु) परस्पर एकत्र होने के संग्राम आदि स्थलों और प्रजा पालन के कामों में, हे ( नरः ) नेता पुरुषो ! आप लोग ( इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि, सेनापति और शत्रु संतापक अग्रणी राजा के ( प्रशंसत ) गुणों का अच्छे प्रकार वर्णन करो। उनही को ( शुम्भत ) सुशोभित करो और अधिक उत्साहित और उत्तेजित करो। (ता) उनको ही (गायत्रेषु) गायत्री छन्दों में, यज्ञों में, पुरुषों में अथवा पृथिवी के शासन और विजय कार्यों, या मुख्य पदों पर ( गायत ) गान करो, उनके गुणों और कर्त्तव्यों का वर्णन करो।

गायत्री वा इयम् पृथिवी। शत० ४।३।४।९॥ गायत्रीयं भूलोकः। कौ० २।९॥ गायत्रो यज्ञः। गो० पू० ४।२४॥ अध्यात्म

में—इन्द्र = जीव। अग्नि = जाठर। गायत्र = प्राणगण। स्वाध्याय यज्ञ में—इन्द्र और अग्नि दोनों आचार्य हैं। एक आचारग्राहक, दूसरा विद्याप्रद। उस पक्ष में गायत्र = ब्राह्मण, विद्वान् गण। गायत्रो वै प्राणः। कौ० २। ५॥ गायत्रौ वै ब्राह्मणः। ऐ० १। २८॥

ता मित्रस्य प्रशस्तय इन्द्राग्नी ता हवामहे।
सोमपा सोमपीतये ॥ ३ ॥

भा०—(ता) उन दोनों ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि, वायु और अग्नि के समान बलवान् और तेजस्वी पुरुषों को ( मित्रस्य ) स्नेहवान् बन्धु उपकारक के लिए और ( सोमपीतये ) ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों के पालन, रक्षण, उपयोग के लिए ( सोमपा ) सोम, ऐश्वर्य और उत्पन्न पदार्थों के पालक ( ता ) उन दोनों को ( हवामहे ) हम बुलाते हैं और आदरणीय स्वीकार करते हैं। आधिभौतिक में—मित्र अर्थात् प्राण के उत्तम गुण प्राप्त करने के लिए सूर्य, अग्नि या वायु और अग्नि का उपयोग करें। सोम अर्थात् वीर्य के पालन के लिए भी सोम अर्थात् अषोधि रसों के पालक दोनों का उपयोग करें।

उग्रा सन्ता हवामह उपेदं सवनं सुतम्।
इन्द्राग्नी एह गच्छताम् ॥ ४ ॥

भा०—( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि, वायु और सूर्य, या विद्युत् और अग्नि या विद्युत् और मेघ इन दोनों के समान ( उग्रा सन्ता ) उग्र बलवान्, तीव्र स्वभाव के दोनों को हम ( हवामहे ) बुलाते हैं, (इदं) यह ( सवनं सुतम्) सवन, ऐश्वर्योत्पादक राज्य तैयार है। वे दोनों (इह) यह ( आ गच्छताम् ) आवें। भौतिक में—वायु और अग्नि दोनों तत्व तीव्र स्वभाव के हों और पदार्थोत्पादक कारखाना चलावें, उनमें दोनों का उपयोग लें।

ता महान्ता सदस्पती इन्द्राग्नी रक्षं उब्जतम् ।
अप्रजाः सन्त्वत्रिणः ॥ ५ ॥

भा०—(ता ) वे दोनों वीर्यवान् अधिकारी पुरुष (इन्द्राग्नी) पूर्वोक्त इन्द्र और अग्नि, ( महान्ता ) महान् पद, पराक्रम और वीर्यवाले ( सदस्पती ) राजसभा के पालक सभापति के तुल्य होकर ( रक्षः) दुष्ट राक्षस पुरुषों को ( उब्जतम् ) झुका देवें, उनके क्रूर कर्मों को छुड़ाकर सरल स्वभाव बना दें। और ( अत्रिणः ) प्रजा को लूट खसोट कर खानेवाले ( अप्रजाः ) प्रजारहित ( सन्तु ) हों। अर्थात् उनके अगले आनेवाले वैसे प्रजानाशक पैदा न हों। भौतिक में—वायु और आग दोनों पदार्थ बड़े, बलकारी गुणवान् होने से महान् हैं। गुणों के आश्रयभूत पदार्थों के पालक होने से 'सदस्पति' है। वे जीवन के विघातक रोगों और शत्रुओं का नाश और मूलोच्छेद करें।

तेन सत्येन जागृतमधि प्रचेतुने पुदे ।
इन्द्राग्नी शर्म यच्छतम् ॥ ६ ॥ ३ ॥

भा०—आप दोनों ( तेन सत्येन ) उस जगत्प्रसिद्ध, सत्य व्यवहार, सज्जनों के हितकारी न्याय, से ( प्रचेतने ) सबको चेतानेवाले ( पदे ) न्यायाधीश के परमपद पर रहकर स्वयम् ( अधि जागृतम् ) जागते रहो। सावधान रहो। और हे ( इन्द्राग्नी ) पूर्वोक्त इन्द्र और अग्नि आप दोनों सूर्य और अग्नि, वायु और विद्युत् के समान समस्त प्रजावर्ग को ( शर्म ) सुख और सुखप्रद शरण ( यच्छतम् ) प्रदान करो। इति तृतीयो वर्गः ॥

[ २२ ]

॥ २२ ॥ १—२१ मेधातिथिः काण्व ऋषिः देवता—१—४ अश्विनौ। ५—८ सविता। ९ १० अग्निः। ११ १२ इन्द्राणीवरुणान्यग्न्याय्यः। १३, १४ द्यावापृथिव्यौ। १५ पृथिवी। १६ देवो विष्णुर्वा १७—२१ विष्णुः ॥ गायत्र्यः। एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेह गच्छताम् ।
अस्य सोमस्य पीतये ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! तू ( प्रातः-युजा ) प्रातः, सबसे प्रथम समाहित चित्त से उपासना करनेवाले, एवं प्रेम से परस्पर मिलने वाले, ( अश्विना ) दिन रात्रि के समान या सूर्य चन्द्र के समान या सूर्य और पृथिवी के परस्पर दोनों स्त्री पुरुषों को (वि बोधय) विशेष रूप से जागृत कर, ज्ञानोपदेश कर। वे दोनों (इह) इस यज्ञादि श्रेष्ठकर्म में (अस्य) इस (सोमस्य) उत्पन्न करने योग्य उत्तम सुख के ( पीतये ) पान या प्राप्त करने के लिए ( आगच्छताम् ) प्राप्त हों। अथवा—प्रातः संयुक्त सूर्य पृथिवी दोनों हमें प्राप्त हों। विद्वान् हमें सुख प्राप्ति के लिए ज्ञान द्वारा जागृत करें। अर्थात् हमें आश्रय और ज्ञानप्रकाश दोनों प्राप्त हों तभी हम ज्ञानवान् होकर सुख प्राप्त करें।

या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा ।
अश्विना ता हवामहे ॥ २ ॥

भा०—(या) जो दोनों स्त्री पुरुष (सुरथा) उत्तम रथवाले (रथीतमा) रथ संचालन में उत्तम रथी, (दिविस्पृशा) आकाश में सूर्य चन्द्र के समान ज्ञान प्रकाश में प्रकाशित अथवा राजसभा में सम्मानित, (देवा) विद्वान्, दानशील, ( अश्विना ) अश्वों पर चढ़नेवाले उत्तम राजा रानी या राष्ट्र के दो उत्तम अधिकारी हैं ( ता ) उन दोनों को हम ( हवामहे ) आदर से बुलाते हैं। अग्नि-जल तत्व पक्ष में—वे दोनों उत्तम रथों के घटक होने से 'सुरथ' है। नाना रमण साधन या रथों के संचालक होने से रथीतम है। आकाश मार्ग में रथों के चलाने हारे होने से वे 'दिविस्पृक्' हैं। व्यापक-गुणवाले होने से 'अश्वी' हैं। उन दोनों का हम उपयोग करें। 'जल' तत्व में घृत, तेल आदि भी पदार्थ समाविष्ट हैं।

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती ।

तया॑ य॒ज्ञं मि॑मिक्षतम् ॥ ३ ॥

भा०—हे (अश्विना) नाना विद्याओं को व्यापने वाले अध्यापक और शिष्यगणो ! ( वां ) तुम दोनों की (या) जो (मधुमती) मधुर, ऋग् आदि ज्ञानयुक्त, ( सुनृतावती) उत्तम सत्यज्ञान से पूर्ण, (कशा) अर्थों के प्रकाश करनेवाली वाणी है ( तया ) उसे आप दोनों (यज्ञं ) यज्ञ सत्कर्माचरण और परस्पर के सत्संग और विद्या आदि के दान आदि व्यवहार और आत्मा और ईश्वरोपासना के कार्य को ( मिमिक्षतम् ) सेचन करो। अर्थात् इन कार्यों में मधुरवाणी का उपयोग करो।

न॒हि वा॒मस्ति॑ दूर॒के यत्रा॒ रथे॑न॒ गच्छ॑थः ।
अश्वि॑ना सो॒मिनो॑ गृ॒हम् ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अश्विनौ ) विद्याओं और कलाकौशल में पारंगत पुरुषो ! आप दोनों ( यत्र ) जहां भी ( रथेन ) रथ से ( गच्छथः ) जा सकते हो वह ( सोमिनः ) उत्तम ऐश्वर्य के स्वामी के ( गृहं ) गृह, स्थान ( वां ) तुम दोनों के लिए ( दूरके ) दूर ( नहि अस्ति ) ही नहीं है ।

अध्यात्म में—(१) हे पुरुष ! प्रातः मिलनेवाले परस्पर व्याप्त आत्मा परमात्मा दोनों को अध्यात्म सोम, आत्मानन्द रसपान के लिए हृदय में जागृत कर । ( २ ) वे दोनों उत्तम रसवान् होने से सुरथ हैं, रसयुक्त आनन्दप्रदों में सबसे श्रेष्ठ होने से 'सुरथीतम' हैं। वे ज्ञानयुक्त होने से दिविस्पृक् हैं । उनका स्मरण करें । (३) हे आत्माओ ! तुम्हारी जो 'कशा' हृदय को प्रकाशित करने वाली मधुर आनन्द देनेवाली, सत्यज्ञानवाली वाणी या दीप्ति है उससे आत्मा को सेचन करो। ( ४ ) जहां रस या आनन्द के प्रवाह द्वारा ही परमैश्वर्यवान् परमेश्वर के परम स्थान तक प्राप्त होते हो वह फिर तुम दोनों के लिए दूर नहीं । छत्री न्याय से दोनों अश्वी हैं । अन्य विशेषण भी छत्रिन्याय से सुसंगत हैं ।

हिर॑ण्यपाणिमू॒तये॑ सवि॒तार॒मुप॑ ह्वये ।

स चेत्ता देवता पदम् ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—मैं ( सवितारम् ) सर्व जगत् के उत्पादक, ( हिरण्यपाणिम् ) हृदय को आनन्द देने वाली पूजावाले, अथवा—समस्त सूर्यादि गतिशील एवं तेजस्वी, हितकारी और सब जन्तुओं को सुखकारी पदार्थों को अपने वशकारी हाथ या अधिकार में रखने वाले परमेश्वर को ही (ऊतये) अपनी रक्षा के लिए ( उप ह्वये ) सदा स्मरण करता रहूं। (सः) वह ही (देवता) साक्षात् सब पदार्थों का देनेवाला, सब ज्ञानों और तत्त्वों का सूर्य के समान साक्षात् दर्शाने और ज्ञान कराने वाला और ( चेत्ता ) सब ज्ञानों को प्राप्त करानेवाला और ( पदम् ) प्राप्त करने योग्य एवं जगत् में सर्वत्र व्यापक है। राजा के पक्ष में—( सवितारम् ) सबके प्रेरक, ( हिरण्यपाणिम् ) सुवर्णादि हृदयग्राही पदार्थों को अपने वश में रखने वाले, दाता को रक्षा के लिए स्वीकार करूँ। वही को प्रजाओं धर्माधर्म का चेतने वाला, राजारूप सर्वोच्च पद के योग्य है। सूर्य के पक्ष में—कान्तिमान् किरणों से वह हिरण्यपाणि है। सब चेतन और चेतनों की प्रेरक होने से 'सविता' और ज्ञापक, द्रष्टा होने से 'चेत्ता' और दाता, व्यापक सर्वाश्रय और परम प्राप्य होने से 'पद' है। इति चतुर्थो वर्गः ॥

अपां नपा॑तमव॑से सवि॒तार॒मुप॑ स्तुहि ।
तस्य॑ व्र॒तान्यु॑श्मसि ॥ ६ ॥

भा०—( अपां नपातम् ) सूर्य जिस प्रकार अपनी किरणों द्वारा जलों को आकर्षण कर फिर नीचे नहीं गिरने देता, उसी प्रकार समस्त व्यापक आकाशादि पदार्थों को नाश न होने देनेवाले स्वतः नित्य ( सवितारम् ) सबके उत्पादक और प्रेरक, सर्वैश्वर्यप्रद परमेश्वर की ( अवसे ) रक्षा के लिए ही ( उपस्तुहि ) स्तुति कर और हम ( तस्य ) उस जगदीश्वर के ही (व्रतानि ) बनाये नित्य, नियत धर्मों से युक्त व्रतों, कर्मों, शुभ आचरणों और उसके नित्य गुण स्वभावों की ( उश्मसि ) कामना करें। राजा

के पक्ष में—( अपां नपातम् ) प्रजाओं को धर्म से न गिरने देने वाले ( सवितारम् ) सूर्य के समान तेजस्वी तथा सूर्य के समान प्रजा से जल के समान कर ग्रहण करने और उसके ही हितों में उसको व्यय करने वाले राजा का गुण वर्णन करता हूं। उसके ही बनाये धर्म नियमों को हम चाहें।

विभक्तारं हवामहे वसोश्चित्रस्य राधसः ।
सवितारं नृचक्षसम् ॥ ७ ॥

भा०—( वसोः ) वास या जीवन निर्वाह करने योग्य ( चित्रस्य ) विचित्र, अद्भुत, नाना प्रकार के (राधसः) ऐश्वर्य के ( विभक्तारम् ) विभाग करने वाले, सब को न्यायपूर्वक प्रदान करने वाले ( नृचक्षसम् ) सब मनुष्यों और जीवों के द्रष्टा, अन्तर्यामी (सवितारम्) सबके उत्पादक और प्रेरक के समान सर्वद्रष्टा परमेश्वर और राजा को हम ( हवामहे ) स्तुति करें, चाहें, अपना स्वामी स्वीकार करें।

सखाय आ नि षीदत सविता स्तोम्यो नु नः ।
दाता राधांसि शुम्भति ॥ ८ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग (सखायः) परस्पर समान नाम और मान को धारण करने हारे, सहृदय, परस्पर उपकारी होकर (आ नि सीदत) सब तरफ़ से आकर विराजो। (नु) जिससे हमें ( सविता ) सबके उत्पादक उस परमेश्वर की ( स्तोम्यः ) स्तुति करनी अभीष्ट है। वही (राधांसि) समस्त ऐश्वर्यों को ( दाता ) देने वाला है। ( शुम्भति ) सूर्य के समान स्वयं शोभा को प्राप्त और अन्यों को भी शोभित करता है। अथवा ( दाता राधांसि शुम्भति ) दानशील पुरुष ही ऐश्वर्यों की शोभा बढ़ाता है, कंजूस नहीं।

अग्ने पत्नीरिहा वह देवानामुशतीरुप ।
त्वष्टारं सोमपीतये ॥ ९ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! अग्रणी राजन् ! ( इह ) इस राष्ट्र में तू ( देवानाम् ) विजय की इच्छा करने वाले वीर पुरुषों की ( उशतीः ) विजय की कामना करने वाली, अथवा तेजस्विनी ( पत्नीः ) राष्ट्र का पालन करने वाली, सेनाओं और परिषदों को प्राप्त कर और (त्वष्टारं) सूर्य के समान तेजस्वी, प्रजापालक प्रजापति राजा को (उप आवह) प्राप्त करा। भौतिक अग्नि के पक्ष में—हे अग्ने ! तू ( देवानां ) दिव्य पदार्थों, गुणों और व्यवहारों के पालन करने वाली शक्तियों का इस शिल्प कार्य में प्राप्त करा और उत्पन्न करने या बनाने योग्य पदार्थों को प्राप्त करने योग्य छेदन भेदन करने वाले शिल्पी को प्राप्त कर। विद्वान् पक्ष में—हे विद्वन् ! ( इह ) इसमें तू (उशतीः) सन्तानों और उत्तम गुणों की कामना वाली ( देवानां पत्नीः आवह ) विद्वान् पुरुषों की स्त्रियों को और (त्वष्टारं) वीर्यवान् सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष या उनके पतियों को, या शिल्पियों को ( सोमपीतये ) ऐश्वर्य के भोग के लिये प्राप्त करा। 'त्वष्टारं' इति जातावेकवचनम्। अथवा दारावद् पत्नीरिति बहुचनं द्रष्टव्यम्।

आ ग्ना अ॑ग्न इ॒हाव॑से॒ होत्रां॑ यविष्ठ॒ भार॑तीम्।
वरू॑त्रीं धि॒षणां॑ वह ॥ १० ॥ ५ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी राजन् ! तू ( इह ) इस राष्ट्र में (अवसे) रक्षण कार्य के लिये ( ग्नाः ) गमन करने योग्य पृथिवियों, भूमियों और तीव्र गतिवाली सेनाओं को ( वह ) अपने वश कर, सम्भाल। और हे ( यविष्ठ ) न्यायकारिन् विवेकिन् ! हे अग्ने बलशालिन् ! शत्रुनाशक ! तू ( भारतीम् ) सबके पालन पोषण करने वाले सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष की ( वरूत्रीम् ) वरण करने योग्य, (होत्रां) सबको सुख देने वाली, आहुति के समान सर्व वशकारी, ( धिषणाम् ) उत्तम बाणी, आज्ञा या राजप्रजा के धर्मों के उपदेश करने वाली वेद वाणी को भी ( अवसे ) प्रजा पालन के निमित्त ( वह ) धारण कर। गृहस्थ पक्ष में—हे ( अग्ने )

विद्वन् ! तू गमन करने योग्य स्त्री को गृहस्थ धर्म पालन के लिये विवाह कर । और ( भारतीम् ) कान्तिमती, वरण योग्य या स्वयंवरा ( धिषणां ) उत्तम भोगदायिनी, ( होत्रां ) वीर्याहुति द्वारा आधान योग्य स्त्री को धारण कर । विद्वत् पक्ष में—( ग्नाः ) ज्ञान करने योग्य वेदवाणियों को हे विद्वन् ! तू धारण कर । और श्रेष्ठ स्वीकार करने योग्य सर्वोच्च वेदवाणी को धारण कर । इति पञ्चमो वर्गः ॥

अभि नो देवीरवसा महः शर्मणा नृपत्नीः ।
अच्छिन्नपत्राः सचन्ताम् ॥ ११ ॥

भा०—( देवीः ) विजय करने वाली, ( नृपत्नीः ) नेता पुरुषों का पालन करने वाली, राजा की शक्तिरूप सेनाएं ( अच्छिन्नपत्राः ) दायें बाये पक्षों, बाजुओं के विना छिन्न भिन्न हुए ही, ( नः ) हमें ( महः शर्मणा ) बड़े भारी शरण आदि सुख और ( अवसा ) रक्षण कार्य सहित ( अभि सचन्ताम् ) प्राप्त हों । हमारी सेनाओं के दाये बायें वाजू को शत्रु नाश न कर सकें । वे सदा अक्षत रह कर राष्ट्र का पालन करें । गृहपत्नियों के पक्ष में—नायकों पतियों की देवी पत्नी ( अच्छिन्नपत्राः ) रथ, यान आदि के बिना टूटे ही पतिगृहों तक सुख से बड़ी रक्षापूर्वक पहुंचें ।

इहेन्द्राणीमुप ह्वये वरुणानीं स्वस्तये ।
अग्नायीं सोमपीतये ॥ १२ ॥

भा०—( इन्द्राणीम् ) इन्द्र, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पुरुष की सूर्य और वायु के समान पालक और शत्रुसंहारक शक्ति को और (वरुणानीम्) जल की शान्ति, शीतलता, मधुरता, स्नेह आदि गुण से युक्त सर्वश्रेष्ठ स्वयंवृत, एवं दुष्टों के वारक सेनापति की पालक नीति को और ( अग्नायीम् ) अग्नि की भस्म कर डालने वाली शस्त्र शक्ति को ( इह ) यहां ( सोमपीतये ) ऐश्वर्यों से पूर्ण प्राप्ति और रक्षा करने के लिये ( उपह्वये ) प्राप्त

करूं। गृहस्थ पक्ष में—उत्तम गुणों के प्राप्त करने के लिये इस गृहस्थ-कार्य में भी सूर्य के समान तेजस्विनी, जल के समान मधुर गुण वाली, स्नेह-वती, और अग्नि के समान पापनाशक स्त्रियों को विवाह में स्वीकार करें।

मही द्यौः पृथिवी च न इमं यज्ञं मिमिक्षताम्।
पिपृतां नो भरीमभिः ॥ १३ ॥

भा०—( मही द्यौः ) बड़े विशाल आकाश या तेजस्वी सूर्य और ( पृथिवी च ) पृथिवी के समान तेजस्वी और सर्वाश्रय राजा और प्रजागण मिलकर ( नः ) हमारे ( इमं यज्ञम् ) इस प्रजा-पालन रूप यज्ञ को अथवा प्रजापालक राजा को ( मिमिक्षताम् ) अभिषेक करें, उसको दृढ़ करें। और वे दोनों ( भरीमभिः ) भरण पोष करने वाले साधनों से (नः पिपृताम्) हमें प्रजागण को पालन करें। गृहस्थ पक्ष में—विद्युत् सूर्यादि के समान तेजस्वी पुरुष पृथिवी के समान बीजवपन के योग्य स्त्री दोनों मिल कर प्रजोत्पादन रूप यज्ञ का सेचन करें, निषेक आदि कार्य करें। और प्रजाओं का अन्नों से पोषण करें।

तयोरिद् घृतवत्पयो विप्रा रिहन्ति धीतिभिः।
गन्धर्वस्य ध्रुवे पदे ॥ १४ ॥

भा०—( तयोः ) उक्त आकाश या तेजस्वी सूर्य और पृथिवी इन दोनों के ( घृतवत् पयः ) उत्तम जल से युक्त पुष्टिकारक रस को (विप्राः) विद्वान् मेधावी पुरुष एवं प्राणीगण ( गन्धर्वाय ) पृथिवी को धारण या पोषण करने वाले मेघ या वायु के ( ध्रुवे ) ध्रुव स्थिर, ( पदे ) स्थान अन्तरिक्ष के आश्रय से ( धीतिभिः ) नाना प्रकार के धारण, कर्षण रूप क्रियाओं नाना कार्यों और बुद्धिपूर्वक आविष्कृत कृषि आदि रीतियों से (रिहन्ति) आस्वादन करते हैं, उसका उपभोग करते हैं। राजा के पक्ष में—उक्त राजवर्ग और प्रजा वर्ग दोनों के ( घृतवत् पयः ) घी के या तेज से युक्त पुष्टिकर अन्न के समान परिपोषक सार भाग को ( विप्राः )

विद्वान् लोग ( धीतिभिः ) नाना ज्ञानमयी रीतियों से स्थिर पृथिवी के धारण या शासन कारी राज-पद का आश्रय लेकर ( रिहन्ति ) उसी प्रकार उपभोग करते हैं, जैसे स्वादु रस के पदार्थ को बालक अंगुलिओं से चाटा करते हैं। अर्थात् स्थिर राजा के राज्य में नाना उपभोग पदार्थों का विद्वान पुरुष आविष्कार करते और सुख लेते हैं। गृहस्थ पक्ष में—( तयोः ) स्त्री पुरुषों के घृतवाले दूध आदि पदार्थों का विद्वान् जन ( गन्धर्वस्य ) गृहस्थ के स्थिर गृह में नाना प्रकारों से उपभोग करते है।

स्योना पृथिवि भवानृक्षरा निवेशनी।
यच्छा नः शर्म सप्रथः ॥ १५ ॥ ६ ॥

भा०—हे ( पृथिवि ) पृथिवि ! तू ( स्योना ) सुखप्रद, ( अनृक्षरा ) कांटों से और दुःखप्रद शत्रुओं से रहित, ( निवेशनी ) प्रजा के योग्य, ( भव ) हो। तू ( सप्रथः ) विस्तृत अवकाश और ऐश्वर्य से युक्त ( नः ) हमें ( शर्म ) शरण, सुख ( यच्छ ) प्रदान कर। स्त्रीपक्ष में—हे पृथिवी के समान विशाल हृदय और गुणों वाली एवं उसके समान बीज धारण में समर्थ ! तू ( अनृक्षरा ) हृदयवेधक, संतापजनक दुर्गुण दुर्वचनों से रहित घर बसाने वाली, सुखजनक हो। हमें विस्तृत, यशयुक्त सुख शरण प्रदान कर। ऋक्षरः—कण्टकः। ऋच्छतेः। कंतपो वा कंततेर्वा स्यात् गतिकर्मणः उद्गत तमो भवति। इति षष्ठो वर्गः ॥

अतो देवा अवन्तु नो यतो विष्णुर्विचक्रमे।
पृथिव्याः सप्त धामभिः ॥ १६ ॥

भा०—( यतः) जिस अनादि तत्व से ( विष्णुः ) व्यापक परमेश्वर ( पृथिव्याः ) पृथिवी से प्रारम्भ कर ( सप्त धामभिः ) समस्त लोकों को धारण करने वाले सात पदार्थों से ( वि चक्रमे ) इन लोकों को रचता है ( देवाः ) विद्वान् गण अथवा प्रकृति के विकार पृथिवी आदि ( अतः ) उसे ही मूल कारण द्वारा ( नः ) हमें ( अवन्तु ) रक्षा करें, और उसका

ज्ञान करावें । राजा के पक्ष में—(विष्णुः) व्यापक सामर्थ्यवान् राजा ( सप्त धामभिः ) पृथिवी से आदि लेकर सात धारण करने वाले तेजः सामर्थ्यों से युक्त होकर ( यतः विचक्रमे ) जिस कारण से पराक्रम करे उसी निमित्त ( देवाः ) विद्वान् राज्यधिकारी और सैनिक जन हमारी रक्षा करें । अर्थात् राजा के विजय और प्रजा की रक्षा का एक ही उद्देश्य है । पृथिवी आदि पांच भूत, परमाणु और प्रकृति ये सात धातु हैं । राष्ट्रपक्ष में स्वामी, अमात्य, सुहृत्, दुर्ग, राष्ट्र कोष, और बल ये सात प्रकृति हैं ।

इदं विष्णुर्वि चक्रमे त्रेधा नि दधे पदम् ।
समूह्ळमस्य पांसुरे ॥ १७ ॥

भा०—( विष्णुः ) व्यापक परमेश्वर ( इदम् ) इस प्रत्यक्ष और ( पदम् ) जानने योग्य जगत् को ( विचक्रमे ) विविध रूप से रचता है और सबको ( त्रेधा ) तीन प्रकार से ( नि दधे ) स्थिर करता है । (अस्य) इस जगत् के ( समूढम् ) भली प्रकार तर्क से जानने योग्य सूक्ष्म रूप को भी वह ( पांसुरे ) रेणुओं से पूर्ण आकाश में स्थापित करता है ।

त्रीणि पदा वि चक्रमे विष्णुर्गोपा अदाभ्यः ।
अतो धर्माणि धारयन् ॥ १८ ॥

भा०—( अदाभ्यः ) कभी विनाश को न प्राप्त होने वाला, (गोपाः) जगत् का रक्षक, ( विष्णुः ) व्यापक परमेश्वर ( धर्माणि ) समस्त धर्मों को ( धारयन् ) धारण करता हुआ (त्रीणि पदा) तीनों प्रकार के जानने योग्य और प्राप्त होने योग्य पदार्थों को ( अतः ) इस मूल कारण से ही ( विचक्रमे ) विविध रूपों में बनाता है ।

विष्णोः कर्माणि पश्यत यतो व्रतानि पस्पशे ।
इन्द्रस्य युज्यः सखा ॥ १९ ॥

भा०—( विष्णोः ) उस व्यापक परमेश्वर के ( कर्माणि ) किये सृष्टि आदि कार्यों को (पश्यत) देखो ( यतः ) जिसके अनुग्रह से जीव (व्रतानि)

अपने कर्त्तव्य कर्मों को ( पस्पशे ) करता है। वह परमेश्वर ( इन्द्रस्य ) जीव का ( युज्यः ) सर्वत्र साथ देने वाला, ( सखा ) मित्र है।

तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः।
दिवीव चक्षुराततम् ॥ २० ॥

भा०—( विष्णोः ) व्यापक परमेश्वर के ( तत् ) उस (परमं) परम ( पदम् ) पद, परम वेद्य स्वरूप को ( सूरयः ) विद्वान् पुरुष ( दिवि ) आकाश में ( आततम् ) खुले ( चक्षुः ) सर्व पदार्थों के दर्शक सूर्य के समान स्वतःप्रकाश रूप से ( सदा पश्यन्ति ) सदा देखते हैं।

तद्विप्रासो विपन्यवो जागृवांसः समिन्धते।
विष्णोर्यत्परमं पदम् ॥ २१ ॥ ७ ॥

भा०—( विष्णोः ) व्यापक परमेश्वर का ( यत् ) जो (परमं) परम, सबसे उत्कृष्ट ( पदम् ) जानने योग्य स्वरूप है (तत्) उसको (विपन्यवः) नाना प्रकार से परमेश्वर की स्तुति करने वाले ( विप्रासः ) विद्वान् पुरुष ( समिन्धते ) भली प्रकार प्रकाशित करते हैं। १७ से २१ तक पांचों मन्त्रों की अन्य पक्षों में संगति साम, अथर्व और यजुर्वेद के भाष्यों में देखें। इति सप्तमो वर्गः ॥

[ २३ ]

१–२४ मेधातिथिः काण्व ऋषिः ॥ देवता–१ वायुः। २, ३ इन्द्रवायू। ४–६ मित्रावरुणौ। ७–६ इन्द्रो मरुत्वान्। १०–१२ विश्वे देवाः। १३–१५ पूषा। १६–२२ आपः। २३–२४ अग्निः ॥ छन्दः–१–१८ गायत्री। १६ पुरउष्णिक्। २० अनुष्टुप्। २१ प्रतिष्ठा। २२–२४अनुष्टुभः॥ चतुर्विंशत्यृचं सूक्तम्॥

तीव्राः सोमास आ गह्याशीर्वन्तः सुता इमे।
वायो तान् प्रस्थितान्पिब ॥ १

भा०—हे (वायो) ज्ञानवन्! परमेश्वर! ( इमे) ये ( सुताः ) उत्पन्न हुए ( आशीर्वन्तः ) नाना प्रकार की उत्तम कामना और आशाओं वाले

( तीव्राः ) तीव्र, वेग से जाने वाले, देह से देहान्तर में गति करने वाले ( सोमासः ) जीवगण हैं। तू ( आगहि ) आ, दर्शन दे और ( तान् ) उन समस्त जीवों ( प्रस्थितान् ) प्रस्थान करने वाले, तेरी तरफ़ आने वाले , मुक्ति के अभिलाषियों को ( पिब ) अपने भीतर ले, अपनी शरण में ले। वीरों के पक्ष में—वे तीव्र वेगवाले ( सुताः ) अभिषिक्त, प्रोक्षित, या दीक्षित वीरजन हैं विजय के लिए प्रस्थित उनको तू प्राप्त हो और अपनी शरण में ले। इसी प्रकार आचार्य दीक्षित कर तीव्र बुद्धि वाले शिष्यों को लेवे। वायुपक्ष में—उत्तम कामनाओं को पूर्ण करनेवाले, तीक्ष्ण वेगवाले अस्थिर जलों को वायु पान करता है।

उभा देवा दिविस्पृशेन्द्रवायू हवामहे।
अस्य सोमस्य पीतये॥ २॥

भा०—(इन्द्रवायु) इन्द्र और वायु,अग्नि और पवन (सोमस्य पीतये) सुख के प्राप्त करने के लिए ( दिवि-स्पृशा ) आकाश में यानादि को ले जाते हैं, इसी प्रकार, अध्यात्म में ( अस्य सोमस्य पीतये ) इस परमैश्वर्य के सुख को प्राप्त करने के लिए ( उभा देवा ) दिव्य गुण वाले ( इन्द्र-वायू ) जीव और परमेश्वर दोनों ( दिविस्पृशा ) ज्ञान प्रकाश को प्राप्त करते हैं। उन दोनों की ( हवामहे ) हम स्तुति करते हैं। उनका ज्ञान करते हैं। इसी प्रकार राष्ट्र के पालन के लिए हम ऐश्वर्यवान् राजा और सेनापति दोनों को नियत करते हैं।

इन्द्रवायू मनोजुवा विप्रा हवन्त ऊतये।
सहस्राक्षा धियस्पती॥ ३॥

भा०—( विप्राः ) मेधावी बुद्धिमान् पुरुष (ऊतये) रक्षा ज्ञान और तेज के प्राप्त करने के लिए ( सहस्राक्षा ) सहस्रों ज्ञान साधनों से युक्त ( धियःपती ) ज्ञानों और कर्मों के पालक ( इन्द्रवायू ) विद्युत् और वायु के समान तेजस्वी और बलवान् (मनोजुवा) मन के समान वेगवान् अथवा

मन या ज्ञान से चलने हारे दोनों को ( हवन्ते ) प्राप्त करते हैं। नाना दूत, सभासद् और प्रणिधि होने से सेनापति राजा दोनों 'सहस्राक्ष' हैं। नाना क्रिया साधनों से युक्त विद्युत् और पवन भी 'सहस्राक्ष' हैं। छत्रिन्याय से जीव ईश्वर दोनों सहस्राक्ष हैं।

मि॒त्रं व॒यं ह॑वामहे॒ वरु॑णं॒ सोम॑पीतये।
ज॒ज्ञा॒ना पू॒तद॑क्षसा॥ ४॥

भा०—जिस प्रकार ( सोमपीतये ) समाधिगत आनन्द-रस और स्वास्थ्य सुख को प्राप्त करने के लिए हम ( पूतदक्षसा ) पवित्र मन और शरीर को रोग रहित करनेवाले बल से युक्त ( जज्ञाना ) उत्पन्न होने वाले ( मित्रं वरुणं ) मित्र, प्राण, वरुण, अपान की ( हवामहे ) साधना करते हैं उसी प्रकार राष्ट्र में ( पूतदक्षसा ) पवित्रकारी। और दुष्ट पुरुषों के नाशक कण्टकशोधक सेना बल से युक्त ( जज्ञाना ) राष्ट्र में प्रकट होने वाले ( मित्रं ) सबके स्नेही और ( वरुणं ) दुःखों और कष्टों के वारक पुरुषों को ( सोमपीतये ) राष्ट्रैश्वर्य के भोग के लिए ( हवामहे ) नियुक्त करें।

ऋ॒तेन॒ यावृ॑ता॒वृधा॑वृ॒तस्य॒ ज्योति॑ष॒स्पती॑।
ता मि॒त्रावरु॑णा हुवे॥ ५॥ ८॥

भा०—( ज्योतिषः पती ) ज्योति, प्रकाश, तेज के पालक सूर्य और वायु वा सूर्य और मेघ के समान ज्ञान और तेज या जीवन को धारण करने वाले ( यौ ) जो दो ( ऋतावृधौ ) सत्य व्यवहार को बढ़ानेवाले, ( ऋतस्य ज्योतिषः ) सत्य, वेद विज्ञान के प्रकाशक ( पती ) पालक हैं ( ता ) उन दोनों ( मित्रा वरुणा हुवे ) मित्र, ब्राह्मण वर्ग और (वरुण) दुष्टों के वारक सबसे वरण किये। क्षात्रवर्ग दोनों को ( हुवे ) राष्ट्र में नियुक्त करता हूं। वायु-सूर्य पक्ष में—( ऋतावृधौ ) जल और अन्न को बढ़ाने वाले, मेघ पक्ष में ऋतस्य ज्योतिषः पती ) जल से उत्पन्न विद्युत् के पालक।

वरुणः प्राविता भुवन्मित्रो विश्वाभिरूतिभिः ।
करतां नः सुराधसः ॥ ६ ॥

भा०—( वरुणः ) बाह्य और शरीर के भीतर का वायु जिस प्रकार शरीर की ( प्राविता ) अच्छी प्रकार से रक्षा करता है और (मित्रः) सूर्य जिस प्रकार जगत् की रक्षा करता है । उसी प्रकार से ( वरुणः ) दुष्टों का वारक सर्वश्रेष्ठ राजा और ( मित्रः ) स्नेहवान्, न्यायाधीश ( प्राविता ) अच्छी प्रकार प्रजा का रक्षक और ज्ञानप्रद ( भुवत् ) हो । और वे दोनों ( विश्वाभिः ऊतिभिः ) समस्त रक्षा-साधनों और प्रकारों से ( नः ) हमें ( सुराधसः ) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त ( करताम् ) करें ।

मरुत्वन्तं हवामह इन्द्रमा सोमपीतये ।
सजूर्गणेन तृम्पतु ॥ ७ ॥

भा०—(सोमपीतये) उत्तम वैज्ञानिक पदार्थों के सुख भोग करने के लिए हम लोग (मरुत्वन्तम्) वायुओं के स्वामी (इन्द्रम्) विद्युत् को (हवामहे ) ग्रहण करें । वह ( गणेन सजूः ) वायुगण के साथ समान रूप से सेवन करने योग्य होकर ( तृम्पतु ) सबको तृप्त करे । ( मरुत्वन्तं ) वायु के समान तीव्र, वेगवान्, बलवान्, धीर पुरुषों के स्वामी ( इन्द्रम् ) शत्रुहन्ता वीरपुरुष राजा सेनापति को (हवामहे) नियुक्त करें । (गणेन सजूः) अपने सैनिकगणों, दस्तों के साथ एक समान वेग से जाने वाला वह सदा ( तृम्पतु ) तृप्त, प्रसन्न रहे और राष्ट्र को भी पूर्ण करे ।

इन्द्रज्येष्ठा मरुद्गणा देवासः पूषरातयः ।
विश्वे मम श्रुता हवम् ॥ ८ ॥

भा०—( इन्द्रज्येष्ठाः ) राजा, और सेनापति जिनमें सबसे श्रेष्ठ और ज्येष्ठ पद पर विराजता है वे (मरुद्गणाः) मरुद्गण, वीर पुरुष (देवासः) विजय की कामना करनेवाले ( पूषरातयः ) सबके पोषक, स्वामी द्वारा वेतनादि दान प्राप्त करने हारे ( विश्वे ) सब ( मम ) मेरे (हवम् ) स्तुति

और आह्वान को ( श्रुत ) श्रवण करें। वायुपक्ष में—सूर्य को प्रबल रूप में धारण करने वाले, सूर्य की शक्ति को प्राप्त करने वाले तेजोगुण से युक्त वायुगण ही मेरे शब्द को श्रवण कराते हैं।

हत वृत्रं सुदानव इन्द्रेण सहसा युजा।
मा नो दुःशंस ईशत ॥ ६ ॥

भा०—( सुदानवः ) उत्तम जल और रश्मि आदि पदार्थों को ग्रहण करने वाले वायुगण जिस प्रकार (इन्द्रेण युजा) विद्युत् के साथ ( सहसा वृत्रम्) बलपूर्वक मेघ को आघात करते हैं उसी प्रकार हे (सुदानवः) उत्तम वेतन, उपायन आदि ऐश्वर्यों को प्राप्त करनेहारे ! आप लोग (युजा) अपने साथी, सहयोगी (इन्द्रेण) शत्रुहन्ता, सेनापति के साथ (सहसा) बलपूर्वक (वृत्रम्) राष्ट्र के घेर लेने वाले या शक्ति में शत्रु बढ़नेवाले को (हतं) मारो और नः हम पर (दुःशंसः) दुष्ट, दुःखदायी, अधार्मिक वचन बोलने या बुरा शासन करने वाले, अथवा बुरी ख्याति वाले दुष्ट पुरुष ( मा ईशत ) कभी स्वामी न रहें।

विश्वान्देवान्हवामहे मरुतः सोमपीतये।
उग्रा हि पृश्निमातरः ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—हम लोग ( सोमपीतये ) पदार्थों के उत्तम भोग के लिए (विश्वान्) समस्त (देवान्) दिव्य गुणों से युक्त, (मरुतः) व्यवहार, व्यापारादि के साधक वायुगण को ( हवामहे ) उपयोग करें। वे (पृश्निमातरः) अन्तरिक्ष में उत्पन्न वायुगण ( उग्राः ) वेगवान् होते हैं। इसी प्रकार ( सोमपीतये ) ऐश्वर्यों के भोग के लिए ( विश्वान् देवान् मरुतः ) समस्त विजयशील सैनिक वीरपुरुषों को (हवामहे) हम आदर करें और वे (पृश्नि-मातरः ) आदित्य के समान समस्त प्रजाओं से साररूप कर को लेने वाले राजा से बनाये गये अथवा पृथिवी माता से उत्पन्न होने हारे ( उग्राः हि ) निश्चय से बड़े बलवान् हों। अध्यात्म में—( सोमपीतये ) अध्यात्म

आनन्द रस पान के लिए समस्त प्राणगणों को वश करें । वे बड़े बलवान् हैं । इति नवमो वर्गः ॥

जयतामिव तन्यतुर्मरुतामेति धृष्णुया ।
यच्छुभं याथना नरः ॥ ११ ॥

भा०—हे (नरः) नायक वीर पुरुषो ! (यत्) जब आप लोग (शुभम्) सुखपूर्वक (याथन) यात्रा करते हो तब (धृष्णुया) शत्रुओं का मान मर्दन करने वाले (मरुताम्) वेगवाले शत्रुहन्ता वीर सैनिकों कासा (तन्यतुः) घोर शब्द (एति) उत्पन्न होता है । वायुओं के पक्ष में—( मरुताम् ) वायुओं की (तन्यतुः) वेगवाली विद्युत् ( धृष्णुया ) दृढ़ रूप में ( जयताम् ) विजयशील पुरुषों के घोर शब्द के समान ( एति ) उत्पन्न हो, तब (यत् शुभं तत् याथन ) हे नायक विद्वान् पुरुषो ! जो भी सुखप्रद पदार्थ हों उनको प्राप्त करो ।

हस्काराद् विद्युतस्पर्यतो जाता अवन्तु नः ।
मरुतो मृळयन्तु नः ॥ १२ ॥

भा०—( हस्कारात् ) दिनका सा प्रकाश कर देनेवाली ( विद्युत् ) विशेष दीप्तिमान् या सूर्य ( परि ) से ( जाता ) उत्पन्न और ( विद्युतः जाता ) इस विद्युत् से उत्पन्न ( मरुतः ) वायुगण ( नः अवन्तु ) हमारी रक्षा करें । और वे (नः) हमें (मृळयन्तु) सुखी करें । (हस्काराद् विद्युतः) दीप्तिकारी सूर्य के समान तेजस्वी राजा के (परि जाता) चारों ओर विद्यमान, या उसके आश्रय जीने वाले ( मरुतः नः अवन्तु ) धीर, वेगवान्, सैनिक हमारी रक्षा करें और हमें सुखी करें ।

आ पूषञ्चित्रबर्हिषमाघृणे धरुणं दिवः ।
आजा नष्टं यथा पशुम् ॥ १३ ॥

भा—हे ( पूषन् ) सबके पोषक ! हे ( आघृणे) सब प्रकार से दीप्ति तेजो-युक्त सूर्य के समान तेजस्विन् ! पृथिवी-राष्ट्र ! ( यथा ) जिस प्रकार ( नष्टं पशुम् ) खोये हुए पशु को ( आज ) खोजकर लाया जाता है उसी

प्रकार ( दिवः धरुणम् ) आकाश के धारण करनेवाले उसके आश्रयस्वरूप सूर्य के समान तेजस्वी ( दिवः धरुणम् ) ज्ञानवती राजसभा के आश्रय रूप ( चित्रबर्हिषम् ) विचित्र, अद्भुत वृद्धिशील ऐश्वर्य और प्रजाजन से, या लोकसमूह से युक्त तेजस्वी विद्वान् पुरुष को ( आ अज ) बड़े मान से प्राप्त कर। सूर्य के पक्ष में—( चित्र-बर्हिषम् ) आकाश को चित्रित करने वाले।

पूषा राजा॑न॒माघृ॑णि॒रप॑गूळ्हं॒ गुहा॑ हि॒तम्।
अवि॑न्दच्चि॒त्रब॑र्हिषम् ॥ १४ ॥

भा०—( पूषा) राजा और प्रजा दोनों को पोषण करनेवाली पृथिवी राष्ट्र, (आघृणिः) स्वतः सूर्य के समान ऐश्वर्य से तेजस्वी होकर (अपगूळ्हम्) अति गूढ़, ( गुहाहितम् ) बुद्धि कौशल में स्थित, प्रज्ञावान् (चित्रबर्हिषम्) अनेक अद्भुत लोक, प्रजा और पशु आदि ऐश्वर्यों से युक्त पुरुष को (राजानम् ) राजा रूप से (अविन्दत्) प्राप्त करे। परमेश्वर के पक्ष में—(आघृणिः पूषा ) सूर्य के समान सर्वपोषक परमेश्वर, ( गुहाहितम् ) बुद्धि में स्थित, ( अपगूढम् ) अति गूढ़, अज्ञानियों से सुदूर, छिपे हुए ( चित्रबर्हिषम् ) विचित्र कर्म सामर्थ्यवाले ( राजानम् ) अति तेजस्वी गुणों से सुशोभित जीव आत्मा को (अविन्दत्) प्राप्त करता है। अथवा, (पूषा) देह का पोषक जीव एवं अपनी बुद्धि में स्थित अद्भुत सामर्थ्यवाले गूढ़ परमेश्वर के स्वरूप को प्राप्त करे।

उतो स मह्य॒मिन्दु॑भिः॒ षड् यु॒क्ताँ अ॑नु॒सेषि॑धत्।
गोभि॒र्यवं॒ न च॑र्कृषत् ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—(उत) और जिस प्रकार ( गोभिः यवं न ) बैलों से किसान जौ आदि अन्न की ( चर्कृषत् ) खेती करता है। और जिस प्रकार वह हल में ( युक्तान् ) जुते ( षट् ) छः बैलों को एक साथ ( अनुसेषिधत् ) एक दूसरे के पीछे चलाता है उसी प्रकार ( सः ) वह राजा ( इन्दुभिः

युक्तान् ) ऐश्वर्यों द्वारा अपने पदों पर नियुक्त ६ अमात्यों को ( मह्यम् ) मुझ प्रजाजन के हित के लिए ( अनुसेषिधत् ) अपने अनुकूल चलावे। इसी प्रकार जीव सूर्य ( षड् युक्तान् ) मन, चक्षु आदि ६ इन्द्रियों को ( इन्दुभिः ) स्नेहवर्धक, राग प्राप्त रसों से अपने अनुकूल चलावे। इति दशमो वर्गः ॥

अम्बयो यन्त्यध्वभिर्जामयो अध्वरीयताम्।
पृञ्चतीर्मधुना पयः ॥ १६ ॥

भा०—( अम्बयः ) जीवन की रक्षा करनेवाली जलधारायें शरीर में रक्त या प्राण की धाराएँ ( जामयः ) भगिनियों के समान ( अध्वरीयतां ) अपने अहिंसित जीवन को चाहनेवाले हम जीवों के ( अध्वभिः ) मार्गों से ( मधुना ) मधुर गुण से युक्त ( पयः ) पुष्टिकर रस को ( पृञ्चतीः ) युक्त करती हुई ( यन्ति ) गति करती हैं। प्रजापक्ष में—(अध्वरीयतां अध्वभिः) प्रजा का नाश न चाहने वाले प्रजापति राजाओं के बनाये मार्गों से (अम्बयः) एक दूसरे की रक्षक (जामयः) प्रजाएँ बन्धु, भगिनियों के समान ( मधुना पयः पृञ्चतीः यन्ति ) अन्न से राष्ट्र को पुष्ट करती रहें।

अमूर्या उप सूर्ये याभिर्वा सूर्यः सह।
ता नो हिन्वन्त्वध्वरम् ॥ १७ ॥

भा०—( अमूः ) ये ( याः ) जो ( सूर्ये उप ) सूर्य के समीप या उसके प्रकाश में रहती हैं और ( याभिः वा सह ) जिनके साथ ( सूर्यः ) सूर्य और उसका प्रकाश रहता है ( ताः ) वे ( नः ) हमारे ( अध्वरम् ) सदा जीवित रहने योग्य जीवन या शरीर यज्ञ को ( हिन्वतु ) तृप्त, पुष्ट करें। इसी प्रकार वे पुरुष जो सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष के अधीन या उसके अति समीप हैं वे हम प्रजाजन को पुष्ट करें।

अपो देवीरुप ह्वये यत्र गावः पिबन्ति नः।
सिन्धुभ्यः कर्त्वं हविः ॥ १८ ॥

भा०—( यत्र ) जिन नदियों और नहरों के आश्रय ( नः ) हमारी (गावः) गौवें या भूमियें ( पिबन्ति ) जल-पान करती हैं, सींची जाती हैं। हे विद्वान् पुरुषो ! मैं उन (देवीः अपः) गतिशील, उत्तम गुणों वाले जलों को ( उपह्वये ) प्राप्त करूँ। और उन ही ( सिन्धुभ्यः ) बड़े बहनेवाले नदी नहरों से ( हविः ) अन्न को ( कर्त्वम् ) करने का यत्न करो। आप्त पुरुषों के पक्ष में—मैं उन आप्त पुरुषों को आदरसे बुलाऊँ जहाँ हमारी इन्द्रियां और वाणियां सुख प्राप्त करती हैं, उपदेश श्रवण करती हैं। उन समुद्र समान अगाध ज्ञान-सागरों से उपादेय ज्ञान और सुख प्राप्त करने के लिए यत्न करो।

अप्स्वन्तरमृतमप्सु भेषजमपामुत प्रशस्तये।
देवा भवत वाजिनः ॥ १९ ॥

भा०—हे ( देवाः ) विद्वान् पुरुषो ! ( अप्सु अन्तः ) जलों के भीतर ( अमृतम् ) मृत्युकारी रोग को निवारण करने वाला परम रस, जीवन रूप विद्यमान है। और ( अप्सु ) जलों में ही ( भेषजम् ) सब रोगों के दूर करने का बल भी है। ( उत ) और ( प्रशस्तये ) उत्तम गुण और बल उन्नति के प्राप्त करने के लिये आप लोग ( वाजिनः ) उत्तम ज्ञान और बल युक्त (भवत) होवो। आप्तों के पक्ष में—उनमें ही अमृत, आत्म-ज्ञान और उनमें ही रोगनाशक ज्ञान और उन्नति का मूल है। प्रजाओं में ही राजा और राष्ट्र का अमर जीवन, दोषों का उपाय और बलकारी गुण है। हे विजीगीषु राजाओ ! उनके बल पर ही अश्व के समान बलवान् हो जाओ।

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा।
अग्निं च विश्वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः ॥२०॥११॥

भा०—( सोमः ) सब ओषधियों में उत्तम सोम नामक लता ही यह ( मे ) मुझे ( अब्रवीत् ) बतलाता है कि ( अप्सु अन्तः ) जलों के भीतर ही ( विश्वानि ) सब प्रकार के ( भेषजा ) रोगों को दूर करने के

सामर्थ्य हैं। और वह सोम ही जलों में ( विश्वशम्भुवम् ) समस्त जगत् को सुख शान्ति देने वाले ( अग्निं च ) अग्नि को भी बतलाता है। और ( आपः च ) जलों को ही ( विश्वभेषजीः ) समस्त दुःखों के दूर करने का उपाय बतलाता है। आप्तों के पक्ष में स्पष्ट है। उनसे ही ज्ञान और उनसे ही सब रोग शान्ति के उपाय प्राप्त होते हैं, यह बात विद्वान् शिष्य बतलाता है। इत्येकादशो वर्गः ॥

आपः पृणीत भेषजं वरूथं तन्वे३ मम।
ज्योक् च सूर्यं दृशे ॥ २१ ॥

भा०—हे ( आपः ) जलो! जल के समान शान्तिदायक और उससे उत्पन्न प्राणो और आप्त पुरुषो! आप लोग ( मम तन्वे ) मेरे शरीर के हित के लिये और ( सूर्यं ) सूर्य के प्रकाश को ( ज्योक् च दृशे ) चिरकाल, दीर्घ आयु तक देखते रहने के लिये ( वरूथं ) रोग निवारण करने वाला, सर्वश्रेष्ठ ( भेषजं ) औषध ( पृणीत ) सेवन कराओ।

इदमापः प्र वहत यत्किं च दुरितं मयि।
यद्वाहमभिदुद्रोह यद्वा शेप उतानृतम् ॥ २२ ॥

भा०—हे ( आपः ) जलो! प्राणो! हे आप्त पुरुषो! ( मयि ) मेरे मन और शरीर में ( यत् किम् च ) जो कुछ भी ( इदम् ) यह ( दुरितम् ) दुष्ट स्वभाव, दुष्ट इच्छा, वासना या उससे उत्पन्न पाप या मलिन अंश है उसको (प्र वहत) बहा डालो, धो दो, नष्ट करो। और (यद् वा) जो कुछ मैं ( अभि दुद्रोह ) किसी के प्रति द्रोह बुद्धि करूं और (यद् वा) जो कुछ भी ( शेपे ) अनुचित निन्द्य वचन कहूं ( उत ) और जो कुछ भी ( अनृतं ) असत्य वचन कहूं उस सबको दूर करो।

आपो अद्यान्वचारिषं रसेन समगस्महि।
पयस्वानग्न आ गहि तं मा सं सृज वर्चसा ॥ २३ ॥

भा०—( अद्य ) आज मैं (आपः) रसयुक्त जलों में (अनु अचारिषम्)

नित्य विचरण करूं। अर्थात् मैं नित्य स्नान करूं। और ( रसेन ) पुष्टि-कारक रोगनाशक सारवान् भाग से ( सम् अगस्महि ) संयुक्त होऊँ। हे ( अग्ने ) भौतिक अग्ने! तू भी ( पयस्वान् ) पुष्टिकारी रस से युक्त होकर ( मा ) मुझको ( आगहि ) प्राप्त हो। और मुझको भी पुष्टिकारक अन्न आदि पदार्थों से युक्त कर। इसीलिये ( मा तं ) उस मुझको (वर्चसा) तेज और बल से ( संसृज ) संयुक्त कर। आप्तजनों के पक्ष में—हे (आपः) आप्त विद्वान् पुरुषो! मैं (अद्य) शिष्य जन आज तक ( अनु अचारिषम् ) आप गुरुजनों की आज्ञानुसार ब्रह्मचर्य, विद्याभ्यास, धर्मानुष्ठान आदि व्रता-चरण करता रहूं जो हम (रसेन समगस्महि ) विद्या, वीर्य और बल से युक्त हैं। हे (अग्ने) सूर्य और अग्नि के समान तेजस्विन्! मैं ( पयस्वान् ) दूध मात्र पर आहार करके व्रत वाला हूं। तू ( आगहि ) हमें प्राप्त हो। और ( वर्चसा मा संसृज ) मुझको ब्रह्मवर्चस् से युक्त कर।

सं माग्ने वर्चसा सृज सं प्रजया समायुषा।
विद्युर्मे अस्य देवा इन्द्रो विद्यात्सह ऋषिभिः॥२४॥१२॥५॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्ने! परमेश्वर! अचार्य! तू ( प्रजया ) प्रजा, और (आयुषा) दीर्घ जीवन से (मा) मुझे (संसृज) वर्चस्वी, प्रजावान् और दीर्घायु कर। ( अस्य मे ) इस मेरे तप, प्रज्ञा और ब्रह्मचर्य के शुभ कर्म को ( देवाः ) विद्वान् गण और ( इन्द्रः ) परमेश्वर और आचार्य भी ( ऋषिभिः सह ) वेदमन्त्रार्थ के वेत्ता गुरुजनों सहित ( विद्यात् ) जाने। इति द्वादशो वर्गः॥

इति पञ्चमोऽनुवाकः॥

## [ २४ ]

१–१५ शुनःशेप आजीगर्तिः कृत्रिमो वैश्वामित्रो देवरात ऋषिः । देवता–१ प्रजापतिः । २ अग्निः । ३–५ सविता भगो वा । ६–१५ वरुणः ॥ छन्दः– १, २, ६–१५ त्रिष्टुप् । ३–५ गायत्री ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

**कस्य॑ नू॒नं क॑त॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑ ।**
**को नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात्पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च ॥१॥**

भा०—( अमृतानाम् ) मरण रहित, मुक्तात्माओं के ( देवस्य ) परम सुखदायक ( कस्य ) कौन से सबसे अधिक सुखमय प्रजापालक के ( चारु नाम ) अति उत्तम नाम को ( मनामहे ) जानें, स्मरण करें, चिन्तन और मनन करें । ( नः ) हम मुक्ति सुख ही सुख के भोगने हारे जीवों को भी ( कः ) वह कौन प्रजापति परमेश्वर ( मह्या अदितये ) बड़ी भारी अखण्ड पृथिवी के ऐश्वर्यों को भोगने के लिये ( पुनः ) बार २ (दात्) प्रदान करता है, भेजता है, जिससे मैं जीव ( पितरं च ) पालक पिता और ( मातरम् ) जननी माता का ( दृशेयम् ) दर्शन करता हूं ।

**अ॒ग्नेर्व॒यं प्र॑थ॒मस्या॒मृता॑नां॒ मना॑महे॒ चारु॑ दे॒वस्य॒ नाम॑ ।**
**स नो॑ म॒ह्या अदि॑तये॒ पुन॑र्दात्पि॒तरं॑ च दृ॒शेयं॑ मा॒तरं॑ च ॥२॥**

भा०—( वयम् ) हम सब जीव गण (अमृतानाम् ) मरण से रहित, मुक्त, अविनाशी जीवों के बीच में सबसे ( प्रथमस्य ) प्रथम, आदितम, मुख्यतम, सर्वश्रेष्ठ ( देवस्य ) सब सुखों के दाता ( अग्ने ) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर के ही ( चारु ) प्राप्त करने योग्य, आचरण योग्य, मनोहर ( नाम ) नाम को ( मनामहे ) चिन्तन करते हैं । ( सः ) वह ( नः ) हमें ( अदितये ) अखण्ड पृथिवी, के भोग के लिये ( पुनः दात् ) पुनः अवसर देता है जिससे मैं ( पितरं च ) पिता को और ( मातरं च ) माता के भी ( दृशेयम् ) दर्शन करता हूं ।

अभि त्वा देवसवितरीशानं वार्याणाम् ।
सदावन् भागमीमहे ॥ ३ ॥

भा०—हे (सवितः) सबके उत्पादक ! हे (देव) सब सुखों के दाता और सब पदार्थों के सूर्य के समान दर्शक ! हे ( अवन् ) सबके सदा रक्षा करनेहारे ! ( वार्याणाम् ) वरण करने योग्य समस्त ऐश्वर्यों के ( ईशानम् ) स्वामी ( भागं ) भजन और सेवा करने योग्य, आश्रय योग्य (त्वा) तुझसे ही ( सदा ) सदा हम ( ईमहे ) याचना करें ।

यश्चिद्धि त इत्था भगः शशमानः पुरा निदः ।
अद्वेषो हस्तयोर्दधे ॥ ४ ॥

भा०—हे परमेश्वर, ( यः ) जो ( चित् ) भी ( भगः ) सेवन करने योग्य कल्याणकारी ऐश्वर्य ( ते ) तेरा ( पुरा ) पूर्वकाल से ही (शशमानः) स्तुति किया जा रहा है वह ( निदः ) निन्दित पुरुष से लेकर, मैं (अद्वेषः) द्वेषरहित होकर, ( हस्तयोः ) हाथों में ( दधे ) धारण करता हूं, देता हूं । अथवा ( निदः पुरा हस्तयोः दधे ) निन्दक पुरुष के प्राप्त होने से पूर्व ही मैं ग्रहण करूँ ।

भगभक्तस्य ते वयमुदशेम तवावसा ।
मूर्धानं राय आरभे ॥ ५ ॥ १३ ॥

भा०—हे प्रभो ! हे राजन् ! ( भगभक्तस्य ) ऐश्वर्य के विभाग करने वाले ( ते ) तेरे ही ( वयम् ) हम ( अवसा ) रक्षण पालन और ज्ञान सामर्थ्य से ( उत् अशेम ) उन्नत, उत्कृष्ट पद को प्राप्त करें । और हम ( रायः ) ऐश्वर्य के ( मूर्धानम् ) शिरो भाग सर्वोच्च आदर प्रतिष्ठा के पद को ( आरभे ) प्राप्त करने में ( उत् अशेम ) उत्पन्न हों ।

नहि ते क्षत्रं न सहो न मन्युं वयश्चनामी पतयन्त आपुः ।
नेमा आपो अनिमिषं चरन्तीर्न ये वातस्य प्रमिनन्त्यभ्वम् ॥ ६ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! ( अमी ) ये ( पतयन्तः ) पूर्व से पश्चिम आदि

दिशाओं में जाने वाले पक्षिगण और उनके समान सूर्य, चन्द्र, तारागण आदि बड़े-बड़े लोक और ज्ञानैश्वर्य वाले विमानचारी भी ( ते क्षत्रं ) तेरे रक्षण सामर्थ्य और बल को ( नहि आपुः ) नहीं पा सकते। और वे ( न ) न तेरे ( सहः ) शत्रु को पराजय करने और सबको वश करने के अपार बल को (आपुः) प्राप्त कर सकते हैं। ( न मन्युम् आपुः ) वे न तेरे क्रोध, या मनन सामर्थ्य, या ज्ञानशक्ति को ही पा सकते हैं। और ( अनिमिषं चरन्तीः ) विना झंपक लिए, एक क्षण भी विश्राम न लेकर चलने वाली ( इमाः आपः ) ये जल, नदी तथा अप्रमाद होकर धर्माचरण करने वाले ये आप्त जन भी (न आपुः) तेरे बल, सामर्थ्य और ज्ञान को नहीं पा सकते। और (ये) जो (वातस्य) वायु के तीव्र वेग हैं वे भी ( ते ) तेरे ( अभ्वम् ) सामर्थ्य या महान् सत्ता को मानने से इन्कार या निषेध ( न प्रमिनन्ति ) नहीं कर सकते। अथवा—( ये वातस्य अभ्वं प्र मिनन्ति ) जो वायु के भी वेग को नाश करते हैं अर्थात् जो वायु के तीव्र बेग की भी उपेक्षा कर देते हैं ऐसे पर्वत, महावृक्ष आदि पदार्थ भी तेरे (क्षत्रं सहः मन्युं न आपुः) बल, वीर्य और क्रोध को नहीं पा सकते। वे बहुत अल्पबल हैं। अथवा ( ये वातस्य अभ्वं प्र मिनन्ति ) जो वायु के बल को माप सकते हैं वे भी तेरे बल वीर्य की थाह नहीं पाते।

अ॒बु॒ध्ने राजा॒ वरु॑णो॒ वन॑स्यो॒र्ध्वं स्तूपं॑ ददते पू॒तद॑क्षः।
नी॒ची॒नाः॑ स्थुरु॒परि॑ बु॒ध्न ए॑षाम॒स्मे अ॒न्तर्नि॑हि॑ताः के॒तवः॑ स्युः॥७॥

भा०—(राजा) प्रकाशमान, तेजोमय, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ सूर्य (पूतदक्षः) स्वच्छ, पवित्र और पावनकारी तेजोबल से युक्त होकर ( वनस्य स्तूपम् ) सेवन करने योग्य, एवं विभक्त करके सर्वत्र पहुंचाने योग्य तेज के समूह को ( ऊर्ध्वं ) सबके ऊपर ( अबुध्ने ) मूल रहित या बन्धन रहित आकाश में ( ददते ) धारण करता है। और वे सब किरणें ( नीचीनाः ) नीचे इस भूमि पर ( स्थुः ) आकर पड़ती हैं। ( एषाम् ) इन सबका ( बुध्नः )

९

बांधनेवाला, सबका केन्द्र ( उपरि ) ऊपर है। और वही (केतवः) किरणें ( अस्मे ) हमारे (अन्तः) भीतर भी ( निहिताः ) विद्यमान ( स्थुः ) हैं। इसी प्रकार ( अबुध्ने ) सब दुःख-बन्धनों से रहित मोक्ष में (राजा वरुणः) प्रकाशस्वरूप, सर्वश्रेष्ठ, परमेश्वर (पूतदक्षः) पवित्र ज्ञान और बल से युक्त (ऊर्ध्वं ( स्तूपं ददते ) सबसे ऊपर ज्ञानसमूह वेदराशि को धारण करता है। वे ( नीचीनाः स्थुः ) इस लोक में सूर्य की किरणों के समान प्राप्त हैं। पर (एषाम् बुध्नः उपरि) इन सबका मूल ऊपर ही है। वे ही (केतवः) ज्ञान-राशियें (अस्मे अन्तः निहिताः स्युः) हमारे भीतर भी विद्यमान हों। अर्थात् सूर्य जिस प्रकार सब प्रकाशों का केन्द्र सर्वोपरि है उसी प्रकार ज्ञानों का प्रधान केन्द्र परमेश्वर सर्वोपरि है।

उरुं हि राजा वरुणश्चकार सूर्याय पन्थामन्वेतवा उं।
अपदे पादा प्रतिधातवेऽकरुतापवक्ता हृदयाविधश्चित् ॥ ८ ॥

भा०—जो ( राजा ) सर्वत्र प्रकाशमान, प्रकाशस्वरूप ( वरुणः ) सर्वश्रेष्ठ, राजा के समान परमेश्वर सब दुःखों का वारण करने हारा होकर ( सूर्याय ) सूर्य के ( अनु एतवा ) प्रतिदिन और प्रति संवत्सर पुनः पुनः नियम से अनुसरण करने के लिए ( उरुम् ) विशाल ( पन्थाम् ) मार्ग को ( चकार ) बना देता है। और ( अपदे ) अगम्य आकाश में भी (पादा ) किरणों के ( प्रतिधातवे ) प्रत्येक पदार्थ तक पहुंचने के लिए अवकाश को (अकः) बनाता है वह ही (हृदयाविधः चित् ) हृदय अर्थात् मर्म को शस्त्रों और दुःखदायी वचनों से बेंधने वाले कटुभाषी पुरुष का भी ( अपवक्ता ) निराकरण करनेवाला हो। अथवा (हृदयाविधः चित् अपवक्ता ) हृदयवेधी के समान निन्दक पुरुष का भी दमन करता है।

शतं ते राजन्भिषजः सहस्रमुर्वी गम्भीरा सुमतिष्टे अस्तु।
बाधस्व दूरे निर्ऋतिं पराचैः कृतं चिदेनः प्र मुमुग्ध्यस्मत् ॥ ९ ॥

भा०—हे ( राजन् ) राजन्! प्रकाशमान परमेश्वर! (ते) तेरे (शतं)

सैकड़ों और ( सहस्रं ) हज़ारों ( भिषजः ) रोग और बाधक शत्रुओं के निवारण करनेवाले औषधों और वैद्यों के समान उपाय हैं। अथवा—( ते भिषजः ) तुझ वैद्य के समान सर्वकष्ट निवारक परमेश्वर के बनाये ( शतं) सैकड़ों और ( सहस्रं ) हज़ारों उपाय कष्टों से बचने के हैं। (ते) तेरी ही ( गम्भीरा ) यह गम्भीर, अगाध ( उर्वी ) पृथिवी है ( ते सुमतिः अस्तु ) तेरी ही शुभ कल्याणकारी मति सदा रहे। अथवा (ते उर्वी गम्भीरा सुमतिः अस्तु ) तेरा विशाल और गम्भीर उत्तम ज्ञान हमें प्राप्त हो। तू (निर्ऋतिं) पाप प्रवृत्ति और दुःखदायी कष्ट करनेवाली शत्रुसेना को ( दूरे ) दूर ही ( बाधस्व ) पीड़ित कर। ( कृतं चित् ) किये हुए ( एनः ) अपराध को भी ( अस्मत् पराचैः ) हम से परे ( प्र मुमुग्धि ) हटा।

अमी य ऋक्षा निहितास उच्चा नक्तं ददृश्रे कुह चिद्दिवेयुः।
अदब्धानि वरुणस्य व्रतानि विचाकशच्चन्द्रमा नक्तमेति १०॥१४॥

भा०—( ये ) जो ( अमी ) ये ( ऋक्षाः ) नक्षत्रगण ( उच्चा ) ऊपर आकाश में (निहितासः) निश्चल रूप से स्थापित हैं जो (नक्तं) रात के समय तो ( ददृश्रे ) दिखलाई देते हैं और ( दिवा ) दिन के समय ( कुहचित् ) कहीं ( ईयुः ) चले जाते हैं, लुप्त हो जाते हैं। और (विचाकशत् ) विशेष प्रकाश से चमकता हुआ ( चन्द्रमाः ) चन्द्र ( नक्तम् ) रात के समय ( एति ) आता जाता है, यह सब ( वरुणस्य ) उस सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के ( व्रतानि ) नियम ( अदब्धानि ) कभी नष्ट नहीं होते।

तत्त्वा यामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदा शास्ते यजमानो हविर्भिः।
अहेळमानो वरुणेह बोध्युरुशंस मा न आयुः प्र मोषीः॥ ११॥

भा०—हे ( वरुण ) सब दुःखों के वारक, सबसे वरण करने योग्य, एवं सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर! (यजमानः) उपासना करनेवाला पुरुष (हविर्भिः) उत्तम स्तुति-वचनों से ( तत् ) उन २ अभिलाषा योग्य पदार्थों की ( आशास्ते ) कामना करता है। ( तत् ) उन उन पदार्थों की ही मैं भी

( ब्रह्मणा ) वेद द्वारा ( वन्दमानः ) तेरी स्तुति करता हुआ ( यामि ) तुझसे याचना करता हूं । हे ( उरुशंस ) बहुत मनुष्यों से स्तुति करने योग्य, अतिस्तुत्य ! तू (अहेळमानः) हमारा अनादर और तिरस्कार न करता हुआ ( इह ) इस संसार में ( बोधि ) हमारा अभिप्राय जान और हमें ज्ञान प्रदान कर । और ( नः ) हमारी ( आयुः ) आयु को ( मा ) मत (प्रमोषीः) नष्ट कर । राजा के पक्ष में—(यजमानः हविर्भिः तत् आशास्ते) कर देनेवाला प्रजाजन नाना कर, अन्न आदि देकर नाना प्रकार की आशाएँ करता है । मैं भी वेदोक्त वचनों से तेरे गुणों का वर्णन करता हुआ उसी आशागत फल को चाहता हूं । तू प्रजा का अनादर न करता हुआ प्रजा के कर्त्तव्यों को जान और मुझ प्रजाजन की आयु को नष्ट मत कर । सूर्य पक्ष में—यज्ञशील पुरुष हवियों द्वारा बहुत से उत्तम फल चाहता है । उन फलों को मैं वेदज्ञान से प्राप्त करूँ । हमें सूर्य का प्रकाश, ज्ञान और सूर्य हमारे जीवन नष्ट न करे ।

तदिन्नक्तं तद्दिवा मह्यमाहुस्तद॒यं केतो॑ हृद आ वि च॑ष्टे ।
शुनःशेपो यमह्वद् गृभीतः सो अस्मान्राजा वरुणो मुमोक्तु ॥१२॥

भा०—विद्वान् पुरुष, माता पिता, आचार्य गण और चारों वेद (नक्तम्) रात्रि को ( तत् ) उस परम ज्ञान का ही ( मह्यम् आहुः ) मुझे उपदेश करें । और वेही विद्वान् जन और वेद मन्त्र ( मह्यम् ) मुझे (दिवा) दिन के समय भी ( तत् ) उसी परमसुख प्राप्ति कराने वाले ज्ञान का (आहुः) उपदेश करें । ( अयं केतः ) जो वेद ज्ञान ( हृदः ( हृदय को ( आ विचष्टे ) सब प्रकार से प्रकाशित करता है । ( शुनः शेपः ) सुख और उत्तम ज्ञान को प्राप्त करने वाला, परम सुखाभिलाषी मुमुक्षु और जिज्ञासु विद्वान् ( गृभीतः ) बन्धन में बंध कर ( यम् ) जिस परमेश्वर को ( अह्वत् ) पुकारता है, स्मरण करता है ( सः ) वह ( राजा ) सब में प्रकाशमान, सूर्य के समान तेजस्वी ( वरुणः ) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर ( अ-

स्मान् ) हम बद्ध जीवों को ( मुमोक्तु ) अन्धकार से सूर्य के समान अज्ञानमय बंधनों से मुक्त करे।

शुनःशेपो ह्यह्वद् गृभीतस्त्रिष्वादित्यं द्रुपदेषु बद्धः । अवैनं राजा वरुणः ससृज्याद्विद्वाँ अदब्धो वि मुमोक्तु पाशान् ॥ १३ ॥

भा०—( त्रिषु ) तीन ( द्रुपदेषु ) खूंटों में ( बद्धः ) बंधे हुए पशु के समान प्रकृति के तीन गुणों में ( गृभीतः ) आन फंसा और जकड़ा हुआ यह ( शुनःशेपः ) सुखार्थी, मुमुक्षु और जिज्ञासु पुरुष ( आदित्यम् ) सूर्य के समान तेजस्वी एवं सबको अपनी शरण में लेने हारे परमेश्वर को ( अह्वत् ) पुकारता है। और ( राजा वरुणः ) प्रकाशस्वरूप, वह सर्वोपरि वरुण, सर्वश्रेष्ठ ( अदब्धः ) कभी भी नाश न होने वाला, नित्य, (विद्वान्) ज्ञानवान् परमेश्वर ( एनं ) उस जिज्ञासु को ( अव ससृज्यात् ) बंधनों से छुड़ादे और वही ( पाशान् ) सब पाशों को ( वि मुमोक्तु ) नाना प्रकार से दूर करे।

अव ते हेळो वरुण नमोभिरव यज्ञेभिरीमहे हविर्भिः ।
क्षयन्नस्मभ्यमसुर प्रचेता राजन्नेनांसि शिश्रथः कृतानि ॥१४॥

भा०—हे (वरुण) सबों से वरणीय, दुःखवारक परमेश्वर ! हम ( ते हेळः ) तेरे प्रति अनादर, अवज्ञा और उपेक्षा द्वारा किये अपराध को ( नमोभिः ) नमस्कारों, ( हविर्भिः ) देने और स्वीकार करने योग्य उत्तम अन्नादि पदार्थों को देकर और ( यज्ञेभिः ) दान, उपासना आदि कर्मों से ( अव, अव ईमहे ) दूर करते हैं। हे ( प्रचेतः ) उत्कृष्ट ज्ञान वाले हे (राजन्) राजा के समान तेजस्विन् ! हृदय और संसार भर के राजन् ! हे ( असुर ) सबके प्राणों में रमने, प्राणों के देने और दुःखों के उखाड़ फेंकने वाले तू ( कृतानि ) हमारे किये कर्मों का ( क्षयन् ) भोग द्वारा क्षय कराता हुआ, तप द्वारा ( एनांसि शिश्रथः ) सब पाप कर्मों को भी शिथिल करदे।

उदुत्तमं वरुण पाशमस्मदवाधमं वि मध्यमं श्रथाय। अथा वयमादित्य व्रते तवानागसो अदितये स्याम ॥ १५ ॥ १५ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू ( उत्तमम् पाशम् ) उत्तम कोटि के सात्विक बन्धन को ( उत् श्रथाय ) उत्तम भोगों द्वारा शिथिल करता है। और ( अधमं पाशं ) निकृष्ट, तामस बन्धन को ( अव श्रथाय ) नीचे की जीव योनियों में भेज कर शिथिल करता है। और ( मध्यमं पाशं ) मध्यम श्रेणी के पाश को (वि श्रथाय) विविध योनियों के भोग से शिथिल करता है। ( अथ ) उन सब भोगों के अनन्तर, हे ( आदित्य ) शरण में लेने हारे एवं सूर्य के समान प्रकाशक ! ( वयम् ) हम ( तव व्रते ) तेरे दिखाये कर्त्तव्य कर्म में चल कर ( अदितये ) अखण्ड सुख, मोक्ष के प्राप्त करने के लिये (अनागसः) निष्पाप स्वच्छ (स्याम) हो जाते हैं। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

[ २५ ]

शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः॥ वरुणो देवता ॥ गायत्र्यः। एकविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

यच्चिद्धि ते विशो यथा प्र देव वरुण व्रतम्।
मिनीमसि द्यविद्यवि ॥ १ ॥

भा०—हे ( वरुण ) सबके वरने योग्य राजा के समान ! हे ( देव ) सर्वसुखप्रद ! सर्वप्रकाशक ! परमेश्वर ! ( विशः ) प्रजाएं जिस प्रकार दिन प्रतिदिन कुछ न कुछ नियम-भङ्ग आदि अपराध किया ही करती हैं उसी प्रकार (यत् चित्) जो कुछ भी (हि) कभी हम (व्रतम्) किसी कर्त्तव्य को ( द्यविद्यवि ) दिन प्रतिदिन (मिनीमसि) तोड़ सकते हैं। परन्तु तू—

मा नो वधाय हत्नवे जिहीळानस्य रीरधः।
मा हृणानस्य मन्यवे ॥ २ ॥

भा०—हे वरुण ! राजन् ! हे परमेश्वर ! ( जिहीळानस्य ) अज्ञान से अनादर करने वाले पुरुष के ( वधाय ) वध करने और ( हत्नवे )

किसे पर आघात पहुंचाने के लिये ( नः ) हमें ( मा रीरधः ) मत प्रेरित कर। और इसी प्रकार ( मन्यवे ) क्रोध के निमित्त (हृणानस्य) स्वयं लज्जा अनुभव करने वाले को दण्ड देने के लिये भी मत उकसा।

वि मृ॒ळीका॑य ते॒ मनो॑ र॒थीरश्वं॒ न सन्दि॑तम्।
गी॒र्भिर्व॑रुण सीमहि ॥ ३ ॥

भा०—हे ( वरुण ) परमेश्वर ! राजन् ! ( रथीः ) रथ का स्वामी ( संदितम् ) बन्ध में खण्डित, थके, हारे हुए ( अश्वं न ) घोड़े को जिस प्रकार ( गीर्भिः ) नाना प्रकार की मन बंधाने वाली, पुचकारवाली वाणियों से उसको अपने वश करता है उसी प्रकार हम भी ( मृळीकाय ) सुख प्राप्त करने के लिये ( ते मनः ) तेरे हृदय या ज्ञान को ( गीर्भिः ) स्तुति-वाणियों द्वारा ( सीमहि ) बांधते हैं।

परा॒ हि मे॒ विम॑न्यवः॒ पत॑न्ति॒ वस्य॑ इष्टये।
वयो॒ न व॑स॒तीरुप॑ ॥ ४ ॥

भा०—(वयः) पक्षिगण जिस प्रकार (वसतीः न उप पतन्ति) अपने रहने के जगहों के प्रति उड़ आते हैं उसी प्रकार हे वरुण ! राजन् ! ( मे ) मेरी ( विमन्यवः ) विविध प्रकार की बुद्धियां, ( वस्यः ) सबसे श्रेष्ठ वसु, सबको वास देने हारे, सबके शरणरूप तेरी ( इष्टये ) प्राप्त करने के लिये (हि) निश्चय ( परा उप पतन्ति ) तेरे समीप तक उड़ती २ तुझ तक पहुंचती हैं। अथवा—(वयः वसतीः न) पक्षी जिस प्रकार अपने स्थानों को छोड़ कर अपने आहार को प्राप्त करने के लिये चले चले जाते हैं इसी प्रकार ( विमन्यवः ) विशेष ज्ञानवान् पुरुष अति अधिक धन प्राप्ति के लिये ( परा पतन्ति हि ) दूर २ देशों तक जावें।

क॒दा क्ष॑त्र॒श्रियं॒ नर॒मा वरु॑णं करामहे।
मृ॒ळीकायो॑रु॒चक्ष॑सम् ॥ ५ ॥ १६ ॥

भा०—(मृळीकाय) सुख प्राप्त करने के लिये हम लोग (नरम्) सबके

नायक, (वरुणम्) अपने आप चुने गये राजा के समान सब कष्टों के वारक (उरुचक्षसम्) बहुत प्रकार के ज्ञानों और प्रजाजनों के द्रष्टा पुरुष को हम लोग ( कदा ) कब ( क्षत्रश्रियम् ) समस्त बलों का आश्रय, राजा रूप से ( करामहे ) बनावें । अर्थात् सदाही हम द्रष्टा नायक पुरुष को अपना राजा बनावें । इति षोडशो वर्गः ॥

तदित्स॒मान॑मा॑शाते॒ वेन॑न्ता॒ न प्र यु॑च्छतः ।
धृ॒तव्र॑ताय दा॒शुषे॑ ॥ ६ ॥

भा०—( धृतव्रताय ) समस्त व्रतों, नियमों, कर्त्तव्यों की वाग डोर को धारण करने वाले ( दाशुषे ) दान शील स्वामी को प्रसन्न करने लिये ( वेनन्ता ) उसकी अभिलाषा के अनुसार वाद्य वादन और गान करने वाले गायक, वादक ( न ) जिस प्रकार ( तद् इत् ) उसके अभिलषित गान वाद्य को ( समानम् ) दोनों समान रूप से ( आशाते ) प्रयोग करते हैं और (प्र युच्छतः) उसको प्रसन्न करते हैं । उसी प्रकार ( धृतव्रताय ) समस्त संसार की नियम व्यवस्थाओं को धारण करने वाले ( दाशुषे ) सर्व सुखों के दाता परमेश्वर की ( वेनन्ता ) कामना करने वाले साधक और जिज्ञासु जन ( तद् इत् ) उसके वचन को ( समानम् ) समान रूप से ( आशाते ) प्राप्त करें और ( प्र युच्छतः ) उसको प्रसन्न करें । अथवा राजा के दो भृत्य जिस प्रकार समान रूप से पद को प्राप्त करते उसकी कामना करते (न प्र युच्छतः) नहीं प्रमाद करते उसी प्रकार सब नियम व्यवस्थाओं के धारण करने वाले सबके दाता स्वामी, परमेश्वर के बनाये नियम को सूर्य और वायु भी समान रूप से व्यापते हैं और वे (न प्र युच्छतः) कभी प्रमाद नहीं करते ।

वेदा॒ यो वी॒नां प॒दम॒न्तरि॑क्षेण॒ पत॑ताम् ।
वेद॑ ना॒वः स॑मु॒द्रियः॑ ॥ ७ ॥

भा०—( यः ) जो परमेश्वर और राजा ( अन्तरिक्षे ) अन्तरिक्ष,

आकाश मार्ग से ( पतताम् ) जाने वाले ( वीनां ) पक्षियों और विमानों के भी ( पदम् ) गन्तव्य मार्ग को ( वेद ) जानता है ( समुद्रियः ) समुद्र में चलने वाली ( नावः ) महान् आकाश में विद्यमान, बड़े २ सूर्या लोकों या समुद्रगामी नौकाओं, जहाज़ों को भी ( वेद ) जानता है वही परमेश्वर और राजा सेवनीय है।

वेद मासो धृतव्रतो द्वादश प्रजावतः ।
वेदा य उपजायते ॥ ८ ॥

भा०—( यः ) जो परमेश्वर या विद्वान् ( धृतव्रतः ) सब नियम-व्यवस्थाओं और धर्मों को धारण करने वाले सूर्य के समान ( प्रजावतः ) नाना उत्पन्न प्रजाओं के स्वामी (द्वादश) बारहों ( मासः ) मासों को (वेद) जानता है। और ( यः ) जो ( उपजायते ) बाद में १३ वां मास होता है उसको भी जानता है वह सबको सुख देता है। उसी प्रकार राजा १२ प्रजापालक राजाओं को जानता है और जो उस १३ वें विजिगीषु को, जो सब में प्रबल हो जाता है उसको भी जानता है वही प्रजा को वरुण पद पर चुनने योग्य है।

वेद वातस्य वर्तनिमुरोर्ऋष्वस्य बृहतः ।
वेदा ये अध्यासते ॥ ९ ॥

भा०—परमेश्वर ( उरोः ) बड़े ( बृहतः ) बलवान् ( ऋष्वस्य ) सर्वत्र गतिशील, दर्शनीय ( वातस्य ) वायु के ( वर्त्तनिम् ) मार्ग को ( वेद ) जानता है, और (ये) जो ( अधि आसते ) सूर्यादि नाना पदार्थों पर अधिष्ठाता, शासक रूप से विराजते हैं उनको भी जानता है। विद्वान् वायु के मार्ग और सूर्यादि शासक पदार्थों को जाने। राजा ( वातस्य ) वायु के समान प्रबल सेनापति या शत्रु राजा के मार्गों और शासकों के चालों को भी जाने।

नि षसाद धृतव्रतो वरुणः पस्त्या३स्वा ।
साम्राज्याय सुक्रतुः ॥ १० ॥ १७ ॥

भा०—(धृतव्रतः) सदाचार और राज्य-नियमों को धारण करने वाला राजा एवं संसार के सृष्टि नियम और धर्मों को धारण या स्थापन करने वाला ( वरुणः ) सर्वश्रेष्ठ, पुरुषोत्तम ( पस्त्यासु ) गृहों में बसने वाली प्रजाओं में ( साम्राज्याय) महान् साम्राज्य की व्यवस्था के लिये (सुक्रतुः) उत्तम कर्म और प्रजा से युक्त होकर ( आ नि ससाद ) विराजे । इति सप्तदशो वर्गः ।

अतो विश्वान्यद्भुता चिकित्वाँ अभि पश्यति ।
कृतानि या च कर्त्वा ॥ ११ ॥

भा०—(अतः) इसी कारण (चिकित्वान्) ज्ञानवान् पुरुष (विश्वानि) समस्त, ( अद्भुतानि ) आश्चर्यजनक, अभूतपूर्व, जो पहले कभी देखे, सुने, या किये भी न गये हों ऐसे ( कृतानि ) किये कर्मों और ( या च कर्त्ता ) जो काम भविष्य में करने को भी हैं उन सबको (अभि पश्यति) देखता है । सब पर दृष्टि रखता है ।

स नो विश्वाहा सुक्रतुरादित्यः सुपथा करत् ।
प्र ण आयूंषि तारिषत् ॥ १२ ॥

भा०—(सुक्रतुः) उत्तम ज्ञान और कर्मों का करने वाला (आदित्यः) सूर्य के समान तेजस्वी ( सः ) वह ज्ञानवान् परमेश्वर, विद्वान् और राजा ( विश्वाहा ) सदा, सब दिनों ( सुपथा ) उत्तम मार्ग से ( नः ) हमें ( करत् ) संचालित करे और ( नः ) हमारे ( आयूँषि ) जीवनों को ( प्र तारिषत् ) बढ़ावे, उनको सफल करे ।

बिभ्रद्द्रापिं हिरण्ययं वरुणो वस्त निर्णिजम् ।
परि स्पशो नि षेदिरे ॥ १३ ॥

भा०—(वरुणः) सूर्य जिस प्रकार ( हिरण्यम् ) सुवर्ण के समान उज्ज्वल ज्योतिर्मय (द्रापिम्) बाह्य स्वरूप को (बिभ्रद्) धारण करता है और (निर्णिजम् ) शुद्ध प्रकाश को ( वस्त ) वस्त्र के समान धारण करता है। और ( स्पशः ) प्रकाश की किरणें उसके ( परि ) चारों ओर ( निषेदिरे ) विराजती हैं उसी प्रकार राजा भी ( हिरण्यद्रापिं बिभ्रत् ) सुवर्ण के बन कवच को धारण करता हुआ और (निर्णिजं) सर्वदा शोधन, न्याय, विवेक करने वाले आसन पर विराजता है, या अतिशुद्ध वस्त्रों को धारण करता है ( स्पशः ) सत्यासत्य को देखनेवाले स्पश, उसके अधीन दूत प्रणिधि और विद्वान् पुरुष ( परि निषेदिरे ) उसके गिर्द विराजते हैं। इसी प्रकार परमेश्वर तेजोमयरूप को धारता और शुद्ध सत्य तत्व को ग्रहण करता है और ( स्पशः ) स्पर्श करनेवाले, या तेजस्वी सब सूर्यादि दिव्य पदार्थ उसी के आश्रय पर विराजते हैं।

न यं दिप्सन्ति दिप्सवो न द्रुह्वाणो जनानाम्।
न देवमभिमातयः ॥ १४ ॥

भा०—( यम् ) जिस ( देवम् ) दानशील परमेश्वर और विजिगीषु राजा को ( दिप्सवः ) हिंसाशील पुरुष ( न दिप्सन्ति ) मारना भी नहीं चाहते अर्थात् उससे मारने तक का संकल्प भी नहीं कर सकते और (जनान द्रुह्वाणः ) जन्तु और सब मनुष्यों के द्रोहकारी लोग भी जिसका द्रोह नहीं कर पाते और जिसको ( अभिमातयः ) अभिमानी शत्रुगण भी परास्त नही कर सकते, वही परमेश्वर, और राजा न्यायकारी पद पर स्थित 'वरुण' है।

उत यो मानुषेष्वा यशश्चक्रे असाम्या।
अस्माकमुदरेष्वा ॥ १५ ॥ १८ ॥

भा०—( उत ) और (यः) जो परमेश्वर, सूर्य और मेघ (मानुषेषु) समस्त मननशील पुरुषों के निमित्त (असामि) पूर्णरूप से (यज्ञः) यज्ञ, अन्न ( आ चक्रे ) प्रदान करता है और ( अस्माकम् ) हमारे ( उदरेषु ) पेटों

को भरने के लिए ( यशः ) अन्न ( आ चक्रे ) सर्वत्र पैदा कराता है वह 'वरुण' है। उसी प्रकार जो राजा ( मानुषेषु ) समस्त मनुष्यों में अपने यश, कीर्ति को विस्तृत करता और सब मनुष्यों और (अस्माकम् उदरेषु) हम प्रजाजन के उदरों की क्षुधा शान्ति के लिए ( यशः आ चक्रे ) सर्वत्र भूगोल पर अन्न उत्पन्न कराता है वह राजा 'वरुण' है। इत्यष्टादशो वर्गः॥

परा मे यन्ति धीतयो गावो न गव्यूतीरनु ।
इच्छन्तीरुरुचक्षसम् ॥ १६ ॥

भा०—( गव्यूतीः अनु ) गौओं के जाने के स्थान, बाड़े में जिस प्रकार ( गावः न ) गौएं जाती हैं उसी प्रकार ( उरुचक्षसम् ) समस्त विशाल लोकों के द्रष्टा सूर्य के समान दर्शनीय, तेजोमय उस परमेश्वर को ( इच्छन्तीः ) चाहती हुई ( मे ) मेरी ( धीतयः ) बुद्धियां और चेष्टाएं ( परा अनु यन्ति ) दूर तक उसीको लक्ष्य करके चलती जाती हैं। और मुमुक्षु के सब मनन और कर्म प्रयत्न उसी परमेश्वर के लिए हैं।

सं नु वोचावहै पुनर्यतो मे मध्वाभृतम् ।
होतेव क्षदसे प्रियम् ॥ १७ ॥

भा०—( यतः ) क्योंकि ( मे ) मुझे ( मधु ) अति प्रिय ज्ञानरस विद्वानों से प्राप्त हुआ है। और हे शिष्य ! तू उस ( प्रियम्) प्रिय, तृप्ति कर ज्ञानराशि को (होता इव ) यज्ञकर्त्ता विद्वान् के समान ही (क्षदसे) अपने हृदय के अज्ञान के नाश के लिए प्राप्त करता है इसलिए हम दोनों ( सं वोचावहै ) भली प्रकार उस ज्ञान को परस्पर वचन-प्रतिवचन द्वारा उपदेश दें और ग्रहण करें।

दर्शं नु विश्वदर्शतं दर्शं रथमधि क्षमि ।
एता जुषत मे गिरः ॥ १८ ॥

भा०—( अधि क्षमि ) इस पृथ्वी पर ( विश्वदर्शतम् ) सबके दर्श-नीय ( रथम् ) रथ पर चढ़े महारथी राजा के समान या सूर्य के समान

तेजस्वी ( रथम् ) परम् रसस्वरूप, आनन्दमय परमेश्वर को ( दर्शं दर्शं ) पुनः पुनः दर्शन करने के लिए ( मे ) मेरी ( एताः ) इन ( गिरः ) वेद-वाणियों को (जुषत) सेवन करो। इनका श्रवण, मनन और अभ्यास करो।

इमं मे वरुण श्रुधी हवमद्या च मृळय।
त्वामवस्युरा चके ॥ १९ ॥

भा०—हे (वरुण) सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर! राजन्! ( मे ) मेरे ( इमं ) इस ( हवम् ) स्तुतिवचन, पुकार, स्मरण को ( अद्य ) आज ( श्रुधि ) श्रवण कर ( च ) और ( अद्य ) आज दिन, अब सदा ( त्वं ) तू ही मुझे ( मृळय ) सुखी कर। मैं (अवस्युः) रक्षा और ज्ञान प्राप्त करने का इच्छुक होकर ( त्वाम् ) तेरी ( आचके ) स्तुति करता हूं।

त्वं विश्वस्य मेधिर दिवश्च ग्मश्च राजसि।
स यामनि प्रति श्रुधि ॥ २० ॥

भा०—हे ( मेधिर ) मेधाविन्! विद्वन्! ज्ञानवन्! परमेश्वर! राजन्! ( त्वं ) तू ( विश्वस्य ) समस्त (दिवश्च) आकाश और (ग्मः च) पृथिवी के ऊपर ( राजसि ) राजा और सूर्य के समान प्रकाशित होता है और ( सः ) वह तू ( यामनि ) प्रति पहर ( प्रति श्रुधि ) प्रत्येक मनुष्य या जन्तु के कष्टों को श्रवण कर।

उदुत्तमं मुमुग्धि नो वि पाशं मध्यमं चृत।
अवाधमानि जीवसे ॥ २१ ॥ १९ ॥

भा०—हे परमेश्वर! हे राजन्! ( नः ) हमारे ( उत्तमं ) उत्तम श्रेणी के सात्विक ( पाशं ) बन्धन को ( मुमुग्धि ) उन्मुक्त कर, उत्तम रीति से, उत्तम फलों के भोग द्वारा छुड़ा। और ( मध्यमं ) बीच की श्रेणी के (पाशं) बन्धन को (वि चृत) विविध, उत्तम, अधम योनि में मिले कर्म फलों के भोग द्वारा काट और (अधमानि) निकृष्ट कोटि के पाशों को भी ( जीवसे ) जीवन को सुखप्रद करने के लिये ( अव चृत ) नीच योनियों

में भोग भुगा कर काटे। इसी प्रकार राजा भी तीनों प्रकार के अपराधियों के तीन प्रकार की क़ैद आदि में रखकर उनको दोषों से दूर रक्खे। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

[ २६ ]

शुनःशेप आजीगर्त्तिर्ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ८, ६ आर्ची उष्णिक्। २—६ निचृद्गायत्री। ३ प्रतिष्ठा गायत्री। ४, १० गायत्री। ५, ७ विराड् गायत्री। दशर्चं सूक्तम् ॥

वसि॑ष्वा॒ हि मि॑येध्य॒ वस्त्रा॑ण्यूर्जां पते।
से॒मं नो॑ अध्व॒रं य॑ज ॥ १ ॥

भा०—हे ( मियेध्य ) पवित्र यज्ञ के योग्य विद्वन्! हे प्रजापति पद के योग्य राजन्! हे सत्संग उपासना करने योग्य परमेश्वर! हे यज्ञ-अग्नि द्वारा हव्य पदार्थों को प्रक्षेप करने हारे ऋत्विग्! और हे (ऊर्जांपते) अन्नों, बल, पराक्रमों और समस्त परम रसों के परिपालक! तू (वस्त्राणि) आदित्य जिस प्रकार आच्छादक, सबके तेजों को दबा लेने हारे प्रकाशों को धारण करता है उसी प्रकार (वस्त्राणि) भव्य वस्त्रों को (वसिष्व) धारण कर, पहन। और ( सः ) वह तू ( नः ) हमारे ( इमं ) इस ( अध्वरं ) हिंसा रहित यज्ञ, प्रजापालन रूप कर्म का (यज) कर। परमेश्वर के पक्ष में— हे परमेश्वर! तू ( वस्त्राणि वसिष्व ) सबको आच्छादन करने हारे वस्त्र त्वचा आदि प्रदान करता है। वह तू हमारे आत्मा को 'अध्वर' अर्थात् हिंसारहित जीवन प्रदान कर।

नि नो॒ होता॒ वरे॑ण्यः॒ सदा॑ यविष्ठ॒ मन्म॑भिः।
अग्ने॑ दि॒वित्म॑ता॒ वचः॑ ॥ २ ॥

भा०—हे ( यविष्ठ ) अति बलशालिन्! हे ( अग्ने) अग्नि के समान तेजस्विन्! ज्ञानवन्! परमेश्वर! राजन्! विद्वन्! तू ( नः ) हमें (होता)

समस्त सुखप्रद पदार्थों और ज्ञानों के देने हारा ( वरेण्यः ) उत्तम पद और कार्य के लिए वरण करने योग्य श्रेष्ठ और ( मन्मभिः ) मनन करने योग्य ज्ञातव्य गुणों से युक्त होकर ( दिविल्मता ) प्रकाश और ज्ञान को अधिक बढ़ाने वाले उत्तम गुण या तेज से युक्त होकर ( नः वचः ) हमें वाणी, वेदवाणी और उत्तम आज्ञा का उपदेश कर। अथवा हे ( अग्ने ) परमेश्वर ( दिविल्मता वचः ) ज्ञान के वर्धक वचन, वाणी उपदेश से युक्त कर। इस मन्त्र में विद्वान् ज्ञानी पुरुष को ही यज्ञ के लिए भी होता वरण करना चाहिए, यह भाव स्पष्ट है।

आ हि ष्मा सूनवे पितापिर्यजत्यापये।
सखा सख्ये वरेण्यः ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार (पिता) पालक पिता ( सूनवे ) पुत्र को अपना सर्वस्व (आ यजति) देता है और ( आपिः आपये ) आप्त विद्वान् या बन्धु आप्त शिष्य या बन्धु को अपना ज्ञान और धन प्रदान करता है और (सखा) मित्र अपना प्रेम और धन ( सख्ये ) मित्र को प्रदान करता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! राजन् ! तू भी हमें हमारे ( पिता, आपि, सखा ) पिता, बन्धु और मित्र होकर मुझ ( सूनवे आपये सख्ये ) पुत्र बन्धु और मित्र के लिए ( वरेण्यः ) वरण करने योग्य सर्वश्रेष्ठ होकर ( आ यजति स्म ) सब कुछ प्रदान करता है।

पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्। गी० ११।४४॥
पितासि लोकस्य चराचरस्य त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्। गी० ११। ४३॥

आ नो बर्ही रिशादसो वरुणो मित्रो अर्यमा।
सीदन्तु मनुषो यथा ॥ ४ ॥

भा०—( नः ) हमारे (बर्हिः) यज्ञ में (यथा) जिस प्रकार (मनुष्यः) मननशील, बुद्धिमान् ज्ञानी पुरुष आकर बैठे उसी प्रकार हमारे ( बर्हिः ) सुखप्रद उत्तम अधिकारासन पर शास्य प्रजाजन के ऊपर प्रजापालन के

कार्य पर भी (रिसादसः) हिंसक दुष्ट पुरुषों के नाशक (वरुणः) दुःखों का वारक श्रेष्ठ पुरुष, ( मित्रः ) सबका स्नेही और ( अर्यमाच ) न्यायाधीश पुरुष भी [ आसीदन्तु ] विराजें।

पूर्व्य होतरस्य नो मन्दस्व सख्यस्य च।
इमा उ षु श्रुधी गिरः ॥ ५ ॥ २० ॥

भा०—हे ( पूर्व्य ) पूर्व के विद्वान् पुरुषों द्वारा सत्कार पानेहारे! उन द्वारा उच्चासन पर स्थापित हे ( होतः ) अधिकारों और प्रजाओं को नाना ऐश्वर्य सुखों के देने हारे! तू ( सख्यस्य ) इस मित्रता और (च) बन्धुता के कारण सदा (मन्दस्व) खूब प्रसन्न हर्षित हो और (इमाः) इन ( गिरः ) वाणियों, स्तुतियों को ( श्रुधि ) श्रवणकर और हे विद्वन्! ( इमाः गिरः श्रुधि) इन वेदवाणियों को श्रवण करा। इति विंशो वर्गः ॥

यच्चिद्धि शश्वता तना देवंदेवं यजामहे।
त्वे इद्धूयते हविः ॥ ६ ॥

भा०—( यत् चित् ही ) और जब जब भी ( तना शश्वता ) अति विस्तृत अनादि सिद्ध वेदज्ञान से ( देवंदेवं ) किसी भी दिव्य पदार्थ या ज्ञानद्रष्टा, तत्व प्रकाशक विद्वान् को ( यजामहे ) संभव हो, उसका आदर सत्कार करते हैं, तब तब भी ( त्वे इत् ) उस तुझ में ही हे (अग्ने) ज्ञानवन् परमेश्वर! ( हविः ) अग्नि में डाली आहुति के समान तेरे में हो ( हविः ) वह ग्रहण करने योग्य, या देने योग्य आदर सत्कार स्तुति वचन आदि ( हूयते ) प्रदान किया जाता है। अर्थात् विद्वानों, सत्पुरुषों का आदर सत्कार आदि भी परमेश्वर की ही पूजा करना है।

सर्वदेव नमस्कारः केशवं प्रति गच्छति। स्फुट।

पृथिव्यादि पदार्थों में विशेष गुण लाने के लिए भी अग्नि में ही आहुति दी जाती है और सब श्रेष्ठ कार्य करते समय भी परमेश्वर की ही स्तुति की जाती है।

प्रियो नो अस्तु विश्पतिर्होता मन्द्रो वरेण्यः ।
प्रियाः स्वग्नयो वयम् ॥ ७ ॥

भा०—( होता ) सुखों, ऐश्वर्यों के देने वाला (वरेण्यः) वरण करने योग्य, चुन लेने योग्य, ( मन्द्रः ) सदा स्वयं प्रसन्न, सबको प्रसन्न करने हारा, स्तुति योग्य, अति सुस्वभाव (विश्पतिः) प्रजाओं का पालक, स्वामी, राजा ( नः ) हमारा ( प्रियः अस्तु ) प्रिय, प्रीतिपात्र हो । और अग्निहोत्र या यज्ञ में श्रेष्ठ होता से जिस प्रकार हम ( सु-अग्नयः ) उत्तम यज्ञाग्नियुक्त होकर सब बन्धु-बान्धवों के प्रिय हो जाते हैं उसी प्रकार पूर्वोक्त राजा से ही ( वयम् ) हम सब प्रजाजन भी ( स्वग्नयः ) उत्तम अग्नि के समान तेजस्वी, शत्रुसंतापक, ज्ञान बलप्रद राजारूप अग्नि से युक्त होकर (प्रियाः) सबके प्रेमपात्र और परस्पर प्रीतियुक्त हों ।

स्वग्नयो हि वार्यं देवासो दधिरे च नः ।
स्वग्नयो मनामहे ॥ ८ ॥

भा०—( स्वग्नयः देवासः ) उत्तम गुणों से युक्त अग्नि को धारण करने वाले ( देवासः ) सूर्य के किरण जिस प्रकार ( वार्यं ) अति सूक्ष्म परमाणुओं में विभक्त हुए जल को धारण करते हैं और जिस प्रकार उत्तम अग्नि से युक्त होकर पृथिवी आदि दिव्य पदार्थ ( वार्यम् ) वरण करने योग्य श्रेष्ठ जन, सुवर्ण रत्नादिको धारण करते हैं उसी प्रकार ( स्वग्नयः ) उत्तम ज्ञानवान्, विद्वान् और शत्रुसन्तापक, प्रतापी राजास्वरूप अग्नि या नेताओं से युक्त होकर ( देवासः ) विजिगीषु वीर पुरुष और करादि देने वाले व्यवहारी प्रजागण ( नः ) हमारे ( वार्यम् ) वरण करने योग्य धनैश्वर्य को ( दधिरे च ) धारण करते और उसका उपयोग करते हैं । और हम लोग ( स्वग्नयः ) उत्तम अग्रणी नायक, विद्वान् और परमेश्वर और यज्ञाग्नि को भली प्रकार धारण करके ही (मनामहे) उत्तम ज्ञान प्राप्त करें ।

अथा न उभयेषाममृत मर्त्यानाम् ।
मिथः सन्तु प्रशस्तयः ॥ ९ ॥

भा०—हे ( अमृत ) कभी न मरने वाले चिरायुष ! दीर्घजीवन ! आयुष्मन् ! ( अथ ) और नः हमारे ( उभयेषाम् ) मूर्ख और पंडित दोनों पक्षों के ( मर्त्यानाम् ) मरणधर्मा, वीर पुरुषों के (मिथः) परस्पर ( प्रशस्तयः ) उत्तम प्रवचन हों। राजा के पक्ष में—हे वीर नेतः! (उभयेषाम्) निज और शत्रु दोनों पक्षों के वीर मर्दों में परस्पर ( प्र-शस्तयः ) खूब शस्त्रप्रहार, कटाकटी हो।

विश्वेभिरग्ने अग्निभिरिमं यज्ञमिदं वचः ।
चनो धाः सहसो यहो ॥ १० ॥ २१ ॥

भा०—हे ( सहसः यहो ) पर-सेना को दमन करने में समर्थ बलके द्वारा उत्पन्न या प्रसव अर्थात् अभिषेक द्वारा बनाये गये सेनापते ! राजन् ! हे ( अग्ने ) अग्रणी ! प्रतापिन् ! तू (विश्वेभिः) समस्त (अग्निभिः) सेनानायकों सहित ( नः ) हमारे ( इमं यज्ञं ) इस यज्ञ, प्रजापतिपद, सुसंगत, सुप्रबद्ध, राष्ट्र को (इदं वचः) इस वचन, आज्ञा प्रदान के कार्य, स्तुति या प्रजाशासन करने योग्य धर्मशास्त्र को और ( चनः ) समस्त अन्न, पूजा और सत्कार को ( धाः ) धारण कर और प्रदान कर। इत्येकविंशो वर्गः ॥

## [ २७ ]

शुनःशेप आजीगर्त्तिर्ऋषिः। देवता–१–१२ अग्निः। १३ विश्वेदेवाः। छन्दः— १–१२ गायत्र्यः। १३ त्रिष्टुप्। त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

अश्वं न त्वा वारवन्तं वन्दध्या अग्निं नमोभिः ।
सम्राजन्तमध्वराणाम् ॥ १ ॥

भा०—( अध्वराणाम् ) हिंसादि दोषों से रहित यज्ञों, प्रजापालन

के उत्तम कार्यों में ( सम्राजन्तम् ) प्रकाशित, यशस्वी होनेवाले ( अग्निं ) तेजस्वी प्रतापी ( अश्वं न ) अश्व के समान ( वारवन्तम् ) पूंछ के बालों के समान बाधक शत्रुओं के वारण करनेवाले सेनादि साधनों से सम्पन्न (त्वा) तुझ नायक अग्रणी पुरुष को ( नमोभिः ) आदरपूर्वक नमस्कारों और अन्न आदि भोग्य पदार्थों से (वन्दध्या) स्तुति करने के लिए हम सदा तैयार हैं परमेश्वर दुःखों के वारक साधनों से 'वीरवान्' है। अहिंसित, कभी नाश न होने वाले सृष्टि नियमों में और अविनाशी आकाशादि पदार्थों में प्रकाशित होने से अध्वरों का सम्राट् है। वह व्यापक होने से 'अश्व' है। उसकी नमस्कारों द्वारा हम वन्दना करें।

स घा नः सूनुः शवसा पृथुप्रगामा सुशेवः ।
मीढ्वाँ अस्माकं बभूयात् ॥ २ ॥

भा०—( सः ) वह ( घ ) निश्चय से ( शवसा ) बल से, बलपूर्वक ( पृथु-प्रगामा ) रथ, यान, तोपखाना आदि विस्तृत लश्कर सहित आगे बढ़नेवाला, ( सुशेवः ) प्रजा को उत्तम सुख देने हारा ( मीढ्वान् ) मेघ के समान प्रजाओं पर सुख और शत्रुगण पर शस्त्र आदि वर्षानेहारा, वीर्यवान् पुरुष ( अस्माकम् ) हमारे बीच में ( नः ) हमारा ( सूनुः ) प्रेरक आज्ञापक अभिषेक युक्त राजा (बभूयात् ) हो। अग्नि पक्ष में—(शवसा सूनुः) बल से प्रेरित करने करनेवाला, बड़े यान से जाने वाला, उत्तम सुखदायक बलवान् हो।

स नो दूराच्चासाच्च नि मर्त्यादघायोः ।
पाहि सदमिद्विश्वायुः ॥ ३ ॥

भा०—(सः) वह तू ( विश्वायुः ) समस्त विश्व में व्यापक परमेश्वर और समस्त प्रजाओं का जीवनप्रद राजा या सभापति (नः) हमें (अघायोः) पापकर्म, हत्या आदि करना चाहने वाले दुष्ट (मर्त्यात्) पुरुष से (सदम् इत्) सदा ही (आरात् च) दूर से और (आसात् च) समीप से भी (पाहि) रक्षा कर।

इमम् षु त्वमस्माकं सनिं गायत्रं नव्यांसम् ।
अग्ने देवेषु प्र वोचः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् परमेश्वर ! विद्वन् ! (त्वम्) तू ( अस्माकम् ) हमें ( सनिम् ) समस्त सुख प्रदान करनेवाले ( गायत्रम् ) उपदेश करने और गान करने वाले को भी त्राण या रक्षा करने वाले, ( नव्यांसं ) सदा नये-नये ज्ञानों को ( देवेषु ) विद्वानों, अग्नि आदि ऋषियों और ज्ञानके द्रष्टा पुरुषों में (प्र वोचः ) उपदेश करता है । राजा के पक्ष में— ( सनिं ) सुखप्रद, ( गायत्रम् ) पृथिवी के शासन सम्बन्धी ( नव्यांसं ) अति उत्तम आज्ञा हमारे हित के लिए कर ।

आ नो भज परमेष्वा वाजेषु मध्यमेषु ।
शिक्षा वस्वो अन्तमस्य ॥ ५ ॥ २२ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! विद्वन् ! राजन् ! तू (नः) हमें ( परमेषु ) परम उत्कृष्ट कोटि के ( वाजेषु ) संग्रामों में, या ऐश्वर्यों में और ( मध्यमेषु ) मध्यमकोटि के ऐश्वर्यों, या युद्धों में और ( अन्तमस्य ) अति समीपतम, तृतीय कोटि के ऐश्वर्यों को भी ( आभ्र ) प्राप्त कर और ( शिक्ष ) दे । अथवा तीनों लोकों के ऐश्वर्यों को हमें प्रदान कर । इति द्वाविंशो वर्गः ।

विभक्तासि चित्रभानो सिन्धोरूर्मा उपाक आ ।
सद्यो दाशुषे क्षरसि ॥ ६ ॥

भा०—हे ( चित्रभानो ) चित्र विचित्र, नाना रंगों की किरणों वाले सूर्य समान विद्वन् ! राजन् ! जिस प्रकार सूर्य ( सिन्धोः ) समुद्र के ( ऊर्मौ ) तरंग के उठने पर ( उपाके ) समीप ही जलों को ( विभासि ) सूक्ष्म जलों के कणों को रूप में विभक्त कर देता है । और उस सूक्ष्म जल को शीघ्र ही वर्षारूप में बरसा देता है उसी प्रकार हे नाना विद्याओं और तेजो पराक्रमों से युक्त विद्वन् ! परमेश्वर ! राजन् ! तू ( सिन्धोः ऊर्मौ ) वेग से जानेवाले तरंग के समान उमड़ने वाले अपार ऐश्वर्य और ज्ञान राशि

को ( विभक्ता असि ) तू सबको विभाग कर देता है। ( दाशुषे ) आत्म समर्पण के हित के लिए ( सद्यः ) शीघ्र ही ( क्षरसि ) मेघ के समान वर्षा देता है।

यम॑ग्ने पृत्सु मर्त्य॒मवा॒ वाजे॑षु॒ यं जु॒नाः।
स यन्ता॒ शश्व॑ती॒रिषः॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्! परमेश्वर! विद्वन्! प्रतापी राजन्! ( यम् मर्त्यम् ) जिस मनुष्य को तू (पृत्सु) सेनाओं के बीच में से ( अव ) बचाता या अधिक तेजस्वी बनाता है और ( वाजेषु ) संग्रामों के बीच में ( यम् ) जिसको ( जुनाः ) प्रेरित करता है, आगे बढ़ाता है (सः) वह ही ( शश्वतीः ) निरन्तर स्थिर रहनेवाली ( इषः ) कामना योग्य प्रजाओं और आज्ञा पर चलने वाली सेनाओं का ( यन्ता ) नियन्ता, व्यवस्थापक राजा और सेनापति होने योग्य है।

नकि॑रस्य सहन्त्य पर्ये॒ता कय॑स्य चित्।
वाजो॑ अस्ति श्र॒वाय्यः॑ ॥ ८ ॥

भा—हे (सहन्त्य) सहनशील! विद्वन्! (अस्य) इस (कयस्य चित्) ज्ञानवान्, युद्ध-विद्या कुशल, पराक्रमी सेनापति का ( पर्येता ) मुक़ाबला करनेवाला ( नकिः ) कोई नहीं है। और (अस्य वाजः) इसका बल वीर्य, ऐश्वर्य और वेग भी ( श्रवाय्यः ) जगत्प्रसिद्ध, कहने सुनने योग्य, एवं स्तुत्य, आश्चर्यकारी ( अस्ति) है।

'कयस्य'—कस्येत्यत्र यकारोपजन इति सायणः। चिकेति जानाति इति कयः, इति दया० ॥

स वाजं॑ वि॒श्वच॑र्षणि॒रर्व॑द्भिरस्तु॒ तरु॑ता।
विप्रे॑भिरस्तु॒ सनि॑ता ॥ ९ ॥

भा—( सः ) वह ( विश्वचर्षणिः ) समस्त प्रजा का द्रष्टा, सब पर रक्षा के निमित्त दृष्टि रखने वाला, ( अर्वद्भिः ) अश्व आदि तुरंग बलों से

( वाजं तरुता ) संग्राम को पार करता, और ( विप्रेभिः ) विद्वान् बुद्धिमान् पुरुषों के द्वारा ( वाजं सनिता ) अन्न, ऐश्वर्य और ज्ञान को समस्त प्रजा में विभक्त करता है।

जरा॑बोध॒ तद्वि॑विड्ढि वि॒शेवि॑शे य॒ज्ञिया॑य ।
स्तोमं॑ रु॒द्राय॒ दृशी॑कम् ॥ १० ॥ २३ ॥

भा०—हे (जराबोध) अपनी गुण स्तुति द्वारा अपने वास्तविक सामर्थ्य का ज्ञान प्राप्त करनेवाले अग्रणी नायक ! तू (विशेविशे) प्रत्येक प्रकार की प्रजा के लिए ( यज्ञियाय ) यज्ञ, राष्ट्रव्यवस्था अथवा युद्धक्षेत्र के योग्य ( रुद्राय ) उपदेष्टा विद्वान्, शत्रुओं के रुलानेवाले वीर पुरुष और योद्धा के (दृशीकम्) दर्शनीय (तत् ) उस २ (स्तोमम्) सत्य गुण, स्तोम को ( विविड्ढि ) विशेष रूप से प्राप्त कर। अर्थात् वीर नायकों और सैनिकों को निरन्त उनके योग्य गुणस्तवन और उत्साहवर्धक वाक्य सुनाते रहने से उनको अपनी शक्ति और सामर्थ्य का ज्ञान होता है।

स नो॑ म॒हाँ अ॑निमा॒नो धू॒मके॑तुः पुरु॒श्च॒न्द्रः ।
धि॒ये वाजा॑य हिन्वतु ॥ ११ ॥

भा०—(सः) वह (नः) हमारे लिये ( महान् ) बड़ा ( अनिमानः ) विना परिमाण वाला, अपरिमित बलशाली, (धूमकेतुः) धूम की शिखावाले अग्नि के समान शत्रुओं को सिर से पांव तक कम्पा देने वाले बल और प्रज्ञा वाला, अथवा शत्रुओं को भयभीत करने वाली ध्वजा वाला ( पुरुश्चन्द्रः ) बहुतों को आह्लाद या सुख, शान्ति देने और हृदय में उत्साह देने में समर्थ, या सबको पालने में समर्थ, सुवर्णादि ऐश्वर्यवान्, बहुत कोशवान् है। वह ( धिये ) कर्म और ज्ञान को प्राप्त करने और ( वाजाय ) संग्राम ऐश्वर्य और ज्ञान के प्राप्त करने और विजय के प्राप्त कर लेने के लिए ( हिन्वतु ) प्रेरित करे, उत्साहित करे। उत्साह देनेवाले नायक का यही लक्षण है।

स रे॒वाँ इ॑व वि॒श्पति॒र्दैव्यः॑ के॒तुः शृ॑णोतु नः ।
उ॒क्थैर॒ग्निर्बृ॒हद्भा॑नुः ॥ १२ ॥

भा०—( सः ) वह परमेश्वर राजा ( रेवान् ) धनाढ्य के समान (विश्पतिः) अधीन, आश्रित, प्रजा का पालन करनेहारा, ( दैव्यः ) समस्त दिव्य पदार्थ अग्नि, जलादि व्यापक पदार्थों और विजीगीषु विद्वानों में सबसे कुशल (केतुः) ज्ञानवान् और (बृहद्भानुः) बड़े भारी तेजों और दीप्तियों से अति तेजस्वी (अग्निः) अग्रणी, प्रतापी है। वह (नः) प्रजाजनों का (उक्थैः) वेदमन्त्रों द्वारा अथवा उनके अनुसार सब कुछ ( शृणोतु ) श्रवण करे। और न्याय करे।

नमो॑ म॒हद्भ्यो॒ नमो॑ अर्भ॒केभ्यो॒ नमो॒ युव॑भ्यो॒ नम॑ आशि॒नेभ्यः॑ ।
यजा॑म दे॒वान्यदि॑ श॒क्नवा॑म॒ मा ज्याय॑सः॒ शंस॒मा वृ॑क्षि देवाः ॥ १३ ॥

भा०—( महद्भ्यः ) बड़े आदरणीय विद्यावृद्ध, वयोवृद्ध, तपोवृद्ध और बलवृद्ध पुरुषों को ( नमः ) नमस्कार, आदर और बल, वीर्य, उचित पद प्राप्त हो। (अर्भकेभ्यः नमः) बालक, विद्या, बल में अल्प, पुत्र, शिष्य आदि को भी उचित आदर प्राप्त हो। (युवभ्यः नमः) युवा, बलवान् और विद्यावान् पुरुषों को भी नमस्कार आदर प्राप्त हो। (आशिनेभ्यः नमः) विद्या और बल, अधिकार में अधिक सामर्थ्यवान् पुरुषों को आदर प्राप्त हो। ( यदि ) हम जब भी ( शक्नवाम ) शक्ति और सामर्थ्यवान् हों, जितना भी कर सकें ( देवान् ) उत्तम ज्ञानवान्, ज्ञान, बल और सुख के प्रदाता और व्यवहारकुशल, तत्त्वदर्शी विद्वान् पुरुषों का ( यजाम ) सत्संग करें, उनकी पूजा और आदर, दान मान सत्कार करें। हे ( देवाः ) विद्या प्रकाशक विद्वान् और दानशील पुरुषो ! मैं ( ज्यायसः ) अपने से बड़ों की ( शंसम् ) कीर्त्ति, स्तुति को (मा आवृक्षि) न काटूं, न परित्याग करूं।

'आवृक्षि'—व्रश्चतेरिति सायणः। वृजेरिति दया०।

[ २८ ]

शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः ॥ इन्द्रयज्ञसोमा देवताः ॥ छन्दः—१—६ अनुष्टुप् । ७—६ गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

**यत्र ग्रावा पृथुबुध्न ऊर्ध्वो भवति सोतवे ।**
**उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ १ ॥**

भा०—( यत्र ) जहाँ ( पृथुबुध्नः ) बड़े आश्रय या बड़े मूल भाग वाला, ( ग्रावा ) बड़ा पाषाण या शिला जिस प्रकार (ऊर्ध्वः) ऊँचा होकर ( सोतवे ) ओषधियों के रस निकालने के लिये ( भवति ) होता है उसी प्रकार ( ग्रावा ) ज्ञान का उपदेश करने वाला विद्वान् पुरुष भी ( पृथु बुध्नः ) बड़े विस्तृत शक्ति और अधिकार वाले राजा आदि का आश्रय पाकर ( सोतवे ) ज्ञान और ऐश्वर्य के प्रचार और प्रसार करने के लिए ( ऊर्ध्वः ) उन्नत पद पर स्थित (भवति ) हो। और जिस प्रकार गृहपति ( उलूखल-सुतानां ) ओखली से कूट पीसकर बनाये, तैयार किये अन्न और ओषधि आदि पदार्थों को ( अव ) प्राप्त करता और ( जल्गुलः ) उसका भोजन करता है इसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! आचार्य ! तू ( उलूखल-सुतानाम् ) बहुत बड़े कार्यों को करने वाले, पुरुषों द्वारा उत्पन्न किये पुत्रों को ( अव इत् ) प्राप्त कर और ( जल्गुलः ) उनको उपदेश कर। राजा के पक्ष में—बहुतों को दीक्षित करनेवाले गुरु के तैयार किये विद्वानों को ( अव इत् ) प्राप्त कर और (जल्गुलः) उनका भोग कर, अर्थात् राष्ट्र के कार्य में अपने अधीन रख।

**यत्र द्वाविव जघनाधिषवण्या कृता ।**
**उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ २ ॥**

भा०—( यत्र ) जिस में ( द्वौ ) दो ( अधिषवण्या ) सोम को कूटने के लिये शिल और बट्टा ( इव ) दोनों के समान ( जघना ) शरीर

में गति करने वाली दो जंघाएं ( कृता ) बनी हैं, अथवा शरीर में दो जंघा-ओं के समान यज्ञ में सोम सवन के लिये अन्न करने के लिये दो अधिसवन फलक और गृहस्थ यज्ञ में पुत्रोत्पादक दो स्त्री पुरुष बने हैं और ज्ञान में ज्ञानोत्पादक गुरु शिष्य हैं वहां ( उलूखल-सुतानाम् ) अति अधिक अन्न, ज्ञान और ऐश्वर्य के कर्त्ता पुरुषों से उत्पादित अन्न, पुत्र और शिष्यों की, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! स्वामिन् ! आत्मन् ! गृहपते ! आचार्य ! तू ( अव ) रक्षा कर ( जल्गुलः ) उपदेश कर और नियुक्त कर ।

यत्र नार्यपच्यवमुपच्यवं च शिक्षते ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ३ ॥

भा०—( यत्र ) जिस गृहस्थ के कार्य में ( नारी ) स्त्री ( अपच्यवं ) त्याग करना, दान देना । व्यय करना और ( उपच्यवं ) ऐश्वर्य अन्नादि को प्राप्त करना, सञ्चय करने आदि का ( शिक्षते ) अभ्यास करती है, हे ( इन्द्र ) विद्वन् ! तू ( उलूखल-सुतानाम् ) ओखल से बने अन्नों को वहां ( अव इत् ) प्राप्त कर और ( जल्गुलः ) उनका भोजन कर । अथवा—जहां स्त्रियां ( अपच्यवं उपच्यवं च ) दान देने और संग्रह करने की शिक्षा प्राप्त करें हे ( इन्द्र ) विद्वन्! ( उलूखल-सुतानां ) बड़े २ कार्य और ऐश्वर्यों के स्वामियों के पुत्रों को वहां ( अव ) प्राप्त कर ( जल्गुलः ) और उपदेश कर ।

यत्र मन्थां विबध्नते रश्मीन्यमितवा इव ।
उलूखलसुतानामवेद्विन्द्र जल्गुलः ॥ ४ ॥

भा०—( यमितवा इव ) अश्वों को वश करने के लिये ( रश्मीन् इव ) जिस प्रकार सारथि रासों को जोड़ता है उसी प्रकार (यत्र) जहां लोग ( मन्थाम् ) दूध दही को मथन करने वाली रयि को रस्सी ( बिबध्नते ) बांधते हैं । हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! विद्वन् ! वहां ओखली से तैयार किये अन्नों को भी (अप इत्) प्राप्त कर और भोग कर। उसी प्रकार जिस राष्ट्र में अश्वों के

समान ही (मन्थां) शत्रुओं को मथन करने वाली क्षात्र शक्ति को नियम में बांधा जाता है वहां बड़े ऐश्वर्यों के उत्पादक व्यापारियों द्वारा उत्पादित ऐश्वर्यों को तू प्राप्त कर, उपभोग कर। आचार्य पक्ष में—जहां अश्व के समान ही (मन्थां) हृदय को मथन कर देने वाली काम चेष्टा आदि मनोवृत्ति पर नियन्त्रण रखते हैं, हे आचार्य ! उस ब्रह्मचर्याश्रम में बड़े संयमकारी पुरुषों के पुत्रों की तू रक्षा कर और उनको उपदेश कर।

यच्चिद्धि त्वं गृहेगृह उलूखलक युज्यसे।
इह द्युमत्तमं वद जयतामिव दुन्दुभिः ॥ ५ ॥ २५ ॥

भा०—हे ( उलूखलक ) अति अधिक ज्ञानोत्पादक वचनों को उपदेश करने हारे विद्वन् ! तू अति अधिक ज्ञानोत्पादक ओखली के समान ( यत् चित् हि ) जो तू ( गृहे गृहे ) घर घर ( युज्यसे ) नियुक्त किया जाता है तो तू ( इह ) इस राष्ट्र में ( जयताम् ) विजयकारी योद्धाओं के ( दुन्दुभिः ) रण भेरी के समान ( द्युमत्तमं वद ) अति ज्ञानप्रकाश से युक्त उपदेश (वद) किया कर।

उलूखलक—उलूखलं कायति शब्दयति तत्सम्बुद्धौ, विद्वन्, इति दया० भा०। उलूखलमुरुकरं वा उर्करं वा, ऊर्ध्वखं वा, 'उरु कुरु मे' इत्यब्रवीत् तदुलूखलमभवत्। उरुकरं वैतदुलूखलमित्याचक्षते। निरु० ९। २० ॥ बहुत अन्न, ज्ञान, कार्य, शक्ति आदि उत्पन्न करने वाले ओखली, गुरु, बड़ा पुरुष, राजा, पुरोहित आदि सभी 'उलूखल' शब्द से कहे जाने योग्य हैं।

उत स्म ते वनस्पते वातो वि वात्यग्रमित्।
अथो इन्द्राय पातवे सुनु सोममुलूखल ॥ ६ ॥

भा०—हे ( वनस्पते ) सेवन करने योग्य फल, छाया, उत्तम रस के के पालक महा वृक्ष ( उत ) और ( ते ) तेरे ( अग्रम् इत् ) अग्र भाग तक (वातः) वायु अर्थात् रस प्राप्त कराने वाला बल ( विवाति ) विविध प्रकारों

से प्राप्त होता है। ( अथो ) और हे ( उलूखल ) ओखली के समान नाना अन्नों को उत्पन्न करने वाले पुरुष ! तू ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् पुरुष के ( पातवे ) पान करने के लिये ( सोमम् ) ओषधि रस का ( सुनु ) सार भाग प्राप्त कर। अथवा—हे ( वनस्पते ) सेना समूह के पालक पुरुष ! (वातः) वायु के समान तीव्र बलवान् शत्रु रूप वृक्ष के शाखाओं को तोड़ डालने में सामर्थ पुरुष ! ( ते अग्रम् इत् ) तेरे अग्र अर्थात् मुख्य भाग को को ( वि वाति ) विविध प्रकार से कंपाता है। ( अथो ) इससे हे ( उलूखल ) बहुत से ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाले पुरुष ! तू ( इन्द्राय पातवे ) वायु के समान प्रबल बलवान् राजा के उपभोग के लिये ( सोमम् सुनु ) ऐश्वर्य प्रदान कर।

आयजी वाजसातमा ता ह्यु१च्चा विजर्भृतः।
हरी इवान्धांसि बप्सता ॥ ७ ॥

भा—( अन्धांसि ) नाना प्रकार के जौं चने आदि को ( बप्सता ) खाने वाले, (आयजी) परस्पर संगत और (वाज-सातमा) वेग से जाने वाले ( हरी इव ) जैसे दो घोड़े रथ को उठाते हैं उसी प्रकार ( आयजी ) एक साथ संगत होने, यज्ञ करने और दान देने वाले और ( वाज-सातमा ) ऐश्वर्य का उपभोग करने वाले स्त्री पुरुष (ता हि) वे दोनों ही ( उच्चा ) ऊँचे पद गृहस्थादि के कार्य-भार को ( विजर्भृतः ) उठाते हैं। और दोनों (अन्धांसि बप्सता) नाना अन्नों का उपभोग करते हैं। इसी प्रकार ऊखल मूसल भी ( आयजी ) परस्पर संगत, ( वाजसातमा ) अन्न देने वाले ऊँचे रक्खे जाते हैं वे भी ( अन्धांसि बप्सता ) कूटते समय मानो अन्न खाते और औरों को कूटकर खिलाते हैं।

ता नो अद्य वनस्पती ऋष्वावृष्वेभिः सोतृभिः।
इन्द्राय मधुमत्सुतम् ॥ ८ ॥

भा०—( वनस्पती ) काष्ठ के ऊखल और मूसल दोनों जिस प्रकार

गृहपति के लिये ( मधुमत् सुतम् ) मधुर अन्न को तैयार करते हैं उसी प्रकार ( ता ) वे दोनों ( वनस्पती ) सेवन करने योग्य पदार्थों और ऐश्वर्यों पालक राज प्रजावर्ग और स्त्री पुरुष दोनों ( ऋष्वौ ) महान् प्रभुता और सामर्थ्य वाले होकर ( ऋष्वेभिः ) दर्शनीय या बड़े २ ( सोतृभिः ) अभिषव, अभिषेक करने वाले प्रजा के विद्वान् पुरुषों से मिलकर ( इन्द्राय ) शत्रु नाशक बलवान् पुरुष के लिये ( मधुमत् ) ऐश्वर्य और बल से सम्पन्न राष्ट्रपति पद को ( सुतम् ) अभिषेक द्वारा प्रदान करें ।

उच्छि॒ष्टं च॒म्वो॑र्भर॒ सोमं॑ प॒वित्र॒ आ सृ॑ज ।
नि धे॑हि॒ गोरधि॑ त्व॒चि ॥ ९ ॥ २६ ॥

भा०—( चाम्वोः ) 'चमू' नाम अधि सवन फलक, ऊखल मूसल दोनों में ( शिष्टम् ) कूटे गये ( सोमम् ) अन्न को ( उद्भर ) निकाल लो । और पुनः ( सोमम् ) उस कुटे पिसे अन्न को ( पवित्रे ) साफ करने वाले छाज पर ( आ सृज ) रक्खो और (गोः त्वचि अधि) शेष सोम के गो-चर्म पर ( निधेहि ) रक्खो । इसी प्रकार (चम्वोः) राष्ट्र का उपभोग करने वाले राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों के बीच में ( शिष्टम् ) शिक्षित विद्वान् पुरुष को ( उद् भर ) उन्नत पद पर स्थापित करो और ( सोमं ) ज्ञान से पूर्ण उपदेश को ( पवित्रे आसृज ) परम पावन, ब्राह्मण आचार्य आदि पद पर नियुक्त कर । और उसको ( गोः त्वचि अधि निधेहि ) वाणी, वेद-ज्ञान के संवरण रक्षा के कार्य पर नियुक्त कर । सेनापति राजा के पक्ष में—(चम्वोः)पदाति और यान अश्व रथ आदि पर चढ़ी दोनों प्रकार की सेनाओं के ऊपर अथवा निज दोनों सेनाओं के बीच ( शिष्टम् ) सुशिक्षित पुरुष को ( उत् भर=हर ) उत्तम पद पर स्थापित कर । ( पवित्रे सोम् आ सृज ) पवित्र करने वा कण्टकों के शोधक पदपर सर्वाज्ञापक पुरुष को लगा । (गोः त्वचि अधि ) पृथ्वी पर शासन करने के लिये ऐश्वर्यवान् राजा को स्थापित कर । इति षड्विंशो वर्गः ।

[ २९ ]

शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः । इन्द्रो देवता । पङ्क्तिश्छन्दः ॥

यच्चिद्धि सत्य सोमपा अनाशुस्ता इ॑व स्मसि ।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ १ ॥

भा०—( यत् चित् हि ) क्योंकि, हम हे (सत्य) सज्जनों के हितकर ! सत्यस्वरूप, न्यायपरायण ! परमेश्वर ! राजन् ! हे ( सोमपाः ) समस्त ऐश्वर्यों और उत्पन्न पदार्थों के पालक और स्वामिन् ! हम ( अनाशस्ताः ) अकुशल, प्राप्त करने में असमर्थ के समान अल्पबल, अल्पज्ञ ( स्मसि ) हैं, इसलिये हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! आचार्य ! राजन् ! हे (तुवीमघ ) अधिक ऐश्वर्यवन् ! आप ( नः ) हमें ( गोषु ) वाणी, पशु, इन्द्रिय, भूमि और ( अश्वेषु ) अश्व आदि वेग से जाने वाले साधनों और ( सहस्रेषु ) हज़ारों ( शुभ्रिषु ) शोभाजनक, सुखप्रद पदार्थों में ( आशंसय ) विख्यात, सम्पन्न कर ।

शिप्रिन्वाजानां पते शचीवस्तव दंसना ।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥ २ ॥

भा०—( शिप्रिन् ) हे प्राप्तव्य ! ऐहिक पारमार्थिक दोनों सुखों को प्राप्त करने हारे ज्ञानवन् ! बलवन् ! ( वाजानां पते ) संग्रामों और ऐश्वर्यों के पालक, हे ( शचीवः ) शक्ति, प्रज्ञा और प्रजा के स्वामिन् ! ( तव ) तेरा ही यह ( दंसना ) सब सामर्थ्य है । हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् प्रभो ! ( नः तु ) हमें भी ( गोषु अश्वेषु सहस्रेषु शुभ्रिषु नः आशंसय ) सहस्रों शोभाजनक विमानादि ऐश्वर्यों में उत्तम सम्पन्न कर ।

नि ष्वापया मिथूदृशा सस्तामबुध्यमाने ।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥३॥

भा०—जो स्त्री पुरुष (मिथूदृशा) मिथ्या दृष्टि से युक्त, दुःख से मिले

विषय सुख को वास्तविक सुख मानने वाले, और प्रमाद आलस्य करने वाले होकर (अबुध्यमाने) कुछ भी ज्ञान न प्राप्त कर, मूर्ख रहते हुए (सस्ताम्) सदा सोते हैं उनको ( निः स्वापय ) उस कुमार्ग से हटा। और हे ( इन्द्र तुवीमघ गोषु अश्वेषु सहस्रेषु शुभ्रिषु नः आशंसय ) इत्यादि पूर्ववत्। अथवा—हे ( इन्द्र ) राजन् ( मिथूदृशा ) परस्पर प्रेम से मिथुन होकर, सुसंगत होकर देखने वाले स्त्री पुरुष रात्रि के समय (अबुद्ध्यमाने सस्ताम्) अचेत होकर सोवें। उन को ( निः स्वापय ) खूब सोये रहने दे। अर्थात् तेरे उत्तम राज्य शासन में सब निश्चिन्त होकर सोवें। और हमें तू गवादि पशु, अश्वों और ऐश्वर्यों से युक्त कर।

स॒सन्तु॒ त्या अरा॑तयो॒ बोध॑न्तु शूर रा॒तयः॑।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥४॥

भा०—( त्याः ) वे (अरातयः) दानशील शत्रुगण, (ससन्तु) अचेत होकर सोवें। हे ( शूर ) शूरवीर ! ( रातयः ) दानशील प्रजाएं ( बोधन्तु) ज्ञानवान् जागृत, सावधान होकर रहें। (आतू न० इत्यादि) पूर्ववत्।

समि॑न्द्र गर्द॒भं मृ॑ण नु॒वन्तं॑ पा॒पया॑मु॒या।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥५॥

भा०—हे ( इन्द्र ) राजन् ! प्रभो ! सभाध्यक्ष ! तू ( अमुया ) अमुक २ नाना प्रकार की (पापया) पापयुक्त वाणी से (नुवन्तम्) निन्दा करते हुए ( गर्दभं ) कर्णकटु बोलने वाले, निन्दक, गधे के समान नीच पुरुष को ( संमृण) अच्छी प्रकार दण्डित कर। (गोषु अश्वेषु सहस्रेषु) गौ आदि पशु और सहस्रों सुखप्रद ऐश्वर्यों के विषय में हमें ( आ शंसय ) उत्तम, निर्दोष प्रसिद्ध कर।

पता॑ति कुण्डृ॒णाच्या॑ दू॒रं वातो॒ वना॒दधि॑।
आ तू न॑ इन्द्र शंसय॒ गोष्वश्वे॑षु शु॒भ्रिषु॑ स॒हस्रे॑षु तुवीमघ ॥ ६ ॥

भा०—(वातः) वायु जिस प्रकार (वनात् अधि) वन से निकल कर भी बहुत (दूरम्) दूर तक (कुण्डृणाच्या पतति) अति कुटिल गति से दूर तक चला जाता है। अथवा—(कुण्डृणाच्या) दाहकारी अग्नि की ज्वाला के साथ दूर तक फैल जाता है उसी प्रकार (वातः) वायु के समान बलवान् सेनापति भी (वनात् अधि) सेना समूह से निकलकर दूर तक (कुण्डृणाच्या) राजनीति की कुटिल गति या शत्रुदाहक प्रताप और पराक्रम वाली शक्ति से दूर तक (पतति) आक्रमण करे। (आ तू न० इत्यादि) पूर्ववत्।

सर्वं परिक्रोशं जहि जम्भया कृकदाश्वम्।
आ तू नं इन्द्र शंसय गोष्वश्वेषु शुभ्रिषु सहस्रेषु तुवीमघ ॥७॥२७॥

भा०—हे (इन्द्र) राजन्! तू सर्व प्रकार के (परिक्रोशं) प्रजा को रुलाने वाले दुःखदायी, एवं सर्वत्र निन्दा फैलानेवाले दुष्ट पुरुष को (जहि) विनाश कर, दण्डित कर। और (कृकदाश्वं) हिंसा और आघात करनेवाले डाकू पुरुष को (जम्भय) विनष्ट कर, राष्ट्र से परे कर। आतू न० इत्यादि पूर्ववत्॥ इति सप्तविंशो वर्गः॥

## [ ३० ]

शुनःशेप आजीगर्तिर्ऋषिः॥ देवता—१—१६ इन्द्रः। १७—१९ अश्विनौ। २०—२२ उषाः॥ छन्दः—१—१०, १२—१५, १७—२२ गायत्री। ११ पादनिचृद् गायत्री। १६ त्रिष्टुप्। द्वाविंशत्यृचं सूक्तम्॥

आ व इन्द्रं क्रिविं यथा वाजयन्तः शतक्रतुम्।
मंहिष्ठं सिञ्च इन्दुभिः॥ १॥

भा०—(वाजयन्तः) अन्न की कामना करनेवाले किसान लोग जिस प्रकार (क्रिविम्) कूप का आश्रय लेते हैं और जलों से क्षेत्रों को सींचते हैं उसी प्रकार! वीर पुरुषो हे (व) आप लोगों में से (वाजयन्तः) संग्राम में विजय और ऐश्वर्यों की कामना करने वाले जन (शतक्रतुम्) सैकड़ों

प्रज्ञाओं और कर्मों के करने में कुशल ( क्रिविं ) शत्रु के नाशक, कार्यदक्ष ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान्! शत्रुघातक ( मंहिष्ठं ) दानशील पुरुष को आश्रय करो। हे पुरुष! तब ( इन्दुभिः ) जलों के समान सदा बहने वाले ऐश्वर्यों से प्रजाजन को (सिंच) राजा और प्रजा दोनों को सेचन कर, बढ़ा।

शतं वा यः शुचीनां सहस्रं वा समाशिराम्।
एदु निम्नं न रीयते ॥ २ ॥

भा०—(निम्नं न) जिस प्रकार जल नीचे की ओर वह जाता है उसी प्रकार ( यः ) जो विद्वान् ( शुचीनां ) शुद्ध पवित्र करने वाले ( शतं ) सहस्रों साधनों, कर्मों और पदार्थों के प्रति और ( समाशिराम् ) आश्रय या सेवन करने योग्य ( सहस्रम् ) हज़ारों ग्राह्य पदार्थों के प्रति ( आरीयते इत् ) झुकता ही है वह उनको प्राप्त कर उनका ज्ञान करता है। भौतिक अग्नि विद्युत् के पक्ष में—वह विद्युत् ( शुचीनां शतं ) कान्ति वाले, धातु के बने सैकड़ों और अपने सहस्रों आश्रय द्रव्य के प्रति ऐसे वेग से आता है जैसे जल नीचे स्थान पर वह आता है। विद्युत सुवाहक धातु के बने पदार्थों और आश्रय स्थान मेघ, पृथिवी आदि पदार्थों पर भी अति शीघ्रता से जल के समान आ दौड़ता है। इसी प्रकार ताप भी जल जैसे नीच आ जाता है, वैसे संग लगे पदार्थों में सुगमता से फैल जाता है।

सं यन्मदाय शुष्मिण एना ह्यस्योदरे।
समुद्रो न व्यचो दधे ॥ ३ ॥

भा०—( समुद्रः न ) जिस प्रकार समुद्र ( व्यचः ) विविध पदार्थों को धारण करनेवाले, नाना विस्तृत अवकाश को धारण करता है उसी प्रकार ( शुष्मिणे मदाय ) बलवान्, अति तृप्त ( अस्य ) इस विद्वान् पुरुष के ( उदरे ) पेट या वश में ( एना ) नाना सहस्रों पदार्थ ( संदधे ) धारण कराता हूं, उसके भोगने के निमित्त प्रदान करता हूं। भौतिक अग्नि के पक्ष में—जैसे समुद्र में बहुत से पदार्थ समा जाते हैं उसी प्रकार

अग्नि के प्रचण्ड ताप में भी सहस्रों पदार्थ, पेट में अन्न के समान भस्म हो जाते हैं। अग्नि के पक्ष में—नाना उज्वल वर्णों से युक्त होने से अग्नि 'कपोत' है अग्नि को भूगर्भ में धारण करने से पृथ्वी 'गर्भधि' है। यह लोक उसीका है। वह पृथ्वी से संगत है। वही हमारे वचनों को भी ग्रहण करता है।

अयमु ते समतसि कपोत इव गर्भधिम्।
वचस्तच्चिन्न ओहसे ॥ ४ ॥

भा०—(कपोतः) कबूतर (इव) जिस प्रकार (गर्भधिम्) गर्भ धारण करनेवाली कबूतरी के पास आता और संगत होता है। उसी प्रकार हे राजन्! तू भी (कपोतः) नाना वर्णों का आश्रय होकर (गर्भधिम्) अपने गर्भ में, अपने बीच में तुझे धारण करने में समर्थ राष्ट्र की प्रजा को तू (सम् अतसि) आपसे आप प्राप्त होता है। (अयम्) यह समस्त लोक (ते ऊँ) तेरे ही भोग और शासन के लिए, तेरे ही वश है। (तत् चित्) उसी प्रकार (नः) हमारे तू (वचः) वचन को भी (ओहसे) प्राप्त हो।

स्तोत्रं राधानां पते गिर्वाहो वीर यस्य ते।
विभूतिरस्तु सूनृता ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—हे (राधानां पते) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन्! हे (वीर) वीर्यवन्! (यस्य) जिस (गिर्वाहः) समस्त स्तुति वाणियों को धारण करने वाले, उनके योग्य (ते) तेरी (स्तोत्रम्) स्तुति हैं। उस तेरी ही यह (सूनृता) उत्तम सत्य ज्ञान से पूर्ण (विभूति) विविध सम्पदा (अस्तु) है। इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

ऊर्ध्वस्तिष्ठा न ऊतयेऽस्मिन्वाजे शतक्रतो।
सम॒न्येषु ब्रवावहै ॥ ६ ॥

भा०—हे (शतक्रतो) सैकड़ों कर्मों और प्रज्ञाओं से युक्त राजन्! सभाध्यक्ष! विद्वन्! परमेश्वर! तू (नः) हमारे (ऊतये) रक्षा करने के लिए (ऊर्ध्वः) सबसे ऊँचा होकर (अस्मिन्) इस संग्राम, राष्ट्र यज्ञ

और ऐश्वर्य पद पर ( तिष्ठ ) विराज । और हम दोनों स्त्री-पुरुष, गुरु-शिष्य और राजप्रजा वर्ग मिलकर ( अन्येषु ) अपने से भिन्न अन्य शत्रुजनों में भी अथवा अन्य कार्यों और अवसरों पर भी (सं ब्रवावहै) परस्पर मिल कर तेरे गुणों का कथन किया करें ।

योगेयोगे तवस्तरं वाजेवाजे हवामहे ।
सखाय इन्द्रमूतये ॥ ७ ॥

भा०—हम सब ( सखायः ) मित्र, सुहृद होकर ( योगेयोगे ) ऐश्वर्य की प्राप्ति के प्रत्येक अवसर में और ( वाजेवाजे ) प्रत्येक संग्राम के अवसर में भी ( ऊतये ) रक्षा करने के लिए ( तवस्तरं ) अति बलशाली और ज्ञानशाली (इन्द्रम्) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता एवं कार्यकुशल परमेश्वर और सेनापति राजा को ( हवामहे ) बुलावें, उसे प्रस्तुत करें ।

आ घा गमद्यदि श्रवत्सहस्रिणीभिरूतिभिः ।
वाजेभिरुप नो हवम् ॥ ८ ॥

भा०—(यदि) यदि वह परमेश्वर या सेनापति (नः) हमारे (हवम्) स्तुति-वचनों और बुलावे को ( उप श्रवत् ) सुन ले, तब अवश्य ही वह ( सहस्रिणीभिः ) सहस्रों पुरुषों से बनी, या सहस्रों ऐश्वर्यों के देनेवाली सेना रूप (ऊतिभिः) रक्षाओं और (वाजेभिः) अन्न, ज्ञान, उपाय, युद्धादि सामग्री और अश्वकादि वेगवान् साधनों से (आ गमद् घ) निश्चय से आजावे।

अनु प्रत्नस्यौकसो हुवे तुविप्रतिं नरम् ।
यं ते पूर्वं पिता हुवे ॥ ९ ॥

भा०—( यं ) जिस (तुविप्रतिम्) नाना लोकों के बनानेवाले, (नरं) सबके नायक, (प्रत्नस्य औकसः) अति पुराण स्थान, आकाश के भी (पूर्वं) पूर्व विद्यमान परमेश्वर को ( ते पिता ) तेरे पालक जन भी स्तुति करते थे । उसीको मैं (अनुहुवे) आदर से स्तुति करता हूं । राजा के पक्ष में—( प्रत्नस्य ओकसः ) अति पुरातन स्थान, देश के ( नरम् ) नायक (तुवि-

प्रति ) बहुत से शत्रुओं के मुकाबले पर जाने वाले जिसको तेरा पिता पालक वर्ग भी (हुवे) आदर करता है उसी का मैं भी आदर करूँ।

तं त्वा वयं विश्ववाराशास्महे पुरुहूत।
सखे वसो जरितृभ्यः॥ १०॥ २६॥

भा०—हे ( विश्ववार ) सबसे वरण करने योग्य, सबको धनैश्वर्य का समान रूप से न्यायपूर्ण विभाग करनेहारे! हे ( पुरुहूत ) बहुत से जनों से स्तुति किये, रक्षा, क्षेमादि के निमित्त बुलाये, एवं स्मरण किये गये! हे ( सखे ) मित्र! हे (वसो) सबमें बसने और सबके बसानेवाले परमेश्वर! राजन्! ( वयम् ) हम (तं ) उस ( त्वा ) तुझको ( जरितृभ्यः ) स्तुति करनेवाले विद्वान् पुरुषों के हितकारी रूप से चाहते और कामना करते हैं। इत्येकोनत्रिंशद्वर्गः॥

अस्माकं शिप्रिणीनां सोमपाः सोमपाव्नाम्।
सखे वज्रिन्त्सखीनाम्॥ ११॥

भा०—हे ( सोमपाः ) सोम, नाना उत्पादित कार्य, पदार्थ, ऐश्वर्य आनन्द ज्ञान तथा राष्ट्र के पालक! राजन्! विद्वन्! ईश्वर! (शिप्रिणीनां) ज्ञान से युक्त हम स्त्रियों का और (सोमपाव्नाम्) सोम, अन्न, ज्ञान, बलैश्वर्य राष्ट्रादि के पालक और ( सखीनाम् ) मित्र भाव से रहनेवाले ( अस्माकं ) हम स्त्रियों और पुरुषों में से सभी का तू हितकारी है। तुझे हम प्राप्त करना चाहते हैं।

तथा तदस्तु सोमपाः सखे वज्रिन्तथा कृणु।
यथा त उश्मसीष्टये॥ १२॥

भा०—हे ( सोमपाः ) राष्ट्रपालक, ऐश्वर्यमय जगत् के पालक! हे ( सखे ) सखे! मित्र! हे (वज्रिन्) बलवन्! दुःखों के निवारक! (यथा) जिस प्रकार से भी हम ( ते ) तुझे अपने ( इष्टये ) इष्ट, अभिलषित फल

प्राप्ति के लिए ( उष्मसि ) चाहते हैं तू ( तथा कृणु ) उसी प्रकार हमारा मनोरथ पूर्ण कर । और ( तत् ) वह हमारा अभिलषित कार्य भी ( तथा अस्तु ) वैसे ही सिद्ध हो ।

रेवतीर्नः सधमाद इन्द्रे सन्तु तुविवाजाः ।
क्षुमन्तो याभिर्मदेम ॥ १३ ॥

भा०—( क्षुमन्तः ) अन्न आदि भोग्य पदार्थों से समृद्धिमान् होकर हम ( याभिः ) जिन प्रजाओं से और जिन सहधर्मचारिणी स्त्रियों के साथ ( मदेम ) तृप्त, सन्तुष्ट, पूर्ण सफल हो सकें वे ( तुविवाजाः ) अति ऐश्वर्य और अन्नों से युक्त होकर ( रेवतीः ) धनैश्वर्य वाली स्त्रियें ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र में, या राजा के या परमेश्वर के आश्रय रहकर ( नः ) हमारे ( सधमादः ) साथ सुख और आनन्दपूर्वक जीवन व्यतीत करने वाली ( सन्तु ) हों । परमेश्वर के विश्वास और उत्तम राजा के उत्तम राज्य में, उत्तम स्त्रियों सहित हम ऐश्वर्यवान् होकर सुख से रहे, मनोऽनुकूल स्त्रियें और प्रजाएं प्राप्त हों ।

आ घ त्वावान्त्मनाप्तः स्तोतृभ्यो धृष्णवियानः ।
ऋणोरक्षं न चक्र्योः ॥ १४ ॥

भा०—( चक्र्योः ) चक्रों के बीच लगा ( अक्षं न ) धुरा जिस प्रकार ( इयानः ) गति करता हुआ स्वयं भी चलता है और अन्यों को भी अभिलषित स्थान तक पहुंचाता है और वह स्वयं (त्मना आप्तः) अपने ही आश्रय पर स्थित रह कर दोनों चक्रों को भी सम्भालता है उसी प्रकार हे (धृष्णो) बलवन् ! शत्रुओं को पराजय करने हारे ! ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! राजन् ! तू भी ( त्वावान् ) अपने ही समान, अपने जोड़ का अकेला, ( त्मना आप्तः ) अपने ही सामर्थ्य से अपने में स्थित होकर ( स्तोतृभ्यः ) विद्वान् गुण स्तुति करने वाले पुरुषों को ( ऋणोः ) स्वयं प्राप्त होता और उनको अभिलषित फल मोक्ष और सुख प्राप्त कराता है ।

आ यद्दुवः शतक्रतवा कामं जरितृणाम् ।
ऋणोरक्षं न शचीभिः ॥ १५ ॥ ३० ॥

भा०—(अक्षं न) जिस प्रकार चक्रों का धुरा ( शचीभिः ) क्रियाओं द्वारा गति करता हुआ ( कामं ) इष्ट देश को प्राप्त कराता है उसी प्रकार हे ( शतक्रतो ) सैकड़ों प्रजाओं और कर्मों में कुशल ईश्वर ! राजन् ! विद्वन् ! सभापते ! तेरी ( यत् ) जो ( दुवः ) परिचर्या, सेवा है वह भी ( जरितृणाम् ) स्तोता विद्वान् पुरुषों को ( शचीभिः ) अपनी बुद्धियों और कर्मों से ( कामं ) अभीष्ट फल को ( ऋणोः ) प्राप्त कराता है । इति त्रिंशद् वर्गः ॥

शश्वदिन्द्रः पोप्रुथद्भिर्जिगाय नानदद्भिः शाश्वसद्भिर्धनानि । स नो हिरण्यरथं दंसनावान्त्स नः सनिता सनये स नोऽदात् ॥१६॥

भा०—(इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता, भूमि और राष्ट्र का पालक राजा ( पोप्रुथद्भिः ) नथुने फुनफुनाते हुए, अतिपर्याप्त बलशाली, व्यायामशील ( नानदद्भिः ) मेघनाद करते हुए ( शाश्वसद्भिः ) निरन्तर श्वास लेनेवाले घोड़ों से ( धनानि ) नाना ऐश्वर्यों का ( शश्वत् ) निरन्तर ( जिगाय ) विजय करे । और ( सः ) वह ( दंसनावान् ) कर्म शक्ति से सम्पन्न होकर ( नः ) हमे ( हिरण्यरथम् ) सुवर्ण और लोहादि धातु के बने रथ ( अदात् ) दान करे । और ( सः ) वह ( सनिता ) सब ऐश्वर्यों का दाता दानशील ( नः ) हमें ( सनये ) दान देने या ऐश्वर्य विभाग करने के लिये ही ( नः अदात् ) हमें दान दे । परमेश्वर के पक्ष में—( इन्द्रः ) परमेश्वर ( शश्वत् ) अनादिकारण से ही उत्पन्न कर के अनादिकाल से ही और ( पोप्रुथद्भिः ) अति परिमित, स्थल परिमाण में रहने वाले ( नानदद्भिः ) नाना अत्यन्त शब्द करने वाले विद्युत् आदि पदार्थों और नाना जीवों से और ( शाश्वसद्भिः ) निरन्तर श्वास लेने वाले प्राणियों द्वारा ( धनानि ) नाना ऐश्वर्य ( जिगाय ) उत्पन्न करता और उनको अपने वश करता है वह

ही (सनिता) दानी, ( दंसनावान् ) सर्वशक्तिमान्, (नः) हमारे (सनये) भोगके लिये (नः) हमे ( हिरण्यरथं ) सुवर्णादि रथ अथवा हितकारी रमण योग्य आत्मा के देह रूप रथ को प्रदान करता है। अध्यात्म में-(इन्द्र) आत्मा ( पोप्रुथद्भिः ) नाक के नथुनों को कंपाने वाले, ( नानदद्भिः ) नाद करने वाले ( शाश्वसद्भिः) श्वास लेने वाले प्राणों से (धनानि जिगाय) प्रिय लगने वाले, भोग्य पदार्थों को प्राप्त करता है। वही (दंसनावान्) कर्म चेष्टाओं का स्वामी होकर ( नः सनिता ) हमारा भोक्ता आत्मा ( सनये ) सुख प्राप्त करने के लिये ( हिरण्यरथं ) आत्मा के परम तेजोमय रस को हमें प्रदान करता है ।

आश्विनावश्वावत्येषा यातं शवीरया ।
गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ॥ १७ ॥

भा०—हे ( अश्विनौ ) सूर्य और पृथिवी, आकाश और पृथिवी, दिन रात्रि और शरीर में प्राण और अपान के समान राष्ट्र में व्यापक शक्ति और अधिकार वाले !( दस्रौ ) राष्ट्र के दुःखों और दरिद्रता आदि दोषों के नाश करने वाले आप दोनों (अश्वावत्या ) अश्वों वाली, अश्वारोहियों से बनी, ( शवीरया ) सैकड़ों वीर पुरुषों से पूर्ण, ( इषा ) इच्छानुकूल प्रेरित सेना से ( आ यातम् ) सर्वत्र प्रयाण करो, जिससे हमारा राष्ट्र ( गोमत् ) गवादि पशु और उत्तम भूमि वाला और ( हिरण्यवत् ) सुवर्ण आदि धनों से समृद्ध हो । अथवा—तुम दोनों ( इषा शवीरया यातम् ) इच्छानुकूल गति से जाओ। ( गोमद् हिरण्यवत् ) बैलों से जुते और सोने के बने यान को प्राप्त करो।

'शवीरया'—'शु गतौ' इत्यस्मात् बाहुलकात् उणादिरीरन् प्रत्ययः अथवा —शवसा बलेन ईर्यते प्रेरयते तया। अथवा शतं वीरा अस्याम् इति तकाराकारलोपश्छान्दसः ॥

समानयोजनो हि वां रथो दस्रावमर्त्यः ।
समुद्रे अश्विनेयते ॥ १८ ॥

भा०—हे ( दस्रौ ) दुःखों के नाशक, तुम दोनों शरीर में प्राण और अपान के समान राष्ट्र के संचालको ! ( वां ) तुम दोनों का ( रथः ) रथ (समान-योजनः) एक जैसा बना हुआ और (अमर्त्यः) बिना मनुष्य के चलने वाला है । हे (अश्विनौ) वेगवान् साधनों से जाने हारो ! वह रथ (समुद्रे) अन्तरिक्ष और समुद्र में भी ( ईयते ) जाता है । प्राणापान पक्ष में—हे (दस्रौ) कर्म श्रम की बाधा के नाशक प्राण अपानो ! हे ( अश्विनौ )अश्व-अर्थात् व्यापक भोक्ता आत्मा को धारण करने वालो ! ( वां रथः ) तुम्हारा रथ रूप देह जब तक (समानयोजनः) समान नामक प्राण से युक्त रहता है तब तक वह ( अमर्त्यः ) कभी नाश को नहीं प्राप्त होता । वह ( समुद्रे ) कामनानुसार विषय में ( ईयते ) गति करता है, इच्छानुसार चलता है । अथवा ( समुद्रे ) प्राण वायु या जल के आधार पर या पुरुष या आत्मा या मन के आश्रय पर गति करता है ।

'समुद्रे'—काम समुद्रः इवेति । नवै कामस्यान्तोऽस्ति न समुद्रस्य। तै० २।२।५।६ ॥ अयं वै समुद्रो योयं वायुः पवत । एतस्माद्वै समुद्रात्सर्वे देवाः सर्वाणि भूतानि च समुद्रवन्ति । श० १४ । २ । २ । २ ॥ आपो वै समुद्रः । श० ३ । ८ । ४ । ११ ॥ मनो वै समुद्रः । श० ७।५।२।५२ ॥ पुरुषो वै समुद्रः । जै० उ० ३ । ३५ । ५ ॥

गुरु-शिष्यपक्ष में—विद्या के पारंगत दोनों गुरु शिष्य 'अश्वी' हैं । ज्ञान का रथ दोनों के समानचित्त होने से युक्त होता है । वह सम्बन्ध भी अटूट है, वह समुद्र रस सागर परमेश्वर की साक्षिता पर चलता है ।

न्य१घ्न्यस्य मूर्धनि चक्रं रथस्य येमथुः ।
परि द्यामन्यदीयते ॥ १९ ॥

भा०—हे उत्तम शिल्पि जनो ! तुम दोनों ( अघ्न्यस्य ) विनाश

न होने योग्य दृढ़ ( रथस्य ) रथ के ( मूर्धनि ) सिर या अग्र भाग पर ( अन्यत् ) एक और ( चक्रं नियेमथुः ) चक्र को लगाओ। इससे वह ( द्याम् परि ) आकाश में भी ( ईयते ) चला जावे। देह पक्ष में—( अघ्न्यस्य ) न विनाश करने योग्य, रक्षा योग्य इस देह रूप रथ के शिरोभाग में ( अन्यत् ) अन्य इन्द्रियों से भिन्न ( चक्रं ) क्रिया करनेवाले मन रूप साधन को ( येमथुः ) नियमित करते हो। तब ही ( द्याम् परि ईयते ) ज्ञानप्रकाश और परमेश्वर को भी प्राप्त किया जाता है। सूर्य-पक्ष में—इस महान् आकाश के शिर पर एक सूर्य रूप चक्र लगा है जो आकाश में घूमता है।

कस्त॑ उषः कधप्रिये भुजे मर्तो॑ अमर्त्यें।
कं न॑क्षसे विभावरि ॥ २० ॥

भा०—हे (उषः) पापों के नाशक करनेवाली उषा के समान ज्योतिर्मयि परमेश्वरी शक्ते! हे ( कधप्रिये ) स्तुति एवं ज्ञान कथा से अतिप्रिय! हे (अमर्त्ये) कभी न मरनेवाली अविनाशिनि! नित्ये! (ते भुजे) तेरे परमानन्द के भोग या सुख को प्राप्त करने के लिए (कः मार्त्तः) कौन मरणधर्मा प्राणी समर्थ है? कोई भी नहीं। हे (विभावरि) विशेष तेजोयुक्त! तेजस्विनि! तू ( कं नक्षसे ) किस मनुष्य को प्राप्त हो सकती है? अर्थात्, तू किसी को प्राप्त नहीं हो सकती? अथवा ( कं ) सर्व सृष्टि के कर्त्ता, सुखमय परमेश्वर को ही प्राप्त है।

वयं हि ते अम॑न्मह्यान्तादा प॑राकात्।
अश्वे॒ न चि॑त्रे अरुषि ॥ २१ ॥

भा०—हे (अश्वे) व्यापक, ( चित्रे ) आश्चर्यशक्तिशाली! एवं अति पूजनीय! ते ( अरुषि ) अतिदीप्तिमति ईश्वरीय शक्ते! ( हि ) निश्चय से ( वयम् ) हम ( आ अन्तात् ) अति समीप से लेकर ( आपराकात् ) दूर

तक भी निर्वेचना करके (ते) तेरे स्वरूप को हम (न अमन्महि) नहीं जान सके।

त्वं त्येभि॒रा ग॑हि॒ वाजे॑भिर्दुहितर्दिवः ।
अ॒स्मे र॒यिं नि धा॑रय ॥ २२ ॥ ३१ ॥ ६ ॥

भा०—हे ( दिवः दुहितः ) सूर्य के प्रकाश से उत्पन्न उषा के प्रभात वेला के समान ! ( दिवः ) तेजोमय ज्ञान प्रकाश से उत्पन्न होने वाली एवं ज्ञानप्रकाश को दोहन या प्रदान करनेवाली ! तू ( वाजेभिः ) ऐश्वर्यों और ( त्येभिः ) उन ज्ञानों सहित हमें ( आगहि ) प्राप्त हो। और ( अस्मे ) हमें ( रयिम् ) विद्या, ज्ञान और ऐश्वर्य ( नि धारय ) प्रदान कर। इसी प्रकार २०-२२ तक तीनों मन्त्र राजशक्ति परक भी हैं। जब राजा का अभ्युदय होता है तब उसकी ऐश्वर्यशक्तियां, राज्यलक्ष्मी उदित होते समय सूर्य की प्रभा के समान हैं। ( १ ) वह उस समय प्रभावशाली होने से विभावरी और सबसे स्तुति योग्य होने से कधप्रिया, प्रतिद्वंद्वियों के नाशकारी होने से 'उषा' है। ( २ ) अश्व अर्थात् राष्ट्ररूप एवं अश्वारोही बल चतुरंग सेना रूप होने से 'अश्वी' है। सूर्य के समान तेजस्वी राजा से उत्पन्न और उसके ऐश्वर्य दोहन करने से 'दिवःदुहिता' है। वह संग्रामों, ऐश्वर्यों और सुभिक्षों सहित राष्ट्र को प्राप्त हो, वह ऐश्वर्य भी दे। एकत्रिंशद् वर्गः ॥

इति षष्ठोऽनुवाकः ।

[ ३१ ]

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ १—७, ६—१५, १७ जगत्यः । ८, १६, १८ त्रिष्टुभः । अष्टादशर्चं सूक्तम् ॥

त्वम॑ग्ने प्रथ॒मो अङ्गि॑रा॒ ऋषि॑र्दे॒वो दे॒वाना॑मभवः शि॒वः सखा॑ ।
तव॑ व्र॒ते क॒वयो॑ विद्म॒नाप॑सोऽजा॑यन्त म॒रुतो॒ भ्राज॑दृष्टयः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्ने) प्रकाशस्वरूप ! ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! ( त्वम् ) तू

(अंगिराः) शरीर में प्राण के समान समस्त ब्रह्माण्ड में स्थित, सूर्य आदि लोकों के संचालक, बलस्वरूप ( प्रथमः ) सबसे प्रथम, जगत् की रचना के भी पूर्व विद्यमान, (ऋषिः) सब विज्ञानों और लोकों का देखने और उपदेश करनेवाला, ( देवः ) आनन्द, ज्ञान और ऐश्वर्य का दाता, ( देवानाम् ) समस्त दिव्य लोकों और विद्वानों का (शिवः ) कल्याणकारी और (सखा) परम मित्र ( अभवः ) है । हे परमेश्वर ! ( तव ) तेरे (व्रते) बनाये नियम में रहकर ( विद्मना-अपसः ) ज्ञानपूर्वक कर्म करने वाले ( कवयः ) क्रान्तदर्शी, मेधावी ( मरुतः ) मरणधर्मा विद्वान् मनुष्य भी ( भ्राजद्-ऋष्टयः ) अति तेजस्वी ज्ञान दृष्टिवाले (अजायन्त) हो जाते हैं । राजा के पक्ष में—हे ( अग्ने ) अग्रणीनायक ! तू ( अंगिराः ) अंगारे के समान तेजस्वी, सब (देवानाम्) विजीगीषु राजाओं में सर्वश्रेष्ठ, सबका द्रष्टा, राजा है, तू सबका कल्याणकारी मित्र बन । तेरे शासन में रहकर ज्ञानवान्, विद्वान् हों, और ( मरुतः ) प्रजाजन, एवं शत्रुहन्ता वीर पुरुष (भ्राजद्-ऋष्टयः) चमचमाते शस्त्रों वाले हों। अर्थात् ब्राह्मण विद्वान्, और क्षत्रिय तीक्ष्णायुध, सदा सन्नद्ध हों।

**त्वम॑ग्ने प्रथमो अङ्गि॑रस्तमः कविर्दे॒वानां॒ परि॑ भूषसि व्रतम् ।**
**विभुर्विश्व॑स्मै भुव॑नाय मेधि॑रो द्विमाता शयुः कति॒धा चि॑दा॒यवे॑ ।२।**

भा०—( हे ) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर ! ( त्वम् ) तू ( प्रथमः ) सबसे प्रथम, आदि मूलकारण, ( अंगिरस्-तमः ) 'अंगिरा' शब्दों से कहाने वाले अग्नि, आदित्य, प्राण, आत्मा आदि सबसे उत्कृष्ट, अधिक तेजस्वी, (कविः) क्रान्तदर्शी, सर्वज्ञ होकर ( देवानाम् ) विद्वानों और सूर्यादि लोकों के ( व्रतम् ) व्रतों, नियमों, धर्मों को ( परिभूषसि ) धारण करता रहा है । तू ( मेधिरः ) मेधावान् एवं संगत, ( विश्वस्मै ) समस्त ( भुवनाय ) भुवन ब्रह्मांडों के भीतर ( विभुः ) व्यापक, विशेष सामर्थ्यवान् होकर भी उनका ( द्विमाता ) सूक्ष्म और स्थूल, दोनों रूपों के बनानेवाला, (शयुः) सबके भीतर प्रसुप्त रूप से विद्यमान, एवं जगत्भर को प्रलय में शान्त, प्रसुप्त

रूप से सुला देने वाला होकर ( आयवे ) मनुष्यों के लिए ( कतिधा ) कितने ही प्रकारों से, नाना शक्तियों के रूप में दिखाई देता है। राजा के पक्ष में—( मेधिरः ) शत्रुहन्ता, ( द्विमाता ) राजा प्रजावर्ग दोनों के प्रति माता के समान पालक, एवं माता-पिता और आचार्य दोनों को माता मानने वाला द्विज, ( शत्रुः ) युद्ध में शत्रुओं को सुलाने वाला, ( आयवे कतिधा चित् ) प्रजाजन के हित के लिए कितने ही प्रकारों से शासन करने वाला है। भौतिक अग्नि—( द्विमाता ) दो अरणियों के संघर्ष से उत्पन्न, सूर्य दो अयनों का उत्पादक (शयुः) व्यापक, (विभुः) विविध सामर्थ्यवान् (कतिधा चित् ) विद्युत्, तेज़ाब, अग्नि, जाठर आदि नाना रूपों में प्राप्त है।

त्वम॑ग्ने प्र॒थमो मा॑त॒रिश्व॑न आ॒विर्भ॑व सुक्रतू॒या वि॒वस्व॑ते।
अरे॑जेतां॒ रोद॑सी होतृ॒वूर्ये॒ऽस॑घ्नोर्भा॒रमय॑जो म॒हो व॑सो ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! परमेश्वर ! ( त्वम् ) तू ( मातरिश्वने) अन्तरिक्ष में गतिशील वायु तत्व के भी ( प्रथमः ) प्रथम विद्यमान होकर, ( विवस्वते ) विविध प्रजाओं और लोकों में व्यापक, और उनको बसाने, धारण करने वाले सूर्य की ज्योति के भी पूर्व ( सुक्रतूया ) सबसे उत्तम कृति या प्रज्ञा या संकल्प रूप में ( आविः भव ) प्रकट होता है। अर्थात् सूक्ष्म, अग्नि वायु आदि तत्वों की सृष्टि के भी पूर्व परमेश्वर के काम, संकल्प इच्छा या प्रकृति रूप में प्रकट होता है। सुक्रतु=प्रकृति। काम, संकल्प, इच्छा अर्थात् 'सोऽकामयत बहु स्यां प्रजायेय' इत्यादि ऐत० उपनिषद्। ( होतृवूर्ये ) सबको अपने भीतर से प्रकट करने और उनको अपने भीतर ले लेने वाले, उत्पादक और प्रलयकारी होता परमेश्वर से वरण करने या संविभाग करने योग्य ( रोदसी ) द्यौ और पृथिवी दोनों उसी के संकल्प से (अरेजेताम्) कांपती हैं अर्थात् उसीके संकल्प से भोग्यभोक्ता और जीव प्रकृति में प्रथम स्पन्द उत्पन्न हुआ। हे परमेश्वर तू ही (भारम्) सब जीवों और

लोकों के भरण पोषण के कार्य को भी ( असघ्नोः ) धारण करता है। हे ( वसो ) सबको बसाने और सब में बसनेवाले परमेश्वर ! तू ही ( महः ) बड़े सूक्ष्म सूक्ष्म तत्वों को ( अयजः ) संगत करता है। राजा और विद्वान् के पक्ष में—( मातरिश्वनः प्रथमः ) पृथ्वीपर वेग से आक्रमण करने वाले क्षात्रबल और ( विवस्वते) विविध प्रजा के स्वामी वैश्य दोनों में (सुक्रतूया प्रथमः आविर्भव) उत्तम कर्म और प्रजा से सर्वश्रेष्ठ होकर रह। (रोदसी) राजा प्रजावर्ग दोनों तेरे से कांपें। होता पुरोहित द्वारा प्रदत्त राजपद पर (भारम् असघ्नोः) समस्त राज्यभार को सहन कर। हे ( वसो ) राजन् ! तू (महः अयजः ) अपने से बड़ों का आदर और सत्संग कर। भौतिक अग्नि वायु से पूर्व सूर्य रूप से है। वही महान् यन्त्रों को चलाती है।

त्वम॑ग्ने मन॑वे द्यामवाशयः पुरूरव॑से सुकृते॑ सुकृत्त॑रः।
श्वात्रेण यत्पित्रोर्मुच्य॑से पर्या त्वा पूर्वमनयन्नाप॑रं पुनः॥ ४॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानमय ! ( त्वम् ) तू ही ( मनवे ) मननशील ( पुरुरवसे ) बहुत से ज्ञानोपदेशों को धारण करने वाले, ( सुकृते ) उत्तम कर्मों के करनेवाले, पुण्याचारी जीव के उपकार के लिए ( द्याम् ) सूर्य और उसके समान ज्ञानप्रकाश के देने वाले बड़े ज्ञान का ( अवाशयः ) उपदेश करता है। हे जीव ! पुरुष ! ( यत् ) जब तू ( पित्रोः ) माता पिता के घर से ( परिमुच्यसे ) मुक्त या पृथक् होता है तब (श्वात्रेण) उसी परमेश्वर के दिये ज्ञान के निमित्त तेरे माता, पिता, बन्धु आदि (त्वा) तुझको (पूर्वम्) पहले गुरु, आचार्य के समीप (आ अनयन्) उपनयन द्वारा प्राप्त कराते हैं। और ( पुनः ) फिर ( अपरम् ) दूसरे उसी परमेश्वर के प्रति ये प्राणगण या विद्वान् जन तुझको उसी परमज्ञान के लिए ( अनयन् ) ले जाते हैं। अथवा—(यत् पित्रोः परि मुच्येसे) जब माता पिता के बन्धन से मुक्त होता है तब ( श्वात्रेण ) उस परमेश्वर के ज्ञान या व्यवस्था से ही, पूर्व जन्म और अपर जन्म, तथा इस कल्प और अगले कल्प को तेरे कर्म आदि तुझे

पुनः प्राप्त कराते हैं। राजा के पक्ष में—(मनवे) प्राणी, (पुरुरवसे) विद्वान्, (सुकृते) उत्तम कार्यकुशल इन सबके हित के लिए तू (द्याम् अवाशयः) राजसभा के प्रति आज्ञा देता है। जब तू माता पिता से मुक्त होता है तब तू सूर्य के समान पूर्व और पश्चिम दोनों राष्ट्र या भूमि या सामान्य और विशेष दोनों अधिकारों को प्राप्त होता है। भौतिक अग्नि जब दोनों उत्पादक अरणियों से मुक्त होता है तब प्रथम आहवनीय के निमित्त और फिर उसे होतागण गार्हपत्य के निमित्त वेदि के पूर्व में, और पुनः बाद में; पश्चिम भाग में ले जाते हैं।

त्वम॑ग्ने वृ॒ष॒भः पु॑ष्टि॒वर्ध॑न॒ उद्य॑तस्रुचे भवसि श्र॒वाय्यः॑।
य आहु॑तिं॒ परि॒ वेदा॒ वष॑ट्कृति॒मेका॑यु॒रग्रे॒ विश॑ आ॒विवा॑ससि ॥ ५ ॥

भा०—हे (अग्ने) विज्ञानवन्! परमेश्वर! (त्वम्) तू (वृषभः) सूर्य और मेघ के समान जलों के और सुखों के बर्षानेवाला, (पुष्टिवर्धनः) पोषणकारी अन्नों और पशु समृद्धि को बढ़ाने वाला और (उद्यतस्रुचे) ऊर्ध्व मस्तक भाग में वीर्य को दमन करनेवाली, ऊर्ध्वरेता एवं उच्चतम भ्रुकुटि या ब्रह्मरन्ध्र में समस्त प्राणवृत्तियों को रोधने वाले योगी के लिए (श्रवाय्यः) श्रवण करने, साक्षात्कार करने और दूसरों के बतलाने योग्य (भवसि) होता है। (यः) जो स्वयं (वषट्कृतिम्) पांचों भूत और अहंकार-महत् तत्वयुक्त छहों विकारों की (आहुतिम्) आहुति को अपने भीतर (परिवेद) ग्रहण करता है। और जो (एकायुः) एकमात्र समस्त संसार जीव रूप होकर, समष्टि महान् चैतन्य होकर (अग्रे) सबसे पूर्ण (विशः) अपने भीतर विद्यमान महत् आदि समस्त प्रज्ञाओं को (आ विवाससि) सब तरफ़ से, सब प्रकार से, विविध रूपों में आच्छादित करता है, ढकता है, वश कर रहा है। वह परमेश्वर सबकी आहुति लेने से सबका मूल कारण 'सत्' है। एकायु अर्थात् समष्टि चैतन्य होने से 'चित्' है और सब प्रजाओं को अपने भीतर मग्न कर लेने से 'आनन्द' स्वरूप है।

उद्यत-स्रुचे—प्राण एव स्रुवः। सोयं प्राणः सर्वाण्यंगान्यनुसञ्चरति। योषा वै स्रुग् वृषास्रुवः। श० १।३।१।९॥ अध्यात्म में—आत्मा आनन्दघन होने से 'वृषभ' है। वह प्राणनिरोधी योगी को साक्षात् होता है। (वषट्कृतिं आहुतिं) स्वाप और मरणकाल में मन, चक्षु आदि छहों को अपने भीतर लीन करना जानता है। वह उन सब में या समस्त प्राणियों में निवास करता है। आदित्य-पक्ष में—सूर्य (वषट्कृतिम् आहुतिम्) छहों ऋतुओं को अपने भीतर रखता है। सब प्रजाओं को पालता है। ( उद्यत-स्रुचे भवति श्रवाय्यः ) स्रुवा उठानेवाले यज्ञकर्ता को मेघ गर्जन रूप में सुनाई देता है। राजा—(उद्यतस्रुचे) हाथ उठाकर दुहाई देनेवाले फर्यादी की अथवा लोकों, या शस्त्रादि के उठाने वालों के द्वारा प्रसिद्ध होता है, प्रजाओं के दुःख सुनता है, ( अग्रे ) मुख्य पद पर स्थित होकर (एकायुः) एकमात्र सत्य व्यवहारमय जीवनवाला होकर प्रजाओं को जीवनभर रक्षा करता है।

त्वम॑ग्ने वृजि॒नव॑र्तनिं॒ नरं॒ सक्म॑न्पिपर्षि वि॒दथे॑ विचर्षणे।
यः शूर॑साता॒ परि॑तक्म्ये॒ धने॑ द॒भ्रेभि॑श्चि॒त्समृ॑ता॒ हंसि॒ भूय॑सः ॥६॥

भा०—( अग्ने ) अग्रणी ! नायक ! सेनापते ! हे (विचर्षणे) विविध प्रजाओं के द्रष्टा (त्वम्) तू ( सक्मन् ) समवाय या संघ से बने (विदथे) युद्ध में ( वृजिन-वर्त्तनिम् नरम् ) बल के मार्ग से जाने वाले वीर पुरुष को ( पिपर्षि ) अन्न आदि से पालता पोषता है। और (यः) जो तू (शूरसाता) शूरों से सुखपूर्वक भोगने योग्य ( परितक्म्ये ) चारों ओर से आक्रमण करने योग्य ( धने ) युद्ध में भी (दभ्रेभिः) मारने में कुशल छोटे-छोटे वीर पुरुषों के द्वारा ( चित् ) भी ( समृता ) एकत्र होकर युद्ध में आये ( भूयसः ) बहुत से शत्रुओं को भी ( हंसि ) मार देता है। वही तू सेनापति या राजापद के योग्य है। आत्मा परमेश्वर पक्ष में—हे ( विचर्षणे ) साक्षिन् ! तू ( सक्मन् ) काम, क्रोधादि के संघ में फंसकर (वृजिनवर्त्तनिं नरः पिपर्षि)

पापमार्ग से जानेवाले पुरुष को बचा लेने में समर्थ है। वीरों से लड़ने में योग्य अति दुःखकर इस संग्राम में एकत्र हुए बहुत से काम क्रोधादि आभ्यन्तर शत्रुओं को ( दभ्रेभिः ) हृदयाकाश में स्थिर प्राणों के बल से विनष्ट करता है।

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मान्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग् व्यवसितो हि सः ॥ गी० ॥
शश्वद्भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्ति निगच्छति
कौन्तेय प्रति जानीहि न मद्भक्तः प्रणश्यति ॥ गी० ॥

त्वं तम॑ग्ने अमृत॒त्व उ॑त्त॒मे मर्तं॑ दधासि॒ श्रव॑से दि॒वेदि॑वे।
यस्ता॑तृषा॒ण उ॒भया॑य॒ जन्म॑ने॒ मयः॑ कृ॒णोषि॒ प्रय॒ आ च॑ सू॒रये॑ ॥७॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! (यः) जो पुरुष (उभयाय) दोनों ( जन्मने ) जन्मों में सुख प्राप्त करने और उनको उत्तम बनाने के लिए ( तातृषाणः ) तेरे आनन्द प्राप्त करने के लिए पियास अनुभव करता है, जो तेरे लिए तरसता है उस (सूरये) विद्वान् के हित के लिए तू (मयः) परम सुख और ( प्रयः ) अन्न, ऐहिक सुख, श्रेय और प्रेय दोनों ही (आकृणोषि ) प्रदान करता है। और ( त्वम् ) तू ( तम् मर्त्तम् ) उस मनुष्य को ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ( अमृतत्वे ) मोक्ष के निमित्त ( श्रवसे ) ज्ञान प्राप्त करने के लिए (दधासि) नियुक्त करता, एवं पालन पोषण करता है। तुलना करो गीता० अ० ६। श्लो० ४०—४५।

'उभय जन्म'—अतीत, आगामी, वर्त्तमान ये तीन जन्म और आचार्य प्रदत्त द्विजन्मता ये चारों मिलकर एक जन्म है और मुक्त होने के पश्चात् पुनः जन्म लेना द्वितीय जन्म है ऐसा महर्षि का आशय है। राजापक्ष में—(उभयाय जन्मने ) द्विपाद्, चतुष्पाद् दोनों प्रकार के जन्तुओं के हितार्थ जो तरसता है राजा उसको सुखसामग्री और अन्न का प्रबन्ध करे। उसके दिनों दिन ज्ञान और ख्याति लाभ केलिए उत्तम चिरस्थायी पद पर स्थापित करे।

त्वं नो॑ अग्ने स॒नये॒ धना॑नां य॒शसं॑ का॒रुं कृ॑णुहि॒ स्तवा॑नः ।
ऋ॒ध्याम॒ कर्मा॒पसा॒ नवे॑न दे॒वैर्द्या॑वापृथिवी॒ प्राव॑तं नः ॥ ८ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! राजन् ! ( स्तवानः ) तू स्वयं स्तुति किया जाकर, उच्च आसन पर प्रस्तुत होकर, अथवा सबको उपदेश या शासन करता हुआ ( नः ) हमें ( धनानां ) नाना धनों, ऐश्वर्यों के प्रदान और उत्तम विभाग के लिये (यशसम्) यशस्वी (कारुम्) उत्तम कार्यकर्त्ता, शिल्पी, कर्मशील पुरुष को ( कृणुहि ) नियुक्त कर। अथवा—हममें से ( कारुं यशसं कृणुहि ) कर्मण्य शिल्पवान् पुरुष को यशस्वी बना। और हम ( नवेन ) सदा नवीन नये २ ( अपसा ) प्रयत्न और उत्साह से ( कर्म ) अपने अभिलषित कर्म या उद्देश्य को ( ऋध्याम ) बढ़ावें और अधिक सम्पन्न, अधिक फलदायक बनावें। ( द्यावापृथिवी ) सूर्य और पृथिवी, स्त्री और पुरुष, एवं राजा प्रजा वर्ग दोनों ( देवैः ) अग्नि आदि दिव्य पदार्थ और दानशील, एवं विजयशील और निरीक्षक अधिकारी और ज्ञानी, धनाढ्य पुरुषों द्वारा ( नः ) हमें ( प्र अवतम् ) भली प्रकार रक्षा करें, पुष्ट करें। राजा ऐश्वर्यों की वृद्धि के लिये उत्तम शिल्पियों को बढ़ावे। जिससे प्रजा अधिक उत्पादक श्रम करें। राजा प्रजा वर्ग उत्तम रक्षकों और रक्षासाधनों से प्रजा को भूखों मरने और आधि व्याधियों से पीड़ित होने से बचावें।

त्वं नो॑ अग्ने पि॒त्रोरु॒पस्थ॒ आ दे॒वो दे॒वेष्व॑नवद्य॒ जागृ॑विः ।
त॒नू॒कृद्बो॑धि॒ प्रम॑तिश्च का॒रवे॒ त्वं क॑ल्याण॒ वसु॒ विश्व॒मोपि॑षे॥९॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् परमेश्वर ! हे ( अनवद्य ) अनिन्द्य, निष्पाप ! तू ( देवः ) सब सुखों का दाता और ( देवेषु ) अग्नि आदि तत्वों में सदा ( जागृविः ) जागरणशील, सदा क्रियाशक्ति रूप से व्यापक होकर ( पित्रोः ) जगत् के पालक सूर्य पृथिवी दोनों के ( उपस्थे ) बीच में ( आ ) सर्वत्र व्यापक है। और तू ( प्रमतिः ) सबसे उत्कृष्ट ज्ञान

वाला और (तनूकृत्) समस्त प्राणियों और लोकों और पृथिवी आदि तत्वों के रूपों, और देहों को रचने हारा होकर (कारवे) कार्य करने वाले, कर्त्ता जीव को (बोधि) ज्ञान प्रदान कर। हे (कल्याण) मंगलमय! (त्वं) तू ही (कारवे) इस कर्त्ता जीव के सुख के लिए (विश्वं वसु) समस्त प्रकार के ऐश्वर्य (ऊपिषे) सर्वत्र उत्पन्न करता है। प्रजनश्चास्मि कंदर्पः। धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोऽस्मि भरतवर्षभ॥ इन गीता-वचनों के अनुसार—हे (अनवद्य) अनिन्ध (अग्ने) तेजस्विन्! वीर्य! तू (पित्रोः उपस्थे) माता पिता दोनों के देहांत में (देवः) सुखप्रद एवं (देवेषु जागृविः) कामना युक्त जीवों में जागृत होता है। तू ही (प्रमतिः) उत्तम रीति से स्तम्भित होकर (तनूकृत् बोधि) प्राणि के देह को बनाने वाला जाना जाता है। हे (कल्याण) सुखप्रद! तू (कारवे) जगद्विधाता के लिए (विश्वं वसु) समस्त बसनेवाले जीव संसार को (आ ऊपिषे) भूमि में अन्न बीजों के समान बीज वपन करता और सृष्टि उत्पन्न करता है। राजा और आचार्य माता पिता से उतर कर तीसरा 'देव' है वह सबमें सावधान होकर उत्कृष्ट ज्ञानवान् होकर विद्या में जन्म देने से तनूकृत् है। वह बोध करावे। हे कल्याणकृत्! तू ही समस्त (वसु) ज्ञानैश्वर्य का शिष्यों में मानो वपन करता है। आचार्य का शिक्षण राष्ट्र के नवयुवकों में समस्त जीवों की उन्नति के बीजों को बोने के समान है।

त्वम॑ग्ने प्रम॑तिस्त्वं पि॒तासि॑ न॒स्त्वं व॑य॒स्कृत्तव॑ जा॒मयो॑ व॒यम्।
सं त्वा॒ रायः॑ श॒तिनः॒ सं स॑ह॒स्रिणः॑ सु॒वीरं॑ यन्ति व्रत॒पाम॑दाभ्य॥१०॥३२

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् आचार्य! परमेश्वर! राजन्! (त्वम्) तू (नः) हमारा (पिता असि) पिता के समान उत्पादक और पालक है। (त्वं नः वयःकृत्) तू हममें जीवन बल और ज्ञान का देने वाला है। (वयम्) हम सब (तव) तेरे (जामयः) बन्धु या सन्तान के समान हैं। हे (अदाभ्य) अतिप्रशंसनीय! सदा आदरणीय! (शतिनः) सैकड़ों

और ( सहस्रिणः ) हज़ारों विद्या, कर्म सुख आदि से युक्त (रायः) ऐश्वर्य ( व्रतपाम् त्वा ) व्रतों के पालक, व्रतपति, तुझको ( यन्ति ) प्राप्त हैं। आचार्य उत्तम ज्ञानी होने से 'प्रमति' विद्या जन्म के दाता होने से 'पिता' ब्रह्मचर्य द्वारा, वीर्य पालक और ज्ञान देने से 'वयःकृत' है। शिष्यों में वह विद्या के बीज बोने से शिष्य उसके 'जामि' उत्तम फलोत्पादक भूमियों के समान, स्नेह से बन्धु और पुत्र के समान हैं। सैकड़ों हज़ारों गौ आदि से युक्त ऐश्वर्य उसको दक्षिणा में प्राप्त हों। इसी प्रकार राजा उत्तम शत्रुस्तम्भक, पालक, बलप्रद है। प्रजा उसकी ऐश्वर्यजन भोगभूमियें हैं उस उत्तम वीर को सहस्रों ऐश्वर्य प्राप्त हों। उत्पादक वीर्य के पक्ष में भी स्पष्ट है। वह जीवनवृद्धि कारक होने से 'वयःकृत' है। ये समस्त सैकड़ों गृहस्थ-सुख वीर्यवान् पुरुष को प्राप्त होते हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

त्वाम॑ग्ने प्र॒थ॒मम॒ायुम॒ायवे॑ दे॒वा अ॑कृण्व॒न्नहु॑षस्य वि॒श्पति॑म्।
इळाम॑कृण्व॒न्मनु॑षस्य॒ शास॑नीं पि॒तुर्यत्पु॒त्रो मम॑कस्य॒ जाय॑ते ॥११॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! परमेश्वर! (देवाः) दिव्य पदार्थ पृथिवी आदि और विद्वान् जन ( प्रथमम् ) सबसे आदि में विद्यमान ( त्वाम् ) तुझको ही ( नहुषस्य ) कर्म-बन्धनों में बंधनेवाले जीव गण के ( आयवे ) इस लोक में आने और जीवन सुख से व्यतीत करने के लिए ( विश्पतिम्) प्रजाओं के पालक राजा के समान ( अकृण्वन् ) बतलाते हैं, निश्चित करते हैं। और वे ही ( इलाम् ) स्तुति करनेहारी या स्तुति योग्य वेदविद्या को ही ( मनुषस्य ) मननशील मानवगण के ( शासनीम् ) शासन या शिक्षा करनेवाली ( अकृण्वन् ) बतलाते हैं। ( यत् ) जिस प्रकार ( पुत्रः ) पुत्र ( पितुः ) उत्पादक पिता का होता है उसी प्रकार ( ममकस्य ) मननशील ज्ञानवान् पुरुष का शिष्य पुत्र के समान ही ( जायते ) होता है। उसी प्रकार यह मानववर्ग परमेश्वर और वेद चतुष्टयी, आचार्य और विद्या दोनों का पुत्र है। राजा के पक्ष में—( देवाः ) विद्वान् और विजिगीषु पुरुष

(नहुषस्य) राज्यव्यवस्था में बाँधने योग्य मानव समाज के ( आयवे ) ज्ञान की वृद्धि और हित के लिए ( प्रथमम् आयुम् ) सबसे प्रथम, उच्चकोटि के पुरुष को ही ( विश्पतिम् अकृण्वन् ) प्रजाओं का पालक राजा नियत करें। और ( इलाम् ) 'इला' भूमि और वेदवाणी को मनुष्यों के शासन करनेवाली बनावें। प्रजागण! ( ममकस्य पितुः पुत्र इव जायते ) अपने अपने पिता के पुत्र के समान पालने योग्य हों। उत्पादक वीर्यपक्ष में— विद्वानों ने या मुख्य प्राणों ने या तत्वों ने हे ईश्वरीय काम! आयुस्वरूप तुझको प्रेम बंधन में बंधे जीव के जीवन या संतति वृद्धि के लिए राजा या प्रजापति बनाया। इला, भूमि, स्त्री को मनुष्य का शासक किया। उस समय पुरुष स्त्री के वश होता है और तभी ममता युक्त पिता का पुत्र उत्पन्न होता है। ऐतरेय० उप०। अ०। २। १-३॥

त्वं नो॑ अग्ने॒ तव॑ देव पा॒युभि॑र्म॒घोनो॑ रक्ष त॒न्व॑श्च वन्द्य।
त्रा॒ता तो॒कस्य॒ तन॑ये॒ गवा॑म॒स्यनि॑मेषं॒ रक्ष॑माण॒स्तव॑ व्र॒ते॥ १२॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् परमेश्वर! अग्रणी नायक राजन्! सभाध्यक्ष! हे ( देव ) सुख के देने हारे, राष्ट्र का विजय करने वाले! ( त्वं ) तू ( मघोनः ) ऐश्वर्य से युक्त ( नः ) हम सम्पन्न प्रजाजनों की और ( नः तन्वः च ) हमारे शरीरों और ( तोकस्य ) हमारे सन्तानों के ( तन्वः च ) शरीरों की अपने ( पायुभिः ) पालनकारी साधनों से ( रक्ष ) रक्षा कर। तू ( तनये ) हमारे पुत्र पौत्रादि सन्तति के निमित्त ( तव व्रते ) अपने नियम शासन व्यवस्था में ( अनिमेषं ) बिना किसी प्रमाद के, निरन्तर ( रक्षमाणः ) उनके प्राणों की रक्षा करता हुआ भी उनकी ( गवाम् ) गौ आदि पशुओं और चक्षु आदि इन्द्रियों का भी (त्राता असि) पालक है। उत्पादक वीर्य भी अपने पालनकारी गुणों से हमारे सन्तति प्रसन्तति की और उनके हस्त, पाद, चक्षु आदि तक की निरन्तर पालना करता है। वीर्य में दोष आने से ही सन्तति में व्यंग आदि दोष उत्पन्न होते हैं।

त्वम॑ग्ने य॒ज्यवे॑ पा॒युरन्त॑रोऽनिष॒ङ्गाय॑ चतुर॒क्ष इ॑ध्यसे ।
यो रा॒तह॑व्योऽवृ॒काय॒ धाय॑से की॒रेश्चि॒न्मन्त्रं॒ मन॑सा व॒नोषि॒ तम् ॥१३॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! ( त्वम् ) तू ( यज्यवे ) यज्ञशील, उपासक भक्तजन का ( पायुः) रक्षा करनेवाला है । तू (अन्तरः) अन्तर्यामी होकर ( अनिषङ्गाय ) निःसंग, साधक और ( चतुरक्षः ) चार आंखों वाला, अति सावधान, चौकन्ना अथवा चारों दिशाओं में व्यापक या चारों योग साधनों से साक्षात् होकर ( इध्यसे ) हृदय में प्रकाशित होता है । और ( यः ) जो तू ( अवृकाय ) वृक के समान हिंसक न होकर अहिंसक सौम्य होकर रहने वाले और (धायसे) सबके पालन पोषण करने वाले पुरुष को ( रातहव्यः ) ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करता है । वह तू ( कीरेः चित् ) अपनी स्तुति करनेहारे भक्त के ( तम् ) उस नाना प्रकार के ( मनसा मन्त्रम् ) मन से विचारित मन्त्र, वेदमन्त्र या मनन संकल्प को भी ( वनोषि ) स्वीकार करता है । राजा, विद्वान्, सभापति आदि के पक्ष में—तू सन्धि करनेवाले, अपने से संगत पुरुष का शासन करता है । निःष्पक्षपात के लिए (चतुरक्षः ) चौकन्ना, एवं चारों दिशाओं में सावधान होकर, या चतुरंग बल से युक्त होकर प्रदीप्त तेजस्वी होकर रहता है । और वृत्ति से रहित अपने पोषक को ऐश्वर्य देता और ( कीरेः) किये हुए मन्त्र, विचार को मन से चाहता और मानता है । अथवा—( अवृकाय धायसे यः रातहव्यः तस्य कीरेः ) जो चोर आदि वृत्ति से रहित सर्वपोषक तुझको अन्नादि प्रदान करता है उस अपने स्तुतिकारी प्रजाजन के किये ( मन्त्रं ) मन्त्र, सम्मति को मन से स्वीकार करता है । सच्चा रक्षक राजा अपनी पालक प्रजा के मत का शासनप्रबन्ध में आदर करता है। और भक्षक राजा सदा प्रजा को चूसता, चुराता और प्रजामत का तिरस्कार करता है । वीर्यपक्ष में—(अनिषंगाय) निःसंग ब्रह्मचर्य के पालक, वीर्यरक्षा करनेवाले के शरीर के भीतर वीर्य तेजरूप से चमकता है । वह विद्वान्, अन्नभोक्ता को मनन शक्ति प्रदान

करता और उसीमें व्यय हो जाता है।

त्वमंग्ने उरुशंसाय वाघते स्पार्हं यद्रेक्णः परमं वनोषि तत्।
आध्रस्यं चित्प्रमतिरुच्यसे पिता प्र पाकं शास्सि प्रदिशो विदुष्टरः॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर! राजन्! विद्वन्! सभाध्यक्ष! (त्वम्) तू (यत्) जब (उरुशंसाय) अति अधिक स्तुतिशील एवं विद्वान् (वाघते) वाणी से स्तुति करने वाले, और वाणी द्वारा ज्ञान प्रदान करने वाले विद्वान् को (तत्) नाना प्रकार के उस (परमम्) परम, सर्वश्रेष्ठ (स्पार्हम्) चाहने योग्य, (रेक्णः) धनैश्वर्य (वनोषि) प्रदान करता है तब तू (प्रमतिः) उत्कृष्ट ज्ञानवान्, होकर (आध्रस्य चित्) सब प्रकार से धारण पोषण योग्य राष्ट्र या दुर्बल दीन प्रजाजन का भी (पिता उच्यसे) पालक पिता ही कहाता है। और तभी (पाकं) परिपक्व ज्ञान का (प्र शास्सि) भली प्रकार उपदेश करता है। और तू (विदुस्तरः) सब विद्वानों में श्रेष्ठ होकर (दिशः प्र शास्सि) प्राची आदि दिशाओं तथा नाना विद्या के उपदेष्टा आचार्यों पर भी शासन करता है, उनसे ऊपर अपना विचार रखता और देता है। अथवा (पाकम्, दिशः प्र शास्सि) बालक के समान विद्वानों को ज्ञान देता है। वीर्यपक्ष में—गृहस्थ को तू ही (स्पार्हं रेक्णः परमम्) प्रेम से उत्पन्न सेचन योग्य उत्तम वीर्य प्रदान करता है। तू (प्रमतिः) अच्छी प्रकार स्तम्भित होकर ही दुर्बल का पालक है। परिपक्व होकर (विदुस्तरः दिशः प्रशास्सि) अति दुःसह, अजेय होकर सब दिशाओं, या इन्द्रियों को अपने वश करता है।

त्वमग्ने प्रयतदक्षिणं नरं वर्मेव स्यूतं परि पासि विश्वतः।
स्वादुक्षद्मा यो वसतौ स्योनकृज्जीवयाजं यजते सोपमा दिवः।१५।३४

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! परमेश्वर! विद्वान् यशकर्त्ता और यज्ञाग्नि जिस प्रकार (प्रयतदक्षिणम्) दान दक्षिणा देने वाले धार्मिक पुरुष की रक्षा करता है और (स्यूतं वर्म इव नरं) खूब दृढ़ता से सीया

हुआ कवच जिस प्रकार युद्ध में मनुष्य की रक्षा करता है उसी प्रकार तू परमेश्वर भी (प्रयतदक्षिणं) अपनी समस्त चित्तवृत्ति, क्रियाशक्ति और वीर्य को अच्छी प्रकार नियम में रखने वाले ( नरं ) साधक पुरुष को (विश्वतः) सब प्रकार से ( परि पासि ) रक्षा करता है। और ( यः ) जो पुरुष ( वसतौ ) अपने निवास योग्य गृह या देह में ( स्वादुक्षद्मा ) उत्तम स्वादयुक्त, पुष्टिकारक जल, अन्न खाता और ( स्योनकृत् ) अपने आपको सुखी रखता हुआ ( जीवयाजं यजते ) प्राण धारण करने के निमित्त आजीवन यज्ञ करता है ( सः ) वह ( दिवः ) सूर्य के समान सुखप्रद (उपमा) जाना जाता है। इसी प्रकार राजा भी उत्तम शास्त्रादि ज्ञान के देने वाले पुरुष को कवच के समान रक्षा करता है। जो राजा अपनी वसति, राष्ट्र में सब प्रजा को सुख दे, (जीवयाजं यजते) समस्त प्राणियों को अन्न दान करे वह सूर्य के समान दानशील तेजस्वी कहाता है। इसी प्रकार शरीर में जाठर अग्नि और वीर्य भी संयतवीर्य वाले यति की रक्षा करता, उत्तम अन्न के भोक्ता को आजीवन सुखपूर्वक प्राण प्रदान करता है वह 'सूर्य' या स्वर्ग के समान है। आरोग्यं परमं सुखम्। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः॥

इमामग्ने शरणिं मीमृषो न इममध्वानं यमगाम दूरात्।
आपिः पिता प्रमतिः सोम्यानां भृमिरस्यृषिकृन्मर्त्यानाम् ॥१६॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्! परमेश्वर, विद्वन्! तू ( नः ) हमारे ( शरणिम् ) नाश करने वाली अविद्या को ( इमाम् ) इस वर्त्तमान की ( शरणिम् ) नाश करनेवाली अविद्या को या हिंसाभाव को ( मीमृषः ) दूर कर। ( यम् ) जिस तेरे पास हम ( दूरात् ) इतने दूर से भी ( इमम् अध्वानम् ) इतना लम्बा मार्ग चल कर ( अगाम ) तुझे प्राप्त हुए हैं वह तू ( सोम्यानाम् ) ज्ञानवान् पुरुषों में भी ( प्रमतिः ) सबसे उत्कृष्ट ज्ञान वाला, ( पिता ) पालक और ( आपिः ) सदा आप्त, बन्धु है। तू ही ( मर्त्यानाम् ) मनुष्यों के हित के लिये ( भृमिः )सूर्य के समान सर्वत्र व्यापक

या सत्यासत्य के विवेचक तर्कों, युक्ति, प्रमाणों का उपदेष्टा ( असि ) है। शरीर-गत वीर्याग्नि हमारे जीवन नाश को दूर करता है जिससे हम लम्बे जीवनपथ को पार कर लेते हैं। वह शरीर का बन्धु, पालक है। (सोम्यानां) वीर्य-रक्षक पुरुषों का (भूमिः) पालक और मनुष्यों में ( ऋषिकृत् ) ज्ञानी, ऋषियों और शरीर में इन्द्रियों, प्राणों का उत्पादक और बलकारक है।

**म॒नु॒ष्वद॑ग्ने अङ्गिर॒स्वद॑ङ्गिरो य॒याति॒वत्सद॑ने पूर्व॒वच्छु॑चे।**
**अच्छ॑ या॒ह्या व॑हा॒ दैव्यं॒ जन॒मा सा॑दय ब॒र्हिषि॒ यक्षि॑ च प्रि॒यम् ॥१७॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्! अग्नि के समान तेजस्विन्! हे (अङ्गिरः) सूर्य के समान प्रकाशवाले! वायु के समान समस्त संसार के अंग २ में व्यापक! हे ( शुचे ) परम पावन! पवित्र आचार वाले! तू ( मनुष्वत् ) मननशील पुरुषों से युक्त होकर, ( अङ्गिरस्वत् ) तेजस्वी, बलवान् पुरुषों से युक्त होकर ( ययातिवत् ) विद्याओं के पार और संग्राम में आगे बढ़ने वाले वीर पुरुषों से युक्त होकर और (पूर्ववत्) अपने से पूर्व विद्यमान गुरु माता पिता और पूज्य पुरुषों से युक्त होकर ( सदने ) राजसभा भवन में या मुख्य पद पर (अच्छ याहि) हमें प्राप्त हो। तू ( दैव्यं जनम् ) विद्वानों और राजाओं के हितकारी पुरुषों को ( आ वह ) प्राप्त कर। और ( प्रियम् ) सबके प्रिय, पुरुष को ( बर्हिषि ) आसन पर, प्रजाजन के ऊपर शासन के लिये स्थापन कर और उसको ( यक्षि च ) उचित वेतन आदि प्रदान कर। अथवा तुल्यर्थेवतिः। मननशील, तेजस्वी और प्रयाण में कुशल पुरुष के समान राजसभा में या मुख्य आसन पर आ। वीर्याग्नि पक्ष में—हे ( शुचे ) शुक्र रूप अग्ने! तू मन के सहित अंग २ में व्याप्त रस या बल के सहित ( ययातिवत् ) क्रिया शक्ति से युक्त होकर (सदने ) गृहरूप देह में प्राप्त है। ( दैव्यं जनम् ) तू अभिलषित, कार्य क्रीड़ा में कुशल उत्पादक अंग को प्राप्त करता, वृद्धिजनक गर्भाशय में प्राप्त होता और सुख प्रदान करता है।

एतेनाग्ने ब्रह्मणा वावृधस्व शक्ती वा यत्ते चकृमा विदा वा
उत प्र णेष्यभि वस्यो अस्मान्त्सं नः सृज सुमत्या वाजवत्या॥१८॥३५

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! परमेश्वर! विद्वन्! राजन्! तू (एतेन) इस (ब्रह्मणा) महान् वेद ज्ञान, महान् ब्रह्म अर्थात् संचालक बल और ब्राह्म बल से (वावृधस्व) बढ़। हम (यत्) जो कुछ भी (ते) तेरे निमित्त (शक्ती) शक्ति से और (विदा वा) ज्ञान से (चकृम) करें तू (उत) तो (अस्मान्) हमें (वास्यः) उत्तम धन ऐश्वर्य (प्र नेषि) प्राप्त करा। और (नः) हमें (सुमत्या) उत्तम मति, बुद्धि और (वाजवत्या) ज्ञान और ऐश्वर्य से (सृज) युक्त कर। वीर्याग्नि पक्ष में ब्रह्म = अन्न। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः॥

## [ ३२ ]

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ त्रिष्टुभः। पञ्चदशर्चं सूक्तम्।

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत्पर्वतानाम्॥ १॥

भा०—मैं (इन्द्रस्य) सूर्य के समान तेजस्वी, पराक्रमी, वायु के समान बलवान्, राजा और सेनापति के (वीर्याणि) बलयुक्त उन कर्मों का (प्र वोचम्) उपदेश करता हूं (यानि) जिन (प्रथमानि) अति उत्तम बल के कार्यों को (वज्री) छेदन भेदन करने में कुशल वह (चकार) करता है। [१] (अहिम् अहन्) जिस प्रकार सूर्य या वायु मेघ को प्रकाश और प्रबल वेग से आघात करता है उसी प्रकार (अहिम्) जीता न छोड़ने योग्य, शत्रु को राजा भी प्रताप और पराक्रम से (अहन्) आघात करता है (अपः अनु ततर्द) जिस प्रकार सूर्य और वायु मेघ पर आघात करके तदनन्तर उसमें से जलों को नीचे गिराता है। उसी प्रकार परा-

क्रमी राजा भी शत्रु सेनाओं को ( अनुतर्द ) वार बार पीड़ित करता है। और ( इन्द्रः ) विद्युत् और वायु जिस प्रकार ( पर्वतानाम् ) पर्वतों और मेघों की ( वक्षणाः ) कोखों और तटों को विदीर्ण करता है और उनमें से ( वक्षणाः अभिनत् ) नदियों और जल-धाराओं को बहा देता है उसी प्रकार राजा भी ( पर्वतानाम् ) पर्वत के समान अचल, दृढ़, शत्रु राजाओं के ( वक्षणाः ) कोखों या पार्श्व के दृढ़ रक्षा स्थानों को ( अभिनत् ) तोड़ डाले और (वक्षणाः अभिनत्) शत्रु सेना के प्रवाहों को छिन्न भिन्न कर दे। अथवा—प्रजा के हित के लिये पर्वतों के पासों से नदी, नहरों को बहा दे।

अह॒न्नहिं॒ पर्व॑ते शिश्रिया॒णं त्वष्टा॑स्मै॒ वज्रं॑ स्व॒र्यं॑ ततक्ष।
वा॒श्रा इ॑व धे॒नव॒ः स्यन्द॑माना॒ अञ्जः॑ समु॒द्रमव॑ जग्मु॒राप॑ः ॥२॥

भा०—( पर्वते ) पर्वत पर या मेघमण्डल में (शिश्रियाणम्) आश्रय लेने वाले ( अहिम् ) मेघ को जिस प्रकार ( त्वष्टा ) कान्तिमान् सूर्य या वायु ( अहन् ) अघात करता है और ( अस्मै) इस राजा के लिये (त्वष्टा) शिल्पी जिस प्रकार शस्त्र बनाता है उसी प्रकार स्वयं सूर्य ( स्वर्यं ) घोर गर्जना करने और अतितापदायी ( वज्रं ) विद्युत रूप वज्र को ( ततक्ष ) उत्पन्न करता है। उसी प्रकार विजयशील राजा ( पर्वते ) पालन करने में समर्थ गिरि पर्वत या बड़े राजा के ( शिश्रियाणं ) आश्रय पर रहने वाले अपने, न जीता छोड़ने योग्य, बध्य शत्रु को (अहन्) मारे। और ( त्वष्टा ) करीगर शिल्पी .( अस्मै ) उसके मारने के लिये ( स्वर्यं ) अति गर्जना कारी अतिताप या अग्नि से चलने योग्य ( वज्रं ) शस्त्र को ( ततक्ष ) बनावे। ( आपः ) और जिस प्रकार (धेनवः) दुधार गौएं ( स्यन्दमानाः ) दूध की धाराएं प्रेमवश बहाती हुई अपने बछड़े के पास वेग से जाती हैं उसी प्रकार ( आपः ) जलधाराएं भी ( अञ्जः ) प्रकट रूप में, अति शीघ्र ( स्यन्दमानाः ) बहती हुई ( समुद्रम् ) अन्तरिक्ष और समुद्र को ( अव-जग्मुः ) पहुंच जाती है उसी प्रकार ( आपः ) प्रजाएं ( अञ्जः ) शीघ्र ही

प्रेम से वशीभूत ( स्यन्दगानाः ) अतिद्रवीभूत होकर (समुद्रम् अव जग्मुः) समुद्र के समान गम्भीर राजा के पास आवें ।

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत्सुतस्य ।
आ सायकं मघावादत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम् ॥३॥

भा०—( वृषायमाणः ) वृष, वीर्य सेचन में समर्थ वृषभ जिस प्रकार गौओं में वीर्य सेचन करता है, उसी प्रकार भूमियों को सेचन करने में समर्थ, मेघ के समान आचरण करने वाला सूर्य ( त्रिकद्रुकेषु ) तीनों लोकों में अथवा तेज, किरण, वायु द्वारा ( सुतस्य ) उत्पन्न जगत् के ( सोमं ) अंश को ( अवृणीत ) प्राप्त करता और ( अपिबत् ) पान कर लेता है । और ( मघवा ) जल और तेज से पूर्ण सूर्य ( सायकम् ) मेघ का अन्त कर देने वाले ( वज्रं ) विद्युत् रूप तेजोमय वज्र को (आदत्त) लेता है और ( अहीनां प्रथमजाम् ) मेघों में सबसे प्रथम उत्पन्न महा मेघ को ( अहन् ) अघात करता है उसी प्रकार विजयेच्छु राजा ( वृषायमाणः ) वरसते मेघ के समान शस्त्र वर्षण में कुशल होकर ( त्रिकद्रुकेषु ) उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय, प्राप्ति, पालन और शत्रुनाश इन तीनों कार्यों के निमित्त अथवा सेना, राष्ट्र और प्रजा इन तीनों के आधार पर ( सोमं ) राष्ट्र को स्वीकार करे, और ( अपिबत् ) उसका भोग करे । वह ( मघवा ) ऐश्वर्यवान्, समृद्ध होकर ( सायकं वज्रम् ) शत्रु के वर्जन करने में समर्थ विद्युत् के समान तीव्र तेजस्वी ( सायकं ) वाण आदि अस्त्र को (आदत्त ) ले । और ( अहीनाम् ) अत्याज्य, अवश्य बध करने योग्य शत्रुओं में से भी सबसे ( प्रथमजाम् ) मुख्य, प्रथम कोटि में दीखने वाले प्रबलतम शत्रु को ( अहन् ) मारे ।

यदिन्द्राहन्प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः ।
आत्सूर्यं जनयन्द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किला विवित्से ॥४॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! राजन् !

जिस प्रकार ( प्रथमजाम् अहीनाम् ) मुख्य प्रबल मेघ वा अन्धकार को नाश करके वायु ( सूर्यं द्याम् उषासम् ) सूर्य को उषा-काल और आकाश को प्रकट करता है और समस्त मायावी रात्रिचरों की ( मायाः ) हिंसाकारी चेष्टाओं का नाश करता है, बाद में अन्धकार कहीं दिखाई नहीं देता। इसी प्रकार तू भी ( अहीनाम् ) अवश्य बध करने योग्य शत्रुओं में से ( प्रथम-जाम् ) सबसे प्रबलतम शत्रु को ( यत् ) जब हे राजन्! तू ( अहन् ) मार ( उत ) तब ( मायिनाम् ) मायावी कुटिलाचारी लोगों की (मायाः) छल कपट आदि कुहक आचरणों का (प्र अमिनाः) अच्छी प्रकार नाश कर। और उसके अनन्तर ( सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी ( द्याम् ) आकाश के समान विस्तृत और ( उषासम् ) उषःकाल के समान तमोनाशक अपने स्वरूप को ( जनयन् ) प्रकट कर। और ( तादीत्ना) तभी तू अपने राष्ट्र में (किल) निश्चय से ( शत्रुम् ) शत्रु को भी (न) नहीं (विविल्से ) प्राप्त कर सकेगा। अर्थात् शत्रु का नाश होकर उसका मिलना असम्भव हो जाय।

**अह॒न्वृ॒त्रं वृ॑त्र॒तरं॒ व्यं॑स॒मिन्द्रो॒ वज्रे॑ण मह॒ता व॒धेन॑।**
**स्कन्धां॑सीव॒ कुलि॑शेना॒ विवृ॑क्णाहिः॑ शयत उप॒पृक्पृ॑थि॒व्याः॥५॥३६**

भा०—(इन्द्रः) सूर्य, और तीव्र वायु जिस प्रकार (व्यंसं) नाना कन्धों के समान उठे शिखरों वाले, (वृत्रम् ) आकाश को घेर लेने वाले मेघ को ( महता वज्रेण ) बड़े भारी वज्र, विद्युत् से (अहन्) आघात करता है और वह ( अहिः ) मेघ ( पृथिव्याः उपपृक् शयते ) पृथिवी के ऊपर पानी के रूप में गिर पड़ता है, उसी प्रकार ( इन्द्रः ) शत्रुहन्ता राजा ( व्यंसम् ) नाना सेनास्कन्धों या स्कन्धावारों या विविध सेनांगों से युक्त (वृत्रतरम्) बल और ऐश्वर्य में बहुत अधिक बढ़ने वाले शत्रु को भी ( महता वधेन ) बड़े भारी हिंसाकारी शस्त्रसमूह से ( अहन् ) आघात करे, मारे। (कुलि-शेन ( कुठार ) से जिस प्रकार वृक्ष के डालों को काट दिया जाता है उसी प्रकार ( कुलिशेन ) तीक्ष्ण खड्ग से (स्कन्धांसि) शत्रु के कन्धे और सेना को

स्कंध और अंग ( विवृक्णा ) विशेष रूप से काट दिये जायं। जिससे ( अहिः ) अवश्य वध योग्य शत्रु (पृथिव्याः) पृथिवी के ( उपबृक् ) ऊपर पड़ा ( शयत ) सदा के लिए सोये।

'वृत्रं—वृत्रो वृणोतेर्वा, वर्त्ततेर्वा, वर्धतेर्वा, यदवृणोत्। तद् वृत्रस्य वृत्रत्वं यद्वर्त्तते तद्वृत्रस्य वृत्रत्वमिति विज्ञायते। यदवर्धत तद् वृत्रस्य वृत्रत्व-मिति विज्ञायते। निरु० २। १७॥ इति षट्त्रिंशो वर्गः॥

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः॥ ६॥

भा०—( दुर्मदः ) बुरे, पापमय मद, भोगविलास से तृप्त होने वाला व्यसनी, एवं अपनी प्रजा पर अत्याचार और अन्याय के उपायों से अपने भोग विलास पूर्ण करनेवाला पुरुष ( महावीरम् ) बड़े वीर, ( तुविबाधम् ) अनेकों शत्रुओं को पीड़न करने में समर्थ, ( ऋजीषम् ) उत्तम गुणों, उत्तम ऐश्वर्यों के अर्जन करने वाले अथवा (ऋजीषम्) ऋजु, सरल मार्ग पर जाने वाले धर्मात्मा, नीतिमान्, संग्रहशील पुरुष को ( अयोद्धा इव ) लड़ना न जानने वाले अकुशल योद्धा के समान ( आजुह्वे ) युद्ध में ललकार ले। ( हि ) तो वह दुर्व्यसनी पुरुष ( अस्य ) इस महावीर धर्मात्मा पुरुष के (वधानां) शस्त्रास्त्रों के ( सम् ऋतिम् ) एक साथ होने वाले कड़ी मार या एक साथ आने वाले प्रहार को ( न अतारीत् ) नहीं पार कर सकता। वह उससे बच नहीं सकता। ( इन्द्रशत्रुः ) सूर्य या वायु का शत्रु मेघ जिस प्रकार वज्र से ताड़ित होकर ( रुजानाः ) नदियों को और उनके तटों को ( सं पिपिषे ) तोड़ फोड़ देता है। और नदियाँ विक्षुब्ध होकर भागती हैं उसी प्रकार ( इन्द्र-शत्रुः ) ऐश्वर्यवान् धर्मात्मा राजा का वह शत्रु दुर्व्य-सनी ) विरोधी भी ( रुजानाः ) अपनी अति पीड़ित सेनाओं प्रजाओं को ( सं पिपिषे ) पीस डालता है, मरवा डालता है, और वे मर्यादा तोड़कर भागने लगती हैं।

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमास्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन्पुरुत्रा वृत्रो अशयद्व्यस्तः॥ ७॥

भा०—यदि ( अपाद् ) बे पांव का, लङ्गड़े के समान निराश्रय, ( अहस्तः ) बे हाथों का, लूला, निःशस्त्र, अल्पसेना वाला होकर कोई दुर्मद पुरुष ( इन्द्रम् ) पूर्वोक्त ऐश्वर्यवान् धार्मिक राजा के विरुद्ध ( अपृतन्यत् ) सेना सहित युद्ध करे तो (अस्य) इस धार्मिक, बलवान् राजा का (वज्रम्) शस्त्र, सेनाबल वीर्य पराक्रम उसको (सानौ अधि) मेघ को जिस प्रकार वायु का तीव्र विद्युत् मेघ के उठे कन्धों पर वज्र आघात करता है। उसी प्रकार (सानौ) उसके कन्धे या अवयव पर (आ जघान) सब तरफ़ से उसे प्रहार करता है। और ( वध्रिः ) जिस प्रकार बधिया, नपुंसक बैल ( वृष्णा प्रतिमानं ) खूब बलवान् साँड के मुकाबले पर आकर ( पुरुत्रा ) जगह-जगह ( वि-अस्तः ) विविध प्रकार से पटका जाकर ( अशयत् ) लोट पोट हो जाता है उसी प्रकार वह (वध्रिः) बधिया, नपुंसक बैल के समान निर्बल पुरुष भी ( वृष्णः ) सांड के समान बलवान् राजा के ( प्रतिमानं ) मुक़ाबले पर आना ( बुभूषन् ) चाहता हुआ ( पुरुत्रा) बहुत से स्थलों पर (वि अस्तः) विविध प्रकार से पछाड़ खाकर, परास्त होकर (वृत्रः) बिजली की मार खाये हुए मेघ के समान ( अशयत् ) भूमि पर आ पड़ता है।

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद्वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत्तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव॥ ८॥

भा०—( आपः ) जलधाराएं जिस प्रकार ( मनः रुहाणाः ) प्रजाओं के चित्त पर चढ़ीं, अति चित्ताकर्षक होकर ( अमुया ) इस पृथ्वी के साथ ( शयानम् ) सोये हुए प्रशान्त ( भिन्नं नदं ) टूटे तटवाले महानद को (अतियन्ति) उसके तट तोड़कर उससे जा मिलती हैं। उसी प्रकार (आपः) सेनाएँ भी ( मनः रुहाणाः ) मनोरथ पर चढ़ी हुई ( अमुया शयानं ) इस पृथ्वी के ऊपर सोते हुए ( भिन्नं नदं न ) टूटे फूटे देह को प्राप्त कर (अति-

यन्ति ) रण छोड़कर भाग जाती हैं। और ( चित् ) जिस प्रकार ( वृत्रः ) मेघ ( याः ) जिन जलधाराओं को ( महिना) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से ( परि अतिष्ठत् ) थामे रहता है (तासाम् अहिः) उनका धारण करनेवाला मेघ वज्र से ताड़ित होकर ( पत्सुतःशीः ) पाँवों तले ( बभूव ) आ पड़ता है, उसी प्रकार ( वृत्रः ) वर्द्धमान शत्रु ( महिना ) अपने बढ़े हुए सामर्थ्य से ( याः चित् ) जिन सेनाओं के ऊपर (परि अतिष्ठत् ) सेनापति शासक रूप से रहता है ( तासाम् अहिः ) उनका ही वह अत्याज्य स्वामी (पत्सुतःशीः) युद्ध में पछाड़ खाकर पांवों तले रोंदा ( बभूव ) जाता है।

'पत्सुतःशीः'—पादशब्दस्य सप्तमीबहुवचने पदादेशे कृते इतराभ्योपि दृश्यन्ते इति सप्तम्यर्थे तसिल्। लुगभावश्छान्दसः। अथवा 'सु' इत्युपजनः।

नीचावया अभवद्वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद्दानुः शये सहवत्सा न धेनुः ॥ ९ ॥

भा०—( इन्द्रः ) तेजस्वी सूर्य जिस प्रकार ( अस्याः) इस अन्तरिक्ष रूप मेघ की उत्पादक भूमि पर ( वधः ) अपने आघातकारी विद्युत् आदि का ( अव जभार) प्रहार करता है जब ( वृत्रपुत्रा ) अन्तरिक्ष को ढांप लेने वाले मेघ को पुत्र के समान उत्पन्न करनेवाली अन्तरिक्ष भूमि भी ( नीचा वयाः ) जल को नीचे गिरा देती है, मानों स्वयं मरसी जाती है। तब ( उत्तरासूः) ऊपर की अन्तरिक्ष रूप माता तो ऊपर रहती है और (पुत्रः) उसका पुत्र मेघ ( अधरः आसीत् ) नीचे आ पड़ता है। तब (सहवत्सा न धेनुः ) बछड़े सहित गाय के समान ( दानुः ) वह खण्डित वृत्र, माता के नीचे ही ( शये ) पड़ा रहता है। इसी प्रकार ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् धार्मिक राजा (अस्याः) इस पृथिवी के ऊपर अपना (वधः अवजभार) शस्त्र प्रहार करता है और (वृत्रपुत्रा) बढ़ते उमड़ते शत्रु को अपने पुत्र के समान गोद या बीच में लिए सेना भी ( नीचावयाः अभवत् ) निम्न, बलहीन हो जाती है। उस समय ( सूः ) उस सेनापति को अभिषेक करनेवाली सेना

तो ( उत्तरा ) उठी खड़ी रहती है और ( पुत्रः ) उसका पुत्र के समान प्रिय अथवा सेना के पुरुषों का कार्यकर्ता, सेनापति (अधरः आसीत्) नीचे गिरा होता है। उस समय ( दानुः ) वह सेना खण्डित बल होकर ( सहवत्सा धेनुः न ) बछड़े सहित गाय के समान (शये) खड़ी रहती है।

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः॥१०॥ ३७॥

भा०—( वृत्रस्य ) सूर्य को ढक लेने वाले, मेघ का ( शरीरम् ) शरीर, स्वरूप ( अतिष्ठन्तीनां ) कहीं भी स्थिति न पाने वाला, अस्थिर, ( अनिवेशनानां ) कहीं भी न बैठने वाले, निराश्रय ( काष्ठानां ) वाष्परूप जलों के (मध्ये) बीच में ( निण्यम् ) गुप्त, अप्रत्यक्ष, छुपे रूप से ( निहितम् ) रक्खा रहता है। जब ( आपः विचरन्ति ) जलधाराएं होकर विविध रूप से बह जाती हैं तब ( इन्द्रशत्रुः ) विजली से पछाड़ खाया हुआ मेघ ( दीर्घतमः ) विस्तृत, गिर जल के रूप में ( आशयत् ) आ गिरता है। ठीक उसी प्रकार जब ( वृत्रस्य ) घेरने वाले, बढ़ते हुए शत्रु का ( शरीरम् ) शरीर भी ( अतिष्ठन्तीनाम् ) कहीं भी आसन वृत्ति से स्थिर न होने वाली और ( अनिवेशनानां ) कहीं भी निवेश, या छावनी बनाकर न बैठने वाली, यात्रा करती हुई (काष्ठानां) क्षुद्र आस्था, या स्थिति वाली सेनाओं के ( मध्ये ) बीच में ( निण्यम् ) मृत रूप से बेनाम-निशान होकर ( निहितम् ) गिर पड़ता है तब ( आपः ) सेनाएं भी जलधाराओं के समान ( विचरन्ति ) विविध दिशाओं में भग जाती हैं। और ( इन्द्रशत्रुः ) प्रबल शत्रुहन्ता राजा के द्वारा आघात खाया हुआ शत्रु (दीर्घतमः) गहरे अन्धकार, खेद, मरण में ( आशयत् ) पड़ा रह जाता है। अर्थात्, निर्बल सेनाओं को देख कर विजिगीषु उसके मुख्य सेनापति पर आघात करे तो सेनाएं अस्थिर स्वभाव होने से आप ही भाग जाती हैं और शत्रु मरा पड़ा रहता है। इति सप्तत्रिंशो वर्गः॥

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्निरुद्धा आपः पणिनेव गावः ।
अपां बिलमपिहितं यदासीद्वृत्रं जघन्वाँ अप तद्ववार ॥ ११ ॥

भा०—(पणिनः इव) जिस प्रकार वणिक् जनों, या पशुओं के व्यापारी से ( निरुद्धाः ) रोकी हुई ( गावः ) गौएं ( अतिष्ठन् ) निश्चेष्ट खड़ी रहती हैं और जिस प्रकार ( अहिगोपाः ) मेघ में सुरक्षित ( अपः ) जल-धाराएं अन्तरिक्ष में रुकी खड़ी रहती हैं, नीचे नहीं गिरती उसी प्रकार ( दासपत्नीः ) आश्रय रक्षा के देने वाले राजा या सेनापति को अपना पति पालक मानने वाली, ( अहिगोपाः ) आक्रामक शत्रु द्वारा सुरक्षित रहकर ( आपः ) सेनाएं (अतिष्ठन्) युद्ध में स्थिर भाव से रुकी खड़ी रहती हैं। और ( यत् ) जो ( अपां बिलम् ) जलों के रहने का अवकाश (अपिहितम् ) ढका रहता ( आसीत् ) है ( तत् ) उसको ( वृत्रं ) बहने से वारण करने वाले कारण को ( जघन्वान्) आघात करने वाला विद्युत् और वायु (अप ववार ) दूर कर देता है। उसी प्रकार (अपां यत् बिलम्) सेना जनों का जो भरण पोषक करने वाला साधन ( अपिहितं आसीत् ) ढका हुआ सुरक्षित रूप से होता है (तत् वृत्रम्) उस शत्रु को (जघन्वान्) प्रबल हन्ता राजा ( अपववार ) मार कर दूर कर देता है। अर्थात् पालक सेनापति ही सेनाओं को रोके रहता है। प्रबल राजा उसको मार कर अधीन सेनाओं का नाश करता है वा भय से भगा देता है।

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्वा प्रत्यहन्देव एकः ।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून् ॥१२॥

भा०—हे (इन्द्र) वीर राजन् ! ( यत् ) जब ( देवः ) विजय करने की इच्छावाला शत्रु ( एकः ) अकेला ही ( त्वा प्रति ) तेरे प्रति ( अहन्) आघात करता है ( तत् ) तब तू भी ( अश्व्यः ) अश्वारोही सेना में कुशल होकर ( सृके ) एकमात्र या शस्त्रबल, वज्र के आश्रय पर ही (वारः) सेना द्वारा वरण करने, और शत्रु को वारण करने में समर्थ ( अभवः) होता है।

और ( एकः ) तू अकेला ( गाः ) शत्रु के गौ आदि पशुओं तथा शत्रु की भूमियों को भी ( अजयः ) विजय कर। हे (शूर) शूरवीर! तू ही ( सप्त सिन्धून् ) तीव्र वेग से जाने वाले सेना समूहों को ( सर्त्तवे ) चलाने के लिए ( सोमम् ) ऐश्वर्य को ( अव सृजः ) प्रदान करता है।

**नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च।**
**इन्द्रश्च यद्युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये ॥ १३ ॥**

भा—( यत् ) जब ( इन्द्रः च ) सूर्य और ( अहिः च ) मेघ दोनों ( युयुधाते ) युद्ध करते हैं। तब ( अस्मै ) इस सूर्य तक ( न विद्युत् ) न बिजली और ( न तन्यतुः ) न गर्जना ही ( सिषेध ) पहुंचती है। ( याम् मिहम्) जिस जल वृष्टि और (ह्रादुनिं च) अव्यक्त शब्द करने वाली विद्युत् को भी मेघ (अकिरत्) चारों ओर फेंकता है वह भी सूर्य तक नहीं पहुंचती। ( उत ) और ( अपरीभ्यः ) इन सब अपूर्ण, अस्थायी चेष्टाओं पर ( मघवा ) प्रकाशमान सूर्य (विजिग्ये) विशेष रूप से जय पाता है। इसी प्रकार ( यत् ) जब (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् प्रबल राजा और ( अहिः च) आक्रमणकारी शत्रु दोनों (युयुधाते) परस्पर युद्ध करते हैं तब (याम्) जिस ( मिहम् ) जलवृष्टि के समान फेंकी शरवृष्टि को और ( ह्रादुनिं च ) घोर गर्जना करनेवाले महास्त्र शतघ्नी को भी ( अकिरत् ) वह फेंकता है तब (न विद्युत्) न वह बिजली के शस्त्र और (न तन्यतुः) न वह गर्जनाकारी शस्त्रास्त्र ( अस्मै सिषेध ) उस तक पहुंचते हैं। ( उत ) बल्कि ( मघवा) विविध ऐश्वर्यों स्वामी वह ( अपरीभ्यः ) उन बल और शक्ति से युक्त शत्रु सेनाओं को ( वि जिग्ये ) विशेष रूप से जीत लेता है।

**अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत्ते जघ्नुषो भीरगच्छत्।**
**नव च यन्नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि ॥१४॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) सूर्य के समान तेजस्विन्! शत्रुदल के नाश करने वाले राजन्! ( यत् ) यदि ( जघ्नुषः ते ) शत्रु पर प्रहार करते हुए तुझे

( भीः ) भय ( अगच्छत् ) व्याप जाय तो ( अहेः ) मेघ के समान शत्रु पर ( यातारम् ) आक्रमण करने वाले ( कम् ) किसको तू ( अपश्यः ) देखता है ? ( श्येनः न ) जिस प्रकार बाज़ (भीतः) डरकर (नव च नवतिं च ) निन्यानवे अर्थात् असंख्य ( स्रवन्तीः ) नदियों को ( रजांसि ) अनेक लोकों को ( अतरः ) पार कर जाता है उसी प्रकार यदि तू भय करे तो तू भी सैकड़ों नदियों और जनपदों को छोड़ भागे । इसलिए निर्भय होकर शत्रु को मार । जब वीर पुरुष को भय व्यापता है तो वह मैदान छोड़कर बुरी तरह से भागता है । पर प्रबल वीर के सिवाय शत्रु पर आक्रमण भी कौन करेगा यह सोचकर वह धैर्य से युद्ध करे, अधीर न हो ।

इन्द्रो॑ या॒तोऽव॑सितस्य॒ राजा॒ शम॑स्य च शृ॒ङ्गिणो॒ वज्र॑बाहुः ।
सेदु॒ राजा॑ क्षयति चर्षणी॒नाम॒रान्न ने॒मिः परि॒ ता ब॑भूव ॥ १५ ॥

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, सूर्य के समान तेजस्वी ( वज्रबाहुः ) वज्र या शस्त्रास्त्र बल को अपने हाथ में वश किये ( राजा ) दीप्तिमान् राजा ( यातः ) शत्रु पर आक्रमण करके, सफल होकर ( अवसितस्य) युद्ध समाप्त कर देने वाले पराजित दल का और (शमस्य, शान्तियुक्त तपस्वी जनों का और ( शृंगिणः ) हिंसाकारी सेनादल का ( च ) भी ( राजा ) स्वामी होकर रहता है । ( सः इत् ) और वह ही (चर्षणीनाम्) प्रजाओं के बीच (राजा क्षयति) राजा होकर रहता है । (अरान् नेमिः न) चक्र के अरों पर जिस प्रकार लोहे का हाल चढ़ा रहता है उसी प्रकार वह राजा भी ( ताः परि बभूव ) उन समस्त प्रजाओं को चारों ओर से घेरे रहता है । उन पर वश किये रहता है । अथवा—(अवसितस्य) चराचर जगत् का और ( शृंगिणः ) सींगवाले पशुओं का भी वह राजा होता है, वह उन पर वश किये रहता है । अध्यात्म में और परमेश्वर पक्ष में भी इन १५ मन्त्रों की उत्तम योजना है, जो स्थानाभाव से नहीं लिखते ।

इति प्रथमाष्टके द्वितीयोऽध्यायः ।

## अथ तृतीयोध्यायः ।

## [ ३३ ]

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ शेषाः त्रिष्टुभः ।
१४, १५ भुरिक् पंक्तिः । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

**एतायामोप गव्यन्त इन्द्रमस्माकं सु प्रमतिं वावृधाति ।
अनामृणः कुविदादस्य रायो गवां केतं परमावर्जते नः ॥ १ ॥**

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! (आ इत) आओ । (गव्यन्तः) हम अपनी इन्द्रियों, वाणियों और उत्तम स्तुतियों की कामना करते हुए ( इन्द्रम् ) उस परमेश्वर की ( अयाम् ) शरण को प्राप्त हों । वह ( अस्माकं ) हमारे ( प्रमतिम् ) उत्कृष्ट कोटि के बुद्धि और ज्ञान को ( सु वावृधाति ) अच्छी प्रकार बढ़ावे । उसका ( अनामृणाः ) कोई भी मारनेवाला नहीं । वह नित्य, सदा अमर अजातशत्रु है । ( आत् ) और ( अस्य ) इस ( रायः ) ऐश्वर्य ( गवां ) वेदवाणियों और इन्द्रियों के ( परं ) सर्वोच्च ( केतम् ) ज्ञान को ( कुवित् ) बहुत बार ( नः ) हमें ( आ वर्जते ) प्रदान करता है । अथवा ज्ञान को देता और अज्ञान का नाश करता है । राजा के पक्ष में—हम उस गवादि पशुओं और भूमियों की इच्छा करने वाले राजा को प्राप्त करें जो हमारे उत्कृष्ट ज्ञान और ( प्रमतिम् ) शत्रु-स्तम्भक बल को बढ़ावे । वह अजातशत्रु हो । वह अपने ऐश्वर्य और पशु सम्पदा के उत्तम ज्ञानको नाना प्रकार से प्रदान करे । आचार्य पक्ष में—इसी प्रकार हम वेदवाणियों के इच्छुक होकर उत्तम ज्ञानवर्द्धक अहिंसक आचार्य को प्राप्त हों । वह वाणियों के उत्तम ज्ञान को प्रदान करे ।

**उपेदहं धनदामप्रतीतं जुष्टां न श्येनो वसतिं पतामि ।
इन्द्रं नमस्यन्नुपमेभिरर्कैर्यः स्तोतृभ्यो हव्यो अस्ति यामन् ॥२॥**

भा०—( श्येनः ) बाज पक्षी ( न ) जिस प्रकार अपने ( जुष्टाम् )

प्रिय ( वसतिं ) निवासस्थान को जाता है मैं उसी प्रकार ( धनदाम् ) ऐश्वर्य के देने वाले ( अप्रतीतम् ) चक्षु आदि इन्द्रियों से न दीखने वाले, अगोचर, अथवा ( अप्रतीतम् ) अनुपम, (इन्द्रम् ) उस ऐश्वर्यवान् प्रभु को ( उपमेभिः ) उसके गुणों का बहुत अधिक ज्ञान कराने वाले, उपगानों द्वारा वर्णन करने वाले ( अर्कैः ) स्तुति-वचनों से ( नमस्यन् ) प्रभु की नमस्या, वन्दना करता हुआ अतिवेग से विह्वल होकर ( पतामि ) उस प्रभु को प्राप्त होऊं ( यः ) जो ( यामन् ) प्रति प्रहर ( स्तोतृभ्यः ) गुण स्तुति करने वाले भक्तों के (हव्यः अस्ति) सदा स्मरण और स्तुति करने योग्य होता है। राजा के पक्ष में—( अप्रतीतम् ) शत्रुओं से अजेय, धनदाता राजा को मैं प्रिय वसतिस्थान को जाने वाले पक्षी के समान प्राप्त होऊं। नाना उपमाओं से युक्त स्तुतियों से उसकी स्तुति करूं। वह विद्वानों का भी इस ( यामन् ) जगत् या मार्ग में पूज्य होता है।

नि सर्वसेन इषुधीँरसक्त सम॒र्यो गा अ॑जति॒ यस्य॒ वष्टि॑।
चो॒ष्कू॒यमा॑ण इन्द्र॒ भूरि॑ वा॒मं मा प॒णिर्भू॑र॒स्मदधि॑ प्रवृद्ध ॥३॥

भा०—( सर्वसेनः ) समस्त सेनाओं का स्वामी, सब तरफ़ धावा करने वाली सेनाओं का स्वामी राजा जब ( इषुधीन् ) वाणों से भरे तर्कसों को (नि असक्त) बांध लेता है तब ( अर्यः ) प्रजाओं का स्वामी ( यस्य ) जिसकी भी (वष्टि) चाहता है उसकी (गाः) भूमियों और गौ आदि पशुओं को (सम् अजति) खदेड़ ला सकता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् हे ( प्रवृद्ध ) अति अधिक शक्ति में बढ़े हुए! तू ( महि ) बहुत अधिक ( वामम् ) सुन्दर, भोगने योग्य उत्तम धन को ( चोष्कूयमाणः ) प्रदान करने वाला होकर ( अस्मत् ) हमारे लिये ( पणिः ) वैश्य के समान बदले में कुछ चाहने वाला (मा भूः) मत हो। परमेश्वर के पक्ष में—परमेश्वर 'इन' अर्थात् सूर्य से युक्त समस्त जगतों का स्वामी, आत्म से युक्त समस्त प्राणियों का स्वामी होने से 'सर्वसेन' है। व्यापक और ज्ञानवान् होने से 'अर्य' है। वह

जिस पर प्रसन्न होता है उसको ज्ञान वाणियां या प्रकाश की किरणें प्रदान करता है। हे परमेश्वर ! तू बहुत ऐश्वर्य देने वाला ( प्रवृद्ध ) सबसे महान् है। तू हमसे ( पणिः मा भूः ) वैश्य के समान बदले में कुछ नहीं मांगता।

वधीर्हि दस्युं धनिनं घनेनँ एकश्चरन्नुपशाकेभिरिन्द्र ।
धनोरधि विषुणक्ते व्यायन्नयज्वानः सनकाः प्रेतिमीयुः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रु के विनाश करने हारे ! सूर्य के समान तेजस्विन् ! ( उपशाकेभिः ) शक्तिशाली सहायकों सहित ( एकः ) अकेला ( चरन् ) विचरता हुआ भी तू ( घनेन ) आघातकारी, कठिन शस्त्र से ( दस्युम् ) अन्यों को नाश करने वाले चोर डाकू के समान पीड़ाकारी ( धनिनम् ) धनैश्वर्य युक्त मदमत्त पुरुष को भी ( हि ) अवश्य ( वधीः ) विनाश कर। और तू ( विषुणक् ) प्रजा में अधर्म से घुस कर रहने वाले पुरुषों का विनाशक होकर ( ते ) तेरे ( धनोः अधिः ) धनुष के ऊपर ( अयज्वानः ) अयज्ञशील, अधार्मिक, परस्पर संगति न करने वाले, परस्पर द्रोही अथवा राजा को कर न देने वाले, ( सनकाः ) दूसरों के माल स्वयं चाबने वाले, क्षुद्र भोगी पुरुष, स्वल्प ऐश्वर्य वाले, अल्पधनी, दरिद्र ( वि आयन् ) विविध रूप से भी आक्रमण करें तो वे क्षुद्रभोगी लोग ( प्रेतिम् ) मरण को ( ईयुः ) प्राप्त हों।

परा चिच्छीर्षा ववृजुस्त इन्द्रायज्वानो यज्वभिः स्पर्धमानाः ।
प्र यद्दिवो हरिवः स्थातरुग्र निरव्रताँ अधमो रोदस्योः ॥ ५ ॥ १ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तेजस्विन् राजन् ! (यज्वभिः) परस्पर मिलकर संगति से रहने वाले, सुसंगठित, एवं धर्माचारणशील ईश्वरोपासकों से ( स्पर्धमानाः ) स्पर्धा करने वाले, उनके मुक़ाबले पर आने वाले ( अयज्वानः ) असंगठित, अधार्मिक पुरुष सदा ( ते ) तुझसे (शीर्षा) अपने सिर ( पराचित् ववृजुः ) अवश्य परे फेर लेते हैं। वे मुख फेर कर

परास्त हो जाते हैं। हे (हरिवः) अश्व, हस्ती और वीर पुरुषों की सेनाओं के स्वामिन्! हे (स्थातः) युद्ध में स्थिर रहने वाले! तू (दिवः) आकाश से जिस प्रकार वायु मेघों को उड़ा देता है उसी प्रकार हे (उग्र) अति बलवन्! शत्रुओं को कपाने हारे! तू (रोदस्योः) ज़मीन और आस्मान दोनों में से (अव्रतान्) नियम, सदाचार से रहित व्रत या प्रतिज्ञा के पालन न करने वाले शत्रुओं को (निर् अधमः) सर्वथा उड़ा दे, कठोर आज्ञा से दण्डित कर, और आग्नेयास्त्रों के द्वारा विनाश कर दे। इति प्रथमो वर्गः॥

अयुयुत्सन्ननवद्यस्य सेनामयातयन्त क्षितयो नवग्वाः।
वृषायुधो न वध्रयो निरष्टाः प्रवद्भिरिन्द्राच्चितयन्त आयन्॥ ६॥

भा०—जब (नवग्वाः) नवशिक्षित, नई भूमि को प्राप्त, या नई ही चाल, या युद्ध गति, या युद्ध शिक्षा को सीखने वाले (क्षितयः) भूमि निवासी लोग (अनवद्यस्य) अनिन्दनीय, दोषरहित, धार्मिक राजा की सेना से (अयुयुत्सन्) युद्ध करना चाहते हैं और वे (अयातयन्त) प्रयत्न करते या प्रयाण करते हैं और तब (वृषायुधः) बलवान् से लड़ने वाले (वध्रयः न) नपुंसक, बलहीन पुरुषों के समान (निरष्टाः) परास्त होकर (इन्द्रात्) परम ऐश्वर्यवान् शत्रुघाती राजा से (चितयन्तः) भय खाते हुए (प्रवद्भिः) नीचे उतरने वाले, मार्गों से जलधारों के समान (आयन्) बह निकलते हैं, भाग जाते हैं।

त्वमेतान्रुदतो जक्षतश्चायोधयो रजस इन्द्र पारे।
अवादहो दिव आ दस्युमुच्चा प्र सुन्वतः स्तुवतः शंसमावः॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राज्य के स्वामिन्! (त्वम्) तू (एतान्) इन (रुदतः) रोते हुए और (जक्षतः च) खाते पीते और नाना विनोद क्रीड़ाएं करते हुए भोगी विलासी पुरुषों को (रजसः) लोकों से (पारे) परे पृथक् करके (अयोधयः) उनसे युद्ध कर। और (दस्युम्) प्रजा के

नाशक दुष्ट पुरुष को ( दिवः ) अपने प्रखर तेज से ( अव अदहः ) सूर्य के समान जला दे। और ( सुन्वतः ) राज्याभिषेक करने वाले एवं (स्तुवतः) तेरी स्वामी रूप से गुण स्तुति करते और प्रस्ताव करनेवाले विद्वान् गण के ( शंसम् ) उपदेश और उत्तम ख्याति को ( आवः ) ध्यान में रख, उसकी रक्षा कर।

चक्राणासः परीणहं पृथिव्या हिरण्येन मणिना शुम्भमानाः।
न हिन्वानासस्तितिरुस्त इन्द्रं परि स्पशो अदधात्सूर्येण ॥८॥

भा०—( पृथिव्याः ) पृथिवी लोक, उसमें रहने वाले प्रजाजनों के ( परीणहं ) ऊपर शासन प्रबन्ध को ( चक्राणासः ) करने वाले और ( हिरण्येन मणिना ) सुवर्ण के बने मणि के समान हितकारी और मनोहर, शिरोमणि नायक से ( शुम्भमानाः ) शोभा को प्राप्त होकर (हिन्वानासः) वृद्धि को प्राप्त होते हुए (स्पशः) वीर पुरुष भी ( इन्द्रम् ) राष्ट्र के तेजस्वी स्वामी को ( न तितिरुः ) नहीं लांघते, उससे बढ़ नहीं सकते। वह ( स्पशः ) बाधक शत्रुओं को तथा अपने तक पहुंचने वाले जनों को एवं सत्यासत्य के विवेचक पुरुषों के भी ( परि ) ऊपर ( सूर्येण ) अपने सूर्य के समान प्रखर तेज से (अदधात्) शासन करता है, उनको अपने अधीन रखता है।

परि यदिन्द्र रोदसी उभे अबुभोजीर्महिना विश्वतः सीम्।
अमन्यमानाँ अभि मन्यमानैर्निर्ब्रह्मभिरधमो दस्युमिन्द्र ॥९॥

भा०—हे ( इन्द्र ) सूर्य के समान तेजस्विन्! राष्ट्र पालक राजन्! जिस प्रकार सूर्य ( उभे रोदसी ) प्रकाश और पृथिवी, या आकाश और पृथिवी दोनों का अपने महान् सामर्थ्य से भोग या पालन करता है उसी प्रकार जब तू ( महिना ) अपने महान् सामर्थ्य से ( उभे रोदसी ) दोनों राजा और प्रजा वर्गों को ( विश्वतः ) सब प्रकार से ( सीम् ) सुखपूर्वक (अबुभोजीः) भोगता और पालता है तब हे ( इन्द्र ) विद्वन्, ऐश्वर्य वाले

शत्रुहन्तः ! तू ( अमन्यमानान् ) ज्ञानरहित पुरुषों को ( मन्यमानैः ) ज्ञान करने वाले विद्वान् ( ब्रह्मभिः ) वेदों और वेदज्ञ ब्राह्मणों द्वारा ( अभि अधमः ) सब प्रकार से उपदेश कर। और ( दस्युम् ) प्रजा के नाशकारी दुष्ट पुरुष को ( ब्रह्मभिः ) अपने बड़े शस्त्रों से ( निर् अधमः ) नीचे गिरा कर भस्म कर डाल।

**न ये दिवः पृथिव्या अन्तमापुर्न मायाभिर्धनदां पर्यभूवन्।**
**युजं वज्रं वृषभश्चक्र इन्द्रो निर्ज्योतिषा तमसो गा अदुक्षत् ॥१०॥**

भा०—मेघ जिस प्रकार ( दिवः पृथिव्याः अन्तम् आपुः ) आकाश और पृथिवी दोनों के ही सीमा तक नहीं पहुंचते और ( मायाभिः धनदां न परि अभूवन् ) गर्जना, अन्धकार आदि चमत्कार चेष्टाओं से भी धन और अन्न की देनेवाली पृथिवी को या तेजप्रद सूर्य को नहीं ढाँप सकते। उनको (वृषभः) वर्षणशील (इन्द्रः) सूर्य (युजं वज्रं चक्रे) अपने सहायक वज्ररूप वायु, या विद्युत् का प्रयोग करता है और ( ज्योतिषा ) अपने तीव्र तेज से ( तमसः ) अन्धकारमय गहरे मेघ से ( गाः ) वेग से जाने वाली जल-धाराओं को ( निर् अधुक्षत ) सब तरह से गौओं को गवाले के समान दूह लेता है, उनको जलरहित कर देता है। उसी प्रकार ( ये ) जो दुष्ट पुरुष ( दिवः ) न्याय, बल, पराक्रम और तेज और ( पृथिव्याः ) पृथिवी के शासनोपयोगी ( अन्तम् ) सीमा या मर्यादा को (न आपुः) नहीं प्राप्त कर सकते, नहीं पालन करते, और जो ( मायाभिः ) अपनी कुटिल बुद्धियों, कपट छल से भरी चेष्टाओं से ( धनदाम् ) ऐश्वर्य प्रदान करने वाली पृथ्वी या राजशक्ति के भी ( न परि अभूवन् ) अधीन नहीं रहते उनपर (वृषभः) बलवान् ( इन्द्रः ) राष्ट्रपति ( वज्रं ) पापों से निवारक अस्त्र बल का ( युजं चक्रे ) प्रयोग करे। और ( ज्योतिषा )अपने तेज से ( तमसः ) अन्धकार के समान क्लेशदायी शत्रु से ( गाः ) वाणियों, भूमियों और पशु आदि समृद्धियों को ( निर् अधुक्षत् ) सब प्रकार से दोह ले

उनका ऐश्वर्य स्वयं प्राप्त करके शत्रु की भूमियों का सर्वस्व प्राप्त कर ले।
इति द्वितीयो वर्गः ॥

अनु स्वधामक्षरन्नापो अस्यावर्धत मध्य आ नाव्यानाम् ।
सध्रीचीनेन मनसा तमिन्द्र ओजिष्ठेन हन्मनाहन्नभि द्यून् ॥ ११ ॥

भा०—(स्वधाम् अनु) अन्नों के प्रति या पृथिवी के प्रति जिस प्रकार ( आपः अक्षरन् ) जलधाराएं बहती हैं और ( अस्य ) इस मेघ का जल ( नाव्यानाम् ) नावों से पार उतरने योग्य बड़ी २ नदियों के ( मध्ये ) बीच में भी ( आ अवर्धत) सब ओर से आकर बढ़ जाता है, और सूर्य या वायु अपने सहज ( ओजिष्ठेन हन्मना ) अति बलशाली आघातकारी शस्त्र वज्र, विद्युत् से ( अभि द्यून् ) अपने प्रकाशों को ( तम् ) उस मेघ के प्रति (अहन्) ताड़ित करता है उसी प्रकार (आपः) समस्त आप्त जन और धाराओं के समान कुशल सेनाएं ( स्वधाम् अनु ) अपने आप को धारण करने वाले प्रभु को या 'स्व' अर्थात् शरीर को धारण पोषण करने वाले अन्न या वेतनादि वृत्ति की तरफ ( अक्षरन् ) बह आती हैं, चली आती हैं। (अस्य) इस सूर्य के समान प्रतापी राजा या मेघ के समान वर्षणकारी प्रजापालक पुरुष का बल भी ( नाव्यानाम् ) वेग से बहती बड़ी नदियों के समान बलशाली, या आज्ञा पर चलाई जाने योग्य सेनाओं के बीच ( अवर्धत ) बढ़ जाता है। ( इन्द्रः ) शत्रुहन्ता राजा अपने ( सध्रीचीनेन ) साथ चलने वाले ( मनसा ) स्तम्भक सेना बल से और ( ओजिष्ठेन हन्मना ) अति बलशाली, आघातकारी शस्त्र से ( द्यून् ) कुछ दिनों में ही ( तम् ) उस अपने शत्रु को ( अभि हन् ) मुकाबला करके मार लेता है।

न्या विध्यदिलीबिशस्य दृळ्हा वि शृङ्गिणमभिनच्छुष्णमिन्द्रः ।
यावत्तरो मघवन्यावदोजो वज्रेण शत्रुमवधीः पृतन्युम् ॥ १२ ॥

भा०—( इन्द्रः ) जिस प्रकार सूर्य ( इलीविशस्य ) भूमि के गढ़े, ताल, सरोवर, समुद्रादि में विद्यमान जल के ( दृढ़ ) घनी भूत जलों को

(नि अविध्यत्) सब प्रकार से छिन्न भिन्न करता है और जिस प्रकार (इन्द्रः) सूर्य, वायु और विद्युत् (शुष्णम्) पृथिवी के जल को सोखने वाले (शृङ्गिणम्) शिखरों वाले मेघ को (अभिनत्) छिन्न भिन्न करता है इसी प्रकार हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! तू भी (इन्द्रः) भूमि के विजय करने में समर्थ होकर (इलीविशस्य) पृथिवी के भीतर दुर्ग बनाकर छुपने वाले (दृढा) दृढ़ दुर्गों और उसके दृढ़ अंगों को (नि अविध्यत्) खूब बेध। और (शुष्णम्) प्रजा के समस्त सुख-ऐश्वर्यों को सोख लेने वाले रक्तशोषी अत्याचारी (शृङ्गिणम्) हिंसाकारी साधनों से युक्त पुरुष को (वि अभिनत्) विविध प्रकारों से छेद भेद डाल। और हे सेनापते! (यावत् तरः) तेरा जितना बल और (यावत् ओजः) जितना भी पराक्रम हो उस (वज्रेण) क्षात्र बल से तू (पृतन्युम् शत्रुम्) सेना द्वारा युद्ध करने वाले शत्रु को (अवधीः) मार, दण्डित कर।

अभि सिध्मो अजिगादस्य शत्रून्वि तिग्मेन वृषभेणा पुरोऽभेत्।
सं वज्रेणासृजद्वृत्रमिन्द्रः प्र स्वां मतिमतिरच्छाशदानः ॥ १३ ॥

भा०—(अस्य सिध्मः) इस विद्युत् का सब तरफ़ जाने वाला वेगवान् प्रहार जिस प्रकार (शत्रून्) छिन्न भिन्न करने योग्य मेघों तक (अजिगात्) पहुंचता है और जिस प्रकार (तिग्मेन वृषभेण) तीखे सींगों वाले बैल से तट भाग तोड़े जाते हैं, और जिस प्रकार (तिग्मेन) अति तीक्ष्ण (वृषभेण) वर्षानेवाले विजली से (पुरः) अन्तरिक्ष को पूर्ण करने, या प्रजा को पालने, या मेघ को पूरने वाले जलों को (अभेत्) तोड़ डालता है और (इन्द्रः) वह वायु जिस प्रकार (वज्रेण) प्रबल विद्युत् से (वृत्रम्) जल को (सम् असृजत्) नीचे एक साथ घनीभूत करके गिरा देता है उसी प्रकार (अस्य) इस सेनापति का (सिध्मः) सब तरफ जाने वाला सैन्यबल (शत्रून् अजिगात्) शत्रुओं को जा पकड़े और जीत ले। (तिग्मेन वृषभेण) तीखे शस्त्रास्त्र वर्षा करने वाले अस्त्र से (अभेत्) तोड़ दे।

वह ( इन्द्रः ) शत्रुहन्ता ( वज्रेण ) शत्रुवारक क्षात्र-बल से ( वृत्रम् ) बढ़ते शत्रु को ( सम् असृजत् ) ला भिड़ावे और ( शाशदानः ) निरन्तर उसका घात करता हुआ (स्वाम् मतिम्) अपनी आज्ञा, घोषणा और स्तम्भन शक्ति या सेना को घूंसे या शस्त्र के समान (प्र अतिरत्) खूब आगे बढ़ा दे।

आवः कुत्समिन्द्र यस्मिञ्चाकन्प्रावो युध्यन्तं वृषभं दशद्युम्।
शफच्युतो रेणुर्नक्षत द्यामुच्छ्वैत्रेयो नृषाह्याय तस्थौ ॥ १४ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) सूर्य और वायु के समान तेज और बल से युक्त राजन्! तू ( यस्मिन् ) जिसके बल पर ( युद्धयन्तं ) युद्ध करने वाले (दशद्युम्) दशों दिशाओं में चमकने, या विजय करने में समर्थ और (वृषभम्) बलवान् एवं शस्त्रवर्षण में समर्थ वीर पुरुषगण को ( प्र अवः ) अच्छी प्रकार रक्षा करता है तू उस (कुत्सम्) शत्रुओं को काट गिरानेवाले, शत्रु पर दूर से शस्त्रास्त्र फेंकने वाले वज्र या महास्त्र को ( चाकन् ) इच्छा पूर्वक ( आवः ) प्राप्त कर, रख। ( शफच्युतः ) अश्वों के खुरों से उठाया ( रेणुः ) धूलिपटल (द्याम् नक्षत) आकाश में फैल जाय, तो भी (श्वैत्रेयः) श्वेतवर्ण के यश, या देनेवाली वसुन्धरा, या स्वतः श्वेत कीर्ति का इच्छुक राजा तो ( नृषाह्याय ) शत्रु के नेतागणों के पराजय करने के लिए मैदान में ( तस्थौ ) खड़ा रहता है। मेघ-सूर्य पक्ष में—हे सूर्य! तू उग्र रूप तीक्ष्ण प्रकाश को धारण करता है जिसके बल पर दशों दिशाओं में चमकने वाले। वर्षणशील योद्धा के समान युद्ध करने वाले मेघ की या विद्युत् की भी रक्षा करता है। जब गौ आदि पशुओं से उठी धूल आकाश में व्यापती है तब भी वह सूर्य ही मनुष्यों के हित के लिए आकाश में विराजता है।

आवः शमं वृषभं तुग्र्यासु क्षेत्रजेषे मघवञ्छ्वित्र्यं गाम्।
ज्योक् चिदत्र तस्थिवांसो अक्रञ्छत्रूयतामधरा वेदनाकः ॥१५॥

भा०—हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन्! इन्द्र! राजन्! जिस प्रकार सूर्य ( तुग्र्यासु ) ग्रीष्म की दुःखदायी, प्राणियों का नाश करने वाली दशाओं

में, या जलों के निमित्त ( शमं ) शान्तिदायक ( वृषभम् ) जल के वर्षाने वाले मेघ को ( आ अवः ) प्राप्त कराता है उसी प्रकार तू ( तुग्र्यासु ) दुष्ट पुरुषों द्वारा प्राप्त होने वाले बध, बन्धन आदि पीड़ाकारी अत्याचारों के होने पर ( शमं ) उनको शान्त करने वाले पुरुष को ( प्र अवः ) भेज। हे राजन् ! ( क्षेत्रजेषे ) खेत के हलने के लिए किसान जिस प्रकार ( श्वित्र्यं ) पृथ्वी के हितकारी ( गाम् ) वलीवर्द को खेत में ( प्र अवः ) लाता है और सूर्य जिस प्रकार ( क्षेत्रजेषे ) खेतों में अन्न उपजाने के निमित्त (श्वित्र्यं गाम् आ अवः) भूमि के हितकारी किरणों को फेंकता है उसी प्रकार तू भी ( क्षेत्रजेषे ) रणक्षेत्रों के विजय के लिए ( श्वित्र्यं ) भूमि लोक के हितजनक ( गाम् ) उसके प्रबन्ध और शासन के भार उठाने में समर्थ नरपुंगव को (आ अवः) भेज। (अत्र) इस भूमि पर ( तस्थिवांसः ) स्थिर रूप से रहनेवाले प्रजाजन ( ज्योक् ) चिरकाल तक (अक्रन्) अपनी कृषि व्यापार आदि कार्य करे। हे राजन् ! तू (शत्रूयताम्) शत्रुता का आचरण करने वाले शत्रुओं और द्रोहियों को ( अधरा वेदना ) निकृष्ट कोटि की अति कष्टदायी पीड़ायें ( अकः ) दे। इति तृतीयो वर्गः।

## [ ३४ ]

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, ६ विराड् जगती २, ३, ७, ८ निचृज्जगती। ५, १०, ११ जगती। ४ भुरिक् त्रिष्टुप्। १२ निचृत् त्रिष्टुप्। ९ भुरिक् पंक्तिः। द्वादशर्चं सूक्तम्॥

**त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना।**
**युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः॥ १॥**

भा०—हे ( अश्विनौ ) सूर्य, चन्द्र और दिन रात्रि के समान, विद्या और अधिकारों में व्यापक ! हे ( नवेदसा ) किसी प्रकार के ज्ञान और ऐश्वर्य को शेष न रखनेवाले, पूर्णविद्या और ऐश्वर्यवान् ! ( अद्य )

आज के समान सदा आप दोनों (नः) हम प्रजाजन के हित के लिए ( त्रिः चित् ) तीनों वार, तीनों प्रकार से ( भवतम् ) अधिक सामर्थ्यवान् होओ। प्रथम, ( वाम् ) तुम दोनों का (यामः) गमन या यात्रा करने का साधन रथ आदि ( विभुः ) विशेष शक्ति से युक्त हो। ( उत ) और (रातिः) तुम दोनों का देने का सामर्थ्य भी बहुत अधिक हो। ( हिम्या-इव वाससः ) रात्रि जिस प्रकार दिन के साथ खूब अनुरूप होकर रहती है अथवा वस्त्रका जिस प्रकार शीत वेला के साथ सम्बन्ध और उपयोग है उसी प्रकार ( युवोः ) तुम दोनों के ( यन्त्रम् ) यंत्र, नियम-साधन एक दूसरे के अनुरूप हों। आप दोनों (मनीषिभिः) विद्वान् पुरुषों द्वारा (अभि-आयंसेन्या) एक दूसरे को लक्ष्य करके नियम में बँधनेवाले ( भवतम् ) होकर हो। स्त्री पुरुषों के पक्ष में—हे (नवेदसा) पृथक् २ धन न रखनेहारे अथवा एक दूसरे से विशेषरूप से पूर्व अपरिचित दोनों एक ही ऐश्वर्यवाले! (अश्विना) हे एक दूसरे में मन, वाक्, काय तीनों प्रकार से व्यापक रहने वालो! तुम दोनों ( त्रिः ) तीनों प्रकार से ( नः ) हमारे बीच ( अद्य ) आज ( मनीषिभिः ) विद्वानों द्वारा ( अभि-आयंसेन्या ) एक दूसरे के सन्मुख होकर विवाह द्वारा बद्ध ( भवतम् ) हो जाओ। ( वाँ यामः ) तुम दोनों का यात्रा का साधन, रथ और देह परिमाण ( विभुः ) विशेष सामर्थ्यवान् हो। ( रातिः ) परस्पर के दान प्रतिदान और प्रेम भी ( विभुः ) विशेषरूप से प्रबल और महत्वपूर्ण हो। ( युवोः ) तुम दोनों का (यन्त्रम्) यन्त्र, शरीरांग अथवा नियमपूर्वक वर्तने योग्य ब्रह्मचर्यादि व्रत या नियम बन्धन ( वाससः हिम्या इव) वस्त्र के लिए शीत के समान अति उपयोगी, सुखप्रद अथवा ( वाससः = वासरस्य ) दिन के साथ रात्रि के समान एक दूसरे की अवधि बनाने वाला हो। विद्वान् शिल्पियों के पक्ष में—वे पूर्ण विद्य हों। उनका रथ, ऐश्वर्य बड़ा और यन्त्रकला परस्पर अनुरूप हों। विद्वान्‌गण उनका सत्संग और साक्षात् करें।

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः ।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा

भा०—( मधुवाहने रथे ) मधुर, सुखप्रद अन्न आदि और मधुर सुख और वेग आदि को धारण करनेवाले रथ में ( त्रयः पवयः ) जिस प्रकार वज्र के समान कठोर और विद्युत् के देने वाले तीन पवि, चक्र या यन्त्र हों । और उसमें ( विश्व इत् ) सभी ही ( सोमस्य ) प्रेरक बल वायु की ही ( वेनाम् ) वेगवती, गमन करने वाली शक्ति (विदुः) विद्वान् लोग बतलाते हैं । उसमें ( आरभे ) आलम्बन या आधार के लिए (त्रयः) तीन ( स्कम्भासः ) खम्भे, या दण्ड (स्कभितासः) लगाये गये हों । वे उस रथ द्वारा (अश्विना) वेगवान् यन्त्रकला के विज्ञ विद्वान् दोनों ( त्रिः दिवा ) तीन वार दिन में और ( त्रिः नक्तं ) तीन वार रात्रि में ( याथः ) जाते हैं । ठीक उसी प्रकार गृहस्थ पक्ष में—स्त्री और पुरुष दोनों का (रथे) रमण साधन यह देहरूप रथ आनन्दप्रद होने से 'मधुवाहन' है । उसमें मन, वाणी और काय ये तीनों बलवान् वज्र हैं । उस (सोमस्य) वीर्य की (वेनाम् अनु) समस्त कान्ति या तेज को धारण करने के लिए समस्त विद्वान् उपदेश करते हैं । ( आरभे ) शरीर में आलम्बन या आधार के लिए तीन ही स्कन्ध हैं शरीर, इन्द्रिय और मन । इनके द्वारा स्त्री पुरुष दोनों (दिवा नक्तं त्रिः त्रिः याथः ) दिन और रात में तीन तीन वार अर्थात् बार २ एक दूसरे को प्राप्त हों । दिन रात दोनों एक दूसरे के सहायक हों । अथवा—दोनों राजा रानी, या रथी सारथि आनन्दप्रद तीन हाल या चक्र वाले रथ में बैठकर चन्द्र के समान कांति धारें । उसमें तीन खम्भे हों । उसमें वे वार बार बैठकर आयें जायें ।

समाने अहन्त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम् ।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम् ।

भा०—हे (अवद्यगोहना) एक दूसरे के दोषों, और निन्दनीय कार्यों

को आच्छादित या गोपन करनेवाले स्त्री पुरुषो ! ( समाने अहनि) एक ही दिन में आप दोनों ( त्रिः त्रिः ) तीन तीन वार, अर्थात् वार वार (मधुना) मधुर गुणवाले जल से, अन्न से, बल से और मधु के समान मधुर गुण से ( यज्ञं ) यज्ञ, आत्मा, शरीर और मन को ( मिमिक्षतम् ) नित्य सेचन करो । हे ( अश्विना ) ऐश्वर्यों के भोक्ता, परस्पर प्रेमी स्त्री पुरुषो! (यूयम्) तुम दोनों ( अस्मभ्यम् ) हमारे हित के लिए (दोषाः उषः च) दिन और रात (वाजवतीः इषः) बलयुक्त अन्न, वेगवती शुभ कामनाओं को और ज्ञान वाली प्रेरणाओं को (त्रिः) तीन वार, वार वार (पिन्वतम्) सेचन करो । उनको पूर्ण करो । राजा मन्त्री, रथी सारथि के पक्ष में—वे दोनों एक दूसरे के दोषों, मर्मों त्रुटियों को आघात होने से बचावें । वे (यज्ञं) प्रजापति पद या राज्यपद को मधुर सौम्यभाव से युक्त करें । (वाजवतीः इषः ) बलवती सेनाओं को भीतर बाहर और सीमा पर रक्खें। शिल्पीगण यन्त्र के दोष या मर्म की रक्षा करें, शिल्प यन्त्र (मधुना) घृत या स्निग्ध पदार्थ तेल आदि से बार बार सींचें । वेग वाली (इषः) प्रेरणा देने वाली शक्तियों को लगावें ।

त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम् ।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम् ।

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( वर्तिः ) व्यवहार करने और चलने योग्य उत्तम मार्गों को (त्रिः यातम्) तीन वार अर्थात् वार २ जाओ आओ । ( अनुव्रते जने ) अपने अनुकूल नियम धर्म पालन करने वाले उत्तम बुद्धि, हित आदि के उत्पादक आचार्य आदि के अधीन ( त्रिः ) वार वार रहो । ( सु-प्राव्ये ) सुखपूर्वक उत्तम रीति से रक्षा करने वाले राजा, या उत्तम रीति से प्राप्त करने, या उत्तम ज्ञान प्राप्त करने योग्य आचार्य के अधीन रहकर ( त्रिः ) तीन तीन वार अर्थात् वार वार ( शिक्षतम् ) ज्ञान का अभ्यास करो । ( नान्द्यं ) आनन्दप्रद, सुख सामग्री को बढ़ाने वाले कार्य को, या ऐश्वर्य पुत्रादि को भी ( त्रिः वहतम् ) वार वार प्राप्त

करो। या पति पत्नी को तीन वार प्रदक्षिणा द्वारा उद्वाह करो। तुम दोनों (त्रिः) तीन वार, वार वार ( अस्मे ) हमें ( अक्षरा इव ) अक्षय जलों के समान ( पृक्षः पिन्वतम् ) अन्न आदि पदार्थ प्रदान करो।

त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस्त्रिष्ठं वां सूरे दुहितारुहद्रथम्।

भा०—हे ( अश्विना ) विद्यावान् स्त्री पुरुषो ! ( युवं ) आप दोनों ( नः ) हमारे लिए ( रयिम् ) ऐश्वर्य को भी (त्रिः) तीन तीन वार, वार वार ( वहतम् ) प्राप्त कराओ। (देवताता) यज्ञों और विजय तथा विद्वानों के लिये ज्ञान और यज्ञादि कार्यों में भी ( त्रिः ) वार वार ऐश्वर्य लगाओ। ( उत ) और ( धियः ) बुद्धियों और कर्मों को भी (त्रिः अवतम् ) शरीर, मन, प्राण तीनों तरह से रक्षा करो। ( सौभगत्वं ) सुख से भजन करने योग्य परमेश्वर की भक्ति (त्रिः) श्रवण, मनन, निदिध्यासन द्वारा और सुखपूर्वक सेवने योग्य ऐश्वर्य का प्राप्ति, रक्षण और वर्धन द्वारा भोग करो। ( उत श्रवांसि त्रिः ) और श्रवण करने योग्य वेद शास्त्रादि ज्ञानों और ख्याति लाभ करने वाले ऐश्वर्यों को भी उक्त तीनों प्रकारों से तीन वार प्राप्त करो। ( सूरेः दुहिता ) सूर्य के पुत्री प्रभा या क्रान्ति जिस प्रकार दिन और रात्रि के बने प्रभात मध्याह्न और सायं नाम तीन आधारों पर स्थित रथ पर आरूढ़ होती है उसी प्रकार ( सूरे ) सूर्य के समान तेजस्वी राजा की (दुहिता) सब कामों को पूर्ण करनेवाली प्रजा भी (वाम्) तुम राजा मन्त्री दोनों के ( त्रिस्थं ) मन्त्र, धन और बल इन तीनों पर आश्रित राज्यैश्वर्य पर (आरुहत् ) सुख से तीन चक्रों वाले रथ पर नव-वधू के समान विराजे। स्त्री पुरुषों के पक्ष में—तेजस्वी विद्यावान्, विद्वान् की (दुहिता) सब फलों के देनेवाली वेद विद्या धर्म, अर्थ, काम इन तीन पर स्थित होकर ( वां रथे ) आप दोनों स्त्री पुरुषों के रमण योग्य गृहस्थ रूप रथ के आश्रय पर रहे।

त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः ।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती ॥ ६ ॥

भा०—हे (अश्विना) विद्या और ज्ञान प्रकाश में पारंगत विद्वानों! एवं रथी सारथी के समान स्त्री पुरुषो! आप दोनों (अद्भ्यः) जलों से प्राप्त करके (पार्थिवानि) पृथ्वी पर उगे वनोषधि से और (दिव्यानि) तेजोमय धातु, लोह स्वर्णादि से बने (भेषजा) नाना रोग निवारक पदार्थों को (नः) हमारे उपकार के लिए (त्रिः त्रिः त्रिः उ दत्तम्) तीन तीन वार अर्थात् वार वार प्रदान करें। (शंयोः) शान्ति सुख के चाहने वाले (ममकाय) मेरे निज बन्धु (सूनवे) पुत्र को (ओमानं) रक्षाकारी उपाय प्रदान करो। और हे (शुभः पती) शुभ गुणों और आभरणों के धारण करनेवाले स्त्री पुरुषो! (त्रिधातु) तीन धातु वात, पित्त और कफ के बने (शर्म) सुखद साधन देह को, या तीन धातु के बने रोगनाशक आभूषण (वहतं) धारण करो। इति चतुर्थो वर्गः ॥

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम् ।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम् ७

भा०—हे (अश्विना) जल और अग्नि के समान शान्ति और तेज से युक्त स्त्री पुरुषो! (यजता) यज्ञ करनेवाले, परस्पर संगत हुए हुए आप दोनों (दिवेदिवे) प्रतिदिन (त्रिधातु) तीन धातुओं से बने शरीर को (पृथिवीम्) पृथ्वी पर ब्रह्मचारी रहकर (त्रिः) तीनवार, या तीन दिनोंतक (अशायतम्) शयन करो। हे (नासत्या) कभी असत्य आचरण न करने वाले तुम दोनो! (आत्मा इव) आत्मा जिस प्रकार एक देह से अन्य देहों में और (वातः) वायु जिस प्रकार एक स्थान से अन्य स्थानों में स्वयं चला जाता है उसी प्रकार (परावतः) दूर दूर तक के देशों को (रथ्या) रथ पर चढ़कर (तिस्रः) तीनों लोक अर्थात् उच्च, नीच और सम, अथवा जल, पर्वत और स्थल, तीनों प्रकार के भूमि-भागों में (स्वसराणि) दिन रात स्वयं चलने वाले यानों द्वारा (गच्छतम्) आओ। अथवा (स्व-

सराणि) यान आदि रथ सब दिन चलाओ। स्त्री पुरुषों के प्रथम तीन रात्रि व्रत-पूर्वक भूमि शयन की विधि गृह्यसूत्रों में देखो। अक्षारलवणाशिनौ ब्रह्मचारिणावधःशायिनौ स्याताम्। अत ऊर्ध्वं त्रिरात्रं द्वादशरात्रं। संवत्सरं वा। आश्व० गृ० सू० अ० ९। १०—१२॥

**त्रिर॑श्विना॒ सिन्धु॑भिः स॒प्तमा॑तृभि॒स्त्रय॑ आहा॒वास्त्रे॒धा ह॒विष्कृ॒तम्। ति॒स्रः पृ॑थि॒वीरु॒परि॑ प्र॒वा दि॒वो नाकं॑ रक्षेथे॒ द्युभि॑र॒क्तुभि॒र्हि॑तम् ॥८॥**

भा०—हे (अश्विना) सूर्य और वायु या चन्द्रमा, रथी सारथी के समान तुम दोनों (सप्तमातृभिः) पृथिवी, अग्नि, वायु, सूर्य, विद्युत्, आकाश आदि सात सूक्ष्म तत्वों से पैदा होने वाले (सिन्धुभिः) नदियों के समान निरन्तर बहने वाले, सूक्ष्म पदार्थों द्वारा (त्रिः) तीनों वार करके (हविः) आहुति देने योग्य अन्नादि पदार्थ को (कृतम्) सम्पादित करो। (त्रयः) उनके लिए तीन (अहावाः) आहुति योग्य पात्र हों। और उन अन्नादि औषधियों को (द्युभिः अक्तुभिः) दिनों और रातों में अर्थात् दिन रात (तिस्रः पृथिवीः उपरि) भूमि, अन्तरिक्ष और आकाश तीनों स्थानों पर (प्रवा) अच्छी प्रकार पहुंचनेवाले आप दोनों (दिवः) प्रकाशमय किरणों की और (हितम्) स्थित (नाकम्) अति सुखप्रद आकाश की (रक्षेथे) रक्षा करते रहो।

**क्व॑ त्री च॒क्रा त्रि॒वृतो॒ रथ॑स्य॒ क्व॑ त्र॒यो ब॒न्धुरो॒ ये सनी॑ळाः। क॒दा योगो॑ वा॒जिनो॒ रास॑भस्य॒ येन॑ य॒ज्ञं ना॑सत्योपया॒थः ॥९॥**

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्यस्वभाव वालो! आप लोग (येन) जिसके द्वारा (यज्ञं) यज्ञ या गन्तव्य मार्ग को (उपयाथः) जाते हो। उस (त्रिवृतः रथस्य) त्रिवृत रथ के (त्री चक्रा क) तीन चक्र कहां लगे हैं? और (ये) जो (त्रयः) तीन (सनीळाः) एक ही आश्रय में जुड़े हुए (बन्धुराः) बन्धन दण्ड हैं वे (क) कहां लगे हैं। और (वाजिनः)

वेग वाले ( रासभस्य ) अति शब्दकारी यन्त्राग्नि के समान या अश्व के समान सञ्चालक शक्ति का ( योगः कदा ) योग कब हुआ ? ये सभी प्रश्न विशेष जानने योग्य हैं। अध्यात्म में—अग्नि, वायु और तेज इन तत्वों के त्रिवृतीकरण द्वारा बना देह रूप रथ है। उसके वात, पित्त, कभ तीन चक्र हैं। सत्व, रजस, तमस् तीन दण्ड हैं। अथवा मन, वाक्, प्राण तीन दण्ड हैं। इसमें मुख्य प्राण वेगवान् अश्व है। ये सब कहां २ स्थित हैं? और प्राण का देह में कब योग होता है ? ये सब ज्ञातव्य बातें हैं। इसी रथ के द्वारा स्त्री पुरुष 'यज्ञ' रूप परमेश्वर के परम पद तक साधना और तपस्या द्वारा पहुंचते हैं।

**आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः।**
**युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति ॥१०॥**

भा०—हे ( नासत्यौ ) कभी असदाचरण न करने वाले, सत्य स्वभाव से युक्त स्त्री पुरुषो ! ( आ गच्छतम् ) आप दोनों आदरपूर्वक आओ। (हविः) अन्न आदि ग्रहण योग्य पदार्थ (हूयते) अग्नि में आहुति किया जावे। और आप दोनों ( मधुपेभिः ) मधु अर्थात् उत्तम अन्न और जल को पान और उपभोग करने वाले ( आसभिः ) मुखों द्वारा ( मध्वः ) मधुर अन्न का (पिबतम्) उपभोग करो। (सविता) सर्वोत्पादक परमेश्वर और तुम्हारा आचार्य ( उषसः पूर्वम् ) उषाकाल के समान, या तापकारक यौवनकाल के पूर्व ही ( युवोः ) तुम दोनों के ( चित्रं ) अति अद्भुत ( घृतवन्तम् ) घृतादि स्निग्ध या तेजस्वी पदार्थों से पुष्ट ( रथम् ) रथ के समान बने देह को ( ऋताय ) यज्ञ के समान पवित्र कार्य, ब्रह्मचर्य और सत्य ज्ञान को प्राप्त करने के लिये ( इष्यति ) प्रेरित करे।

**आ नासत्या त्रिभिरेकादशैरिह देवेभिर्यातं मधुपेयमश्विना।**
**प्रायुस्तारिष्टं नी रपांसि मृक्षतं सेधतं द्वेषो भवतं सचाभुवा ॥११॥**

भा०—हे ( नासत्या ) स्त्री पुरुषो ! आप दोनों वर्ग ( त्रिभिः एका-

दशैः ) तेंतीस ( देवेभिः ) दिव्य गुणों, सामर्थ्यों से युक्त एवं हृष्ट पुष्ट होकर ( मधुपेयम् ) मधुर गुणों से युक्त, उपभोग योग्य नाना पदार्थों और सुखों से युक्त यौवन को ( यातम् ) प्राप्त करो। और ( आयुः ) अपने जीवन को ब्रह्मचर्य, वीर्यरक्षा आदि साधनों से ( प्र तारिष्टम् ) खूब बढ़ाओ। और ( रपांसि ) समस्त पाप कृत्यों को ( निर्मृक्षतम् ) सर्वथा दूर करो, धो डालो। (द्वेषः) द्वेष करने वाले, विरोधी, अप्रिय पदार्थों को (निःषेधतम्) दूर करो, उनके उपभोग, सहवास आदि का निषेध या वर्जन करो। और ( सचाभुवा ) दोनों परस्पर एक साथ मिल कर एकत्र प्रेम से ( भवतम् ) रहो। ( त्रिभिः एकादशैः ) तीन दिनों में समुद्र और ११ दिनों में भूगोल को पार करो, [इति दया०]। देह ही ३३ देवों की अयोध्यापुरी है इसका वर्णन अथर्व० में देखो। राजा प्रजा, या राजा और मन्त्री दोनों भी ( मधुपेयम् ) बलपूर्वक उपभोग्य राष्ट्र को ३३ शासकों सहित प्राप्त हों। अपना बल बढ़ावें। राष्ट्र से पापों और शत्रुओं को दूर कर, एकत्र होकर रहें।

**आ नो॑ अश्विना त्रि॒वृता॒ रथे॑ना॒र्वाञ्चं॑ र॒यिं व॑हतं सु॒वीर॑म्।**
**शृ॒ण्वन्ता॑ वा॒मव॑से जोहवीमि वृ॒धे च॑ नो भवतं॒ वाज॑सातौ ॥१२॥५॥**

भा०—हे ( अश्विना ) नाना सुखों के भोगने हारे, एक दूसरे में हृदय से व्याप्त स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( नः ) हमारे बीच में ( त्रिवृता रथेन ) चित्रक रथ के समान मन, वाणी और प्राण तीन बल से चलने वाले, रमण साधन, रथ रूप देह से ( सुवीरं रयिम् ) उत्तम वीरों से युक्त ऐश्वर्य के समान उत्तम प्राणों से युक्त वीर्य को ( वहतं ) धारण करो। (शृण्वन्तौ) नाना विद्याओं का श्रवण करते हुए ( वाम् ) तुम दोनों को मैं, आचार्य ( अवसे ) ज्ञान की वृद्धि के लिये ( जोवहीमि ) उपदेश करता हूं। तुम दोनों ( नः ) हम लोगों के बीच ( वाजसातौ ) ज्ञानप्राप्ति, बल-प्राप्ति और ऐश्वर्यप्राप्ति के कार्य में, सन्तानों और शुभ कार्यों द्वारा (नः वृधे) हमें बढ़ाने के लिये (भवतम्) सदा तत्पर रहो। इति पञ्चमो वर्गः ॥

[ ३५ ]

हिरण्यस्तूप आङ्गिरस ऋषिः ॥ देवताः—१ अग्निर्मित्रावरुणौ रात्रिः सविता । २—११ सविता ॥ छन्दः—१ विराड् जगती । ६ निचृज्जगती । २, ५, १०, ११ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ४, ६ त्रिष्टुप् । ७, ८ भुरिक् पंक्तिः । एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**ह्वया॑म्य॒ग्निं प्र॑थ॒मं स्व॒स्तये॒ ह्वया॑मि मि॒त्रावरु॑णावि॒हाव॑से ।**
**ह्वया॑मि॒ रात्रीं॒ जग॑तो नि॒वेश॑नीं॒ ह्वया॑मि दे॒वं स॑वि॒तार॑मू॒तये॑ ॥ १ ॥**

भा०—( स्वस्तये ) सुखपूर्वक समस्त जगत् के विद्यमान रहने के लिये ( प्रथमम् ) सबसे पूर्व विद्यमान ( अग्निम् ) सर्वज्ञानी, परमेश्वर की ( ह्वयामि ) मैं स्तुति करता हूं । ( इह ) इस जगत् में ( अवसे ) रक्षा, सत्य ज्ञान और जीवन रक्षा के लिये ( मित्रावरुणौ ) सबके प्रति स्नेही और दुःखों के दूर करने वाले प्राण और अपान दोनों के समान परमेश्वर के स्नेहमय और दुष्ट नाशक दोनों स्वरूपों की (ह्वयामि ) स्मरण या स्तुति करता हूं । ( जगतः ) जगत् को ( निवेशनी ) अपने भीतर रखने वाली ( रात्रिम् ) रात्रि के समान सुखपूर्वक निद्रा में सुलाने वाली, सकल सुखदायिनी उस परमेश्वरी शक्ति की ( ह्वयामि ) स्तुति करता हूं । (ऊतये) सबकी रक्षा और ज्ञान के लिये भी ( सवितारम् ) सर्वोत्पादक ( देवम् ) सर्वप्रकाशक, सर्वद्रष्टा, सर्वसुखदाता परमेश्वर ही सर्व प्रथम, सर्वाग्रणी होने से 'अग्नि' है। स्नेह और दुष्ट वारण द्वारा रक्षा करने से वही 'मित्र' और 'वरुण' कहाता है । जगत् को अपने भीतर लेने से परमेश्वर ही 'रात्री' कहाता है । ज्ञानप्रद होने से वही 'सविता' और 'देव' कहाता है ।

**आ कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ वर्त॑मानो निवे॒शय॑न्न॒मृतं॒ मर्त्यं॑ च ।**
**हि॒र॒ण्यये॑न सवि॒ता रथे॒ना दे॒वो या॑ति॒ भुव॑नानि॒ पश्य॑न् ॥२॥**

भा०—(सविता) काल रूप से सबका उत्पादक, सूर्य (देवः) सबका प्रकाशक और वृष्टि, ताप आदि का देने वाला सूर्य जिस प्रकार स्वयं

( कृष्णेन ) आकर्षण बल से युक्त, अथवा कृष्ण, प्रकाश रहित पृथिवी आदि ( रजसा ) लोक समूह के साथ ( आवर्त्तमानः ) भ्रमण करता हुआ और ( अमृतम् ) वृष्टि के द्वारा जल और प्राण, चैतन्य और ( मर्त्यम् ) मरणधर्मा शरीरधारी प्राणियों को ( निवेशयन् ) स्थापित करता हुआ ( हिरण्येन ) सर्व लोक-हितकारी और मनोहर, अथवा तेजोयुक्त ( रथेन ) अति वेगवान् पिण्डसे ( भुवनानि ) समस्त उत्पन्न लोकों और प्राणियों को ( पश्यन् ) देखता हुआ जाता है उसी प्रकार परमेश्वर ( कृष्णेन रजसा वर्त्तमानः ) सर्वाकर्षक लोकसमूहों के साथ उनमें व्यापक रह कर उनमें (अमृतं मर्त्यं च ) अमृत मोक्ष-सुख और सत्य ज्ञान तथा मर्त्य, मरने वाले प्राणियों को व्यवस्थित करता हुआ ( हिरण्ययेन रथेन) अति आनन्ददायक, तेजोमय, रस स्वरूप से समस्त लोकों को अन्तर्यामी रूप से साक्षात् करता हुआ, सुवर्ण के रथ पर स्थित राजा के समान ( याति ) हमें प्राप्त है। राजा सुवर्ण के रथ पर बैठ कर आगे घनी धूली सहित प्रयाण करता है। अमृत, सन्तति या अन्नादि मर्त्य, प्राणिगण सबकी व्यवस्था करता हुआ निरीक्षण करता जाता है।

**याति॑ दे॒वः प्र॒वता॒ यात्यु॒द्वता॒ याति॑ शु॒भ्राभ्यां॑ यज॒तो हरि॑भ्याम्।**
**आ दे॒वो या॑ति सवि॒ता प॑रा॒वतोऽप॒ विश्वा॑ दुरि॒ता बाध॑मानः ॥ ३ ॥**

भा०—( देवः ) सुखप्रद वायु के समान राजा या शूर पुरुष ( प्रवता ) नीचे के मार्गों से भी ( याति ) जाता है। वह ( उद्वता याति ) ऊपर के मार्ग से भी जाता है। वह ( यजतः ) सत्संग करने योग्य चन्द्र सूर्य के समान (शुभ्राभ्याम् हरिभ्याम् ) वेगवान् गतिशील काल के अवयव दिन और रात्रि तथा उत्तरायण, दक्षिणायन के समान ( शुभ्राभ्याम् ) अतिदीप्तियुक्त, श्वेत, सुन्दर (हरिभ्याम्) घोड़ों से (याति) प्रयाण करता है। ( सविता देवः ) सूर्य के समान तेजस्वी ( देवः ) राजा ( विश्वा दुरिता ) सब दुःखों और दुष्ट पुरुषों को (अप बाधमानः) दूर करता हुआ ( परावतः )

दूर और पास भी सर्वत्र (आ याति) प्राप्त हो। इसी प्रकार परमेश्वर नीचे ऊपर, दूर समीप, सर्वत्र प्रकाशस्वरूप होकर अपने आप गुणों से युक्त ज्ञानी और कर्म दो प्रकार के निष्ठ साधकों द्वारा ( यजतः ) उपास्य है। और वह सब दुष्ट कार्यों को दूर करता हुआ हमें साक्षात् हो।

अभीवृ॑तं कृश॑नैर्वि॒श्वरू॑पं॒ हिर॑ण्यशम्यं यज॒तो बृ॒हन्त॑म् ।
आस्था॒द्रथं॑ सवि॒ता चि॒त्रभा॑नुः कृ॒ष्णा रजां॑सि॒ तवि॑षीं॒ दधा॑नः ॥४॥

भा०—( यजतः ) प्रकाशों का देने हारा ( सविता ) सूर्य जिस प्रकार ( कृशनैः ) जलों को अति सूक्ष्म करने में समर्थ किरणों से ( अभी वृतम् ) व्याप्त ( विश्वरूपम् ) सब तेजों, कान्तियों को धारण करने वाले ( हिरण्यशम्यम् ) सुवर्ण आदि धातुओं तथा उच्च ज्योतियों को भी शान्त कर देने वाली प्रखर शक्तियों से युक्त ( वृहन्तम् रथम् ) बड़े भारी गतिशील पिण्ड में ( आ अस्थात् ) स्थित है। वह ( चित्रभानुः ) विचित्र तेजों से युक्त होकर ( कृष्णा ) प्रकाश से रहित और आकर्षण गुण वाले ( रजांसि ) लोकों को और स्वयं भी ( तविषी ) बड़ी भारी शक्ति को धारण किये रहता है। उसी प्रकार (यजतः सविता) दानशील, पूजनीय, सूर्य के समान तेजस्वी राजा ( कृशनैः अभीवृतम् ) शत्रुओं को पीड़न करने वाले एवं लोहमय शस्त्रधारियों से घिरे हुए ( विश्वरूपम् ) सब प्रकार के गज, अश्व, पदाति आदि को अपने वश करने वाले ( हिरण्यशम्यम् ) सुवर्ण या लोह की बनी शङ्कु या कीलों से जड़े (वृहन्तं रथं) बड़े विशाल रथ पर (आ अस्थात्) चढ़े। और ( चित्रभानुः ) विविध कान्तियों से युक्त होकर ( कृष्णा रजांसि ) अन्धकार करने वाले धूलि पटलों या कर्षणशील अन्नोत्पादक प्रजा जनों को और ( तविषीम् ) बलवती सेना को (दधानः) धारण पोषण करने वाला हो।

वि जना॑ञ्छ्या॒वाः शि॑ति॒पादो॑ अख्यन्रथं॒ हिर॑ण्यप्रउगं॒ वह॑न्तः ।
शश्व॒द्विशः॑ सवि॒तुर्दैव्य॑स्यो॒पस्थे॒ विश्वा॒ भुव॑नानि तस्थुः ॥ ५ ॥

भा०—( दैव्यस्य ) दिव्य, तेजस्वी और आकाश में विचरने वाले समस्त लोकों में सर्वश्रेष्ठ (सवितुः) सबके प्रकाशक, सूर्य के समान तेजस्वी एवं सबके उत्पादक परमेश्वर के ( उपस्थे ) गोद में, उसके आश्रय में ( विशः ) समस्त प्रजाएं और ( विश्वा ) समस्त ( भुवनानि ) लोक ( तस्थुः ) स्थित हैं। और ( श्यावाः ) ज्ञान करने योग्य, ( शितिपादः ) शुभ्र, विशुद्ध ज्ञान कराने वाले पादों, छन्दों के चरणों से युक्त, ( हिरण्य-प्रउगम् ) कान्ति वाले, आत्मा द्वारा जानने योग्य ( रथम् ) अति रमणीय, आनन्द मय रस को ( वहन्तः ) धारण करते हुए, ( जनान् ) मनुष्यों को ( वि अख्यन् ) विविध ज्ञानों का प्रकाश करते और स्वयं भी किरणों के समान प्रकाशित होते हैं। सूर्य के पक्ष में—( श्यावाः ) समस्त लोकों में पहुंचने वाले ( शितिपादः ) श्वेत अंशु वाले, किरण (हिरण्यप्रउगम्) अग्नि रूप कान्ति का प्रयोग करने वाले, तापमय (रथम्) स्वरूप को धारण करते हुए ( जनान् ) और जन्तुओं को धारण पोषण करते हुए (वि अख्यन् ) विविध रूप से प्रकाशित होते हैं ( सवितुः दैव्यस्य उपस्थे ) उस सूर्य के आधार पर ( विशः विश्वा भुवनानि) समस्त प्रजाएं और लोक भी ( शश्वत् ) सदा काल से ( तस्थुः ) स्थित हैं। राजा के पक्ष में—सूर्य के समान तेजस्वी राजा के आश्रय पर समस्त ( विशः ) प्रजाएं और ( भुवनानि ) सब लोक आश्रय लेते हैं। (श्यावाः शितिपादः) काले लाल रंग के, बैजनी रंग के, श्वेत चरणों वाले घोड़े (हिरण्य-प्रउगं ) सुवर्ण के जुए से सुशोभित रथ को ढोते और ( जनान् वि अख्यन् ) सब लोकों को राजा का वैभव दर्शाते हैं।

तिस्रो द्यावः॑ सवि॒तुर्द्वा उ॒पस्थाँ॒ एका॑ य॒मस्य॒ भुव॑ने विरा॒षाट् ।
आ॒णिं न रथ्य॑म॒मृताधि॑ तस्थुरि॒ह ब्र॑वीतु॒ य उ॒ तच्चिके॑तत् ॥६॥६

भा०—( द्यावः ) प्रकाशमान सूर्य, अग्नि और विद्युत ( तिस्रः ) तीन पदार्थ हैं। उनमें से ( द्वा ) दो ( सवितुः ) सबके उत्पादक सूर्य के

( उपस्था ) आश्रय हैं। और (एका) एक ( यमस्य ) यम, अर्थात् वायु के ( भुवने ) भुवन, अन्तरिक्ष में रहती है जो ( विराषाड् ) वीर पुरुषों को भी पराजित करने में समर्थ है। ( रथ्यम् ) रथ के भार उठाने में समर्थ (आणिम् न) रथ के धुरे पर जिस प्रकार रथ और उस पर स्थितपुरुष सम्भले रहते हैं उसी प्रकार वायु के आश्रय पर सूक्ष्म जलों के समान ( अमृता ) जीव गण ( अधि तस्थुः) स्थिर हैं। वे वायु में विचरते और उसके आश्रय पर जीते हैं। ( यः उ ) जो भी (तत्) इस रहस्य को ( चिकेतत् ) जाने वह ( इह ) इस विषय में ( ब्रवीतु ) सबको उपदेश करे। सूर्य के पक्ष में—तीन द्यौ हैं, आकाश, अन्तरिक्ष और यह पृथिवी। इनमें से दो सूर्य के आश्रय हैं आकाश और अन्तरिक्ष। एक यह भूमि ( यमस्य भुवने ) नियन्ता राजा के शासन में है जो ( विराषाट् ) समस्त वीरों को अपने वश करती है। जीवित पुरुष प्राणी उसी पृथ्वी पर रहते हैं। जो ज्ञानी पुरुष है वह उनको उपदेश करता है। इति षष्ठो वर्गः ॥

**वि सुपर्णो अन्तरिक्षाण्यख्यद्गभीरवेपा असुरः सुनीथः।**
**क्वे३दानीं सूर्यः कश्चिकेत कतमां द्यां रश्मिरस्या ततान ॥ ७ ॥**

भा०—( सुपर्णः ) उत्तम सुखकारी रश्मियों से युक्त ( गभीरवेपाः ) अति गंभीर, अज्ञात बल और गतिवाला ( असुरः ) सबको प्राणशक्ति देने वाला ( अन्तरिक्षाणि ) समस्त आकाश के प्रदेशों को ( वि अख्यत् ) विविध प्रकार से प्रकाशित करता है। परन्तु अस्त हो जाने पर फिर प्रश्न उठता है कि—( इदानीं ) अब ( सूर्यः क्व ) वह सूर्य कहां है ? इस रहस्य को ( कः ) कौन विद्वान् ( चिकेत ) जानता है कि ( अस्य रश्मिः ) इस सूर्य का रश्मिगण अब ( कतमां द्याम् ) किस आकाश को (ततान ) व्याप रहा है। अर्थात् विद्वान् लोग ही उसकी गति स्थिति का ज्ञान रखते हैं। इसी प्रकार राजा भी ( गभीरवेपाः ) गंभीर, अगाध बलशाली ( असुरः ) प्राणों के बल में रमण करनेवाला, ( सुनीथः ) उत्तम मार्ग पर प्रजाओं को

ले चलाने वाला, ( सुपर्णः ) उत्तम पालन करनेवाले साधनों और शासकों वाला, (अन्तरिक्षाणि) अपने राष्ट्र के भीतर स्थित प्रदेशों को (वि अख्यत्) विविध प्रकार के ज्ञानों का उपदेश करे। अब वह तेजस्वी सूर्य कहाँ है और उसकी ( रश्मिः ) रासें, शासन सामर्थ्य किस आकाश या स्थान या राजसभा, विद्वत् सभा को व्यापता है ? उसको कौन जाने ? तेजस्वी राजा की गति स्थिति दुर्बोध है।

अ॒ष्टौ व्य॑ख्यत्क॒कुभः॑ पृथि॒व्यास्त्री धन्व॒ योज॑ना स॒प्त सिन्धू॑न्।
हि॒र॒ण्या॒क्षः स॑वि॒ता दे॒व आगा॒द्दध॒द्रत्ना॑ दा॒शुषे॒ वार्या॑णि॥ ८॥

भा०—( हिरण्याक्षः ) हितकारी, मनोहर ज्योतिरूप व्यापनशील किरणों वाला ( सविता देवः ) प्रकाश और ताप का उत्पादक, प्रकाशमान सूर्य ( दाशुषे ) यज्ञशील पुरुष को ( वार्याणि ) उत्तम उत्तम ( रत्ना ) रमण करने योग्य सुखों को (दधत्) देता हुआ (आ अगात्) आता है और वह ( पृथिव्याः ) पृथिवी के ऊपर ( अष्टौ ककुभः ) आठों दिशाओं, (योजना) सब पदार्थों को अपने भीतर धारण करने वाले (त्री धन्व) तीनों लोकों और ( सप्त सिन्धून् ) सर्पणशील आकाशस्थ जलों को भी ( वि-अख्यत्) प्रकाशित करता है। उसी प्रकार ( दाशुषे ) कर आदि देने वाले प्रजाजन को उत्तम २ ऐश्वर्यों का प्रदान करता हुआ, सूर्य के समान तेजस्वी राजा हितकारी, रमणीय कृपादृष्टि से युक्त होकर आवे। वह आठों दिशा, तीनों स्थलों और सातों समुद्रों को ( वि अख्यत् ) विविध रूप से शासन करे। उन पर आज्ञा चलावे।

हिर॑ण्यपाणिः सवि॒ता विच॑र्षणिरु॒भे द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरी॑यते।
अपामी॑वां॒ बाध॑ते॒ वेति॒ सूर्य॑म॒भि कृ॒ष्णेन॒ रज॑सा॒ द्याम्॑ृणोति॥ ९॥

भा०—( हिरण्यपाणिः ) जलों के ग्रहण करनेवाले, हाथों के समान जोतिर्मय किरणों को धारण करनेवाला ( सविता ) समस्त ओषधियों और

अन्तरिक्ष में जलों और रसों का उत्पादक (विचर्षणिः) विशेषरूप से समस्त लोकों को आकर्षण करने वाला होकर सूर्य ( द्यावापृथिवी अन्तः ) आकाश और भूमि दोनों के बीच में गति करता है। और (अमीवां) रोगादि पीड़ा को ( अप बाधते ) दूर करता है। और ( सूर्यम् ) सबके प्रेरक और उत्पादक प्रकाश समूह को (वेति) प्रकाशित करता है। और ( कृष्णेन रजसा ) अन्धकार के नाश करने वाले तेज से, अथवा ( कृष्णेन रजसा ) तमोमय, प्रकाश रहित पृथिवी आदि लोक समूह के साथ ( द्याम् अभि ऋणोति ) आकाश को प्रकाश से भर देता है। उसी प्रकार राजा सभापति भी (सविता) सबका आज्ञापक ( हिरण्यपाणिः ) सुवर्ण आदि ऐश्वर्य को अपने हाथ या अधिकार में रखनेवाला और विविध प्रजाओं का द्रष्टा, या आकर्षक, वशकारी होकर ( द्यावापृथिव्योः अन्तः ) राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों के बीच में विद्यमान रहे। वह ( अमीवां ) प्रजा के पीड़क शत्रु और रोगों को दूर करे। वह ( सूर्यं वेति ) सूर्य समान तेजस्वी पद को प्राप्त करे। ( कृष्णेन रजसा ) आकर्षक तेज से ( द्याम् ऋणोति ) राजसभा को प्राप्त हो।

**हिरण्यहस्तो असुरः सुनीथः सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ्।**
**अपसेधन्रक्षसो यातुधानानस्थाद्देवः प्रतिदोषं गृणानः ॥ १० ॥**

भा०—(हिरण्यहस्तः) तेजोमय किरणों से युक्त सूर्य के समान सुवर्ण आदि धातुओं को अपने वश करने वाला, अथवा हिरण्य अर्थात् लोहादि धातु के बने हनन साधन, शस्त्रास्त्रों वाला, (असुरः) बलवान्, सबका प्राणप्रद, ( सुनीथः ) उत्तम सुखमय नीति से ले जाने वाला, उत्तम नायक, ( सुमृळीकः ) उत्तम सुख देने वाला, दयालु, ( स्ववान् ) उत्तम रक्षक अथवा ( स्व-वान् ) उत्तम धनवान्, उत्तम निज बान्धवों और गुणोंवाला होकर, ( अर्वाङ् ) हमारे पास (आयातु) आवे। और (यातुधानान्) पीड़ा देने वाले मायावी (रक्षसः ) दुष्ट पुरुषों और रोगों को ( अप सेधन् ) दूर करता हुआ, (देवः) तेजस्वी राजा ( प्रतिदोषं ) प्रति दिन रात्रि (गृणानः)

अपने गुणों से स्तुति करने योग्य होकर ( अस्थात् ) स्थित हो, सिंहासन पर जमकर बैठे।

ये ते पन्थाः सवितः पूर्व्यासोऽरेणवः सुकृता अन्तरिक्षे ।
तेभिर्नो अद्य पथिभिः सुगेभी रक्षा च नो अधि च ब्रूहि देव ॥

भा०—हे ( सवितः ) सबके उत्पादक परमेश्वर! हे राजन् ! हे सूर्य! ( अन्तरिक्षे ) अन्तरिक्ष में जिस प्रकार सूर्य के लिए पहले ही से बने रेणु रहित मार्ग हैं, उन निर्विघ्न आकाशमार्गों से सूर्य प्रतिदिन तेज से प्राप्त होकर हमें सुख प्रदान करता है। उसी प्रकार हे राजन् ! ( अन्तरिक्षे ) आकाश और पृथिवी के बीच में ( ये ) जो ( ते ) तेरे लिए या तुझ राजा के लिए ( पूर्व्यासः ) पूर्व के विद्वानों से निर्धारित ( अरेणवः ) विघ्न बाधा आदि से रहित, रजोदोष आदि से रहित, निःस्वार्थता युक्त, ( सुकृताः ) अच्छी प्रकार से बनाये गये हैं (सुगेभिः) सुखपूर्वक जाने योग्य ( तेभिः पथिभिः ) उन मार्गों से ( नः च ) हमारी भी (रक्ष) रक्षा कर। हे ( देव ) राजन् ! ( अधि ब्रूहि च ) हम पर अधिकारी रूप से शासन भी कर। राजा उत्तम मार्गों, विधियों और राजनियमों से प्रजा की रक्षा और शासन करे। इति सप्तमो वर्गः ।

इति सप्तमोऽनुवाकः ।

---

## [ ३६ ]

घौर ऋषिः । अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, १२ भुरिगनुष्टुप् । २ निचृत्सतः पंक्तिः । ४ निचृत्पंक्तिः । १०, १४ निचृद्विष्टारपंक्तिः । १८ विष्टारपंक्तिः । २० सतः पंक्तिः । ३, ११ निचृत्पथ्या बृहती । ५, १६ निचृद्बृहती । ६ भुरिग् बृहती । ७ बृहती । ८ स्वराड् बृहती । ९ निचृदुपरिष्टाद्बृहती । १३ उपरिष्टाद्बृहती । १५ विराट् पथ्याबृहती । १७ विराडुपरिष्टाद्बृहती । १९ पथ्या बृहती ॥ विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

प्र वो॑ य॒ह्वं पु॑रू॒णां वि॒शां दे॑वय॒ती॒नाम् ।
अ॒ग्निं सू॒क्तेभि॒र्वचो॑भिरीमहे॒ यं सी॒मिद॒न्य ईळ॑ते ॥ १ ॥

भा०—( यं ) जिस परमेश्वर की (सीम्) सब तरह से (अन्ये इत् ) और जन भी ( ईळते ) स्तुति करते हैं उस ( अग्निम् ) ज्ञानवान् ( यह्वं ) शरण जाने और स्तुति करने योग्य, महान् परमेश्वर को ( देवयतीनां ) उत्तम गुणों, दिव्य तेजों और उत्तम विद्वानों की कामना करनेवाली (पुरूणां) बहुतसी ( वः विशां ) आप प्रजाजनों के हितार्थ ( सूक्तेभिः वचोभिः ) उत्तम अर्थोंवाले वचनों से (प्र ईमहे) प्रार्थना करते हैं। राजा के पक्ष में—जिसको अन्य लोग भी चाहें, उस महान् शक्तिशाली ( देवयतीनां पुरूणां विशाम् वः ) देव अर्थात् राजा को बनाने की इच्छा वाली आप बहु संख्यावाली प्रजाओं के हितार्थ आपमें से ही ( अग्निम् ) नायक पुरुष का (सूक्तेभिः वचोभिः) उत्तम अर्थों वाले वचनों से ( प्र ईमहे ) प्रार्थना करें।

जना॑सो अ॒ग्निं द॑धिरे सहो॒वृधं॑ ह॒विष्म॑न्तो विधेम ते ।
स त्वं नो॑ अ॒द्य सु॒मना॑ इ॒हावि॒ता भवा॒ वाजे॑षु सन्त्य ॥ २ ॥

भा०—(जनासः) विद्याओं में विशेष रूप से प्रकट होने वाले विद्वान् जन ( सहः-वृधं ) कष्टों के सहने और शत्रुओं के पराजय करनेवाले बलको बढ़ाने वाले, (अग्निम् ) ज्ञानवान् परमेश्वर और अग्रणी नायक को (दधिरे) धारण करते हैं, अपने में बलवान् को नायक रूप से नियत करते हैं। हे (सन्त्य) ऐश्वर्य प्रदान करने में कुशल ईश्वर ! राजन् ! हम ( हविष्मन्तः ) उत्तम देने और स्वीकार करने योग्य अन्न, रत्नादि पदार्थों को प्राप्त कर ( ते विधेम ) तेरी सेवा करें। ( सः त्वं ) वह तू (सुमनाः) उत्तम चित्तवाला और उत्तम ज्ञानवान् होकर ( अद्य ) आज से ( इह ) इस राष्ट्र में, इस लोक में और ( वाजेषु ) युद्धों में और ऐश्वर्यों के निमित्त ( अविता भव ) हमारा रक्षक हो।

प्र त्वा॑ दू॒तं वृ॑णीमहे॒ होता॑रं वि॒श्ववे॑दसं ।
म॒हस्ते॑ स॒तो वि च॑रन्त्य॒र्चयो॑ दि॒वि स्पृ॑शन्ति भा॒नवः॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वन् ! अग्नि के समान तेजस्विन् ! हम लोग ( दूतं ) अग्नि के समान शत्रुओं के उपतापक, परंतप, प्रतापी, ( होतारम् ) सबको अन्न, अधिकार और शत्रुओं पर शस्त्र प्रहार के देने वाले, ( विश्ववेदसं ) समस्त प्रकार के ऐश्वर्यों के स्वामी, एवं समस्त ज्ञानों के ज्ञाता तुझको ( प्र वृणीमहे ) उत्तम पद के लिये वरण करते हैं। ( ते ) तुझ ( महः ) बड़े सामर्थ्यवान् ( सतः ) सज्जन की, अग्नि के समान ही (अर्चयः) ज्वालाओं के सदृश न्याय-प्रकाश और तेज ( विचरन्ति ) विविध रूप से प्रकट होते हैं। और ( भानवः ) किरणों के समान वे तेजः-प्रभाव ( दिवि ) आकाश के समान व्यापक राजसभा आदि राज्य-व्यवहार में ( स्पृशन्ति ) प्रकट होते हैं। विद्वान् ज्ञानी, तेजस्वी, सभा के सुवक्ता को ही दूत रूप से वरण करें।

दे॒वास॑स्त्वा॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॑र्य॒मा सं दू॒तं प्र॒त्नमि॑न्धते ।
विश्वं॒ सो अ॑ग्ने जयति॒ त्वया॒ धनं॒ यस्ते॑ द॒दाश॒ मर्त्यः॑ ॥ ४ ॥

भा०—( वरुणः ) सबसे उत्कृष्ट, सबसे वरण करने योग्य, प्रजा के दुःखों का वारक, ( मित्रः ) स्नेही, मित्र राजा और ( अर्यमा ) न्यायकारी ये सब ( देवासः ) विद्वान् गण ( त्वा ) तुझ विद्वान् पुरुष को (दूतं) साम आदि उपायों से शत्रु के तापकारी जानकर ही दूत रूप से ( सम् इन्धते ) अग्नि के समान प्रज्वलित करते, अर्थात् उत्तम पदाधिकारों से सुशोभित करते हैं। ( यः मर्त्यः ) जो मनुष्य ( ते ) तेरे निमित्त (ददाश) आदर पूर्वक अधिकार प्रदान करता है, हे ( अग्ने ) विद्वन् ! ( सः ) वह राजा ( त्वया ) तेरे द्वारा ( विश्वं धनं ) समस्त ऐश्वर्य और ( प्रत्नं ) प्राचीन काल से चले आये राज्य को भी ( जयति ) विजय कर लेता है।

मन्द्रो होता गृहपतिरग्ने दूतो विशामसि ।
त्वे विश्वा संगतानि व्रता ध्रुवा यानि देवा अकृण्वत ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—हे राजन् ! परमेश्वर ! तू ( मन्द्रं ) सबको सुखी, आनन्द प्रसन्न करने हारा, सबके हर्ष का कारण, ( होता ) सुखप्रद, ( गृहपतिः ) गृहों का पालक, ( विशाम् ) प्रजाओं के बीच ( दूतः ) शत्रुतापक अग्नि के समान प्रतापी, एवं स्तुतियोग्य है । ( त्वे ) तेरे ही आश्रय पर, अग्नि के आश्रय पर संस्कार दीक्षा आदि के समान ( विश्वा ) समस्त ( व्रता ) राज प्रजा के वे सब धर्म कर्त्तव्य ( संगतानि ) ध्रुव, स्थिर, आश्रित हैं ( यानि ) जिनको ( देवाः ) विद्या, धन आदि देने वाले गुरु आचार्य तथा व्यापारी जन ( अकृण्वत ) करते हैं । विद्वान् जन जिस प्रकार सब दीक्षा, आदि कर्म और व्रत, संस्कार यज्ञ आदि कर्म अग्नि को साक्षी करके करते हैं उसी प्रकार ( देवाः ) व्यवहार में सब लेन देन राजा के साक्षी से होते हैं । स्टाम्प, टिकट, सिक्के आदि सब राजा की साक्षिता के चिह्न हैं । अथवा—(यानि व्रता) जिन कर्त्तव्यों को ( देवाः ) देव, पृथिवी, सूर्य, वायु आदि पालन करते हैं वे सब राजा में संगत हैं । जैसा मनुने लिखा है ।

सोऽग्निर्भवति वायुश्च सोऽर्कः सोमः स धर्मराट् ।
स कुवेरः सः वरुणः स महेन्द्रः प्रभावतः ॥ मनु० ७ । ७ ॥

त्वे इदग्ने सुभगे यविष्ठ्य विश्वमा हूयते हविः ।
स त्वं नो अद्य सुमना उतापरं यक्षि देवान्त्सुवीर्या ॥ ६ ॥

भा०—हे ( यविष्ठ्य ) अति बलशालिन् ! हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्, नायक ! सभापते राजन् ! परमेश्वर ! ( सुभगे ) उत्तम ऐश्वर्यवान्, भजने, सेवने योग्य ( त्वे ) तुझमें, तेरे निमित्त ही ( विश्वम् हविः ) सब स्वीकार करने योग्य पदार्थ और स्तुति वचन भी (आ हूयते) प्रदान किये जाते हैं । ( सः त्वम् ) वह तू ( अद्य ) आज ( नः ) हमारे प्रति ( सुमनाः ) शुभ चित्त वाला, सुज्ञानी हो । और ( सुवीर्या ) उत्तम वीर्यवान् बलशाली

( देवान् ) युद्ध विजयी पुरुषों और विद्वानों को भी ( यक्षि ) वेतनादि प्रदान कर और राष्ट्र में सुसंगत कर। अग्नि में हवि देते हैं, वह बलशाली वायुओं में प्रदान करता है। परमात्मा में ( विश्व ) समस्त संसार हवि रूप से प्रलयाग्नि में आहुत होता है। वह सब अग्नि आदि तत्वों को सुसंगत करता और जगत् को रचता है।

तं घेमित्था नमस्विन उप स्वराजमासते।
होत्राभिरग्निं मनुषः समिन्धते तितिर्वांसो अति स्रिधः ॥७॥

भा०—( इत्था ) इस प्रकार से ( नमस्विनः ) शत्रु को नमाने वाले, शस्त्रास्त्र बल को धारण करने वाले राष्ट्रवासी जन ( तम् घ इम ) उस वीर नायक पुरुष को ही ( स्वराजम् ) अपना राजा बना कर ( उप आसते ) उसका आश्रय लेते हैं। और ( होत्राभिः ) उत्तम २ पदार्थों को आदरपूर्वक देने आदि क्रियाओं से भी ( मनुषः ) वे मननशील पुरुष ( अग्निम् ) अग्रणी पुरुष को ही हवन आदि यज्ञाहुतियों से अग्नि के समान ( सम् इन्धते ) अच्छी प्रकार प्रज्वलित, तेजस्वी और बलशाली करते हैं। तभी वे ( स्रिधः ) अपने हिंसक शत्रुओं को (अति तितिर्वांसः) पार कर जाते हैं, उनको विजय करने में समर्थ होते हैं। परमेश्वर स्वप्रकाश होने से स्वराट् है, भक्तिपूर्वक जन उसकी उपासना करते हैं। योग यज्ञाहुतियों से उसी को प्रज्वलित करते और दुःख बन्धनों से पार तर जाते हैं।

घ्नन्तो वृत्रमतरन्रोदसी अप उरु क्षयाय चक्रिरे।
भुवत्कण्वे वृषा द्युम्न्याहुतः क्रन्ददश्वो गविष्टिषु ॥ ८ ॥

भा०—( वृत्रम् ) फैलते हुए मेघ को जिस प्रकार सूर्य की किरणें ( घ्नन्तः ) विनाश करती हुई ( रोदसी अतरन् ) आकाश और पृथिवी दोनों लोकों को पार कर जाती हैं उसी प्रकार ( देवाः ) विजयशील वीर, सैनिक गण ( वृत्रम् ) घेरा डालनेवाले शत्रु को नाश करते हुए (रोदसी) अपने और पराये दोनों राष्ट्रों को ( अतरन् ) अपने वश कर लेते हैं।

और ( क्षयाय ) प्रजाओं के सुखपूर्वक निवास के लिये ( उरु ) बड़े राष्ट्र को और ( अपः ) नाना कर्मों को भी ( चक्रिरे ) करते हैं। (गविष्टिषु) भूमियों के प्राप्त करने के विजयादि संग्राम कार्यों में (क्रन्दत् अश्वः) हर्ष से हिनहिनाते हुए अश्व के समान् उत्साहपूर्वक सिंहनाद करता हुआ अश्वारोही, (वृषा) मेघ के समान शत्रुओं पर अस्त्र बरसाने वाला, (द्युम्नी) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, ( आहुतः ) सब वीरों द्वारा आदर से सेनाध्यक्ष रूप से स्वीकृत होकर (कण्वे) विद्वान् पुरुषों के बीच ( भुवत् ) विराजे।

सं सीदस्व महाँ असि शोचस्व देववीतमः।
वि धूममग्ने अरुषं मियेध्य सृज प्रशस्त दर्शतम् ॥ ९ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! राजन् ! तू (देववीतमः) समस्त तेजस्वी पदार्थों में अति अधिक कान्तिमान्, सूर्य और अग्नि के समान राजाओं और विद्वानों में सबसे अधिक तेजस्वी होकर ( सं सीदस्व ) अच्छी प्रकार सिंहासन पर विराज। तू ( महान् असि ) सबसे बड़ा है। तू ( शोचस्व ) अग्नि के समान चमक। हे ( मियेध्य ) मेधाविन् ! एवं संगति करने योग्य ! हे ( प्रशस्त ) उत्तम रूप से प्रशंसित ! तू ( अरुषं ) रोषरहित ( दर्शतम् ) दर्शनीय, उत्तम ( धूमम् ) अग्नि के धूम के समान शत्रु को कंपाने वाले बल को ( वि सृज ) विविध प्रकार से उत्पन्न कर।

यं त्वा देवासो मनवे दधुरिह यजिष्ठं हव्यवाहन।
यं कण्वो मेध्यातिथिर्धनस्पृतं यं वृषा यमुपस्तुतः ॥१०॥९॥
यमग्निं मेध्यातिथिः कण्व ईध ऋतादधि।
तस्य प्रेषो दीदियुस्तमिमा ऋचस्तमग्निं वर्धयामसि ॥ ११ ॥

भा०—( देवासः ) विद्वान् पुरुष ( यं ) जिसको ( यजिष्ठम् ) अति पूजनीय ( त्वा ) तुझको (इह) इस लोक में (मनवे) मनन करने के कार्य, राज्यशासन पद पर ( दधुः ) स्थापित करते हैं और हे (हव्यवाहन) ग्रहण

करने योग्य ऐश्वर्य और उत्तम गुणों को धारण करने वाले ( यं ) जिस ऐश्वर्य से पूर्ण तुझको ( कण्वः ) विद्वान् (मेध्यातिथिः) सत्संग करने योग्य पूज्य अतिथियों वाला गृहस्थ और ( यं ) जिसको ( वृषा ) शत्रु पर बाण वर्षण करने वाला वीर योद्धा और ( यम् उपस्तुतः ) जिसको स्तुति करने वाला विद्वान् और ( यम् ) जिस ( अग्निम् ) अग्रणी नायक पुरुष को ( मेध्यातिथिः कण्वः ) उत्तम संगत होनेवाले अतिथि रूप शिष्यों से युक्त विद्वान् पुरुष ( ऋतात् अधि) मेघमण्डलस्थ जल के ऊपर विद्यमान सूर्य के समान ( ऋतात् अधि) सत्य व्यवहार और राज्य शासन के सत्य व्यवस्था या नियम समूह के भी ऊपर ( ईधे ) प्रज्वलित करते और ( दधुः ) स्थापित करते हैं ( तस्य ) उस तेरी ( इषः ) प्रेरित आज्ञाएं और राज्य-प्रबन्ध की व्यवस्थायें (प्रदीदियुः) उज्वल रूप में चमकती और सत्य न्याय का प्रकाश करती हैं। ( तम् ) उस तुझ ( अग्निम् ) अग्रणी नायक को (इमाः ऋचः) ये वेदमन्त्र और हम प्रजानन ( वर्धयन्ति ) बढ़ाते हैं, गुण वर्णन द्वारा उसके कर्तव्य और साहस को बढ़ावें ।

रायस्पूर्धि स्वधावोऽस्ति हि तेऽग्ने देवेष्वाप्यम् ।
त्वं वाजस्य श्रुत्यस्य राजसि स नो मृळ महाँ असि ॥ १२ ॥

भा०—हे ( स्वधावः ) अन्नादि ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू हमें (रायः) ऐश्वर्य ( पूर्धि ) प्रदान कर । हे (अग्ने) तेजस्विन् ! नायक ! राजन् ! (ते) तेरा ( देवेषु ) विद्वान्, युद्धविजयी पुरुषों पर ( आप्यम् ) बन्धुभाव और मित्रता ( अस्ति हि ) निश्चय से है । ( त्वं ) तू ( श्रुतस्य ) श्रवण करने योग्य, अति अद्भुत ( वाजस्य ) युद्ध और ऐश्वर्य का ( राजसि ) राजा है। ( सः ) वह तू ( नः ) हमें ( मृळ ) सुखी कर । तू ( महान् असि ) सबसे बड़ा है ।

ऊर्ध्व ऊ षु ण ऊतये तिष्ठा देवो न सविता ।
ऊर्ध्वो वाजस्य सनिता यदञ्जिभिर्वाघद्भिर्विह्वयामहे ॥ १३ ॥

भा०—हे राजन् ! परमेश्वर ! तू ( सविता ) सर्वोत्पादक होकर ( सविता देवः ) सबके प्रकाशक सूर्य के समान ( नः ) हमारी ( ऊतये ) रक्षा के लिए ( ऊर्ध्वः ) सबसे ऊंचा होकर ( तिष्ठ ) रह । तू ( ऊर्ध्वः ) सबसे ऊंचा रहकर ही (वाजस्य) ज्ञान, अन्न, ऐश्वर्य और युद्ध का (सनिता) देने और करने, सेवनेहारा है ( यत् ) इसी कारण हम ( अंजिभिः ) नाना विद्याओं को प्रकाश करनेवाले (वाघद्भिः) विद्वान् पुरुषों से (वि ह्वयामहे) मिलकर तेरी विविध प्रकार से स्तुति करते हैं ।

ऊर्ध्वो नः पाह्यंहसो नि केतुना विश्वं समत्रिणं दह ।
कृधी न ऊर्ध्वाञ्चरथाय जीवसे विदा देवेषु नो दुवः ॥ १४ ॥

भा०—हे राजन् ! तू ( ऊर्ध्वः ) हमारे सबके सर्वोपरि पदपर स्थित होकर ( नः ) हमें ( अंहसः ) अधर्माचरण, पाप से (नि पाहि) रक्षा कर । और ( केतुना ) ज्ञान द्वारा ( विश्वम् ) समस्त ( अत्रिणम् ) लूट पाट कर खानेवाले दुष्ट पुरुषों को (सम् दह) अच्छी प्रकार भस्म कर । ( नः ) हमें ( चरथाय ) धर्माचरण और ( जीवसे ) दीर्घ जीवन के प्राप्त करने के लिए ( ऊर्ध्वान् कृधि ) उत्तम बना, हमें भी ऊंचा कर । ( देवेषु ) विद्वानों में ( नः ) हमारे ( दुवः ) उत्तम आचरण आदि ( विदाः ) प्राप्त करा ।

पाहि नो अग्ने रक्षसः पाहि धूर्तेरराव्णः ।
पाहि रीषत उत वा जिघांसतो बृहद्भानो यविष्ठ्य ॥ १५ ॥ १० ॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी ! नायक ! राजन् ! हे (बृहद्-भानो) विशाल तेजों, विद्या, ऐश्वर्य आदि नाना प्रभावों वाले ! हे (यविष्ठ्य) हृष्ट पुष्ट, जवान के समान सदा बलशालिन् ! ( नः ) हमें ( रक्षसः ) राक्षस, अति दुष्ट पुरुषों से ( पाहि ) बचा । और तू ( अराव्णः ) अदानशील, अति कृपण ( धूर्तैः ) विश्वासघाती, धूर्त्त, हिंसक पुरुष से भी (पाहि) बचा । (रिषतः) हिंसा करनेवाले व्याघ्र आदि पशु और आक्रमणकारी पुरुष से ( उत वा )

और ( जिघांसतः ) हमें घात करने की इच्छा करनेवाले से भी ( पाहि ) बचा। इति दशमो वर्गः ॥

घनेव विष्वग्वि जह्यरावणस्तपुर्जम्भ यो अस्मध्रुक्।
यो मर्त्यः शिशीते अत्यक्तुभिर्मा नः स रिपुरीशत ॥ १६ ॥

भा०—( घना इव ) आघात करने वाले दण्ड आदि से जिस प्रकार कच्चे घड़े आदि पात्र को तोड़ दिया जाता है या हतौड़े से जिस प्रकार लोहे को पीटा जाता है उसी प्रकार, हे ( तपुर्जम्भ ) शत्रुओं और दुष्टों को संताप देनेवाले हननकारी शस्त्रों वाले राजन्! सेनापते! ( यः ) जो (अस्मध्रुक् ) हमारा द्रोह करता है और ( यः ) जो ( मर्त्यः ) मनुष्य (अक्तुभिः) शस्त्रों से ( अति शिशीते ) बहुत अधिक सताता है ऐसे ( अरावणः ) निर्दय शत्रु को ( विश्वक् ) सब प्रकार से ( वि जहि ) विनाश कर (सः) वह ( रिपुः ) पापी शत्रु ( नः ) हम पर ( मा ईशत ) कभी प्रभुता या शासन न करे।

अग्निर्वव्ने सुवीर्यमग्निः कण्वाय सौभगम्।
अग्निः प्रावन्मित्रोत मेध्यातिथिमग्निः साता उपस्तुतम् ॥१७॥

भा०—( अग्निः ) अग्रणी राजा (कण्वाय) विद्वान् जन को (सुवीर्यम्) उत्तम बल और ( सौभगम् ) उत्तम ऐश्वर्य ( वव्ने ) प्रदान करे। (अग्निः) ज्ञानवान् तेजस्वी राजा (मित्रा) मित्र जनों को, (उत) और ( मेध्यातिथिम् ) पूज्य अतिथि को और ( उपस्तुतम् ) गुणों से प्रशंसित, विद्वान् पुरुष को (साता) युद्ध शिल्प आदि कार्य के अवसर पर (प्र अवत्) उनकी रक्षा करे और उनके पास जाकर उनका सत्संग करे।

अग्निना तुर्वशं यदुं परावत उग्रादेवं हवामहे।
अग्निर्नयन्नववास्त्वं बृहद्रथं तुर्वीतिं दस्यवे सहः ॥ १८ ॥

भा०—( अग्निना ) अग्रणी नायक राजा या सभाध्यक्ष के बल पर

(तुर्वशं) शीघ्रता से दूरस्थ पदार्थों की कामना या उनपर वश करने में समर्थ, (यदुम्) यत्नशील दूसरे के धन लेने में यत्नशील और (उग्रादेवम्) उग्र, भयानक पुरुषों को जीतने वाले पुरुष को (परावतः) दूर देश से भी (हवामहे) हम स्पर्द्धा पूर्वक युद्ध के लिये ललकार लें। क्योंकि (दस्यवे सहः) प्रजा के नाशकारी, चोर डाकुओं को पराजित करने में समर्थ, (नववास्त्वं) नये मकान या गढ़ बनवाने वाले (बृहद्-रथम्) बड़े रमण साधन, वैभव से युक्त एवं, बड़े रथ सेना से बलवान् (तुर्वीतिम्) प्रजा के हिंसाकारी पुरुष को (अग्निः) अग्नि के समान तेजस्वी राजा (नयत्) दूर करे और कारागार में डाल दे। अथवा—(अग्निः) ज्ञानी दूत द्वारा (तुर्वशम्) धर्म काम कर्थ मोक्ष इन चारों पर वश करने वाले, (यदुं) यत्नशील, (उग्रादेवम्) बलवान् विजयी पुरुष को दूर देश से भी हम आदरपूर्वक बुलावें और ज्ञानी पुरुष (नववास्त्वं) नये भवन बनाने में कुशल (बृहद्रथं) बड़े भारी रथ, सेना आदि रमण साधनों से युक्त (तुर्वीतिम्) शत्रु हिंसक पुरुष को (नयत्) प्राप्त करावें।

नि त्वामग्ने मनुर्दधे ज्योतिर्जनाय शश्वते।
दीदेथ कण्व ऋतजात उक्षितो यं नमस्यन्ति कृष्टयः॥ १९॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् परमेश्वर! तेजस्विन् राजन्! अग्ने! (मनुः) मननशील, ज्ञानी पुरुष (त्वाम्) तुझको (शश्वते जनाय) अनादि प्रवाह से आनेवाले मनुष्यों के हित के लिए (ज्योतिः) प्रकाशरूप से (दधे) धारण करता है। तू (कण्वे) विद्वान् मेधावी, ज्ञानी पुरुष के आश्रय में रह कर (ऋतजातः) सत्य, राष्ट्रशासन और प्रजापालन के धर्मज्ञान में कुशल होकर (उक्षितः) अभिषेचित होकर (दीदेथ) चमक, (यं) जिस तुझको (कृष्टयः) मनुष्य (नमस्यन्ति) आदर से नमस्कार करें।

त्वेषासो अग्नेरमवन्तो अर्चयो भीमासो न प्रतीतये।
रक्षस्विनः सदमिद्यातुमावतो विश्वं समत्रिणं दह॥२०॥ ११॥

भा०—( त्वेषासः ) अति दीप्ति वाले, तेजस्वी, (अमवन्तः) बलवान्, ( अग्नेः ) अग्रणी नायक राजा के ( भीमासः ) अति भयानक पुरुष ( प्रतीतये ) ज्ञान के लिए ( अर्चयः ) आग की ज्वाला के समान दीखते हैं। हे राजन् ! तू ( रक्षस्विनः) दुष्ट राक्षसों के सहायक ( यातुमावतः ) पीड़ादायक पुरुषों के स्वामी लोगों को और ( विश्वे ) समस्त ( अत्रिणं ) लूट पाट कर खाने वाले प्रजा पीड़क पुरुषों को (सं दह) भस्म कर । अथवा—( त्वेषासः भीमासः रक्षस्विनः अर्चयः न ) जो अतिदीप्त, भयानक राक्षसों के साथी अग्नि की ज्वाला के समान दुःखदायी हैं उनको और ( विश्वम् अत्रिणं च सं दह ) समस्त प्रजा के खाऊ लोगों को जलादे । और (विश्वं) सदं प्रतीतये यातु-मावतः च) समस्त सभास्थान और मेरे जैसे जानेवालों की ज्ञान की वृद्धि के लिए रक्षा कर ।

'यातुमावतः'—'यातुमाऽवतः' इतिसायणः। 'यातुऽमावतः' इति दयानन्दः । 'यातुऽमावतः' इति पदपाठः ।

[ ३७ ]

कण्वो घौर ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, २, ४, ६—८, १२ गायत्री । ३, ६, ११, १४ निचृद् गायत्री । ५ विराड् गायत्री । १०, १५ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । १३ पादनिचृद्गायत्री । पंचदशर्चं सूक्तम् ॥

**क्रीळं वः शर्धो मारुतमनर्वाणं रथेशुभम् । कण्वा अभि प्र गायत॥१॥**

भा०—हे ( कण्वाः ) अपने तेज और पराक्रम से शत्रुओं की आंखों को झपका देने वाले, तेजस्वी वीर पुरुषो ! (वः) आप लोगों का (मारुतम्) वायुओं के सम्मिलित बल के समान शत्रु को मारनेवाले आप लोगों का समूहरूप, दलबद्ध, ऐसा (शर्धः) बल जिसके ( अनवाणम् ) मुकाबले पर कोई भी शत्रु न आ सके, (रथेशुभम्) और जो रथ वा सेनांग के बलपर अधिक शोभाप्रद है उसको ( अभि प्र गायत) अच्छी प्रकार वर्णन करो, बतलाओ ।

अथवा—हे ( कण्वाः ) विद्वान् पुरुषो ! ( वः मारुतम् शर्धः ) आप लोगों के पास वायु समूहों से पैदा हुआ वह बल ( अनर्वाणम् ) जिसमें अश्व नहीं लगता और ( रथेशुभम् ) रथ, यान आदि में शोभा देता है उसका उपदेश करो।

'कण्वाः'—कण शब्दे। भ्वादिः। कण निमीलने। चुरादिः। कणति स्तोत्रलक्षणं शब्दं करोति, कण्यते स्तूयते वा, निमीलयति परान् वा स्वतेजसा इति कण्वः। इति देवराजः।

ये पृषतीभिर्ऋष्टिभिः साकं वाशीभिरञ्जिभिः। अजायन्त स्वभानवः २

भा०—(ये) जो ( पृषतीभिः ) हृष्टपुष्ट अश्वोंवाली, या वाणों से युक्त सशस्त्र सेनाओं और ( ऋष्टिभिः ) आयुधों और (वाशीभिः ) व्यक्तवाणियों और (अंजिभिः) स्पष्ट अभिव्यक्त करनेवाले चिह्नों के (साकं) सहित (स्वभानवः) स्वयं सूर्य के समान तेजस्वी (अजायन्त) हैं। विद्वानों के पक्ष में—(ये) जो ( पृषतीभिः ) हृदय में आनन्दप्रद, हर्ष का वर्षण करने वाली ( ऋष्टिभिः ) ज्ञान के प्रकाशक (अंजिभिः) अति स्पष्ट अर्थ बतलाने वाली व्यक्त(वाशीभि) वाणियों के साथ ( स्वभानवः ) स्वयं आत्मा के ज्ञान के प्रकाश करने वाले हैं।

इहेव शृण्व एषां कशा हस्तेषु यद्वदान्। नि यामञ्चित्रमृञ्जते ॥ ३ ॥

भा०—( एषां ) इन वायुओं और प्राणों की ( हस्तेषु ) हाथ पैर आदि अंगों में विद्यमान (कशाः) विकसित होनेवाली नाना चेष्टाएँ (यत्) जो कुछ भी ( वदान् ) तत्व बतलाती हैं उसको मैं ( इह एव ) यहाँ ही इस शरीर में स्थित, यहाँ बैठा ही ( शृण्वे ) सुन लेताहूं। ये ( यामन् ) सुखादि प्राप्त करानेवाले मार्ग में (चित्रम्) अति अद्भुत कर्म (नि ऋञ्जते) किया करते हैं। वीरों के पक्ष में—( एषां हस्ते ) इनके हाथों में अर्थात् अधिकारों में (कशाः) नाना वाणियें, आज्ञाएं घोड़े के हांकने वाली हण्टरों

के समान (यत् वदान्) जो भी बोलती हैं, जो २ करने को कहतीं हैं उनको मैं (ईह एव शृण्वे) इस राष्ट्र भर में श्रवण करूं। ये (यामन्) नियमकारी शासन या राज्य में ( चित्रम्) अद्भुत कार्य (नि ऋञ्जते) निरन्तर करते हैं।

प्र वः शर्धाय घृष्वये त्वेषद्युम्नाय शुष्मिणे। देवत्तं ब्रह्म गायत॥४॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! ( वः ) आप लोग ( घृष्वये ) परस्पर संघर्ष, प्रतिस्पर्द्धा से उत्पन्न होने वाले ( शर्धाय ) बल की वृद्धि करने और ( त्वेषद्युम्नये ) उज्वल यश प्राप्त करने के लिये आप लोग ( देवत्तं ) परमेश्वर से दिये ( ब्रह्म ) महान् वेद मय ज्ञान-वचन का ( गायत ) गान करो।

प्र शंसा गोष्वघ्न्यं क्रीळं यच्छर्धो मारुतम्। जम्भे रसस्य वावृधे॥५

भा०—( यत् ) जो ( मारुतम् ) प्राणों का बल ( गोषु ) इन्द्रियों को बैल, गौ आदि पशुओं में ( क्रीळं ) शरीर के अंगों में नाना अद्भुत क्रीड़ाकारी नाना चेष्टाओं को उत्पन्न करने वाला ( अघ्न्यम् ) कभी नाश न होने वाला, चेतनता रूप से विद्यमान् है जो (जम्भे) अंगों के नाना प्रकार से झुकाने आदि कार्यों में भी प्रकट होता है वही (रसस्य) खाये हुए अन्न के बने परिपक्व रस के कारण ( वावृधे) बढ़ता है। उसका ( प्र शंस) उत्तम रीति से उपदेश करो। अथवा ( यत् शर्धः मारुतम् ) जो मारणशील वीर सैनिकों का बल ( गोषु अघ्न्यम्) रण भूमियों में कभी नाश न होने वाला तथा ( क्रीळं ) अद्भुत रणक्रीड़ा करता है, वह ( जम्भे ) मुख्य भाग में स्थित होकर ( रसस्य ) बलपूर्वक बढ़ता है। उसका उपदेश करो। इति द्वादशो वर्गः॥

को वो वर्षिष्ठ आ नरो दिवश्च ग्मश्च धूतयः। यत्सीमन्तं न धूनुथ ६

भा०—हे ( नरः ) नायक, नेता वीरजनो! ( दिवः च ग्मः च ) आकाश और पृथिवी, अथवा सूर्यादि लोक और पृथिवी या उनपर स्थित

पदार्थों को ( धूतयः ) कंपा देने वाले वायुओं के समान आकाश जमीन को अपने बल पराक्रम से कंपा देने वाले हो। ( वः ) आप लोगों में से ( वर्षिष्ठः कः ) कौन सबसे बड़ा है ? ( यत् ) जिसके बलपर आप लोग ( सीम् ) सदा ( अन्तम् ) वायुएं जिस प्रकार वृक्ष या वस्त्र के अग्र-भाग, फुनगी या अंचरे को हिला डालते हैं उसी प्रकार शत्रुओं को ( अहा धूनुथ ) कंपा डालते हो। अथवा ( नः वर्षिष्ठः ) तुममें सबसे बड़ा 'क' प्रजापति, राजा ही है जिसके बल पर तुम सबको कंपाते हो। अध्यात्म में—ये नेतागण प्राणगण हैं। वे आत्मा के बल पर शरीर के कर चरणादि सब अंगों को हिलाते डुलाते हैं।

नि वो यामाय मानुषो दध्र उग्राय मन्यवे। जिहीत पर्वतो गिरिः ७

भा०—हे वीर पुरुषो ! ( वः ) आप लोगों के ( यामाय ) नियन्त्रण करने और ( उग्राय मन्यवे ) आप लोगों के अति भयकारी क्रोध को वश करने के लिये ही ( मानुषः ) मननशील, विचारवान् राजा ( निदध्रे ) आप लोगों को अपने अधीन व्यवस्था में रखता है जिससे (पर्वतः) पर्वत के समान अचल और ( गिरिः ) मेघ के समान शस्त्रास्त्र वर्षण या गर्जनशील शत्रु भी ( जिहीत ) कांप जाता है। अथवा—आप लोगों को (उग्राय यामाय, उग्राय मन्यवे) उग्र, अति भयंकर प्रयाण, और अति तीव्र क्रोध के लिये ही रखता है जिससे शत्रु भी कांप जाता है। अध्यात्म में—ज्ञानी पुरुष तुम प्राणगण को ( यामाय ) इन्द्रियों के दमन और बलवान् ( मन्यवे ) ज्ञान प्राप्त करने के लिये ( निदध्रे ) वश करता है जिससे (पर्वतः) पर्ववान् मेरुदण्ड और (गिरिः) शब्दोच्चारण कारी मुख्य प्राण भी कम्पित होता है।

येषामज्मेषु पृथिवी जुजुर्वां इव विश्पतिः। भिया यामेषु रेजते ॥८॥

भा०—( येषाम् ) वायुओं के समान अति प्रबल जिन वीर पुरुषों के

( अज्मेषु ) उथल पुथल कर देने वाले ( यामेषु ) प्रबल प्रयाण होने पर ( पृथिवी ) समस्त भूगोल अर्थात् उसके वासी प्रजाजन ( जुजुर्वान् ) रोग या बुढ़ापे या शत्रु के निरन्तर आक्रमणों से अति जीर्ण, निर्बल (विश्पतिः इव ) राजा के समान ( भिया ) भय से ( रेजते ) कांपता है। अध्यात्म में—जिन प्राणों के प्रबल वेग से श्वासोच्छ्वासों के होने पर ( पृथिवी ) भूमि तत्व का बना शरीर बूढ़े दुर्बल राजा के समान नित्य कांपता है। अधिदेव पक्ष में—जिन प्रबल वायुओं के प्रबल वेग से चलने पर भूमण्डल भर कांपता है।

स्थिरं हि जानमेषां वयो मातुर्निरेतवे। यत्सीमनु द्विता शवः ॥ ६॥

भा०—( हि ) जिस कारण से ( एषाम् ) इन वायुओं का (जानम्) उत्पत्ति स्थान, आकाश ( स्थिरम् ) स्थिर है इसी कारण (वयः) पक्षीगण ( यत् सीम् अनु ) जिस वायु के बल पर ( मातुः ) अन्तरिक्ष से ( निः एतवे ) जाने आने में समर्थ होते हैं उन वायुओं का ( शवः ) बल भी ( द्विता ) दुगुना होता है। और उनमें शब्द और स्पर्श दो गुण रहते हैं। अथवा—जिन वायुओं के बल पर ही पक्षियों का बल दुगुना हो जाता है। वीरों के पक्ष में—( एषां हि जानं स्थिरम् ) इनका जनसमूह दृढ़ स्थिर है ( वयः मातुः निर्-एतवे ) भूमि के विजय के निमित्त निकलने के लिए ये बाजों के समान वेगवान् हैं ( यत् अनु ) जिनके बल पर ( सीम् ) सब प्रकार से ( द्विता ) द्वैधीभाव का युद्ध होता है। ( यत् अनु शवः ) और जिनके आश्रय राष्ट्र का बल है। प्राणों के पक्ष में—इनका जन्म या प्रादुर्भाव स्थिर अर्थात् नियत है। ( मातुः ) ज्ञाता आत्मा के भीतर से वे ( वयः ) मातृगर्भ से पक्षियों के समान आपसे आप बाहर आते हैं। ( यत् अनु ) इन प्राणों के कारण ही ( द्विता ) आत्मा में कर्त्ता और भोक्ता होने के दो भाव हैं। और ( यद् अनु शवः ) इन प्राणों ही के कारण शरीर में बल है।

उदु त्ये सूनवो गिरः काष्ठा अज्मेष्वत्नत। वाश्रा अभिज्ञु यातवे॥१०॥

भा०—( त्ये ) वे वायुगण, प्राणगण ही ( अज्मेषु ) अपने गमन आगमन के बलों पर ही ( सूनवः ) बालकों के प्रसव कराने वाले और अन्तरिक्ष में मेघों को चलाने वाले होते हैं। ये ही ( गिरः उत् अत्नत ) वाणियों को उत्पन्न करते हैं। ये ही (काष्ठाः उत् अत्नत) जलों को अन्तरिक्ष में उठाये रहते हैं। (वाश्राः) बछड़ों के लिए उनके प्रेम से हंभारती हुई (अभिज्ञु) मानो जानुओं की तरफ झुकती हुई गौओं के समान ( यातवे ) वायुगण नाद सा करते हुए गति करते हैं। वीरों के पक्ष में—ये राष्ट्र के पुत्र (गिरः उत् अत्नत ) आज्ञाओं का पालन करें। ( अज्मेषु काष्ठा उत् अत्नत ) बलयुक्त प्रयाणों में दिशाएं पार कर जाते हैं। ये ही शब्द करते हुए ( अभिज्ञु ) गोड़े नवाकर या कदम आगे बढ़ाकर जाने के लिए होते हैं। इति त्रयोदशो वर्गः॥

त्यं चिद् घा दीर्घं पृथुं मिहो नपातममृध्रम्। प्र च्यावयन्ति यामभिः॥११॥

भा०—( मिहः ) वृष्टि के सेचन करने वाले पवनगण जिस प्रकार ( यामभिः ) अपने शीघ्र वेगों से ( दीर्घम् ) लम्बे, ( पृथुम् ) चौड़े, बड़े भारी ( नपातम् ) जल न गिराने वाले, ( अमृध्रम् ) भूमि को जल से न गीला करनेवाले मेघ के भी ( प्र च्यावयन्ति ) जल गिरा देते हैं उसी प्रकार ( मिहः ) जलों के समान शरों की वर्षा करने वाले वीर गण ( दीर्घम् ) बड़े लम्बे, ( पृथुं ) विशाल ( नपातम् ) न गिरने या न झुकने वाले, ( अमृध्रम् ) न मारे जानेवाले, प्रबल ( त्यं चित् च ) उस शत्रु को भी ( यामभिः ) अपने प्रबल आक्रमणों से ( प्र च्यावयन्ति ) गिरा देते हैं, युद्ध से भगा देते हैं।

मरुतो यद्ध वो बलं जनाँ अचुच्यवीतन। गिरीँरचुच्यवीतन॥१२॥

भा०—हे ( मरुतः ) प्रबल वायुओं और प्राणगण के समान वीरो! विद्वान् पुरुषो! (यत् वः बलम्) जो आप लोगों का बल (जनान्) प्राणियों

और प्रजा पुरुषों को ( अचुच्यवीतन ) सन्मार्ग में चलने के लिए प्रेरित करता है वही बल ( गिरीन् ) मेघों को या पर्वतों को वायुओं के समान ( गिरीन् ) पर्वत के समान अकम्प, दृढ़ शत्रु पुरुषों को भी हिला देता है।

यद्ध यान्ति मरुतः सं ह ब्रुवतेऽध्वन्ना। शृणोति कश्चिदेषाम् ॥ १३॥

भा०—( यत् ह ) और जब भी ( मरुतः ) पवनों के समान परोपकारी, वेग से या ज्ञानमार्ग से जानेवाले विद्वान्‌गण और वीरगण (अध्वन्) ज्ञानमार्ग से या युद्धमार्ग से (आ यन्ति) जाते हैं और ( सं ब्रुवते ) परस्पर वादानुवाद और वार्त्तालाप या ज्ञान का उपदेश करते हैं तब भी (एषाम्) इनके वचनों को ( कः चित् ) कोई ही ( शृणोति ) सुनता और समझता है।

प्र यात शीभमाशुभिः सन्ति कण्वेषु वो दुवः। तत्रो षु मादयाध्वै ॥१४॥

भा०—हे वीरो और विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( आशुभिः ) बड़े शीघ्र जानेवाले यान आदि साधनों से ( शीभम् ) शीघ्र ही ( प्रयात ) दूर देशों तक जाओ, प्रयाग करो। ( वः ) आप लोगों को ( कण्वेषु ) विद्वान् मेधावी पुरुषों के अधीन ( दुवः ) नाना कर्तव्य कर्म ( सन्ति ) करने होते हैं। ( तत्र ) वहां ही आप लोगों को ( सु मादयाध्वै ) अच्छी प्रकार संतुष्ट, तृप्त और सुखी होना चाहिये।

अस्ति हि ष्मा मदाय वः स्मसि ष्मा वयमेषां। विश्वं चिदायुर्जीवसे ॥

भा०—( वः ) आप लोगों के ( मदाय ) आनन्द लाभ करने के लिए और सदा तृप्त होने और सुखपूर्वक ( आयुः जीवसे ) जीवन व्यतीत करने के लिए ( विश्वं चित् ) समस्त पदार्थ (अस्ति हि स्म) सदा विद्यमान रहें। और ( एषाम् ) इनके ही अधीन (वयम् स्मसि स्म) हम भी सदा रहें और आनन्द से जीवन व्यतीत करें। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

[ ३८ ]

॥ ३८ ॥ १—१५ कण्वो घौर ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ८, ११, १३, १४, १५, ४ गायत्री। २, ६, ७, ९, १० निचृद्गायत्री।

३ पादनिचृद्गायत्री । ५, १२ पिपीलिकामध्या निचृत् । १४ यवमध्या विराड् गायत्री । पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

कद्ध नूनं कधप्रियः पिता पुत्रं न हस्तयोः । दधिध्वे वृक्तबर्हिषः ॥१॥

भा०—( पिता ) पिता ( हस्तयोः ) अपने हाथों में, भुजाओं में जिस प्रकार (पुत्रम् न) पुत्र को प्रेम से सुरक्षित रूप में लेता है, खिलाता पिलाता और और उसकी रक्षा करता है उसी प्रकार हे ( वृक्तबर्हिषः ) शत्रुओं को घास के समान काट गिराने हारे वीर, विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( कधप्रियः ) कथा, विद्योपदेश, उत्तम वाक्यरचना और नियम व्यवस्थाओं के द्वारा स्वयं सन्तुष्ट होने और अन्यों को संतुष्ट करनेहारे विद्वान्, वाग्मी, शास्त्रज्ञ होकर ( नूनं ) निश्चय से ( कत् ह ) कब प्रजाजन को ( हस्तयोः ) अपने हाथों में, अपने वश में, अपने अधीन ( दधिध्वे ) धारण करोगे ?

क्व नूनं कद्वो अर्थं गन्ता दिवो न पृथिव्याः । क्व वो गावो न रण्यन्ति २

भा०—( नूनं ) निश्चय से ( क्व ) किस स्थान पर आप लोग (वः) अपने ( अर्थम् ) इष्ट प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य को ( गन्त) प्राप्त करते हो ? ( दिवः ) आकाश के समान ( पृथिव्यः ) पृथिवी के ( अर्थम् ) ऐश्वर्य को भी आप लोग ( कद् ) भला कब ( गन्त ) प्राप्त करते हो ? ( गावः न ) सूर्य की किरणों के समान आप लोगों की ( गावः) इन्द्रियें, वाणियें और भूमियें, भूमि वासी प्रजा ये ( क्व रण्यन्ति ) कहां मनोहर शब्द करती हैं ? जहां विद्वान् हों, जब वे अपने अभीष्ट को प्राप्त हों, जहां वे उत्तम बचन बोलें वहां उस स्थान पर उस समय उनका सत्संग करो। अथवा— ('न' इति निषेधार्थे ) (क्व नूनम्) आप लोग कहां नहीं हो ? अर्थात् आप लोग वायु के समान सर्वत्र विचरण करते हो । (पृथिव्या अर्थं कत् न गन्त) आकाश और भूमि के समस्त पदार्थों को आप कब नहीं प्राप्त करते? अर्थात्

सदा ही आपको आकाश और भूमि के सब ऐश्वर्य प्राप्त हैं। ( वः गावः क्व न रण्यन्ति ) आप लोगों की ज्ञान वाणियां गौओं के समान कहां नहीं ज्ञान रस धारा बहातीं ? अर्थात् वे सर्वत्र ज्ञान मधु का उपदेशामृत प्रदान करती हैं। वीर जनों के पक्ष में—आप लोगों की गौवों के समान वासी प्रजाएं कहा नहीं रम रही हैं ? सर्वत्र रम रही हैं, भूमियां भी सर्वत्र हरी भरी हैं।

क्व वः सुम्ना नव्यांसि मरुतः क्व सुविता। को३ विश्वानि सौभगा ॥३॥

भा०—हे ( मरुतः ) विद्वान् पुरुषो ! हे वायु के समान वैश्य गण और तीव्रगामी वीर जनो ! ( वः ) तुम्हारे लिये (नव्यांसि) नये से नये, आश्चर्य कर ( सुम्ना ) सुख साधन ( क्व ) कहां हैं ? और आपके (सुविता) शासन तथा नाना ऐश्वर्य ( क्व ) कहां हैं ? ( विश्वानि सौभगा क्व ) और समस्त सौभाग्य, सुखप्रद ऐश्वर्य राज्य आदि कहां हैं ? जहां हों वहां से उनको प्राप्त करो। अथवा पूर्व मन्त्र से 'न' की अनुवृत्ति लेवें। (वः सुम्ना क्व न ? सुविता क्व न ? विश्वानि सौभगा क्व न ? ) आप लोगों के नये २ सुख साधन, शासन, ऐश्वर्य और सौभाग्य सुख कहां कहां नहीं हैं? अर्थात् सर्वत्र विद्यमान हैं।

यद्यूयं पृश्निमातरो मर्तासः स्यातन। स्तोता वो अमृतः स्याम् ॥४॥

भा०— हे ( पृश्निमातरः ) आकाश रूप माता से उत्पन्न होने वाले, अथवा 'पृश्नि' सब के पालकपोषक सूर्य के तेज से उत्पन्न होने वाले वायुगण के समान ( पृश्निमातरः ) पृथ्वी और तेजस्वी राजा से उत्पन्न होने वाले प्रजा के वीर पुरुषो ! (यत्) यद्यपि आप लोग (मर्तासः) मरणधर्मा पुरुष ( स्यातन ) हो। तथापि ( वः ) आप लोगों का ( स्तोता ) उपदेष्टा, आज्ञापक, नेता पुरुष (अमृतः) चिरायु, दीर्घजीवी और शत्रुओं से कभी नाश न होने वाला होकर रहे। अध्यात्म में—शरीरगत प्राण आत्मा

से उत्पन्न होने से 'पृश्निमातर' हैं वे स्वयं नश्वर हैं, उनका उत्पादक आत्मा अमर है।

मा वो॑ मृ॒गो न यव॑से जरि॒ता भू॒दजो॑ष्यः। प॒था य॒मस्य॑ गा॒दुप॑ ॥५॥१५

भा०—( यवसे ) घास रहने पर ( मृगः न ) मृग, तृणचारी पशु जिस प्रकार सदा हृष्ट पुष्ट और कार्य सेवा में लगने योग्य रहता है और घास आदि न मिलने पर दुर्बल और मरणासन्न तथा भार आदि उठाने के काम का भी नहीं रहता उसी प्रकार हे विद्वानो! वीरो एवं ज्ञानार्थी पुरुषो! (वः) आप लोगों का (जरिता) मार्गोपदेष्टा नायक भी ( अजोष्यः ) असेव्य अर्थात् सेवा और प्रीति करने और कर्तव्य पालन करने के अयोग्य ( मा भूत् ) न हो। वह सदा कर्त्तव्यपरायण बना रहे। तुम उसको सदा आहार आदि से सुखी बनाये रक्खो। और वह (यमस्य पथा) नियम, नियन्ता के मार्ग से ही ( उपगात् ) जावे। अथवा—(यमस्य पथा) वायु या मृत्यु के मार्ग से (मा उपगात्) मात जावे। वह मृत्यु को प्राप्त न हो। इति पञ्चदशो वर्गः॥

मो षु णः॒ परा॑परा॒ निर्ऋ॑तिर्दु॒र्हणा॑ वधीत्। प॒दी॒ष्ट तृष्ण॑या स॒ह ॥६॥

भा०—( परापरा ) अधिक से अधिक, बहुत अधिक, अति अधिक शत्रु रूप (निर्ऋतिः ) अतिकष्टदायिनी पर सेना (दुर्हना) अति कठिनाई से मरने वाली, प्रबल होकर ( नः ) हमें ( मा उ सु वधीत् ) कभी न मारे। प्रत्युत, वह ( तृष्णया ) प्यास से पीड़ित होकर ( पदीष्ट ) भाग जाये। अथवा ( परापरा ) अति अधिक, ( दुर्हना ) अति कठिनाई से नाश होने वाली ( निर्ऋतिः ) कठिनाई, दुरवस्था या रोगादि पीड़ा हमें कभी न मारे और ( तृष्णया सह मा नः पदीष्ट ) वह भूख प्यास की पीड़ा के साथ अकाल दुष्काल आदि के रूप में भी हमें न प्राप्त हो। अध्यात्म में—( परा परा निर्ऋतिः ) बड़ी से बड़ी पीड़ा और पाप प्रवृत्ति भी ( दुर्हना ) अवध्य, या लाइलाज होकर हमें कष्ट न दे। वह हमें (तृष्णया सह ) भोग

तृष्णा या लोभ के साथ न व्यापे। विद्वान् जन तथा प्राणादि साधन से उसका प्रतिकार करें।

सत्यं त्वेषा अमंवन्तो धन्वञ्चिदा रुद्रियांसः। मिहं कृण्वन्त्यवाताम्

भा०—( त्वेषाः ) विद्युत् की दीप्ति से युक्त, ( अमवन्तः ) बलवान् तीव्र गति वाले ( रुद्रियासः ) जीवों के सुखप्रद, जीवनाधार होकर जिस प्रकार वायुगण ( धन्वन् चित् ) अन्तरिक्ष या मरु भूमि में भी (अवाताम्) वायु से रहित अविचल, मूसलाधार (मिहम् ) वृष्टि ( कृण्वन्ति ) करते हैं उसी प्रकार (सत्यम्) सचमुच ये (त्वेषाः) अति तेजस्वी, प्रतापी, (अमवन्तः) बलवान्, ज्ञानी, ( रुद्रियासः ) शत्रुओं को रुलाने वाले वीर सेनापति के सैनिक गण ( धन्वन् चित् ) धनुष के बल पर ही ( अवाताम् ) वायु को भी बीच में से अवकाश न देने वाली अथवा वायु से भी बढ़ कर (मिहं) शर वर्षा को ( कृण्वन्ति ) करें। इसी प्रकार ( रुद्रियासः ) जीव के ये प्राण भी बलवान् दीप्तियुक्त रहकर हृदय देश में विना वायु के आनन्द-रस की वर्षा करते हैं। और तेजस्वी ज्ञानी पुरुष ज्ञानवर्षा करते हैं।

वाश्रेव विद्युन्मिमाति वत्सं न माता सिषक्ति। यदेषां वृष्टिरसर्जि॥८॥

भा०—( यत् ) जब ( एषां ) इन वायुओं के कारण ( वृष्टिः ) जलवृष्टि (असर्जि) होती है तब (वाश्रा इव वत्सम् ) जिस प्रकार हंभारती हुई गौ अपने बछड़े की तरफ लपकती है और ( माता वत्सं न ) जिस प्रकार माता प्रेम से दूध झरते पयोधरों से बच्चे को ( सिसक्ति ) अपने अंग के संग लगा लेती है उसी प्रकार ( विद्युत् ) बिजली ( मिमाति ) शब्द करती है, ( वत्सं ) निवास करने वाले प्रजाजन को ( सिषक्ति ) प्राप्त होती और वर्षा बरसाती है। उसी प्रकार इन वीरों की जब शर वर्षा होती है तो गौ के समान ( विद्युत् ) विद्युत् अस्त्र तोप आदि गरजती हैं।

दिवां चित्तमः कृण्वन्ति पर्जन्येनोदवाहेन। यत्पृथिवीं व्युन्दन्ति॥९॥

भा०—(यत्) जब ये वायुगण (पृथिवीं) पृथिवी को (वि उन्दन्ति) विशेष रूप से तरबतर कर कर रहे होते हैं तब (उदवाहेन) जल को धरने वाले (पर्जन्येन) बादल से ही ( दिवा चित् ) दिन के समय भी ( तमः ) अन्धकार (कृण्वन्ति) कर देते हैं। जब वीर पुरुष रक्तधाराओं से भूमि को गीला करते हैं तब जलधर मेघ के समान अति युद्धकारी सेनापति द्वारा दिन में भी अन्धकार या शत्रु पक्ष में अति शोककारी दृश्य उपस्थित कर देते हैं।

अध॑ स्वनान्मरुतां विश्वमा सद्म पार्थिवम् अरे॑जन्त प्र मानु॑षाः१०।१६

भा०—( अध ) और ( मरुताम् ) तीव्र वायुओं और उनके समान प्रचण्ड वेग से जाने वाले वीर सैनिकों के ( स्वनात् ) घोष से ( विश्वम् ) समस्त (पार्थिवम्) पृथिवी लोक और समस्त नरपति मण्डल (सद्म) मट्टी के बने घर के समान ( आ अरेजत् ) काँप जाता है। और ( मानुषाः ) साधारण मनुष्य तो (प्र अरेजत् ) बहुत ही अधिक कांप जाते हैं, डर जाते हैं। इति षोडशो वर्गः ॥

मरु॑तो वीळुपाणिभि॑श्चित्रा रोध॑स्वतीरनु॑ यातेम॑खिद्रयामभिः ।११।

भा०—(मरुतः) वायुगण जिस प्रकार (अखिद्रयामभिः) अविच्छिन्न, अटूट वेगों से ( चित्राः ) नाना प्रकार की ( रोधस्वतीः ) नदियों की ओर को बहते हैं उसी प्रकार हे ( मरुतः ) प्रचण्ड वेगवाले वीर सैनिको ! आप लोग ( वीळुपाणिभिः ) दृढ़, बलयुक्त हाथों से ( चित्राः ) अद्भुत, या चिन कर बनाई गई, या समृद्ध ( रोधस्वतीः अनु ) चारों तरफ से घेरने वाले परकोटों से घिरी शत्रु की पुरियों को लक्ष्य कर ( अखिद्रयामभिः ) अनथक चालों से (यात ईम) बढ़ते चले जाओ। प्राणगण के पक्ष में—हे प्राणगण या योगीजनो ! तुम ( वीळुपाणिभिः ) दृढ़ व्यवहार वाले और ( अखिद्रयामभिः) अखिन्न, निरन्तर होने वाली चेष्टाओं से (चित्राः) चेतना देने वाली (रोधस्वतीः अनु) नाड़ियों के प्रति (यात ईम) गति करो। उन पर वश करो।

स्थिरा वः सन्तु नेमयो रथा अश्वास एषाम् सुसंस्कृता अभीशवः १२

भा०—हे वीर पुरुषो ! मनुष्यो ! ( वः ) तुम्हारे ( नेमयः ) रथ चक्रों की धाराएं ( रथाः ) यान, रथ ( अश्वासः ) अग्नि और अश्व आदि वेग वाले वाहन ( एषाम् ) इन वायुगण के योग से हों। और (अभीशवः) रासें अंगुलियाँ और अश्व भी ( सुसंस्कृताः ) अच्छी प्रकार से बने, सजे हों।

अच्छा वदा तना गिरा जरायै ब्रह्मणस्पतिम् अग्निं मित्रं न दर्शतम् १३

भा०—हे विद्वन् ! तू ( ब्रह्मणः पतिम् ) महान् ज्ञान वेद राशि को अध्ययन और प्रवचन द्वारा पालन करनेवाले (अग्निम्) ज्ञानवान् (मित्रम्) सबके स्नेही पुरुष को ( मित्रम् न दर्शतम् ) प्रिय मित्र के समान प्रेम से दर्शन करने योग्य जान कर (तना गिरा) विस्तृत व्याख्या करनेवाली वाणी से ( जरायै ) प्रत्येक पदार्थ के गुणों के वर्णन करने के लिए (अच्छा वद) आदर से प्रार्थना कर। अथवा—( मित्रम् न दर्शतम् ) मित्र के समान देखने योग्य ( अग्निं ब्रह्मणस्पतिम् ) अग्रणी नायक, बड़े बल और राष्ट्र के पालक राजा को ( जरायै तना गिरा अच्छा वद ) ज्ञानोपदेश करने के लिए विस्तृत वाणी से साक्षात् उपदेश कर।

मिमीहि श्लोकमास्ये पर्जन्य इव ततनः। गाय गायत्रमुक्थ्यम् १४

भा०—हे विद्वन् ! तू ( श्लोकम् ) वेदवाणी को ( आस्ये ) मुख में ( मिमीहि ) करले, उसे कण्ठस्थ कर। और उस वेदवाणी को ( ततनः पर्जन्यः ) मेघ के समान गर्जना करते हुए दूर दूर तक गम्भीर स्वर से फैला, उसका उपदेश कर। और ( गायत्रम् ) गायत्री छन्द में कहे ( उक्थ्यम् ) स्तुति युक्त वेद-वचन समूह को ( गाय ) स्वयं गानकर, पढ़ और पढ़ा।

वन्दस्व मारुतं गणं त्वेषं पनस्युमर्किणम्। अस्मे वृद्धा असन्निह १५

भा०—हे मनुष्य ! तू ( त्वेषं ) अति तेजस्वी ( पनस्युम् ) व्यवहार

कुशल, ( अर्किणम् ) उत्तम ज्ञानसम्पन्न, ( मारुतम् गणम् ) प्राणों और वायुगणों के समान उपकारी वीरों और विद्वानों के समूह को ( वन्दस्व ) अभिवादन और स्तुति कर । वे (अस्मे) हमारे ( वृद्धाः ) ज्ञान और आयु में वृद्ध होकर ( इह ) इस लोक में ( असन् ) हितकारी हों । वायुगण— विद्युत् से दीप्तियुक्त हैं, वे सूर्य से युक्त होने से 'अर्की' हैं । इति सप्तदशो वर्गः ।

[ ३९ ]

कण्वो घौर ऋषिः ॥ मरुतो देवताः ॥ छन्दः—१, ५, ६ पथ्याबृहती ॥ २, ७ उपरिष्टाद्विराड् बृहती । २, ८, १० विराट् सतः पंक्तिः । ४, ६ निचृत्सतः पंक्तिः । ३ अनुष्टुप् । दशर्चं सूक्तम् ॥

**प्र यदि॒त्था प॑रा॒वतः॑ शो॒चिर्न मान॒मस्य॑थ ।**
**कस्य॒ क्रत्वा॑ मरुतः॒ कस्य॒ वर्प॑सा॒ कं या॑थ॒ कं ह॑ धूतयः ॥ १ ॥**

भा०—हे ( मरुतः ) विद्वानो ! एवं वायु के समान तीव्र वेग वाले बलवान् वीर सैनिको ! एवं व्यापारकुशल पुरुषो ! (शोचिनः) जिस प्रकार सूर्य दूर देश से अपने तेज को फेंकता है उसी प्रकार ( परावतः ) दूर दूर के देश से भी आकर तुम ( यत् इत्था ) जो इस प्रकार ( मानम् ) प्रजा और शत्रुजन को स्तब्ध या चकित कर देने वाले बल या शस्त्रास्त्रसमूह को ( अस्यथ ) फेंकते हो तो बतलाओ वह ( कस्य ) किसके क्रिया-सामर्थ्य से और ( कस्य वर्पसा ) किसके भौतिक बल से फेंकते हो। और तुम लोग जो वायु के समान तीव्र वेग से जा रहे हो तो ( कं याथ ) किसको लक्ष्य करके जाते हो । और हे ( धूतयः ) वृक्षों को वायु के समान शत्रुओं को कंपानेवाले आप लोग ( कं ह ) भला किसको लक्ष्य करके जाते हैं। परमेश्वर और आत्मा के पक्ष में—(मरुतः) ये तीव्र वेग से जानेवाले वायुगण अधिक परिमाण वाले जलादि को और पृथिवी आदि लोक दूर से तेज को किसके ज्ञान, बल और क्रियाशक्ति से फेंकते हैं । और कहाँ चले जा

रहे हैं। इनका लक्ष्य क्या है। उत्तर—(कस्य क्रत्वा, कस्य वर्पसा) उसके सबके कर्त्ता प्रजापति परमेश्वर के ज्ञान और क्रिया सामर्थ्य तथा बल से ही प्रेरित होकर ये सब तेज, जल आदि बरसाते और गति करते हैं उसी को लक्ष्य कर जा रहे हैं।

स्थिरा वः सन्त्वायुधा पराणुदे वीळू उत प्रतिष्कभे।
युष्माकमस्तु तविषी पनीयसी मा मर्त्यस्य मायिनः॥ २॥

भा०—हे वीर पुरुषो! (वः) आप लोगों के ( आयुधा ) युद्ध करने के हथियार, आग्नेय, वायव्य आदि अस्त्र शस्त्र ( पराणुदे ) शत्रुओं को दूर हटा देने वाले संग्राम के निमित्त ( स्थिरा ) स्थिर हों और ( प्रतिष्कभे ) शत्रुओं को रोकने और मुकाबले पर डट जाने के लिए वे हथियार ( वीळू ) बलवान्, दृढ़, मज़बूत (सन्तु) हों। हे वीर पुरुषो! (युष्माकम् ) तुम लोगों की ( तविषी ) बलवती सेना (पनीयसी ) अति व्यवहारकुशल, प्रशंसनीय ( अस्तु ) हो। ( मायिनः ) कुटिल, मायावी ( मर्त्यस्य) मनुष्य के ( मा ) वैसे दृढ़ शस्त्रास्त्र और प्रबल, कुशल सेना न हो।

परा ह यत्स्थिरं हथ नरो वर्तयथा गुरु।
वि याथन वनिनः पृथिव्या व्याशाः पर्वतानाम्॥ ३॥

भा०—हे ( नरः ) वीर नायक पुरुषो! ( यत् ) जिस कारण ( स्थिरम् ) वृक्ष के समान स्थिर शत्रु को भी प्रचण्ड वायु के समान ( परा हथ ) आघात करके उखाड़ देते हो और ( गुरु ) पर्वत के समान भारी पदार्थ को भी ( परावर्त्तयथ ) पलट देते हो, उथल पुथल कर देते हो इस कारण तुम ( वनिनः ) रश्मियों से युक्त प्रचण्ड वायु के समान तीव्र एवं वन के समान सेना संघ बना कर चलने वाले आप सब ( पृथिव्याः ) पृथिवी, समस्थल और ( पर्वतानाम् ) पर्वतों के ( आशाः ) समस्त दिशाओं को ( वि याथन ) विविध प्रकारों से पहुंचो और उन पर आक्रमण करो।

नहि वः शत्रुर्विविदे अधि द्यवि न भूम्यां रिशादसः।
युष्माकमस्तु तविषी तना युजा रुद्रासो नू चिदाधृषे ॥ ४ ॥

भा०—हे ( रिशादसः ) हिंसक शत्रुओं को भी नाश करने वाले वीर पुरुषो ! एवं विद्वान् धार्मिक पुरुषो ! (नू चित्) यदि शीघ्र ही (युष्माकम् तविषी ) आप लोगों की सेना ( तना युजा ) विस्तृत सहयोगी बल और सेनापति के साथ ( आधृषे ) शत्रुओं के दबाने में समर्थ ( अस्तु ) हो जाय तो निश्चय से हे ( रुद्रासः ) दुष्ट शत्रुओं के रुलाने वाले वीरो ! या उपदेश करने हारे विद्वानो ! ( वः शत्रुः ) तुम लोगों का कोई भी शत्रु (अधि द्यवि, अधि भूम्याम्) आकाश और पृथिवी दोनों में भी (न विविदे) नहीं पाया जाय, अथवा वह तुमको न पा सके।

प्र वेपयन्ति पर्वतान्वि विञ्चन्ति वनस्पतीन्।
प्रो आरत मरुतो दुर्मदा इव देवासः सर्वया विशा ॥ ५ ॥ १८ ॥

भा०—हे ( मरुतः ) प्रचण्ड वायुओं के समान प्रबल वेग से जाने वाले वीर पुरुषो ! ( पर्वतान् ) पर्वतों और मेघों को जिस प्रकार वायुगण ( प्र वेपयन्ति ) बड़े बल से हिला देते हैं और वे जिस प्रकार (वनस्पतीन्) वट, गूलर आदि बड़े वृक्षों को (वि विञ्चन्ति) प्रबल झकोरों से तोड़ फोड़ कर पृथक् २ कर देते हैं उसी प्रकार आप लोग भी ( देवासः ) युद्ध विजय की कामना करते हुए ( दुर्मदाः इव ) अति मदमत्त पुरुषों के समान किसी की भी पर्वाह न करते हुए (पर्वतान्) पर्वत के समान् दृढ़ और मेघ के समान शरवर्षानेवाले शत्रुओं को भी (वेपयन्ति) खूब कंपा डालो। और (वनस्पतीन्) वट आदि के समान बड़ी २ प्रजाओं और सेनाओं को आश्रय देने वाले राजाओं को भी (वि विञ्चन्ति) तोड़ फोड़ कर भेद नीति से बिरला २, पृथक् २ कर दो। और ( सर्वया विशा ) अपनी समस्त आश्रित प्रजा के साथ ( प्रो आरत ) आगे बढ़ो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

उपो रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं प्रष्टिर्वहति रोहितः ।
आ वो यामाय पृथिवी चिदश्रोदबीभयन्त मानुषाः ॥ ६ ॥

भा०—हे वीर पुरुषो ! आप लोग ( रथेषु ) अपने रमण, आनन्द विनोद के लिये बने रथों में, या रथारोही महारथियों के अधीन (पृषतीः) देह में चेतनता रस और आनन्द का सेचन करने वाली, रक्त नाड़ियों के समान और वर्षा कालिक वायुओं के साथ जुड़ी धारा वर्षाने वाली मेघ मालाओं के समान ( पृषतीः ) भरी पीठ वाली, या वेगों से चलने वाली घोड़ियों को और शत्रु पर शस्त्र वर्षण करने वाली सेनाओं को (अयुग्ध्वम् ) लगाओ, नियुक्त करो। आप लोगों को (रोहितः) वायुओं को सूर्य के समान (रोहितः) रक्त वर्ण की उज्ज्वल पोशाक पहनने वाला, एवं उदय को प्राप्त होने वाला, प्रतापी, तेजस्वी राजा ( प्रष्टिः ) पीठ से बोझा उठाने में समर्थ बलवान् पशु के समान राष्ट्र-भार या सेनापति पद को उठाने वाला एवं ( प्रष्टिः ) जिज्ञासा के कार्य में कुशल, अति तीव्र, मतिमान् पुरुष ( वहति ) उस पद को धारण करे। हे वीर जनो ! ( वः ) आप लोगों के ( यामाय ) प्रयाण के विषय की बातें ( पृथिवी चित् ) पृथिवी, दुनियां भर या आकाश तक में भी ( अश्रोत् ) सुनाई देवे। और ( मानुषाः ) सर्व साधारण मनुष्य सुन कर भय खावें ।

पृषत्यो मरुताम्—प्रावृषि सर्वतः पृषत्यो विचित्रा मेघमाला मरुतामिति स्कन्दस्वामी ।

आ वो मक्षू तनाय कं रुद्रा अवो वृणीमहे ।
गन्ता नूनं नोऽवसा यथा पुरेत्था कण्वाय बिभ्युषे ॥ ७ ॥

भा०—हे ( रुद्राः ) दुष्टों और शत्रुओं को रुलाने हारे वीर पुरुषो, निष्ठ ब्रह्मचारी जनो ! ( वः ) आप लोगों के ( कम् ) सुखजनक (अवः) रक्षण सामर्थ्य और ज्ञान सामर्थ्य को ( मक्षू ) अति शीघ्र ( तनाय ) अपने सन्तति और विद्या ऐश्वर्य के प्रसारक विद्वान् पुरुषों के लिये (आवृ-

णीमहे ) सब प्रकार से चाहते हैं । ( यथा ) जिस प्रकार ( पुरा ) पहले आप लोग अपने ( अवसा ) रक्षाकारी बल से जाते रहे उसी प्रकार अब भी ( बिभ्युषे ) भयभीत, संकट में पड़े ( नः ) हमारे में ( कण्वाय ) विद्वान, उत्तम पुरुषों की ( अवसा ) रक्षा के लिये (नूनं) अवश्य (गन्त) जाया करो ।

युष्मेषितो मरुतो मर्त्येषित आ यो नो अभ्व ईषते ।
वि तं युयोत शवसा व्योजसा वि युष्माकाभिरूतिभिः ॥८॥

भा०—हे ( मरुतः ) विद्वान् पुरुषो और वीर सैनिको ! ( यः ) जो ( अभ्वः ) शक्तिमान् न होकर, निर्बल या सुहृद् भाव से न रहने वाला शत्रु ( युष्मेषितः ) आप लोगों को विजय करना अभीष्ट है और ( मर्त्येषितः ) साधारण मनुष्य भी जिसे जीतना चाहते हैं, वह यदि ( नः ) हमें ( ईषते ) मारे तो ( तम् ) उसको ( शवसा ) अपने बल से और ( ओजसा ) पराक्रम से और ( युष्माकाभिः ) अपनी ( ऊतिभिः ) चढ़ाइयों या, रक्षा प्रेम, तृप्ति, आक्रमण आदि करने वाली सेनाओं से ( वि युयोत ) हमसे दूर रखो ।

असामि हि प्रयज्यवः कण्वं दद प्रचेतसः ।
असामिभिर्मरुत आ न ऊतिभिर्गन्ता वृष्टिं न विद्युतः ॥ ९ ॥

भा०—( विद्युतः ) बिजुलियां ( न ) जिस प्रकार ( वृष्टिम् ) वर्षा को पूरी तरह बरसा देते हैं उसी प्रकार हे ( प्रचेतसः ) उत्तम ज्ञान से युक्त ( प्रयज्यवः ) उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य के देने हारे ( मरुतः ) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग भी ( नः ) हमारे ( कण्वम् ) प्रज्ञावान् शिष्य के प्रति ( असामिभिः ऊतिभिः ) अपने सम्पूर्ण ज्ञानों और ब्रह्मचर्य आदि पालनकारी शिक्षाओं सहित ( आ गन्त ) आओ और ( असामि ) पूर्ण ज्ञान और सामर्थ्य ( दद ) प्रदान करो ।

असाम्योजो बिभृथा सुदानवोऽसामि धूतयः शवः ।
ऋषिद्विषे मरुतः परिमन्यव इषुं न सृजत द्विषम् ॥ १० ॥ १९ ॥

भा०—हे (सुदानवः) उत्तम रीति से रक्षा और शत्रु का खंडन करनेवाले (मरुतः) वीर पुरुषो ! विद्वान् जनो ! आप लोग ( असामि ) पूर्ण (ओजः) पराक्रम, बल और ब्रह्मचर्य को (बिभृथ) धारण करो । हे (धूतयः) शत्रुओं को कम्पा देने वाले वीर पुरुषो और काम, क्रोध, लोभ, मोह, ईर्ष्या, प्रमाद आदि व्यसनों को कंपाकर त्याग देने हारे ज्ञानी पुरुषो! आप लोग (असामि) पूरा ( शवः ) बल और ज्ञान ( बिभृथ ) धारण करो । ( द्विषं ) द्वेषी शत्रु के ऊपर वीर पुरुष (परिमन्यवः) अति क्रुद्ध होकर ( इषुं न ) जिस प्रकार बाण फेंकते हैं उसी प्रकार आप लोग भी ( परिमन्यवः ) पूर्ण ज्ञानी होकर ( ऋषिद्विषे ) वेद के विद्वान् और ईश्वर तथा सत्तर्कों और प्राणियों के प्राणों के प्रति द्वेष करने वाले नास्तिक कुतार्किक और हिंसक पुरुष को दूर करने के लिए ( इषुं ) शस्त्रादि के समान अपनी प्रबल इच्छा शक्ति को ( सृजत ) उत्पन्न करो । इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

## [ ४० ]

कण्वो घौर ऋषिः ॥ बृहस्पतिर्देवता ॥ छन्दः—२, १, ८, निचदुपरिष्टाद्बृहती । ५ पथ्याबृहती । ३, ७ आर्चीत्रिष्टुप् । ४,६ सतः पंक्तिर्निचृत्पंक्तिः ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

उत्तिष्ठ ब्रह्मणस्पते देवयन्तस्त्वेमहे ।
उप प्र यन्तु मरुतः सुदानव इन्द्र प्राशूर्भवा सचा ॥ १ ॥

भा०—हे ( ब्रह्मणस्पते ) वेदज्ञान के परिपालक विद्वन् ! ब्रह्माण्ड के पालक परमेश्वर ! और बड़े सैन्यसमूह के पालक सेनापते ! राजन् ! हम ( देवयन्तः ) विद्यादि उत्तम गुणों की, और विजयशील राजा की कामना करते हुए ( त्वा ) तुझको ( ईमहे ) प्रार्थना करते हैं कि ( उत् तिष्ठ )

उठ, तैयार हो। ( सुदानवः ) उत्तम कल्याणकारी शुभ उपायन तथा प्रिय पदार्थों के दाता और प्रजाओं के रक्षक ( मरुतः ) विद्वान् जन और वीर पुरुष (उप प्र यन्तु) आगे बढ़ें, अपने प्रमुख पुरुष के पास विनयपूर्वक आवें और तब हे ( इन्द्र ) ज्ञान वाणी के दातः! आचार्य ! और ऐश्वर्यवन् राजन् ! सेनापते ! तू ( प्राशूः ) अति शीघ्रता से ज्ञानमार्ग में चलने और युद्धमार्ग में ले चलनेहारा होकर (सचा) उन शिष्यों और वीरगणों के साथ ( भव ) रह, उनके साथ बैठ। गुरु शिक्षा दे और वीर नेता विजय करे।

त्वामिद्धि सहसस्पुत्र मर्त्य उपब्रूते धने हिते।
सुवीर्यं मरुत आ स्वश्व्यं दधीत यो व आचके ॥ २ ॥

भा०—हे ( सहसः पुत्र ) इन्द्रियों और दुष्ट मानस भावों को दमन करने वाले विद्वान् पुरुषके पुत्र एवं शिष्य ! (यः) जो पुरुष (त्वाम् इत् हि) तुझ को लक्ष्य कर के ( उप ब्रूते ) उपदेश करे और हे ( मरुतः ) विद्वान् पुरुषो ! ( वः ) आप लोगों को ( यः ) जो ( धने हिते ) हितकारी ऐश्वर्य के बलपर ( वः आचके ) आप लोगों को चाहता या तृप्त करता है आप लोग उसके (सु-अश्व्यं) उत्तम रीति से विद्या आदि में व्यापक (सुवीर्यम्) उत्तम वीर्य, बल अथवा उत्तम अश्व के समान बलवान् पुष्ट करनेवाले ब्रह्मचर्य बलको ( आ दधीत ) धारण करो। वीरों के पक्ष में—हे ( सहसः पुत्र ) बलके द्वारा प्रजा पुरुषों के रक्षक ! नायक ! ( मर्त्यः हिते धने त्वाम् इत् हि उपब्रूते ) साधारण मनुष्य हितकारी, धनको प्राप्तकरने के लिये तेरे आगेही निवेदन करता है। हे ( मरुतः वः यः आचके ) वीरो ! जो तुमको चाहे या तृप्त करे उसकी रक्षा के लिये आप लोग ( सु—अश्व्यम् आदधीत ) उत्तम तुरंगबल और उत्तम वीर्य धारण करो।

प्रैतु ब्रह्मणस्पतिः प्र देव्येतु सूनृता।
अच्छा वीरं नर्यं पंक्तिराधसं देवा यज्ञं नयन्तु नः ॥ ३ ॥

भा०—( ब्रह्मणः ) वेद के सत्यज्ञान तथा विद्वान्, वेदज्ञ ब्राह्मण गण का पालक राजा ( प्र एतु ) आगे, उच्चपद पर आवे। ( सूनृता ) प्रिय, उत्तम सत्याचरण तथा सत्य शास्त्रयुक्त वाणी बोलनेवाली ( देवी ) विदुषी स्त्री तथा राजसभा ( प्र एतु ) उच्चपद पर विराजे। ( देवाः ) विद्वान्‌गण ( वीरं ) वीर ( नर्यं ) नेता पुरुषों में प्रमुख ( पंक्तिराधसम् ) सेना के वीर पुरुषों की पंक्तियों को वश करने में कुशल पुरुष को ( नः ) हमारे (यज्ञम्) सुव्यवस्थित राष्ट्र कार्य में (नयतु) प्राप्त करावे। परमेश्वर के पक्ष में—वेद ज्ञान का पालक परमेश्वर आचार्य हमें साक्षात् हो (सूनृता देवी) सत्य वेदवाणी हमें ज्ञात हो। सबका हितकारी वीर्यवान् अक्षरपंक्ति का ज्ञाता विद्वान् स्वाध्याय, यश या ज्ञान के प्रवचन कार्य में अग्रणी हो।

यो वाघते ददाति सूनरं वसु स धत्ते अक्षिति श्रवः।
तस्मा इळां सुवीरामा यजामहे सुप्रतूर्तिमनेहसम् ॥ ४ ॥

भा०—( यः ) जो ( वाघते ) विद्वान् पुरुष को ( सूनरम् ) उत्तम पुरुषों, या नायकों से युक्त (वसु) राज्यैश्वर्य, या वसनेवाली प्रजा रूप धन को ( धत्ते ) धारण करता है। ( तस्मै ) उस नायक को ( सुवीराम् ) वीर्यवती ( सुप्रतूर्त्तिम् ) बहुत अच्छी प्रकार सब ज्ञानों, पदार्थों और सुखों को देनेवाली ( अनेहसम् ) गौ के समान कभी न मारने योग्य, निर्दोष, निष्पाप ( इळां ) कन्या के समान भूमि को ( आ यजामहे ) प्रदान करें।

प्र नूनं ब्रह्मणस्पतिर्मन्त्रं वदत्युक्थ्यम्।
यस्मिन्निन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा देवा ओकांसि चक्रिरे ॥५॥२०॥

भा०—( यस्मिन् ) जिसके आश्रय पर ( इन्द्रः ) शत्रु विजयी सेनापति, ( वरुणः ) दुष्टों का निवारक, सर्वश्रेष्ठ राजा, (मित्रः) सबका स्नेही विद्वान् पुरुष ( अर्यमा ) न्यायाधीश आदि ( देवाः ) समस्त विद्वान्‌जन ( ओकांसि ) अपने २ स्थान, पद, (चक्रिरे) बनाये रहते हैं (नूनं ) निश्चय से ( ब्रह्मणः पतिः ) वह वेदज्ञान का पालक विद्वान् ( उक्थ्यं ) कहने

और श्रवण करने योग्य ( मन्त्रं ) मन्त्र, विचार ( वदति ) कहता है वह सर्वमान्य है। परमेश्वर के पक्ष में—( ब्रह्मणः पतिः ) वह वेद या महान् जगत् का पालक परमेश्वर जिसके आश्रय पर ( इन्द्रः ) विद्युत् ( वरुणः ) समुद्र मेघ आदि ( मित्रः ) प्राणगण, ( अर्यमा ) वायु और ( देवाः ) पृथिवी आदि लोक ( ओकांसि ) अपना आश्रय बनाये हुए हैं, वही प्रभु ( उक्थ्यं मन्त्रं वदति) उपदेश और श्रवण करनेयोग्य वेदमन्त्रों का उपदेश करता है। इति विंशो वर्गः ॥

तमिद्वोचेमा विदथेषु शम्भुवं मन्त्रं देवा अनेहसम् ।
इमां च वाचं प्रतिहर्यथा नरो विश्वेद्वामा वो अश्नवत् ॥ ६ ॥

भा०—हे ( देवाः ) विद्वान् पुरुषो ! विजय की इच्छा करनेवाले वीर पुरुषो ! हम लोग ( विदथेषु ) संग्रामि के अवसरों पर और ( विदथेषु ) विज्ञान प्राप्त करने के अध्ययनाध्यापन, व्याख्यान-प्रवचन आदि कार्यों में ( अनेहसम् ) न नाश करने योग्य, स्थिर, सत्य, सदा रक्षा करने योग्य, निर्दोष, यथार्थ, अबाधित, ( शम्भुवं ) शान्तिदायक, ( तम् इत् ) उस ही ( मन्त्रम् ) मनन योग्य विचार और वेदमन्त्र का ( वोचेम ) उपदेश करें। हे ( नरः ) मनुष्यो ! नायकगण ! ( च ) यदि ( इमां वाचं ) इस वाग् , वेद रूप वाणी को ( प्रतिहर्यथ ) प्रत्येक अवसर पर चाहोगे, प्राप्ति और अभ्यास करोगे तो (विश्वा इत् वामा) समस्त प्रकार की उत्तम, सुखप्रद वाणी ( वः ) तुम लोगों को ( अश्नवत् ) प्राप्त हो।

को देवयन्तमश्नवज्जनं को वृक्तबर्हिषम् ।
प्रप्र दाश्वान्पस्त्याभिरस्थितान्तर्वावत्क्षयं दधे ॥ ७ ॥

भा०—(देवयन्तम् ) विद्वानों, उत्तम गुणों, पदार्थों और वीर पुरुषों के चाहनेवाले ( जनम् ) पुरुष को ( कः ) कौन प्राप्त होता है और ( वृक्तबर्हिषम् ) शत्रुओं को कुशा के समान काटकर प्रजा पालन रूप यज्ञ

करनेवाले कुशल पुरुष को ( कः ) कौन प्राप्त होता है ? वह वेदज्ञ विद्वान् ही वीराभिलाषी और शत्रुघाती राजा को मन्त्री रूप में प्राप्त होता है। ( दाश्वान् ) दानशील पुरुष ही ( पस्त्याभिः ) गृहों में निवास करने वाली प्रजाओं, राष्ट्र भूमियों और सुसंगत सुव्यवस्थित सेनाओं से (प्र प्रअस्थित) नित्य प्रतिष्ठा को प्राप्त करता है। अपने शत्रु पर प्रस्थान करता है। और ( अन्तर्वावत् ) भीतर गति करने वाले वायु से युक्त या भीतर आने वाले नाना ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों से पूर्ण ( क्षयं ) निवास योग्य गृह को तथा प्रजा के निवास योग्य राष्ट्र को ( दधे ) धारण करता है।

'पस्त्याभिः'—वसन्त्यस्मिन्। पततेर्वा, सकार उपजनः। पसेः संगत्यर्थे वा इति माधवः।

उप॑ क्ष॒त्रं पृ॑ञ्ची॒त हन्ति॒ राज॑भि॒र्भ॒ये चि॑त्सुक्षि॒तिं द॑धे।
नास्य॑ व॒र्ता न त॑रु॒ता म॑हाध॒ने नार्भे॑ अस्ति व॒ज्रिणः॑ ॥ ८ ॥ २१ ॥

भा०—जो राजा (क्षत्रं) अपने क्षत्र अर्थात् सेना बल को (उप पृञ्चीत) अच्छी प्रकार सुव्यवस्थित सुगठित कर लेता है वह ( भये चित् ) युद्ध आदि संकट के अवसर पर भी ( राजभिः ) अन्य सहयोगी राजाओं की सहायता से ( हन्ति ) मैदान मार लेता है, शत्रु का नाश कर देता है और (सुक्षितिम् ) अपनी उत्तम निवास भूमि को भी ( दधे ) अपने वश किये रहता है। (महाधने) बड़े २ संग्राम में भी (अस्य वर्त्ता न) न कोई इसके मुकाबले पर रहने वाला और ( न तरुता ) न कोई उसको परास्त कर उससे बढ़ जाने वाला ही होता (अस्ति) है। और ( न अर्भे ) न छोटे संग्राममें ही ( वज्रिणः ) उस बल वीर्यशाली राजा को कोई परास्त और उल्लंघन कर सकता है। इत्येकविंशो वर्गः ॥

[ ४१ ]

काण्वो घौर ऋषिः ॥ देवता—१—३, ७—९ वरुणमित्रार्यमणः। ४—६

आदित्याः ॥ छन्दः—१, ४, ५, ८ गायत्री । २, ३, ६ विराड् गायत्री । ७, ९ निचृद्गायत्री ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

यं रक्षन्ति प्रचेतसो वरुणो मित्रो अर्यमा । नू चित्स दभ्यते जनः ॥१॥

भा०—( यम् ) जिस प्रमुख पुरुष को ( वरुणः ) सर्वश्रेष्ठ सभापति या दुष्टों के वारणकारी, ( मित्रः ) सबका मित्र, विद्वान्, उपदेशक, आचार्य, ( अर्यमा ) पक्षपात रहित, न्यायकारी, धर्माध्यक्ष, ये सब ( प्रचेतसः ) उत्तम ज्ञान से सम्पन्न जन सुचित्त सावधान होकर (रक्षन्ति) रक्षा करते हैं ( जनः ) वह पुरुष ( नू चित् ) कभी ही ( दभ्यते ) किसी से मारा जा सके, या पीड़ित हो सके ?

यं बाहुतेव पिप्रति पान्ति मर्त्यं रिषः । अरिष्टः सर्व एधते ॥ २ ॥

भा०—( यं मर्त्यं ) जिस पुरुष को (बाहुता एव) बाहुएं जिस प्रकार शरीर की रक्षा करती हैं उसी प्रकार अनेक शत्रुओं को रोकने वाली बाहुएं तथा अनेक प्रबल सेना दल ( पि प्रति ) पालन करते हैं और ( रिषः ) घातक शत्रु के आक्रमण से ( पान्ति ) बचाते हैं वह ( अरिष्टः ) किसी प्रकार भी हिंसित या पीड़ित न होकर ( सर्वः ) सब अंगों सहित ( एधते ) बढ़ता है ।

वि दुर्गा वि द्विषः पुरो घ्नन्ति राजान एषाम् । नयन्ति दुरिता तिरः ३

भा०—( राजानः ) प्रजा में विशेष मान, आदर, प्रतिष्ठा से चमकने वाले तेजस्वी एवं प्रजा को अनुरञ्जन करने वाले राजा गण ( एषाम् ) इन शत्रुओं के ( दुर्गा ) दुर्गम गढ़ों को और ( द्विषः ) शत्रु के ( पुरः ) नगरों और उनमें रहने वाले निवासियों को ( वि वि घ्नन्ति ) विविध उपायों से विनष्ट करते हैं और ( दुरिता ) दुःखदायी कारणों को ( तिरः नयन्ति ) दूर करते हैं ।

सुगः पन्था अनृक्षर आदित्यास ऋतं यते । नात्रावखादो अस्ति वः ४

भा०—हे ( आदित्यासः ) आदित्य के समान तेजस्वी, ४८ वर्ष के ब्रह्मचर्य पालक विद्वानो! एवं अधिकारी पुरुषो! ( ऋतं यते ) सत्य ज्ञान और धर्मशास्त्र तथा वेदानुकूल चलने वाले का ( पन्थाः ) मार्ग सदा ( सुगः ) अति सुगम और ( अनृक्षरः ) काँटों और विघ्न, भय बाधा से रहित होता है। ( अत्र ) इस मार्ग में हे विद्वान् पुरुषो! ( वः ) आप लोगों के लिये भी ( न अवखादः अस्ति ) किसी प्रकार का कोई भय नहीं, न्यायानुसार मार्ग के उल्लंघन करने पर जहां प्रजाजन को राजगण का भय होता है वहां अन्याय से वर्त्तने वाले राजा और उसके अधीन अधिकारियों को भी पीड़ित प्रजा से भय उत्पन्न होता जाता है।

यं यज्ञं नयथा नर आदित्या ऋजुना पथा। प्र वः स धीतये नशत्॥५

भा०—हे (आदित्याः) सूर्य के समान सत्-मार्गों के प्रकाशक विद्वान् पुरुषो! हे ( नरः ) नेता पुरुषो! आप लोग ( यम् ) जिस ( यज्ञं ) प्रजा पालन के कार्य को (ऋजुना) सरल, कुटिलता रहित, न्यायानुकुल (पथा) मार्ग से ( नयथ ) ले जाते हो ( सः ) वह राजा और राज्य कार्य ( वः धीतये ) आप लोगों के ऐश्वर्य भोग के लिये ( प्र नशत् ) प्राप्त हो। इति द्वाविंशो वर्गः॥

स रत्नं मर्त्यो वसु विश्वं तोकमुत त्मना। अच्छा गच्छत्यस्तृतः॥६

भा०—( सः ) वह ( मर्त्यः ) मनुष्य ( अस्तृतः ) किसी प्रकार भी पीड़ित और व्यथित न होकर ( विश्वम् ) सब प्रकार के ( रत्नं ) रमण करने योग्य, सुखप्रद, ( वसु ) ऐश्वर्य ( उत ) और ( त्मना ) अपने ही प्राण और बल से उत्पन्न और ( तोकम् ) पुत्र को भी ( अच्छा ) भली प्रकार ( गच्छति ) प्राप्त होता है।

कथा राधाम सखायः स्तोमं मित्रस्यार्यम्णः। महि प्सरो वरुणस्य॥७

भा०—हे ( सखायः ) मित्र जनो! ( मित्रस्य ) सबके सुहृद् ( अर्यम्णः ) न्यायाधीश के ( स्तोमं ) गुणों का वर्णन या पदाधिकार का

हम ( कथा ) किस प्रकार से ( राधाम ) करें। ( वरुणस्य ) सर्व श्रेष्ठ राजा का ( प्सरः ) भोगने योग्य ऐश्वर्य और वैभव विस्तार या स्वरूप भी ( महि ) बहुत बड़ा है।

मा वो घ्नन्तं मा शपन्तं प्रति वोचे देवयन्तम् सुम्नैरिद्व आ विवासे ८

भा०—हे धार्मिक पुरुषो ! विद्वान् अधिकारी जनो ! और प्रिय प्रजा-जनो ! मैं प्रजाजन और राजा भी ( वः घ्नन्तम् ) आप लोगों को मारने और पीड़ा देने वाले के (प्रति मा वोचे) कभी प्रेम से बात न करूं । और ( शपन्तं ) व्यर्थ निन्दा वचन कहने वाले से भी ( मा प्रति वोचे ) प्रेम से न बोलूं । और ( वः ) आप लोगों के ( देवयन्तम् ) उत्तम गुणों और विजयी पुरुषों को चाहने वाले मित्र वर्ग की ( सुम्नैः इद् ) सुखजनक उत्तम पदार्थों द्वारा ही मैं (आ विवासे) सेवा करूं या आच्छादित करूं। मित्र गण को सब प्रकार से ऐश्वर्यों से पूर्ण करूं।

चतुरश्चिद्ददमानाद्बिभीयादा निधातोः। न दुरुक्ताय स्पृहयेत् ६।२३

भा०—( चतुरः चित् ) चार पदार्थों को ( ददमानात् ) देने वाले पुरुष से और ( निधातोः ) चोरे हुए पदार्थों को स्थान देने वाले पुरुष से भी ( आ बिभीयात् ) डरे। ( दुरुक्ताय ) दुष्ट, दुःखदायी वचन और उसको कहने वाले को कभी (न स्पृहयेत्) स्नेह न करे । अथवा—द्यूत खेलने वाला पुरुष (चित्) जिस प्रकार ( चतुरः ददमानात् ) चार पासों को हाथ में लेने वाले से तभी तक डरता है ( आनिधातोः ) जब तक वह पासों को नीचे नहीं धरता, उसी प्रकार (दुरुक्ताय) दुर्वचन कहने वाले से डरे। उससे कभी प्रेम न करे [निरुक्तकार यास्क तथा सायण] । (हे मनुष्याः ! घ्नतः शपतो ददमानात् निधातोरेताश्चतुरः प्रति न विश्वसेत् बिभीयात्। दुरुक्ताय न स्पृहयेत्। एतान् मित्रकर्तुं नेच्छेत् ।) मारने वाले हत्याकारी, निन्दक, विष आदि देने वाले और अन्याय से पर पदार्थ के लेने वाले इन चारों पर विश्वास न करे।

इनसे डरे। और दुर्वचन कहने वाले के साथ प्रेम न करे। इन चारों को मित्र न बनावे [ दया० ]।

'चतुरःचित् ददमानात्'—इस प्रसंग में मनु कहते हैं—

अग्निदान् भक्तदाँश्चैव तथा शस्त्रावकाशदान्।

संनिधातृंश्च मोषस्य हन्यात् चौरमिवेश्वरः॥ मनु० अ० ९। २७७॥

(१) दूसरे के घर में आग लगा देने वाले (२) विषयुक्त अन्न देनेवाले, (३) हत्या के लिए शस्त्र देने वाले और (४) हत्यारे, विषदायी और अग्नि लगानेवाले इन तीनों प्रकार के अपराधियों को अपने घर में स्थान देनेवाले इन चारों को, और चोरे हुए पदार्थ को अपने घर में रखने वालों को भी राजा चोर के समान दण्ड दे। वेद में भी उक्त चारों पदार्थों को देने वाले रखने चोरित पदार्थ को लेकर रखनेवाले से भय करने और शंकित रहने को कहा है।

अथवा—( चतुरः चित् ददमानात् ) धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनके प्राप्ति साधनों के देनेवाले पुरुष से और (आ निधातोः) वीर्य निषेक करनेहारे मातापिता से भी (बिभीयात्) भय करे। परन्तु (न दुरुक्ताय स्पृहयेत्) उनके दुर्वचन को स्वयं ग्रहण न करे। अथवा उनके दोषयुक्त वचन या बुरे उपदेश का आदर या प्रेम न करे। राजापक्ष में—( चतुरःचित् ) चारों सेनाओं के देने में समर्थ और प्रचुर कोश वाले राजा से भय करे। परन्तु दुर्वचन कहानेवालो का आदर न करे। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

[ ४२ ]

कण्वो घौर ऋषिः॥ पूषा देवता॥ छन्दः—१, ६—निचृद्गायत्री। २, ३, ५—८, १० गायत्री॥ दशर्चं सूक्तम्॥

**सं पूषन्नध्वनस्तिर व्यंहो विमुचो नपात्। सक्ष्वा देव प्र णस्पुरः १**

भा०—हे ( पूषन् ) सबके पालनपोषण करनेहारे सूर्य और पृथिवी के समान और रक्षा से सबके पोषक! तू (अध्वनः) मार्गों को (सं तिर)

अच्छी प्रकार पार पहुंचा दे। हे (विमुचः नपात्) विविध पदार्थों और सुखों को प्रजा पर न्यौछावर करनेवाले, मेघ के समान उदार पुरुषों को न नष्ट होने देनेवाले राजन् ! तू (अंहः वि तिरः) पाप और रोगपीड़ा से मुक्त कर। हे ( देव ) प्रकाशवन् ! दानशील! तू ( नः पुरः ) हमारे आगे (प्र सक्ष्व) मार्गदर्शक रूप में रह । अथवा—(अध्वनः सं वि तिर) मार्ग के पार कर। और हे ( नपात् अंहः विमुचः ) प्रजा को न गिरने देनेवाले ! तू पाप और दुःख से मुक्त कर ।

यो नः पूषन्नघो वृको दुःशेव आदिदेशति । अप स्म तं पथो जहि।२

भा०—हे ( पूषन् ) प्रजा के पोषक ! ( यः ) जो ( अघः ) पापी ( वृकः ) दूसरों के धनों का चोर, ( दुःसेवः ) दुःखदायी होकर ( नः ) हम पर ( आदिदेशति ) शासन करता है ( तं ) उसको तू (पथः) हमारे मार्ग से कांटे के समान ( अप जहि ) दूर उखाड़ फेंक ।

अप त्यं परिपन्थिनं मुषीवाणं हुरश्चितम् । दूरमधि स्रुतेरज ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन् ! तू ( परिपन्थिनम् ) दूसरे पर आक्रमण करने के लिए मार्ग से हटकर छुपने वाले और मार्ग में जाते हुए पर आक्रमण करनेवाले, ( मुषीवाणम् ) चोरी से मूसे के समान दूसरे के घर में सेंध पाड़ कर चुराये धन को ले भागनेवाले, (हुरः चितम्) नाना प्रकार की कुटिल चालों से या झपटकर दूसरे के पदार्थों को हर लेनेवाले, ( त्यं ) इन चार प्रकार के चोरों को ( स्रुतेः ) मार्ग से ( दूरम् ) दूर ( अधि अप अज ) बलपूर्वक शासन द्वारा दूर कर ।

त्वं तस्य द्वयाविनोऽघशंसस्य कस्य चित् । पदाभि तिष्ठ तपुषिम्।४

भा०—हे राजन् ! ( त्वं ) तू ( द्वयाविनः ) आंख के सामने, देखते देखते, और पीठ पीछे दोनों प्रकार से पदार्थ चुराने वाले, ( अघशंसस्य ) पाप और हत्यादि करने की घात में लगे, (कस्य चित्) क्या तेरा क्या तेरा करके

चुरानेवाले ( तस्य ) उस उस नाना प्रकार के दुष्ट पुरुष के ( तपुषिम् ) प्रजा को सन्ताप देनेवाले गण के (पदा) ऊपर पैर रखकर, उन पर बलपूर्वक शासन करके (अभि तिष्ठ) उनका मुक़ाबला कर, उनको वीरतापूर्वक दबा।

आ तत्ते॑ दस्रमन्तुमः पूष॒न्नवो॑ वृणीमहे। येन॑ पि॒तॄनचो॑दयः ॥५॥२४

भा०—हे ( दस्र ) दुष्टों के नाश करनेहारे ! हे ( मन्तुमः ) उत्तम ज्ञान और मनन सामर्थ्यवाले ! हे (पूषन्) प्रजा के पोषक राजन् ! ( येन ) जिस शासन-बल से तू ( पितॄन् ) माँ बाप के समान प्रजा के पालक अधिकारी पुरुषों को ( अचोदयः ) प्रेरित करता है, हम ( ते ) तेरे (तत्) उस ( अवः ) प्रजा के रक्षण तथा व्यवहार को ( वृणीमहे ) चाहते हैं। इति चतुर्विंशो वर्गः।

अधा॑ नो विश्वसौभग हिर॑ण्यवाशीमत्तम। धना॑नि सु॒षणा॑ कृधि ।६

भा०—हे ( विश्वसौभग ) समस्त श्रेष्ठ सुखप्रद ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! हे ( हिरण्यवाशीमत्तम ) सबसे अधिक हित और प्रिय वाणी के बोलनेहारे परमेश्वर ! और सुन्दर सुवर्ण और लोहादि धातु के बने शस्त्रास्त्रों से सम्पन्न राजन् ! उत्तम वाणी से युक्त विद्वन् ! ( अथ ) और तू ( नः ) हमें उत्तम शिल्पी के समान ( सु-सना ) सुख से प्रदान करने योग्य ( धनानि ) धन और ऐश्वर्य ( कृधि ) प्रदान कर।

अति॑ नः स॒श्चतो॑ नय सु॒गा नः॑ सु॒पथा॑ कृणु। पूष॑न्नि॒ह क्रतुं॑ विदः ॥७॥

भा०—हे ( पूषन् ) समस्त जगत् के पोषक परमेश्वर ! राष्ट्र प्रजा के पोषक राजन् ! विद्वन् ! ( नः ) हम लोगों को (सुगा) सुख से जाने योग्य ( सुपथा ) उत्तम मार्ग से ( अति कृणु ) सब विघ्न बाधाओं से पार कर। और हमें ( सश्चतः कृणु ) उद्देश्यों तक पहुंचने वाला बना। ( इह ) इस संसार में तू ही ( क्रतुम् ) कर्त्तव्यों और ज्ञानों को ( विदः ) जानता और बनाता है हमें भी आकर ज्ञान करा। हे विद्वन् ! तू उन सब कर्त्तव्यों और विज्ञानों को स्वयं ( विदः ) जान और जना।

अभि सूयवसं नय न नवज्वारो अध्वने। पूषन्निह क्रतुं विदः॥ ८॥

भा०—हे (पूषन्) सबको अन्न आदि से परिपुष्ट करनेहारे प्रभो! राजन्! विद्वन्! (सूयवसं) जिस प्रकार पशुपाल अपने पशुओं को उत्तम चारे से भरे खेत में चराने के लिए ले जाता है उसी प्रकार तू भी हमें (सूयवसम् अभि नय) उत्तम यव आदि अन्नों और ओषधियों से युक्त देश को पहुंचा। जिससे (अध्वने) मार्ग का (नवज्वारः) नया कोई संताप, पीड़ा, थकान आदि भी (न) न हो। (इह) इस संसार में तू ही (क्रतुं) कर्म सामर्थ्य और ज्ञान को भी (विदः) प्राप्त कर और करा।

शग्धि पूर्धि प्र यंसि च शिशीहि प्रास्युदरम्। पूषन्निह क्रतुं विदः॥९॥

भा०—हे (पूषन्) सर्वपोषक! राजन्! सभा-सेनाध्यक्ष! तू (शग्धि) सब कार्य करने में समर्थ है। तू हमें (पूर्धि) समस्त ऐश्वर्यों से पूर्ण कर। (प्र यंसि च) तू ही अच्छी प्रकार हमें सब ऐश्वर्य दान कर। (शिशीहि) तू अच्छी प्रकार तीक्ष्ण तेजस्वी हो। तू ही हमारे (उदरम्) पेटों को अन्न से (प्रासि) पूर्ण कर। तू ही (क्रतुम् विदः) समस्त कर्त्तव्यों और ज्ञानों को जान और जना।

न पूषणं मेथामसि सूक्तैरभि गृणीमसि। वसूनि दस्ममीमहे ।१०।२५

भा०—हम लोग (पूषणं) सबके पोषक पुरुष को (न मेथामसि) न मारें, उसे पीड़ित न करें। प्रत्युत (सूक्तैः) उत्तम वचनों से (अभि-गृणीमसि) उससे वार्तालाप करें। (दस्मम्) शत्रु के नाश करने वाले एवं दर्शनीय, अति उत्तम पुरुष से हम (वसूनि) ऐश्वर्यों की (ईमहे) याचना करें। अथवा—(पूषणं सूक्तैः अभि गृणीमसि, दस्मं मेथामसि) पोषक से मधुर वचन कहें, और हिंसक को मारें। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

दस्म—दसि दंश दर्शनयोः। दसि भाषार्थः। दसु उपलक्षये।

[ ४३ ]

॥ ४३ ॥ १—९ कण्वो घौर ऋषिः ॥ देवता—१, २, ४—६ रुद्रः ।
३ मित्रावरुणौ । ७—९ सोमः ॥ छन्दः—१, ७, ८ गायत्री ।
५ विराड्गायत्री । ६ पादनिचृद्गायत्री । ९ अनुष्टुप् ॥

**कद्रुद्राय प्रचेतसे मीळ्हुष्टमाय तव्यसे । वोचेम शन्तमं हृदे ॥१॥**

भा०—( प्रचेतसे ) उत्तम ज्ञान से युक्त परमेश्वर और उत्तम चित्त से युक्त विद्वान्, ( मीढुष्टमाय) सुखों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों को प्रजा पर मेघ के समान वर्षण करने वाले, ( तव्यसे ) बहुत बड़े बलशाली, (हृदे) हृदय में विराजमान, ( रुद्राय ) दुष्टों को रुलाने वाले राजा, परमेश्वर तथा उत्तम उपदेश देने वाले आचार्य के प्रसन्न करने के लिए ( शन्तमं ) अति शान्ति-दायक, सुखजनक ( वोचेम ) वचन बोलें।

**यथा नो अदितिः करत्पश्वे नृभ्यो यथा गवे । यथा तोकाय रुद्रियम् २**

भा०—(यथा) जिस प्रकार ( अदितिः ) पृथिवी ( पश्वे ) पशुओं को घास आदि खाने को देती है और ( अदितिः ) अखण्ड शासन वाली राज्यव्यवस्था या राजा (नृभ्यः) मनुष्यों की वृद्धि और हित के लिए होता हैं और ( यथा ) जिस प्रकार ( अदितिः ) गोपाल ( गवे ) गौओं के हित के लिए पालन करता है और ( यथा ) जिस प्रकार (अदितिः) माता (तोकाय) बालक के लिए अति प्रिय पोषक होती है। उसी प्रकार ( नः ) हमारे लिए शत्रु और और दुष्टों के रुलाने वाले रुद्र, परमेश्वर, राजा का यह जगत्सर्जन, दुष्टदमन आदि कार्य और विद्वान् उपदेष्टा का उपदेश आदि कार्य (करत्) हमारी कल्याण-वृद्धि करे।

**यथा नो मित्रो वरुणो यथा रुद्रश्चिकेतति । यथा विश्वे सजोषसः ॥३॥**

भा०—(यथा) जिस प्रकार ( नः ) हमें ( मित्रः ) हमारा मित्र या प्राण ( चिकेतति ) हमें चेताता और चैतन्य बनाये रखता है और (यथा)

जिस प्रकार ( वरुणः ) सर्वश्रेष्ठ विद्वान्, अज्ञानों और दुष्टों का वारक राजा ( नः चिकेतति ) हमें कुमार्ग में पैर रखने से चेताता है। और ( नः चिकेतति ) हमें वार वार चेताता रहता है। और ( यथा ) जिस प्रकार ( विश्वे सजोषसः ) समस्त प्रेम से युक्त पुरुष (नः चिकेतन्ति) हमें संकट से चेताते हैं उसी प्रकार वह ( रुद्रः ) दुष्टों का पीड़क परमेश्वर राजा और ज्ञानोपदेष्टा आचार्य भी समस्त प्रजाओं, पुत्रों और शिष्यों को उपदेश करें उनको कष्टों, दुःखों से बचावें।

गाथपतिं मेधपतिं रुद्रं जलाषभेषजम्। तच्छंयोः सुम्नमीमहे ॥ ४ ॥

भा०—( गाथपतिम् ) गाथा, ज्ञान-वाणियों और विद्वानों के परिपालक, ( मेधपतिम्) यज्ञों और यज्ञकर्ता, धर्मात्मा पवित्र पुरुषों के पालक, ( जलाषभेषजम् ) सुखकारी ओषधि और दुःख से छूटने के उपाय बतलाने वाले,(रुद्रम्) ज्ञानोपदेष्टा,विद्वान् परमेश्वर से हम(शंयोः) अति शांतिदायक और दुःखनाशक ( सुम्नम् ) परमसुख, मोक्ष की ( ईमहे ) याचना करते हैं।

यः शुक्र इव सूर्यो हिरण्यमिव रोचते। श्रेष्ठो देवानां वसुः ॥५॥२६

भा०—( यः ) जो ( शुक्रः इव ) अति दीप्ति वाला ( सूर्यः ) सूर्य केसमान ( रोचते ) प्रखर तेज से चमकता है और जो ( हिरण्यम् इव ) सुवर्ण या अपने जीव आत्मा के समान ( रोचते ) अति प्रिय है। वह (देवानां) सब विजयेच्छु विद्वानों और उत्तम पुरुषों में (श्रेष्ठः) श्रेष्ठ और (वसुः) सबको वसाने और सबमें बसने वाला परमेश्वर है। उसी प्रकार राजा, सभाध्यक्ष आदि को भी सूर्य के समान तेजस्वी, सुवर्ण और आत्मा के समान प्रिय, विद्वानों में सर्वश्रेष्ठ और सबको बसानेवाला होना उचित है। इति षड्विंशो वर्गः ॥

शं नः करत्यर्वते सुगं मेषाय मेष्ये। नृभ्यो नारिभ्यो गवे ॥ ६ ॥

भा०—वह परमेश्वर और समस्त ज्ञानों का उपदेशक वैद्य तथा राजा

( नः ) हमारे ( अर्वते ) अश्व, ( मेषाय ) भेड़ा, ( मेष्ये ) भेड़ी, (नृभ्यः) पुरुषों, ( नारिभ्यः ) स्त्रियों और ( गवे ) गौ, बैलों के लिए भी ( सुगं ) सुख और ( शं ) शान्ति ( करति ) उत्पन्न करे ।

अस्मे सोम श्रियमधि नि धेहि शतस्य नृणाम् महि श्रवस्तुविनृम्णम् ७

भा०—हे ( सोम ) सर्वज्ञापक परमेश्वर ! सबके प्रेरक ! एवं अभिषेकयोग्य राजन् ! ऐश्वर्यवन् ! तू ( अस्मे ) हममें ( नृणाम् शतस्य ) सौ पुरुषों के योग्य पर्याप्त ( श्रियम् ) लक्ष्मी, सम्पदा, ( महि ) बड़ा भारी ( श्रवः ) अन्न और ज्ञान तथा ( तुविनृम्णम् ) बहुत से प्रकारों का धन ( निधेहि ) संग्रह करके रख, प्रदान कर ।

मा नः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त। आ न इन्दो वाजे भज॥८॥

भा०—( सोमपरिबाधः ) उत्तम पदार्थों, पुरुषों और राजा और राष्ट्र को पीड़ित करने वाले पुरुष ( नः ) हम पर ( मा जुहुरन्त ) बलात्कार न कर सकें । हे (इन्दो) दयालो, वेग से या द्रुतगति से शत्रुओं पर आक्रमण करनेहारे ! तू ( नः ) हमारे हित के लिए ( वाजे ) युद्ध के बीच ( नः आ भज ) हमें नियुक्त कर, या हमें प्राप्त हो ।

यास्ते प्रजा अमृतस्य परस्मिन्धामन्नृतस्य ।
मूर्धा नाभा सोम वेन आभूषन्तीः सोम वेदः ॥ ९ ॥ २७ ॥ ८ ॥

भा०—हे ( सोम ) सर्वेश्वर ! राजन् ! (ऋतस्य) सत्यस्वरूप, (अमृतस्य) कभी नाश न होने वाले ( ते ) तेरी ( याः ) जो ( प्रजाः ) प्रजाएं हैं, तू उनके ( मूर्धा) सिर के समान प्रमुख नायक एवं पूज्य और (नाभा) नाभि या केन्द्र में सबका आश्रय होकर ( यस्मिन् धामनि ) सबसे उत्कृष्ट दुःख रहित स्थान या ऐश्वर्य में ( आभूषन्ति ) रहना चाहती हैं उनको तू ( वेनः ) सदा चाह, उनको प्रेम कर। और उनको समृद्ध रूप में ( वेदः ) स्वयं प्राप्त कर । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

[ ४४ ]

प्रस्कण्व ऋषिः ॥ देवता—१—१४ अग्निः ॥ छन्दः—१, ५ उपरिष्टाद्विराडबृहती । ३ निचृदुपरिष्टाद्बृहती । ७, ११ निचृत्पथ्याबृहती । १२ भुरिग्बृहती । १३ पथ्याबृहती च । २,४,६,८, १४ विराट् सतःपंक्तिः । १० विराड्विस्तारपंक्तिः । ९ आर्ची त्रिष्टुप् ॥ चतुर्दशर्चं सूक्तम् ॥

अग्ने॒ विव॑स्वदु॒षस॑श्चि॒त्रं राधो॑ अमर्त्य ।
आ दा॒शुषे॑ जातवेदो वहा॒त्वम॒द्या दे॒वाँ उ॑ष॒र्बुधः॑ ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! हे ( अमर्त्य ) जरामरण से रहित ! हे ( जातवेदः ) समस्त पदार्थों के जाननेहारे, प्रत्येक पदार्थ में व्यापक ! ऐश्वर्यवन् ! विद्यावन् ! समस्त जीवों के स्वामिन् ! तू (दाशुषे) अपने को समर्पण कर देनेवाले साधक को ( उषसः ) उषाकाल में से उत्पन्न होने वाले, ( विवस्वत् ) सूर्य के समान प्रकाशवाले, ( चित्रम् ) अद्भुत, (राधः) ऐश्वर्य के समान (उषसः) पापों के जला देनेवाली विशोका प्रज्ञा के उदय कालों में ( विवस्वत् = वि-वसु-वत् ) विशेष प्राणों के सामर्थ्यों से युक्त, (चित्रम्) चेतना या चितिशक्ति से युक्त, (राधः) साधना का बल (आवह) प्राप्त करा । ( त्वम् ) तू ( अद्य ) आज भी ( उषर्बुधः ) प्रातःकाल ब्राह्ममुहूर्त्त में जागनेवाले एवं उस विशोका प्रज्ञा के द्वारा विशेष ज्ञान सम्पन्न होनेवाले, ( देवान् ) विद्वान् ज्ञाननिष्ठ पुरुषों को भी ( आवह ) अपने में धारण कर । इसी प्रकार हे राजन् ! प्रतापी सभाध्यक्ष ! तू ( उषसः ) पापी लोगों के संतापकारी अपने उदयों या उत्थानोंसेही प्रजा को अद्भुत ऐश्वर्य प्रदान कर और विद्वान् विजयी पुरुषों को धारण कर ।

जुष्टो॒ हि दू॒तो असि॑ हव्य॒वाह॒नोऽग्ने॑ र॒थीर॑ध्व॒राणा॑म् ।
स॒जूर॒श्विभ्या॑मु॒षसा॑ सु॒वीर्य॑म॒स्मे धे॑हि॒ श्रवो॑ बृ॒हत् ॥ २ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन् ! ज्ञानवन् ! विद्वन् !

जिस प्रकार अग्नि अपने बीच में पड़े आहुति के पदार्थों को सूक्ष्म रूप से अति गुणकारी करके दूर देश तक पहुंचाता है उसी प्रकार तू भी ( हव्य-वाहनः ) ले जाने और ले आने योग्य वृत्तान्तों और संदेशों को सूक्ष्म रूप से प्रजा के हित के लिए ले जानेहारा है। इसीलिए तू ( जुष्टः ) सबका प्रीतिपात्र और ( दूतः ) दूत एवं शत्रुओं का तापक होने से भी 'दूत' ( असि ) होने योग्य है। तू ( अध्वराणाम् ) कभी शस्त्रादि से भी न मारने योग्य अवध्य पुरुषों में से ( रथीः ) रथवान् नायक के समान सर्व-प्रमुख है। तू ( अश्विभ्याम् ) दिन रात्रि और ( उषसा सजूः ) प्रातः उषा काल इनसे युक्त होकर अग्नि जिस प्रकार उत्तम बलकारी अन्न प्रदान करता है उसी प्रकार हे विद्वन् ! तू भी (अश्विभ्याम्) राजा और प्रजावर्ग दोनों या दो अश्वारोही और ( उषसा ) तेजस्वी उषा के समान विद्या और प्रभाव से ( सजूः ) युक्त होकर ( अस्मे ) हमें ( सुवीर्यम् ) उत्तम वीर्य बल से युक्त ( बृहत् ) बड़े भारी राष्ट्र और ( श्रवः ) विख्यात यश को ( धेहि ) प्रदान कर। 'अग्नि'—यज्ञ के बीच नायक होने से 'रथी' है। वह परि-पाक करके वीर्यप्रद अन्न देता है। परमेश्वर पक्ष में—उपास्य होने से 'दूत' है। स्तुति योग्य होने से हव्यवाहन है। रसस्वरूप होने से अविनाशी जीवों के बीच रथी है। वह प्राण, अपान और प्रजा के उदय से बड़ा ज्ञान प्रदान करे।

अद्या दूतं वृ॑णीमहे॒ वसु॑म॒ग्निं पु॑रुप्रि॒यम् ।
धू॒मके॑तुं॒ भाऋ॑जीकं॒ व्यु॑ष्टिषु य॒ज्ञाना॑मध्वर॒श्रिय॑म् ॥ ३ ॥

भा०—( अद्य ) आज, अब, सदा हम लोग ( पुरुप्रियम् ) बहुतों को प्रसन्न संतुष्ट करने और प्रिय लगनेवाले, सर्वप्रिय ( वसुम् ) सकल विद्या और उत्तम गुणों के आश्रय, ( अग्निम् ) अग्नि के समान तेजस्वी, ( धूमकेतुम् ) अग्नि के धूम के समान शत्रुको कम्पित करनेवाले एवं प्रभाव-शाली ज्ञान और कर्म सामर्थ्य से युक्त (व्युष्टिषु) प्रातःकाल की वेलाओं में जिस प्रकार अग्नि और सूर्य विशेष दीप्तियों से युक्त होकर क्रम से उत्तरो-

त्तर दीप्तियों में बढ़ता ही जाता है उसी प्रकार ( व्युष्टिषु ) अपने राष्ट्र की विविध कामना और तेजस्विताओं के अवसर पर विशेष सौम्य एवं उत्तरोत्तर बढ़नेवाली कान्ति को प्राप्त करनेवाले, अथवा सभा को अपने वश करने में समर्थ ( यज्ञानां ) यज्ञों में ( अध्वरश्रियम् ) अश्वमेध आदि यज्ञों के विशेष आश्रयरूप अग्नि के समान ही ( यज्ञानां ) समस्त प्रजा के एक हुए संघों और प्रजापालक राजाओं के बीच में ( अध्वरश्रियम् ) अहिंस्य, या अवध्य होने के पद को विशेषरूप से प्राप्त होनेवाले ( दूतम् ) उत्तम संदेशों तथा उपासना आदि पदार्थों के ले जानेहारे पुरुषरूप से (वृणीमहे) हम चुनें ।

श्रेष्ठं यविष्ठमतिथिं स्वाहुतं जुष्टं जनाय दाशुषे ।
देवाँ अच्छा यातवे जातवेदसमग्निमीळे व्युष्टिषु ॥ ४ ॥

भा०—(व्युष्टिषु) प्रातःकाल के अवसरों में जिस प्रकार (अग्निम् ईळे) हम लोग अग्नि को प्रदीप्त कर परमेश्वर की यज्ञों में उपासना करते हैं । उसी प्रकार हम लोग ( श्रेष्ठम् ) सबसे श्रेष्ठ, उत्तम ( यविष्ठम् ) सब से अधिक बलशाली ( अतिथिम् ) अतिथि के समान पूजनीय, ( जुष्टम् ) सबके प्रेमपात्र और सेवा करने योग्य ( स्वाहुतम् ) अच्छी प्रकार आदर से बुलाये जाने योग्य ( दाशुषे जनाय ) वेतन, भृति आज्ञा आदि के देनेवाले राजा के हित के लिए ( देवान् ) विजीगीषु राजाओं, विद्वानों और वीर पुरुषों के प्रति ( यातवे ) जाने के योग्य (जातवेदसम् ) समस्त उपस्थित या वर्तमान कार्यों और व्यवस्थाओं को भली प्रकार जाननेवाले ( अग्निम् ) ज्ञानी पुरुष का (व्युष्टिषु) नाना प्रकार की इच्छा और कामनाओं की पूर्त्ति के निमित्त ( अच्छ ईळे ) मैं प्रधान पुरुष नियुक्त करूँ, भेजूँ । उसको अपने अधीन रक्खूँ ।

स्तविष्यामि त्वामहं विश्वस्यामृत भोजन ।
अग्ने त्रातारममृतं मियेध्य यजिष्ठं हव्यवाहन ॥ ५ ॥ २८ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्नि के समान तेजस्विन् ! विद्वन् ! हे (अमृत) अविनाशिन् ! हे (भोजन) सबके पालक ! हे (मियेध्य) दुःखों के नाशक ! हे ( हव्यवाहन ) ग्रहण करने योग्य अन्न, रत्न आदि पदार्थों और बलों और ज्ञानों को धारण करने वाले ! ( त्रातारम् ) सबको त्राण करने वाले (अमृतं) कभी न मरनेहारे, या न मारने योग्य, अवध्य, (यजिष्ठं) उपासना योग्य, एवं आदर सत्कार करनेयोग्य (त्रातारम्) विपत्तियों से बचानेवाले, ( त्वाम् ) तेरी ( अहम् ) मैं (स्तविष्यामि) स्तुति करूँगा । परमेश्वर अमर होने से 'अमृत' है । दूत अवध्य होने से 'अमृत' है । राजा बलमें अदम्य होने से 'अमृत' है । आत्मा नित्य होने से 'अमृत' है। परमेश्वर पालक होने से, आत्मा भोक्ता होने से राजा भोक्ता और पालक दोनों होने से 'भोजन' है । दूत भेंट, उपायन, संदेश आदि ले जाने से 'हव्यवाहन' है । ईश्वर स्तोतव्य गुण और जगत् के लोकधारक होने से 'हव्यवाहन' है । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

सुशंसो बोधि गृणते यविष्ठ्य मधुजिह्वः स्वाहुतः ।
प्रस्कण्वस्य प्रतिरन्नायुर्जीवसे नमस्या दैव्यं जनम् ॥ ६ ॥

भा०—हे ( यविष्ठ्य ) अति युवा पुरुष के समान कभी क्षीण न होने वाले बलवीर्य से युक्त, अतिप्रिय ! मनोहर ! हे ( नमस्य ) नमस्कार करने योग्य पूज्य ! परमेश्वर और राजन् ! तू ( सुशंसः ) उत्तम स्तुतियों से युक्त एवं उत्तम अनुशासनों, शिक्षाओं से युक्त ( मधुजिह्वः ) मधुर, मनन करने योग्य ज्ञानों और वचनों को जिह्वा पर धारण करनेवाला, मधुर वाणी से बोलने वाला, ( स्वाहुतः ) उत्तम आदर सत्कार से सत्कृत होकर तू ( प्रस्कण्वस्य ) उत्तम मेधावी या भली प्रकार शत्रुओं के नाश करने वाले पुरुष को ( जीवसे ) जीवन के लिए ( आयुः ) दीर्घायु ( प्र तिरन् ) बढ़ाता हुआ ( दैव्यं ) दिव्य, विद्वानों में श्रेष्ठ, एवं वीर पुरुषों में उत्तम जन की रक्षा कर और ( गृणते ) स्तुति करने वाले को ( बोधि ) ज्ञान प्रदान कर । ( गृणते बोधि ) उपदेश करने वाले के वचनों का श्रवण कर

उनको समझा । ( गृणते बोधि ) प्रार्थना करने वाले का अभिप्राय जान । अथवा हे पुरुष ! तू ( दैव्यं जनं नमस्य ) राजा, विद्वान् एवं ईश्वर के भक्तजन को नमस्कार कर ।

होतारं विश्ववेदसं सं हि त्वा विश इन्धते ।
स आ वह पुरुहूत प्रचेतसोऽग्ने देवाँ इह द्रवत् ॥ ७ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् ! राजन् ! परमेश्वर ! (विश्ववेदसं ) समस्त ऐश्वर्य के स्वामी ( होतारम् ) सब सुखों और ऐश्वर्य के दाता, ( त्वा ) तुझको ( हि ) ही ( विशः ) समस्त प्रजाएँ (सम् इन्धते) अच्छी प्रकार प्रदीप्त करतीं, हृदय में चेतातीं, एवं बलवान् तेजस्वी बनाती हैं । हे (पुरुहूत) बहुतसी प्रजाओं से स्तुति योग्य ! तू (प्रचेतसः ) उत्कृष्ट ज्ञानवाले ( देवान् ) विद्वानों और विजयेच्छु पुरुषों को (इह) इस राष्ट्र में (द्रवत्) अतिशीघ्र (आवह) प्राप्त करा । स्वयं उनको प्राप्त हो । प्रजाएँ राजा को तेजस्वी बनाती हैं । वह विद्वानों, विजयी सैनिकों को शीघ्र प्राप्त करे ।

सवितारमुषसमश्विना भगमग्निं व्युष्टिषु क्षपः ।
कण्वासस्त्वा सुतसोमास इन्धते हव्यवाहं स्वध्वर ॥ ८ ॥

भा०—हे ( स्वध्वर ) उत्तम अहिंसनीय, प्रबलतम ! उषाकाल के समान शत्रुरूप अन्धकार के नाशक ! (कण्वासः) मेधावी, बुद्धिमान्, शत्रुहन्ता और (सुतसोमासः) उत्तम ऐश्वर्ययुक्त पदार्थों को उत्पन्न करनेवाले, अथवा सोम अर्थात् राजा के पद पर अभिषेक करनेवाले पुरुष (हव्यवाहं) देने और स्वीकार करने योग्य पदार्थों को धारण करने वाले (त्वा) तुझको, ( सवितारम् ) सूर्य के समान तेजस्वी (अश्विना ) सूर्य चन्द्र से युक्त दिन रात्रि के समान प्रकाशक शत्रुसंतापक और प्रजा को शान्तिदायक (भगं) ऐश्वर्यवान् ( अग्निम् ) अग्नि के समान तेजस्वी रूप में ( इन्धते ) प्रदीप्त करते हैं, तुझे अधिक शक्तिशाली, प्रभाववान् और तेजस्वी करते हैं ।

पतिर्ह्यध्वराणामग्ने दूतो विशामसि ।
उषर्बुध आ वह सोमपीतये देवाँ अद्य स्वर्दृशः ॥ ९ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन् ! तू ( अध्वराणाम् ) यज्ञों के पालक अग्नि के समान हिंसादि से रहित प्रजापालन के कार्यों में और शत्रु से न मारे जाने वाले वीर पुरुषों के बीच उन सबका (पतिः) स्वामी और (विशाम्) समस्त अधीन प्रजाओं का (दूतः) आदर योग्य एवं संदेशहर या प्रमुख ( असि ) है । तू ( सोमपीतये ) राष्ट्र के ऐश्वर्यों को आनन्दप्रद अन्न आदि ओषधि-रसों के समान पान करने या उपभोग करने के लिए ( स्वर्दृशः ) सुख ज्ञान और मोक्षानन्द के देखनेवाले ( उषर्बुधः ) प्रातःकाल अग्नि और सूर्य के समान चेतनेवाले तेजस्वी, अप्रमादी, ज्ञानी ( देवान् ) विद्वान् और वीर पुरुषों को ( अद्य ) आज सदा ( आवह ) धारण कर ।

अग्ने पूर्वा अनूषसो विभावसो दीदेथ विश्वदर्शतः ।
असि ग्रामेष्ववितता पुरोहितोऽसि यज्ञेषु मानुषः ॥ १० ॥ २६ ॥

भा०—हे ( विभावसो ) विशेष दीप्ति या प्रकाश से समस्त लोकों को आच्छादित करनेवाले ( अग्ने ) अग्नि और सूर्य के समान तेजस्विन् ! तू ( पूर्वाः उषसः अनु ) पूर्व के उषाकालों या दिनों के समान ही ( विश्वदर्शतः ) समस्त संसार में दर्शनीय होकर ( दीदेथ ) प्रकाशित हो और विज्ञान और तेज का प्रकाश कर । तू ( ग्रामेषु ) जनसंघों और प्रजा के निवास योग्य स्थानों और संग्रामों में ( अविता असि ) ज्ञानदाता और रक्षक हो । ( यज्ञेषु ) यज्ञों में, प्रजापालन आदि के उत्तम कार्यों में ( मानुषः ) सब मनुष्यों का हितकारी होकर ( पुरः हितः असि ) प्रदीप्त अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश और सत्यासत्य के विवेक के लिए साक्षीरूप से आगे उत्तम पद पर स्थापित (असि) किया जाय । इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

नि त्वा यज्ञस्य साधनमग्ने होतारमृत्विजम् ।
मनुष्वद्देव धीमहि प्रचेतसं जीरं दूतममर्त्यम् ॥ ११ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! ( त्वा ) तुझको हम लोग ( यज्ञस्य साधनम् ) सुप्रबद्ध, सुसंगत ब्रह्माण्ड, जगत् के ( साधनम् ) बनाने, पालने और आश्रय देनेहारा, (होतारम्) समस्त सुखों के देनेहारा, या समस्त जगत् को अपने भीतर ले लेनेहारा, ( ऋत्विजम् ) शरीर में प्राणों को स्थापन करनेवाला, सूर्य के समान ऋतुवत् कल्पों २ में प्रलय और सृष्टि करनेवाला, ( प्रचेतसम् ) उत्कृष्ट ज्ञान वाला, (अमर्त्यम् ) अविनाशी, नित्य, ( जीरम् ) सबको संहार करनेवाला, कालस्वरूप ( दूतम्) सर्वोपास्य ( मनुष्वत् ) ज्ञान, सामर्थ्य से सम्पन्न ( नि धीमहि ) करके जानते और मानते हैं और स्थिर करते हैं। विद्वान् राजा के पक्ष में—प्रजापालन के साधक, सुखों के दाता, प्रति ऋतु यज्ञ के कर्ता, अथवा—ऋतु अर्थात् सदस्यों से सम्बद्ध, उत्तम विद्वान् शत्रुओं को नाशकारी, प्रतापी, दूत के समान अवध्य प्रबल जान कर ( मनुष्वत् ) मानवों से युक्त तुझको राष्ट्र के परम पद पर स्थापित करते हैं ।

यद्देवानां मित्रमहः पुरोहितोऽन्तरो यासि दूत्यम् ।
सिन्धोरिव प्रस्वनितास ऊर्मयोऽग्नेर्भ्राजन्ते अर्चयः ॥ १२ ॥

भा०—हे ( मित्रमहः ) मित्र अर्थात् सूर्य के समान महान् तेज और सामर्थ्य वाले ! तथा (मित्रमहः) मित्रों, स्नेह करने वाले सुहृदों में से सबसे अधिक पूजनीय परमेश्वर ! तू ( देवानां ) समस्त सूर्य, पृथिवी आदि लोकों और विद्वानों के बीच ( यत् ) ही ( पुरः हितः ) सबके साक्षी रूप से विद्यमान सर्वोच्च पद पर स्थापित, ( अन्तरः ) सबके अन्तःकरणों में व्यापक, अन्तर्यामी, होकर ( दूत्यम् यासि ) सर्वोपास्य पद को प्राप्त है । ( सिन्धोः ) महान् सागर के ( प्र-स्वनितासः ) भारी गर्जना करने वाले ( ऊर्मयः ) तरंग जिस प्रकार उमड़ते हैं और ( अग्नेः ) आग की

( अर्चयः ) ज्वालाएं जिस प्रकार ( भ्राजन्ते ) भड़का करती हैं उसी प्रकार ( सिन्धोः ) सर्वत्र व्यापक, एवं सबको अपने भीतर बांधने वाले या सबको चलाने हारे, शक्ति और ज्ञान के अगाध सागर तेरे में से ही ये सब तरंगें उमड़तीं और प्रकाशस्वरूप तेरी ही समस्त ये ज्योतिज्वालाएं चमक रही हैं। दूत और विद्वान् के पक्ष में—हे ( मित्रमहः ) मित्र राजा के समान पूज्य! ( अन्तरः सन् पुरोहितः दूत्यं यासि ) मित्र और शत्रुरूप दोनों के बीच तू साक्षी रूप होकर दूतकर्म के लिये जा। ( ते प्रस्वनितासः सिन्धोः ऊर्मयः इव अग्नेः अर्चयः इव भ्राजन्ते ) तेरे गर्जना पूर्ण वचन सिन्धु की तरंगों और अग्नि की ज्वालाओं के समान उमड़ें, उठें और चमकें।

श्रुधि श्रुत्कर्ण वह्निभिर्देवैरग्ने सयावभिः।
आ सीदन्तु बर्हिषि मित्रो अर्यमा प्रातर्यावाणो अध्वरम् ॥ १३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्! हे ( श्रुत्कर्ण ) कानों से उत्तम रीति से ध्यानपूर्वक श्रवण करने वाले विद्वन्! राजन्! तू ( सयावभिः ) तेरे साथ सदा प्रयाण करने और जाने वाले सदा सहयोगी, ( वह्निभिः ) राज्य के कार्यों को अपने ऊपर धारण करने वाले, (देवैः) विद्वानों और विजयेच्छु और व्यवहारज्ञ पुरुषों के साथ ( श्रुधि ) प्रजा के धर्म, व्यवहारों को श्रवण कर। ( अध्वरम् ) अबध्य, एवं अंहिसनीय, तिरस्कार न करने योग्य, उच्च आदरणीय पदको प्राप्त होकर ( मित्रः ) सबका स्नेही, (अर्यमा) न्यायाधीश और ( प्रातर्यावाणः ) प्रातःकाल ही अपने कार्य पर दत्त चित्त होकर सबसे पूर्व उपस्थित होने वाले विद्वान् जन ( बर्हिषि ) आदर योग्य बड़े २ पदों और आसनों पर ( आसीदन्तु ) विराजें।

शृण्वन्तु स्तोमं मरुतः सुदानवोऽग्निजिह्वा ऋतावृधः।
पिबतु सोमं वरुणो धृतव्रतोऽश्विभ्यामुषसा सजूः ॥ १४ ॥ ३० ॥

भा०—( सुदानव ) उत्तम व्यवस्थित रीति से देने वाले ( ऋतावृधः ) सत्य के बढ़ाने और सत्य के बल से बढ़ने वाले ( अग्निजिह्वाः )

विद्वान् पुरुषों को अपनी वाणी या मुख बनाने वाले (मरुतः) प्रजा के मनुष्य ( स्तोमम् ) न्यायपूर्वक कहे आज्ञा वचनों को ( शृण्वन्तु ) श्रवण करें। वे और ( वरुणः ) स्वयं प्रजाओं द्वारा वरण किया गया, सर्वश्रेष्ठ न्यायाधीश, ( धृतव्रतः ) समस्त व्रतों नियमों को धारण करने वाला, ( अश्विभ्याम् ) दो मुख्य विद्वानों और ( उषसा ) दुष्ट पापी पुरुषों को संताप देने वाली पोलिस अथवा तत्वप्रकाश करने वाली न्यायसभा के ( सजूः ) साथ मिल कर ( सोमम् ) कूट पीस कर निकले ओषधि रस के समान वादविवाद द्वारा निर्णय किये तत्व को ( पिबतु ) ग्रहण करे। अर्थात् प्रजाजन विद्वान् वकील को प्रमुख करें, सत्य से बढ़ें, उत्तम रीति से फीस शुल्क दें और न्याय प्राप्त करें। न्यायाधीश दो विद्वानों तथा न्यायसभा या ज्यूरी से मिल कर तत्व को ग्रहण करे। सेनापति और सैनिकों के पक्ष में—( मरुतः ) वीर सैनिक वायु के समान तीव्र ( सुदानवः ) उत्तम रीति से शत्रु को काटने और प्रजा के पालक और उत्तम वेतन दिये जाकर ( ऋतावृधः ) बल और राष्ट्र को बढ़ाते हुए ( स्तोमं ) आज्ञा वचन सुनें। ( वरुणः ) राजा, नियम पालक होकर विद्वानों और चतुरंग सेना और राजसभा से मिल कर ( सोमं ) राष्ट्र को वश करे, भोग करे। इति त्रिंशो वर्गः ॥

## ( ४५ )

प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ १—१० अग्निर्देवा देवताः ॥ छन्दः—१ भुरिगुष्णिक् । ५ उष्णिक् । २, ३, ७, ८ अनुष्टुप् । ४ निचृदनुष्टुप् । ६, ९, १० विराडनुष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ।

त्वम॑ग्ने॒ वसूँ॑रि॒ह रु॒द्राँ आ॑दि॒त्याँ उ॒त ।
यजा॑ स्वध्व॒रं जनं॒ मनु॑जातं घृत॒प्रुष॑म् ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् विद्वन्! ( त्वम् ) तू ( इह ) इस संसार में वा राष्ट्र में (वसून्) बसने वाले, २४ वर्ष के ब्रह्मचारी, (रुद्रान्)

प्राणों के संयमी, ४४ वर्ष के ब्रह्मचारी ( उत ) और ( आदित्यान् ) ४८ वर्ष के तेजस्वी विद्वानों को अथवा ( वसून् रुद्रान् आदित्यान् ) ब्राह्मणों, क्षत्रियों और व्यापारी वैश्य गणों को (यज) एकत्र कर। और हे राजन् तू ( सु अध्वरः ) उत्तम यज्ञशील, अहिंसक और (मनुजातं) ज्ञानवान् मननशील, आचार्य आदि की शिक्षा प्राप्त करके शास्त्रनिष्णात, या विद्वान् हुए, (घृतप्रुषम्) जलादि से अन्नादि पोषक पदार्थों के सेवन करने वाले तेजस्वी, तथा (घृतप्रुषम्) विधिपूर्वक जलों और ज्ञानों द्वारा स्नात हुए, स्नातक विद्वान् ( जनं ) पुरुष को भी (यज) ऐश्वर्य प्रदान कर तथा उनका सत्संग कर।

श्रुष्टीवानो हि दाशुषे देवा अग्ने विचेतसः।
तान् रोहिदश्व गिर्वणस्त्रयस्त्रिंशतमा वह ॥ २ ॥

भा—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्! राजन्! ( विचेतसः ) विविध प्रकार के शास्त्रों के ज्ञाता ( देवाः ) विद्या के दाता, विद्वान् आचार्यगण भी ( दाशुषे ) भक्तिपूर्वक दान देनेवाले शिष्य के लिए ही (श्रुष्टीवानः) उत्तम अन्न आदि को प्राप्त करें। हे ( रोहिदश्व ) रक्तवर्ण के अश्वों या अश्वारोही सैनिकों के स्वामिन्! हे ( गिर्वणः ) स्तुति वाणियों के पात्र! तू ही (तान्) उन ( त्रिंशतम् ) तेंतीस प्रकार के विद्वानों को (आवह) प्राप्त कर।

प्रियमेधवदत्रिवज्जातवेदो विरूपवत्।
अङ्गिरस्वन्महिव्रत प्रस्कण्वस्य श्रुधी हवम् ॥ ३ ॥

भा०—हे ( जातवेदः ) विद्वन्! ऐश्वर्यवन्! राजन्! हे (महिव्रत) महान् कर्त्तव्य करनेवाले! ( प्रियमेधवत् ) अति मनोहर बुद्धि वाले प्रतिभावान् पुरुष के समान ( अत्रिवत् ) तीनों तापों से रहित, सुखयुक्त पुरुष के समान, और ( विरूपवत् ) नाना रूपों को धारण करनेवाले बहुश्रुत के समान और ( अंगिरस्वत् ) अंगों में बलकारक प्राण के समान होकर ( प्रस्कण्वस्य ) उत्कृष्ट कोटि के विद्वान् पुरुषों के ( हवम् ) उपादेय ज्ञानयुक्त वचन को ( श्रुधि ) श्रवण कर।

महिकेरव ऊतये प्रियमेधा अहूषत ।
राजन्तमध्वराणामग्निं शुक्रेण शोचिषा ॥ ४ ॥

भा०—( महिकेरवः ) बड़े बड़े कार्यों को करने वाले विद्वान् एवं शिल्पीगण और (प्रियमेधाः) सबको संन्तुष्ट करनेवाली, मनोहर बुद्धियों से युक्त पुरुष भी (अध्वराणाम्) अवध्य, अति प्रबल राजाओं के बीच में (अग्नि) ज्ञानी, प्रतापी और ( शुक्रेण ) अति शुक्ल, निष्पाप, अति उज्वल (शोचिषा) तेज से ( राजन्तम्) चमकनेवाले अति तेजस्वी, प्रतापी धर्मात्मा पुरुष को ( ऊतये ) अपनी रक्षा के लिए ( अहूषत ) प्रधान राजा रूप से स्वीकार करें ॥ इसी प्रकार विद्वान्जन रक्षा और ज्ञान के लिए ज्ञानी गुरु और परमेश्वर की स्तुति करते हैं ।

घृताहवन सन्त्येमा उ षु श्रुधी गिरः ।
याभिः कण्वस्य सूनवो हवन्तेऽवसे त्वा ॥ ५ ॥ ३१ ॥

भा०—(घृताहवन) घृतकी आहुति लेकर अग्नि जिस प्रकार चमकता है उसी प्रकार ज्ञान और तेज की आहुति से देदीप्यमान हे विद्वन्! हे (सन्त्य) सुख प्राप्ति के कार्यों और साधनों में कुशल, उत्तम ऐश्वर्यप्रद ! विद्वन् ! प्रभो ! ( याभिः ) जिन वेदवाणियों से (कण्वस्य) मेधावी विद्वान् पुरुषों के ( सूनवः ) पुत्र और शिष्यगण ( अवसे) रक्षा और ज्ञान के प्राप्त करने के लिये ( त्वा हवन्ते ) तेरी स्तुति करते हैं। तू (इमाः) इन (गिरः) वेदवाणियों का ( श्रुधि ) श्रवण कर और अन्यों को श्रवण करा, उपदेश कर । इत्येकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

त्वां चित्रश्रवस्तम हवन्ते विक्षु जन्तवः ।
शोचिष्केशं पुरुप्रियाग्ने हव्याय वोळ्हवे ॥ ६ ॥

भा०—हे ( चित्रश्रवस्तम ) अद्भुत ज्ञान, अन्न और ऐश्वर्यों के धारण करने वाले ! सबसे उत्तम ज्ञानी, फलप्रद, ऐश्वर्यवन् स्वामिन् ! हे (पुरुप्रिय) सब जनों को भरपूर तृप्त करनेहारे ! सबके प्रिय ! राजन् ! विद्वन् ! प्रभो !

अग्ने ! ( हव्याय वोढवे ) हवि पदार्थ को समस्त वायु, जल आदि पदार्थों तक प्राप्त कराने के लिये जैसे प्रज्वलित अग्नि को प्राप्त करते हैं और रथादि को उठाले चलने के लिये जैसे अश्व को प्राप्त करते हैं उसी प्रकार ( हव्याय वोढवे ) ग्रहण करने योग्य, उत्तम ज्ञानों और ऐश्वर्यों के प्राप्त करने के लिये ( शोचिष्केशम् ) अति दीप्तियुक्त केशों के समान किरण समूहों से युक्त, तेजस्वी, सूर्य के समान प्रतापी ( त्वाम् ) तुझको ( विक्षु ) प्रजा जनों में ( जन्तवः ) सभी प्राणी ( हवन्ते ) तुझे ही प्राप्त करते हैं ।

नि त्वा होतारमृत्विजं दधिरे वसुवित्तमम् ।
श्रुत्कर्णं सप्रथस्तमं विप्रा अग्ने दिविष्टिषु ॥ ७ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) प्रतापिन् ! ज्ञानवन् ! प्रभो ! ( दिविष्टिषु ) यज्ञों में जिस प्रकार अग्नि का आधान करते हैं उसी प्रकार ( होतारम् ) उत्तम ज्ञानों, ऐश्वर्यों और सुखों के देने वाले (ऋत्विजम्) प्रति ऋतु में यज्ञ करने वाले, एवं राजसभा के सदस्यों को एकत्र करने वाले ( वसुवित्तमम् ) सब से अधिक ऐश्वर्य को प्राप्त करने वाले, (श्रुत्कर्णम्) समस्त विद्याओं और प्रजा के कष्टों को श्रवण करनेवाले, ( सप्रथस्तमम् ) अति विस्तृत ज्ञान और विद्या से युक्त ( त्वा ) तुझ विद्वान् और शक्तिमान् को ( दिविष्टिषु ) सभी उत्तम ज्ञानों और कामनाओं को प्राप्त करने के लिये ( नि दधिरे ) कोष के समान सुरक्षित रूप से रखते और स्थापित करते हैं ।

आ त्वा विप्रा अचुच्यवुः सुतसोमा अभि प्रयः ।
बृहद्भा बिभ्रतो हविरग्ने मर्त्ताय दाशुषे ॥ ८ ॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! प्रतापिन् ! राजन् ! जिस प्रकार विद्वान् लोग (दाशुषे मर्त्ताय) यज्ञशील, दक्षिणा के दाता यजमान के लिये ( हविः बिभ्रतः ) हवि ग्रहण करके ( सुतसोमाः विप्राः ) सोम सेवन करने वाले ऋत्विग् जन अग्नि को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार ( विप्राः )

विविध पदार्थों, ज्ञानों से पूर्ण विद्वान् पुरुष ( सुतसोमाः ) ऐश्वर्यमय राष्ट्र को बना कर ( मर्त्ताय दाशुषे ) मरणशील, करप्रद या भृति के देने वाले प्रजा पुरुषों के हित के लिये ( हविः ) ग्रहण योग्य अन्न आदि पदार्थों को ( बिभ्रतः ) धारण करते हुए ( प्रयः ) उत्तम अन्न और ज्ञान को ( अभि ) प्राप्त करने का लक्ष्य रख कर ( बृहद्-भाः ) बड़े भारी तेजस्वी (त्वां) तुझ को शिष्य बनकर (अचुच्यवुः) प्राप्त हों ।

प्रातर्याव्णः सहस्कृत सोमपेयाय सन्त्य ।
इहाद्य दैव्यं जनं बर्हिरा सादया वसो ॥ ६ ॥

भा०—हे ( सहस्कृत ) बल को सम्पादन करने वाले ! हे ( सन्त्य ) सज्जनो में कुशल ! हे ( वसो ) श्रेष्ठ गुणों में वसने वाले विद्वन् ! ( इह ) यहां ( अद्य ) इस काल में ( प्रातर्याव्णः ) प्रातः ही आकर उपस्थित होने वाले शिष्य गणों और (दैव्यं जनम् ) विद्वानों के प्रिय पुरुष को भी (सोम-पेयाय ) ओषधि रसपान के लिये वैद्य जिस प्रकार रोगियों को आदर से बैठाता है उसी प्रकार ( बर्हिः ) उत्तम आसन पर ( आसादय ) बैठा ।

अर्वाञ्चं दैव्यं जनमग्ने यक्ष्व सहूतिभिः ।
अयं सोमः सुदानवस्तं पात तिरोअह्न्यम् ॥ १० ॥ ३२ ॥

भा०—हे ( सुदानवः ) उत्तम ऐश्वर्यों के देनेहारे, दानशील पुरुषो ! एवं विद्वान्, ज्ञान के दाता पुरुषो ! ( अयम् ) यह ( सोमः ) ज्ञान का पिपासु, दीक्षा को प्राप्त शिष्य है । (तिरः अह्न्यम् ) एक दिन के उपवास व्रत कर चुकने के अनन्तर प्राप्त हुए ( तम् ) उसको ( पात ) तुम पालन करो, अपने भीतर ले लो । हे ( अग्ने ) विद्वन् ! तू ( अर्वाञ्चम् ) अपने अभिमुख आये हुए ( दैव्यं ) विद्वानों के हितकारी ( जनम् ) जनको ( सूतिभिः ) समानरूप से आदरपूर्वक सम्बोधन वचनों द्वारा ( यक्ष्व ) अपने साथ मिला लो ।

[ ४६ ]

॥ ४६ ॥ १—१५ प्रस्कण्वः कारव ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्द — १, १० विराड्गायत्री । ३, ११, ६, १२, १४ गायत्री । ५, ७, ९, १३, १५, २, ४, ८ निचृद्गायत्री ॥

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः । स्तुषे वामश्विना बृहत् ।१।

भा०—( दिवः प्रिया ) तेजस्वी सूर्य की प्रिय, मनोहर ( अपूर्व्या ) अपूर्व, दिन में सबसे पूर्व प्रकट होनेवाली ( उषा ) उषाकाल जिस प्रकार प्रकट होकर अपने उत्पादक दिन रात्रि तथा सूर्य के उत्तम तेज को प्रकाश करती है उसी प्रकार ( एषो, उषा ) यह अति कामना योग्य ( दिवः ) अपने अभिलषित कामना करनेवाले पति को ( प्रिया ) प्रिय लगनेहारी ( अपूर्व्या ) सबसे प्रथम उसीको प्राप्त होकर (वि उच्छति) विविध प्रकार से उत्तम गुणों को प्रकट करती है । हे ( अश्विना ) परस्पर प्रेम से युक्त स्त्री पुरुषो या गुरुजनो ! दिन और रात्रि या सूर्य और चन्द्र के समान प्रकाशमान (वाम्) तुम दोनों के मैं (बृहत्) बहुत ही अधिक (स्तुषे) गुणों का वर्णन तथा उत्तम ज्ञान का उपदेश करूं ।

या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम् । धिया देवा वसुविदा ॥२॥

भा०—( या ) जो वे दोनों ( दस्रा ) एक दूसरे के दुःखों को नाश करनेवाले या एक दूसरे के प्रति दर्शनीय, सुन्दर, ( सिन्धु-मातरा ) सूर्य और चन्द्र जिस प्रकार महान् आकाश से उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार सिन्धु के समान गम्भीर माता पिताओं से रत्नों के समान उत्पन्न हुए हुए, अथवा महानदी से माता के समान सींचे गये, उत्तम क्षेत्रों या वृक्षों के समान, ( मनोतरा ) परस्पर एक से एक बढ़िया उत्तम मन या चित्तवाले (रयीणां) ऐश्वर्यों के ( देवा ) देनेवाले, ( धिया ) कर्म, उद्योग और प्रज्ञा के बल से ( सुविदा ) ऐश्वर्य धन या ज्ञान को प्राप्त करनेवाले होकर रहो ।

वच्यन्ते वां ककुहासो जूर्णायामधि विष्टपि। यद्वां रथो विभिष्पतात्३

भा०—हे उत्तम विद्वान् स्त्री पुरुषो ! (यत्) जब (वां) तुम दोनों का (रथः) रथ, रमण विनोद करने का साधन (विभिः) पक्षियों के साथ (विष्टपि अधि) अन्तरिक्ष में भी (पतात्) जावे। (जूर्णायां) वृद्धावस्था में वर्त्तमान (ककुहासः) बड़े बूढ़े आदमी (वाम् वच्यन्ते) तुम दोनों को सदा उपदेश करते रहें। अध्यात्म में—जब वृद्ध जन तुम दोनों को सदा उपदेश करें तब ही तुम दोनों का (रथः) आत्मा (विभिः) परमहंस योगियों, या प्राणों के साथ (अधि विष्टपि) तापरहित, सुखमय दशा में (पतात्) विचरे।

हविषा जारो अपां पिपर्ति पपुरिर्नरा। पिता कुटस्य चर्षणिः ॥४॥

भा०—(अपां जारः) अपनी किरणों के ताप से जलों को सूक्ष्मरूप से खींच लेनेवाला सूर्य जिस प्रकार (पपुरिः) सबका पालन करने वाला होकर (पिता) पिता रूप से (हविषा) वृद्धि से अन्न उपजाकर उससे (पिपर्त्ति) सबको पालन करता है और (कुटस्य चर्षणिः) समस्त कुटिल, टेढ़े मेढ़े मार्गों को प्रकाश से दिखाता भी है उसी प्रकार हे (नरा) गृहस्थ के बीच नायक नायिका रूप से विद्यमान स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (हविषा) अन्न द्वारा प्रजाओं का पालन करो। (कुटस्य) कुटिल मार्ग के देखनेवाले होकर (पिता) बालक के मातापिता के समान होकर सन्तानों का पालन करो।

आदारो वां मतीनां नासत्या मतवचसा। पातं सोमस्य धृष्णुया ५।३२

भा०—हे (नासत्या) सदा सत्याचरण करनेवाले, हे (मतवचसा) अभिमत, प्रिय, ज्ञानयुक्त वाणी के बोलनेवालो ! (वां) आप दोनों का, वीर रथी और सारथि के समान (मतीनां) मननशील बुद्धिमान् पुरुषों के बीच (आदारः) शत्रुओं का नाशक प्रभाव और आदर हो। उससे और (धृष्णुया) शत्रुओं को धर्षण या पराजय करनेवाले बड़े सामर्थ्य से आप दोनों

( सोमस्य ) राष्ट्र, ऐश्वर्य और शरीरस्थ वीर्य तथा और उत्तम सन्तति का ( पातम् ) पालन करो। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः ॥

या नः पीपरदश्विना ज्योतिष्मती तमस्तिरः। तामस्मे रासाथामिषम्॥६

भा०—हे ( अश्विना ) सूर्य और चन्द्र या दिन और रात्रि के समान परस्पर अनुरक्त एवं उपकारक स्त्री पुरुषो ! ( या ) जो अन्न या उत्तम कामना या अभिलाषा, ( ज्योतिष्मती ) दिन रात्रि के बीच सन्धि बेला में उत्पन्न होनेवाली प्रभातवेला उषा के समान ( ज्योतिष्मती ) कान्तिवाली उज्वल चित्ताकर्षक होकर हमें (नः) हमारे (तमः) दुःख, शोक और दारिद्र्यादि के चिन्ता रूप अन्धकार से ( तिरः पीपरत् ) पार उतार दे ( ताम् ) उस ( इषम् ) इच्छा, कामना और उद्योग, चेष्टा, सम्मति या अन्नादि ऐश्वर्य वृद्धि को ( अस्मे ) हमें ( रासाथाम् ) प्रदान करो।

आ नो नावा मतीनां यातं पाराय गन्तवे। युञ्जाथामश्विना रथम्॥७॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्या में निपुण स्त्री पुरुषो ! एवं शिल्प चतुर पुरुषो ! आप दोनों ( नः ) हमारे ( मतीनां ) मनुष्यों को (पाराय) पार, परले तट पर ( गन्तवे ) पहुंचाने के लिए ( नावा ) जल में नौका से (आयातम् ) उपस्थित रहो और आया जाया करो। और स्थल में (रथम्) रथ को (युञ्जाथाम्) बैल और घोड़े जोड़ा करो।

अरित्रं वां दिवस्पृथु तीर्थे सिन्धूनां रथः। धिया युयुज्र इन्दवः॥८॥

भा०—हे शिल्प में निष्णात स्त्री पुरुषो ! (वां) तुम दोनों के (दिवः) आकाश के ( तीर्थे ) पार जाने के लिए और ( सिन्धूनां ) बहनेवाले महा समुद्रों के ( तीर्थे ) पार जाने के लिए ( पृथु ) बड़ा भारी ( अरित्रम् ) यान हो। और पृथिवी पर जाने के लिए ( रथः ) उत्तम रथ हो। जिसमें ( धिया ) उत्तम कौशल से ( इन्दवः ) नाना द्रुतगति करनेवाले चक्रादि पदार्थ ( युयुज्रे ) लगाये जावें। अथवा समुद्र और भूमि के पार जाने के

लिए बड़ी नाव, जहाज़ और पृथिवी पर बड़ा रथ हो जिसमें (दिवः) अग्नि आदि पदार्थ और ( इन्दवः ) जलों को युक्ति से लगाया जावे । दया० ।

सूर्य पक्ष में—( सिन्धूनां तीर्थे पृथु अरित्रम् इव तीर्थे वां रथः । यस्मिन् धिया इन्दवः युयुज्रे ) नदियों या जलों के पार जाने के लिए बड़े नाव के समान मानो आकाश को पार जाने के लिए यह सूर्य रूप रथ है जिसमें अति वेगवान् किरणें या चन्द्र के समान नवग्रह बड़ी युक्ति से साथ लगे हैं ।

दिवस्कण्वास इन्दवो वसु सिन्धूनां पदे। स्वं वव्रिं कुह धित्सथः ६

भा०—हे ( कण्वासः ) विद्वान् ज्ञानी स्त्री पुरुषो ! ( सिन्धूनां पदे ) समुद्रों के परम गन्तव्य, गुप्त, गहरे स्थान में रक्खे (वसु) वास योग्य भूमि ऐश्वर्य के समान एवं ( दिवः ) सूर्य की किरणों और सूर्य चन्द्र के समान तुम दोनों सुन्दर, उज्ज्वल रूप या ऐश्वर्य को भी ( कुह ) किस स्थान पर ( धित्सथः ) रखा चाहते हो ॥ अथवा हे शिल्पियो ! ( सिन्धूनां पदे ये इन्दवः दिवः स्वं वव्रिं च कुह धित्सथः) जलों के बीचमें जल, अग्नि आदि तत्वों और अपने रूपवान् पदार्थों को या धन को कहां रखोगे ॥ अध्यात्म में—हे प्राण और अपान ! सूर्य की किरणों या आकाश में स्थित जलों के समान ये प्राण या लिंगशरीर हैं । ( सिन्धूनां पदे वसु ) सदा गतिशील प्राणों के परम गन्तव्य पद में वास करने वाले ( स्वं वव्रिम् ) वरण करने योग्य अपने आत्मा को तुम कहाँ धारण करते हो । उत्तर अगले मन्त्र में देखो ।

अभूदु भा उ अंशवे हिरण्यं प्रति सूर्यः । व्यख्यज्जिह्वयासितः ॥१०॥३४

भा०—जब ( सूर्यः ) सूर्य का प्रकाश ( हिरण्यं प्रति ) सुवर्ण के समान धातु के बने दीप्ति युक्त पदार्थ पर पड़ता है तब ( भाः ) दीप्ति ( अंशवे ) किरणपुंज के रूप में प्रकट होतीं हैं और (असितः ) काठ आदि के आश्रय रूप बन्धन से रहित, अग्नि ( जिह्वया ) ज्वाला रूप से ( वि अख्यत् ) प्रकट होता है । इस स्थल पर 'हिरण्य' प्रक्षेपक नतोदर दर्पण

this mantra should be omitted

है। 'अंशु' का अर्थ फोकस है। जब सूर्य नतोदरदर्पण पर पड़ता है तब सूर्य की दीप्ति फोकस पर झुकती है। वहां अग्नि प्रकट होता है। वह अग्नि काष्ठ आदि पदार्थों में बद्ध न होने से 'असित' कहाता है। वह तीव्र ज्वाला या 'जिह्वा' या किरणों के शंकु के रूप में ही होता है। महर्षि दया० ने स्पष्ट लिखा है। (असितः भाः सूर्यः अंशवे जिह्वया इव अख्यत्) बिना बन्धन का दीप्ति रूप सूर्य प्रकाश अंशु के स्थानमें जिह्वा के रूप में प्रकट होता है। इसलिए सूर्य के सन्मुख ही अपना सुवर्ण आदि धातु का बना दर्पण पदार्थ उचित स्थान पर रक्खे। प्रथम मन्त्र में प्रश्न था कि सूर्य की किरणें अपना रूप कहां प्रकट करती हैं इसका इस मन्त्र में उत्तर स्पष्ट हो गया। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

अभूदु पारमेतवे पन्था ऋतस्य साधुया। अदर्शि वि स्रुतिर्दिवः॥११॥

भा०—( ऋतस्य ) समुद्र के अपार जल के भी ( साधुया ) अच्छी प्रकार (पारम् एतवे) पार जाने के लिए (पन्थाः अभूत् उ) मार्ग अवश्य है। और ( दिवः ) प्रकाश और सूर्य का भी ( स्रुतिः ) गमन करने का मार्ग ( वि ) विविध उपायों से ( अदर्शि ) देखा जाता है। पूर्व के मन्त्र ९ में ( सिन्धूनां पदे वसु ) समुद्रों के बीच में बसने लायक स्थान कहाँ है? और सूर्य और चन्द्र समुद्र के अतिरिक्त अपना रूप कहाँ रखते हैं? इन दोनों प्रश्नों का उत्तर स्पष्ट हुआ। अध्यात्म में—( ऋतस्य पन्थाः ) सत्य का ही मार्ग इस संसार सागर के पार जाने के लिए सबसे उत्तम है। उसी मार्ग से ( दिवः स्रुतिः ) परम मोक्ष या ज्ञानी आत्मा का मार्ग भी (अदर्शि) देखा जा सकता है।

तत्तदिदश्विनोरवो जरिता प्रति भूषति। मदे सोमस्य पिप्रतोः १२

भा०—(जरिता) उपदेशक विद्वान् पुरुष, ( मदे ) आनन्द और सुख को प्राप्त करने के लिए ( सोमस्य ) परम प्रेरक शक्ति या बल या ऐश्वर्य को (पिप्रतोः) पालन, पूरण करनेवाले ( अश्विनोः ) सूर्य, चन्द्र तथा अग्नि

जल और उनके समान ज्ञानयुक्त शिल्पियों के ( तत् तत् इत् अवः ) उन उन, नाना प्रकार के विज्ञानों और क्रिया सामर्थ्यों को (प्रति भूषति) प्रत्येक पदार्थ में ही देखना चाहता है।

वावसाना विवस्वति सोमस्य पीत्या गिरा। मनुष्वच्छंभू आ गंतम् १३

भा०—( विवस्वति ) सूर्य के आधार पर ( वावसाना ) रहनेवाले दिन और रात्रि जिस प्रकार ( सोमस्य पीत्या ) जल और वायु के पान, या उपभोग द्वारा ( शम्भू ) शान्ति सुखप्रद होते हैं उसी प्रकार ( विवस्वति) विविध शिष्यों या अन्तेवासी छात्रों के स्वामी, अथवा विशेष ब्रह्मचर्यादि के पालनार्थ रहने योग्य आचार्य गुरु के अधीन (वावसाना ) नित्य नियम से रहने वाले स्त्री और पुरुष कन्या और कुमार दोनों ( सोमस्य ) वीर्य के ( पीत्या ) पालन और ( गिरा ) वेदवाणी के अभ्यास द्वारा ( मनुष्वत् ) मननशील ज्ञानवाले होकर जन साधारण को ( शम्भू ) शान्तिदायक एवं कल्याणकारी सौम्य होकर ( आ गतम् ) घरों को आवें । इसी प्रकार राज वर्ग और प्रजावर्ग दोनों तेजस्वी राजा के आश्रय पर राष्ट्र के भोग और पालन द्वारा ज्ञानी पुरुषों से युक्त होकर शान्तिदायक हों।

युवोरुषा अनु श्रियं परिज्मनोरुपाचरत्। ऋतावनथो अक्तुभिः॥१४॥

भा०—(युवोः) बराबर व्यतीत होनेवाले दिन रात्रि के बीच (श्रियम् अनु उषा ) शोभाकर जिस प्रकार उषा आती है उसी प्रकार (परिज्मनोः) समस्त देशों में यात्रा करनेवाले (युवोः) तुम दोनों की ( श्रियम् अनुम् ) राज्यसम्पदा के अनुरूप उसको बढ़ानेवाली ही ( उषाः) उत्तम कामना या नव उदय होने का तेज (उप अचरत्) तुम दोनों को प्राप्त हो। तुम दोनों ( ऋता ) सत्य व्यवहार वाले होकर ( अक्तुभिः ) बहुत दिनों तक (श्रियम् वनथ ) ऐश्वर्य सम्पदा को भोग करो। सभा-सेनाध्यक्ष के पक्ष में—(परिज्मनोः ) सर्वत्र विपक्षी पर शर प्रहार करनेवाले दोनों का राज्यलक्ष्मी के

अनुरूप ही ( उषाः ) सूर्योदय के समान प्रताप का उदय होता है। वे सब दिन ( ऋता ) सत्य मार्गों का सेवन करें।

उभा पिबतमश्विनोभा नः शर्म यच्छतम्। अविद्रियाभिरूतिभिः १५

भा०—हे ( अश्विना ) रथी और सारथी के समान एक दूसरे के अधीन राजा प्रजाजनो ! सभाध्यक्ष सेनाध्यक्षो ! या स्त्री पुरुषो ! (उभा) आप दोनों ओषधि रस के समान ऐश्वर्य का अति परिमित ( पिबतम् ) भोग करो। और ( उभा ) तुम दोनों मिलकर ( नः ) हमें ( अविद्रियाभिः ) आनन्दित और दृढ़ (ऊतिभिः ) रक्षा के उपायों और व्यवहारों से ( नः ) हमें ( शर्म ) शरण और सुख ( यच्छतम् ) प्रदान करो। इति पंचत्रिंशो वर्गः ॥

इति तृतीयोऽध्यायः।

## अथ चतुर्थोऽध्यायः

## [ ४७ ]

प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः–१, ५ निचृत्पथ्या बृहती। ३, ७ पथ्या बृहती। ९ विराट् पथ्या बृहती। २, ६, ८ निचृत्सतः पंक्तिः। ४, १० सतः पंक्तिः ॥

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे ॥ १ ॥

भा०—हे ( ऋतावृधौ ) सत्य व्यवहार से बढ़नेवाले, सत्य के कारण यशस्वी ( वां ) तुम दोनों का ( अयं सोमः) यह शिष्य ( सुतः ) पुत्र के समान है। एवं हे (अश्विना) आचार्य और उपदेशको ! सभाध्यक्ष सेनाध्यक्षो ! तथा राजा और पुरोहितो ! (अयं सोमः) यह राष्ट्र और राष्ट्रपति (सुतः) अभिषेक

किया गया है। वह पुत्र, शिष्य और राष्ट्रपति (मधुमत्तमः) उत्तम ओषधि रस के समान ज्ञानवान्, मधुरभाषी, अतिबलकारी हो। (तं) उसको (पिबतम्) स्वीकार करो, एक रस कर लो। और (दाशुषे) दानशील पुरुष के लिए (रत्नानि) रमण करने योग्य उत्तम रत्नादि पदार्थ (धत्तम्) प्रदान करो।

त्रिवन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम्॥ २॥

भा०—हे (अश्विना) अग्नि और जल दोनों के समान परस्पर उदकारक स्त्री पुरुषो! एवं सभा सेना दोनों के अध्यक्षो! आप दोनों (त्रिबन्धुरेण) तीन प्रकार से बँधे, (त्रिवृता) तीनों प्रकार के शिल्पों से बने अथवा आकाश, स्थल और जल तीनों स्थानों पर चलनेहारे (सुपेशसा) उत्तम सुवर्ण, लोह, पीतल आदि धातु से जड़े, सुरूप (रथेन) रथ से आप दोनों (यातम्) यात्रा किया करो। और (कण्वासः) विद्वान् पुरुष (वां) तुम दोनों को (ब्रह्म) सत्य वेदज्ञान का उपदेश करें। अथवा विद्वान् जन तुम्हारे अन्नादि भोग्य पदार्थों को बनावें। (अध्वरे) यज्ञ और प्रजापालन के कार्यों में तुम दोनों (तेषां) उन विद्वानों के (हवम्) स्तुति वचन और आदरपूर्वक आमन्त्रण को (सु श्रृणुतम्) अच्छी प्रकार आदर से श्रवण करो।

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम्॥ ३॥

भा०—हे (अश्विना) पूर्वोक्त स्त्री पुरुषो! सभासेनाध्यक्षो! (मधुमत्तमम्) मधुर, सुखप्रद पदार्थों से युक्त (सोमम्) ऐश्वर्य को (ऋतावृधा) सत्य से बढ़ानेहारे होकर आप दोनों (पातम्) ओषधि रस के समान गुणकारी, सुखप्रद रूप में सेवन करो। (अथ) और (अद्य) आज के समान सदा (दस्रा) दुःखों के नाशक होकर (वसु बिभ्रता) राष्ट्र में बसे प्रजाजन को पालन पोषण करते हुए, अथवा ऐश्वर्य को धारण

करते हुए तुम दोनों (रथे) रथ पर बैठकर (दाश्वांसम्) ज्ञानप्रद, विद्वान्, यज्ञशील, दानशील राजा तथा कर प्रद प्रजा पुरुष को (उप गच्छतम्) प्राप्त होवो।

त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम्।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) पूर्वोक्त सभा-सेनापतियो ! हे ( विश्ववेदसा ) समस्त प्रकार के धनों, ऐश्वर्यों के स्वामियो ! आप दोनों ( त्रिसधस्थे ) तीनों समान कोटि के उच्च स्थानों पर स्थित, ( बर्हिषि ) प्रजाजन पर, या पृथिवी निवासी लोगों के ऊपर ( मध्वा ) शत्रुनाशक बल, अन्न और मधुर ऐश्वर्य, या ज्ञान से (यज्ञं) पूज्य प्रजापति या राष्ट्र को (मिमिक्षतम्) संयुक्त करो, या सेचन करो, उस पर अन्तरिक्षस्थ मेघ और विद्युत् के समान ऐश्वर्य का वर्षन करो। (सुतसोमाः) सोम, सबके प्रेरक राजा का अभिषेक करने वाले (कण्वासः) विद्वान् पुरुष (अभिद्यवः) सब प्रकार से दीप्तियुक्त, तेजस्वी होकर अथवा (कण्वासः) शत्रुहन्ता वीर जन प्रतापी होकर (युवां) तुम दोनों को (हवन्ते) स्वीकार करें, तुम पर अनुग्रह करें, या तुम्हें अपनावें।

याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोममृतावृधा ॥५॥१॥

भा०—हे ( अश्विना ) राष्ट्र के व्यापक अधिकार वाले, राष्ट्र के भोक्ता के समान पूर्वोक्त सभा सेनाध्यक्षो ! हे ( शुभस्पती ) उत्तम गुणों के पालक, हे ( ऋतावृधा ) सत्याचरण से बढ़ने वालो ! ( युवम् ) तुम दोनों ( याभिः ) जिन ( अभिष्टिभिः ) उत्तम कामनाओं, और प्रेरित होने वाली, या संचालित सेनाओं से (कण्वदम्) विद्वान् पुरुषों की (प्र अवतम्) अच्छी प्रकार से रक्षा करते हो ( ताभिः ) उन से ही ( अस्मान् ) हम सामान्य प्रजाजनों को भी ( सु-अवतम् ) सुख पूर्वक उत्तम रीति से रक्षा करो और जिस प्रकार युद्ध के रथी, सारथी दोनों अपने आज्ञा देनेवाले सेना-

पति की रक्षा करते हैं उसी प्रकार ( सोमम् पातम् ) राष्ट्र ऐश्वर्य का भोग करो। या राजा की रक्षा करो। इति प्रथमो वर्गः ॥

सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना ।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम् ॥ ६ ॥

भा०—हे ( दस्रा ) शत्रुओं के नाश करने में तत्पर ! ( अश्विनौ ) राष्ट्र में व्यापक अधिकार वालो ! आप दोनों ( सुदासे ) उत्तम दास आदि भृत्यों से युक्त स्वामी के अधीन रहकर, अथवा उत्तम २ ऐश्वर्यों के देने वाले पुरुष के हितार्थ, ( रथे वसु बिभ्रता ) नाना वासोपयोगी धनों ऐश्वर्यों को अपने रथ में रख कर ( पृक्षः ) अति सुख और पुष्टि के देने वाले अन्न को ( वहतम् ) प्राप्त कराओ। और ( समुद्रात् ) समुद्र ( उत ) और ( दिवः ) आकाश दोनों मार्गों से ( पुरुस्पृहम् ) बहुतसी प्रजाओं से चाहने योग्य ( रयिम् ) ऐश्वर्य को (अस्मे) हमें ( परि धत्तम् ) प्रदान करो।

यन्नासत्या परावति यद्वा स्थो अधि तुर्वशे ।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः ॥ ७ ॥

भा०—हे ( नासत्या ) कभी असत्याचरण न करने हारो ! राष्ट्र के दो प्रमुख अधिकारियो ( यत् ) चाहे तुम दोनों (परावति ) दूर देश में (स्थः ) हो और (यद् वा) चाहे तुम दोनों (तुर्वशे अधि) चारों पुरुषार्थों के अभिलाषी प्रजाजनों के ऊपर ( अधि स्थः ) शासन करते होवो, तो भी ( अतः ) इसी कारण से कि (सुवृता) उत्तम गति से चलने वाले ( रथेन ) रथसे (सूर्यस्य रश्मिभिः साकम्) सूर्य की किरणों के साथ २ ही, अप्रमादी होकर ( नः आगतम् ) हमारे पास आओ।

अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप ।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा ॥ ८ ॥

भा०—हे ( नरा ) नेता पुरुषो ! रथी और सारथी ! ( वाम् ) तुम दोनों के ( सप्तयः ) अश्वगण (अध्वरश्रियः) शत्रुओं से न मारे जाने वाले राजा की शोभाओं और ( सवना इत् ) नाना ऐश्वर्यों को भी ( उप वहन्तु ) प्राप्त करावें । तुम दोनों ( सुकृते ) उत्तम धर्माचरण और न्याय के करने वाले और ( सुदानवे ) उत्तम सात्विक दानशील राजा के लिये ( इषं ) प्रेरणा करने योग्य सेना और शस्त्रास्त्र समूह को ( पृञ्चन्ता ) अच्छी प्रकार संगठित करते हुए ( बर्हिः ) प्रधान नायक पद पर ( आ-सीदतम् ) आकार विराजो । अथवा ( अध्वरश्रियः सप्तयः ) संग्राम की शोभा बढ़ाने वाले अश्व ही ऐश्वर्यों को प्राप्त करावें ।

तेन॑ नासत्या ग॑तं रथे॑न सूर्य॑त्वचा ।
येन॒ शश्व॑दूहथु॑र्दा॒शुषे॒ वसु॒ मध्वः॒ सोम॑स्य पी॒तये॑ ॥ ९ ॥

भा०—हे ( नासत्या ) सत्याचरण वाले, सत्य मार्ग के प्रवर्त्तक अथवा नासिका के समान प्रमुख स्थान पर विराजने वाले ! आप दोनों ( दाशुषे ) ऐश्वर्य को देने वाले राजा के ( मध्वः ) अति मधुर ( सोमस्य पीतये ) ऐश्वर्य को ओषधि रस के समान उपभोग के लिये ( येन ) जिस रथ से ( शश्वत् ) सदा से, निरन्तर, ( वसु ) स्थायी ऐश्वर्य, प्रजा के बसाने वाले राष्ट्र को ( ऊहथुः ) प्राप्त कराते हो (तेन) उस ही ( सूर्य-त्वचा ) सबके प्रेरक, आज्ञापक राजा को, शरीर या भोक्ता आत्मा को त्वचा या देह के समान सुरक्षित रखने वाले ( रथेन ) रथ से ( गतम् ) आया जाया करो ।

उ॒क्थेभि॑र॒र्वाग॑व॑से पुरुवसू॒ अ॒र्कैश्च॒ नि ह्व॑यामहे ।
शश्व॒त्कण्वा॑नां॒ सद॑सि प्रि॒ये हि कं॒ सोमं॑ प॒पथु॑रश्विना ॥ १० ॥२॥

भा०—हे सभापति और सेनापति ! एवं रथी, सारथी ! तुम दोनों को हे ( पुरुवसु ) अति ऐश्वर्यों के स्वामियो ! हम प्रजाजन (अवसे) ज्ञान

प्राप्ति और रक्षा के लिये (उक्थेभिः) उत्तम वचनों और ( अर्कैः च) आदर सत्कार के पदार्थों और उपचारों से ( नि ह्वयामहे ) निरन्तर बुलाते हैं। आप लोग ( कण्वानां प्रिये सदसि ) वीर पुरुषों की सेना और विद्वान् पुरुषों की प्रिय राजसभा दोनों स्थानों पर ( शश्वत् ) सदा ( सोमम् ) ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र को (पपथुः) पालन करो। इति द्वितीयो वर्गः ॥

## [ ४८ ]

प्रस्कण्व ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, ३, ७, ६ विराट् पथ्या बृहती । ५, ११, १३ निचत् पथ्या बृहती च । १२ बृहती । १५ पथ्या बृहती । ४, ६, १४ विराट् सतः पंक्तिः । २, १०, १६ निचृत्सतः पंक्तिः । ८ पंक्तिः । षोडशर्चं सूक्तम् ॥

सह वामेन न उषो व्युच्छा दुहितर्दिवः ।
सह द्युम्नेन बृहता विभावरि राया देवि दास्वती ॥ १ ॥

भा०—हे ( दिवः दुहितः ) सूर्य से उत्पन्न होने के कारण सूर्य की कन्या के समान, ( दिवः दुहितः ) समस्त आकाश को अपने प्रकाश से पूर्ण करने वाली प्रभात वेला के समान (दिवः) ज्ञानों और गुणों से प्रकाशमान पिता माता की कन्या के समान अथवा ( दिवः ) कामना करने हारे प्रियतम पति की शुभ कामनाओं को (दुहितः) पूर्ण करने वाली ! (उषः) हे उषः! समस्त पापों के जला देने वाली ! एवं हे (उषः) कामना करने वाली तेजस्विनि ! तू ( वामेन सह) सुन्दर, चाहने योग्य, उत्तम गुणों वाले योग्य पुरुष के साथ युक्त होकर (नः) हमारे बीच में ( वि उच्छ ) अपने उत्तम गुणों को प्रकाशित कर । हे ( विभावरि ) विशेष दीप्तियों से युक्त उषा के समान विचित्र उत्तम भावों और गुणों से युक्त ! हे ( देवि ) देवि ! शुभ गुणों से युक्त ! दानशीले ! तू (बृहता द्युम्नेन) बड़े तेज, कान्ति या अन्नादि भोग्य सम्पत्ति से और ( राया ) गौ आदि पशु ऐश्वर्य से ( दास्वती )

उत्तम अन्न वस्त्र आदि नाना पदार्थों के देने वाली हो। इसी प्रकार राजसभाएं, राज्यसंस्थाए भी उत्तम सभापति के साथ मिलकर तेजस्वी राजा की सब कामनाओं को पूर्ण करें। बड़े अन्न, धन, पशु आदि सम्पदा से प्रजा को ऐश्वर्य देने वाली हों।

अश्वा॑वती॒र्गोम॑तीर्वि॒श्वसु॑विदो॒ भूरि॒ च्यव॑न्त॒ वस्त॑वे।
उदी॑रय॒ प्रति॑ मा सू॒नृता॑ उष॒श्चोद॒ राधो॑ म॒घोना॑म् ॥ २ ॥

भा०—हे (उषः) प्रभातवेले! उसके समान शुभ दर्शन और प्रेम से युक्त स्त्री! तथा दुष्ट पुरुषों और राष्ट्र के पापों को जला देने वाली राज्यसंस्थे! (वस्तवे) सुख से निवास करने के लिये (अश्वावतीः) अश्वों अश्वारोहियों से युक्त सेना और (गोमतीः) गौओं आदि पशु से युक्त सम्पदाएं और (विश्व-सुविदः) समस्त उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त कराने वाली भूमियां (भूरि) बहुत अधिक संख्या में (च्यवन्त) प्राप्त की जावें। इस हेतु तू (मा प्रति) मुझे (सुनृताः) उत्तम ज्ञानों से पूर्ण वाणियों, आज्ञाओं का (उत् ईरय) उपदेश कर। और (मघोनाम्) ऐश्वर्यवान् धनाढ्य पुरुषों के (राधः) ऐश्वर्य (चोद) प्राप्त करा। स्त्री भी पति को शुभ वाणिया कहे। उत्तम ऐश्वर्य प्राप्त करने की प्रेरणा करे।

उ॒वासो॒षा उ॒च्छाच्च॒ नु दे॒वी जी॒रा रथा॑नाम्।
ये अ॑स्या आ॒चर॑णेषु दधि॒रे स॑मु॒द्रे न श्र॑व॒स्यव॑: ॥ ३ ॥

भा०—(उषाः) प्रभात वेला (उवास) व्यापती है और वह (देवी) प्रकाश वालीहोकर (अगात् च नु) सब पदार्थों को प्रकट करतीहै। वह ही (रथानाम् जीरा) सब रथों या देहों में वेग देने वाली है। उसके प्रकट होने पर सब लोग अपने देहों और व्यापारी लोग अपने शकट आदि रथों को चलाने लगते हैं। और (ये) जो (श्रवस्यवः) धन की इच्छा करने वाले बड़े व्यापारी लोग हैं वे भी (अस्याः आचरणेषु) इसके आगमनों के

अवसरों पर ( समुद्रे ) समुद्र में अपने ( दधिरे ) जहाजों को काबू करते हैं। ( न ) उसी प्रकार ( श्रवस्यवः ) ज्ञान की कामना करने वाले योगी जन ( अस्याः आचरणेषु ) इसके आगमनों के प्रभात कालों में ( समुद्रे ) अनेक आत्मानंद रसों के बहाने वाले परमेश्वर और आत्मा में ( दधिरे ) धारणा द्वारा अपने आपको स्थापित करते हैं। वह ( उषा ) ज्योतिष्मती प्रज्ञा प्रकट होती है, वही ( देवी ) प्रकाश वाली होकर ( रथानां जीरा ) आनन्द-रसों को वेग से उत्पन्न करती है॥ इसी प्रकार स्त्री ( उषा ) पति की कामना करने हारी होकर ( उवास ) पति के साथ बसे। ( देवी ) नित्य उसकी ही कामना करती हुई वह (उच्छात् च) अपने नाना मनोरथों को उसके प्रति प्रकट करे। ( ये ) जो ( श्रवस्यवः ) अन्न के समान भोगने योग्य काम्य-सुखों को चाहने वाले पुरुष ( अस्याः ) इसके (समुद्रे) नाना आनन्द रसों के उत्पन्न करने वाले काम या अभिलाषा पर या गृहस्थ के निमित्त और (अस्या आचरणेषु) स्त्री के आचरणों पर (दधिरे) विशेष संयम या व्यवस्था रखते हैं उनहीं को वह (देवी रथानां जीरा) सब सुखों की देने वाली और रमण योग्य सुखप्रद कार्यों, व्यवहारों को चलाने वाली होती है॥

उषो ये ते प्र यामेषु युञ्जते मनो दानाय सूरयः।
अत्राह तत्कण्व एषां कण्वतमो नाम गृणाति नृणाम्॥ ४॥

भा०—हे ( उषः ) प्रभातवेले! ( ये सूरयः ) जो सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष हैं, वे (ते यामेषु) तेरे आगमन के कालों में (दानाय) अपने आत्मा के बन्धनों को काट देने के लिए ( मनः ) अपने चित्त को (प्र युञ्जते) योगसमाधि में अच्छी प्रकार लगाते हैं। ( अत्र अह ) इस ही अवसर पर ( एषां नृणाम् ) इन मनुष्यों के बीच जो ( तत् ) उस आत्म-ज्ञान और परम परमेश्वर के नाम और उसके स्वरूप का ( गृणाति ) स्वयं उच्चारण करता और अन्यों को उपदेश करता है वह (कण्वतमः) बहुत ही बुद्धिमान्, विद्वान् होता है। स्त्री के पक्ष में—( ये सूरयः ते यामेषु दानाय

मनः प्रयुञ्जते ) जो तेरे आगमन के अवसरों पर दान देने की इच्छा करते हैं वे विद्वान् हैं । और वह बहुत बुद्धिमान् है, जो मनुष्यों को (तत् नाम) स्त्रियों का नानाप्रकार से आदर करने का उपदेश करता है ।

आ घा योषेव सूनर्युषा याति प्रभुञ्जती ।
जरयन्ती वृजनं पद्वदीयत उत्पातयति पक्षिणः ॥ ५ ॥ ३ ॥

भा०—( घ ) निश्चय से ( उषा ) उषा, प्रभातवेला भी (योषा इव) स्त्री के समान ही ( सूनरी ) उत्तम कार्यों में प्रवृत्त करानेवाली है । अर्थात् जिस प्रकार स्त्री पति को प्रेमपूर्वक कुमार्गों से हटाकर, कुव्यसनों से बचाकर सन्मार्ग में ले आती है इसी प्रकार प्रभात वेला भी सुखपूर्वक प्राणियों को योग, उपासना आदि कार्य में लगा देती है । स्त्री (प्रभुञ्जती ) जिस प्रकार उत्तम उत्तम भोग प्रदान करती हुई अथवा पति और सन्तानों को व्रत, नियमादि का पालन कराती हुई ( आयाति ) प्राप्त होती है उसी प्रकार उषा भी ( प्रभुञ्जती ) उत्तम सुख प्रदान करती हुई और उत्तम व्रत, नियमों का पालन कराती हुई आती है । और जिस प्रकार स्त्री ( जरयन्ती ) पुरुष के साथ ही वृद्धावस्था तक आयु व्यतीत करती हुई ( वृजनं ) गमन योग्य मार्ग को (पद्वत् ईयते) दोनों चरणों से चलती है उसी प्रकार उषा भी (जरयन्ती) प्रतिदिन प्राणियों के जीवन की हानि करती हुई ( पद्वत् ईयते ) मानो पग पग धरती हुई प्राप्त होती है । और जिस प्रकार स्त्री घर की तथा अन्न की रक्षा के लिए (पक्षिणः) पक्षियों को (उत्पातयति) उड़ाती है अथवा अपने ( पक्षिणः ) पक्ष वाले सम्बन्धियों को उत्तम आदर प्राप्त कराती है । उसी प्रकार उषा भी अपने आगमन पर वृक्ष पर बैठे पक्षियों को जगा जगाकर आहार विहार के लिए उड़ाती है । इसी प्रकार ज्योतिष्मती विशोका का उदय होने पर भी वह प्रज्ञा योगी की सुखप्रदात्री, पालक, पाप के नाश करनेवाली ज्ञानस्वरूप होकर आती है और ( पक्षिणः ) परम हंसों को (उत्पातयति) ऊर्ध्वमार्ग, मोक्ष की तरफ़ ले जाती है । इति तृतीयो वर्गः ॥

वि या सृजति समनं व्य१र्थिनः पदं न वेत्योदती ।
वयो नकिष्टे पप्तिवांस आसते व्युष्टौ वाजिनीवती ॥ ६ ॥

भा०—( वाजिनीवती ) अश्वों की सेना से युक्त संग्रामनेत्री स्त्री जिस प्रकार ( समनं ) संग्राम को ( वि सृजती ) विविध प्रकारों से जाती है। और ( वाजिनीवती ) नाना ऐश्वर्यों से युक्त सौभाग्यवती नायिका, नववधू जिस प्रकार ( समनं ) पति के संग लाभ के निमित्त ( वि सृजती ) विविध मार्गों से जाती है, उसी प्रकार ( या ) जो उषा प्रभातवेला भी ( समनं ) वि सृजती ) दिन और रात्रि के संगम को दूर करती है, ( वाजिनीवती ) अर्थिनः विसृजती) और जिस प्रकार वह ऐश्वर्यवती स्त्री धन और अन्न के याचकों को उनके अभीष्ट पदार्थ प्रदान करती है और युद्ध-कुशल स्त्री जिस प्रकार (अर्थिनः वि) अर्थनीति में कुशल युद्धार्थी शत्रुओं को भी विमुख कर देती है उसी प्रकार उषा भी ( अर्थिनः वि ) स्तुति द्वारा प्रार्थनाशील पुरुषों को विविध मार्गों से प्रेरित करती है। ( ओदती पदं न वेति) जिस प्रकार युद्धकुशला स्त्री देश को रक्त से गीला करती हुई आगे बढ़ती है और जिस प्रकार नववधू स्त्री (ओदती) अंचरा को आँसुओं से गीला करती हुई पति-गृह को प्राप्त होती है उसी प्रकार यह उषा भी ओस से भूलोक को गीला करती हुई आती है। और (व्युष्टौ पप्तिवांसः वयः नकिः आसते) युद्ध कुशला सेना या स्त्री के विशेष शत्रुदाहकारी संतापक या उग्र हो जाने पर पक्षियों के समान भगोड़ शत्रु कभी कहीं ठहरते, वे भयभीत होकर भाग ही जाते हैं। और जिस प्रकार नववधू के पति के प्रति विशेष कामना युक्त होने पर विशेष वेग से जाने वाले ( वयः ) अश्व कहीं भी विश्राम न लेते हुए जाते हैं, उसी प्रकार ( व्युष्टौ ) हे उषः ! तेरे उदित हो जाने पर भी (पप्तिवांसः वयः ) उड़ने वाले पक्षी (नकिः आसते) कभी घोंसलों पर टिके नहीं रहते।

एषाऽयुक्त परावतः सूर्यस्योदयनादधि ।
शतं रथेभिः सुभगोषा इयं वि यात्यभि मानुषान् ॥ ७ ॥

भा०—( इयं ) यह ( उषा ) उषा, प्रभातकाल की सूर्य-प्रभा जिस प्रकार ( परावतः ) दूर वर्त्तमान ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( उदयनात् अधि ) उदय से पूर्व ही ( शतं रथेभिः ) सैकड़ों रमणीय, मनोहर किरणों से ( सुभगा ) सुखपूर्वक सेवन करने योग्य होकर ( मानुषान् वियाति ) मनुष्यों को प्राप्त होती है उसी प्रकार ( एषा सुभगा ) यह उत्तम सेवनीय, ऐश्वर्य पितृगृह कल्याण से युक्त सुभगा नववधू (सूर्यस्य उदयनाद् अधि) सूर्योदय के पूर्व ही ( परावतः ) दूरदेश में स्थित अपने पितृगृह से ( अयुक्त ) अपने रथ में घोड़े जोड़कर आवे। और ( रथेभिः ) सैकड़ों रथों सहित ( मानुषान् अभि वियाति ) मनुष्यों की वसती को आवे।

**विश्वंमस्या नानाम चक्षसे जगज्ज्योतिष्कृणोति सूनरी ।**
**अप द्वेषो मघोनी दुहिता दिव उषा उच्छदप स्रिधः ॥ ८ ॥**

भा०—( दिवः दुहिता ) प्रकाशमान सूर्य की मानो कन्या के समान तेज से ही समस्त आकाश को पूर देनेवाली (उषा) प्रभातवेला जिस प्रकार ( मघोनी ) अति तेजस्विनी होकर ( द्वेषः ) द्वेष करनेवाले चोर आदि को ( स्रिधः ) और हिंसक जन्तुओं को ( अप ) दूर करती हुई ( उच्छत् ) प्रकट होती है। और वह ( सूनरी ) उत्तम दिन की नेत्री ( विश्वं जगत् चक्षसे ) समस्त जगत् को नयनों द्वारा दिखाने के लिए (ज्योतिः कृणोति) समस्त संसार में प्रकाश कर देती है और ( अस्या चक्षसे विश्वं नानाम) उसके देखते ही समस्त संसार भक्ति, प्रेम से ईश्वर को नमस्कार करता है उसी प्रकार ( दिवः दुहिता ) तेजस्वी माता पिता की पुत्री 'सूर्या', अथवा कामना करनेहारे पति के सब मनोरथों को पूर्ण करनेवाली ( मघोनी ) ऐश्वर्यों और सौभाग्यों से युक्त होकर ( उषा ) स्वयं पति की कामना करती हुई (द्वेषः) द्वेष करनेवाले शत्रुओं को और ( स्रिधः ) हिंसकों को भी (अप ऊच्छत) दूर करे, वह प्रभात वेला के समान सुशोभित हो। और वह (सूनरी =

सु–नरी ) उत्तम नायिका या उत्तम महिला हो । ( विश्वं जगत् अस्याः नानाम ) समस्त जगत् उसका विनय से आदर करे ।

उष आभाहि भानुना चन्द्रेण दुहितर्दिवः ।
आवहन्ती भूर्यस्मभ्यं सौभगं व्युच्छन्ती दिविष्टिषु ॥ ९ ॥

भा०—हे (उषः) उषः ! प्रभातवेले ! हे (दिवः दुहितः) प्रकाशमान सूर्य से उत्पन्न मानों उसकी कन्या के समान ! एवं प्रकाश से आकाश को पूर्ण करनेवाली ! तू (भानुना) पूर्व दिशा में सूर्य और पश्चिम दिशा में स्थित चन्द्र दोनों से (आ भाहि) प्रकाशित हो और (दिविष्टिपु) सूर्य के आगमन कालों में ( वि उच्छन्ती ) विशेषरूप से प्रकट होती हुई (अस्मभ्यं ) हमारे लिये ( भूरि सौभगं ) बहुत उत्तम ऐश्वर्य ( आवहन्ती ) प्राप्त कराती रह। इसी प्रकार हे ( उषः ) कान्तिमति कमनीये ! कन्ये ! हे ( दिवः दुहितः ) ज्ञानवान् पुरुष की पुत्री ! और प्रियतम पति की कामनाओं को पूर्ण करने हारी ! तू ( भानुना ) सूर्य के समान तेजस्वी और ( चन्द्रेण ) चन्द्र के समान आह्लादक पति के साथ संगत होकर (आ वि भाहि) सर्वत्र प्रकाशित हो। और (दिविष्टिषु) गृहस्थोचित कामनाओं को पूर्णकरने के अवसरों में ( अस्मभ्यम् ) हमारे हितार्थ ( व्युच्छन्ती ) अपने उत्तम गुणों को प्रकट करती हुई ( भूरि ) बहुत अधिक ( सौभगं ) सौभाग्य, ऐश्वर्य को ( आवहन्ती ) धारण करती हुई हमें प्राप्त हो ।

विश्वस्य हि प्राणनं जीवनं त्वे वि यदुच्छसि सूनरि ।
सा नो रथेन बृहता विभावरि श्रुधि चित्रामघे हवम् ॥१०॥४॥

भा०—हे ( सूनरि ) उत्तम रीति से दिन को या सूर्य को लानेवाली नायिकास्वरूप उषः ! ( यत् ) जब तू ( वि उच्छसि ) विशेष तेज से प्रकट होती है तब ( त्वे ) तुझ पर ही ( विश्वस्य हि प्राणनम् ) समस्त जगत् का प्राण लेना और ( जीवनम् ) जीवन व्यतीत करना निर्भर है । हे ( चित्रामघे ) अद्भुत ऐश्वर्य तेज से युक्त ! हे ( विभावरि ) विशेष दीप्तिवाली!

( सा ) वह तू ( बृहता रथेन ) बड़े भारी शक्तिमान्, वेगवान् आदित्य से युक्त होकर हमारी ( हवम् ) ईश्वर स्तुति का ( श्रुधि ) श्रवण कर । उसी प्रकार हे ( सूनरि ) उत्तम नायिके ! नववधू ! ( यत् वि उच्छसि ) जब तू उत्तम गुणों को प्रकट करे तो ( त्वे विश्वस्य प्राणनं जीवनं) तेरे आधार पर समस्त घर भर का सुख से प्राण लेना, जीना और आजीविकादि निर्वाह निर्भर हो । वह तू हे ( विभावरि ) विशेष कान्तियुक्ते ! विद्यावति ! हे ( चित्रमघे ) अद्भुत नाना धनधान्यवति ! ( बृहता रथेन ) बड़े सुन्दर स्वरूप या बड़े भारी रथ के समान भार-वहन में समर्थ पति या गृहस्थ रूप रथ के साथ युक्त होकर ( हवम् श्रुधि ) ग्रहण करने योग्य बड़ों के वचनों को आदर से सुन । इति चतुर्थो वर्गः ॥

उषो वाजं हि वंस्व यश्चित्रो मानुषे जने ।
तेना वह सुकृतो अध्वराँ उप ये त्वा गृणन्ति वह्नयः ॥ ११ ॥

भा०—हे ( उषः ) प्रभात वेला, उषा के समान कान्तिमति कमनीये कन्ये ! (यः) जो अन्न, ऐश्वर्य, ज्ञान और बल (चित्रः) अद्भुत आश्चर्यजनक, संग्रह करने योग्य ( मानुषे जने) मनुष्यों के हित के लिये है । उस ( वाजं ) अन्न, ऐश्वर्य, बल और ज्ञान को तू ( वंस्व ) प्राप्त कर । (तेन) उससे हे स्त्री! तू (सुकृतः) उत्तम पुण्यवान्, (अध्वरान्) न हिंसा करने योग्य, न पीड़ा देने योग्य, उन पूज्य पुरुषों को (आवह) प्राप्त कर, (ये) जो (वह्नयः) अग्नि के समान ज्ञान प्रकाश को धारण करने हारे ( त्वा उप गृणन्ति ) तेरे प्रति उपदेश करते हैं । उषा और विद्वानों के पक्ष में—हे उषः ! जो विद्वान् ज्ञानी पुरुष तेरे स्वरूप को देख कर भगवान् की स्तुति करते हैं तू उन पुण्यात्माओं को मनुष्यों के हित के लिये अद्भुत, आदर योग्य ज्ञान और बल प्रदान कर ।

विश्वान्देवाँ आ वह सोमपीतयेऽन्तरिक्षादुषस्त्वम् ।
सास्मासु धा गोमदश्वावदुक्थ्य१मुषो वाजं सुवीर्यम् ॥१२॥

भा०—हे ( उषः ) उषा के समान उज्वल कान्तिमति ! कमनीये कन्ये ! ( अन्तरिक्षात् ) अन्तरिक्ष, आकाश से जिस प्रकार प्रभात वेला, ( सोमपीतये ) उत्तम वायु, जल और ओषधि रसों के पान करने के लिये ( विश्वान् देवान् आवहति ) समस्त सूर्य की किरणों और दिव्य गुणों को प्राप्त कराती है उसी प्रकार गृहस्थ में ( सोमपीतये ) जल, अन्न आदि उत्तम पदार्थ और गार्हस्थ्य सुखों के उपभोग के लिये ( अन्तरिक्षात् ) भीतर के अन्तःकरण से तू ( विश्वान् देवान् ) समस्त उत्तम गुणों को ( आ वह ) धारण कर। हे ( उषः ) कमनीये ! पति की इच्छा करने हारी ! तू (सा) वह ( अस्मासु ) हम में भी ( गोमत् ) पशु आदि सम्पत्ति, सुन्दर वाणी तथा भूमि और इन्द्रियों के बल से युक्त ( अश्वावत् ) वेग वाले अग्नि आदि यानों और अश्व आदि पशुओं से सम्पन्न ( उक्थम् ) प्रशंसा योग्य (सुवीर्यम् ) उत्तम वीर्य और बल के देने वाले ( वाजम् ) ऐश्वर्य और अन्न सम्पदा ( धाः ) धारण कर, प्रदान कर।

यस्या रुशन्तो अर्चयः प्रति भद्रा अदृक्षत।
सा नो रयिं विश्ववारं सुपेशसमुषा ददातु सुग्म्यम् ॥१३॥

भा०—( यस्याः ) जिस की प्रातः कालीन उषा के समान ( रुशन्तः ) दीप्तियुक्त, एवं चोर, दस्यु और अन्धकार को नाश करने वाली, ( अर्चयः ) किरणों के समान (रुशन्तः अर्चयः) पापों को नाश करने वाले, उज्वल (भद्राः) अति कल्याणकारी, सुखजनक गुण, ( प्रति अदृक्षन्त ) प्रत्यक्ष रूप से दीखते हों, ( सा ) वह ( उषा ) पाप को नाश करने वाली, कान्तिमती कन्या (सुपेशसम्) उत्तम सुवर्णादि से युक्त सुन्दर रूप वाले, (विश्ववारम् ) सब के मन को हरने वाले, (सुग्म्यम्) सुखजनक, ( रयिम् ) ऐश्वर्य सौभाग्य का ( नः ददातु ) हमें प्रदान करे।

ये चिद्धि त्वामृषयः पूर्व ऊतये जुहूरेऽवसे महि।
सा नः स्तोमाँ अभि गृणीहि राधसोषः शुक्रेण शोचिषा॥१४॥

भा०—हे (उषः) प्रभात वेला के समान कमनीये । उज्वल गुणों वाली स्त्रि ! ( ये चित् हि ) जो भी ( पूर्वे ऋषयः ) पूर्व के विद्वान् लोग (ऊतये) ज्ञान आदि प्राप्त करने और ( अवसे ) गृहस्थ और व्रतादि के पालन करने के लिये ( त्वाम ) तुझ को ( जुहुरे ) उपदेश करते हैं ( सा ) वह तू ( नः ) उन हमारे ( स्तोमान् ) उपदेश समूहों को ( अभि गृणीहि ) स्वयं और अन्यों को उपदेश कर, पढ़, उनका स्वाध्याय कर और ( शोचिष्ठा ) प्रकाश, तेज ( शुक्रेण ) शुद्ध कर्म और ( राधसा ) धनैश्वर्य से युक्त हो । उषा के पक्ष में—हे उषः ! पूर्व के वेदज्ञ विद्वान् तुझे प्राप्त करके अपने ज्ञान वृद्धि और रक्षा के लिये ( जुहूरे ) परमेश्वर की जो स्तुति करते थे अपने उज्वल प्रकाश और तेज से और ( राधसा ) आराधना योग्य इष्ट देव द्वारा उन स्तुति-वचनों का हमें भी उपदेश कर । अर्थात् वे भक्तिवचन प्रातःकाल हम में भी उठें, हमें भी प्राप्त हों ।

उषो यद॒द्य भा॒नुना॒ वि द्वारा॑वृ॒णवो॑ दि॒वः ।
प्र नो॑ यच्छतादवृ॒कं पृ॒थु छ॒र्दिः प्र दे॑वि॒ गोम॑ती॒रिषः॑ ॥ १५ ॥

भा०—हे ( उषः ) उषा के समान कान्तिमति, तेजस्विनि स्त्रि ! ( यत् ) जैसे वह उषा ( भानुना ) सूर्य के प्रकाश से ( दिवः द्वारौ ) आकाश के दोनों द्वार, पूर्व और पश्चिम के आने जाने के मार्गों को ( नि ऋणवः ) प्राप्त होती है उसी प्रकार तू भी ( भानुना ) सूर्य के प्रकाश से और अपने गुण प्रकाश से ( द्वारौ ) ज्ञानवान् पुरुषों के आने और जाने के मार्गों को ( वि ऋणवः ) अच्छी प्रकार खोला कर । और ( नः ) हमें ( अवृकम् ) हिंसक प्राणि, बिच्छू सर्पादि से रहित, ( पृथु ) अति विशाल, ( छर्दिः ) घर और ( गोमतीः ) गौ आदि पशुओं से सम्पन्न ( इषः ) अन्नादि ऐश्वर्य को ( प्र प्र यच्छतात् ) खूब प्रदान किया कर ।

सं नो॑ रा॒या बृ॑ह॒ता वि॒श्वपे॑शसा मिमि॒द्वा समिळा॑भि॒रा ।
सं द्यु॒म्नेन॑ विश्व॒तुरो॑षो महि॒ सं वाजै॑र्वाजिनीवति ॥ १५ ॥ ५ ॥

भा०—हे (उषः) उषाके समान सब पदार्थों को प्रकाशित करनेहारी विदुषी स्त्री ! तू ( नः ) हमें ( बृहता ) बड़े अधिक परिमाण वाले ( विश्वपेशसा ) नाना प्रकारों के ( राया ) ऐश्वर्य से (नः) हमारी (सं मिमिक्ष्व) वृद्धि कर, हम पर हरएक प्रकार की ऐश्वर्य की वर्षा कर जिससे हम बढ़ें। और (इळाभिः) उत्तम वाणियों, भूमियों, अन्न सम्पदाओं से (सं मिमिक्ष्व) हमें बढ़ा। ( विश्वतुरा ) समस्त शत्रुओं के नाशक एवं सेवकों को शीघ्र से शीघ्र कार्य कराने में समर्थ ( द्युम्नेन ) धन और प्रकाश, तेज, प्रभाव से युक्त कर। हे ( महि ) अति पूजनीये ! हे ( वाजिनीवती ) ऐश्वर्यवती, उत्तम क्रिया और ज्ञान से युक्त ! तू ( वाजैः ) संग्रामों, ऐश्वर्यों और अन्नों से भी ( सं मिमिक्ष्व ) बढ़ा। इति पंचमो वर्गः ॥

## [ ४९ ]

प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ निचृदनुष्टुप् छन्दः ॥

**उषो भद्रेभिरा गहि दिवश्चिद्रोचनादधि ।**
**वहन्त्वरुणप्सव उप त्वा सोमिनो गृहम् ॥ १ ॥**

भा०—हे ( उषः ) प्रभातवेला के समान सबको प्रिय लगने वाली ! कन्ये ! तू (भद्रेभिः) कल्याणकारी गुणों और व्यवहारों से रहित (रोचनात् दिवः चित् ) अति उज्वल सूर्य से उषा के समान, तेजस्वी ज्ञानी कुल से ( आगहि ) हमें प्राप्त हो। और (अरुणप्सवः) जलों के सोखनेवाले लाल रंग के किरण जिस प्रकार उषा को लाते हैं उसी प्रकार हे विदुषि कन्ये ! ( त्वा ) तुझको (अरुणप्सवः ) लाल वर्ण के घोड़े ( सोमिनः ) ऐश्वर्यवान् बलवीर्य से युक्त ब्रह्मचारी, प्रिय पति के (गृहम् उप वहन्तु) घर तक सुखपूर्वक ले आवें।

अरुणप्सवः—प्सान्तीति प्सवः अश्वाः, अरुणा रक्तगुणविशिष्टाश्च तेप्सवश्च इति।

सुपेशसं सुखं रथं यमध्यस्था उषस्त्वम् ।
तेना सुश्रवसं जनं प्रावाद्य दुहितर्दिवः ॥ २ ॥

भा०—हे ( उषः ) उषा के समान कमनीये कन्ये! हे (दिवः दुहितः) सूर्य-कन्या उषा के समान तेजस्वी माता पिता की पुत्रि ! ( त्वम् ) तू ( यम् ) जिस (सुखं) सुखप्रद, अति अवकाश वाले विशाल (सुपेशसम्) उत्तम सुवर्ण आदि से बने, उत्तम रूप वाले ( रथम् ) रमण साधन रथ पर ( अधि अस्थाः ) विराजती है ( तेन ) उसी से ( अद्य ) आज शुभ अवसर पर ( सुश्रवसम् ) उत्तम ज्ञान, यश और ऐश्वर्य से युक्त प्रिय ( जनम् ) जन को निर्विघ्न रूप से ( प्र अव ) प्राप्त हो ।

वयश्चित्ते पतत्रिणो द्विपच्चतुष्पदर्जुनि ।
उषः प्रारन्नृतूँरनु दिवो अन्तेभ्यस्परि ॥ ३ ॥

भा०—हे ( उषः ) प्रभातवेला के समान सबको प्रयत्न और पुरुषार्थ में लगानेहारी ! हे (अर्जुनि) सबको गृह के उद्योगों में प्रवृत्त करने वाली ! ( ऋतून् अनु ) तेरे नाना आगमनों के साथ साथ ( चित् ) जिस प्रकार ऋतुओं के अनुकूल ( पतत्रिणः ) आनेवाले (वयः) पक्षीगण और ( द्विपत्, चतुष्पद्) दोपाये और चौपाये, नाना मनुष्य और पशुगण, (दिवः अन्तेभ्यः परि ) आकाश के नाना प्रदेशों और भूमि के नाना प्रदेशों से ( प्र आरन् ) आया करते हैं इसी प्रकार ( ऋतून् अनु ) ऋतुओं के अनुसार (ते) तेरे गृह पर (वयः) नाना ज्ञान विज्ञान से युक्त, परमहंस परिव्राजक गण, (द्विपत्) दोपाये भृत्यजन और (चतुष्पद्) चौपाये, गौ, अश्व आदि पशुगण भी (दिवः अन्तेभ्यः परि) पृथिवी के नाना प्रान्तों से (प्र आरन्) अच्छी प्रकार आवें। ज्ञानी जन उपदेश करें, भृत्यजन सेवा करें और पशुगण सुखसम्पदा बढ़ावें।

व्युच्छन्ती हि रश्मिभिर्विश्वमाभासि रोचनम् ।
तां त्वामुषर्वसूयवो गीर्भिः कण्वा अहूषत ॥ ४ ॥ ६ ॥

भा०—हे ( उषः ) उषा के समान उत्तम गुणरश्मियों से उज्ज्वल

कन्ये ! ( हि ) जिस प्रकार ( रश्मिभिः ) किरणों से ( वि उच्छन्ती ) विविध दिशाओं को प्रकाशित करती हुई ( विश्वम् रोचनम् ) समस्त संसार को रुचिकर, मनोहर ( आभाति ) कर देती है। ( ताम् ) उसको देखकर ( वसूयवः कण्वाः अहूषत ) सबमें व्यापक परमेश्वर की कामना करते हुए विद्वान् पुरुष स्तुति करते हैं उसी प्रकार तू भी ( रश्मिभिः ) गुण रूप किरणों से ( वि उच्छन्ती) प्रकाशित होती हुई ( विश्वम् रोचनम् आभासि) समस्त संसार या गृहस्थ को मनोहर कर देती है, उसे जगमगा देती है। ( ताम् त्वाम् ) उस तुझको (वसूयवः) स्वयं बसना चाहने वाले ( कण्वाः ) विद्वान् पुरुष (अहूषत) उपदेश करें, या तेरी गुण स्तुति करें। इति षष्ठो वर्गः ॥

[ ५० ]

॥ ५० ॥ १—१३ प्रस्कण्वः काण्व ऋषिः। सूर्यो देवता ॥ छन्दः—१, ६ निचृद्गायत्री। २, ४, ८, ९ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री। ३ गायत्री। ५ यवमध्या विराड्गायत्री। विराड्गायत्री। १०, ११ निचृदनुष्टुप्। १२ १३ अनुष्टुप्॥

उदु त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम् ॥१॥

भा०—( केतवः ) रूप और गुणों का ज्ञान करानेहारे रश्मिगण जिस प्रकार ( विश्वाय ) समस्त संसार को ( दृशे ) सब कुछ प्रकाश में दिखाने के लिए( जातवेदसम् ) ऐश्वर्य तेज से युक्त ( देवम् ) प्रकाशमान्, ताप और प्रकाश के दाता ( सूर्यम् उद्वहन्ति ) सूर्य को प्राप्त हैं उसी प्रकार ( त्यं ) उस प्रसिद्ध ( जातवेदसम् ) ऐश्वर्यवान्, एवं वेदज्ञान में निष्णात (देवं) अति कमनीय, एवं विवाह के अभिलाषी (सूर्यम्) तेजस्वी, पुरुष को ( विश्वाय दृशे ) सबके प्रति अपने गुणों को प्रकाश करने के लिए सबके समक्ष ( केतवः ) ज्ञानयुक्त विदुषी स्त्रियां ( उद्वहन्ति )

उद्वाह विधि से प्राप्त हों। अर्थात् विदुषी, गुणवती स्त्रियें विद्वान् गुणवान् पतियों को प्राप्त करें और उत्तम ज्ञान और व्यवहार का प्रकाश करें। परमेश्वर पक्ष में—ज्ञानी पुरुष उस प्रकाशस्वरूप ज्ञानवान् परमेश्वर को ( उद्वहन्ति ) सर्वोच्चरूप से धारण करें, अपनावें। और गुण स्तुति द्वारा सूर्य की रश्मियों के समान उसके गुणों का प्रकाश करें। इसी प्रकार तेजस्वी राजा के अधीन ज्ञापक विद्वान् पुरुष उसकी आज्ञाओं का प्रकाश करने के लिए उसको उच्चपद पर स्थापित करें।

अप॒ त्ये ता॒यवो॑ यथा॒ नक्ष॑त्रा यन्त्य॒क्तुभिः॑। सूरा॑य वि॒श्वच॑क्षसे॥२॥

भा०—(यथा) जिस प्रकार (अक्तुभिः) रात्रि के कालों में ( नक्षत्रा ) नक्षत्र गण चन्द्र के साथ संगत होते हैं और दिन काल में वे (अप यन्ति) दूर हो जाते हैं, नहीं दिखाई देते, इसी प्रकार ( तायवः ) सन्तति उत्पन्न करनेहारी स्त्रियां भी अह्लादकारी पति के साथ (अक्तुभिः) ऋतु-रात्रियों में संगत हों और ( विश्वचक्षसे ) सबको ज्ञान और प्रकाश के दिखाने वाले (सूराय) तेजस्वी पति के वृद्धि के निमित्त (अप यन्ति) नक्षत्रों के समान दूर रहें। अर्थात् सन्तानार्थिनी स्त्रियें भी पुरुषों से दिन में कभी संग न करे। 'ताय सन्तानपालनयोः' भ्वादिः। अहोरात्रौ वै प्रजापतिः। तस्याहरेव प्राणो रात्रिरेव रयिः। प्राणं वा एते प्रस्कन्दन्ति ये दिवा रत्या संयुज्यन्ते। प्रश्न उप०॥

अदृ॑श्रमस्य के॒तवो॒ वि र॒श्मयो॒ जनाँ॒ अनु॑। भ्राज॑न्तो अ॒ग्नयो॑ यथा॥३॥

भा०—(भ्राजन्तः) अति दीप्ति से चमकने वाले (अग्नयः) अग्नि जिस प्रकार चमकते हैं उसी प्रकार ( अस्य ) इसके ( केतवः ) अन्यों को ज्ञान करानेवाले (रश्मयः ) किरणों के समान गुण ( जनान् अनु ) समस्त जनों को प्राप्त हों, ऐसा मैं ( अदृश्यम् ) देखूं। ( अस्य ) इस प्रतापी पुरुष के ( केतवः ) ज्ञान प्रदान करनेवाले गुण (रश्मयः) सूर्य के किरणों के समान ( जनान् ) समग्र मनुष्यों के हित के लिए इस प्रकार प्रकाशित हैं (यथा)

जिस प्रकार ( भ्राजन्तः ) देदीप्यमान ( अग्नयः ) अग्नि हों। मैं ऐसी ही गुणबुद्धि से सदा अपने पालक को ( वि अदृश्रम् ) देखूं।

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य। विश्वमा भासि रोचनम्॥४॥

भा०—हे ( सूर्य ) सूर्य ! सर्वप्रकाशक परमेश्वर ! सूर्य जिस प्रकार ( तरणिः ) महान् आकाश को पार करने हारा, ( विश्वदर्शतः ) सब प्राणियों से देखने योग्य, सब विश्व को प्रकाश से दिखाने वाला, ( ज्योतिः कृत् ) ज्योति, प्रकाश को करने हारा होकर ( विश्वं ) समस्त विश्व को ( रोचनम् ) रुचिकर रूप से (आभासि ) प्रकाशित करता है, उसी प्रकार हे परमेश्वर ! हे विद्वन् ! ऐश्वर्यवन् ! पुरुष भी ( तरणिः ) सब को दुःखों से तारने वाला और स्वयं समस्त विश्व को पार कर सबसे परे विद्यमान है वह ( विश्वदर्शतः ) सबका द्रष्टा, (ज्योतिष्कृत् ) सब प्रकाशमान लोकों का रचने हारा है। तू ( विश्वम् ) समस्त संसार में ( रोचनम् ) अति मनोहर रूप से ( आभासि ) प्रकट हो रहा है अथवा समस्त तेजस्वी पदार्थों को प्रकाशित कर रहा है। इसी प्रकार विद्वान् पुरुष कष्टों से तारक होने से 'तरणि', दर्शनीय होने से दर्शत, ज्ञान प्रकाश करने से ज्योतिष्कृत्, और तेजस्वी होने से सूर्य होकर सबके प्रति मनोहर रूप से प्रकट हो।

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्। प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे॥५॥

भा०—जिस प्रकार सूर्य ( देवानां विशः मानुषान् प्रत्यङ् उदेति ) समस्त तेजस्वी पदार्थों और प्रजा और मनुष्यों को साक्षात् उदय होकर प्राप्त होता है समस्त विश्व को ( स्वः दृशे ) अपना प्रकाश और ताप प्रकट करने के लिये आता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! और हे विद्वन् ! तू ( देवानां विशः ) दिव्य पदार्थों और विद्वानों की ( विशः ) प्रजाओं और ( मानुषान् ) मननशील मनुष्यों के प्रति ( प्रत्यङ् ) साक्षात्

स्वरूप में उनके प्रति ( उत् ऐषि ) उदय हो, उनको उत्तम रूप से प्राप्त हो । और ( विश्वम् स्वः ) सब प्रकार के प्रकाश सुख और ज्ञानोपदेश को ( दृशे ) दर्शाने और उपदेश करने के लिये भी तू ( प्रत्यङ् ) उनके प्रति प्रकट हो, उनको प्राप्त हो । इति सप्तमो वर्गः ॥

येना पावक चक्षसा भुरण्यन्तं जनाँ अनु । त्वं वरुण पश्यसि ॥६॥

भा०—हे ( पावक ) सब को पवित्र करने हारे हे ( वरुण ) सबसे श्रेष्ठ सब पापों और दुखों के नाश करने हारे ! परमेश्वर ! तू ( येन ) जिस कृपासे पूर्ण ( चक्षसा ) चक्षु या प्रकाश से ( भुरण्यन्तम् ) समस्त प्राणियों को धारण पोषण करने वाले इस भूलोक को सूर्य के समान और ( जनान् अनु ) समस्त जन्तुओं के प्रति ( पश्यसि ) देखता है हम तेरी उसी कृपादृष्टि की याचना और स्तुति करते हैं ।

वि द्यामेषि रजस्पृथ्वहा मिमानो अक्तुभिः । पश्यञ्जन्मानि सूर्य ॥७॥

भा०—हे ( सूर्य ) तेजोमय ! सबके उत्पादक सञ्चालक ! परमेश्वर ! जिस प्रकार सूर्य ( अक्तुभिः सह अहा ) रात्रियों के साथ साथ दिनों को भी उत्पन्न करता है और ( पृथुरजः ) बड़े पृथ्वी लोक और ( द्याम् ) अन्तरिक्ष को व्याप्त होता है और (जन्मानि पश्यन्) समस्त जन्तुओं को देखता जाता है उसी प्रकार हे परमेश्वर ! तू भी (पृथुरजः) विशाल लोकों और ( द्याम् ) आकाश को ( वि एषि ) व्याप्त हो । और ( जन्मानि ) समस्त जन्मों को ( पश्यन् ) देखता है और सर्वत्र व्यापक है ।

सप्त त्वा हरितो रथे वहन्ति देव सूर्य । शोचिष्केशं विचक्षण ॥ ८

भा०—(सप्त हरितः) सात, या सर्पणशील, वेगवान् अश्व जिस प्रकार (रथे) रथ में लगकर (शोचिष्केशम्) तेजस्वी पुरुष को उठाकर लेजाते हैं और जिस प्रकार ( सप्त हरितः ) सात किरणें ( शोचिष्केशम् ) प्रदीप्त किरणों वाले सूर्य को धारण करते हैं उसी प्रकार हे (विचक्षण) विविध विज्ञानों के

दिखाने और विविध लोकों को विशेष रूप से देखने हारे जगदीश्वर ! राजन्! हे (सूर्य) सूर्य के समान तेजस्विन् ! ( सप्त हरितः ) सात वेगवान् एवं व्यापक तत्व ( त्वा ) वहन्ति तुझ को धारण करते हैं। आत्मा को सात प्राण, परमेश्वर को पांच भूत और महान् अहंकार ये सात विकार तथा राजा को राज्य के सात अंग धारण करते हैं।

अयु॑क्त स॒प्त शु॒न्ध्युवः॒ सूरो॒ रथ॑स्य न॒प्त्यः॑। ताभि॑र्याति॒ स्वयु॑क्तिभिः॥९

भा०—जिस प्रकार से ( सूरः ) सूर्य ( रथस्य नप्त्यः ) जल को न गिरने देने वाली और (शुन्ध्युवः) पदार्थों को शोधन करने वाली ( सप्त ) सात प्रकार की किरणों को ( अयुक्त ) अपने साथ लगाये रहता है और (स्वयुक्तिभिः) अपने प्रेरक शक्तिओं से ही (ताभिः) उनके सहित (याति) सर्वत्र व्यापता है और जिस प्रकार ( सूर्य ) सूर्य के समान तेजस्वी, प्राणों के प्रेरणा करने हारा योगी भी सात ( शुन्ध्युवः ) शरीर के मलों को शोधन करने वाली ( रथस्य ) रमण साधन इस देह को ( नप्त्यः ) न गिरने देने वाली, देहपात न होने देने वाली, उसको चेतन बनाये रखने वाली प्राणवृत्तियों को ( अयुक्त ) योग द्वारा वश और एकाग्र करता है, ( ताभिः ) उन ( स्वयुक्तिभिः ) अपने आत्मा की योजनाओं, प्रेरणाओं, एकाग्रवृत्तियों से ही ( याति ) परमपद में गति करता है और जिस प्रकार ( सूरः ) सेनाओं का सञ्चालक, प्रजाओं का प्रेरक, वीर राजा ( रथस्य नप्त्यः ) अपने रथ को न डिगने देने वाली (सप्त शुन्ध्युवः) सात या वेगवान् अश्वाओं को जोड़ता है और अपनी युक्तियों से उन द्वारा रण-मार्ग में जाता है उसी प्रकार परमेश्वर भी ( रथस्य नप्त्यः ) समस्त जीवों के रमण के साधन ब्रह्माण्ड को न नष्ट होने देने वाली ( सप्त शुन्ध्युवः ) पूर्व कहे सात सुखों के धारक, तत्वों को (अयुक्त) परस्पर संयुक्त करता है और ( ताभिः ) उनको ( स्वयुक्तिभिः ) अपने योजन करने के शक्तियों से युक्त उन द्वारा (याति) सर्वत्र स्वयं व्यापन कर और सबको चला रहा है।

उद्वयं तमसस्परि ज्योतिष्पश्यन्त उत्तरम्।
देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम् ॥ १० ॥

भा०—( वयम् ) हम लोग ( तमसः परि ) समस्त अन्धकार, शोक दुःख, सबसे ऊपर और सबसे परे वर्त्तमान ( उत्तरम् ) इन लौकिक पदार्थों की अपेक्षा उच्च, संसार के प्रलय के भी बाद में भी विद्यमान रहने वाले एवं प्रलयकारी ( ज्योतिः ) प्रकाशवान् सूर्य को ( पश्यन्तः ) साक्षात् दर्शन करते हुए ( देवत्रा ) समस्त सुखों के देने वाले, एवं प्रकाशमान पदार्थों में से भी सबसे ( उत्तमम् ) उत्तम गुण कर्म और स्वभाव वाले परम आत्मा रूप ( ज्योतिः ) परम ज्योति को ( अगन्म ) हम प्राप्त हों।

उद्यन्नद्य मित्रमह आरोहन्नुत्तरां दिवम्।
हृद्रोगं मम सूर्य हरिमाणं च नाशय ॥ ११ ॥

भा०—हे ( मित्रमहः ) सूर्य के समान तेजस्विन्! स्नेह युक्त, मित्र के समान पूजनीय! परमेश्वर! विद्वन्! राजन्! आत्मन्! ( उत्-यन् ) उदय होता हुआ सूर्य और ( उत्तरां दिवम् आरोहन् ) उत्तर आकाश में आता हुआ या क्रमशः ऊंचा आता हुआ सूर्य जिस प्रकार (हृद्रोगं) हृदय के रोग को और (हरिमाणं च) पीलिया को नाश करता है उसी प्रकार हे परमेश्वर हे (सूर्य) सबके प्रेरक! सबके हृदयों के प्रकाशक, विद्या के द्वारा तेजस्विन्! विद्वन्! तू भी (उत् यन्) हृदयाकाश में उदित होता हुआ, हे विद्वन्! तू उत्तम पद और दशा को प्राप्त होता हुआ, और (उत्तराम्) और भी उत्तम ( दिवम् ) ज्ञान प्रकाश को ( आरोहन् ) उन्नत या प्राप्त करता हुआ तू ( मम ) मेरे ( हृद्रोगं ) हृदय के पीड़ा देने वाले रोग के समान अज्ञान को और ( हरिमाणं ) सुखों के हरनेवाले बन्धन को ( नाशय) नाश कर।

शुकेषु मे हरिमाणं रोपणाकासु दध्मसि।
अथो हारिद्रवेषु मे हरिमाणं नि दध्मसि ॥ १२ ॥

भा०—( मे ) हम अपने देह के ( हरिमाणम् ) बल और सुख को अपहरण करनेवाले रोग को (शुकेषु) शुक अर्थात् तोते के समान किये गये नाना प्रकार के कटु तिक्त फलों के आस्वादन तथा नाना वृक्षों से युक्त प्रदेशों में भ्रमण आदि कार्यों द्वारा और (रोपणाकासु) शरीर के पोषण करनेवाली, लेपन करने योग्य ओषधियों द्वारा उन ओषधियों के बल पर ( नि दध्मसि ) वश करें। (अथो) और ( हारिद्रवेषु ) दुःख पीड़ा को हरने और स्वतः द्रव रूप एवं देह के मलों को बहा कर निकाल देनेवाले पदार्थों के बल से भी (ये) अपने देह के (हरिमाणं ) बलहारी, चेतनाहारी रोग को ( निदध्मसि ) दूर करें। अथवा शुक, रोपणाका और हारिद्रव ये औषधियों के विशेषवर्ग हैं जिनका स्पष्टीकरण देखो अथर्ववेद आलोकभाष्य का० १। सू० २२। मन्त्र १–४॥ (हरिमाणं) चेतना और ज्ञानके हरनेवाले तामस आवरण को हम (शुकेषु) ज्ञानोपदेष्टा विद्वान् और (रोपणाकासु) ज्ञानप्रद उपनिषद् की वल्लियों और (हारिद्रवेषु) अज्ञान मोह के हरने और भगा देनेवाले उपदेशों द्वारा दूर करें।

उद॑गाद॒यमा॑दि॒त्यो विश्वे॑न॒ सह॑सा स॒ह।
द्वि॒षन्तं॒ मह्यं॑ र॒न्धय॒न्मो अ॒हं द्वि॑ष॒ते र॑धम् ॥ १३ ॥ ८ ॥ ६ ॥

भा०—( अयम् ) यह (आदित्यः) सूर्य और सूर्य के समान तेजस्वी, आत्मा का स्वरूप ( विश्वेन सहसा सह ) मोह आदि शत्रुओं को दबाने और पराजित करनेवाले बल के साथ प्रतापी राजा और सूर्य के समान ( मह्यम् ) मेरे ( द्विषन्तम् ) अप्रीति करने वाले रोग के समान देह और आत्मा पर प्रहार करने वाले शत्रु को ( रन्धयन् ) विनाश करता हुआ (उत् अगात्) उदय को प्राप्त होता है। (मो अहम्) और जो मुझ को नाश नहीं करे उसको मैं भी पीड़ित न करूं। प्रत्युत ( द्विषते ) शत्रु के विनाश के लिए ही मैं ( रधम् ) उसको दण्डित करूं। अथवा—(अहं द्विषते मो रधम् ) मैं शत्रु के लाभ के लिए किसी को पीड़ित न करूं।

इत्यष्टमो वर्गः ॥ इति नवमोऽनुवाकः ॥

[ ५१ ]

सव्य आङ्गिरस ऋषिः। इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ६, १० जगती। २, ५, ८ विराड् जगती। ११—१३ निचृज्जगती ३, ४ भुरिक् त्रिष्टुप्। ६, ७ त्रिष्टुप्॥ पंचदशर्चं सूक्तम्।

**अभि त्यं मेषं पुरुहूतमृग्मियमिन्द्रं गीर्भिर्मदता वस्वो अर्णवम्।**
**यस्य द्यावो न विचरन्ति मानुषा भुजे मंहिष्ठमभि विप्रमर्चत॥१॥**

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (त्यं) उस (मेषम्) मेढ़े के समान अपने प्रतिपक्ष से टक्कर लेने वाले, मेघ और सूर्य के समान राष्ट्रपर अन्न जल और ज्ञान, प्रकाश की वर्षा करनेहारे, (पुरुहूतम्) बहुतसे प्रजाजनों से आदर प्राप्त करनेवाले, (ऋग्मियम्) अर्चना योग्य स्तुतियों से मान करने योग्य, (वस्वः अर्णवम्) ऐश्वर्यों को रत्नाकर, समुद्र के समान अगाध गुणों के सागर रूप राजा और परमेश्वर की (गीर्भिः) वाणियों और वेदवाणियों से (अभि मदत) स्तुति कर प्रसन्न करो। (यस्य) जिसके (मानुषा) मनुष्यों के हितकारी कर्म (द्यावः) सूर्य की किरणों के समान तेजस्वी (भुजे) समस्त प्रजाजन के पालन के लिए (वि चरन्ति) विविध देशों में, विविध प्रकार से विचरते, फैलते और विस्तृत होते हैं उस (मंहिष्ठम्) अति दानशील, महान् (विप्रम्) प्रजाओं को विविध ऐश्वर्यों से पूर्ण करनेवाले, ज्ञानवान्, मेधावी पुरुष को (अभि अर्चत) सब प्रकार से साक्षात् कर स्तुति करो। सुखों का वर्षण करने से परमेश्वर 'मेष' है। वह ऋचाओं द्वारा स्तुति और ज्ञान योग्य होने से 'ऋग्मिय' है। वह ऐश्वर्य का अर्णव, या सागर है।

**अभीमवन्वन्त्स्वभिष्टिमूतयोऽन्तरिक्षप्रां तविषीभिरावृतम्।**
**इन्द्रं दक्षास ऋभवो मदच्युतं शतक्रतुं जवनी सूनृतारुहत्॥२॥**

भा०—( ऊतयः ) उत्तम रक्षा करने हारे, एवं ज्ञानवान् (दक्षासः) शीघ्र कार्य करने में कुशल विद्वान् (ऋभवः) तेजस्वी अति ऐश्वर्यवान्, सत्यज्ञानी, पुरुष (तवीषीभिः) बलशालिनी शक्तियों और सेनाओं से (आवृतम्) घिरे हुए (अन्तरिक्ष प्राम्) सूर्य या मेघ जिस प्रकार अन्तरिक्ष को अपने तेज और अपने विस्तृत फैलाव से पूर्ण कर देता है उसी प्रकार अपने और पराये राष्ट्र के बीच में विद्यमान देश को भी अपने प्रभाव से और युद्ध समय में शर वर्षा से अन्तरिक्ष को पूरने वाले, ( सु-अभिष्टिम् ) उत्तम इच्छा कर्म सामर्थ्य वाले, उत्तम आशा और अधिकार को प्राप्त, (इन्द्रम्) शत्रु हनन करने वाले, ऐश्वर्यवान्, (मदच्युतम्) अपनी सेनाओं को हर्षित करने और शत्रुओं के गर्व के तोड़ने हारे, ( शतक्रतुम् ) अनेक कार्य सामर्थ्यों और प्रज्ञाओं से युक्त, वीर सेनापति को ही ( जवनी ) वेगयुक्त, बलवती ( सूनृता ) वाणी तथा आज्ञा प्रदान करने का अधिकार तथा ( सूनृता ) बलप्रद अन्नादि देने वाली राजनीति ( आ अरुहत् ) प्राप्त हो। और ( ऋभवः ) विद्वान् पुरुष, उत्तम कर्म साधक शिल्पी जन ( ईम् अभि ) उसको ( अवन्वन्) प्राप्त हों और तेजस्वी पुरुष उस की रक्षा करें।

परमेश्वर पक्ष में—( ऊतयः ) समस्त ज्ञान उस उत्तम कामना से युक्त परमेश्वर को प्राप्त हैं। समस्त आकाश में व्यापक ( तविषीभिः ) बड़ी शक्तियों से युक्त परमेश्वर को ही (दक्षासः) सत्यज्ञानी, कुशल, अज्ञानान्धकार के नाशकारी योगी जन भजन करते हैं और उसी को ( जवनी सूनृता ) वेगवती, आवेश से उठी हुई स्तुति प्राप्त होती है।

त्वं गोत्रमङ्गिरोभ्योऽवृणोरपोतात्रये शतदुरेषु गातुवित्।
ससेनं चिद्विमदायावहो वस्वाजावद्रिं वावसानस्य नर्तयन् ॥ ३॥

भा०—हे (स-सेन) सेना से युक्त ! सेनापते ! राजन् ! सूर्य जिस प्रकार ( अंगिरोभ्यः ) प्रकाशयुक्त किरणों से या प्राणों से युक्त प्राणियों के हित के लिये (गोत्रम् अप अवृणोत्) मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है और बरसा देता

है उसी प्रकार तू भी ( अंगिरोभ्यः ) प्राणधारी प्रजाजनों के हित के लिये (गोत्रम्) अपनी भूमि को पालन करने वाले पर्वत या मेघके समान राजा को, या (गोत्रम्) गौओं आदि पशु समूहों और ज्ञानयुक्त हितकारी आज्ञाओं की भी ( अप अवृणोः ) प्रकट कर । ( उत ) और ( अत्रये ) तीनों प्रकार के दुःखों से मुक्त करने के लिये, अथवा अपने राष्ट्र में ही निवास करने वाले प्रजाजन के हित के लिये तू ( शतदुरेषु ) सैकड़ों द्वारों, भूलभुलैयां वाले गढ़ या व्यूहों में भी (गातुवित् ) सैकड़ों आवरण वाले मेघावयवों में सूर्य के समान मार्ग और भूमि को प्राप्त कर लेने हारा होकर ( आजौ ) संग्राम में (वावसानस्य) आच्छादन करने वाले मेघ के ( अद्रिम् ) अच्छिन्न खंड को जिस प्रकार वायु नचाता है उसी प्रकार (वावसानस्य) राष्ट्र पर अपना वश करनेवाले शत्रु के (अद्रिम् ) छिन्न भिन्न हुए बल समूह को भी (नर्त्तयन् ) अपने पराक्रम से नचाता हुआ ( विमदाय ) विविध प्रकार के हर्षों और सुखों को प्राप्त करने के लिये (वसु) ऐश्वर्य (आवह) प्राप्त कर। परमेश्वर के पक्ष में–परमेश्वर (अंगिरोभ्यः गोत्रम् अपावृणोः) विद्वानों के लिये वाणी समूह, वेद राशि को प्रकट करता है। त्रिविध तापों से रहित जीव के लिये शत-आयु वाले जीवनों में मार्ग को दिखाता है। सूर्यों से युक्त जगतों के स्वामिन् ! तू अति आनन्द के लिये ( आजौ ) परम सीमा, मोक्ष में ( वावसानस्य ) निवास करने वाले जीव के अछेद्य अज्ञान को भी दूर करता है। तू हमें (वसु आ वहः ) ऐश्वर्य प्रदान कर ।

त्वम॒पाम॑पि॒धाना॑वृणो॒रपाधा॑रयः॒ पर्व॑ते॒ दानु॑मद्वसु॑ ।
वृ॒त्रं यदि॑न्द्र॒ शव॒साव॑धी॒रहि॒मादित्सूर्यं॑ दि॒व्यारो॑हयो दृ॒शे ॥ ४॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! ( अपाम् अपिधाना ) सूर्य जिस प्रकार जलों को आकाश में रखने वाले कारणों को दूर कर देता है उसी प्रकार तू ( अपाम् ) प्रजाओं और आप्त विद्वानों के ( अपिधाना ) शत्रुओं के द्वारा उत्पन्न किये बन्धनों को ( अप अवृणोः ) दूर कर । और

जिस प्रकार सूर्य ( पर्वते ) मेघ में और पर्वत पर ( दानुमत् वसु) दान देने योग्य और जीवनप्रदान करनेवाले जल को ( अधारयः ) धारण करता है। उसी प्रकार तू भी (पर्वते) पर्वत के समान गम्भीर, स्थिर तथा मेघ के समान सब को निष्पक्षपात होकर सुखजनक पदार्थ देने वाले पुरुष को ( दानुमत् वसु ) प्रजा के हित के लिये देने योग्य ऐश्वर्य को (अधारयः) धारण करा। और ( यत् ) जिस प्रकार वायु ( शवसा अहिम् अवधीः ) बल से मेघ को आघात करता है और ( आत् सूर्यम् दृशे दिवि आरोहयः ) अनन्तर सब को प्रकाश से दिखाने के लिये सूर्य को मध्य आकाश में स्थापित करता है उसी प्रकार हे सेनापते ! तू ( शवसा ) बलपूर्वक ( अहिम् ) सब ओर से आघात करने वले शत्रु, दस्यु आदि को (अवधीः) नाश कर और ( आत् ) उसके पश्चात् ( दिवि ) न्याय प्रकाशन के पद, राजसभा के ऊपर ( दृशे ) व्यवहारों के देखने और न्याय के मार्ग को दर्शाने के लिये ( सूर्यम् ) सूर्य के समान तेजस्वी और ज्ञानवान् पुरुष को ( आरोहयः ) उच्च पद पर स्थापित कर। परमेश्वर—जलों को वर्षाता है बह पर्वत में पाने योग्य बहु मूल्य रत्न उत्पन्न करता। बलसे आवरक ज्ञान को दूर करता और सूर्य को आकाश में प्रकाश के लिये स्थापित करता है।

त्वं मायाभिरप मायिनोऽधमः स्वधाभिर्ये अधि शुप्तावजुह्वत।
त्वं पिप्रोर्नृमणः प्रारुजः पुरः प्र ऋजिश्वानं दस्युहत्येष्वाविथ॥५॥६

भा०—( ये ) जो दुष्ट, डाकू जन ( शुप्तौ अधि ) दूसरों के सोते हुए ( अजुह्वत ) दूसरों के पदार्थों को हर लेते हैं, अथवा जो स्वार्थी (मायाभिः) छलकपटों से सब कुछ ( शुप्तौ) अपने भोग विलास में ही फूंक देते हैं, उन ( मायिनः ) मायावी छली कपटी, पुरुषों को ( मायाभिः ) अपनी नाना उपाय युक्त, या ज्ञानबुद्धियों द्वारा ( अप अधमः ) दूर मार भगा, उनको भयभीत कर, या उपदेश कर। हे (नृमणः) मनुष्यों को वश करने हारे ! उन द्वारा मान, आदर योग्य, एवं मनुष्यों की चित्तवृत्ति के जाननेहारे अथवा

उनके हित में मनोयोग देनेहारे ( त्वं ) तू ( पिप्रोः ) अपने ही को निरन्तर भरने पूरनेवाले शत्रु के (पुरः) दुर्गों को (प्र अरुजः ) तोड़फोड़ डाल । और ( दस्युहत्येषु) दस्युओं को मारने के अवसरों में, संग्रामों के बीच (ऋजिश्वानम्) सरल, धार्मिक मार्गों पर चलनेवाले उत्तम मनुष्य समूह, या कुत्तों के समान सुशिक्षित अपनी इन्द्रियों और अधीन सैनिकों के वशकारी पुरुष की ( प्र आविथ ) अच्छी प्रकार रक्षा कर । अथवा—( पिप्रोः ऋजिश्वानम्) पालनकर्ता माता पिता के प्रति सरल व्यवहारकारी उत्तम प्रकृति के पुरुष की रक्षा कर। परमेश्वर और विद्वान्गण के पक्ष में–वे अपनी ( स्वधाभिः) अमृतमयी ज्ञानवाली वाणी से जो लोग (अधि शुप्तौ अजुह्वत) सब कुछ अपने भोगविलास में फूकते हैं उनको उपदेश करें । परमेश्वर (पिप्रोः) शरीर को पालन करने वाले देही आत्मा के ( पुरः अरुजः ) देहबन्धनों को काटें । धार्मिकजन की रक्षा करें । इति नवमो वर्गः ॥

त्वं कुत्सं शुष्णहत्येष्वाविथारन्धयोऽतिथिग्वाय शम्बरम् ।
महान्तं चिदर्बुदं नि क्रमीः पदा सनादेव दस्युहत्याय जज्ञिषे ॥६॥

भा०—( त्वम् ) तू ( शुष्णहत्येषु ) प्रजा के धनों और प्राणों को अत्याचारों द्वारा पोषण और रक्त शोषण करने वाले दुष्टों के विनाश करने के अवसरों में ( कुत्सम् आविथ ) वज्र अर्थात् शस्त्रास्त्र बल को धारण कर । और (शम्बरम् ) सूर्य या वायु जिस प्रकार मेघ को अपने तेज और वेग से आघात करता है उसी प्रकार (शम्बरम्) वज्र या शस्त्रों के धारण करने वाले शत्रु सैन्य को ( अरन्धयः ) पीड़ित कर । और (अतिथिग्वाय) अतिथि या पूज्य पुरुषों के गमन करने योग्य, या आश्रय लेने योग्य, उत्तम पुरुषों के हित के लिये या अतिथियों के आदर सत्कार के लिये ( महान्तं चित् अर्बुदम् ) बड़े भारी मेघ के समान दानशील, एवं असंख्यात ऐश्वर्यों और उत्तम गुणों से युक्त पद को ( पदा ) अपने ज्ञान और सामर्थ्य से ( नि क्रमीः )

प्राप्त कर, पहुंच। और (सनात् एव) सदा ही (दस्युहत्याय) दुष्ट पुरुषों के दलन के लिये (जज्ञिषे) तू उत्पन्न हो।

त्वे विश्वा तविषी सध्र्यग्घिता तव राधः सोमपीथाय हर्षते।
तव वज्रश्चिकिते बाह्वोर्हितो वृश्चा शत्रोरव विश्वानि वृष्ण्या ॥७॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! सेनापते! (त्वे) तेरे ही अधीन (विश्वा तविषी) समस्त बलवती सेना, (सध्र्यक्) सदा साथ रहने वाली, तेरे संग ही (हिता) स्थिर है। (तव) तेरा (राधः) चित्त (सोमपीथाय) सोम रस के समान राष्ट्र के ऐश्वर्य को भोग करने और अपने बल बढ़ाने के लिये (हर्षते) उत्कण्ठित होता है। (तव) तेरी (बाह्वोः) बाहुओं से (हितः) स्थापित, तेरे शासन या वश में रहने वाला (वज्रः) खड्ग, शस्त्र बल (चिकिते) सर्वत्र प्रसिद्ध है या सदा ओषधि के समान शत्रु रूप रोगों को दूर करने में समर्थ होता है। (अतः) तू (शत्रोः विश्वा वृष्ण्यानि) शत्रु के सब बलों को (वृश्च) निर्मूल कर और अपने (विश्वानि वृष्ण्या) समस्त शस्त्रवर्षी सैन्य बलों की (अव) रक्षा कर। परमेश्वर पक्ष में—हे प्रभो! तुझ में ही सुखों के बरसानेवाले समस्त सामर्थ्य हैं वे तेरे आनन्द रस पान के लिये उत्कण्ठित करती हैं। तेरा बल समस्त विभूति या तेरी आराधना ही रोगों और कष्टों को दूर करती है। उच्छेद योग्य काम आदि के सब बलों को तू नाश कर। हमारे बल वीर्य की तू रक्षा कर।

वि जानीह्यार्यान्ये च दस्यवो बर्हिष्मते रन्धया शासदव्रतान्।
शाकी भव यजमानस्य चोदिता विश्वेत्ता ते सधमादेषु चाकन ॥८॥

भा०—हे विद्वन्! सेनापते! तू (आर्यान्) श्रेष्ठ पुरुषों को, सम्पति के वास्तविक स्वामियों को भी (विजानीहि) विशेष विवेक से जान। (ये च) और जो (दस्यवः) प्रजा के पीड़क या वास्तविक स्वामी के सम्पत्ति को लूट खसोट लेने वाले, चोर डाकू, दुष्ट पुरुष हैं उनको भी (विजा-

नीहि ) विवेक पूर्वक जान अर्थात् मालिक और चोर दस्युओं का विवेक भली प्रकार कर, जिससे राज्य में न्याय उचित रीति से हो। अव्यवस्था फैल कर चोर डाकू स्वयं गरीब निर्बलों को सताकर उनके माल के स्वामी न बन जावें। हे राजन् ! तू ( अव्रतान् ) व्रत, धर्म नियम, सत्य व्यवहार और सत्य भाषण आदि को पालन करने वाले, उद्दण्ड पुरुषों को ( बर्हिष्मते ) प्रजा से युक्त राष्ट्र या भूस्वामी के हित के लिये ( शासत् ) शासन करता हुआ उनको ( रन्धय ) दण्डित कर। तू ( यजमानस्य ) कर देने वाले या तेरा मान आदर करने वाले, तेरे संग घर न बना कर रहने वाले राष्ट्र वासी जन का तू ( चोदिता ) आज्ञापक होकर ( शाकी ) शक्तिमान् ( भव ) होकर रह। ( ते ) तेरे ( ता ) उन २ नाना प्रकार के ( विश्वा ) समस्त कर्मों और अद्भुत व्यवहारों की ( सधमादेषु ) एक साथ मिल कर होने वाले हर्ष, विनोद और उत्सवों के अवसरों पर मैं ( चाकन ) प्रसिद्धि चाहता हूं।

अनु॑व्रताय र॒न्धय॒न्नप॑व्रताना॒भूभि॒रिन्द्रः॑ श्न॒थय॒न्नना॑भुवः ।
वृ॒द्धस्य॑ चि॒द्वर्ध॑तो॒ द्यामिन॑क्षत॒: स्तवा॑नो व॒म्रो वि ज॑घान सं॒दिहः॑ ॥६॥

भा०—(इन्द्रः) सूर्य के समान तेजस्वी, शत्रुहन्ता राजा (अनुव्रताय) अनुकूल होकर व्रतों और नियमों को पालन करनेवाले प्रजाजन के हित के लिए ( अपव्रतान् ) व्रत, नियमों को न पालन करनेवाले, उद्दण्ड पुरुषों को (रन्धयन्) दण्डित करता हुआ और (आभूभिः) अपने अधीन भूमियों के स्वामी माण्डलिक अधीशों द्वारा अथवा अधिक वैभव और सामर्थ्यवाले, समर्थ बलवान् वीर, पुरुषों या सेनाओं द्वारा अपने ( अनाभुवः ) मुकाबले पर न आ सकने वाले शत्रु-सेनाओं को ( श्नथयन् ) विनाश करता हुआ ( स्तवानः ) स्तुति का पात्र होकर ( संदिहः ) राष्ट्र का अच्छी प्रकार उपचय वृद्धि करनेहारा ( वम्रः ) बल्मीक के समान गुप्त सुरंगों से युक्त दुर्गों को रच कर, या उसके समान संचयशील, प्रचुर कोशवान् होकर

( वृद्धस्य ) बढ़े हुए और ( वर्धतः चित् ) बढ़ते हुए और (द्याम् इनक्षतः) आकाश में फैलते हुए मेघ के समान तेजस्विता में बढ़नेवाले शत्रुबल को भी ( विजघान ) विविध उपायों से नाश करे, मारे । सायण की वज्र और संदिह नामक ऋषि की कल्पना निराधार है ।

तक्षद्यत्त उशना सहसा सहो वि रोदसी मज्मना बाधते शवः ।
आ त्वा वातस्य नृमणो मनोयुज आ पूर्यमाणमवहन्नभि श्रवः॥१०॥१०

भा०—हे राजन् ! ( यत् ) जब ( ते सहः ) तेरे बल को (उशनाः) तेरी मैत्री और वृद्धि करनेवाला सहायक मन्त्री या मित्र राजा अपने ( सहसा ) शत्रु पराजयकारी बल से ( तक्षत् ) अति अधिक तीक्ष्ण कर देता है, तब ( मज्मना ) अपने महान् सामर्थ्य से तेरा ( शवः ) सैन्यबल ( रोदसी विबाधते ) आकाश और भूमि दोनों के समान स्वपक्ष और पर-पक्ष दोनों को विविध प्रकार से पीड़ित करता है, दोनों को भयभीत करता है । हे ( नृमणः ) नेता पुरुषों के प्रति मनोयोग देनेहारे ! अथवा प्रजा के हितों में दत्तचित्त ! एव प्रजाओं को वश करनेहारे ! (वातस्य मनोयुजः) वायु के वेग से चलनेवाले मन अर्थात् इच्छानुसार रथ में जुड़कर चलनेहारे तीव्र, वेगवान् अश्व और अश्वारोही भृत्यगण ( आ पूर्यमाणम् ) सब प्रकार से भरे पूरे, पूर्ण कोशवान् ( त्वा ) तुझको ( श्रवः ) यश, धन और ऐश्वर्य ( अभि आवहन् ) सब तरफ से प्राप्त करावें । इति दशमो वर्गः ॥

मन्दिष्ट यदुशने काव्ये सचाँ इन्द्रो वंकू वंकुतराधि तिष्ठति ।
उग्रो ययिं निरपः स्रोतसासृजद्वि शुष्णस्य दृंहिता ऐरयत्पुरः॥११॥

भा०—( यद् ) जब ( उशने ) समस्त राष्ट्र के वश करने में समर्थ सभापति या राजमन्त्री, (काव्ये) विद्वानों के बीच सबसे मुख्यतम विद्वान्, क्रान्तदर्शी, महामात्य के कर्म और पदाधिकार पर स्थित हो जाय तो उसके आश्रय पर ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा ( मन्दिष्ट ) खूब चमक जाता है ।

खूब प्रभाववान्, तेजस्वी और यशस्वी हो जाता है, तब वह (सच्चा) सबके साथ ही ( वङ्कू ) अति वेगवान् (वङ्कूतरा) अति कुटिल मार्गों से दौड़ने वाले अश्वों पर महारथी के समान ( वंकू ) कुटिल चालों के चलने वाले और ( वंकुतरा ) कुटिल चालों से युद्ध करनेवाले, शत्रु और उदासीन राजाओं पर भी ( अधितिष्ठति ) अपना शासन जमा लेता है । ( यर्थि अपः स्रोतसा निर् असृजत् ) वेग से गमन करने वाले मेघ को जिस प्रकार वायु या विद्युत् अपने आघात से टकराकर उसके जलों को प्रवाह रूप से भगा देता है उसी प्रकार ( यर्थि ) आक्रमण करनेवाले शत्रु के (अपः) प्राप्त सेनाओं को (स्रोतसा) बहते प्रवाह के समान वेग से ( निः असृजत् ) मैदान से निकाल देता है, भगा देता है । और स्वयं ( दंहिता ) अपने बलको बढ़ाकर वह ( शुष्णस्य ) राष्ट्र के शोषण करनेवाले शत्रु के ( पुरः ) गढ़ों या दुर्गों को ( वि ऐरयत् ) विविध रीतियों से कंपा देता है, नाश करता है ।

'मन्दिष्ठ' इति पाठ श्रीमद्दयानन्दपादाभिमतश्चिन्त्यः ।

आ स्मा रथं वृषपाणेषु तिष्ठसि शार्यातस्य प्रभृता येषु मन्दसे ।
इन्द्र यथा सुतसोमेषु चाकनोऽनर्वाणं श्लोकमा रोहसे दिवि ।१२

भा०—हे ( इन्द्र ) शत्रुओं के नाशक और ऐश्वर्य के स्वामिन् ! तू जब ( वृषपाणेषु ) मेघ के समान शरवर्षण करनेवाले वीर पुरुषों के योग्य बलकारी ऐश्वर्यों, रसों, पदार्थों के पान और उपभोग और प्राप्ति और परिपालन के अवसरों में (रथम्) रथ पर (आतिष्ठसि स्म) जमकर बैठता । और ( येषु ) जिनके बल पर तू ( मन्दसे ) सब आनन्द विनोद प्राप्त करता या युद्ध में प्रयाण करता है वे भी ( शार्यातस्य ) शरों से मारने योग्य, शत्रुओं के बीच में विचरने के अवसर, संग्राम आदि के लिए ( प्रभृता ) अच्छी प्रकार वेतन और अन्न द्वारा भरण पोषण किये जायं । ( यथा ) जिस प्रकार से तू ( सुतसोमेषु ) अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्यों या अभिषिक्त राजाओं के बीच ( अनर्वाणम् ) प्रतिद्वन्दी वीर से रहित, अद्वितीय

राष्ट्रको (चाकनः) प्राप्त करना चाहता है। उसी प्रकार (दिवि) राजसभा और विद्वानों के बीच भी ( श्लोकम् ) स्तुति वाणी को या स्तुति योग्य यश, ख्याति या उत्तम पद को ( आरोहसे ) प्राप्त कर।

अददा अर्भां महते वचस्यवे कक्षीवते वृचयामिन्द्र सुन्वते।
मेनाभवो वृषणश्वस्य सुक्रतो विश्वेत्ता ते सवनेषु प्रवाच्या ॥१३॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् विद्वन्! जिस प्रकार (महते वचस्यवे) बड़े गुणों से युक्त एवं ज्ञानोपदेश के वचनों की इच्छा करने वाले (कक्षीवते) उत्तम सिद्ध हस्तांगुलियों वाले, प्रवीण ( सुन्वते ) क्रियाकुशल शिष्य को आचार्य (अर्भाम्) थोड़ी ही (वृचयाम्) विवेचनकारिणी अथवा छेदन भेदन करने की शिल्प विद्या का (अददाः) उपदेश करता है और वही ( मेना ) उपदेशयुक्त वाणी से ( वृषणश्वस्य ) वेगवान्, बलवान् अश्व या उपकरणों के के स्वामी को (सवनेषु) प्रेरण कार्यों में (प्रवाच्या) कहनी आवश्यक होती है उसी प्रकार हे राजन्! (वचस्यवे) तेरी आज्ञा को चाहनेवाले (कक्षीवते) अगल बगलों के बन्धनों से कसे अश्व के समान पार्श्वों की सेनाओं से युक्त ( महते ) बड़े भारी (सुन्वते ) सेना के शासक पुरुष को भी तू ( अर्भाम्) छोटीसी ही (वृचयाम् ) छेदन भेदन करने की संक्षिप्त आज्ञा को (अददाः) संकेतरूप से दिया कर। हे (सुक्रतो ) उत्तम कर्म और प्रज्ञा सामर्थ्य वाले पुरुष! तेरी ( मेना ) मान करने योग्य आज्ञा जब ( वृषणश्वस्य ) बलवान्, वेगवान् अश्वों वाले वीर पुरुष के (सवनेषु) प्रेरण या शासन के कार्यों में भी ( प्रवाच्या ) अच्छी प्रकार दी जाती है तब तू (विश्वा इत् ता) समस्त कार्यों के करने में ( अभवः ) समर्थ होता है।

इन्द्रो अश्रायि सुध्यो निरेके पज्रेषु स्तोमो दुर्यो न यूपः।
अश्वयुर्गव्यू रथयुर्वसूयुरिन्द्र इद्रायः क्षयति प्रयन्ता ॥ १४ ॥

भा०—( वज्रेषु ) स्तुति करने योग्य वचनों या स्तुति के कार्यों में

जिस प्रकार ( स्तोमः ) वेद के सूक्त मुख्य रूप से ग्रहण करने योग्य हैं और ( दुर्यः यूपः न ) द्वार पर स्थित मुख्य स्तम्भ जिस प्रकार घर के आश्रय के लिये मुख्य है उसी प्रकार ( निरेके ) संदेहरहित होकर, अथवा समस्त भोग योग्य विषयों को सर्वथा त्याग कर, केवल एकमात्र ( सुध्यः ) सुख पूर्वक ध्यान चिन्तन करने योग्य ( इन्द्रः ) वह परमेश्वर ही ( अश्रायि ) आश्रय करने और भजन सेवन करने योग्य है इसी प्रकार ( निरेके ) सब धनों के व्यय हो जाने पर ( वज्रेषु ) युद्ध आदि कार्यों में (स्तोमः) सैनिक समूह तथा ( दुर्यः यूपः ) द्वारस्थ स्तम्भ के समान या शत्रुओं को वारण करने वाली सैनिकों का एकमात्र स्तम्भ, ( सुध्यः ) उत्तम रीति से चिन्तन या मनन करने में कुशल ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, विद्वान् पुरुष ही ( अश्रायि) आश्रय करने योग्य है । और ( इन्द्रः इत् ) वह ऐश्वर्यवान् राजा ही ( अश्वयुः ) अश्वों का स्वामी, ( गव्युः ) गवादि पशुओं, आज्ञाओं और वाणियों का स्वामी ( वसूयुः ) समस्त राष्ट्र वासी प्रजा और ऐश्वर्यों का स्वामी और अन्यों को अश्व, रथ, गो, ऐश्वर्यादि देना और स्वयं प्राप्त करना चाहता हुआ ( रायः ) धनैश्वर्य का (प्रयन्ता) ऐश्वर्य को अच्छा देने वाला होकर और अपने पास रखता है । अथवा—(सुध्यः = सुधीभिः इन्द्रः अश्रायि ) उत्तम बुद्धिशाली पुरुषों को उस परमेश्वर का या राजा का आश्रय लेना चाहिये । 'अश्वयुः इत्यादि'—इदंयुरिदं कामयमानोऽथापि तद्वदर्थे भाष्यते । अश्वयुर्गव्युरित्यपि निगमो भवति । (निरु० ६।६।३) ।

**इदं नमो॑ वृष॒भाय॑ स्व॒राजे॑ स॒त्यशु॑ष्माय त॒वसे॑ऽवाचि ।**
**अ॒स्मिन्नि॑न्द्र वृ॒जने॒ सर्व॑वीराः स्मत्सू॒रिभि॒स्तव॒ शर्म॑न्त्स्याम १५।११**

भा०—( ऋषभाय ) सुखों और समस्त ऐश्वर्यों को वर्षण करने वाले परमेश्वर और शत्रु पर शस्त्रादि वर्षाने वाले बलवान् सर्वश्रेष्ठ, (सत्यशुष्माय) सत्य के बल वाले, या सदा विद्यमान, सज्जनों के हितकारी बलवाले, ( स्वराजे ) स्वयं अपने तेज से देदीप्यमान, प्रतापी (तवसे) महान बलवान्

पुरुष को (इदं नमः) यह नमस्कार (अवाचि) कहा जाता है। हे (इन्द्र) ऐश्वर्य-वन्! ( अस्मिन् ) इस ( वृजने ) शत्रु और कष्टों के निवारण के अवसर पर संग्रामादि कार्य में इस तेरे शत्रुवारक बल पर हम (सर्ववीराः) समस्त वीर गण ( सूरिभिः ) विद्वान् तेजस्वी नायक पुरुषों सहित ( तव ) तेरे (स्मत् शर्मन्) उत्तम शरण या आश्रय में (स्याम) रहें। इत्येकादशो वर्गः॥

[ ५२ ]

सव्य आङ्गिरस ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ८ भुरिक् त्रिष्टुप्। ७ त्रिष्टुप्। ९, १० स्वराट् त्रिष्टुप्। १२, १३, १५ निचृत् त्रिष्टुप्। २—४ निचृज्जगती। ६, ११ विराड् जगती॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम्॥

**त्यं सु मेषं महया स्वर्विदं शतं यस्य सुभ्वः साकमीरते।**
**अत्यं न वाजं हवनस्यदं रथमेन्द्रं ववृत्यामवसे सुवृक्तिभिः॥ १॥**

भा०—हे पुरुष ! तू (मेषम्) मेघ जिस प्रकार भूमियों पर जलों की वर्षा करता है ( यस्य साकं शतं सुभ्वः ईरते ) जिसके वर्षण के साथ २ ही सैकड़ों उत्तम उर्वरा भूमियों के स्वामी किसान गण (ईरते) एक साथ हल चलाते हैं उस ( स्वर्विदम् ) सुखकारी मेघ के समान ( मेषम् ) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाले अथवा मेढ़े के समान शत्रुओं से मुक़ाबला लेने वाले, दृढ़ उस राजा का ( सुमहय ) अच्छी प्रकार आदर कर ( यस्य ) जिसके अधीन रहकर ( शतं सुभ्वः ) सैकड़ों उत्तम भूमिपति ( साकम् ) एक साथ ही ( ईरते ) युद्ध यात्रा करते हैं। अथवा जिसके बल से सैकड़ों अच्छे २ भूमिपति कांप जाते हैं। परमेश्वर के पक्ष में—उस परमेश्वर की उपासना कर जिसके आश्रय में या जिसको प्राप्त करने के लिये ( शतं सुभ्वः ) सैकड़ों उत्तम कोटि के, अति सामर्थ्यवान् पुरुष यत्न करते हैं, या जिसके भय से उत्तम २ बलशाली लोग भी कांपते हैं। मैं प्रजाजन ( वाजं अत्यं न ) वेगवान् अश्व के समान ( हवनस्यदम् ) गमन करने

योग्य मार्ग पर वेग से जाने वाले, एवं शत्रु के ललकार पर वेग से आक्रमण करने वाले ( रथम् ) रथारोही, ( इन्द्रं ) शत्रुहन्ता राजा को ( सुवृक्तिभिः ) उत्तम शत्रुओं को पराजय करने वाले शक्तियों सहित ( अवसे ) अपनी रक्षा के लिये ( आ वृत्याम् ) वरण करूं। परमेश्वर के पक्ष में—(हवनस्यदं) आह्वान, पुकार और स्तुति पर ही करुणा से द्रवित होने वाले, अति दयालु, ( रथम् ) रस स्वरूप, परमरमणीय, ( इन्द्रं ) परमेश्वर को मैं (सुवृक्तिभिः) उत्तम हृदयग्राही स्तुतियों द्वारा ( आववृत्याम् ) प्राप्त करूं।

**स पर्वतो न धरुणेष्वच्युतः सहस्रमूतिस्तविषीषु वावृधे।**
**इन्द्रो यद्वृत्रमवधीन्नदीवृतमुब्जन्नर्णांसि जर्हृषाणो अन्धसा ॥ २ ॥**

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्य या सामर्थ्यवान् सूर्य या विद्युत्, या वायु ( यत् ) जब ( वृत्रम् ) समस्त आकाश को घेरने वाले, ( नदीवृतम् ) अति वेग से बहने वाली नदियों के बहाने वाले मेघ को आघात करता है तब वह ( अर्णांसि ) जलों को ( उब्जन् ) नीचे फेंकता हुआ और ( अन्धसा ) प्रचुर अन्न सामग्री से ( जर्हृषाणः ) जगत् भर को हर्षित करता है। ( सः ) वह विद्युत् या सूर्य भी ( धरुणेषु ) मेघ के धारक जलों या वायुओं में ही (अच्युतः) रह कर, नीचे न गिर कर (सहस्रमूतिः) सहस्रों दीप्तियों से युक्त होकर ( तविषीषु ) बड़ी बलवती शक्तियों के रूप में ( वावृधे ) बढ़ता है। ठीक उसी प्रकार ( इन्द्रः ) शत्रुघाती ऐश्वर्यवान् बलवान् राजा जो ( नदीवृतम् ) नदियों से घिरे या समृद्धियों से भरे पूरे ( वृत्रम् ) नगर को घेरने वाले शत्रु को ( अवधीत् ) मार लेता है वह ( अर्णांसि ) जलों के समान ऐश्वर्यों को या समस्त जनों को ( उब्जन् ) नमाता हुआ, गिराता या दबाता हुआ, ( अन्धसा ) ऐश्वर्य और अन्नादि भोगयोग्य पदार्थों से ( जर्हृषाणः ) सब को हर्षित करता हुआ ( पर्वतः न ) पर्वत के समान अचल और नाना पालक सामर्थ्यों से युक्त होकर (सः) वह ( धरुणेषु ) राष्ट्र के धारण करने वाले नाना मुख्य पुरुषों के बीच में

( अच्युतः ) कभी भी कर्त्तव्यच्युत या पराजित न होकर, एवं स्वतः ( अ-च्युतः ) पूर्ण अस्खलित, बल वीर्य वाला, ब्रह्मचारी रहकर (सहस्रमूतिः) सहस्रों ज्ञानों और रक्षाकारी साधन सेना आदि बलों और तेज प्रभावों से सम्पन्न होकर ( तविषीषु ) सेनाओं के आधार पर ( वावृधे ) बढ़े।

स हि द्वरो द्वरिषु वव्र ऊधनि चन्द्रबुध्नो मदवृद्धो मनीषिभिः।
इन्द्रं तमह्वे स्वपस्यया धिया मंहिष्ठरातिं स हि पप्रिरन्धसः ॥३॥

भा०—( सः ) वह राजा ( द्वरिषु ) संवृत, गुप्त रखने योग्य व्यवहारों और राज-कार्यों में ( द्वरः ) अत्यन्त संवृत, गुप्त, गम्भीर, गुप चुप रहने वाला, ( वव्रः ) कूप के समान गहरा और शीतल जल वाला या अन्धकार से छुपे गार के समान अगम्य भाव हो कर रहे। और (ऊधनि) उषा-काल में ( चन्द्रबुध्नः ) चन्द्र को अन्तरिक्ष में रखने वाले सूर्य के समान ( चन्द्रबुध्नः ) रजत, स्वर्ण आदि ऐश्वर्य को अपने मूल आश्रय में रखने वाला तेजस्वी एवं कोषसम्पन्न होकर ( मनीषिभिः ) विद्वान् मननशील पुरुषों के द्वारा ( मदवृद्धः ) स्वयं अपने हर्ष को बढ़ाने वाला, अति उत्तम दानशील, ( स्वपस्या धिया ) उत्तम धर्म कर्मानुष्ठान से युक्त, बुद्धि या ज्ञान से युक्त ( तम् ) उस पुरुष को मैं ( इन्द्रम् ) 'इन्द्र' ऐश्वर्यवान् एवं दयालु ज्ञानी उपदेशक आचार्य 'इन्द्र' ( अह्वे ) करके कहता हूं। ( सः हि ) वह ही ( अन्धसः पप्रिः ) अन्न, जीवन और ऐश्वर्यों को पूर्ण करने वाला होता है।

आ यं पृणन्ति दिवि सद्मबर्हिषः समुद्रं न सुभ्वः स्वा अभिष्टयः।
तं वृत्रहत्ये अनु तस्थुरूतयः शुष्मा इन्द्रमवाता अह्रुतप्सवः ॥४॥

भा०—( सुभ्वः ) उत्तम वेग और बल से बहने वाली नदियां जिस प्रकार ( समुद्रम् ) समुद्र को ( आपृणन्ति ) सब तरफ से पूर्ण करती हैं उसी प्रकार ( यम् ) जिस पुरुष को ( अभिष्टयः ) सब प्रकार की कामना

वाली पूर्ण ( स्वाः ) अपनी ही प्रजाएं और ( सद्मबर्हिषः ) राजसभा भवन में उत्तम आसन पर विराजने वाले विद्वान् पुरुष ( आपृणन्ति ) सब प्रकार से पूर्ण करते हैं ( उतयः ) रक्षाकारी, ( शुष्मा ) बलवान्, (अवाताः) प्रतिकूल शत्रुओं से रहित, (अह्रुतप्सवः) कुटिलता रहित आजीविका या वृत्ति वाले वीर पुरुष (वृत्रहत्ये) विघ्नकारी शत्रु के विनाश के कार्य में ( इन्द्रम् ) सेनापति, सभाध्यक्ष के ही ( अनु तस्थुः ) पीछे २ हो जावें। उसके अनुयायी और अनुगामी होकर रहें।

अभि स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यतो रघ्वीरिव प्रवणे सस्रुरूतयः।
इन्द्रो यद्वज्री धृषमाणो अन्धसा भिनद्वलस्य परिधींरिव त्रितः ॥५॥१२

भा०—( अस्य ) इस सेनाध्यक्ष के ( मदे युध्यतः ) अति आवेश में युद्ध करते हुए ( स्ववृष्टिम् अभि ) अपने बाणों और ऐश्वर्यों की वृष्टि के सामने उसको लक्ष्य करके, ( रघ्वीः इव ) अति वेग से बहने वाली नदियें जिस प्रकार (प्रवणे सस्रुः) नीचे स्थान में बह जाती हैं उसी प्रकार (अस्य रघ्वीः ऊतयः) उसकी प्रचण्ड वेग से जाने वाली रक्षाकारी सेनाएं भी ( प्रवणे ) अपने से दबने वाले शत्रु पर या ( प्रवणे ) उत्कृष्ट कोटि के ऐश्वर्य पर ( सस्रुः ) टूट पड़ती हैं। ( यत् ) जिस प्रकार ( इन्द्रः ) सूर्य और वायु ( बलस्य ) मेघ के ( परिधीन् ) पटलों को ( त्रितः ) ऊपर, आडे और तिरछे तीनों प्रकारों से ( भिनत् ) छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार ( वज्री ) बलवान्, खड्ग आदि शस्त्रों के धारण करने हारा (इन्द्रः) शत्रुघाती, सेनापति ( त्रितः ) त्रिगुण सैन्य से युक्त होकर ( धृषमाणः ) शत्रुओं का बलपूर्वक पराजय करता हुआ ( बलस्य ) बलवान् शत्रु के ( परिधीन् ) चारों ओर स्थापित रक्षा पुरुषों को ( अन्धसा ) अन्धकार को दूर करने वाले तेज के समान तीक्ष्ण बल से, तथा अन्नादि उपभोग्य पदार्थों के प्रलोभन द्वारा ( भिनत् ) छिन्न भिन्न करे अर्थात् उनमें दान और दण्ड के उपायों से भेद का प्रयोग करे। इति द्वादशो वर्गः ॥

परीं घृणा चरति तित्विषे शवोऽपो वृत्वी रजसो बुध्नमाशयत्।
वृत्रस्य यत्प्रवणे दुर्गृभिश्वनो निजघन्थ हन्वोरिन्द्र तन्यतुम् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार मेघ ( अपः वृत्वी ) जलों को अपने भीतर थाम कर ( रजसः बुध्नम् ) आकाश के ऊपर के तल में ( आ अशयत् ) फैल जाता है और ( दुर्गृभिश्वनः वृत्रस्य ) जिसका फैलाव या विस्तार बेरोक हो उस मेघ के ( हन्वोः ) अगले पिछले मुखों या छोरों पर ( इन्द्रः ) वायु ( तन्यतुम् ) विस्तृत वज्ररूप विद्युत् का ( निर्जघन्थ ) प्रहार करता है। तब ( घृणा परि इम् चरति ) दीप्ति सर्वत्र फैलती है और (शवः) उसका प्रबल बल भी ( तित्विषे ) चमकता है और प्रकाश के लिए होता है। ठीक उसी प्रकार जब ।शत्रु राजा भी (अपः वृत्वी) आप्त प्रजाओं को घेरकर ( रजसः ) इस पृथ्वी लोक के ( बुध्नम् आ अशयत् ) बाँधने वाले मुख्य राजधानी पर चारों तरफ़ से घेरा डालकर बैठ जावे तब (प्रवणे) उत्तम सेना दल के बल पर या प्रयाणकाल में ( दुर्गृभिश्वनः ) जिसके फैलने वाले और कुत्तों के समान टुकड़ों पर जीनेवाले वेतनधारी नौकर, या भेदू लोग भी किसी प्रकार काबू न आ सकें, ऐसे ( वृत्रस्य ) बढ़े हुए बलवाले शत्रु के (हन्वोः) प्रबल हननकारी प्रमुख सेना के भागों पर ही हे ( इन्द्र ) राजन् ! तू ( तन्यतुम् ) विद्युत् के समान गर्जनाकारी अस्त्र का प्रयोग करके (निःजघन्थ ) शत्रु पर प्रहार कर। तब ( घृणा ) सूर्य की चमक के समान तेरी दीप्ति, तेज भी ( परिचरति ) सब तरफ़ फैले। और (शवः ) तेरा बल भी ( तित्विषे ) खूब प्रकाशित हो, चमके। अध्यात्म में—जब अज्ञान का मेघ ( अपः वृत्वी ) प्राणवृत्तियों या लिंगशरीर को घेरकर ( रजसः बुध्नम् आअशयत् ) रजोगुण के मूल या प्राणों के आश्रयरूप चित्त को घेर लेता है तब ( दुर्गृभिश्वनः वृत्रस्य ) अदम्य, बेकाबू इन्द्रियों रूप कुकुरों के स्वामी बढ़ते हुए काम के ( हन्वोः ) भोगसाधन जीभ और कामांग दोनों पर ज्ञानी पुरुष प्रबल आघात करे, उनपर नियन्त्रण करे, तब उसके ( घृणा ) तेज

प्रभा और ( शवः ) बल बढ़ता और फैलता है ।

ह्रदं न हि त्वा न्यृषन्त्यूर्मयो ब्रह्माणीन्द्र तव यानि वर्धना ।
त्वष्टा चित्ते युज्यं वावृधे शवस्ततक्ष वज्रमभिभूत्योजसम् ॥ ७ ॥

भा०—( ऊर्मयः ) तरंगें जिस प्रकार आपसे आप स्वभावतः ( ह्रदं न ) जलाशय को प्राप्त होती हैं, अथवा जिस प्रकार ( ऊर्मयः ह्रदं न) नाना जलधाराएं बड़े जलाशय को ( नि ऋषन्ति ) प्राप्त होती हैं, उसी में आ मिलती हैं और उसके स्वरूप को बढ़ा देती हैं उसी प्रकार हे परमेश्वर ! ( यानि ) जितने भी ( ब्रह्माणि ) ये वेदमन्त्र, अथवा बड़े पृथिवी, आकाशादि पदार्थ हैं वे सब स्वभावतः ( हि ) निश्चय से (तव) तेरी ही ( वर्धना ) महिमा को बढ़ानेवाले हैं, तेरे गुणों का प्रकाश करने वाले हैं । इसी प्रकार हे राजन् ! जिस प्रकार जलतरंग जलाशय को प्राप्त होते हैं और उसको बढ़ाते हैं उसी प्रकार (ब्रह्माणि) समस्त बड़े ऐश्वर्य अन्नादि भोग्य पदार्थ, बड़े बड़े राष्ट्र और ब्राह्मणवर्ग और वेद के अनुशासन (यानि) जितने भी हैं वे सब (तव वर्धना) तेरे ही को बढ़ानेवाले, तेरी शक्ति सामर्थ्य की वृद्धि करनेहारे हों । ( त्वष्टा चित् ) जिस प्रकार मेघ या जल के अवयव अवयव को सूक्ष्म सूक्ष्म कणों में छेदनभेदन करने में समर्थ सूर्य या विद्युत् ( युज्यम् शवः ) संयोग से प्राप्त होनेवाले और रथादि संचालन कार्यों में लगाने योग्य बल को (वावृधे) बढ़ाता है और (अभिभूति-ओजसम्) सब शत्रुओं के पराजय करनेवाले ओज, पराक्रम या परम बल को धारण करनेवाले ( वज्रम् ) प्रबल शक्तिमान् अस्त्र को भी ( ततक्ष ) बना सकता है उसी प्रकार ( त्वष्टा ) कांतिमान्, सर्व सृष्टि का रचयिता परमेश्वर (युज्यं शवः) योग समाधि से प्राप्त होनेवाले बल को ( वावृधे ) बढ़ाता है। और (अभिभूत्योजसम्) सब प्रकार के काम, क्रोध आदि भीतरी तथा बाहरी शत्रुओं को भी दबा लेने वाले तथा समस्त ऐश्वर्यों और पराक्रम को धारण करने वाले ( वज्रम्) बलको (ततक्ष) पैदा कर देता है । उसी प्रकार हे राजन् !

( त्वष्टा ) बढ़ई या शिल्पी, ( ते युज्यं शवः वावृधे ) तेरे अनुरूप, तेरे योग्य सहकारी शस्त्रास्त्रबल को भी बढ़ावें और (अभिभूति-ओजसम् वज्रम्) शत्रुओं को दबाने, पराजय करने वाले पराक्रम से युक्त वज्र या महास्त्र को भी ( ततक्ष ) बनावे।

जघन्वाँ उ हरिभिः संभृतक्रतविन्द्र वृत्रं मनुषे गातुयन्नपः।
अयच्छथा बाह्वोर्वज्रमायसमधारयो दिव्या सूर्यं दृशे ॥ ८ ॥

भा०—हे(संभृतक्रतो) समस्त कर्मों,और क्रिया करने करानेवाली शक्तियों को अपने में एकत्र धारण करनेहारे ! हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! जिस प्रकार ( मनुषे अपः गातुयन् ) सर्व साधारणजनों के उपकार के लिए जलों को पृथ्वी पर डालता हुआ, (हरिभिः वृत्रं जघन्वान्) सूर्य या विद्युत्, किरणों और वेगवान् आघातों से मेघ को आघात करता है, और ( बाह्वोः ) भुजाओं के समान बल और आकर्षण दोनों पर आश्रित ( आयसं वज्रम् ) अति वेगवती गति से बने वज्र या प्रबलशक्ति को ( अयच्छथाः ) धारण करता है और ( दिवि दृशे सूर्यम् अधारयः ) आकाश में सब पदार्थों को दिखाने के लिए प्रकाशमान् सूर्य को धारण करता है, उसी प्रकार हे ( संभृतक्रतो ) समस्त 'क्रतु' अर्थात् कर्त्ता जीवों को अच्छी प्रकार भरण पोषण करने हारे ! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( हरिभिः ) समस्त अज्ञानों और दुःखों को हर लेनेवाले, विद्वान्, परोपकारी पुरुषों तथा सुखप्रद पृथिवी, वायु आदि तत्वों से ( मनुषे ) मननशील प्राणियों के उपकार के लिए ( अपः गातुयन् ) मेघ के समान जलों को पृथिवीपर फेंकता हुआ, अथवा (मनुषे) मनुष्य जन्म धारण करने के लिए ( अपः ) प्राणों या लिंग शरीरों को ( गातुयन् ) भूलोक पर भेजता हुआ ( वृत्रं जघन्वान् उ ) ज्ञान पर आवरण डालने वाले, बढ़ते हुए अज्ञान बन्धनों को नाश करता है। ( बाह्वोः आयसम् वज्रम् ) राजा जिस प्रकार हाथों में लोहे के बने शस्त्रास्त्र को

धारण करता है उसी प्रकार दुःखों को बांधनेवाले ज्ञान और कर्म दोनों द्वारा ( वज्रम् ) पापों से निवारक बल को प्रदान कर । और ( दिवि ) ज्ञान के प्रकाश में ( दृशे ) देखने या दिखाने के लिए ( सूर्यम् ) आकाश में सूर्य के समान सबको प्रेरक अपने ज्ञानविद्या प्रकाश को (अधारयः) धारण करा। इसी प्रकार इन्द्ररूप आचार्य भी पूर्ण ज्ञानी होकर अपने शिष्यों द्वारा अज्ञान को नाश करे । मनुष्य समाज के उपकार के लिये ( अपः ) उत्तम कर्मों और ज्ञानों का उपदेश करे । बलवीर्य को धारण करे और सूर्य के समान तेजस्वी ब्रह्मचारी को अपने सावित्री के गर्भ में धारण करे । इसी प्रकार राजा ( हरिभिः ) वेगवान् अश्वों और अश्वरोहियों से शत्रु को मारता हुआ ( मनुषे ) मानवों को उपकार के लिए ( अपः गातुयन् ) आप्त पुरुषों को पृथ्वी पर या सब मार्गों में भेजता हुआ और पृथ्वी को वश करता हुआ शत्रुओं के बाधक बाहुओं या क्षत्रियों में लोहादि के बने शस्त्रास्त्र धारण करे । वह ( दिवि ) न्यायसभा में ( दृशे ) व्यवहारों को न्यायपूर्वक देखने और निर्णय करने के लिए ( सूर्यम् ) सूर्य के समान सत्यासत्य के विवेकशील ज्ञानी पुरुष को स्थापित करे ।

बृहत्स्वश्चन्द्रममवद्यदुक्थ्यमकृण्वत भियसा रोहणं दिवः ।
यन्मानुषप्रधना इन्द्रमूतयः स्वर्नृषाचो मरुतोऽमदन्ननु ॥ ६ ॥

भा०—( यत् ) जो ( भियसा ) सांसारिक दुःखों से भय खाकर ( मानुष-प्रधनाः ) मनुष्यों के हितार्थ उत्तम २ धनों का संग्रह करनेहारे सम्पन्न पुरुष ( बृहत् ) उस महान् ( स्व-चन्द्रम् ) स्वयं स्वभाव से आह्लाद-कारक, ( अमवत् ) उत्तम ज्ञानसम्पन्न, सब दुःखों के काटनेहारे, (उक्थ्यं) स्तुति योग्य ब्रह्म की ( अकृण्वत ) स्तुति करते हैं तब वे (दिवः रोहणम्) आकाश के बीच उदय होने वाले सूर्य के समान देदीप्यमान एवं ( दिवः आरोहणं ) ज्ञान और प्रकाश के प्रदान करनेवाले ( इन्द्रम् ) परमेश्वर को वे ( नृषाचः ) अपने समस्त प्राणों पर वश करनेहारे, उनको एकाग्र करने

वाले (मरुतः) विद्वान्‌जन (अनु) साक्षात् कर ( स्वः अमदन् ) बड़े प्रसन्न, हर्ष, आनन्द और सुख अनुभव करते हैं। इसी प्रकार ( मानुष-प्रधनाः ) मनुष्यों में धनसम्पन्न पुरुष (ऊतयः) प्रजाओं के रक्षक ( मरुतः ) विद्वान् और वीर लोग ( नृषाच्‍ः ) बहुतसे मनुष्यों का समवाय बनाकर, अथवा नेताओं पर आश्रित होकर ( भियसा ) शत्रु के भय से ( यत् यत् ) जब जब भी ( बृहत् ) अपने में से बड़े, ( स्वचन्द्रम् ) अपने अनुयायी प्रजा के आह्लादक, प्रजारंजक, ( उक्थ्यम् ) स्तुति योग्य, पुरुष को ( दिवः आरोहणम्) समस्त विजयशील सेना और ज्ञान युक्त सभा के ऊपर, आकाश में उदय होते हुए सूर्य के समान तेजस्वी शासक रूप से बना देते हैं तब वे ( इन्द्रम् अनु स्वः अमदन् ) उस ऐश्वर्यवान् स्वामी के साथ साथ ही स्वयं भी बड़े सुख, या स्वर्ग समान समृद्ध राष्ट्र का उपभोग करते हैं।

**द्यौश्चिदस्यामवाँ अहेः स्वनादयोयवीद्भियसा वज्र इन्द्र ते ।**
**वृत्रस्य यद्बद्बधानस्य रोदसी मदे सुतस्य शवसाभिनच्छिरः॥१०॥२**

भा०—हे ( इन्द्र ) राजन् ! सेनापते ! ( अमवान् द्यौः चित् ) बलवान् सूर्य का प्रकाश जिस प्रकार ( अहेः वृत्रस्य अयोयवीत् ) मेघ के जल को छिन्न भिन्न कर देता और नीचे गिरा देता है। और ( अस्य ) इस वज्र विद्युत् के ( स्वनाद् ) शब्द को सुनकर ( भियसा ) मारे भय के मानो मेघ भी कांप जाता है। उसी प्रकार हे राजन्! (ते) तेरा ( द्यौः ) तेजस्वी ( अमवान् ) बलवान् ( वज्रः ) सेनाबल, शस्त्रास्त्रबल ( रोदसी बद्बधानस्य ) आकाश और भूतल दोनों को बांधने या घेरनेवाले ( वृत्रस्य ) बल में बढ़ते हुए शत्रु के ( शिरः ) शिर, मुख्य भाग को ( सुतस्य मदे ) राजैश्वर्य के हर्ष में ही उत्पन्न ( शवसा ) बल से ( अभिनत् ) तोड़ दे। राजैश्वर्य के सुख के निमित्त शत्रु के मुख्य बल में भी भेद नीति का प्रयोग करे। और ( अस्य स्वनाद् भियसा अहेः अयोयवीत् ) इस बलवान् वज्र या शस्त्रास्त्र बल के कड़कड़ाते शब्द से, भय द्वारा छिन्न भिन्न करे। शत्रु को

दान और दण्ड भय दोनों उपायों से तोड़े । इति त्रयोदशो वर्गः ॥

यदिन्न्विन्द्र पृथिवी दशभुजिरहानि विश्वा ततनन्त कृष्टयः ।
अत्राह ते मघवन्विश्रुतं सहो द्यामनु शवसा बर्हणा भुवत् ॥११॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! सभापते ! ( यत् ) जो यह ( पृथिवी ) पृथिवी है, वह ( नु दशभुजिः इत् ) निश्चय से 'दशभुजि' है। अर्थात् वह प्रकृति के समान दशों इन्द्रियों से जीवों द्वारा भोग करने योग्य है, अथवा दशों दिशाओं के वासी प्राणियों द्वारा भोग करने या राजा द्वारा दशों दिशाओं से रक्षा करने योग्य है। इसमें (विश्वा अहानि) सब दिनों, सदा ही (कृष्टयः) अन्नादि को उत्पन्न करने वाले प्रजाजन (ततनन्त) सदा फैलें, या इसको विस्तृत करें अर्थात् वे जंगल आदि काट कर विस्तृत क्षेत्र तैयार करें जिससे प्रचुर अन्न हो। हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! हे राजन् ! (अत्र अह) निश्चय से इसी पृथ्वी पर ( शवसा ) बल से, पराक्रम से और ( बर्हणा ) प्रजा को बढ़ाने वाले उद्योग से ( ते सहः ) तेरे शत्रु को पराजित करने वाला बल भी (द्याम् अनु) सूर्य के प्रकाश के समान (विश्रुतम्) खूब प्रसिद्ध ( भुवत् ) हो। परमेश्वर के पक्ष में—हे परमेश्वर ! यह पृथ्वी दशों दिशाओं और इन्द्रियों से भोग योग्य है। प्रजाएं इस पर बढ़ती चली जा रही हैं। तेरे बल प्रजा वृद्धि के कार्य से तेरा यश, ख्याति प्रकाश के समान, या विस्तृत आकाश के समान विस्तृत है।

त्वमस्य पारे रजसो व्योमनः स्वभूत्योजा अवसे धृषन्मनः ।
चकृषे भूमिं प्रतिमानमोजसोऽपः स्वः परिभूरेष्या दिवम् ॥१२॥

भा०—हे ( धृषन्मनः ) सबके संकल्प विकल्प करने वाले चित्तों को अपने ज्ञान और विवेक और अद्भुत अज्ञेय रचना से धर्षण या पराजित करने हारे परमेश्वर ! ( त्वम् ) तू ( स्वभूति-ओजाः ) स्वतः विना किसी के सहयोग से अपने प्रचुर ऐश्वर्य और पराक्रम से सम्पन्न होकर ( अस्य रजसः ) इस भूलोक या अन्तरिक्ष और ( अस्य व्योमनः ) विस्तृत आकाश

के (पारे) परले पार भी (अवसे) रक्षण करने के लिये विद्यमान है। तू ही ( ओजसः प्रतिमानम् ) अपने बल के अनुरूप ही ( भूमिम् ) सब प्राणियों तथा चराचर के उत्पन्न करने वाली भूमि या प्रकृति को (चकृषे) बनाता अर्थात् विकृत, या विविध रूपों में प्रकट करता है। और तू ही ( परिभूः ) सर्व व्यापक होकर ( अपः ) प्राणों को या जलों को ( स्वः ) समस्त सुखों और अन्तरिक्ष या वायु को और ( दिवम् ) महान् आकाश या प्रकाश, तेजस्तत्व को भी ( आ एषि ) व्याप रहा है। राजा के पक्ष में— अपने ऐश्वर्य और पराक्रम से युक्त होकर तू ही ( वि ओमनः रजसः पारे) विविध रक्षा वाले लोक समूहों से पार वा दूर, देशान्तर में भी रक्षा करने के लिये समर्थ है। तू ( भूमिम् ) इस पृथिवी को ( ओजसः प्रतिमानं चकृषे ) बल पराक्रम का मापक बनाता है। जो राजा जितनी पृथ्वी का स्वामी है उसका उतना ही पराक्रम, या शासन है। (अपः ) प्रजाओं ( स्वः ) सुखैश्वर्य और ( दिवम् ) ज्ञानप्रकाश, सबको तू ( आ एषि ) प्राप्त कर। शत्रुओं के 'मन' अर्थात् स्तम्भन बल को पराजित करने से राजा 'धृषन्मना' है। और सर्वोपरि सामर्थ्यवान् होने से 'परिभू' है।

त्वं भुवः प्रतिमानं पृथिव्या ऋष्ववीरस्य बृहतः पतिर्भूः।
विश्वमाप्रा अन्तरिक्षं महित्वा सत्यमद्धा नकिरन्यस्त्वावान् ॥१३॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू ही ( पृथिव्याः ) अति विस्तृत ( भुवः ) समस्त चराचर के मूल कारण प्रकृति और भूमि का ( प्रतिमानं ) प्रत्यक्ष देखने वाला और भूमि के परिमाण का कर्त्ता और ( बृहतः ) बड़े भारी (ऋष्ववीरस्य) बड़े २ सामर्थ्योंवाले सूर्यादि लोकों और बड़े २ वीर पुरुषों से युक्त और राजाधिराजों का भी ( पतिः भूः ) पति, पालक और स्वामी है। तू ही ( महित्वा ) महान् सामर्थ्य से ( विश्वम् ) समस्त संसार को और ( अन्तरिक्षम् ) महान् अन्तरिक्ष, सूर्यों और भूमियों के बीच के अवकाश भागों को और ( सत्यम् ) सत् रूप में व्याप्त हुए और सत् पदार्थों

में विद्यमान् यथार्थ तत्व को भी (आ अप्राः) सब तरफ से और सब तरह से पूर्ण कर रहा है। ( अद्धा ) सचमुच ( त्वावान् ) तुझ जैसा ( अन्यः ) और ( न किः ) कोई दूसरा नहीं तू एक अद्वितीय है। राजा के पक्ष में— तू पृथिवी को मापने वाला या उसका प्रतिनिधि है। तू बड़े २ दर्शनीय वीर पुरुषों का पालक है। सबके हृदय को, वा पक्ष प्रतिपक्ष के मध्यस्थ पद को और सत्यव्यवहार को पूर्ण करता है। तुझसा दूसरा कोई नहीं। तू ही सर्वोपरि अध्यक्ष है।

न यस्य द्यावापृथिवी अनु व्यचो न सिन्धवो रजसो अन्तमानशुः।
नोत स्ववृष्टिं मदे अस्य युध्यत एको अन्यच्चकृषे विश्वमानुषक् १४

भा०—( यस्य ) जिस परमेश्वर के ( अनु ) समस्त पदार्थों में तदनुरूप होकर सत्ता रूप से विद्यमान ( व्यचः ) व्यापन सामर्थ्य को ( द्यावा पृथिवी ) सूर्य और पृथिवी, या आकाश और पृथिवी भी ( न ) अन्त नहीं पा सकते और (रजसः) उस रजस् स्वरूप, ऐश्वर्यवान्, लोक-विभूतिमय परमेश्वर के विस्तृत व्यापन या महान् स्वरूप का ( सिन्धवः ) प्राणगण, आकाश, समुद्र आदि भी ( अन्तम् न आनशुः ) अन्त नहीं पा सके। ( उत ) और ( युध्यतः ) वीर योद्धा के समान सबके साथ काल रूप से संग्राम करते हुए ( अस्य ) इसके ( मदे ) आनन्द राशि में इस की (स्ववृष्टिम् ) अपने ऐश्वर्यादि सुखों की वृष्टि का भी उपरोक्त पदार्थ पार नहीं पा सके। और वह ( एकः ) अकेला ( आनुषक् ) सब में अनुरूप होकर, सूक्ष्म या व्यापक होकर (विश्वम् ) समस्त संसार को और ( विश्वम् ) जीव को ( अन्यत् ) अपने से भिन्न या जुदा (चकृषे) प्रकट करता या रखता है। इसी प्रकार ( रजसः ) प्रजानुरागी राजा के ( व्यचः ) विशेष महान् सामर्थ्य को न ( द्यावा पृथिवी ) राजा प्रजा वर्ग, या ज्ञानी अज्ञानी न ( सिन्धवः ) और न नदी समुद्र ही पार पाते हैं। युद्ध करते समय भी इसके ऐश्वर्य और शस्त्र वृष्टि के पार को शत्रुगण

नहीं पा सकें। वह अकेला समस्त जगत् का शासन प्रेमपूर्वक, उनके (आनुषक्) अनुकूल, उनसे मिल कर करे।

आर्चन्नत्र मरुतः सस्मिन्नाजौ विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा।
वृत्रस्य यद् भृष्टिमता वधेन नि त्वमिन्द्र प्रत्यानं जघन्थ ॥१५॥१४

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! (सस्मिन्) उस (आजौ) परम प्राप्तव्य, परम पद के निमित्त (अत्र) इस लोक में (मरुतः) विद्वान् जन (त्वा आर्चन्) तेरी स्तुति करते हैं। (विश्वे देवासः) समस्त देव जन, विद्वान् गण (त्वा अनु अमदन्) तेरे ही आश्रय में रह कर खूब हृष्ट और प्रसन्न रहते हैं। यत् क्योंकि तू (भृष्टिमता) पापों को भून डालने वाले (वधेन) अज्ञाननाशक प्रकाश से (वृत्रस्य) शत्रु के बाधक बल के (आनं नि प्रति जघन्थ) जीवन या प्रमुख भाग को ही नाश कर देता है। सेना पति के पक्ष में—(मरुतः) वेगवान्, तीव्र बलवान्, शत्रुमारक वीर पुरुष और प्रजास्थ विद्वान् जन (अत्र अस्मिन् आजौ) इस और सभी युद्धों में (आर्चन्) तेरा आदर सत्कार करें। और समस्त विद्वान् तेरी प्रसन्नता में प्रसन्न रहें (भृष्टिमता वधेन) शत्रुओं को भून देने वाली, तेजस्वी नीति और शक्ति से युक्त वध आदि दण्डों और शस्त्रास्त्रों से तू शत्रु के (आनं प्रति आजघन्थ) जीवन, प्राण तक को नष्ट कर।

इति चतुर्दशो वर्गः ॥

## [ ५३ ]

॥ ५३ ॥ १-११ सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१,३ निचृज्जगती। २ भुरिग्जगती। ४ जगती। ५,७ विराड्जगती। ६,८,९ त्रिष्टुप्। १० भुरिक् त्रिष्टुप्। ११ सतः पङ्क्तिः ॥

न्यू३षु वाचं प्र महे भरामहे गिर इन्द्राय सदने विवस्वतः।
नू चिद्धि रत्नं ससतामिवाविदन्न दुष्टुतिर्द्रविणोदेषु शस्यते ॥१॥

भा०—हम विद्वान्जन (विवस्वतः) सूर्य के प्रकाश में, भक्त जनों

के समान विविध ऐश्वर्य एवं ईश्वर की परिचर्या करने हारे पुरुष के ( सदने ) घर में या एकत्र मिलकर बैठने के स्थान में ( महे इन्द्राय) उस महान् परमेश्वर के लिये, या बड़े भारी ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये (उ) ही ( वाचं ) उत्तम वेदवाणी को और ( गिरः ) नाना अन्य स्तुतियों कोभी ( सु नि प्र भरामहे ) उत्तम रीति से धारण करें । ( ससताम् रत्नं चित् ) सोते हुए आलसी लोगों केरमण योग्य धन और ऐश्वर्य के सुखों को जैसे अन्य लोग हर लेते हैं और सोते हुए लोग ऐश्वर्य से वंचित होजाते हैं उसी प्रकार वह ज्ञानी और विद्वान् पुरुष भी ऐश्वर्य और ज्ञान के कोश को ( अविदन् ) प्राप्त करें और औरों को प्राप्त करावें। ( द्रविणोदेषु) सुवर्ण आदि धनों और विद्या आदि सात्विक दान योग्य ज्ञानों को देने हारे स्वामी और आचार्य पुरुषों के लिये ( दुःस्तुतिः ) बुरे वचन ( न शस्यते ) कभी न कहने चाहियें ।

दुरो अश्वस्य दुर इन्द्र गोरसि दुरो यवस्य वसुन इनस्पतिः ।
शिक्षानरः प्रदिवो अकामकर्शनः सखा सखिभ्यस्तमिदं गृणीमसि॥२॥

भा०—हे( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! राजन् ! तू ( अश्वस्य ) अश्वों और अग्नि आदि व्यापक तत्वों का, ( दुरः ) दान करने हारा है । तू (गोः दुरः असि) गौवों का देने हारा है । तू (यवस्य दुरः) जौ आदि अन्न का दाता है । और तू (वसुनः इनः) समस्त ऐश्वर्यों का स्वामी है । तू (शिक्षानरः) शिक्षा देने वाला नायक अचार्य के समान आदि गुरु है । तू ( अकामकर्शनः ) काम, अर्थात् सत् संकल्पों, को कृश न करने हारा, यथोचित विवेकी है । तू ( सखिभ्यः सखा ) समस्त मित्रों का परम मित्र है । वह तू ( प्रदिवः ) उत्कृष्ट ज्ञान का भी (पतिः) पालक, अथवा अति पुरातन, पुराण, पुरुष है। हे परमेश्वर ! ( तम् इदं ) इस तुझ को ही हम इस प्रकार से ( गृणीमहे ) तेरी स्तुति करें और अन्यों को उसका उपदेश करें ।

शचीव इन्द्र पुरुकृद्द्युमत्तम तवेदिदमभितश्चेकिते वसु ।
अतः संगृभ्याभिभूत आ भर मा त्वायतो जरितुः काममूनयीः॥३॥

भा०—हे ( शचीवः ) उत्तम बुद्धि, उत्तम कर्म और उत्तम वाणी वाले! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! हे ( पुरुकृत् ) प्रजाओं के बहुतसे कामों और सुखों को उत्पन्न करने हारे! हे (द्युमत्-तम) प्रकाशवान् और ज्ञानवान् पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ राजन्! सभाध्यक्ष! परमेश्वर! (इदम्) यह ( अभितः ) सब ओर ( वसु ) जितना ऐश्वर्य या बसने वाला जीव संसार है यह सब ( तव इत् ) तेरा ही है। ( चेकिते ) ऐसा ही सब कोई जानता है। ( अतः ) इस कारण या इस राष्ट्र से हे ( अभिभूते ) शत्रुओं का पराभव करने हारे! अथवा—हे (अभिभूते) सब तरफ़ की नाना विभूतियों, ऐश्वर्यों के स्वामिन्! (संगृभ्य) उस समस्त ऐश्वर्य को, या कर को संग्रह करके ( मा आ भर ) मुझ प्रजाजन को ऐश्वर्य से पूर्ण कर, या पालन पोषण कर। ( त्वायतः ) तुझे चाहने वाले ( जरितुः ) स्तुति-वचनों के करने वाले विद्वान् पुरुष के ( कामम् ) अभिलाषा को तू ( मा ऊनयीः ) कभी नष्ट मत होने दे। उसकी अभिलाषा को अवश्य पूर्ण कर। अथवा अतः ( संगृभ्य ) तेरा आश्रय लेकर मैं रहूं। तू ( मा आभर ) मुझे ऐश्वर्य से पूर्ण कर।

**एभिर्द्युभिः सुमना एभिरिन्दुभिर्निरुन्धानो अमतिं गोभिरश्विना।**
**इन्द्रेण दस्युं दरयन्त इन्दुभिर्युतद्वेषसः समिषा रभेमहि ॥ ४ ॥**

भा०—जो पुरुष ( सुमनाः ) शुभचित्तवाला, उत्तम ज्ञानवान् और ( गोभिः ) ज्ञानवाणियों से हमारे (अयतिम्) अज्ञान, अविद्या या दारिद्र्य दशा को ( निरुन्धानः ) रोकनेवाला है, उसके साहाय्य से और (एभिः) इन नाना प्रकार के ( द्युभिः ) प्रकाशयुक्त, द्रव्यों और उत्तम गुणों से, और (एभिः इन्दुभिः) इन ऐश्वर्यों, आह्लादक सुखजनक पदार्थों और अति वेग से जाने वाले वीर पुरुषों से और ( अश्विना ) अश्व, अग्नि, जल आदि से युक्त रथ बल, तथा अश्व अर्थात् राष्ट्र और राष्ट्रपति से और ( इन्द्रेण ) शत्रुओं के नाशक, विद्युत् से बने अस्त्र से हम लोग ( दस्युम् ) प्रजा के

नाशक अत्याचारी डाकू लोगों को ( दासयन्तः ) भयभीत करते हुए और उसको मारते काटते हुए और ( इन्दुभिः ) अति वेगवान्, द्रुतगामी, वीरों द्वारा ( युतद्वेषसः ) शत्रुओं को सदा के लिए दूर करके या ( इन्दुभिः ) ज्ञानवान्, उत्तम विद्वानों के द्वारा (युतद्वेषसः) परस्पर के द्वेष के भावों को दूर करके ( इषा ) अन्नों द्वारा या प्रबल इच्छा से या प्रबल सेना से ( संरभेमहि ) युद्ध आदि कार्य प्रारम्भ करें। अथवा ( इन्दुभिः इषा युतद्वेषसः ) जलों और अन्न के एक साथ उपभोग द्वारा परस्पर के द्वेष के भावों को दूर करके ( संरभेमहि ) एकत्र मिलकर, संगठित होकर कार्य आरम्भ करें।

समि॑न्द्र रा॒या समि॒षा र॑भेमहि॒ सं वाजे॑भिः पुरुश्च॒न्द्रैर॒भिद्यु॑भिः।
सं दे॒व्या प्रम॑त्या वी॒रशु॑ष्मया॒ गोअ॑ग्रया॒श्वा॑वत्या रभेमहि ॥५॥१५

भा०—हे ( इन्द्र ) सभाध्यक्ष! सेनाध्यक्ष! हम लोग ( राया संरभेमहि ) ऐश्वर्य से युक्त होकर एक साथ मिलकर कार्य करें। ( इषा संरभेमहि ) अन्न और प्रबल इच्छा से युक्त होकर संग्राम तथा अन्य कार्य प्रारम्भ करें। (वाजेभिः सं) वेगवान् अश्वों, यानों से और ( अभिद्युभिः ) सब तरफ़ और सब प्रकार के ज्ञानों और प्रकाशों से युक्त होकर हम लोग मिलकर युक्त (पुरुचन्द्रैः) बहुतों के आह्लादक, एवं अति अधिक सुवर्णादि धनसम्पन्न ऐश्वर्यों से ( सम् ) युक्त होकर हम संग्राम आदि कार्य प्रारम्भ करें। ( देव्या ) विजय करनेवाली ( प्रमत्या ) उत्कृष्ट ज्ञानवान्, विद्वानों को प्रमुख रखनेवाली, एवं शत्रुओं को अच्छी प्रकार थामनेवाली, (वीरशुष्मया) पुरुषों तथा शत्रु को उखाड़ फेंकने में समर्थ बल से युक्त ( गो अग्रया ) भूमि और सेनापति की आज्ञा को ही मुख्य लक्ष्य रखनेवाली और (अश्वावत्या ) अश्वों और अश्वारोही वीरों तथा शीघ्रगामी यान वाली सेना से प्रबल होकर हम ( सं रभेमहि ) भली प्रकार शत्रुओं से संग्राम करें और लौकिक अन्य २ बड़े कार्यों को भी हम ऐश्वर्य, अन्न और धन और उत्तम मतिवाली

वीर सेना से युक्त होकर करें। गृहस्थ पक्ष में—(प्रमत्या) उत्तम बुद्धिवाली (वीर-शुष्मया) वीर्यवान पति या पुत्र के बल से युक्त (गो-अग्रया) उत्तमवाणी तथा गौआदि पशु सम्पदा को पालन करनेवाली, (अश्वावत्या) अश्वादि पशुओं के उपयोग जाननेवाली स्त्री के सहित गृहस्थ कार्य सम्पन्न करें।
इति पञ्चदशो वर्गः ॥

ते त्वा मदा॑ अमदन्तानि॒ वृष्ण्या॒ ते सोमा॑सो वृत्र॒हत्ये॑षु सत्पते।
यत्का॒रवे॒ दश॑ वृत्राण्य॑प्र॒ति ब॒र्हिष्म॑ते॒ नि स॒हस्रा॑णि ब॒र्हयः॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे (सत्पते) सज्जनों के पालन करनेहारे सेनापते! (यत्) जब तू (बर्हिष्मते) विज्ञान, राज्यासन तथा प्रजाजनों से युक्त (कारवे) राज्यकर्त्ता राजा की रक्षा के लिए (दश सहस्राणि) दस हज़ारों, बहुत, असंख्यात, (वृत्राणि) शत्रुओं के विघ्नकारी कार्यों और सैनिकों को (नि-बर्हयः) विनाश करने में समर्थ होता है तब (ते) वे (मदाः) अति हर्षित होनेवाले (तानि वृष्ण्या) उन-उन बलयुक्त प्रजा पर सुखों और शत्रुओं पर शरों की वर्षा करने के कार्यों को करते हुए (सोमासः) सेनादलों, के आज्ञापक नायकगण (वृत्रहत्येषु) शत्रुओं के हनन करने के कार्यों में (त्वा अमदन्) तुझे भी हर्षित करें। तेरे चित्त को वे अपनी वीरता से प्रसन्न कर दें। आचार्य के पक्ष में—(बर्हिष्मते कारवे) आसन पर बैठने वाले कर्मनिष्ठ पुरुष के सहस्रों विघ्नों को आचार्य दूर करे। और अज्ञान आदि विघ्नों को दूर करने में (मदाः) स्वयं प्रसन्न रहकर (सोमासः) ज्ञान के इच्छुक शिष्यगण नाना प्रकार के ब्रह्मचर्य आदि व्रतों के पालन करते हुए (त्वा) तुझ आचार्य को (अमदन्) प्रसन्न करें।

यु॒धा युध॒मुप॒ घेदे॑षि धृष्णु॒या पु॒रा पुरं॒ समि॒दं ह॑स्योज॑सा।
नम्या॒ यदि॑न्द्र॒ सख्या॑ परा॒वति॑ निब॒र्हयो॒ नमु॑चिं॒ नाम॑ मा॒यिन॑म् ७

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! सेनापते! तू (यत्) जिस कारण से (नम्या सख्या) शत्रु को दबा लेने में समर्थ, एवं तेरे समक्ष विनय से झुकने

वाले ( सख्या ) मित्र से मिलकर, उसकी सहायता से ( नमुचिं ) कभी जीता न छोड़ने योग्य, अवश्य बध करने योग्य, (नाम) सबसे प्रसिद्ध और प्रबलतम, ( मायिनम् ) अति छल कपट की मायाओं को करनेवाले शत्रु को ( परावति ) दूर देश में ही (नि बर्हयः) विनाश करता है और तू (युधा) शत्रुपर प्रहार करनेवाले वीर पुरुष से ( युधम् ) योद्धा शत्रु को ( घ इत् ) ही ( उप एषि ) जा पकड़ता है और ( घृष्णुया ) शत्रु को दबा देने वाले, अदम्य, (पुरा) अपने प्रबल दुर्ग से (पुरम्) शत्रु के दुर्ग को और (ओजसा) पराक्रम से ( इदं ) इस प्रत्यक्ष आंखों के सामने खड़े शत्रु बल को ( सं हंसि ) भली प्रकार मारने में समर्थ होता है इसी से तू उत्तम सेनापति है। अथवा—( नम्या ) रात्रि के समान या रात्रिकाल में ( मायिनं नमुचिम् घृष्णुया युजा ओजसा सख्या ) धर्षणशील, योद्धा, पराक्रम और मित्र वर्ग से मिलकर मायावी शत्रु को तू ( नि बर्हयः ) विनाश कर।

त्वं कर॑ञ्जमु॒त प॒र्णयं॑ वधी॒स्तेजि॑ष्ठयातिथि॒ग्वस्य॑ व॒र्तनी॑।
त्वं श॒ता वङ्गृ॑दस्याभिन॒त्पुरो॑ऽना॒नुदः॒ परि॑षूता ऋ॒जिश्व॑ना ॥ ८ ॥

भा०—हे सेनापते ! तू ( करंजम् ) प्रजाजनों पर शस्त्रों के फेंकनेवाले, और ( पर्णयम् ) दूसरों के प्राप्त किये देह, पालन योग्य पदार्थों को चोरने वाले, अथवा प्रजा के पालक पुरुषों पर आक्रमण करनेवाले शत्रु को ( अतिथिग्वस्य ) अतिथि के समान पूजनीय पुरुषों को प्राप्त होने वाले प्रजाजन की रक्षा के लिए ( तेजिष्ठया ) अति तेजस्विनी, अग्नि से दीप्त होने वाली ( वर्तनी) शत्रु पर गोला या शस्त्रों को फेंकनेवाली बन्दूक और तोप जैसी शक्ति से ( वधीः ) विनाश कर। और ( त्वं ) तू ( वंगृदस्य ) टेढ़ी चालों, कुटिल व्यवहारों को बतलाने या चलनेवाले और ( अनानुदः ) अपने अनुकूल उचित पदाधिकारों को न देनेवाले दुष्ट शत्रु पुरुष के ( शता ) सैकड़ों ( पुरः ) दुर्गों को ( ऋजिश्वना परिसूताः ) सधे हुए कुत्ते के समान आज्ञाकारी, वशवर्ती सेनाबल द्वारा घेरकर ( अभिनत् ) तोड़ डाल। अथवा

अनुकूल कर न देनेवाले कुटिलाचारी शत्रु पुरुष के नगरों को तोड़ और ( ऋजिश्वना ) सधे हुए कुत्तों के समान आज्ञाकारी भृत्यों के स्वामी के साथ मिलकर अधीन पुरुषों से प्राप्त पदार्थों की रक्षा कर ।

त्वमेताञ्जनराज्ञो द्विर्दशाबन्धुना सुश्रवसोपजग्मुषः ।
षष्टिं सहस्रा नवतिं नव श्रुतो नि चक्रेण रथ्या दुष्पदावृणक् ॥९॥

भा०—हे राजन् ! वीर सेनापते ! ( श्रुतः ) प्रसिद्ध यशस्वी (त्वम्) तू ( अबन्धुना ) बन्धुओं से रहित और ( सुश्रवसा ) उत्तम ऐश्वर्य से सम्पन्न, राष्ट्रपति या प्रजाजन के साथ युद्ध करने के लिये ( एतान् ) इन ( उप अग्मुषः ) तेरे प्रति या युद्ध के लिए आनेवाले ( द्विःदर्दश ) बीसों धार्मिक राजाजनों तथा जनपदों के राजाओं को ( षष्टिं सहस्रा नवतिं नव) ६००९९ साठ हजार निन्यानवे पुरुषों को ( दुष्पदा ) दुष्प्राप्य अति प्रबल ( रथ्या चक्रेण ) रथों या महारथियों से बने चक्र या चक्रव्यूह द्वारा रक्षा करके शत्रुओं को भी ( निअवृणक् ) दूर करने में समर्थ हो । बीसों राजाओं के मुकाबले पर ६००९९ का एक प्रबल रथों का चक्रव्यूह रक्षा के लिए पर्याप्त है ।

त्वमाविथ सुश्रवसं तवोतिभिस्तव त्रामभिरिन्द्र तूर्वयाणम् ।
त्वमस्मै कुत्समतिथिग्वमायुं महे राज्ञे यूने अरन्धनायः ॥ १० ॥

भा०—हे सेनापते ! ( त्वम् ) तू (सुश्रवसम्) उत्तम यशस्वी, ज्ञानी और अन्नादि ऐश्वर्य से युक्त राष्ट्र और राष्ट्रपति को ( तव ऊतिभिः ) अपने रक्षा साधनों से ( आविथ ) सुरक्षित रख । हे ( इन्द्र ) शत्रुहन्तः ! तू ( तूर्वयाणम् ) हिंसक शत्रु पर आक्रमण करनेवाले वीर सैनिकगण को भी ( त्रामभिः ) देहों के रक्षक, कवच आदि साधनों से ( आविथ ) सुरक्षित रख । और (अस्मै) इस (महे) बड़े भारी (यूने) सबको अपने साथ मिलाने हारे, या सबसे पृथक् हुए ( राज्ञे ) राजा के लिए ( कुत्सम् ) वज्र अर्थात्

सेना, शस्त्रास्त्र बल को और ( अतिथिग्वम् ) अतिथि के समान पूज्य राजा के प्रति सर्वसमर्पण कर उसकी शरण में आने वाले ( आयुम् ) प्रजाजन को ( अरन्धनायः ) तू अपने वश कर और पर्याप्त ऐश्वर्यवाला बना।

**य उदृचीन्द्र देवगोपाः सखायस्ते शिवतमा असाम।**
**त्वां स्तोषाम त्वया सुवीरा द्राघीय आयुः प्रतरं दधानाः ॥११॥१६**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! राजन्! सभापते! सेनाध्यक्ष! (ये) जो (देवगोपाः) विद्वानों और विजिगीषु, वीर पुरुषों से सुरक्षित (सखायः) तेरे मित्रगण हैं ( ते ) वे और हम तेरे लिए (शिवतमाः) अत्यन्त कल्याणकारी होकर (असाम) रहें। हम ( सुवीराः ) उत्तम वीरजन ( त्वया सह ) तेरे साथ ( द्राघीयः ) सौ वर्षों से भी अधिक दीर्घ ( आयुः ) जीवन को ( प्रतरम् ) खूब अच्छी प्रकार ( दधानाः ) धारण करते हुए ( त्वाम् ) तेरी (उद्-ऋचि) युद्ध-यज्ञ की समाप्ति पर अथवा ( उत्-ऋचि ) संग्राम के अनन्तर उत्तम फल प्राप्त कर लेने पर अथवा ( उद्-ऋचि ) ऊंचे स्वर से गान करने योग्य स्तुतियों द्वारा ( त्वाम् ) तेरी ( स्तोषाम ) स्तुति करें। इति षोडशो वर्गः ॥

## [ ५४ ]

सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, १० विराड्जगती। २, ३, ५ निचृज्जगती। ७ जगती। ६ विराट्त्रिष्टुप्। ८, ९, ११ निचृत्त्रिष्टुप्। एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**मा नो अस्मिन्मघवन्पृत्स्वंहसि नहि ते अन्तः शवसः परीणशे।**
**अक्रन्दयो नद्यो३रोरुवद्वना कथा न क्षोणीर्भियसा समारत ॥१॥**

भा०—हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन्! परमेश्वर! ( ते शवसः ) तेरे बल और शक्ति का (अन्तः नहि परिनशे) अन्त या पार नहीं पाया जा सकता। तू ( नः ) हमें ( अंहसि ) पाप में और ( पृत्सु ) नाना संग्रामों, या नाना पीड़ाजनक आयासों में ( मा अक्रन्दयः ) मत रुला, मत पीड़ित कर।

अथवा—(नः परिणशे अंहसि मा अक्रन्दयः) हमें सब प्रकार से लुप्त कर देने वाले, मिटा मारने वाले पाप में मत रुला। तू (वना) जंगलों में (नद्यः) नदियों के समान (मा रोरवत्) अमा २ कर मत रुला। (भियसा) भय के मारे त्रस्त हुए (क्षोणीः) पृथ्वी निवासी जन भी (कथा न) क्यों न (सम् आरत) एक संग मिलकर तेरी शरण में आवें। इसी प्रकार राजा भी प्रजाओं को पापाचार के कार्यों या संग्रामों में पीड़ित न करे। उनको जंगलों में न भटकावे। भयार्त्त होकर क्यों न प्रजाएँ एकत्र संगठित होकर रहें?

अर्चा शक्राय शाकिने शचीवते शृण्वन्तमिन्द्रं महयन्नभिष्टुहि।
यो धृष्णुना शवसा रोदसी उभे वृषा वृषत्वा वृषभो न्यृञ्जते॥२॥

भा०—हे प्रजाजन! तू (शाकिने) शक्ति से भरे हुए, बलवान् पदार्थों और पुरुषों के स्वामी, (शक्राय) स्वतः भी अति शक्तिशाली और (शचीवते) प्रज्ञावान् कर्मशक्ति से सम्पन्न और शक्तिशालिनी सेनाओं के स्वामी परमेश्वर (अर्च) स्तुति कर। (इन्द्रम् शृण्वन्तम्) सब स्थानों और सब कालों में वह परमेश्वर सुन रहा है, ऐसा जान कर (महयन्) ईश्वर के प्रति आदर और श्रद्धा से पूजन और अर्चन करता हुआ तू (अभि स्तुहि) साक्षात् सा जानकर स्तुति किया कर। इसी प्रकार (इन्द्रं शृण्वन्तम्) प्रजाओं के न्यायव्यवहारों और कष्टों को सुनते हुए का (महयन्) आदर करता हुआ (अभिस्तुहि) राजा की साक्षात् स्तुति कर। (यः वृषाः) जो मेघ के समान प्रजाजनों पर जल के समान सुखों की और विजुलियों के समान शत्रुओं पर शरों की वर्षा करनेहारा है, वह (वृषभः) सर्व सुखवर्षक होकर ही (उभे रोदसी) आकाश और पृथ्वी दोनों को सूर्य के समान (वृषत्वा) अपने वर्षण सामर्थ्य या बाँध लेनेवाले आकर्षण सामर्थ्य से राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को (नि ऋञ्जते) अपने अधीन, वश करता है।

अर्चा दिवे बृहते शूष्यं१ वचः स्वक्षत्रं यस्य धृषतो धृषन्मनः ।
बृहच्छ्रवा असुरो बर्हणा कृतः पुरो हरिभ्यां वृषभो रथो हि षः ॥३॥

भा०—( धृषतः ) शत्रुओं के पराजित करनेहारे ( यस्य ) जिसका (मनः) मन, चित्त और ज्ञान और स्तम्भनबल या शासन और (स्वक्षत्रम्) अपना क्षात्रबल दोनों (धृषत्) शत्रु को पराजित करनेवाले हैं और जिसकी (वचः) वाणी, वचन या आज्ञा भी (शूष्यम्) बलयुक्त और सुखजनक है उस (बृहते) बड़े भारी (दिवे) तेजस्वी, सूर्य के समान प्रतापी राजा का (अर्च) आदर कर। वह ( बृहतश्रवाः ) बड़े भारी यश, कीर्ति अन्न और ज्ञान से युक्त ( असुरः ) प्राणबल से युक्त, अन्य शत्रुओं को परास्त करनेहारा ( बर्हणा ) बड़े भारी सैन्यबल से (पुरः कृतः) अपना मुख्य सर्दार बनाया जावे। ( सः हि ) वह ( वृषभः ) बलवान् पुरुषों को प्रिय अथवा स्वयं सर्वश्रेष्ठ, सुखों का वर्षक होकर (हरिभ्यां कृतः रथः इव) दो प्रबल अश्वों से युक्त रथ के समान ( हरिभ्यां ) दो विद्वान् पुरुषों से सहायवान् होकर ( रथः ) अति वेगवान् बलशाली हो।

त्वं दिवो बृहतः सानु कोपयोऽव त्मना धृषता शंबरं भिनत् ।
यन्मायिनो व्रन्दिनो मन्दिना धृषच्छितां गभस्तिमशनिं पृतन्यसि ॥४

भा०—( यत् ) जो तू ( धृषत् ) शत्रुओं का पराजय करने और दबाने में समर्थ होकर (व्रन्दिनः) समूह बना कर रहने वाले, (मायिनः) मायावी पुरुषों को ( मन्दिना ) अति हृष्ट, प्रसन्नचित से ( पृतन्यसि ) सेना द्वारा उन को पराजित करना चाहता या स्वयं अपने अधीन सेना रखना चाहता है, तब तू ( गभस्तिम् ) जिस प्रकार सूर्य मेघ पर अपनी किरण या दीप्ति को फेंकता है उसी प्रकार जो ( शितां ) अतितीक्ष्ण ( गभस्तिम् ) अपने हाथों से काबू करके चलाने योग्य ( अशनिम् ) विद्युत् के बने सर्वसंहारक अस्त्र को छोड़। और ( बृहतः

दिवः ) बड़े भारी आकाश और सूर्य के प्रकाश को ( सानु ) रोक लेने वाले ( शंबरं ) मेघ को ( धृषता ) धर्षण या परभव करनेवाले ( त्मना ) अपने तेज से सूर्य या वायु जिस प्रकार छिन्न भिन्न करता या विजुली जिस प्रकार अपने तीव्र सामर्थ्य से ही ( शंवरं अव कोपयः ) जल को नीचे गिरा देता है उसी प्रकार ( बृहतः दिवः ) बड़े भारी ज्ञानी, या तेजस्वी राजा के ऐश्वर्य को भोगने वाले ( शंबरम् ) शान्ति के नाशकारी दुष्ट पुरुष को (अव कोपयः) क्रोध और आवेश से हीन, गर्वरहित, निर्वीर्य कर और ( अव भिनत् ) नीचे तोड़ गिरावे ।

नि यद्वृणक्षि श्वसनस्य मूर्धनि शुष्णस्य चिद्व्रन्दिनो रोरुवद्वना ।
प्राचीनेन मनसा बर्हणावता यदद्या चित्कृणवः कस्त्वा परि ।५।१७॥

भा०—हे परमेश्वर ! ( यत् ) जो तू आज भी बराबर पूर्व कालों के समान ( श्वसनस्य ) सब के प्राणप्रद वायु के और ( व्रन्दिनः ) किरण समूहों से युक्त (शुष्णस्य) पृथ्वी के जलों को शोषण करनेवाले सूर्य के भी ( मूर्धनि ) शिर पर, उसके भी ऊपर अधिष्ठाता होकर ( प्राचीनेन ) अति प्राचीन सनातन से चले आये ( बर्हणावता ) संसार की वृद्धि करने वाले (मनसा) ज्ञान से सब को उपदेश या गर्जना करता हुआ ( वना ) जलों और ज्ञानों को ( नि वृणक्षि ) नीचे गिराता या देता है तब (अद्यापि ) आज भी (त्वा परि ) तुझे छोड़ कर कौन दूसरा (कृणवः) ऐसा करने में समर्थ है, तेरे सिवाय कोई नहीं। उसी प्रकार हे राजन् ! (श्वसनस्य) प्राणि के श्वासो या जीवनों के दाता और (व्रन्दिनः शुष्णस्य चित्) दुष्ट पुरुषों के जत्थे के स्वामी प्रजा के रक्तशोषी बलवान् पुरुष के भी ( मूर्धनि ) शिर पर तू विराज कर ( रोरुवत् ) प्रजाओं को उत्तम उपदेश या आज्ञा करता है और शत्रुओं को रुलाता हुआ ( वना ) भोग योग्य ऐश्वर्यों के जलों के समान ( नि वृणक्षि ) मेघवत् वर्षा दे। और ( प्राचीनेन ) आगे की तरफ़ बढ़ने वाले ( बर्हणावत् ) शत्रु के नाशकारी ( मनसा ) अपने स्तम्भन

बल या प्रबल चित्त से जो तू करता है उस को ( त्वा परि कः यत् कृणवः ) तुझ से दूसरा कौन हो जो कर सके। इति सप्तदशो वर्गः ॥

त्वमा॑विथ॒ नर्यं॑ तु॒र्वशं॒ यदुं॒ त्वं तु॒र्वी॑तिं॒ व॒य्यं॑ शतक्रतो।
त्वं रथ॒मेत॑शं॒ कृत्व्ये॒ धने॒ त्वं पुरो॑ नव॒तिं द॑म्भयो॒ नव॑ ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! हे परमेश्वर! हे (शतक्रतो) सैकड़ों वीर कर्मों और प्रज्ञानों के स्वामिन्! ( त्वं) तू (नर्यम्) समस्त मनुष्यों के हितकारी, उनमें श्रेष्ठ, ( तुर्वशम् ) धर्म, कर्म काम और मोक्ष चारों पर वश करने हारे! उन चारों की इच्छा करने हारे, अथवा ( तुर्वशम् ) शत्रुओं के नाशकारी, ( यदुम् ) यत्नशील, ( तुर्वीतिम् ) शत्रुओं को मारने में कुशल, ( वय्यम् ) कान्तिमान्, तेजस्वी या ज्ञानवान्, (रथम्) रथों पर चढ़ने हारे और (रथम् एतशम्) रथों और घोड़ों, रथारोही घुड़सवारों की ( धने कृत्व्ये ) संग्राम करने के निमित्त ( आविथ ) रक्षा कर। और शत्रु के ( नवतिं नव ) ९९ निन्यानवे अर्थात् अनेकों ( पुरः ) पुरों को ( दम्भयः ) विनाश कर।

स घा॒ राजा॒ सत्प॑तिः शूशु॒वज्जनो॑ रा॒तह॑व्यः॒ प्रति॒ यः शास॒मिन्व॑ति।
उ॒क्था वा॒ यो अ॑भिगृ॒णाति॒ राध॑सा॒ दानु॑रस्मा॒ उप॑रा पिन्वते दि॒वः ॥ ७ ॥

भा०—( सः ) वह ( घ ) ही निश्चय से ( राजा ) राजा है ( यः ) जो ( जनः ) मनुष्य ( सत्पतिः ) सज्जनों का पालक होकर ( शूशुवत् ) राष्ट्र की वृद्धि करे और उस पर अपनी आज्ञा चलावे। और जो (रातहव्यः) उत्तम २ अन्न आदि ग्रहण करने और दान करने योग्य पदार्थों का दान करता हुआ ( शासम् प्रति ) शासन करने के साधन न्याय और दमन को प्रति-क्षण, प्रतिदिन और प्रत्येक जन के प्रति यथावत्, विना प्रमाद और अन्याय के ( इन्वति ) करता है। ( आ ) और ( यः ) जो ( उक्था ) उत्तम वेदानुकूल वचनों को (अभिगृणाति) अन्यों को उपदेश करे। और (राधसा) अपने ऐश्वर्य और धन से ( दानुः ) दानशील होकर ( अस्य ) इस राष्ट्र-

वासी प्रजा के हित के लिए (दिवः उप्रा) आकाश से बरसे मेघ के समान (पिन्वते) उन पर ऐश्वर्यों और सुखों का वर्षण करे।

असमं क्षत्रमसमा मनीषा प्र सोमपा अपसा सन्तु नेमे।
ये त इन्द्र ददुषो वर्धयन्ति महि क्षत्रं स्थविरं वृष्ण्यं च ॥ ८ ॥

भा—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (ते) तेरा (क्षत्रम्) राष्ट्रीय सेना बल (असमम्) अनुपम, सबसे बढ़कर और (मनीषा) बुद्धिबल, या मंत्र-बल, या ज्ञानबल भी (असमा) अनुपम, सबसे बढ़ चढ़ कर हो। (ये) जो (ददुषः) वेतन, आजीविका आदि देनेवाले (ते) तेरे अधीन रहकर, तेरे (महि) बहुत बड़े (क्षत्रम्) बल को (वृष्ण्यं च) और ऐश्वर्य को और (स्थविरम्) स्थिर करते और (वर्धयन्ति) बढ़ाने में समर्थ हों (नेमे) वे सब (अपसा) अपने ज्ञान और कर्मसामर्थ्यों सहित (सोमपाः) अन्न, ऐश्वर्य, बल, वीर्य, ज्ञान और ओषधि आदि रस का पान, पालन, प्राप्ति और उपभोग करते हुए (प्र सन्तु) अच्छी प्रकार सुख से रहें।

तुभ्येदेते बहुला अद्रिदुग्धाश्चमूषदश्चमसा इन्द्रपानाः।
व्यश्नुहि तर्पया काममेषामथा मनो वसुदेयाय कृष्व ॥ ९ ॥

भा०—हे राजन्! सभाध्यक्ष! (अद्रिदुग्धाः) मेघों की वर्षाओं से जिस प्रकार भरे पूरे पर्वती नाले वेग से बेरोक तटों और वृक्षों को तोड़ते फोड़ते हुए निकलते हैं। उसी प्रकार ये (चमू-सदः) सेनाओं में विराजमान वीर सैनिकगण भी (अद्रिदुग्धा) मेघ के समान ऐश्वर्यों के वर्षानेवाले, उदार स्वामियों से दिये गये ऐश्वर्यों से और पर्वतों के समान दृढ़ राजाओं से पालित पोषित हैं। वे (चमसाः) पात्रों के समान राष्ट्र के बहते और अस्थिर ऐश्वर्यों को भी धारण करने और राष्ट्र ऐश्वर्यरूप भोग्य रस को भोग करने के साधन होकर (इन्द्रपानाः) ऐश्वर्य से समृद्ध, राष्ट्र और राष्ट्रपति के पद को पालन और उपभोग करने में समर्थ हैं। (एते) वे सब (बहुकाः) बहुत से ऐश्वर्यों को शत्रु देश से ले आनेवाले बहुत संख्या में (तुभ्य इत्)

तेरी ही रक्षा और वृद्धि के लिए हों। तू ( एषाम् ) इनके ( कामम् ) अभिलाषा को ( तर्पय ) पूर्ण कर और इनके आधार पर राष्ट्र को ( वि अश्नुहि) विविध प्रकार से प्राप्त कर। उसमें व्याप जा और इन अधीन पुरुषों को भी भृत्य के समान नियुक्त कर। (अथो ) और ( एषाम् मनः ) इनके चित्त को (वसुदेयाय) देने योग्य धन अर्थात् वेतन, पुरस्कार आदि के लिए उत्सुक ( कृष्व ) बनाये रख। अर्थात् उनको दान उपाय से वश कर।

अपामतिष्ठद्धरुणह्वरं तमोऽन्तर्वृत्रस्य जठरेषु पर्वतः।
अभीमिन्द्रो नद्यो वव्रिणा हिता विश्वा अनुष्ठाः प्रवणेषु जिघ्नते॥१०॥

भा०—( धरुणह्वरं तमः ) आश्रय देनेवाले, आधारस्वरूप, कुटिल, टेढ़े मेढ़े स्थान जिनमें सूर्य या विद्युत् का प्रकाश तुरन्त नहीं पहुंचता वहाँ ही ( तमः ) अन्धकार ( अपाम् ) जलों के बीच ( अतिष्ठत् ) रहता है। और ( वृत्रस्य ) जल को (जठरेषु ) अपने भीतर, गर्भ में धारण करने वाले और पुनः द्रव रूप से उत्पन्न करनेवाले सूक्ष्म रूपों के ( अन्तः ) भीतर ही ( पर्वतः ) ऊंचे कन्धेवाला मेघ पर्वताकार सा होकर दीखा करता है। ( नद्यः ) गर्जना करनेवाली बिजुलियां भी ( विश्वाः ) सब ( वव्रिणा ) आवरण करनेवाले मेघ के रूप से ( अन्तःहिता) भीतर रहती हैं ( इम् ) इनको ( इन्द्रः ) वायु या विद्युत् ही एक दूसरे के पीछे स्थित जल की तहों को ( अभि ) आघात करके ( प्रवणेषु ) नीचे प्रदेशों में ( जिघ्नते ) गिरा देता है। इस प्रकार निरन्तर जल बरसा करते हैं। ठीक इसी प्रकार राष्ट्र में भी ( तमः ) अन्धकार ( अपाम् ) प्रजाओं के बीच ( धरुणह्वरम् ) आश्रय देनेवाले बड़े २ लोगों की आड़ में ही कुटिलतापूर्वक दीवट के नीचे अन्धकार के समान रहा करता है। राजा उसको सूर्य के समान नाश करे। ( वृत्रस्य ) बढ़ते हुए राष्ट्र के ( जठरेषु अन्तः ) उत्पन्न या प्रकट करनेवाले राष्ट्र के अवयवों के भीतर ही ( पर्वतः ) राष्ट्र के पालनकारी साधनों का स्वामी, पर्वत के समान अचल, और मेघ के समान सुखों का

वर्षक होकर रहे। मेघ या विद्युत् जिस प्रकार जलधाराओं को नीचे के प्रदेशों में बहाता है उसी प्रकार [ वव्रिणा] वरण करने योग्य, चाहने योग्य सुन्दर रूपवाली सुवर्ण आदि के रूप में ( स्थिताः ) रक्खी हुई ( विश्वा) समस्त ( नद्यः ) समृद्धियों को ( अनुष्ठाः ) अनुकूल कर्मानुकूल या नियमानुकूल रखकर ( प्रवणेषु ) अपने आगे झुकनेवाले विनीत भृत्यों में (अभि जिघ्नते) प्राप्त करावे, प्रदान करे। अर्थशास्त्र या प्रजा पालन की यही नीति है—"अलब्धलाभार्थं, लब्धपरिरक्षिणी, रक्षितविवर्धिनी वृद्धस्य तीर्थेषु प्रतिपादिनी च [कौ० अर्थ०] ॥ दण्डनीति अलब्ध को प्राप्त करे, प्राप्त की रक्षा करे, रक्षित को बढ़ावे। बढ़े ऐश्वर्य को तीर्थों अर्थात् अधीन सेवकों में प्रदान करे।

**स शेवृधमधि धा द्युम्नमस्मे महि क्षत्रं जनाषाळिन्द्र तव्यम्।**
**रक्षा च नो मघोनः पाहि सूरीन् राये च नः स्वपत्या इषे धाः॥११॥१८**

भा०—हे ( इन्द्र ) राजन्! (सः) वह तू ( जनाषाट् ) समस्त जनों को अपने वश करने में समर्थ होकर ( शेवृधम् ) शान्ति और सुख को बढ़ानेवाले ( द्युम्नम् ) ऐश्वर्य को और ( महि ) बड़े भारी ( तव्यम् ) बलशाली ( क्षत्रम् ) क्षत्रिय बल को (अस्मे) हमारी रक्षा के लिए (अधि धाः) खूब अधिक मात्रा में रख। और ( नः ) हमारे ( राये ) ऐश्वर्य की बृद्धि के लिए और ( स्वपत्यै ) उत्तम, गुणशाली पुत्रों को भरण पोषण करनेवाले ( इषे ) अन्न की वृद्धि और रक्षा के लिए ( नः ) हममें से ( मघोनः ) ऐश्वर्यवान् और ( सूरीन् ) विद्वान् पुरुषों की भी (रक्ष) रक्षा कर, नियुक्त कर और पालन कर। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

## [ ५५ ]

सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४ जगती। २, ५—७ निचज्जगती। ३, ८ विराड्जगती ॥ अष्टर्चं सूक्तम् ॥

**दिवश्चिदस्य वरिमा वि पप्रथ इन्द्रं न मह्ना पृथिवी चन प्रति।**

भीमस्तुविष्मांश्चर्षणिभ्यं आतपः शिशीते वज्रं तेजसे न वंसगः ॥१॥

भा०—( चित् ) जिस प्रकार (अस्य) इस सूर्य की वरिमा, श्रेष्ठ गुण, या तेज, या बड़प्पन ( दिवः चित् ) आकाश के भी पार तक ( वि पप्रथे ) विविध दिशाओं में फैल जाता है। और ( इन्द्रम् ) सूर्य के ( मह्ना ) अपने महान् वैभव से ( पृथिवी चन) पृथिवी भी ( प्रति न ) बराबरी नहीं करती। ठीक उसी प्रकार ( अस्य वरिमा ) उस राजा के श्रेष्ठ गुण (दिवः चित् ) प्रकाशमान सूर्य या विस्तृत आकाश एवं बड़ी विद्वत्-राज-सभा से भी अधिक ( वि पप्रथे ) विशेष रूप से विस्तृत हो। और (पृथिवी चन) समस्त पृथिवी बासी प्रजा ( मह्ना ) अपने बड़े बल से भी ( इन्द्रं प्रति न) शत्रुनाशक राजा का प्रतिपक्षी न हो। वह राजा ( भीमः ) अति भयानक ( तुविष्मान् ) बलशाली होकर ( चर्षणिभ्यः ) समस्त मनुष्यों के हित के लिये ( आतपः ) सूर्य के समान तेज से शत्रु का संताप देने वाला होकर ( वंसगः न ) वलीवर्द जिस प्रकार भोग्य गो-गण पर जाता है उस प्रकार वह भूमियों का भोग करे। और उत्तम भोग्य अन्नों को प्राप्त कराने वाला मेघ जिस प्रकार भूमियों पर वर्षा करता है उसी प्रकार प्रजाओं को भोग्य नाना ऐश्वर्य प्रदान करने हारा हो। ( तेजसे ) सूर्य जिस प्रकार प्रकाश करने के लिये अपने अन्धकार-वारक ( वज्रं शिशीते ) किरण समूह को तीव्र करता है और मेघ जिस प्रकार प्रकाश के लिये (वज्रं) विद्युत् को तीक्ष्ण करता है उसी प्रकार ( तेजसे ) राजा भी अपने तेज और पराक्रम और प्रभाव की वृद्धि करने के लिये ( वज्रम् ) अपने शस्त्रास्त्र बल को सदा (शिशीते) तीक्ष्ण, सदा तैयार और अति वेगवान् उग्र, बलवान् बनाये रक्खे। परमेश्वर पक्ष में—परमेश्वर का महान् सामर्थ्य आकाश से भी दूर तक फैला है। पृथिवी उस की समानता नहीं करती। वह सर्व शक्तिमान् प्रजा के हित के लिये दुष्टों का संतापक है। वह तेज के प्रसार के लिये अन्धकार के नाशक सूर्य आदि पदार्थ को तीक्ष्ण बनाता है।

सो अर्णवो न नद्यः समुद्रियः प्रति गृभ्णाति विश्रिता वरीमभिः।
इन्द्रः सोमस्य पीतये वृषायते सनात्स युध्म ओजसा पनस्यते ॥२॥

भा०—(अर्णवः नद्यः न) जिस प्रकार समुद्र नदियों को अपने भीतर ले लेता है, उसी प्रकार (इन्द्रः) सूर्य भी (नद्यः) अव्यक्त शब्द करनेवाले, गर्जनाशील (विश्रिताः) विविध प्रकारों और रूपों में स्थित जलों को (वरीमभिः) नाना रोकनेवाले कारणों या किरणों द्वारा अथवा अति अधिक शक्तिवाले किरणों से (प्रति गृभ्णाति) ले लेता है। वही (समुद्रियः) समुद्र अर्थात् महान् आकाश या अन्तरिक्ष प्रदेश में उत्पन्न (इन्द्रः) सूर्य (सोमस्य पीतये) जल को अपने किरणों द्वारा पान कर लेने के कारण ही (वृषायते) बाद में वर्षा करने वाले मेघ के समान, मेघ का रूप होकर बरसता है। मानो सूर्य ही मेघ रूप में बदल जाता है। (सः) वह (सनात्) सदा से ही (युध्मः) प्रहार करनेवाला विद्युत् होकर (ओजसा) अपने पराक्रम या बलकर्म से (पनस्यते) नाना व्यापार अर्थात् वर्षण, गर्जन, विद्युत् आदि के कार्य करता है। ठीक उसी प्रकार यह राजा (समुद्रियः) समुद्र से उत्पन्न रत्न के समान उज्वल होकर भी (नद्यः न अर्णवः) जिस प्रकार सागर अपने भीतर जल से भरी पूर्ण नदियों को ले लेता है उसी प्रकार वह (नद्यः) गर्जना करनेहारी सेनाओं तथा समृद्धिशाली उन उन नाना प्रजाओं को भी (प्रति गृभ्णाति] ले लेता है अपने वश कर लेता है, जो (वरीमभिः) नाना रक्षा साधनों और बड़े बड़े सामर्थ्यों से (विश्रिताः) विविध उपायों, स्वार्थों तथा विविध देशों, दिशाओं और कार्यों में आश्रय पा रही हैं। (इन्द्रः) ऐश्वर्य-वान्, शत्रुहन्ता राजा, (सोमस्य पीतये) ऐश्वर्य के भोग, राष्ट्र के पालन और ओषधि आदि रस पान के लिए (वृषायते) वर्षणकारी मेघ या सूर्य के समान आचरण करे। और (सनात्) सदा (सः) वह (ओजसा) अपने पराक्रम से, (युध्मः) शत्रुओं पर प्रहार करनेहारे योद्धा के समान सदा

सन्नद्ध होकर ( पनस्यते ) स्तुति का पात्र हो, अथवा राज्य के समस्त व्यवहार करे।

त्वं तमि॑न्द्र॒ पर्व॑तं॒ न भोज॑से म॒हो नृ॒म्णस्य॒ धर्म॑णामिरज्यसि।
प्र वी॒र्ये॑ण दे॒वताति॑ चेकिते॒ विश्व॑स्मा उ॒ग्रः कर्म॑णे पु॒रोहि॑तः ॥३॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! राजन्! ( पर्वतम् न भोजसे ) जिस प्रकार मेघ को सूर्य, विद्युत् या वायु समस्त प्रजाओं के पालन के लिये आघात करता, छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार ( पर्वतम् ) नाना पालन सामर्थ्यों से युक्त अथवा पर्वत के समान अभेद्य दृढ़ शत्रु को भी ( त्वम् ) तू (भोजसे) प्रजाओं के पालन, और ऐश्वर्य भोग के लिये आघात करता है। और तब तू ( महः ) बड़े भारी (नृम्णस्य) मनुष्यों को वश करने में समर्थ, उनके मनों को हरने वाले, ऐश्वर्य के ( धर्मणाम् ) धारण करने वाले, बड़े बड़े धनाढ्य पुरुषों के बीच में भी ( इरज्यसि ) ऐश्वर्य का स्वामी बन जाता है। ( वीर्येण ] वीर्य या वीरोचित प्रताप, या विविध प्रकार से शत्रु को उखाड़ फेंकने के बल से तू (देवता अति) समस्त दानशील स्वामियों और विजय करने वाले सेना जनों में से भी सब से बढ़ कर ( चेकिते ) जाना जाता, या स्वयं जानता है। तभी तू ( विश्वस्मै ) सब ( कर्मणे ) कामों के लिये ( उग्रः ) बड़ा प्रबल भयकारी ( पुरोहितः ) आगे स्थापित साक्षी, द्रष्टा निरीक्षक, शासक के रूप में स्थापित हो। अथवा—(नेति निषेधार्थे) ( पर्वतं ) तू पर्वत या मेघ के समान शत्रु राजा को भी ( भोजसे न ) अपने भोग के लिये आघात न कर, प्रत्युत प्रजा के सुख के लिये उसे दण्डित कर।

स इद्वने॑ न॒मस्यु॒भिर्व॑चस्यते॒ चारु॒ जने॑षु प्र॒ब्रु॒वा॒ण इ॑न्द्रि॒यम्।
वृषा॒ छन्दु॑र्भवति हर्य॒तो वृषा॒ क्षेमे॑ण॒ धेनां॑ म॒घवा॒ यदिन्व॑ति ॥४॥

भा०—( नमस्युभिः वचस्यते ) जिस प्रकार नमस्कार करने वाले, विनयशील विद्यार्थियों के समान भक्तजनों द्वारा ( वने ) परमेश्वर अरण्य में, एकान्त में स्तुति किया जाता है और यह जनों और जन्तुओं में अति

उत्तम उपभोग योग्य ( इन्द्रियम् ) ऐश्वर्य और ज्ञान का आचार्य के समान ( प्रब्रुवाणः ) उपदेश करता हुआ स्तुति का पात्र होता है इसी प्रकार ( सः इत् ) वह राजा ही ( वने ) भोगने और प्राप्त करने योग्य ऐश्वर्य के लिये ( नमस्युभिः ) उसके प्रति झुक २ कर आदर करने वाले विनीत सेवकों द्वारा ( वचस्यते ) उत्तम स्तुतियों को प्राप्त करे । और वह (जनेषु) सर्व साधारण जनों पर ( चारु ) उत्तम, भोग्य, ( इन्द्रियम् ) ऐश्वर्य, राज्य समृद्धि को प्राप्त करने का ( प्रब्रुवाणः ) उनको उपदेश करता हुआ स्तुति का पात्र हो । ( यत् ) जब भी राजा ( वृषा ) सब प्रजा पर सुखों की वर्षा करने हारा, दानशील, मेघ के समान उदार या ( वृषा धेनाम् ) महा वृषभ जिस प्रकार गौ को प्राप्त करता है उसी प्रकार वह ( धेनाम् ) समस्त रसों के पान कराने वाली आज्ञापक वाणी और भूमि को या प्रजा की स्तुति को ( इन्वति ) प्राप्त करता है, तब वह ( वृषा ) वर्षक मेघ के समान उदार ( छन्दुः ) प्रजा का मनोरंजक और ( क्षेमेग ) प्रजा के कुशल क्षेम, परम हित करने से भी ( हर्यतः ) सबके मनों के हरण करने वाला ( क्षेमेण ) प्रजा के रक्षण द्वारा ही ( छन्दुः ) प्रजाओं के मन हरने वाला, एवं स्वयं स्वतन्त्र, मुख्य ( भवति ) हो जाता है ।

**स इन्महानि समिथानि मज्मना कृणोति युध्म ओजसा जनेभ्यः ।**
**अधा चन श्रद्दधति त्विषीमत इन्द्राय वज्रं निघनिघ्नते वधम् ॥५॥**

भा०—( सः इत् ) वह राजा या सेनापति ही ( मज्मना ) राष्ट्र कार्य में बाधा उत्पन्न करने वाले कण्टकों को शोधन करने में समर्थ सैन्य-बल से और ( ओजसा ) बड़े पराक्रम, उत्साह और साहस से ( युध्म ) शत्रु पर प्रहार करने में समर्थ, योद्धा होकर ( जनेभ्यः ) प्रजाजनों के हित के लिये ( महानि ) बड़े २ ( समिथानि ) संग्राम ( कृणोति ) करता है । और ( वज्रं ) शत्रुओं के वारण करने वाले ( वधम् ) उनको आघात करने वाले शस्त्र तथा वध, अंगच्छेदन आदि दण्ड का भी ( निघ-

निघ्नते ) प्रयोग करता है। ( अध चन ) तभी ( त्विषीमते ) कान्तिमान्, सूर्य के समान तेजस्वी उस ( इन्द्राय ) शत्रुहन्ता राजा के ऊपर भी (श्रत् दधति) लोग श्रद्धा करते हैं और विश्वास करते हैं। अर्थात् राष्ट्र की शासन-व्यवस्था के भीतरी और बाहरी दोनों प्रकार के कण्टकों के शोधन करने वाले विजयी राजा पर ही प्रजाजन को अपने जान, माल की रक्षा का विश्वास जमता है। दूसरे वह यह सब दमन का कार्य भी अपने स्वार्थ से न करे। विद्वान् ज्ञानी पक्ष में—( मज्मना ) अज्ञान और मलों का शोधन करने वाले ज्ञानबल और तप से लोगों के हित के लिये योद्धा वीर के समान बड़े २ ( समिथानि ) विज्ञानों को सम्पादित करे। अज्ञान नाशक ( वज्रम् ) ज्ञानरूप अस्त्र को सदा प्रयोग करे, तभी उस तेजस्वी (इन्द्राय) आचार्य पर लोग श्रद्धा और विश्वास करते हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

**स हि श्र॑व॒स्युः सद॑नानि कृ॒त्रिमा॑ क्ष्म॒या वृ॑धा॒न ओज॑सा विना॒शय॑न्।**
**ज्योतीं॑षि कृ॒ण्वन्न॑वृ॒काणि॑ यज्य॒वेऽव॑ सु॒क्रतुः॒ सर्त॒वा अ॒पः सृ॑जत् ॥ ६**

भा०—( सः ) वह ( हि ) निश्चय से ( श्रवस्युः ) यश प्राप्त करने की इच्छा से ( कृत्रिमा सदनानि ) नाना प्रकार के शिल्पों द्वारा बनाये जाने वाले आश्रय गृह, दुर्ग, उपवन, रथ आदि ( सृजत् ) बनवावे। और वह ( श्रवस्युः ) अन्न सम्पदा को प्राप्त करने की इच्छा से ( कृत्रिमा ) कृत्रिम, नये २ ( सदनानि ) जलों, जलाशय, सेतु और नहरों को ( सृजत ) बनवावे। और ( क्ष्मया ) भूमि सम्पत्ति और जनपदवासी प्रजा के द्वारा (वृधानः) बढ़ता हुआ और (ओजसा) पराक्रम से शत्रुओं के ( कृत्रिमा सदनानि ) बनाये गृहों, आश्रयस्थान, दुर्ग और जलाशय सेतु, बन्ध आदि पदार्थों को (विनाशयन्) विनाश करता रहे। (ज्योतींषि अवृकाणि कृण्वन् ) जिस प्रकार वायु अपने प्रबल झोकों से आकाश में प्रकाशमान पिण्ड, सूर्य, चन्द्र तथा नक्षत्र आदि को मेघ आदि के आवरण से रहित कर देता और आकाश को स्वच्छ कर देता है उसी प्रकार राजा

भी राज्य में ( अवृकाणि ) चोरों से रहित और भेड़िया, सिंह, विलाव आदि रात्रिचारी प्राणियों के भय से रहित ( ज्योतींषि ) प्रकाश के साधन, बड़े २ लेम्पों, ज्योति स्तम्भों को नगरों और मार्गों में (कृण्वन् ) करता रहे। जिस प्रकार (यज्यवे) यज्ञ करने वाले के लिये मेघ या सूर्य (सर्तवै अपः अवसृजत्) नीचे बहने के लिये जलों को नीचे बहाता है। उसी प्रकार राजा भी (सुक्रतुः) शिल्प या एन्‌जिनीयरी के कार्यों के करने में कुशल होकर, (सर्त्तवै) राष्ट्र में बहने और एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने के लिये (अपः) जलों, नहरों और जल-मार्गों को (अवसृजत्) बनवावे ॥ विद्वान् पुरुष भी (श्रवस्युः) ज्ञान की कामना करके कृत्रिम गृहों को बना कर ( क्ष्मया ) भूमि या गृह, कलत्र आदि से सन्तानों को बढ़ाता हुआ, पराक्रम से अपने विरोधियों को नाश करता हुआ, (अवृकाणि) छलादि रहित ज्ञान प्रकाशों से, प्रकट करता हुआ उत्तम ज्ञानवान्, कर्मनिष्ठ होकर ( सर्त्तवै ) लोक यात्रा के लिये ( अपः ) उत्तम कर्मों को करे और ज्ञानों का प्रदान करे।

दा॒नाय॒ मनः॑ सोमपावन्नस्तु ते॒ऽर्वाञ्चा॒ हरी॒ वन्दनश्रु॒दा कृ॑धि।
यमि॑ष्ठास॒: सार॑थयो॒ य इ॑न्द्र॒ ते॒ न त्वा॒ केता॒ आ द॑भ्नुवन्ति॒ भूर्ण॑यः॥७॥

भा०—हे( सोमपावन् ) ऐश्वर्य और ऐश्वर्ययुक्त राष्ट्र और अभिषिक्त राज्यपद के रक्षक राजन् ! विद्वन् ! ( ते मनः ) तेरा मन ( दानाय अस्तु) सदा दान देने के लिए हो। और (ते मनः दानाय अस्तु) तेरा मन अर्थात् स्तम्भनबल, पराक्रम शत्रुओं के खण्डन, विनाश के लिए हो। हे (वन्दनश्रुत्) स्तुति और अभिवादन को प्रेम और आदर से श्रवण करनेहारे ! तू अपने ( हरी ) दोनों अश्वों को (अर्वाञ्चौ) आगे, अपने अधीन चलनेहारा (कृधि) कर। हे ( इन्द्र ) राजन् ! ( ये ) जो ( यमिष्ठासः ) नियन्त्रण करने में कुशल, ( सारथयः ) रथियों के साथ बैठनेवाले सारथी लोग और उनके समान सहयोगी नियमव्यवस्था के अधिकारी हैं, ( ते ) वे ( केताः) ज्ञान वाले और ( भूर्णयः ) प्रजा के पालन पोषण करनेवाले होकर ( त्वा ) तुझ

को ( न आदभ्नुवन्ति ) विनाश न करें । प्रत्युत सारथियों के समान वे भी राष्ट्र और राजा रूप मुख्य स्वामी की रक्षा करें ।

**अप्रक्षितं वसु बिभर्षि हस्तयोरषाळ्हं सहस्तन्वि श्रुतो दधे ।**
**आवृतासोऽवतासो न कर्तृभिस्तनूषु ते क्रतव इन्द्र भूरयः ॥८॥२०**

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः राजन् ! सेनापते ! सभाध्यक्ष तू ( हस्तयोः ) अपने हाथों में, अपने अधीन (अप्रक्षितं वसु) अक्षय ऐश्वर्य को ( विभर्षि ) धारण कर । और (श्रुतः) खूब प्रसिद्ध,यशस्वी, कीर्तिमान, होकर ( तन्वि ) अपने शरीर में तथा अपने विस्तृत राष्ट्र में ( अषाट् ) शत्रुओं से कभी पराजित न होनेवाले, अदम्य ( सहः ) बल को ( दधे ) धारण कर । (ते तनूषु) तेरे शरीरों के समान सुदृढ़ राज्यतन्त्रों में (भूरयः) बहुत से (क्रतवः) क्रियाशील पुरुष तथा कर्मवान् और प्रज्ञावान् पुरुष भी ऐसे हों जो ( अवतासः न ) रक्षाकारी, ज्ञानी पुरुषों या जल से पूर्ण जीवनप्रद कूपों या छिपे खजानों के समान (कर्तृभिः) कर्मकर, अधीनस्थ, कर्म कुशल पुरुषों से ( आवृतसः ) घिरे हुए, सुरक्षित रहें। इति विंशो वर्गः ॥

## [ ५६ ]

सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृज्जगती । २ जगती । ५ त्रिष्टुप् ६ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

**एष प्र पूर्वीरव तस्य चम्रिषोऽत्यो न योषामुदयंस्त भुर्वणिः ।**
**दक्षं महे पाययते हिरण्ययं रथमावृत्या हरियोगमृभ्वसम् ॥१॥**

भा०—( अत्यः न ) अश्व जिस प्रकार ( योषाम् ) घोड़ी को ( उत् अयंस्त ) प्राप्त हो, अथवा ( अत्यः न ) जिस प्रकार स्वयम्वर में बल शौर्य की प्रतिस्पर्द्धा में सबसे अधिक बढ़ जानेवाला पुरुष ही ( भुर्वणिः ) भरण-पोषण करनेहारा पति होकर ( योषाम्) स्वयंवरा कन्या को (उत् अयंस्त)

विवाह लेता है उसी प्रकार ( भुर्वणिः ) राष्ट्र को धारण पोषण करने में समर्थ ( अत्यः ) बलशौर्य की प्रतिस्पर्द्धा में सबसे अधिक बढ़ जानेहारा (एषः) यह वीर राजा भी (तस्य) उस राष्ट्र की ( पूर्वीः ) सर्वश्रेष्ठ, अग्रगण्य ( चम्रिषः ) पात्रों में रक्खी, (पूर्वीः ) भरी पूरी योग्य सम्पदाओं के समान ( चम्रिषः ) सेनाओं में आज्ञा पर चलनेवाली, ( पूर्वीः ) सर्वश्रेष्ठ अग्रगण्य, बल में परिपूर्ण सेनाओं को ( उत् अयंस्त ) अपने अधीन करके उन पर शासन कर नियम में चलाता है। और वह (ऋभ्वसम्) बहुत अधिक दीप्ति के साथ तीव्र बाण आदि अस्त्रों को फेंकने में समर्थ (हरियोगम्) अश्वों द्वारा जोते जानेवाले (हिरण्ययं) लोह के बने (रथम्) रथ या तोप को (आवृत्य) प्रयोग करके ( महे ) बड़े भारी विजय कार्य करने के लिए ( दक्षं ) बल या क्रिया सामर्थ्य को ( पाययते ) सुरक्षित रखता है।

तं गूर्तयो नेमन्निषः परीणसः समुद्रं न संचरणे सनिष्यवः।
पतिं दक्षस्य विदथस्य नू सहो गिरिं न वेना अधि रोह तेजसा॥२॥

भा०—( गूर्त्तयः ) उद्यमशील या उपदेशों से युक्त, ( नेमन्निषः ) लज्जा से विनीत और हृदय से पति को चाहनेवालीं, (परि-नणसः) शुभनासिकावाली सुन्दर स्त्रियां जिस प्रकार (पतिम्) पति को प्राप्त होती हैं। और (न) जिस प्रकार (सनिष्यवः) उत्तम रीति से भोगने योग्य ऐश्वर्य को चाहनेवाले धनाभिमानी पुरुष ( संचरणे ) परदेश में जाने के लिए ( समुद्रं ) समुद्र का आश्रय लेते हैं, अथवा (संचरणे) अपने मार्गों पर चलते समय (सनिष्यवः ) पृथक् पृथक् बटे हुए मार्गों का स्वीकार करनेवाली नदियाँ (समुद्रं न ) पुनः समुद्र को प्राप्त होती हैं और (वेनाः) विद्वान् पुरुष जिस प्रकार ( गिरिं न ) पर्वत के समान अचल और ज्ञानोपदेश के करनेवाले मेघ के समान अचल ज्ञानवर्ती गुरु को ( तेजसा ) ब्रह्मचर्य के तेज से युक्त होकर प्राप्त होते हैं, और ( वेनाः ) कामनाशील स्त्रियां जिस प्रकार विवाह के अवसर पर ( तेजसा ) बड़े साहस से ( गिरिं न ) शिलाखण्ड पर पैर

रख देती हैं उसी प्रकार (गूर्त्तयः) स्तुतिशील (नेमन्-इषः) आदर से झुकने और अपने स्वामी को चाहनेवाली तथा अपने नायक पति द्वारा प्राप्त होने चाहने योग्य (परीणसः) बहुतसी, एवं बहुत से देशों में बसनेवाली प्रजाएं अथवा आगे आगे बढ़नेवाली सेनाएं ( दक्षस्य ) ज्ञान और बल के और (विदथस्य) संग्राम और ऐश्वर्य के ( पतिम् ) पालक ( सहः) शत्रु विजयी बलवान् पुरुष को प्राप्त कर अपने ( तेजसा ) तेज से उसपर ( अधिरोह ) आरूढ़ हों, उस पर आश्रय करें। कामनायुक्त स्त्री के विवाहकाल में शिलाखण्ड पर पैर रखना भी पर्वत के समान अचल पति पर आश्रय लेकर स्वयं अचल होने की प्रतिज्ञा लेने के भाव को दर्शाता है। उसी प्रकार प्रजागण और सेनागण ( संचरणे ) युद्ध में एक साथ प्रयाण करने में भी ( सनिष्यवः ) अपने स्वामी राजा पर आश्रय ले, अपने बल से उसके आश्रय में स्थिर बनी रहे।

स तुर्वणिर्महाँ अरेणु पौंस्ये गिरेर्भृष्टिर्न भ्राजते तुजा शवः।
येन शुष्णं मायिनमायसो मदे दुध्र आभूषु रामयन्नि दामनि॥३॥

भा०—(सः) वह वीर पुरुष (तुर्वणिः) शीघ्र सुखजनक, एवं ऐश्वर्य को प्राप्त करने और संगी जन को शीघ्र सुखी करनेवाला, अथवा शत्रुओं को शीघ्र नाश करनेवाला (महान्) गुणों से महा आदर योग्य, (दुध्रः) समस्त कामनाओं को पूर्ण करनेवाला, स्वतः बलों से पूर्ण, दुष्टों को अपने अधीन रखने में समर्थ और उनके वश में न आनेवाला ( आयसः ) विज्ञान से युक्त अथवा कवच और शस्त्रास्त्र से युक्त, प्रबल और सुरक्षित है, जो ( पौंस्ये ) पौरुष कर्म और पुरुषत्व के योग्य यौवनकाल में ( तुजा ) सब दुःखों और विरोधियों का नाशक ( अरेणु ) निर्दोष अवध्य, बल है, (येन) जिस बल से वह स्वयं ( गिरेः भृष्टिः न ) मेघ से गिरनेवाली अति तीव्र वृष्टि या विद्युत् के समान प्रतापशाली, या पर्वत के समान ऊंचे शिखर के समान ( भ्राजते ) चमकता है, उस (शुष्णं) बलवान् ( मायिनम् ) नाना

प्रज्ञाओं से युक्त पुरुष को हे पतिंवरे कन्ये ! तू (दामनि) दृढ़ता से बाँधने वाले गृहस्थ बन्धन में ( नि ) अच्छी प्रकार बाँध ले। और वह तुझे ( आभूषु ) सब प्रकार की विभूतियों, ऐश्वर्यों और भूमियों में या देशों में ( मदे नि रामयत् ) हर्ष में अति प्रसन्न रक्खे। अथवा—( तुजा शवः आभूषु रामयत् ) उसका दुःखनाशक, सबको सुभूषित करनेवाला आनन्द-प्रद बल है जिससे तू ( दामनि नि ) उसे गृहस्थ बन्धन में बाँध और वह तुझे बांधे। सेनापति के पक्ष में—वीर सेनापति ( येन ) जिस बल से ( शुष्णन् मायिनम् ) मायावी बलवान् शत्रु को ( दामनि नि रामयत् ) बन्धन में, कारागार में डाले।

देवी यदि तविषी त्वावृधोतय इन्द्रं सिषक्त्युषसं न सूर्यः।
यो धृष्णुना शवसा बाधते तम इयर्ति रेणुं बृहदर्हरिष्वणिः ॥४॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! ( यदि ) यदि (तविषी) बलवती सेना ( त्वावृधा ) तुझे अपने बलवीर्य और पराक्रम से बढ़ानेवाली और (देवी) विजय की कामना करनेहारी होकर ( देवी तविषी ) कामनायुक्त, बलवती महिला के समान ( इन्द्रं सिषक्ति ) ऐश्वर्यवान् अपने पति को प्राप्त होती है, पति या स्वामी का आश्रय लेती है तब (यः) जो वीर पुरुष (धृष्णुना) शत्रुओं को पराजित करनेवाले, प्रबल (शवसा) बल से (तमः) सूर्य जिस प्रकार अन्धकार को नाश करता है उसी प्रकार शत्रुबल को ( बाधते ) नाश करता है और जो ( अर्हरिष्वणिः = अर्ह–रिष्–वनिः, अथवा अर्हरि–स्वनिः) पूज्य और शत्रुओं का विवेक करनेहारा, अथवा वेगवान् धनापहारी पुरुषों को अपने प्रताप से रुलाने या गुंजा देनेवाला होकर ( बृहत् ) बड़े उद्योग से ( रेणुम् ) उत्तम रजो रेणु के समान गुणवती तुझको ( इयर्ति ) प्राप्त हो। ( सूर्यः उषसम् न ) सूर्य जिस प्रकार उषा के पीछे २ अनुगमन करता है उसी प्रकार सेनापति भी अपनी सेना के पीछे चलता है। और उसी प्रकार वह स्वामी भी अपनी स्त्री का अनुगमन करे।

वि यत्तिरो धरुणमच्युतं रजोऽतिष्ठिपो दिव आतासु बर्हणा ।
स्वर्मीह्ळे यन्मदं इन्द्र हर्ष्याहन्वृत्रं निरपामौब्जो अर्णवम् ॥ ५ ॥

भा०—जिस प्रकार ( यत् ) जो ( औब्जः ) सबको अपने अधीन रखने हारा सूर्य ( आतासु ) दिशाओं में ( दिवः ) अपने प्रकाश और आकर्षण द्वारा ( अच्युतम् ) अविनाशी, अपने स्थान से न डिगनेवाले ( धरुणम् ) समस्त चराचर के आश्रय रूप पृथिवी आदि (रजः) लोक को भी ( तिरः ) अधर आकाश में ( अतिष्ठिपः ) स्थापित करता है। और ( यत् ) जो ( इन्द्रः ) सूर्य ( मदे ) सबके हर्षकारी ( स्वर्मीह्ळे ) सुखों और जल वर्षानेवाले अन्तरिक्ष में ( हर्ष्या ) हर्षों के जनक, वृष्टि, विद्युत आदि कार्यों को उत्पन्न करता हुआ ( अपां वृत्रम् ) जलों को रोकने वाले मेघ को ( अहन् ) आघात करता है और ( अर्णवम् निः ) जल को नीचे गिरा देता है। इसी प्रकार ( औब्जः ) सब शत्रुओं को अपने अधीन करने में समर्थ सेनापति ( धरुणम् ) राष्ट्र के धारण करनेवाले आश्रयरूप (बर्हणा रजः) बड़े भारी लोकसमूह या राजागण को (आतासु) समस्त दिशा में ( तिरः अतिष्ठिपः ) अपने अधीन स्थापित करता है। और यही ( इन्द्रः ) शत्रुनाशक राजा (स्वर्मीढे मदे ) सुखवर्षक आनन्द के अवसर में ( हर्ष्या ) प्रजाजनों को हर्षित करनेवाले न्याय, शासन आदि कार्यों को करता हुआ (अपां अर्णवम्) जलके सागर रूप मेघ को सूर्य के समान ( अर्णवम् ) शत्रु के अपार सैन्यबल को भी ( निर्-अहन् ) मार गिराता है। गृहस्थ पक्ष में—इसी प्रकार (अच्युतं बर्हणा धरुणं रजः) सन्तान के वृद्धिजनक, अखण्ड, आश्रयरूप वीर्य को (दिवः) ज्ञानप्रकाश रूप मस्तक ( आतासु ) या ज्ञानोपयोगी इन्द्रियों में (तिरः अतिष्ठिपः) पूर्ण वश करे। स्वामी ( मदे ) हर्ष के सुखप्रद अवसर में ( हर्ष्या ) पत्नी के प्रसन्नकारक कर्मों को करता हुआ जलों को भूमि पर मेघ के समान ( वृत्रम् निर् अहन्) गृहस्थोचित पुत्रोत्पादन आदि नाना सुखरूप जलों का वर्षण करे।

त्वं दिवो धरुणं धिष ओजसा पृथिव्या इन्द्र सदनेषु माहिनः ।
त्वं सुतस्य मदे अरिणा अपो वि वृत्रस्य समया पाष्या रुजः ।६।२१

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! सभाध्यक्ष ! जिस प्रकार सूर्य या मेघ (पृथिव्याः सदने) पृथिवी के नाना प्रदेशों में (ओजसा) अपने बल से ( दिवः धरुणम् ) आकाश से जल प्रदान करता है उसी प्रकार ( माहिनः ) तू महान् शक्तिशाली होकर ( ओजसा ) अपने पराक्रम से ( पृथिव्याः ) पृथिवी के ( सदनेषु ) प्रजाओं के रहने, बसने योग्य गृहों और नगरों में ( दिवः ) उत्तम प्रकाश और ज्ञानवाले विद्वज्जनों से (धरुणं धिषे ) सब प्रजा को धारण करनेवाले ज्ञान तथा न्याय व्यवस्थापन को धारण करता है । और ( त्वं ) तू ( सुतस्य ) अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्याधिकार के ( मदे ) हर्ष और उत्साह में ( अपः ) आप्त प्रजाजनों को ( अरिणाः ) प्राप्त कर । और ( समया ) समयानुसार, बीच बीच में यथावसर ( पाष्या ) शत्रुगणों के पीस डालने या चकनाचूर कर देने के उपाय से ( वृत्रस्य ) बढ़ते हुए शत्रु को विद्युत् या वायु जिस प्रकार मेघ को समय समय पर आघात करता है उसी प्रकार ( वि आरुजः ) विविध उपायों से आघात कर और शत्रु के बल को तोड़ । इत्येकविंशो वर्गः ॥

## [ ५७ ]

सव्य आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, २, ४ जगती । ३ विराट् । ६ निचृज्जगती । ५ भुरिक् त्रिष्टुप् । षडृचं सूक्तम् ॥

प्र मंहिष्ठाय बृहते बृहद्रये सत्यशुष्माय तवसे मतिं भरे ।
अपामिव प्रवणे यस्य दुर्धरं राधो विश्वायु शवसे अपावृतम् ॥१॥

भा०—( प्रवणे अपाम् इव ) नीचे प्रदेश में वेग से आते हुए जलों के वेग को जिस प्रकार रोका नहीं जा सकता, उसी प्रकार (प्रवणे) अपने आगे विनय से रहने वाले भृत्य आदि जनों को प्राप्त होने वाला ( यस्य )

जिस वीर सभा और सेना आदि के अधिपति राजा का ( विश्वायु ) समस्त आयु भर (शवसे) बल की वृद्धि के लिये ( अपावृतम् ) खुला हुआ, बेरोक बहाता हुआ ( राधः ) धनैश्वर्य का प्रवाह भी ( दुर्धरम् ) ऐसा प्रबल हो, जिसको प्रतिपक्षी शत्रु रोक न सके। ऐसे (मंहिष्ठाय) बड़े भारी दानशील, ( बृहते ) गुणों में महान्, ( बृहद्रये ) बड़े भारी वेग वाले, (सत्यशुष्माय) सत्य के बल वाले, अथवा सज्जनों के उपकार के लिये बल का प्रयोग करने वाले, ( तवसे ) बलवान् पुरुष के लिये मैं ( मतिम् ) ज्ञान, स्तुति और अधिकार ( भरे ) प्रदान करूं।

**अधं ते विश्वमनुं हासदिष्टय आपो निम्नेव सवना हविष्मतः।**
**यत्पर्वते न समशीत हर्यत इन्द्रस्य वज्रः श्नथिता हिरण्ययः॥२॥**

भा०—( आपः निम्ना इव ) जिस प्रकार जल प्रवाह नीचे स्थानों पर आप से आप बह आते हैं उसी प्रकार ( हविष्मतः ) उत्तम, ग्रहण करने योग्य अन्नों और ऐश्वर्य से सम्पन्न पुरुष के (सवना) ज्ञान और ऐश्वर्यों के वश में ( इष्टये ) अपनी उत्तम कामनाओं को पूर्ण करने के लिये ( विश्वम् अनु असत् ) समस्त जगत् रहे। ( अध ) और ( इन्द्रस्य ) सूर्य का ( हिरण्ययः वज्रः ) अन्धकार का नाश करने वाला ज्योतिर्मय, प्रकाश रूप वज्र ( न ) जिस प्रकार ( हर्यतः ) अति कान्ति युक्त होकर ( पर्वते सम् अशीत ) मेघ में व्यापता और ( श्नथिता ) उसको छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता, वीर सेनापति का ( हिरण्ययः ) ऐश्वर्यमय और लोह आदि धातु का बना ( वज्रः ) शस्त्रास्त्र बल ( हर्यतः ) अति वेगवान्, दर्शनीय, अद्भुत ( हर्यते ) पर्वत के समान अचल और मेघ के समान अस्त्रवर्षी शत्रु पर भी (सम् अशीत) अच्छी प्रकार व्यापे, उस पर वश करे और ( श्नथिता ) उसका हनन करके उसे शिथिल करने वाला हो।

**अस्मै भीमाय नमसा समध्वर उषो न शुभ्र आ भरा पनीयसे।**

यस्य धाम श्रवसे नामेन्द्रियं ज्योतिरकारि हरितो नायसे ॥ ३ ॥

भा०—जो ( शुभ्रे उषः न ) शोभा युक्त प्रकाश के करने में प्रभात वेला के समान होकर ( शुभ्रे अध्वरे ) शोभायुक्त, सुखजनक, उत्तम हिंसा-रहित प्रजापालन के कार्य में सूर्य के समान, शत्रु और दुष्ट पुरुषों के असत्य व्यवहार छल कपट आदि को दूर करने हारा है, और (यस्य धाम) जिसका तेज और धारण सामर्थ्य, ( नाम ) ख्याति और शत्रुओं को नमाने वाला बल, ( इन्द्रियं ) ऐश्वर्य और राजपद, ( ज्योतिः ) प्रकाश न्याय और विज्ञान भी ( हरितः न ) दिशाओं के समान ( अयसे अकारि ) उत्तम ज्ञान प्राप्त करने के लिये किया जाता है ( अस्मै ) उस ( भीमाय ) बलों के लिये अति भयंकर, (पनीयसे) अति स्तुति योग्य, एवं उत्तम कार्यकुशल पुरुष के लिये ( नमसा ) आदरपूर्वक भरण पोषण कर।

इमे तं इन्द्र ते वयं पुरुष्टुत ये त्वारभ्य चरामसि प्रभूवसो।
नहि त्वदन्यो गिर्वणो गिरः सघत्क्षोणीरिव प्रति नो हर्य तद्वचः॥४॥

भा०—हे ( पुरुस्तुत ) बहुत सी प्रजाओं से स्तुति किये जानेहारे ! हे ( प्रभूवसो ) सबके स्वामिन् और सबको वास और आश्रय देने हारे ! ( ये ) जो हम लोग ( त्वा आरभ्य ) तेरा आश्रय लेकर और प्रथम मंगल-रूप से तेरा नाम लेकर ( चरामसि ) सब कार्य, धर्मानुष्ठान आदि करते हैं। हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ( ते इमे ) वे ये ( वयं ) हम सब ( ते ) तेरे ही हैं। ( क्षोणीः इव ) जिस प्रकार ऐश्वर्यवान्, पराक्रमी स्तुत्य, वीर पुरुष पराक्रम और यथार्थ सामर्थ्य से समस्त भूमियों का ( सघत् ) विजय करता है उसी प्रकार तू ( गिरः ) समस्त वेदवाणियों को ( सघत् ) प्राप्त है। समस्त वेदवाणियां तेरा ही पूर्ण रूप से प्रतिपादन करती हैं। (त्वद् अन्यः नहि सघत् ) तेरे से दूसरा पुरुष कोई भी समस्त वेदवाणियों को यथार्थ रूप से पूर्णतया प्राप्त नहीं करता। ( तद् ) वह तू (नः)हमारे (वचः) स्तुति वचनों को ( प्रति हर्य) स्वीकार कर। अथवा—

हे ( हर्य ) परम कमनीय ! कान्तियुक्त एवं कामना योग्य सुखजनक ! तू ( नः गिरः ) हमारी वाणियां श्रवण कर तथा ( वचः प्रति ) अपने उपदेश प्रदान कर । राजा के पक्ष में—हम प्रजाजन समस्त कार्य राजा का आश्रय और उसकी आज्ञा लेकर करें । उसके होकर रहें । और वह हमारी प्रार्थना सुने । देशभूमियों का विजय भी करे ।

भूरि॑ त इन्द्र वी॒र्यं१॒॑ तव॑ स्मस्य॒स्य स्तो॒तुर्म॑घव॒न्काम॒मा पृ॑ण ।
अनु॑ ते॒ द्यौर्बृ॑ह॒ती वी॒र्यं॑ मम इ॒यं च॑ ते पृथि॒वी ने॑म॒ ओज॑से ॥ ५ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! एवं हे राजन् ! सेनाध्यक्ष ( ते ) तेरा ( वीर्यम् ) वीर्य, बल, सामर्थ्य, शत्रुओं को उखाड़ने का सैन्य-बल भी ( भूरि ) बहुत अधिक है । हम ( तव स्मसि ) तेरे ही अधीन हैं । हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( स्तोतुः ) स्तुति करने वाले, भक्तजन और विद्वान् प्रजाजन के ( कामम् ) अभिलाषा को ( आ पृण ) पूर्ण कर । ( ते वीर्यम् अनु ) तेरे महान् सामर्थ्य के अधीन ही ( बृहती द्यौः ) यह बड़ा भारी आकाश और सूर्यादि लोक समूह (ममे) रहता है । और (इयं पृथिवी च ) यह पृथिवी भी ( ते ओजसे ) तेरे पराक्रम के आगे ( नेमे ) झुकती है । राजा के पक्ष में—राजा का बड़ा भारी बल हो । प्रजाजन उसके अधीन रहे । वह विद्वानों और प्रार्थी प्रजा की अभिलाषा पूर्ण करे । (द्यौः) राजसभा और पृथिवीवासिनी प्रजा दोनों उसके अधीन रहें और उसका आदर करें ।

त्वं तमि॑न्द्र पर्व॑तं म॒हामु॒रुं वज्रे॑ण वज्रिन्पर्व॒शश्च॑कर्तिथ ।
अवा॑सृजो॒ निवृ॑ताः॒ सर्त॒वा अ॒पः स॒त्रा विश्वं॑ दधिषे॒ केव॑लं॒ सहः॑ ६

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे शत्रुहन्तः राजन् ! सेनाध्यक्ष ! हे ( वज्रिन् ) बल, सैन्य और शस्त्रास्त्र के स्वामिन् ! ( वज्रेण ) विद्युत द्वारा जिस प्रकार प्रबल वायु ( महान् ) बड़े भारी ( उरुम् ) अति विस्तृत ( पर्वतम् ) कन्धों वाले, पर्वताकार मेघ को ( पर्वशः ) टुकड़े टुकड़े काट

डालता है, उसी प्रकार ( त्वं ) तू भी ( तम् ) उस ( पर्वतम् ) पर्वत के समान ऊंचे शिखरवाले, अभेद्य, स्थिर अथवा उच्च, प्रबल स्कन्धावारों से युक्त ( महान् ) बड़े ( उरुम् ) विस्तृत, बहुत दूर तक फैले हुए शत्रु को भी ( पर्वशः ) उसकी टुकड़ी टुकड़ी करके ( चकर्त्तिथ ) काट गिरा। जिस प्रकार वायु अपने प्रबल आघात से ( निवृताः ) भीतर छिपे ( अपः ) मेघस्थ जलों को ( सर्त्तवे ) बहने के लिए ( अव सृजत् ) नीचे गिरा देता है उसी प्रकार तू भी ( निवृताः ) भय के कारण छुपी हुई या प्रबलता से निवारण करदी गई ( अपः ) जल-धाराओं के समान अस्थिर शत्रु सेनाओं को ( सर्त्तवै ) भाग जाने के लिए ही ( अवः असृजः ) नीचे दबा, पीड़ित कर। और उसी के निमित्त ( सत्रा ) सचमुच तू (विश्वं) समस्त ( सहः ) शत्रु के पराजयकारी बल को ( केवलम् ) केवल, अद्वितीय होकर ( दधिषे ) धारण कर। इति द्वाविंशो वर्गः।

इति दशमोऽनुवाकः॥

[ ५८ ]

नोधा गौतम ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ५ जगती। २ विराड् जगती। ४ निचृज्जगती। ३ त्रिष्टुप्। ६, ७, ९ निचृत् त्रिष्टुप्। ८ विराड् त्रिष्टुप्। नवर्चं सूक्तम्॥

**नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद्दूतो अभवद्विवस्वतः।**
**वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति १**

भा०—(अमृतः) कभी न मरने वाला जीव, (सहोजाः) जीवन के बाधक कारणों को पराजित करनेवाले, सहनशील बल को उत्पन्न करता है। वह ही ( होता ) कर्मों के फलों का भोक्ता और गृहीता होकर भी ( दूतः ) दूत के समान सूक्ष्म प्राण के अवयवों से बने लिंग शरीर तथा कर्मवासनाओं को

जन्मान्तर में भी साथ ले जानेहारा है। वह ( देवताता ) दिव्य पदार्थ सूक्ष्म पञ्चतन्मात्रा और उनसे बने इन्द्रियगणों के बीच स्वतः बल देनेवाला होकर ( हविषा ) अन्न द्वारा या प्राप्त कर्म फलों द्वारा ( नि तुन्दते) व्यथित होता है।(साधिष्ठेभिः पथिभिः) एक ही आश्रय, आकाश में विद्यमान मार्गों सहित ( रजः ) लोकों को बनाने वाले, ( विवस्वतः ) विविध वसु अर्थात् जीवों के आश्रय, लोकों के स्वामी परमेश्वर के अधीन (अभवत्) रहता और (वि आ ममे ) विविध कार्यों को करता और ( आ विवासति ) सब प्रकार से ईश्वर की उपासना करता और नाना ऐश्वर्यों का सेवन करता है। अग्रणी राजा के पक्ष में—वह ( सहोजा ) बल से प्रसिद्ध, कभी न मारे जानेवाला, समस्त अधिकारों और ऐश्वर्यों का देने और लेने वाला, ( विवस्वतः ) विविध ऐश्वर्यों से युक्त राष्ट्र का ( दूतः ) सेवक, प्रतिनिधि, दूत (अभवत्) होता और ( यत् नितुन्दते ) शत्रुओं को पीड़ित करता है। अथवा—(विवस्वतः दूतः ) नाना तेजों से युक्त सूर्य का प्रतिनिधि अर्थात् ( दूतः होता च अभवत् ) सूर्य जिस प्रकार तापकारी और पुनः वर्षा जल का देने वाला है उसी प्रकार प्रजा को कर से पीड़ित कर ऐश्वर्य के लेने और पुनः उन पर सुखों के वर्षाने वाला ( अभवत् ) हो। वह ( साधिष्ठेभिः पथिभिः ) अति उत्तम मार्गों से ( रजः ) समस्त लोकों या देशों को ( वि ममे ) विविध परिमाण में प्रान्तों में विभक्त करे और ( देवताता ) विद्वानों के बीच में ( हविषा ) अपनी आज्ञा से या अन्न द्वारा (आ विवासति) समस्त जनों की सेवा करता हुआ उनका पालन करे। परमेश्वर भी सर्वशक्तिमान् प्रसिद्ध होने से 'सहोजाः', अमर होने से 'अमृत', दुष्टों का तापकारी होने से दूत होकर सूर्य के समान तेजस्वी है। वह ( नि तुन्दते ) दुष्टों को पीड़ित करता है। उत्तम मार्गों और व्यवस्थाओं से लोकों को बनाता और चलाता है। वह समस्त दिव्य पदार्थों में ( हविषा ) अपने आदान अर्थात् वशकारी सामर्थ्य से ( आ विवासति ) सब प्रकार आच्छादित करता, व्यापता है।

आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति ।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत् २

भा०—( स्वम् अद्म ) अपने भोग्य कर्मफल को भोग्य अन्न के समान ( आ युवमानः ) प्राप्त करता हुआ ( अजरः ) जरा से रहित आत्मा ( तृषु ) शीघ्र ही ( अतसेषु ) काष्ठों के बीच अग्नि जिस प्रकार उनका भोग करता हुआ भी उनके ही आश्रय में रहता है, उसी प्रकार ( अतसेषु) व्यापक, आकाश, पृथ्वी आदि तत्वों के आश्रय पर ही और ( तृषु ) शीघ्र ही पिपासित के समान उनही पदार्थों का ( अविष्यन् ) भोग करता हुआ उनके ही बीच में ( तिष्ठति ) रहता है । और ( अत्यः न ) जिस प्रकार वेगवान् अश्व मार्ग को पार करता ( रोचते ) अच्छा मालूम होता है और जिस प्रकार ( प्रुषितस्य ) अति अधिक दाहकारी अग्नि का ( पृष्ठ ) ऊपर का भाग ( रोचते ) अति उज्वल होता है उसी प्रकार ( प्रुषितस्य ) अति तेजस्वी, सब पापों को भस्म कर देने हारे इस जीवात्मा का ( पृष्ठम् ) आनन्द सेचन करने वाला स्वरूप भी ( रोचते ) बहुत ही प्रिय प्रतीत होता है। (दिवः सानुम् न) आकाश में स्थित मेघ के खण्ड के समान वह (दिवः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर को भजन करने वाला जीव भी ( स्तनयन् ) गर्जते मेघ के समान ही ( अचिक्रदत् ) अन्तार्नाद करता है ।

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता नि षत्तो रयिषाळमर्त्यः ।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति ॥ ३ ॥

भा०— ( वसुभिः रुद्रेभिः पुरोहितः होता ) जिस प्रकार वसु और रुद्र नामक ब्रह्मचारी विद्वान् पुरुषों द्वारा वरा जाकर, पुरोहित हो, उसी प्रकार (रुद्रेभिः) प्राणों द्वारा और (वसुभिः) देह में और ब्रह्माण्ड में वास के आश्रय पृथिवी आदि तत्वों द्वारा (पुरः हितः) सब से प्रथम अपने भीतर धारण किया जाकर, (होता) समस्त ग्राह्य, भोग्य, रूप आदि विषयों का ग्रहण करने हारा है। और ( अमर्त्यः ) कभी मृत्यु द्वारा भी विनाश न होकर, (नि षत्तः) स्थिर

रह कर (रयिषाड्) बल और वीर्य, रयि अर्थात् दैहिक विभूतियों को अपने वश करता है। वही जीव ( रथः ) एक देह से दूसरे देह में जाने वाला और ( रथः ) अपने को प्रिय लगने वाला, ( रथः ) रस स्वरूप या स्वतः आनन्द प्रद ( विक्षु रथः न ) प्रजाओं में रथी के समान ( ऋञ्जसानः ) सब कार्यों को सहज ही में साधता हुआ (आयुषु) बाल्य, यौवन, वार्धक्य आदि आयु की नाना दशाओं में (आनुषक्) अनुकूल या निरन्तर, एक समान परिवर्तन रहित रह कर ( देवः ) सुखप्रद, स्वयं द्रष्टा होकर ( वार्या ) नाना वरण करने योग्य ऐश्वर्यों को स्वयं ( वि ऋण्वति ) विविध उपायों से प्राप्त करता और भोगता है।

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः ।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर ॥ ४ ॥

भा०—( वातजूतः ) वायु के वेग से तीव्र होकर अग्नि जिस प्रकार (अतसेषु) तृणों और काष्ठों में (वि तिष्ठते) विविध रूप से फैलता है उसी प्रकार यह आत्मा भी ( वातजूतः ) प्राणों द्वारा वेगवान्, गतिमान् ( अतसेषु ) पृथिवी, वायु, जल आदि तत्वों में भी ( वि तिष्ठते ) विविध देहों को धार कर विविध रूपों में स्थित है। और जिस प्रकार ( जुहूभिः ) ज्वालाओं द्वारा और ( सृण्या ) अपने वेग से गमन करने की शक्ति से (तुवि-स्वनिः ) अग्नि चटचटा आदि बहुत प्रकार के शब्द करता है। अथवा अग्नि जिस प्रकार (जुहूभिः) अपने भीतर अग्नि तत्वों को रखने वाले मैनसिल, पोटास आदि पदार्थों और ( सृण्या ) फूट कर वेग से निकलने वाली बारूद आदि की शक्ति से ( तुवि-स्वनिः ) बड़ा भारी धड़ाके का शब्द करता है उसी प्रकार वह ( जुहूभिः ) अपने भीतर आत्मा को धारण करने वाले प्राणों और ( सृण्या ) स्वयं सरण करने वाली वाणी द्वारा ( वृथा ) अनायास ही ( तुवि-स्वनिः ) बहुत से स्वन, अर्थात् वर्ण ध्वनियों को उत्पन्न करता है। आत्मा प्राणों और स्वयं देह से देहान्तर में जाने वाली क्रिया या

( सृण्या ) भरण पोषण करने वाली अन्न प्राप्ति से ( तुविस्-वनिः ) बहुतसे सुखों को भोगने में समर्थ होता है । हे ( अग्ने ) प्रकाशस्वरूप जीवात्मन् ! हे ( अजर ) जन्म मरण रहित ! हे (रुशदूर्मे) दीप्ति वाली ज्वाला से युक्त! ( यत् ) जिस प्रकार ( वनिनः) वन में स्थित वृक्षों के प्रति तू ( वृषायसे ) महा वृषभ के समान उनको चरता या खा लेना चाहता है उसी प्रकार तू आत्मा भी ( वनिनः ) नाना सुखप्रद पदार्थों की ( वृषायसे ) अत्यन्त अधिक कामना करता है । (एम कृष्णं ) जिस प्रकार अग्नि का मार्ग कृष्ण है अर्थात् जिस पर अग्नि चली जाय वह काला कोयला हो जाता है उसी प्रकार हे जीवात्मन् ! ( ते एम ) तेरा प्राप्त करने योग्य परमपद भी ( कृष्णम् ) अत्यन्त आकर्षण करने वाला, हृदयग्राही है ।

**तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे न साह्वाँ अव वाति वंसगः । अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः ॥५॥२३**

भा०—( १ ) जीवके पक्ष में—( तपुर्जम्भः ) ज्वाला रूप मुख वाला अग्नि जिस प्रकार (वातचोदितः) वायु से प्रेरित होकर, प्रचण्ड होकर ( वने आ वाति ) जंगल में फैल जाता है उसी प्रकार यह जीव भी ( वातचोदितः) वायु रूप प्राणों से प्रेरित होकर (तपुर्जम्भः) संताप देने वाले जाठर अग्नि को अपना मुख या साधन बना कर ( वने ) भोग्य विषय में, या संसार में ( आवाति ) गति करता है । उत्तम जीव ( वातचोदितः ) ज्ञानवान् पुरुष से प्रेरित होकर ( तपुर्जम्भः ) तपस्या द्वारा बाधक कारणों को नाश करता हुआ ( वने ) वन में, अरण्य में सेवनयोग्य परम ब्रह्म या आत्मा के अपने स्वरूप में (आ वाति) प्रवेश करता है । वह जीव ( वंसगः यूथे न ) वृषभ जिस प्रकार गो-समूह में ( साह्वान् ) प्रबल प्रतिस्पर्द्धा वाले बृषभ को पराजित करने में समर्थ होकर (अव वाति) गौओं के पीछे २ जाता है उसी प्रकार ( वंसगः ) नाना भोग योग्य पदार्थों के पीछे जाने हारा, तृष्णा युक्त जीव ( यूथे ) इन्द्रिय गण में ( साह्वान् ) प्रतिस्पर्द्धी काम, क्रोध आदि

आभ्यन्तर शत्रुओं को पराजित करने में समर्थ होकर भी ( अव वाति ) प्रायः इन्द्रियों के अधीन होकर नीचे गिर जाता है। और जिस प्रकार (अभिव्रजन् ) शत्रु पर आक्रमण करने वाला वीर पुरुष ( पाजसा ) अपने बल वीर्य से ( अक्षितं ) अक्षय ( रजः ) ऐश्वर्य को ( आवाति ) प्राप्त करता है उसी प्रकार यह जीव भी ( अभिव्रजन् ) उन संसार के बंधनों को परित्याग करके परिव्राजक होकर साक्षात् परमेश्वर को लक्ष्य कर उसी की तरफ़ चलता हुआ ( पाजसा ) अपने ज्ञान सामर्थ्य से ( अक्षितम् ) अक्षय ( रजः ) ऐश्वर्य, अक्षय लोक, मोक्ष या परमेश्वर को ( आवाति ) प्राप्त होता है। जिस प्रकार व्यापनशील अग्नि से स्थावर जंगम सभी भय करते हैं उसी प्रकार ( पतत्रिणः ) देहान्तर में जाने वाले उस जीवात्मा से मृत्यु के अवसर में ( स्थातुः ) स्थावर और (चरथम्) जंगम सभी प्राणी (भयते ) भय करते हैं। अथवा—( पाजसा चरथम् अक्षितं रजः धरति ) बल से और ज्ञान से भोग योग्य अन्नादि, कर्म फल, सुखजनक अक्षय लोक प्राप्त करता है और ( स्थातुः पतत्रिणः इव भयते ) वृक्ष के ऊपर बैठे पक्षियों के समान भय करता है। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

( २ ) वीर राजा के पक्ष में—( वने आवात चोदितः ) वन में वायु से प्रचण्ड हुए अग्नि के समान सेनापति ( तपुर्जम्भः ) संतापकारी शस्त्रों से युक्त होकर ( आवाति ) आगे बढ़े। ( यूथे वंसगः नः ) गोयूथ में बड़े वृषभ के समान ( साह्वान् अव वाति ) शत्रु को पराजय करने समर्थ होकर टूट पड़े। ( पाजसा अभिव्रजन् ) प्राप्त करता हुआ बल वीर्य से ( अक्षितं रजः ) अक्षय लोक को या ऐश्वर्य को प्राप्त करे। ( पतत्रिणः ) वेग से आक्रमण करने वाले उससे ( स्थातुः ) युद्ध में स्थिर पुरुष और ( चरथम् भयते ) बढ़ने वाला सैन्य भी भय करता है।

द॒धुष्ट्वा॒ भृग॑वो॒ मानु॑षे॒ष्वा र॒यिं न चारुं॑ सु॒हवं॒ जने॑भ्यः।
होता॑रमग्ने॒ अति॑थिं॒ वरे॑ण्यं मि॒त्रं न शेवं॑ दि॒व्याय॒ जन्म॑ने ॥ ६ ॥

भा०—( १ ) जीवपक्ष में-हे ( अग्ने ) काष्ठों में अग्नि के समान देहों में अव्यक्त रूपसे रहने हारे ! जीवात्मन् ( मानुषेषु ) मननशील ज्ञानी पुरुषों में से भी (भृगवः) परिपक्व विज्ञान वाले, तपस्वी, आत्माभ्यासी जन ( जनेभ्यः ) अपने से अधिक ज्ञान वाले गुरुजनों से शिक्षा प्राप्त कर के ( चारुम् ) उत्तम, ( सुहवं ) सुखप्रद, ( रयिम् न ) ऐश्वर्य के ख़ज़ाने के समान ( चारुम् ) विषयों के भोक्ता, ( सुहवम् ) उत्तम सुख के देने हारा और सुखपूर्वक ज्ञान और स्तुति करने योग्य, ( रयिम् ) वीर्य स्वरूप जान कर (त्वा दधुः) तुझे धारण करते हैं। और ( होतारम् ) सब को सुख और विविध ऐश्वर्य के देने वाले, ( अतिथिम् ) अतिथि के समान देह रूप गृह में अकस्मात् आने और चले जाने वाले, अथवा देह से देहान्तर में जाने वाला वा अतिथि के समान पूजा और आदर के योग्य, (वरेण्यम्) सबसे अधिक वरण करने योग्य, अत्यन्त प्रिय और (मित्रं न शेवम्) मित्र के समान सुखकारी, तुझको ( दिव्याय ) दिव्य, तेजोमय, सात्विक जन्म लेने के लिये, अथवा (दिव्याय = दिवि भवाय) ज्ञान प्रकाश से युक्त जन्म ग्रहण करने के लिये ( त्वा दधुः ) धारण करते हैं। वीर सेनापति के पक्ष में—( जनेभ्यः ) जनपदों के हितार्थ, ( भृगवः ) शत्रुओं को भून देने वाले प्रतापी वीर जन भी उत्तम सुखदाता, स्तुति योग्य तुझको ( रयिं न ) खज़ाने के समान रक्षा करते हैं। वेतन, अन्न, पदाधिकार के दाता, (अतिथिम्) पूज्य सर्व श्रेष्ठ मित्र के समान तेरे दिव्य रूप से प्रादुर्भाव राज्यारोहणादि के लिये तुझे स्थापित करते हैं।

होतारं सप्त जुह्वो३यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम् ॥७॥

भा०—( अध्वरेषु ) यज्ञों में जिस प्रकार ( सप्त ) सात ( वाघतः ) ऋत्विक्, (जुह्वः) आहुति देने हारे, (अग्निं) ज्ञानवान् ( यजिष्ठं ) यज्ञ को सबसे उत्तम रीति से करने वाले पुरुष को (होतारं) होता रूप से वरण करते

हैं। उसी प्रकार ( अध्वरेषु ) हिंसा रहित प्राणों द्वारा शरीर के पालन आदि कार्यों में ( जुह्वः ) गन्धादि विषयों को ग्रहण करने वाले ( सप्त ) सातों प्राण ( वाघतः ) विद्वान् ऋत्विजों के समान गतिमान होकर ( यं ) जिस ( यजिष्ठम् ) सबसे उत्तम, बल देने वाले आत्मा को ही अपने (होतारम् ) होता, मुख्य बलों, सुखों के दाता रूप से ( वृणते ) वरण करते हैं उसको प्रमुख कर उसके अधीन रहते हैं। मैं उसी ( अग्निम् ) अग्नि के समान देह में अव्यक्त रूप से रहने वाले ( विश्वेषां ) समस्त ( वसूनां ) प्राणियों के बीच में ( अरतिं ) विद्यमान, उस जीवात्मा को ( अग्निं ) प्रकाशस्वरूप जान कर ( सपर्यामि ) उसका नित्य अभ्यास करूँ। और उसी ( रत्नम् ) परम रमणीय, परम सुन्दर, मनोमोहक एवं अति सुखप्रद आत्मा को (यामि) प्राप्त होऊँ। और रमण योग्य सुख की प्रार्थना करूँ।

**अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ।**
**अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात्पूर्भिरायसीभिः॥ ८॥**

भा०—हे ( सहसः सूनो ) बल के उत्पन्न करने हारे या विद्यादि से उत्पन्न होने वाले। हे ( मित्रमहः ) सूर्य के समान तेजस्विन्! और हे स्नेहवान् पुरुषों के आदर करने हारे! ( अद्य ) आज के समान सदा, ( स्तोतृभ्यः ) सत्य गुणों के वर्णन करने वाले विद्वानों को तू ( अच्छिद्रा ) त्रुटि रहित, कभी विच्छिन्न न होने वाले ( शर्म ) सुखों को ( यच्छ ) प्रदान कर। हे (अग्ने) अग्नि के समान विद्या के प्रकाश से सब पदार्थों को प्रकाशित करने हारे विद्वन्! आत्मन्! तू ( नपात् ) कभी भी शिष्ट मर्यादा से न गिरता हुआ, स्वयं दृढ़ रहकर (गृणन्तम्) स्तुति करने वाले की (आयसीभिः पूर्भिः ) राजा प्रजाजन की जिस प्रकार लोह की बनी या शास्त्रों से सजी प्रकोटों से रक्षा करता है उसी प्रकार तू ज्ञान साधनों से बनी ( पूर्भिः ) पालन करने वाली साधनाओं से ( अंहसः ) पाप और पाप से उत्पन्न हुए दुःख से ( उरुष्य ) रक्षा कर। राजा भी बल पराक्रम के कारण

अभिषेक योग्य होने से 'सहसः सूनु' है। मित्र राजाओं के आदर करने और सूर्य के समान तेजस्वी होने से 'मित्रमहः' है। वह स्तुतिकर्त्ता विद्वानों को त्रुटि रहित सुख दे। पराक्रम से कभी पछाड़ न खाने वाला होने से 'ऊर्जः नपात्' है। ( आयसीभिः पूर्भिः ) वह लोह के शस्त्रों से सुसज्जित पुरियों या पालनकारी सेनाओं से रक्षा के प्रार्थी प्रजाजन की रक्षा करे।

**भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन्मघवद्भ्यः शर्म।**
**उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥ ६ ॥२४॥**

भा०—हे ( विभावः ) विशेष प्रभायुक्त, तेजस्विन् ! हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! विद्वन् ! आत्मन् ! ( गृणते ) स्तुति करने हारे पुरुष के लिये ( वरूथं भव ) सब शत्रुओं के वारण करने वाले सैन्य के समान सब विघ्नों के दूर करने वाला और गृह के समान शरणप्रद ( भव ) हो। तू ( मघवद्भ्यः ) ऐश्वर्यवान्, विद्वानों और धनाढ्यों को भी ( शर्म ) सुख शान्तिदायक (भव) हो। तू ( अंहसः ) पाप और हत्या आदि पापाचरण करने हारे, दुष्ट पुरुष से भी हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्! प्रतापिन्! आचार्य ईश्वर! राजन्! ( गृणन्तम् ) स्तुति शील पुरुष की ( उरुष्य ) रक्षा कर। और ( प्रातः ) प्रातः काल ही ( धियावसुः ) ज्ञान और कर्म से हृदय में बसाने योग्य प्रभो! और ज्ञान और उत्तम कर्म न्यायाचरण से ऐश्वर्य प्राप्त करने हारे राजन्! बुद्धि और ज्ञान के धनी विद्वान्! और ( धिया ) बुद्धि या मनो बल से प्राणों के स्वामिन्! या ( धिया ) धारण करने वाली चिति रूप से देह में बसने हारे आत्मन्! तू शीघ्र ही ( जगम्यात् ) हमें प्राप्त हो दर्शन दे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[ ५९ ]

॥ ५९ ॥ १—७ नोधा गौतम ऋषिः ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता ॥ छन्दः— १ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ४ विराट् त्रिष्टुप्। ५—७ त्रिष्टुप्। ३ पांक्तिः।

व॒या इद॑ग्ने अ॒ग्नय॑स्ते अ॒न्ये त्वे विश्वे॑ अ॒मृता॑ मादयन्ते ।
वैश्वा॑नर॒ नाभि॑रसि क्षिती॒नां स्थूणे॑व॒ जनाँ॑ उप॒मिद्य॑यन्थ ॥ १ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) सबको प्रकाशित करने हारे, सबके धारक परमेश्वर अन्ये अग्नयः ) तेरे से अतिरिक्त सब अग्नियें, सूर्य, नक्षत्र, अग्नि, विद्युत् आदि तथा ज्ञानी, आचार्य विद्वान् जन भी ( ते ) तेरे ( वयाः ) शाखाओं के समान हैं। ( विश्वे ) सब ( अमृताः ) अविनाशी आकाश आदि पदार्थ और ( अमृताः ) कभी मृत्यु को न प्राप्त होने वाले जीवगण ( त्वे ) तेरे आश्रय पर स्थित होकर (मादयन्ते) आनन्द अनुभव करते हैं। हे (वैश्वानर) हे समस्त पदार्थों के संचालन करने हारे, सब जनों के हितकारी, सब में व्यापक ! तू ( क्षितीनां ) समस्त मनुष्यों और पृथिवी आदि तत्वों का भी ( नाभिः ) आश्रय, सब का केन्द्र, सबको अपने भीतर नियम व्यवस्था में बांधने हारा ( असि ) है ( स्थूणा इव ) बीच का स्तम्भ जिस प्रकार समस्त गृह के अवयवों को थामे रहता है उसी प्रकार तू ( उपमित् ) सबका आश्रय, सर्वज्ञ, सबको ज्ञानोपदेश करने वाला या सबका सञ्चालक होकर ( जनान् ) सब जनों और जन्तुओं को ( ययन्थ ) नियम में रखता है। इसी प्रकार हे राजन् ! अन्य सब नायक तेरे अधीन, तेरे ही शाखा प्रशाखा के समान हैं। सब जीव तेरे आधार पर प्रसन्न हों तू सब भूमि वासियों का केन्द्र है। तू मुख्य आधार स्तम्भ के समान सबको ऊपर उठाये रखने वाला, सबको नियम में रख।

मू॒र्धा दि॒वो नाभि॑र॒ग्निः पृ॑थि॒व्या अथा॑भवदर॒ती रोद॑स्योः ।
तं त्वा॑ दे॒वासो॑ऽजनयन्त दे॒वं वैश्वा॑नर॒ ज्योति॒रिदार्या॑य ॥ २ ॥

भा०—वह ( अग्निः ) सबका अग्रणी, सबका प्रकाशक परमेश्वर ( दिवः ) आकाश, और सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों का भी सूर्य के समान ( मूर्धा ) शिर, सबसे मुख्य, सबसे उच्च सबका अधिष्ठाता है। वही ( पृथिव्याः नाभिः ) पृथिवी के भी बीच में केन्द्रवत् अग्नि या विद्युत् के

समान उसको धारण करने वाला (अथ) और ( रोदस्योः ) भूमि और सूर्य, प्रकाशित और अप्रकाशित दोनों प्रकार के लोकों का ( अरतिः ) स्वामी, उनको धारण करने हारा (अभवत्) है। हे (वैश्वानर) समस्त लोकों के चलाने हारे ! (तं) उस ( त्वा ) तुझ ( देवं ) सबके दाता और प्रकाशक परमेश्वर को ही ( देवासः ) विद्वान् ज्ञानी पुरुष ( आर्याय ) उत्तम गुण स्वभाव वाले पुरुषों के लिये ( ज्योतिः इत् ) सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश देने वाला ( अजनयन्त ) प्रकट करते हैं।

**आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि।**
**या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा ॥ ३ ॥**

भा०—(सूर्ये न) सूर्य में जिस प्रकार ( रश्मयः ) किरणें (ध्रुवासः) स्थिर रूप से हैं उसी प्रकार ( वैश्वानरे ) समस्त विश्व के पदार्थों के सञ्चालक एवं समस्त नायकों और मनुष्यों के स्वामी ( अग्नौ ) सर्व प्रकाशक, सबके आगे विद्यमान, सर्वज्ञ परमेश्वर में ( अग्ना ) विद्युत् में समस्त ऐश्वर्यों के समान (वसूनि) समस्त जीवों के जीवनोपयोगी पृथिवी, जल आदि तत्व और अपने में प्रजाओं के बसाने वाले लोक गण और समस्त ऐश्वर्य (आदधिरे) स्थित हैं। ( या ) जितने ऐश्वर्य ( पर्वतेषु ) पर्वतों में, मेघों में और ( ओषधीषु ) ओषधियों में और ( अप्सु ) जलों में और ( या ) जितने ऐश्वर्य ( मानुषेषु ) मनुष्यों में विद्यमान हैं, हे परमेश्वर ! तू ( तस्य ) उस सबका ( राजा असि ) प्रकाशक, राजा, या स्वामी है। राजा के पक्ष में—सूर्य में किरणों के नायक राजा में सब ऐश्वर्य स्थापित हों। पर्वत, ओषधि, जल, समुद्र, मनुष्य सब में स्थित रत्नों और धनों का वह राजा ही रक्षक है।

**बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो न दक्षः।**
**स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः ॥ ४ ॥**

भा०—( रोदसी ) माता और पिता दोनों जिस प्रकार ( सूनवे )

अपने पुत्र के लिए ( बृहती ) बड़े उपकारक और उसकी वृद्धि करने वाले होते हैं इसी प्रकार ( रोदसी ) सूर्य और पृथिवी या आकाश और पृथिवी दोनों ही ( सूनवे ) अपने उत्पादक परमेश्वर के लिए (बृहती) बड़ी विशाल होकर विद्यमान हैं । वे दोनों ही उस परमेश्वर की विशाल महिमा को बतलाते हैं । ( मनुष्य नः ) जिस प्रकार साधारण मनुष्य ( नृतमाय ) पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ परमेश्वर के लिए ( यह्वीः ) बड़ी स्तुतियां गाता है उसी प्रकार ( होता ) ज्ञानी विद्वान् ( दक्षः ) चतुर, क्रियाकुशल पुरुष भी ( स्वर्वते ) अनन्त सुख और आकाश और प्रकाश के स्वामी (सत्यशुष्माय) सत्य के बल से बलवान्, अथवा समस्त सत् पदार्थों में बलरूप से विद्यमान, ( वैश्वानराय ) समस्त पदार्थों के संचालक, सबके हितकारी, ( नृतमाय ) नायक, गुरु, आचार्य, राजा आदि में सबसे श्रेष्ठ, पुरुषोत्तम के वर्णन और उपासना के लिए ( पूर्वीः ) पूर्ण रूप से उसका वर्णन करनेवाली (यह्वीः ) बड़ी भारी, विशद अर्थों से युक्त ( गिरः ) वेदवाणियों का पाठ करे । उन वेद-वाणियों से परमेश्वर की स्तुति करे ।

दि॒वश्चि॑त्ते बृह॒तो जा॑तवेदो॒ वैश्वा॑नर॒ प्र रि॑रिचे महि॒त्वम् ।
राजा॑ कृष्टी॒नाम॑सि॒ मानु॑षीणां यु॒धा दे॒वेभ्यो॒ वरि॑वश्चकर्थ ॥ ५ ॥

भा०—हे ( वैश्वानर ) समस्त लोकों के नेता ! समस्त मनुष्यों में व्यापक ! हे (जातवेदः) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामिन् ! वेदों को उत्पन्न करने, जानने और जनानेहारे ! समस्त उत्पन्न पदार्थों में सत्ता और नियामक बल रूप से विद्यमान ( ते ) तेरा ( महित्वम् ) महान् सामर्थ्य (बृहतः चित् ) बड़े भारी ( दिवः ) सूर्यादि लोकों से मण्डित आकाश से भी (प्र रिरिचे) बहुत अधिक बड़ा है । हे परमेश्वर ! तू ( मानुषीणाम् ) मननशील ( कृष्टी-नाम् ) प्रजाओं का भी ( राजा असि ) राजा, स्वामी, उनमें ज्ञान प्रकाश का करनेहारा है । और तू ही ( देवेभ्यः ) विद्वानों और विजय की कामना करनेवाले वीरों को (युधा) युद्ध या परस्पर प्रबल प्रहार करने के सामर्थ्य

द्वारा (वरिवः) उत्तम २ धनैश्वर्य (चकर्थ) प्रदान करता है। सभापति और सेनापति के पक्ष में—हे ( जातवेदः ) विद्वन् ! ( वैश्वानर ) सर्व हितकारी नेतः ! तेरा महान् सामर्थ्य ( दिवः चित् ) ज्ञानवान् विद्वानों से बनी राजसभा से भी बड़ा है। तू समस्त मनुष्यों और प्रजाओं का राजा है, तू युद्ध द्वारा ही (देवेभ्यः) दानशील पुरुषों या विद्वानों को धन प्रदान करता है। अथवा ( देवेभ्यः ) विजयेच्छु वीर पुरुषों को (युधा) युद्ध करने के हेतु ही धन देता। उनको भृति वेतन आदि देता है।

प्र नू म॑हि॒त्वं वृ॑ष॒भस्य॑ वोचं॒ यं पू॒रवो॑ वृत्र॒हणं॒ सच॑न्ते।
वै॒श्वा॒न॒रो दस्यु॑म॒ग्निर्ज॑घ॒न्वाँ अधू॑नो॒त्काष्ठा॒ अव॒ शम्ब॑रं भेत् ॥ ६ ॥

भा०—परमेश्वर के पक्ष में—( यं ) जिस ( वृत्रहणम् ) विघ्नकारी, बाधक शत्रु के नाश करनेहारे परमेश्वर का ( पूरवः ) समस्त मनुष्य ( सचन्ते ) आश्रय लेते हैं। उस ( वृषभस्य ) जलों के वर्षक, मेघ के समान सब सुखों के वर्षक और शकटवाही वृषभ के समान समस्त ब्रह्मांड के धारक परमेश्वर के ( महित्वम् ) बड़े भारी सामर्थ्य का ( नु ) निरन्तर (प्र वोचम्) मैं उपदेश करता हूं। (वैश्वानरः) समस्त विश्व का प्रणेता, सब मनुष्यों का हितकारी, (अग्निः) ज्ञानस्वरूप, सबका प्रकाशक प्रभु (दस्युं) प्रजापीड़कों का ( जघन्वान् ) नाश करे। (शम्बरम्) जलों के प्रदान करने वाले मेघ को ( अव भेत् ) बिजुली के समान अज्ञान को नाश करता और ( काष्ठाः अधूनोत् ) समस्त दिशाओं को कम्पा देता है। अथवा—(काष्ठाः) तेजस्वी, प्रकाशमान् सूर्यादि लोकों और समस्त प्राणियों को ( अधूनोत् ) संचालित करता है। ( २ ) अध्यात्म में—( पूरवः ) इन्द्रियगण ( वैश्वानरः अग्निः ) समस्त प्राणियों में रहनेवाला आत्मा ( शम्बरम् ) अन्तःकरण के ढकने वाले अज्ञान को। ( काष्ठाः ) प्राणों को। ( ३ ) राजा के पक्ष में—( यं पूरवः वृत्रहणम् ज्ञात्वा सचन्ते ) जिस पुरुष के नायक को शत्रुहन्ता जानकर मनुष्य प्रजाएं आश्रय कर लेती हैं। उस नरश्रेष्ठ के

गुणों का मैं उपदेश करता हूं। वह सर्व लोक-हितकारी ( अग्निः ) अग्रणी होकर ( दस्युं जघन्वान् ) प्रजा के नाश करने वाले दुष्ट पुरुषों को दण्डित करे। ( शम्बरम् अव भेत् ) प्रजा को घेरनेवाले शत्रु को छिन्न-भिन्न करे। ( काष्ठा अधूनोत् ) दिशाओं के वासियों को भी प्रभाव से कम्पाता रहे।

**वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा।**
**शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरूणीथे जरते सूनृतावान् ॥७॥२५॥**

भा०—( १ ) परमेश्वर या राजा अपने ( महिम्ना ) महान् सामर्थ्य से ( वैश्वानरः ) सब मनुष्यों का हितकारी, सब का नेता, संचालक और ( विश्वकृष्टिः ) समस्त मनुष्यादि प्रजाओं का स्वामी ( भरद्वाजेषु ) भरण-पोषण करने वाले और ज्ञानोपदेश करनेवाले, सम्पन्न और विद्वान् पुरुषों में भी ( यजतः ) सबका उपास्य, सबको दान देने वाला और ( विभावा ) विशेष कान्ति, दीप्ति से युक्त, तेजस्वी है। वह (शतिनीभिः) सैकड़ों उत्तम कार्योंवाली शक्तियों सहित ( अग्निः ) ज्ञानवान् अग्रणी ( सूनृतावान् ) शुभ सत्यवाणी, तथा ज्ञान और अन्न सम्पदा से सम्पन्न होकर ( पुरुनीथे ) बहुतसे सहायकों से चलाये जाने योग्य ( शातवनेये ) सैकड़ों ऐश्वर्यों के स्वामियों से पूर्ण राष्ट्र और जगत् में ( जरते ) वही स्तुति किया जाता है। राजा के पक्ष में—समस्त प्रजाओं का स्वामी ( पुरुनीथे ) बहुतों से संचालन योग्य, (शातवनेये) सैकड़ों सम्भोग्य ऐश्वर्यों के स्वामियों से युक्त अथवा सैकड़ों वनि अर्थात् भृति, वेतनादि से बद्ध भृत्यों से संचालित राज्य में ( शतिनीभिः ) सैकड़ों पुरुषों वाली सेनाओं से युक्त ( अग्निः ) अग्रणी सेनापति भी (सूनृतावान्) सत्यवाणी और उत्तम आज्ञावाला होकर (जरते) स्तुति के योग्य होता है। अथवा—(अग्निः) विद्वान् पुरुष (शातवनेये) शत-ऋतु के भोक्ता, शतवर्ष आयुवाले, चिरजीवी जनसमाज में भी ( सूनृतावान् जरते) उत्तम वेदवाणी से युक्त विद्वान् होकर उपदेश करता है वह और स्तुति योग्य होता है। इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

[ ६० ]

॥६०॥ १—५ नोधा गौतम ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप् । ३, ५ त्रिष्टुप् । २, ४ भुरिक् पंक्तिः ॥

**वह्निं य॒शसं॑ वि॒दथ॑स्य के॒तुं सु॑प्रा॒व्यं॑ दू॒तं स॒द्योअ॑र्थम् ।**
**द्वि॒जन्मा॑नं र॒यिमि॑व प्रश॒स्तं रा॒तिं भ॑र॒द्भृग॑वे मा॒तरि॑श्वा ॥ १ ॥**

भा०—(मातरिश्वा) वायु जिस प्रकार ( वह्निम् ) अग्नि को ( भृगवे भरत् ) अधिक ताप से भून देने या परिपाक करने के लिए उसको अधिक प्रबल कर देता है, उसी प्रकार (मातरिश्वा) भूमि माता में शत्रु पर बल से आक्रमण करनेवाला, अथवा समृद्धि से बढ़नेवाला विजिगीषु राजा (वह्निम्) कार्यभार को उठा लेने में समर्थ, ( यशसम् ) अति यशस्वी, ( विदथस्य केतुम् ) ज्ञान के जाननेहारे, अथवा जानने और जनाने योग्य पदार्थों के स्वयं जानने और औरों को जनाने में कुशल, (सु प्राव्यम्) उत्तम रक्षक, या उत्तम रीति से और सुखपूर्वक कार्य के संचालन करनेहारे (दूतम्) दूत के समान संदेशहर, ( सद्यो अर्थम् ) शीघ्र ही स्थानान्तर में जाने में समर्थ ( द्विजन्मानम् ) द्विज माता पिता और आचार्य से उत्पन्न, (रयिम् इव) ऐश्वर्य के समान ( प्रशस्तम्) अति उत्तम, (रातिम्) दानशील मित्र विद्वान् को भी (भृगवे) शत्रु को सन्तप्त करने के लिए ( भरत् ) पुष्ट करे । अग्नि प्रकाशक होने से केतु है, सन्तापक होने से दूत है, अति वेग से विद्युत् रूप में देशान्तर में जाने से 'सद्यो-अर्थ' है। वायु तथा कारण रूपअग्नितत्व दोनों से उत्पन्न होने से द्विजन्मा है । इसी प्रकार ( मातरिश्वा ) परमेश्वर जीव को पालन पोषण करता है । वह जीव शरीर वहन करने से वह्नि, अन्न भोगने से 'यशः' है। ज्ञान प्राप्त करने से 'संविदथ का केतु' है उपासक होने से दूत है, उत्तम चेतनावान् होने से 'सुप्राव्य' है । मातापिता के संगजन्य होने से द्विजन्मा है। वह 'रयि' सुवर्ण के समान तेजस्वी और प्राणप्रद होने से 'राति' है।

उसको परमेश्वर पापों के नाशक, ज्ञान के परिपाक या पुनः अभ्यास के लिए पालन पोषण करता है। इति दिक्।

अस्य शासुरुभयासः सचन्ते हविष्मन्त उशिजो ये च मर्ताः।
दिवश्चित्पूर्वो न्यसादि होतापृच्छ्यो विश्पतिर्विक्षु वेधाः॥ २॥

भा०—( ये ) जो ( मर्त्ताः ) मनुष्य ( हविष्मन्तः ) उत्तम अन्नादि ऐश्वर्यों और अधिकारों से, सम्पन्न हैं और ( ये च ) जो मनुष्य ( उशिजः ) धन की कामना करने हारे हैं। ( उभयासः ) वे दोनों राजा और प्रजा वर्ग ( अस्य शासुः ) इस महान् शासक अधीश्वर की ( सचन्ते ) शरण प्राप्त करते हैं। वह ( होता ) सब सुखों और ऐश्वर्यों का दाता, राष्ट्र का वशीकर्त्ता (दिवःचित् पूर्वः) दिन के प्रारम्भ में सूर्य के समान (पूर्वः) सबसे मुख्य होकर ( नि असादि ) मुख्य पद पर स्थापित किया जाता है। वही (विश्पतिः) समस्त प्रजा का पालक और (वेधाः) न्याय विधान का कर्त्ता, शास्त्रज्ञ, मेधावी होकर (विक्षु) प्रजाओं के बीच में (आपृच्छ्यः) न्याय निर्णय आदि पूछने योग्य हो। परमेश्वर के पक्ष में उस महान् शासक प्रभु की शरण में धनाभिलाषी रंक, और धनाढ्य राजा दोनों ही आते हैं। वह सूर्य के समान समस्त ज्ञानी और प्रकाशवान् सूर्यों से भी पूर्व विद्यमान रहा है। वह सब प्रजा का पालक, जगत् का विधाता होकर भी (आपृच्छ्यः) गुरुओं और ज्ञानियों से प्रश्न करके जानने योग्य है। तं सम्प्रश्नं भुवना यन्त्यन्या। ऋ९...॥

तं नव्यसी हृद आ जायमानमस्मत्सुकीर्तिर्मधुजिह्वमश्याः।
यमृत्विजो वृजने मानुषासः प्रयस्वन्त आयवो जीजनन्त॥ ३॥

भा०—( हृदः ) हृदय के प्रिय, मित्रगण ( ऋत्विजः ) प्रति ऋतु में यज्ञ करनेवाले, राष्ट्र में ऋतुओं के समान मुख्य पदों के अधिकारी और देह में प्राणों के समान प्रधान सभासद्, (मानुषासः) मननशील, (प्रयस्वन्तः) उत्तम कोटि के ज्ञानवान्, ( आयवः ) सब प्रकार से तत्वों को पृथक् पृथक् करके

देखनेवाले विवेचक और दीर्घायु पुरुष ( यम् ) जिसको ( वृजने ) अधर्म, शत्रु और दुर्व्यसनों के वारण करने के अवसर या कर्त्तव्य पथ पर (जीजनन्त ) मुख्य रूप से बना देते हैं, नियुक्त कर देते हैं ( तम् ) उस ( आजायमानम् ) सब दिशाओं में उदय को प्राप्त होने वाले ( मधुजिह्वम् ) मधुरभाषी पुरुष को ( नव्यसी ) नई नई स्तुति या नई राज्य-लक्ष्मी या प्रजा प्राप्त हो। और वह तू ( अस्मत् सुकीर्त्तिः ) हमारे बीच उत्तम ख्यातिमान होकर उस नई राज्यलक्ष्मी को ( अश्याः ) भोग करे। अर्थात्, उगते हुए सूर्य के समान नव पराक्रमी विजेता को नई उत्तम कीर्त्ति प्राप्त हो वह कीर्तिमान् होकर नये राष्ट्र का भोग करे।

उशिक्पावको वसुर्मानुषेषु वरेण्यो होताधायि विक्षु।
दमूना गृहपतिर्दम आँ अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणाम् ॥ ४ ॥

भा०—( उशिक् ) प्रजाओं को हृदय से चाहनेवाला, कान्तिमान्, तेजस्वी, (पावकः ) अग्नि के समान समस्त मलों, कण्टकों और बाधक दुष्ट पुरुषों को दूर करनेहारा, ( मानुषेषु ) मनुष्यों के बीच में सबको समान रूप से (वसुः) बसानेवाला, (वरेण्यः) सबको वरण करने योग्य, सर्वश्रेष्ठ है। वही ( रयीणाम् ) समस्त ऐश्वर्यों और अधिकारों के स्वामी और प्रदान करनेहारे के रूप में ( विक्षु ) प्रजाओं के ऊपर ( अधायि ) स्थापित किया जाय और वही ( दमूनाः ) सबको दमन करनेवाला और स्वयं भी जितेन्द्रिय और अपने मन पर काबू करने वाला, ( गृहपतिः ) गृहस्वामी के समान राष्ट्रवासी प्रजाओं को अपनी सन्तान के समान पालन करने वाला (अग्निः) दीपक या तेजस्वी सूर्य के समान सबका अग्रणी हो। वही (रयिपतिः) समस्त ऐश्वर्यों का पालक भी ( अ भुवत् ) बनाया जावे। इति षड्विंशो वर्गः ॥

तं त्वा वयं पतिमग्ने रयीणां प्र शंसामो मतिभिर्गोतमासः।
आशुं न वाजम्भरं मर्जयन्तः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥५॥२६॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन् ! (रयीणाम्) ऐश्वर्यों के (पतिम्) पालक (तम्) उस (त्वाम्) तेरी हम (गोतमासः) उत्तम स्तुति करनेहारे विद्वान् पुरुष (मतिभिः) ज्ञानशील पुरुषों से मिलकर (प्रशंसामः) तुझे उत्तम वचनों का उपदेश करें और स्तुति करें। (वाजम्भरं) संग्राम में अपने आसपास के ले जानेहारे (अश्वं न) अश्व को (मर्जयन्तः) जिस प्रकार झाड़ पोंछकर थपक २ सजा धजाकर तैयार करते हैं उसी प्रकार (आशुम्) अति वेग से शत्रु पर आक्रमण करनेवाले, (वाजम्भरं) युद्ध में जानेवाले, या युद्ध के लिए नाना ऐश्वर्यों को धारण करने वाले और युद्धार्थ नाना सेनादलों को भरण पोषण करने हारे (त्वाम्) तुझ राजा को (मर्जयन्तः) परिशोधित और सुशोभित करते हुए और लोभ, काम आदि उपधाओं द्वारा परीक्षित या शोधित करते हुए हम तेरी प्रशंसा करें। तुझे उत्तम मानकर तेरे गुणों का वर्णन करें। (प्रातः मक्षु) और जिस प्रकार बुद्धिमान् ध्यानी पुरुष अपने सब उत्तम कार्यों में प्रातःकाल ही फुर्ती से लग जाता है उसी प्रकार प्रातःकाल ही, दिन प्रारम्भ होते ही, वह विद्वान्, ध्यानी पुरुष (मक्षु) अति शीघ्र, सब से प्रथम (धियावसुः) अपने धारणावती दृढ़ बुद्धियों और कर्म सामर्थ्यों से अपने भीतर बसने वाला, दृढ़ निश्चयी और उद्योगी होकर (जगम्यात्) कार्य में लग जावें। इति षड्विंशो वर्गः ॥

[ ६१ ]

नोधा गौतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, १४, १६ विराट् त्रिष्टुप्। २, ७, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ४, ६, ८, १०, १२ पङ्क्तिः। ५, १५ विराट् पंक्तिः। ११ भुरिक् पंक्तिः। १३ निचृत्पंक्तिः। षोडशर्चं सूक्तम् ॥

**अस्मा इदु प्र तवसे तुराय प्रयो न हर्मि स्तोमं माहिनाय।**
**ऋचीषमायाध्रिगव ओहमिन्द्राय ब्रह्माणि राततमा ॥ १ ॥**

भा०—( प्रयः न ) अति आदर और स्नेह से दिये जाने योग्य अन्न और ज्ञान या अर्घ पाद्य आदि जल जिस प्रकार योग्य उत्तम पुरुष में दिया जाता है उसी प्रकार ( तवसे ) महान् ( तुराय ) राज्य-कार्यों को शीघ्रता से, विना आलस्य प्रमाद के करने वाले, (महिनाय ) उत्तम गुणों, सामर्थ्यों के कारण महान् और (ऋचीषमाय) स्तुति-वचनों के समान, यथार्थ स्तुत्य गुणों के धारण करनेवाले, (अध्रिगवे) शत्रु से न सहने योग्य बलवान् वीरों को धारण करने और भयंकर प्रयाण करने वाले ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान्, ऐश्वर्यप्रद शत्रुहन्ता पुरुष को ( इत् उ ) ही मैं ( ओहम् ) धारण करने योग्य अथवा शत्रुओं को पीड़ित करनेवाले ( स्तोमम् ) स्तुति वचन अधिकार पद और सैनिक वीरों का संघ और ( ब्रह्माणि ) वेदवचन, अन्न, धन और बड़े बड़े बलशाली अश्वादि ( राततमा ) समस्त उत्तम उत्तम देने योग्य पदार्थ (प्रहर्मि) प्रदान करता हूं। परमेश्वर के पक्ष में—महान्, सबके प्रेरक, पूज्य, यथार्थ स्तुति और अपार शक्तिवाले, परमेश्वर की स्तुति के लिए मैं पूज्य पुरुष को आदरार्थ जल और अन्नादि के समान स्तुतिवचन और वेदमन्त्रों को प्रस्तुत करूँ।

**अस्मा इदु प्रयं इव प्र यंसि भरांम्याङ्गूषं बाधे सुवृक्ति।**
**इन्द्राय हृदा मनसा मनीषा प्रत्नाय पत्ये धियो मर्जयन्त ॥ २ ॥**

भा०—हे मनुष्य ! तू जिस प्रकार ( प्रयः ) अन्न ( प्रयंसि ) प्रदान करता है, उसी प्रकार मैं ( अस्मा ) इस उत्तम ( इन्द्राय इत् ) ऐश्वर्ययुक्त राजा की वृद्धि के लिए ही और ( बाधे ) शत्रुओं को ताड़ना करने और रोकने के लिए ( सुवृक्ति ) उत्तम रीति से जाने वाले या शत्रु का वर्जन करनेवाले यान आदि वाहन और ( आंगूषं ) स्तुति योग्य मान और आदर पद को ( प्र भरामि) प्रदान करूँ। हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (प्रत्नाय) सबसे वृद्ध, आदरणीय, ऐश्वर्यवान्, ( पत्ये ) प्रजा के स्वामी राजा के लिए ( हृदा ) हृदय से, प्रेमपूर्वक ( मनीषा) मनन करनेवाली बुद्धि या ज्ञान से

( धियः ) अपनी बुद्धियों और कर्मों को ( मर्जयन्त ) शुद्ध और पाप रहित करो । परमेश्वर के पक्ष में—उस परमेश्वर के उत्तम स्तोत्र पढ़ूँ और (प्रत्नाय) अनादि शाश्वत ( इन्द्राय ) ईश्वर को प्राप्त करने के लिए ( हृदा ) हृदय से, प्रेम से, ( मनीषा ) मानसिक प्रबल इच्छा चिन्तन और ( मनसा ) ज्ञान से ( धियः ) अपनी बुद्धि और कर्म चेष्टाओं को शुद्ध करो, सदाचारी और निष्पाप होवो ।

**अस्मा इदु त्यमुपमं स्वर्षां भराम्यांगूषमास्येन ।**
**मंहिष्ठमच्छोक्तिभिर्मतीनां सुवृक्तिभिः सूरिं वावृधध्यै ॥ ३ ॥**

भा०—( अस्मै इत् उ ) इस राजा सभाध्यक्ष के उत्तम पद के लिये ही मैं ( त्यम् ) उस ( उपमम् ) सर्वोपमायोग्य, ( स्वर्षाम् ) सुख और ज्ञानोपदेश के देने वाले, ( आंगूषम् ) उत्तम वचन के बोलने वाले ( मंहिष्ठम् ) अति पूजनीय, ( सूरिम् ) विद्वान् शास्त्रवेत्ता पुरुष को ( आस्येन ) मुख से (सुवृक्तिभिः) उत्तम रूप से अज्ञानों को दूर हटा देनेवाली (अच्छोक्तिभिः ) उत्तम उक्तियों द्वारा ( मतीनाम् ) मननशील पुरुषों को और अपनी बुद्धियों की भी ( वावृधध्यै ) बढ़ोतरी के लिए ( प्र भरामि ) प्राप्त करूँ। उसको भरण पोषण करूं । परमेश्वर के पक्ष में—(अस्मै इत् उ) परमेश्वर की प्राप्ति और ज्ञान के लिए और ( मतीनां वावृधध्यै ) ज्ञानों की वृद्धि के लिए ( आस्येन अच्छोक्तिभिः सुवृक्तिभिः ) मुख से अज्ञान नाशक वचनों द्वारा ( स्वर्षाम् ) उत्तम सुख ज्ञान प्रकाश के देने वाले (आंगूषम्) उत्तम उपदेशक, ( मंहिष्ठम् ) श्रेष्ठ, दानशील ( सूरिम् ) उत्तम शास्त्रज्ञ पुरुष को ( प्र भरामि ) धारण करूँ, प्राप्त करूं, उसके पास जाऊं ।

**अस्मा इदु स्तोमं सं हिनोमि रथं न तष्टेव तत्सिनाय ।**
**गिरश्च गिर्वाहसे सुवृक्तीन्द्राय विश्वमिन्वं मेधिराय ॥ ४ ॥**

भा०—( तत्सिनाय ) रथ के निमित्त वृत्ति, या द्रव्य, या अन्न से बाँध लेने वाले स्वामी के उपयोग के लिए (तष्टा) शिल्पी जिस प्रकार ( रथं न )

रथ को बनाता है उसी प्रकार मैं (अस्मा इत् उ) इस (तत्सिनाय) स्तुति के साथ यथार्थ अर्थों से सम्बद्ध उसके प्रतिपाद्य, अथवा ( तत्सिनाय ) उन उन नाना प्रकार की प्रजाओं की व्यवस्था में बांधने वाले ऐश्वर्यों, वेतनों तथा उपायों के स्वामी राजा के लिए ( इत् उ ) ही (स्तोमं) स्तुति समूह तथा नाना अधिकार और सैन्यदल ( संहिनोमि ) प्रेरित करता हूं, संचालित करता हूं । उसी ( गिर्वाहसे ) समस्त स्तुति-वाणियों या आज्ञाओं को धारण करनेवाले मुख्य अध्यक्ष को ही मैं ( गिरः च ) समस्त आज्ञाएं भी प्रदान करता हूं । और ( मेधिराय ) उस बुद्धिमान् पुरुष को मैं ( सुवृक्ति ) दोषों को छुड़ाने और बिघ्नों और शत्रुओं के वर्जन करने वाला (विश्वमिन्वम्) जगद्व्यापक अधिकार प्रदान करता हूं। परमेश्वर के पक्ष में— नाना व्यवस्थाओं से बाँधने वाले परमेश्वर के निमित्त मैं वेद स्तुति समूह को उच्चारण करूं । उसी परमेश्वर के लिए मैं विश्वव्यापक पापनाशक स्तवन करूं, वही सब ज्ञानों का दाता है ।

**अस्मा इदु सप्तिमिव श्रवस्येन्द्रायार्कं जुह्वा३ समञ्जे ।**
**वीरं दानौकसं वन्दध्यै पुरां गूर्तश्रवसं दर्माणम् ॥ ५ ॥ २७ ॥**

भा०—( सप्तिम् इव ) रथ के संचालन के लिए जिस प्रकार वेगवान् घोड़े को लगाया जाता है उसी प्रकार ( अस्मै ) इस ( इन्द्राय इत् उ ) परम ऐश्वर्य प्रदान करने वाले, राष्ट्र के पालक, या सेनापत्य पद को अच्छी प्रकार संचालन करने के लिए ( जुह्वा ) अपनी वाणी या आज्ञा से (अर्कं) स्तुति योग्य, अथवा ( अर्कं ) सूर्य के समान तेजस्वी ( वीरम् ) शत्रुओं को उखाड़ देने में समर्थ, वीर्यवान्, सामर्थ्यवान् ( दानौकसम्) दान देने योग्य ऐश्वर्यों के एकमात्र आश्रय स्थान ( गूर्तश्रवम् ) गुरु के श्रवण करने योग्य ज्ञान को धारण करने वाले, अथवा अन्यों के प्रति उपदेश करनेवाले, या यशस्वी, ( पुरां ) शत्रुओं के प्रकोटों और मोर्चों, नगरों और दुर्गों के ( दर्माणम् ) तोड़ने हारे पुरुष को ( वन्दध्यै ) प्रस्तुत करने के लिये

( श्रवस्या ) अन्न और ऐश्वर्य की वृद्धि कामना से ( सम् अंजे ) मैं सबके सामने प्रकट करूं। और उसे मुख्य पद पर स्थापित करूं। परमेश्वर के पक्ष में—सर्वशक्तिमान्, ज्ञानों का एकाश्रय, ज्ञानोपदेशों का परम गुरु और देहबन्धनों का तोड़ने हारा है। ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा से उसकी स्तुति के लिए ( जुह्वा अर्क समंजे) वाणी से स्तुति का प्रकाश करूं। इति सप्तविंशो वर्गः ॥

अस्मा इदु त्वष्टा तक्षद्वज्रं स्वपस्तमं स्वर्यं रणाय।
वृत्रस्य चिद्विदद्येन मर्म तुजन्नीशानस्तुजता कियेधाः ॥ ६ ॥

भा०—( अस्मा इत् उ ) इस ऐश्वर्यवान् राष्ट्र की रक्षा और राष्ट्रपति के विजय के लिए ही ( त्वष्टा ) शिल्पीगण ( सु-अपस्तमम् ) सूर्य जिस प्रकार अपने तेजस्वी किरण समूह को प्रकट करता है उसी प्रकार उत्तम, अति अधिक क्रियासामर्थ्य से युक्त, अति वेगवान्, तीव्र (स्वर्यं) अति ताप-जनक, अग्निमय (वज्रं) शत्रुवर्जन करनेवाले ऐसे शस्त्रास्त्र समूह को (तक्षत्) गढ़ गढ़ कर बनावे, ( येन ) जिस ( तुजता ) हिंसाकारी, घात करते हुए, प्रयुक्त अस्त्र से ( तुजन् ) शत्रुओं का नाश करता हुआ (कियेधाः) कितने ही शत्रुदलों को थामने और कितने ही असंख्य बलों और शस्त्रास्त्रों को धारण करने वाला, बलवान् ( ईशानः ) सेनापति ( वृत्रस्य ) अपने बढ़ते हुए या वर्तमान शत्रु के (मर्म चित् ) मर्मों तक को ( विदत् ) पहुंच जाय और छिन्न-भिन्न करके विजय करले। परमेश्वर के पक्ष में—वह (त्वष्टा) तेजोमय प्रभु इस जीव के हित के लिए (स्वर्यं) उपदेशमय, पापनिवारक ज्ञान वज्र का उपदेश करता है। जिससे वह बलवान् इन्द्रियों का स्वामी होकर बढ़ते अज्ञान के मर्मों का भी नाश करे।

अस्येदु मातुः सवनेषु सद्यो महः पितुं पपिवाञ्चार्वन्ना।
मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान्विध्यद्वराहं तिरो अद्रिमस्ता ॥ ७ ॥

भा०—( मातुः ) अपना मुख्य पदाधिकारी नियत करने वाले

( अस्य इत् उ ) इस ऐश्वर्य युक्त राष्ट्र के ही ( सवनेषु ) अभिषेकों या ऐश्वर्यों के आश्रय पर ( विष्णुः ) व्यापक अधिकार वाला होकर सेनापति और राष्ट्रपति ( सद्यः ) शीघ्र ही ( पितुम् ) पालन करने वाले, राज्यपद को और ( चारु अन्ना ) उत्तम २ अन्नों और योग्य ऐश्वर्यों को (पपिवान्) प्राप्त करे। और वह ( सहीयान् ) शत्रुओं को परास्त करने में सबसे अधिक बलवान् होकर ( पचतं ) परिपक्व राष्ट्र के ऐश्वर्य को ( मुषायद् ) गूढ़ रूप से लेता हुआ ( अस्ता वराहम् ) बाणों के फेंकने में कुशल धनुर्धर जिस प्रकार शूकर को एक ही प्रहार से वेध देता है और सूर्य जिस प्रकार मेघ को छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार (अस्ता) वह वीर सेनापति शत्रुओं पर शस्त्रास्त्र प्रहार करने में चतुर होकर ( वराहम् ) अपने उत्तम खाद्य के समान सुगमता से जीत लेने योग्य शत्रु को ( तिरः ) प्राप्त करके, (अद्रिम्) पर्वत को वज्र के समान, अथवा पर्वत के समान अभेद्य शत्रु को भी (विध्यत्) वेध डाले। अथवा (अद्रिम्) अखण्ड शस्त्र का प्रहार करे।

अस्मा इदु ग्नाश्चिद्देवपत्नीरिन्द्रायार्कमहिहत्य ऊवुः।
परि द्यावापृथिवी जभ्र उर्वी नास्य ते महिमानं परि ष्टः ॥ ८ ॥

भा०—( ग्नाः देवपत्नीः इन्द्राय अर्कम् ऊवुः ) जिस प्रकार ऋतु-काल में गमन करने वाली, कमनीय पतियों की स्त्रियां अपने २ ऐश्वर्य या सौभाग्यवान् पति की वृद्धि के लिये तेजस्वी पुत्र सन्तति को बढ़ाती हैं, और ( ग्नाः देवपत्नीः इन्द्राय अर्कम् ऊवुः ) जिस प्रकार ज्ञान करने योग्य विद्वानों करके पालने योग्य वेद-वाणियां ऐश्वर्यवान् परमेश्वर की महिमा को प्रकाश करने के लिये अर्चना योग्य स्तुति सूक्त को प्रकट करती हैं उसी प्रकार ( ग्नाः ) वेग से गमन करने वाली या दूर देशों तक पहुंचने वाली ( देव-पत्नीः ) विजयेच्छु वीर पुरुषों का पालन करने योग्य, अथवा विद्वानों के पालन करने वाली वाणियें, आज्ञाएं और सेनाएं ( अस्मै इन्द्राय ) इस

ऐश्वर्यवान् राष्ट्र और राष्ट्रपति के हित के लिये ( अर्कम् ) स्तुति योग्य वीर पुरुष को ( अहिहत्ये ) शत्रु के नाश के कार्य, संग्राम के अवसर में (ऊवुः) आश्रय बनाती हैं अपने को उससे जोड़तीं और उसके बल को बढ़ाती हैं। वह राजा या वीर सेनापति ( द्यावापृथिवी ) आकाश और पृथिवी को सूर्य के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग तथा विद्वान् और अविद्वान् दोनों वर्गों को (परि जभ्रे) सब प्रकार से अपने वश कर लेता है। (ते) वे दोनों वर्ग (अस्य) उसके ( महिमानम् ) बड़े भारी सामर्थ्य को ( न परि स्तः ) कभी अतिक्रमण नहीं करते। परमेश्वर के पक्ष में—समस्त दिव्य पदार्थ और सूर्य आदि की पालक शक्तियें परमेश्वर पर आश्रित हैं। वही आकाश पृथ्वी को धारण करता है और वे दोनों उसकी महिमा को अपने में नहीं बांध सकतीं।

अस्येदेव प्र रिरिचे महित्वं दिवस्पृथिव्याः पर्यन्तरिक्षात्।
स्वराळिन्द्रो दम आ विश्वगूर्तः स्वरिरमत्रो ववक्षे रणाय ॥ ६ ॥

भा०—( अस्य इत् एव ) इस ऐसे सम्राट् का ही, ( महित्वं ) आदर और महान् सामर्थ्य ( दिवः ) आकाश, (पृथिव्याः) पृथिवी और (अन्तरिक्षात्) अन्तरिक्ष से भी (प्ररिरिचे) कहीं अधिक बढ़ जाता है। जो ( स्वराट् ) स्वयं अपने तेज से सूर्य के समान तेजस्वी, (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान्, ( विश्वगूर्त्तः ) समस्त ऐश्वर्यों को अपने वश कर लेने हारा, या सबकी स्तुतियों पात्र होकर, ( स्वरिः ) उत्तम २ शत्रुओं को पराजय करने हारा अथवा उत्तम स्वामी, ( अमत्रः ) अपरिमित बलशाली, अथवा (अमत्रः) युद्धादि में पयान करने में कुशल होकर ( रणाय ) संग्राम के लिये ( दमे ) दमन करने के सामर्थ्य में ( ववक्षे ) मुख्य पद या राष्ट्र भार को धारण करता है। परमेश्वर के पक्ष में—उसका महान् सामर्थ्य तीनों लोकों से बड़ा है। वह स्वतः प्रकाश, सबका उपदेष्टा, दमन में परमैश्वर्यवान्, उत्तम स्वामी, अपरिमित शक्तिमान् होकर ( रणाय ) रमण अर्थात् जीवों के सुख के लिये विश्व को अपने में धारण कर रहा है।

अस्येदेव शवसा शुषन्तं वि वृश्चद्वज्रेण वृत्रमिन्द्रः ।
गा न व्राणा अवनीरमुञ्चदभि श्रवो दावने सचेताः ॥ १० ॥ २८ ॥

भा०—( इन्द्रः ) शत्रुहन्ता सेनापति ( अस्य इत् एव ) इस वीर पुरुष या समृद्ध राष्ट्र के ही (शवसा) बल पराक्रम द्वारा, विद्युत् के प्रहार बल से क्षीण होते हुए मेघ के समान (वज्रेण) शस्त्रास्त्र बल से ( शुषन्तम् ) क्षीण होते हुए शत्रु को ( वि वृश्चत् ) विविध प्रकारों से छिन्न भिन्न करे । ( गाः न ) जिस प्रकार गवाला बाड़े में से गौओं को छुड़ा देता है उसी प्रकार वह वीर पुरुष या राजा ( व्राणाः ) घिरी हुई ( अवनीः ) भूमियों, भूमि-वासिनी प्रजाओं को शत्रु के बन्धन से (असुञ्चत्) मुक्त करे । अथवा (व्राणाः अवनीः अभि असुञ्चत्) मेघ जिस प्रकार आवृत जल धाराओं को प्रजाओं पर उदारता से बरसाता है, उसी प्रकार वह ( दावने ) कर और दान आदि देने वाले प्रजावर्ग पर (सचेताः) प्रजा के सुख दुःख में समान चित्त होकर (श्रवः) अन्न आदि भोग्य पदार्थों को ( अभि असुञ्चत् ) प्रदान करे । इत्यष्टाविंशो वर्गः ॥

अस्येदु त्वेषसा रन्त सिन्धवः परि यद्वज्रेण सीमयच्छत् ।
ईशानकृद्दाशुषे दशस्यन्तुर्वीतये गाधं तुर्वणिः कः ॥ ११ ॥

भा०—( यद् ) जब वह ( वज्रेण ) अपने शत्रुओं के वारण करने वाले शस्त्रास्त्र समूह के बल से ( सीम् ) उन शत्रु सेनाओं के वीरों को ( परि अयच्छत् ) सब ओर से रोक लेता है तब ( अस्य इत् उ ) इसके ही ( त्वेषसा ) सूर्य के समान चमचमाते प्रकाश और प्रताप से (सिन्धवः) वेगवान् जलप्रवाहों के समान अदम्य बल वाले शूरवीर ( रन्त ) रमण करते हैं, आनन्द प्रसन्न होते हैं । वह ( दाशुषे ) दानशील, प्रजाजन को ( ईशानकृत् ) ऐश्वर्यवान्, स्वामी बना देने हारा और ( तुर्वणिः ) शत्रुओं का नाशक और शीघ्रकारी सैनिकों और भृत्यों को अपने अधीन रखकर ( तुर्वीतये ) अति शीघ्रता से राष्ट्र भर में फैल जाने के लिये ( गाधं )

अपना मुख्य प्रतिष्ठा स्थान, या दुर्ग, या राजधानी आदि (कः) बनाता है। अथवा ( गाधं कः ) शत्रुओं का नाश करता है।

अस्मा इदु प्र भरा तूतुजानो वृत्राय वज्रमीशानः कियेधाः।
गोर्न पर्व वि रदा तिरश्चेष्यन्नर्णांस्यपां चरध्यै ॥ १२ ॥

भा०—( तूतुजानः वृत्राय वज्रम् ) अति वेग से बहनेवाला वायु जिस प्रकार मेघ को वेगवान् आघात या विद्युत् का प्रहार करता है। और वह ( ईशानः कियेधाः ) मेघ पर शक्तिशाली होकर वेग से बहता हुआ उसे धारण किये रहता है उसी प्रकार सभा और सेना का अध्यक्ष भी ( तूतुजानः ) अति शीघ्रकारी, बिना विलम्ब के कार्य करने में चतुर, शत्रु पर प्रहार करता हुआ, ( ईशानः ) शक्तिशाली, ऐश्वर्यवान् ( कियेधाः ) कितने ही ऐश्वर्यों और बलों का धारण करनेवाला, अथवा पराक्रम करते हुए समस्त राष्ट्र को धारण करने में समर्थ होकर ( अस्मै ) इस प्रत्यक्ष में आगे खड़े, ( वृत्राय इत् उ ) शक्ति और बल में बढ़ते हुए शत्रु के विनाश के लिए तू ( वज्रम् ) शस्त्रास्त्रयुक्त सेनाबल का (प्र भर) प्रयोग कर। सूर्य जिस प्रकार ( अपां ) सूक्ष्म जलों के संयोग से ( अर्णांसि चरध्यै ) जल प्रवाहों को बहा देने के लिए अपने ( तिरश्चा ) तिरछे प्रकाश और वेग से मेघ के अंग २ को छिन्न भिन्न कर देता है। और ( तिरश्चा ) तिरछी चाल से ( गोः पर्व न ) चर्मकार तिरछे शस्त्र से जिस प्रकार मृत पशु का जोड़ जोड़ काटता है और वक्ता ( तिरश्चा ) जिह्वा आदि के तिरछे आघात से ( गोः पर्व न) वाणी के प्रत्येक अंग २, अर्थात् प्रत्येक वर्णों या पर्वों को ज्ञानपूर्वक विभक्त करता है उसी प्रकार (अपां अर्णांसि चरध्यै) शत्रु प्राप्त सेनाओं के प्रवाहों को भगा देने के लिए शत्रु बल के (पर्व) पोरु २ अंग प्रत्यंग को ( इष्यन् ) जानता हुआ ( वि रद ) विविध प्रकार से काट।

अस्येदु प्र ब्रूहि पूर्व्याणि तुरस्य कर्माणि नव्यं उक्थैः।
युधे यदिष्णान आयुधान्यृघायमाणो निरिणाति शत्रून् ॥ १३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुष ! (यः) जो वीर पुरुष (ऋघायमाणः) शत्रुओं का नाश करनेवाले योद्धा के समान अभ्यास करनेवाला ( नव्यः ) नया ही ( आयुधानि इष्णानः ) शस्त्रों और अस्त्रों का अभ्यास करता हुआ ( युधे) संग्राम के विजय के लिए (शत्रून् निरिणाति) शत्रुओं के नाश का नित्य अभ्यास करे। हे विद्वन् ! तू ( अस्य इत् उ ) उस ( तुरस्य ) अति शीघ्रकारी क्रियाकुशल पुरुष को (पूर्वाणि) पूर्व पुरुषों के आविष्कार किये हुए, अथवा वर्तमान के शिष्यों की अपेक्षा पूर्व के शिक्षित और विद्याकुशल गुरुओं द्वारा रचे हुए ( कर्माणि ) युद्धोपयोगी कार्यों के ( उक्थैः ) प्रवचनों द्वारा (प्र ब्रूहि) अच्छी प्रकार उपदेश कर, सिखा। अर्थात् नवप्रविष्ट युद्ध-शिक्षाभ्यासियों को विद्वान् पुरुष पूर्व के आचार्यों द्वारा रचे कर्तव्यों और कर्मों की शिक्षा दें और वे तदनुसार शस्त्रास्त्रों का युद्ध में शत्रुओं पर आक्रमण करने में प्रबल होने के लिए ही पुनः पुनः अभ्यास करें।

अस्येदु भिया गिरयश्च दृळ्हा द्यावा च भूमा जनुषस्तुजेते ।
उपो वेनस्य जोगुवान ओणिं सद्यो भुवद्वीर्याय नोधाः ॥ १४ ॥

भा०—( दृढा ) दृढ ( गिरयः ) जिस प्रकार पर्वत भी विद्युत् के उग्र बल से कांप जाते हैं उसी प्रकार ( अस्य इत् ) इस ( वेनस्य ) अति कान्तिमान्, तेजस्वी, विद्वान् सेनापति के ( भिया ) भय से ( दृढा ) दृढ़ ( गिरयः ) पर्वत के समान अचल शत्रुगण (च) भी काँपें। और ( द्यावा च भूम ) आकाश और भूमि तथा उनके समान राजवर्ग और प्रजावर्ग तथा ( जनुषः ) अन्य जन भी ( तुजेते ) कांपें। ( वेनस्य ओणिम् उपो जोगुवानः नोधाः ) तेजस्वी विद्वान् आचार्य के अज्ञान को दूर करने वाला ज्ञान-प्रवचन तथा शासन के अधीन अन्तेवासी होकर अध्ययन करने वाला ज्ञानधारी और व्रतधारी शिष्य जिस प्रकार ( सद्यः वीर्याय भुवत् ) शीघ्र ही ब्रह्मचर्य, व्रतपालन और शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बलवीर्य को प्राप्त करने में समर्थ होता है उसी प्रकार उस ( वेनस्य उपो ओणिम् जोगुवानः)

तेजस्वी सभापति, सेनापति के दुःखनाशक रक्षण के अधीन रहकर उसके साथ मन्त्रणा करता हुआ (नोधाः) नायकों का धारक पोषक, प्रेरक आज्ञाओं या उसकी वाणियों का धारण करनेवाला प्रजागण या अधीन उप अधिकारी भी ( सद्यः ) शीघ्र ही ( वीर्याय ) अपनी बलवृद्धि करने में ( भुवत् ) समर्थ होता है। अध्यात्म में—( वेनस्य ) परमेश्वर की स्तुति करने वाला ( नोधाः ) जीव उसके आश्रय से शीघ्र बलवान् हो जाता है।

अस्मा इदु त्यदनु दाय्येषामेको यद्वव्ने भूरेरीशानः।
प्रैतशं सूर्ये पस्पृधानं सौवश्व्ये सुष्विमावदिन्द्रः॥ १५॥

भा०—( यत् ) जो पुरुष ( भूरेः ) बड़े भारी ऐश्वर्य और संख्या में बहुत अधिक बलका ( ईशानः ) स्वामी है, और जो ( एकः ) अकेला ( एषाम् ) इन समस्त प्रजाओं और अधीनस्थ भृत्यों का ( वव्ने ) भोग करता है, उन पर शासन करता है ( त्यत् इन्द्रः ) वह ही परम ऐश्वर्य-वान् पुरुष है। ( अस्मा इत् उ ) उसको ही ( त्यत् ) यह सर्वोच्च राष्ट्रपति का बड़ा भारी पद ( अनु दायि ) योग्य जान कर प्रदान किया जाता है। ( सौवश्व्ये ) उत्तम व्यापक किरणों वाले (सूर्ये) सूर्य के साथ (पस्पृधानं) स्पर्धा करने वाले, अर्थात् तेज और पराक्रम में सूर्य के समान तेजस्वी और ( सुष्विम् ) उत्तम अभिषेक योग्य, ( एतशम् ) अश्व के समान, निर्भीक, पराक्रमी तथा राष्ट्रपति पुरुष को ही वह राष्ट्र चक्र ( आवत् ) प्राप्त होता और उसकी रक्षा करता है।

एवा ते हारियोजना सुवृक्तीन्द्र ब्रह्माणि गोतमासो अक्रन्।
ऐषु विश्वपेशसं धियं धाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् १६।२६।४॥

भा०—हे ( हारियोजन ) रथ में अश्वों को जोड़ने वाले सारथी या महारथी के समान! हे ( हारियोजन ) प्रजा के दुःखहारी विद्वानों की नियुक्ति और प्रबल उपायों का प्रयोजन करने वाले राजन्! वेगवान् सैनिकों

के नियोक्ता, आज्ञापक तथा प्रबल तुरंगों और अश्वारोही वीरों के और अग्नेयादि अस्त्रों के संचालक वीर सेनापते ! ( इन्द्र ) विद्वन्, ऐश्वर्यवन् ! ( शत्रुहन्तः ) जिस प्रकार मेघ के बलपर कृषक गण अन्नों को उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार ( गोतमासः ) बड़े वाग्मियों के धारक विद्वान् पुरुष ( ते ) तेरे ( एव ) ही ( ब्रह्माणि ) बड़े सुखकारी, ज्ञानमय वेदमन्त्रों के समान, उत्तम बलप्रद अन्नों, ऐश्वर्यों और बलों को ( अक्रन् ) उत्तम रूप से सम्पादित करते हैं, प्राप्त करते हैं और औरों को प्राप्त कराते हैं। ( धिया-वसुः ) अपने प्रज्ञा और कर्म के बल से राष्ट्र में स्वयं बसने और प्रजा को बसाने और ऐश्वर्य सम्पादन करने हारा तू ( एषु) इन अधीनस्थ प्रजाजनों में ( विश्वपेशसम् ) सब प्रकार के सुवर्ण आदि नाना धनों के देने वाले ( धियम् ) ज्ञान और कर्म सामर्थ्य का ( प्रातः मक्षू ) जिस प्रकार सूर्य प्रातःकाल अपना प्रकाश और आचार्य प्रातःकाल शिष्यों में अपना ज्ञान प्रदान करता है उसी प्रकार शीघ्र ही ( धाः ) प्रदान कर, धारण करा। जिससे वह प्रजाजन सब सुखों और विद्याओं को ( आ जगम्यात् ) प्राप्त हो। इति एकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

इति चतुर्थोऽध्यायः ॥

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।

[ ६२ ]

नोधा गौतम ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ६ विराडार्षी त्रिष्टुप् । २, ५, ८ निचृदार्षी त्रिष्टुप् । १०—१३ आर्षी त्रिष्टुप् । भुरिगार्षी पंक्तिः । त्रयो दशर्चं सूक्तम् ॥

प्र मन्महे शवसानाय शूषमाङ्गूषं गिर्वणसे अङ्गिरस्वत् ।
सुवृक्तिभिः स्तुवत ऋग्मियायार्चामार्कं नरे विश्रुताय ॥ १ ॥

भा०—हम लोग (शवसानाय) ज्ञानबल से युक्त (गिर्वणसे) समस्त स्तुति प्रार्थनाओं को स्वीकार करने वाले ( स्तुवते ) सत्य ज्ञान को स्पष्ट रूप से सबके आगे प्रकट करने वाले, (ऋग्मियाय) ऋचाओं द्वारा अन्यों को उपदेश करने वाले, ( विश्रुताय ) विविध गुणों के कारण नाना प्रकार से श्रवण करने योग्य, ( नरे ) सबके नायक, संचालक परमेश्वर के ( शूषम् ) बल और यश बतलाने वाले, ( आंगूषम् ) समस्त ज्ञानों के उपदेश करने वाले, ( अर्कम् ) अर्चना करने योग्य, ( अंगिरस्वत् ) शरीर में प्राणों के समान सर्वत्र स्थित, अथवा ( अंगिरस्वद् ) सूर्य आदि तेजस्वी पदार्थों के स्वामी, तथा ज्ञानी पुरुषों के स्तुत्य रूप को ( सुवृक्तिभिः ) अच्छी प्रकार से दोषों और भीतरी मलों को दूर करने वाली साधनाओं, स्तुतियों से हम लोग ( अर्चाम ) स्तुति करें, उसका वर्णन करें। इसी प्रकार ( शवसानाय ) बलशाली, बल से पराक्रमी, स्तुति योग्य, सत्य ज्ञान के उपदेष्टा, विविध गुणों से प्रसिद्ध, वेद ऋचाओं के ज्ञाता, पुरुष के (शूषं आंगूषम्) बलयुक्त आघोषणा वचन को और देह में प्राण या बल के समान पदाधिकार की और ( अर्कं ) स्तुति योग्य तेजस्वी रूप की हम स्तुति करें।

प्र वो॑ म॒हे महि॒ नमो॑ भरध्वमाङ्गू॒ष्यं॑ शवसा॒नाय॒ साम॑ ।
येना॑ नः॒ पूर्वे॑ पि॒तरः॑ पद॒ज्ञा अर्च॑न्तो॒ अङ्गि॑रसो॒ गा अवि॑न्दन् ॥२॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! ( वः ) आप लोगों में से भी ( पूर्वे ) पहले के, पूर्व शिक्षित (पितरः) मा बाप के समान विद्या आदि देने वाले व्रतपालक गुरुजन ( पदज्ञाः ) प्राप्त करने या धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन पुरुषार्थों के जाननेहारे, ( अंगिरसः ) ज्ञानी और अग्नि के तुल्य तेजस्वी तथा शरीर में प्राणों के समान समाज और राष्ट्र में जीवन जागृति धारण करानेवाले विद्वान्, पराक्रमी जन ( येन ) जिसके द्वारा (अर्चन्तः) स्तुति प्रार्थना और सत्कार करते हुए ( गाः ) उत्तम वाणियों को ( अविन्दन् ) प्राप्त करते, उनका ज्ञान और सत्य साक्षात् करते हैं आप लोग उस ही

( महि ) बड़े ( आंगूष्यम् ) विज्ञान प्रवचन के लिए उत्तम ( साम ) प्रतिस्पर्द्धी अज्ञान के नाशक ( नमः ) नमस्कार रूप भक्ति भाव को ( महे शवसानाय ) बड़े बलशाली विज्ञानमय परमेश्वर के लिए (प्र भरध्वम्) उच्चारण करो। इसी प्रकार (महे शवसानाय) बड़े बलवान् राजा या सभाध्यक्ष के लिए ( महि साम नमः प्र भरध्वं ) बड़े भारी शत्रुनाशक, शत्रुओं को नमाने वाला बल और भोग्य ऐश्वर्य प्राप्त कराओ और उसका बड़ा आदर करो। ( येन ) जिससे ( नः पूर्वे पितरः पदज्ञाः अंगिरसः ) हमारे पूर्व के परिपालक प्राप्तव्य पद के वेत्ता और ज्ञानी, तेजस्वी पुरुष ( अर्चन्तः ) आदर सत्कार करते हुए ही ( गाः अविन्दन् ) वाणियों के समान भूमियों और पशु सम्पदाओं को भी प्राप्त करते हैं।

इन्द्र॒स्याङ्गि॑रसां चे॒ष्टौ वि॒दत्स॒रमा॒ तन॑याय धा॒सिम्।
बृह॒स्पति॑र्भि॒नदद्रिं॑ वि॒दद् गाः समु॒स्रिया॑भिर्वावशन्त॒ नरः॑ ॥ ३ ॥

भा०—( सरमा ) माता जिस प्रकार ( तनयाय ) अपने पुत्र के लिए ( धासिम् ) अन्न को ( विदत् ) प्राप्त करती है उसी प्रकार ( इन्द्रस्य ) ऐश्वर्यवान् राजा या सभाध्यक्ष और (अंगिरसां च) बलवान् तेजस्वी, पुरुषों के (इष्टौ) इच्छानुकूल संचालित नीति के युद्ध मार्ग में चलती हुई (सरमा) वेग से आगे बढ़नेवाली सेना और ( तनयाय ) अपने सन्तान के लिए ( धासिम् ) अन्न आदि शरीर धारक भोग्य पदार्थ को ( विदत् ) प्राप्त करे। और ( अद्रिम् ) सूर्य जिस प्रकार मेघ को ( उस्रियाभिः ) किरणों से छिन्न-भिन्न करता है ( बृहस्पतिः ) बड़े भारी बल और राष्ट्र का स्वामी, उसी प्रकार ( अद्रिम् ) पर्वत के समान अचल शत्रु को भी ( उस्रियाः ) उदय को प्राप्त होनेवाली, सहोत्थायी वीर सेना द्वारा (भिनत्) तोड़ डाले। (गाः विदत्) जिस प्रकार सूर्य मेघ के छिन्न भिन्न हो जाने पर अपनी किरण को पुनः तेजोरूप से प्राप्त करता है उसी प्रकार वह राजा भी नाना भूमियों

को प्राप्त करे । और ( नरः ) नायकजन (सं वावशन्तु) उसको एक साथ ही मिलकर प्रकाशित करें ।

**स सुष्टुभा स स्तुभा सप्त विप्रैः स्वरेणाद्रिं स्वर्यो३नवंग्वैः ।**
**सरण्युभिः फलिगमिन्द्र शक्र वलं रवेण दरयो दशंग्वैः ॥ ४ ॥**

भा०—( स्वर्यः ) ताप और प्रकाशों को उत्पन्न करने वाला सूर्य जिस प्रकार (नवग्वैः) नये कोमल २ ताप से प्रवेश करनेवाले और (दशग्वैः) दशों दिशाओं में फैलनेवाले, ( सरण्युभिः ) वेग से जानेवाले, ( विप्रैः ) किरणों से और (स्तुभा) स्थिर ( स्वरेण) ताप से ( फलिगम् ) कण २ हुए जलों के देने वाले, (अद्रिम् ) अखण्डित पर्वताकार, (वलम् ) अपने भीतर जलों को और अपने विस्तार से आकाश को आच्छादन करनेवाले मेघ को ( दरयः ) छिन्न-भिन्न करता है । अथवा—जिस प्रकार सूर्य ( विप्रैः ) किरणों से ( स्वर्यः ) शब्दकारी विद्युत् ( नवग्वैः ) कोमल गतियों से और वायु ( सरण्युभिः ) अपने प्रसरणशील झकोरों से क्रम से ( अद्रिम्, फलिगम्, वलम्) अखण्ड, सूक्ष्म और बाष्परूप या कण २ रूप जल बरसाने वाले और आकाश के आच्छादक इन तीनों प्रकार के मेघों को ( दरयः ) विदीर्ण या छिन्न-भिन्न कर देते हैं उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! हे ( शक्र ) शक्तिशालिन् ! तू भी ( सः ) वह ( सुष्टुभा ) उत्तम द्रव्य गुण क्रिया से स्थिर करनेवाले (स्तुभा) स्थायी प्रबन्ध से और (सप्त विप्रैः) राष्ट्र को विविध ऐश्वर्यों से पूरनेवाले सात विद्वान् पुरुषों के द्वारा और ( स्वरेण ) बड़े उपदेश से और ( नवग्वैः ) नये-नये प्रदेशों और ज्ञानमार्ग में जानेवाले और ( दशग्वैः ) दश दिशाओं में जानेवाले राज-पुरुषों और (सरण्युभिः) वेग से जानेवाले सैनिकों के द्वारा ( अद्रिम् ) पर्वत के समान अचल और मेघ के समान शस्त्रवर्षी (फलिगम्) फल वाले बाणों के फेंकने वाले योद्धा और (वलम्, बलम्) शस्त्र वर्षा द्वारा आकाश को रोक लेने वाले तथा नगर को घेरने वाले बलवान् शत्रु को ( रवेण ) दुन्दुभि आदि के घोर

शब्द तथा ( स्वर्येण रवेण ) संतापजनक आग्नेयास्त्र के घोर गर्जना से ( दरयः ) भयभीत कर और छिन्न-भिन्न कर। इस मन्त्र में अद्रि, फलिग, और वल ये तीनों नाम मेघ की भिन्न भिन्न दशा के सूचक हैं। इसी प्रकार उस शत्रु की तीन अवस्थाओं को दर्शाते हैं।

गृणानो अङ्गिरोभिर्दस्म वि वरुषसा सूर्येण गोभिरन्धः।
वि भूम्या अप्रथय इन्द्र सानु दिवा रज उपरमस्तभायः ॥ ५ ॥१॥

भा०—जैसे जीव (अंगिरोभिः अन्धः वि वः ) प्राणों के द्वारा अन्न का परिपाक करता है और जिस प्रकार ( उषसा ) दिन के पूर्व भाग, प्रभात द्वारा और सूर्य अपने प्रकाश से ( अन्धः ) अन्धकार को दूर कर देता है उसी प्रकार हे ( दस्म) दर्शनीय ! दुष्टों के नाशक ! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू (अंगिरोभिः) ज्ञानवान् पुरुषों और अग्नि के समान तेजस्वी, बलवान् प्रतापों और सैनिकों से उपदेश करता हुआ और स्तुति किया जाता हुआ ( उषसा ) शत्रु के संताप देनेवाले ( सूर्येण ) अपने तेज से और (गोभिः) आज्ञावाणियों और भूमियों से ( अन्धः) अन्न, ऐश्वर्य को ( वितः ) विशेष रूप से प्रकट कर। अथवा ज्ञान के प्रखर तेजस्वी विद्वान् पुरुष द्वारा और ज्ञानवाणियों द्वारा अज्ञान अन्धकार को दूर कर। हे राजन् ! तू ( भूम्याः ) भूमि के (सानु) उच्च भाग, उत्तम प्रदेश को (वि अप्रथयः) विस्तृत कर। ( दिवः ) आकाश और प्रकाश के समान ( रजः ) विद्वानों की बनी सभा को और (रजः) लोक समूह को और ( उपरम् ) मेघ के समान उन पर ज्ञानों और धनैश्वर्यों के दाता विद्वानों और समृद्ध जनों को भी (अस्तभायः) शिक्षक और पोषक रूप से स्थापित कर। इति प्रथमो वर्गः ॥

तदु प्रयक्षतममस्य कर्म दस्मस्य चारुतममस्ति दंसः।
उपह्वरे यदुपरा अपिन्वन्मध्वर्णसो नद्य१श्चतस्रः ॥ ६ ॥

भा०—जिस प्रकार ( अस्य ) इस ( दस्मस्य ) मेघ को छिन्न-भिन्न तथा दुःखों के नाश करने वाले विजुली रूप इन्द्र का ( तत् उ प्रत्यक्षतमम्

चारुतमम् कर्म दंसः अस्ति ) यही सबसे अधिक प्रशंसनीय और उत्तम कर्म है (यत् उपह्वरे ) कि आकाश में ही ( चतस्रः उपराः ) चारों दिशाएं ( मध्वर्णसः ) मधुर जल से युक्त होकर ( अपिन्वन् ) तृप्त हो जाती हैं और ( मध्वर्णसः नद्यः अपिन्वन् ) मधुर जल से पूर्ण नदियां भी भर जाती हैं। उसी प्रकार ( अस्य दस्मस्य ) शत्रुओं और प्रजापीड़कों के नाश करने वाले दर्शनीय सभा-सेनाध्यक्ष राजा का (तत् उ) यह ही ( प्रत्यक्षतमम् ) अति आदर करने योग्य ( कर्म ) कार्य है और यही ( चारुतमम् दंसः अस्ति ) सबसे श्रेष्ठ, सुखप्रद कर्म है ( यत् ) कि ( उपह्वरे ) इस आश्रय योग्य भू-प्रदेश पर ( चतस्रः उपराः ) चारों दिशाओं की प्रजाएं ( मध्वर्णसः नद्यः इव ) मेघ बरसने पर मधुर जल से भरी नदियों के समान ( अपिन्वन् ) खूब ऐश्वर्य से भरपूर हो जाती और संतुष्ट, तृप्त हो जाती हैं। आचार्य के पक्ष में—अन्धकार के नाशक आचार्य का ( दंसः ) विद्या का उपदेश करना यही पूज्यतम और दर्शनीय सर्वश्रेष्ठ कार्य है कि ( यत् उपह्वरे ) जिसके आश्रय में रहकर ( चतस्रः ) चारों ( उपराः ) सब दिशाओं के वासी जन (मध्वर्णसः) हर्षप्रद ज्ञान से युक्त होकर (अपिन्वन्) संतुष्ट हो जाते हैं।

**द्विता वि व॑व्रे स॒नजा॒ सनी॑ळे अ॒यास्यः॒ स्तव॑माने॒भिर॒र्कैः ।**
**भगो॒ न मेने॑ पर॒मे व्यो॑म॒न्नधा॑रय॒द्रोद॑सी सु॒दंसाः॑ ॥ ७ ॥**

भा०—( अयास्यः ) मुख्य प्राण जिस प्रकार ( अर्कैः ) अन्नों द्वारा ( सनीडे ) एक आश्रय पर रहने वाले ( सनजा ) चिरकाल से विद्यमान, (द्विता) प्राण और अपान दोनों को ( वि वव्रे ) प्रकट करता है और अपने वश रखता है। और जिस प्रकार ( अयास्यः ) मुख्य स्थान पर स्थित सूर्य ( अर्कैः ) किरणों से ( सनीडे ) समान आश्रयवाली ( सनजा ) सदा से विद्यमान आकाश और भूमि ( द्विता ) दोनों को ( वि वव्रे ) विशेष रूप से व्यापता है उसी प्रकार ( अयास्यः ) मुख्य रूप से स्थापित, अनायास समस्त कार्यों को सिद्ध करनेहारा, अथवा बड़े २ युद्ध आदि प्रयत्नों से भी

शत्रु द्वारा वीर सेनापति और सभापति (स्तवमानैः) सत्य ज्ञानों का उपदेश करने वाले, अथवा स्तुत्य (अर्कैः) सूर्य के समान तेजस्वी अर्चनीय विद्वानों और वीर पुरुषों द्वारा, उनकी सहायता से (सनजा) अति शाश्वत काल से चली आई (सनीडे) एक ही आश्रय, राष्ट्रभूमि पर बसनेवाली (द्विता) राजा और प्रजा दोनों वर्गों को (वि वव्रे) विशेषरूप से पालन करता और उन दोनों से स्वयं वरण किया जाता है। (भगः न) सूर्य जिस प्रकार (सुदंसाः) प्रकाश, वर्षा आदि उत्तम कार्यों को करता हुआ (व्योमन्) आकाश में, (रोदसी) आकाश और पृथिवी दोनों को (अधारयत्) धारण और पोषण करता है। उसी प्रकार (भगः) ऐश्वर्यवान् (सुदंसाः) प्रजा के लिए शुभ कार्यों का करने वाला श्रेष्ठ, आचारवान् पुरुष (मेने) मान आदर करने योग्य अपने आश्रय पर उठाये रखने योग्य (रोदसी) राजा प्रजावर्ग दोनों को (परमे व्योमन्) रक्षा करनेहारे सर्वोच्च राजपद पर स्थित होकर (अधारयत्) धारण करे, उनको वश करे।

सना॒द्दिवं॒ परि॒ भूमा॒ विरू॑पे पुन॒र्भुवा॑ युव॒ती स्वेभि॒रेवैः॑ ।
कृ॒ष्णेभि॑र॒क्तोषा रुश॑द्भि॒र्वपु॑र्भि॒रा च॑रतो अ॒न्यान्या॑ ॥ ८ ॥

भा०—(अक्ता) रात्रि (कृष्णेभिः) काले अन्धकार से बने (वपुर्भिः) रूपों से और (उषाः) दिन वेला (रुशद्भिः) कान्तिमय (वपुर्भिः) रूपों से (अन्या-अन्या) एक दूसरे के पीछे क्रम से (आचरतः) आती जाती हैं। और वे दोनों (सनात्) सनातन, अनादिकाल से (विरूपे) एक दूसरे से भिन्न रूप या कान्तिवाली (पुनः-भुवा) पुनः पुनः उत्पन्न होने वाले होकर (स्वेभिः एवैः) अपने आगमनों, व्यवहारों से (दिवं भूमा) सूर्य और पृथ्वी की (परिचरतः) सेवा या परिक्रमा करती अर्थात् उन पर आश्रित हैं। सूर्य के उदय से दिन और पृथ्वी की आड़ से रात्रि उत्पन्न होती हैं। इसी प्रकार (युवती) एक दूसरे से सम्बद्ध होकर युवावस्था में स्थित स्त्रीपुरुष

दोनों ( सनात् ) अनादि कारण से और अनादि काल से (दिवं भूमा परि) सूर्य और पृथ्वी के समान ( स्वेभिः एवैः ) अपने कार्य व्यवहारों से ( परि आचरतः ) आचरण करें । वे दोनों ( विरूपे ) शरीर रचना में एक दूसरे से भिन्न आकृति, रुचि और चेष्टा वाले ( पुनः भुवा ) वार २ एकत्र रहने वाले, तथा सन्तान रूप में पुनः उत्पन्न होने वाले हों । उन दोनों में से स्त्री, (अक्ता) रात्रि के समान (अक्ता) नाना गुणों और प्रेमों को प्रकट करने वाली तथा स्नान, अनुलेपन तथा अभ्यंग और उज्वल आभूषणादि से कान्तिमती होकर ( कृष्णेभिः ) आकर्षण करनेवाले रूपों से युक्त हो । और ( उषा ) दिन या सर्य के समान प्रतिपक्षियों को तापकारी और स्त्री के प्रति कामनावान् अभिलापुक होकर पुरुष ( रुशद्भिः ) उज्वल कान्तिमय ( वपुर्भिः ) स्वरूपों से युक्त होकर रहे । और वे दोनों ( अन्या-अन्या ) एक दूसरे के प्रति ( आचरतः ) सब प्रकार से अनुकूल आचरण करें । इसी प्रकार राजा प्रजा या राजा और भूमि भी सूर्य और पृथिवी या दिन और रात्रि के समान भिन्न रुचि होकर भी अपने व्यवहारों को वार २ मिलावें । ऐश्वर्य आदि आकर्षक गुणों से प्रजा और पराक्रम आदि तेजोमय रूपों से राजा रहे । वे एक दूसरे के उपकार करते रहें ।

सनेमि सख्यं स्वपस्यमानः सूनुर्दाधार शवसा सुदंसाः ।
आमासु चिद्दधिषे पक्वमन्तः पयः कृष्णासु रुशद्रोहिणीषु ॥ ६ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार ( सुदंसाः ) नाना उत्तम कर्मों को करनेवाला अपने ( शवसा ) बल से सबका ( सूनुः ) प्रेरक होकर आकाश और पृथिवी को धारण करता है उसी प्रकार ( सूनुः ) पुत्र भी ( सुदंसाः ) उत्तम सदाचारी होकर ( शवसा ) अपने बल और ज्ञान से माता पिता को (दाधार) भरण पोषण करे, उसी प्रकार राजा (सूनुः) सबका आज्ञापक होकर ( शवसा ) अपने बल, पराक्रम से ( दाधार ) राष्ट्र के शासकवर्ग और शास्य प्रजावर्ग दोनों का पोषण करे । और जिस प्रकार

सूर्य ( सु-अपस्यमानः ) वर्षण आदि उत्तम कर्मों का आचरण करता है ( सनेमि ) सनातन से ( सख्यं दधार ) लोकों पर प्रेम भावनायें रखता है उसी प्रकार राजा भी ( सु-अपस्यमानः ) उत्तम आदर योग्य उपकार करता हुआ ( सनेमि ) पुराने, राजपरम्परा से चले आये ( सख्यं ) मित्रता और प्रेमभाव को सदा बनाये रक्खे। सूर्य जिस प्रकार (आमासु रोहिणीषु अन्तः पक्वं पयः) कच्ची कोमल लताओं में पकने योग्य रस को प्रदान करता है और ( कृष्णासु रोहिणीषु ) खूब रसों को आकर्षण कर लेने वाली गहरे रंग की लताओं में (रुशत् पयः) अति दीप्तिकारक तीव्र रस प्रदान करता है। उसी प्रकार हे राजन् ! तू भी (आमासु रोहिणीषु) अपक्व, सन्तति प्र-सन्तति से बढ़ने वाली प्रजाओं में से कच्ची उमर की प्रजाओं में ( पक्वम् पयः ) पकने योग्य, अन्न के समान अभ्यास द्वारा पका लेने योग्य बल ( दधिषे ) धारण करा। और ( कृष्णासु रोहिणीषु ) शत्रुओं का कर्षण अर्थात् विनाश करने में समर्थ प्रजाओं में ( रुशत् ) अति तेजस्वी उग्र बल (दधिषे) धारण करा।

सुनात्सनीळा अवनीरवाता व्रता रक्षन्ते अमृताः सहोभिः।
पुरू सहस्रा जनयो न पत्नीर्दुवस्यन्ति स्वसारो अह्रयाणम् ॥१०॥२

भा०—( सनीडाः ) एकही आश्रय में रहने वाली ( अवनीः ) भूमिवासिनी प्रजाएं भी ( अवनीः ) अंगुलियों के समान रहकर (सहोभिः) शत्रु पराजयकारी बलों से युक्त होकर ( अमृताः ) कभी नाश को प्राप्त नहीं होतीं। और वे (अवाताः) प्रति पक्ष या प्रबल शत्रु रूप प्रचण्ड वायु से रहित होकर ( व्रता ) अपने २ कर्त्तव्यों और नियम धर्मों का (रक्षन्ते) पालन करती हैं। इसी प्रकार ( सहोभिः अमृताः ) बलों से नाश को न प्राप्त होने वाले विद्वान् और रक्षक भूपति गण ( सनीडाः ) एक ही देश में रहनेवाले (सनात्) सदा ही (व्रतार क्षन्ते) आपस में स्थिर धर्मों, कर्त्तव्यों का पालन करें। ( जनयः ) पुत्रोत्पादक, समर्थ पुरुष ( पत्नीः न ) जिस

प्रकार अपनी स्त्रियों की रक्षा करते हैं उसी प्रकार वे भूपति लोक ( पुरु सहस्रा अवनीः ) सहस्रों भूमियों की रक्षा करें। ( स्वसारः ) बहिनें जिस प्रकार ( अह्रयाणम् ) बिना संकोच के आने जाने वाले बन्धु भाई की ( दुवस्यन्ति ) सेवा सत्कार करती हैं उसी प्रकार ( स्वसारः ) बहिनों के समान, या धनों को प्राप्त करनेवाली वे (अवनयः) प्रजाएं भी (अह्रयाणम्) विना संकोच और भय के शत्रु पर आक्रमण करने वाले वीर नृपति की ( दुवस्यन्ति ) परिचर्या करें, उसके अधीन रहें। इति द्वितीयो वर्गः॥

**सनायुवो नमसा नव्यो अर्कैर्वसूयवो मतयो दस्म दद्रुः।**
**पतिं न पत्नीरुशतीरुशन्तं स्पृशन्ति त्वा शवसावन्मनीषाः॥११॥**

भा०—हे ( दस्म ) दर्शनीय ! हे प्रजा के दुःखों के नाश करने हारे ! तू (नव्यः) स्तुति करने योग्य है। ( उशतीः ) कामना युक्त पत्नियां जिस प्रकार ( उशन्तम् पतिम् स्पृशन्ति ) कामना युक्त अपने पति के पास जातीं और उससे आलिंगन करती हैं उसी प्रकार हे ( शवसावन् ) बलवन् ! ( मनीषाः ) मननशील, विज्ञान युक्त ( सनायुवः ) सनातन से चले आये, अनादि सिद्ध वेद के ज्ञान और कर्मों के करने हारे, ( वसूयवः ) ऐश्वर्य के इच्छुक, ( मतयः ) मननशील, विद्वान् गण ( उशन्तं त्वा ) कान्तिमान्, प्रजा के इच्छुक तुझ ( पतिम् ) प्रजा के पालक को स्वयं ( उशन्तीः ) कामना युक्त होकर ( दद्रुः ) प्राप्त हों और ( स्पृशन्ति ) तुझे बलपूर्वक पकड़ लें, तेरा दृढ़ता से आश्रय लें।

**सनादेव तव रायो गभस्तौ न क्षीयन्ते नोप दस्यन्ति दस्म।**
**द्युमाँ असि क्रतुमाँ इन्द्र धीरः शिक्षा शचीवस्तव नः शचीभिः १२**

भा०—हे ( इन्द्र ) परमेश्वर ! एवं राजन् ! (दस्म) दुःखों और दुष्ट शत्रुओं के नाशक ! ( सनात् एव ) अनादि काल से ( तव गभस्तौ ) तेरे हाथ में, तेरे वश में विद्यमान ( रायः ) ऐश्वर्य ( न क्षीयन्ते ) कभी क्षीण नहीं होते, (न उपदस्यन्ति) वे कभी नाश को प्राप्त नहीं होते। तेरे ऐश्वर्य

सदा अक्षय और अविनश्वर हैं। तू ( द्युमान् ) तेजस्वी ( क्रतुमान् ) कर्म और ज्ञानवान्, ( धीरः ) बुद्धिमान्, ध्यानवान् ( असि ) हो। हे (शचीवः) उत्तम वाणी और उत्तम बुद्धि वाले ! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे विद्वन् ! तू ( तव शचीभिः ) अपनी वाणियों, बुद्धियों और शक्तियों से (नः शिक्ष) हमें शिक्षा प्रदान कर।

सनायते गोतम इन्द्र नव्यमतक्षद् ब्रह्म हरियोजनाय।
सुनीथाय नः शवसान नोधाः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्।१३।३।

भा०—( गोतमः हरियोजनाय नव्यम् ब्रह्म अतक्षत् ) जिस प्रकार अति शीघ्र गमन करने की विद्या में निपुण शिल्पी वेगवान्, दूर देश में ले जाने वाले अश्व और अग्नि आदि साधनों के प्रयोग के लिये नये से नये बड़े ( ब्रह्म ) विज्ञान या रथ को बनाता या आविष्कार करता है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) परमेश्वर ( गोतमः ) विद्वानों में श्रेष्ठ पुरुष ( हरि-योजनाय ) प्राणों को समाधि से एकाग्र करने के लिये ( नव्यम् ) स्तुति योग्य ( ब्रह्म ) ब्रह्म या आत्मज्ञान या वेद-वचन को ( अतक्षत् ) प्राप्त करे, उसका अभ्यास करे। और ( सनायते ) सनातन के समान यथा-पूर्व आचरण करता रहे। हे ( शवसान ) बलवन् ! ( धियावसुः ) बुद्धि-बल और कर्मबल से सबको बसाने वाला विद्वान् धार्मिक ( नोधाः ) ज्ञानी पुरुष ( नः ) हमें ( सुनीथाय ) उत्तम मार्ग में ले जाने के लिये ( प्रातः ) प्रतिदिन, प्रातःकाल ही, या प्रत्येक कार्य के प्रारम्भ में ही ( जगम्यात् ) प्राप्त हो। वह हमें कार्य के प्रारम्भ में ही सचेत करे और शिक्षित करे। इति तृतीयो वर्गः॥

[ ६३ ]

नोधा गौतम ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ७, ९, भुरिगार्षी पङ्क्तिः। विराट् त्रिष्टुप्। ५ भुरिगार्षी जगती। ६ स्वराडार्षी बृहती॥नवर्चं सूक्तम्॥

त्वं म॒हाँ इ॑न्द्र॒ यो ह॒ शुष्मै॒र्द्यावा॑ जज्ञा॒नः पृ॑थि॒वी अमे॑ धाः।
यद्ध॑ ते॒ विश्वा॑ गि॒रय॑श्चि॒दभ्वा॑ भि॒या दृ॒ळ्हासः॑ कि॒रणा॒ नैज॑न्॥१॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! ( त्वम् महान् ) तू महान् है । ( यः ह ) जो निश्चय से ( जज्ञानः ) शक्ति रूप से प्रकट होकर ( शुष्मैः ) नाना बलों से ( द्यावा पृथिवी ) आकाश, सूर्य और भूमि को ( अमे धाः ) केवल गति के आश्रय पर इस महान् आकाश में स्थापित करता है । हे राजन् ! तू महान् है जो ( शुष्मैः ) नाना बलों से ( द्यावा पृथिवी ) सूर्य और पृथिवी दोनों के समान ज्ञानी और अज्ञानी, राज वर्ग और प्रजा वर्ग दोनों को ( अमे ) एक गृह के समान अपने शरण में धारण कर । हे परमेश्वर ! ( ते अभ्वा ) तेरे महान् सामर्थ्य से ( विश्वा गिरयः ) समस्त पर्वत, ( किरणाः ) प्रकाशों को दूर तक फेंकने वाले महान् २ सूर्य भी मानो ( भिया ) भय से ( न ऐजन् ) नहीं कांपते, मर्यादा से विचलित नहीं होते । इसी प्रकार हे राजन् ! ( विश्वा ) समस्त ( दृढासः ) दृढ ( गिरयः ) पर्वत के समान अचल राजा और ज्ञानोपदेशक विद्वान् जन और ( किरणाः ) शत्रुओं पर बाणों की वर्षा करने वाले धनुर्धर भी ( भिया ) मानो तेरे भय से ( न ऐजन् ) नहीं विचलते, तेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं करते । अथवा— [ इवार्थो नकारः किरणाः न ] किरणों के समान ( गिरयः एजन् ) पर्वत के समान दृढ शत्रु भी कांप जाते हैं । आचार्य के पक्ष में—हे आचार्य तू बड़ा है । भूमि और सूर्य के समान स्त्री पुरुषों को अपने ( शुष्मैः ) बलदायक प्रेरकवचनों से ( अमे धाः ) गृह में, गृहस्थ बना कर स्थापित करे । (विश्वाः गिरयः) बड़े पर्वत के समान ऊंचे (किरणाः) विक्षिप्त या चंचल या मदान्ध होकर सब बन्धनों को फेंकने वाले पुरुष भी ( दृढासः न ऐजन् ) दृढ होकर धर्म-मार्ग से विचलित नहीं होते ।

आ यद्धरी॑ इन्द्र॒ विव्र॑ता॒ वेरा ते॒ वज्रं॑ जरि॒ता बा॒ह्वोर्धा॑त्।

येनाविहर्यतक्रतो अमित्रान्पुर इष्णासि पुरुहूत पूर्वीः ॥ २ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! सभापते ! सेनापते ! (यत्) जब तू ( विव्रता ) विविध व्रतों और शीलों के पालन करने वाले ( हरी ) उत्तम व्यवहारों के प्रवर्त्तक न्याय व्यवस्था और सेनाविभाग दोनों को ( हरी ) रथ में दो अश्वों के समान राष्ट्र के सञ्चालन के लिये ( वेः ) प्राप्त करे और उनको संचालित करे तभी ( गिरयः ) विद्वान् पुरुष, प्रस्तोता-जन ( ते बाह्वोः ) तेरी बाहुओं में ( वज्रम् ) शासन दण्ड को ( धात् ) धारण करावे, अर्थात् शासन के अधिकार तुझे सौंपता है। ( येन ) जिस अधिकार बल से हे ( अविहर्यत क्रतो ) अविरुद्ध, सबके प्रति हितजनक उत्तम कार्यों और प्रज्ञाओं के स्वामिन् ! हे ( पुरुहुत ) सबसे स्तुति योग्य ! तू ( अमित्रान् ) शत्रुओं और ( पूर्वीः ) अपने राज्यारोहण से पूर्व के शत्रु राजाओं के ( पुरः ) नगरों पर ( इष्णासि ) चढ़ाई कर। राजा सभापति और सेनापति अभिषेक के बाद रथारोहण के समय शासन दण्ड अपने हाथ में ले और पूर्व विद्यमान शत्रुओं पर दिग्विजय के लिए निकले।

त्वं सत्य इन्द्र धृष्णुरेतान्त्वमृभुक्षा नर्यस्त्वं षाट्।
त्वं शुष्णं वृजने पृक्ष आणौ यूने कुत्साय द्युमते सचाहन् ॥ ३ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! सभा-सेनापते ! तू (सत्यः) सज्जनों में श्रेष्ठ, सत्य व्यवहारवाला होकर ( एतान् धृष्णुः ) इन समस्त शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ हो। ( ऋभुक्षाः ) सत्य से भासित, महान् सामर्थ्यवाले विद्वानों और बड़े तेजस्वी वीरों और शिल्पियों के बीच में उनका स्वामी होकर रहने वाला, सबसे महान्, ( नर्यः ) सब नरों में श्रेष्ठ, सबका हितकारी, उत्तम नेता (त्वं षाट्) तू सबको पराजय करनेवाला बलवान् हो। तू ( वृजने ) शत्रुओं को वर्जन करनेवाले, ( पृक्षे ) मित्र शत्रु सबको एकत्र मिला देने वाले, घमासान ( आणौ ) अतितुमुल युद्ध में ( यूने ) जवान, ( कुत्साय ) वज्रधर शस्त्रास्त्र से युक्त ( द्युमते ) तेजस्वी

सेना बल को ( शुष्णम् ) अपना बल प्रदान कर और (सचा) एक समवाय या संघशक्ति से आक्रमण करके ( अहन् ) शत्रुओं का नाश कर। अथवा (वृजने यूने शुष्णं आधाय अहन् ) शत्रुओं को परे हटाने के काम में जवानों में बल देकर शत्रुओं का नाश कर। (पृक्षे कुत्साय) जा भिड़ने के काम में खड्गधारी बल को उत्तेजित कर और ( आणौ ) घोर गर्जनायुक्त तोपों की लड़ाई में ( द्युमते ) कान्तियुक्त आग्नेय अस्त्रों के वेत्ता पुरुषों को अधिकार और बल देकर शत्रुओं का नाश कर। अथवा—जवान शस्त्रधर और तेजस्वी पुरुषों के बल से प्रजा के शोषणकारी शत्रु का नाश कर।

त्वं ह॒ त्यदि॑न्द्र चोदीः॒ सखा॑ वृ॒त्रं यद्व॑ज्रिन्वृषकर्मन्नु॒भ्नाः।
यद्ध॑ शूर वृषमणः परा॒चैर्वि दस्यूँ॒र्योना॒वकृ॑तो वृथा॒षाट् ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! सेनापते ! ( ह ) निश्चय से ( त्वम् ) तू ही ( त्यत् ) उस दूरस्थ ( वृत्रम् ) मेघ के समान उमड़ते हुए शत्रु को भी ( पराचैः चोदीः ) दूर से ही परास्त कर। हे ( वृषकर्मन् ) वर्षणशील मेघ के समान प्रजाओं पर सुखों और शत्रुओं पर शस्त्र अस्त्रों की वर्षा करने हारे ! हे (वज्रिन्) उत्तम शस्त्र अस्त्रों से युक्त ! तू (सखा) सबका मित्र है। हे ( शूर ) शूरवीर ! हे ( वृषमनः ) शूरवीरों के समान उदारचित्त वाले ! अथवा शूरों की व्यवस्था को जानने हारे ! उनकी वृद्धि में दत्तचित्त ! ( यत् ह ) जिससे तू ( वृथाषाट् ) अनायास ही शत्रुओं को पराजय करने में समर्थ होकर ( दस्यून् ) प्रजा पीड़कों को ( योनौ ) उनके घर में ही ( वि अकृतः ) विविध उपायों से छेदता भेदता है, इसलिये तू आदर करने योग्य है।

त्वं ह॒ त्यदि॑न्द्रारि॑षण्यन्दृ॒ळ्हस्य॑ चि॒न्मर्ता॑नामजुष्टौ।
व्य१॒॑स्मदा काष्ठा॒ अर्व॑ते वर्घ॒नेव॑ वज्रिञ्छ्नथिह्यमित्रा॑न् ॥ ५ ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) शत्रुहन्तः ! राजन् ! सभाध्यक्ष ! ( त्वम् ) तू ( त्यत् ) उस ( दृढस्य ) दृढ, प्रबल शत्रु ( अरिषण्यन् ) स्वयं न मारना

चाहता हुआ भी ( चित् ) केवल ( मर्त्तानाम् अजुष्टौ ) प्रजा पुरुषों के अप्रीतिकारक होने से ( काष्ठाः ) दिशाओं के विजय के लिये ( अस्मद् अर्वते ) हमारे घोड़ों के लिये (वि वः) मार्ग खोल, उनको विजय करने की आज्ञा दे। हे (वज्रिन्) वीर्यवन् बलशालिन् (घनाइव) जिस प्रकार हतौड़ों से दृढ़ लोह को भी कूट डाला जाता है उसी प्रकार ( घना ) शत्रुओं को हनन करने वाले नाना राजनैतिक साधनों से ( अमित्रान् ) शत्रुओं का ( श्नथिहि ) नाश कर।

त्वां ह त्यदिन्द्रार्णसातौ स्वर्मीळ्हे नर आजा हवन्ते।
तव स्वधाव इयमा समर्य ऊतिर्वाजेष्वतसाय्या भूत् ॥ ६ ॥

भा०—हे (इन्द्र) वीर! शत्रुहन्तः! ऐश्वर्यवन्! सेनापते! परमेश्वर! राजन्! ( अर्णसातौ ) जलों के प्राप्त कराने और ( स्वर्मीढे ) जल के वर्षण आदि के अवसर पर जिस प्रकार लोग विद्युत् और मेघों को ला बरसाने वाले वायुओं को चाहते हैं उसी प्रकार ( नरः ) वीर नायक पुरुष ( अर्णसातौ ) धन प्राप्त कराने वाले ( स्वर्मीढे ) सुखों के वर्षण करने वाले ( आजौ ) युद्धकाल में ( त्यत् त्वा ह ) तुझ को ही ( हवन्ते ) पुकारते और स्मरण करते हैं। हे ( स्वधावः ) स्वयं समस्त राष्ट्र के धारण करने के सामर्थ्य से युक्त! हे वज्रवन्! हे जलों के धारक मेघ के समान अन्नों के स्वामिन्! हे जीवों के स्वामिन्! (समर्ये) संग्राम में (वाजेषु) और ऐश्वर्य और अन्नादि के प्राप्त करने के अवसरों में ( तव ) तेरा ( इयम् ) यह ( ऊतिः ) प्रजा के रक्षा करने का कार्य ( अतसाय्या भूत्) बराबर चलता रहे।

त्वं ह त्यदिन्द्र सप्त युध्यन्पुरो वज्रिन्पुरुकुत्साय दर्दः।
बर्हिर्न यत्सुदासे वृथा वर्गंहो राजन्वरिवः पूरवे कः ॥ ७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! सेनापते! हे ( वज्रिन् ) उत्तम शस्त्र समूह के स्वामिन्! हे ( राजन् ) तेजस्विन् राजन्! ( त्वं ह ) तू निश्चय से ( युद्धयन् ) युद्ध करता हुआ ( पुरुकुत्साय ) बहुतसे शस्त्रास्त्रों के स्वामी,

या बहुतसे शत्रुओं को उखाड़ देने वाले वीर राजा के लिए, अथवा ( पुरुकुत्साय ) बहुतसे शत्रुओं के आक्रमणों से पीड़ित और (सुदासे) उत्तम २ ऐश्वर्यों के देने वाले, ( अंहः ) विजय करने और प्राप्त करने योग्य राष्ट्र के ( पूरवे ) समस्त प्रजाजन को पालन करने वाले जनपदवासी राज प्रजावर्ग की रक्षा के लिए ( सप्त ) सभा, सभासद, सभापति, सेना, सेनापति, भृत्य और प्रजागण इन सातों, अथवा सहायकगण, साधन और साम, दान, भेद और दण्ड और देश विभाग और काल विभाग इन सातों के द्वारा अथवा स्वामी, अमात्य, सुहृत्, कोष, राष्ट्र और दुर्ग और सेनाबल इन सातों के द्वारा शत्रु के इन सातों को और उसके ( पुरः ) नगरियों, गढ़ों और क़िलों को ( दर्दः ) तोड़ फोड़ डाल।

त्वं त्यां न॑ इन्द्र देव चि॒त्रामिष॒मापो॒ न पी॑पयः॒ परि॑ज्मन् ।
यया॑ शूर॒ प्रत्य॒स्मभ्यं॒ यंसि॒ त्मन॒मूर्जं॒ न वि॒श्वध॒ क्षर॑ध्यै ॥ ८ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) राजन् ! वीर सेना-सभाध्यक्ष ! जिस प्रकार मेघ या विद्युत् ( परिज्मन् ) इस पृथ्वी के ऊपर ( आपः ) जलों को वर्षाता, सबको बढ़ाता है। ( त्मनं ऊर्जं क्षरध्यै यंसि ) जल के रूप में सब तरफ़ बहने के लिए अपने को त्याग देता है उसी प्रकार हे ( देव ) दानशील राजन् ! ( त्वं ) तू भी ( परिज्मन् ) इस पृथिवी पर ( आपः न ) जलों के समान ( त्यां ) उस उस, नाना प्रकार की ( चित्राम् ) अद्भुत २ ( इषम् ) अन्न समृद्धि, तथा सेनाओं को ( पीपयः ) बढ़ा। हे ( शूर ) शूरवीर ! ( यया ) जिसके द्वारा तू ( अस्मभ्यम् ) हमारे उपकार और रक्षा के लिए ( त्मनम् ) अपने को ( ऊर्जं न ) अन्न के समान (प्रतियंसि) दूसरों के उपकारार्थ समर्पित करता है अर्थात् जिस प्रकार अन्न अपनी सत्ता को खोकर अन्य प्राणियों के देहों को पुष्ट करता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू हम प्रजाओं की रक्षा और पुष्टि के लिए युद्धादि में अपने आप को बलि कर। हे (विश्वध) समस्त राष्ट्र को धारण करनेहारे ! तू ( ऊर्जं न ) अन्न और

जल के समान ही ( क्षरध्यै ) बहने और सर्वत्र पराक्रम और त्याग द्वारा बरसने के लिए तैयार रह ।

अकारि त इन्द्र गोतमेभिर्ब्रह्माण्योक्ता नमसा हरिभ्याम् ।
सुपेशसं वाजमा भरा नः प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥६॥५॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! ( गोतमेभिः ) उत्तम किरणों से जिस प्रकार ( नमसा ) अन्न की वृद्धि के साथ साथ (ब्रह्माणि ) ऐश्वर्य और नाना सुख भी उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार ( गोतमेभिः ) विद्वान्गण ( ते हरिभ्याम् ) तेरे हरणशील अश्वों के समान आगे बढ़नेवाले बल और पराक्रम दोनों की वृद्धि के लिए ( नमसा ) आदर सत्कार और अन्नादि के साथ साथ ( ब्रह्माणि ) स्तुति, ज्ञानोपदेश और नाना धन भी ( अकारि ) प्रस्तुत करते हैं । तू ( नः ) हमारे लिए ( धियावसुः ) कर्म शक्ति और प्रज्ञा के बल से स्वयं प्रजा में रहने और राष्ट्र में सुख से प्रजा के बसाने वाला होकर ( प्रातः ) प्रति दिन या शीघ्र ही, या अपने राज्य के प्रारम्भ काल में ही (सुपेशसम्) उत्तम सुवर्ण आदि धनों और गौ आदि पशुओं से सम्पन्न ( वाजम् ) ऐश्वर्य को (आभर) प्राप्त करा । और ( मक्षू ) शीघ्र ही ( जगम्यात् ) हमें पुनः २ प्राप्त हो । इति पञ्चमो वर्गः ॥

[ ६४ ]

नोधा गौतम ऋषिः ॥ अग्निर्मरुतश्च देवताः । छन्दः—१, ४, ६, ९ विराड् जगती । २, ३, ५, ७, १०—१३ निचृज्जगती । ८, १४ जगती । १५ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

वृष्णे शर्धाय सुमखाय वेधसे नोधः सुवृक्तिं प्र भरा मरुद्भ्यः ।
अपो न धीरो मनसा सुहस्त्यो गिरः समञ्जे विदथेष्वाभुवः ॥१॥

भा०—हे ( नोधः ) यथार्थ सत्य विज्ञान के उपदेश और प्रवचन को धारण करने हारे विद्वन् ! तू ( वृष्णे ) जल वर्षण करने वाले मेघ और

( शर्धाय ) घोर गर्जन करने वाले विद्युत्, ( सुमखाय ) पृथ्वी से सूर्य की किरणों द्वारा जल का वायु में आना और फिर वृष्टि द्वारा बरसना, अन्न का उत्पन्न होना, पुनः प्राणियों द्वारा खाया जाकर जीव सन्तति रूप से उत्पन्न होना आदि उत्तम यज्ञ के लिये और (वेधसे) विविध जल आदि पदार्थों के धारण करने के लिये ( मरुद्भ्यः ) वायुओं की ( सुवृक्तिम् ) उत्तम रीति से अज्ञान को दूर करने वाली स्तुति या वर्णन (प्र भर) कर। इसी प्रकार ( वृष्णे ) सब सुखों के वर्षाने वाले राजा की वृद्धि के लिये, (शर्धाय) राष्ट्र की बल वृद्धि के लिये, ( सुमखाय ) राष्ट्र में उत्तम यज्ञों, धार्मिक कार्यों के सम्पादन के लिये और ( वेधसे ) राष्ट्र में विविध ऐश्वर्यों और व्यवस्थाओं के धारण के लिये ( मरुद्भ्यः ) विद्वान् और वायु के समान बलशाली वीर पुरुषों के ( सुवृक्तिम् ) उत्तम, दोष निवारक गुण स्तुति को ( प्र भर ) प्रकट कर। ( धीरः ) बुद्धिमान् पुरुष जिस प्रकार ( मनसा ) मनसे विचार कर ( गिरः ) ज्ञान वाणियों को प्रकट करता है और ( सुहस्त्यः ) उत्तम हस्त क्रियाओं में कुशल पुरुष जिस प्रकार (अपः न ) नाना कर्मों, विज्ञानों तथा हाथों द्वारा बनाये जाने योग्य उत्तम शिल्पों को प्रकट करता है उसी प्रकार मैं ( सुहस्त्यः ) उत्तम हस्त क्रियाओं में कुशल, सिद्धहस्त होकर ( विदथेषु ) संग्राम आदि कार्यों में (आभुवः) सब तरफ़ सामर्थ्य प्रकट करने वाले, (अपः) कर्म कौशलों और शस्त्र संचालन, सेना संचालन आदि क्रियाओं को ( सम् अञ्जे ) प्रकट करूं और मैं ही (धीरः) धीर, संयमी, वाग्मी होकर ( मनसा ) ज्ञानपूर्वक ( आभुवः ) सब प्रकार से सफल होने वाली ( गिरः ) आज्ञाओं और वाणियों का ( सम् अञ्जे ) प्रकाश करूं।

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वास उक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः।
पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो न द्रप्सिनो घोरवर्पसः ॥२॥

भा०—( ते ) वे वायुओं के समान ही प्रबल, वीर और विद्वान् जन

(दिवः) सूर्य के प्रकाश से प्रेरित होकर जिस प्रकार वायुएं प्रबल हो जाती हैं उसी प्रकार ज्ञान प्रकाश से युक्त आचार्य और तेजस्वी राजा या सेनापति से दीक्षित और प्रेरित होकर ( ऋष्यासः ) अन्यों को ज्ञान देने वाले, विद्वान् तथा शत्रुओं को मारने वाले अति उग्र हो जाते हैं। और (रुद्रस्य) समष्टि प्राण के अधीन रह कर ज्ञानोपदेष्टा के शिष्य भी ( उक्षणः ) ज्ञानसुखों के वर्षक एवं वीर्यवान् वृषभों के समान विशाल काय वाले और ( रुद्रस्य उक्षणः ) वीर जन शत्रुओं को रुलानेवाले सेनापति के अधीन मेघ के समान शस्त्रास्त्रों के वर्षण करने वाले हों। वे (मर्याः) मर्द, जवान ( असुराः ) बलवान्, प्राणों में रमण करने वाले, प्राणायाम के अभ्यासी और (असुराः) शत्रु सेनाओं को उखाड़ फेंकनेवाले, ( अरेपसः ) पापरहित, स्वच्छचित्त, ( पावकासः ) किरणों और अग्नि के समान तेजस्वी, पवित्र-कारक, ( शुचयः ) मन, वाणी, काय, तीनों में शुद्ध, ( सूर्याः इव ) सूर्य की किरणों के समान तेजस्वी ( सत्वानः न ) हस्ती आदि बलवान् प्राणियों के समान बलवान् और सात्विक गुणों वाले, ( द्रप्सिनः ) वीर्यवान्, मेघों के समान ज्ञान-जलों के वर्षक (घोरवर्पसः) भयानक, या शान्तिदायक स्वरूप वाले, भयप्रद और अभय ( जज्ञिरे ) बनकर रहें।

युवा॑नो रु॒द्रा अ॒जरा॑ अभो॒ग्घनो॑ वव॒क्षुरध्रि॑गावः॒ पर्व॑ता इव।
दृ॒ळ्हा चि॒द्विश्वा॒ भुव॑नानि॒ पार्थि॑वा॒ प्र च्या॑वयन्ति दि॒व्यानि॑ म॒ज्मना॑ ॥३॥

भा०—( युवानः ) युवा, बलशाली, ( रुद्राः ) दुष्टों को रुलाने हारे, (अजराः) कभी जीर्ण या दुर्बल न होने हारे (अभोग्धनः) किसी के अधीन होकर भोग्य और दण्डनीय न होने वाले ( अध्रिगावः ) शत्रुओं से असह्य वेगवान्, ( पर्वताः इव ) पर्वतों के समान अचल वीरगण (विश्वा) समस्त ( दिव्यानि ) दिव्य, आकाशस्थ और ( पार्थिवा ) अथवा राजसभा और साधारम प्रजा के ( दृढा ) दृढ़ ( भुवनानि ) समस्त जनों को ( यत् ) भी ( मज्मना ) अपने बल से ( प्र च्यावयन्ति ) विचलित कर देने वाले हों।

प्राण-वायुओं और वायुओं के पक्ष में—( युवानः ) शरीर में रसों के मिलाने और तप्त करनेहारे, बलशाली ( रुद्राः ) मरण, ज्वर आदि पीड़ा द्वारा प्राणियों को रुलाने वाले, ( अभोग्-घनाः ) अन्न के समान भोग्य बनकर और दबकर न रहने वाले ( अध्रिगावः ) असह्य तीव्र वेगवाले अथवा प्रकाश किरणों को न धारण करने या न रोकनेवाले, (पर्वताः इव) पर्वतों या मेघों के समान शरीरादि के या जीवन जलों के धारक होकर ( दिव्यानि पार्थिवा ) पृथिवी और तेज दोनों के बने विकार ( दृढ़ा ) कठिन रूप में आये हुए ( भुवनानि ) सबके मूल कारणों की ( प्रच्यावयन्ति ) संचालित करते हैं ।

चित्रैरञ्जिभिर्वपुषे व्यञ्जते वक्षःसु रुक्माँ अधि येतिरे शुभे ।
अंसेष्वेषां नि मिमृक्षुर्ऋष्टयः साकं जज्ञिरे स्वधया दिवो नरः ॥४॥

भा०—( दिवः ) तेजस्वी राजा के ( नरः ) नायक, वीरगण, (चित्रैः) नाना प्रकार के ( अंजिभिः ) अपने को प्रकट करने वाले चिह्नों, अंकों या पोशाकों और बैजों द्वारा (वपुषे) अपने शरीर को (वि अञ्जते) विविध रूप से प्रकट करते या सजावें । और ( शुभे ) शोभा के निमित्त वे अपने (वक्षःसु) छातियों पर ( रुक्मान् ) स्वर्णपदकों को ( येतिरे ) लगावें । और (एषां अंसेषु ) इनके कन्धों पर ( ऋष्टयः ) शत्रुनाशक हथियार, दण्ड, भाले आदि ( नि मिमृक्षुः ) शोभा देवें । वे ऐसे ( स्वधया ) पृथिवी के विजय और पालन की शक्तिकेसाथ (साकम्) एक साथ (जज्ञिरे) प्रकट हों । प्राण वायुओं के पक्ष में—( चित्रः ) अद्भुत क्रिया करने वाले ( अंजिभिः ) प्रकट करने की चेष्टा प्रकट करने वाले, ( वपुषे ) शरीर के धारण पोषण कारी रूप को प्रकट करने के लिए ( वि अंजते ) विविध रूपों में दृष्टिगोचर होते हैं । और वे ( शुभे ) शोभा के लिए ( वक्षःसु ) छातियों में, अपने बीच वायुगण ( रुक्मान् ) रोचक, दीप्तिमान् विद्युत् । जठराग्नि आदि पदार्थों को धारण करते हैं । इनके ( अंसेषु ) बल पराक्रमों पर ( ऋष्टयः ) शरीर

की नाना गतियें ( निमृमृक्षुः ) निरन्तर होती रहती हैं । और वे (दिवः) चेतना ज्ञान के ( नरः ) नायक प्राणगण ( स्वधया ) स्व अर्थात् शरीर को धारण करने वाली चेतना शक्ति के साथ ( जज्ञिरे ) प्रकट होते हैं ।

ईशानकृतो धुनयो रिशादसो वातान्विद्युतस्तविषीभिरक्रत ।
दुहन्त्यूधर्दिव्यानि धूतयो भूमिं पिन्वन्ति पयसा परिज्रयः ॥५॥६॥

भा०—( १ ) वीर सैनिकगण ( ईशानकृतः ) राजा को समस्त राष्ट्र का शासक बना देनेहारे, ( धुनयः) शत्रुओं को कंपा देनेहारे, (रिशादसः) हिंसकों को हिंसा करने या उनको उखाड़ फेंकनेवाले होकर ( तविषीभिः ) अपने बलों या बलवान् अस्त्रशस्त्रों से ( वातान् ) प्रचण्ड वायु के झकोरों और ( विद्युतः ) विद्युत् के समान आघातकारी अस्त्रों को भी ( अक्रत ) प्रयोग करें । ( ऊधः ) दुग्ध रस का इच्छुक पुरुष जिस प्रकार गाय के थानों को दोहता है उसी प्रकार वे ( धूतयः ) शत्रुओं को कंपानेहारे वीर पुरुष ( भूमिम् ) भूमि रूप गौ से ( दिव्यानि ) नाना दिव्य पदार्थों शक्तियों और सारयुक्त ओषधियों को ( दुहन्ति ) प्राप्त करें । और वे ( परिज्रयः ) सब देशों और स्थानों में जानेहारे विद्वान् वीरजन (पयसा) दूध से जिस प्रकार बालक को पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार और जल जिस प्रकार क्षेत्र को सींचता है उसी प्रकार ( भूमिं ) भूमि को ( पयसा ) पुष्टिकारक अन्नादि पदार्थों और ऐश्वर्य से ( पिन्वन्ति ) सेंचन करते हैं, उसे पुष्ट करते हैं । (२) वायुओं के पक्ष में—वायुगण, सामर्थ्यवान् प्राणों के उत्पादक होने से 'ईशान् कृत' हैं । घातक रोगों के नाश करने से 'रिशादस' हैं, वृक्षों को कंपाने से 'धुनि' हैं, वे ही प्रचण्डवात और मेघों में विद्युतों के उत्पन्न करते हैं । वे (ऊधः) रात्रि काल में (दिव्यानि) आकाशस्थ जलों को अन्तरिक्ष से ओसरूप में दोहते हैं या आकाश रूप गौ के मेघरूप पयोधरों से जलों को दोहते हैं । और ( पयसा ) जल

से और पुष्टिप्रद अन्न से भूमि को सींचते और पूर्ण कर देते हैं। मेघों को कंपाने से 'धुति' हैं और सर्वत्र गमन करने से 'परिज्रि' हैं।

पिन्वन्त्यपो मरुतः सुदानवः पयो घृतवद्विदथेष्वाभुवः।
अत्यं न मिहे वि नयन्ति वाजिनमुत्सं दुहन्ति स्तनयन्तमक्षितम् ॥६॥

भा०—जिस प्रकार (मरुतः) वायुगण (अपः) जलों को (पिन्वन्ति) मेघों में पूर्ण करते और भूमियों पर सेचन करते हैं और (सुदानवः) उत्तम जलप्रद और (आभुवः) सर्वत्र विद्यमान रहते हैं। उसी प्रकार उत्तम, वीर जन भी ( विदथेषु ) यज्ञादि उत्तम कार्यों में और युद्धों में ( आभुवः ) सब प्रकार से सामर्थ्यवान् और ( सुदानवः ) उत्तम रीति से शत्रुओं के खण्डन और प्रजा के पालन करने वाले, दानशील (मरुतः) और वायुवत् तीव्र वेगवान् होकर (घृतवत् पयः) घृत से युक्त दुग्ध और अन्न का और (अपः) जलों का ( पिन्वन्ति ) सेवन करते हैं, राष्ट्र में इन पदार्थों की ही वृद्धि करते हैं। (न) जिस प्रकार (वाजिनम्) वीर्यवान्, बलवान् ( अत्यम् ) वेगवान् अश्व को ( मिहे ) वीर्य सेंचन के कार्य के लिए ( वि नयन्ति ) घोड़ी के पास ले जाते हैं और जिस प्रकार वायुगण ( वाजिनम् ) वेग से आने वाले या अन्न के उत्पादक मेघ को अश्व के समान ( मिहे ) वृष्टि करने के लिए ( वि नयन्ति) विविध दिशाओं में ले जाते हैं उसी प्रकार वीर पुरुष भी ( वाजिनम् ) बलवान्, पराक्रमी, युद्धविजयी, अन्नादि ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति को भी ( मिहे ) शत्रु पर शस्त्रों और प्रजा पर सुखों की वर्षा करने के लिए ( वि नयन्ति ) प्राप्त करें या विद्वान् जन उनको ( विनयन्ति ) विशेष रूप से शिक्षित करें। ( उत्सं ) जिस प्रकार मनुष्य कूप से जल को प्राप्त करते हैं और जिस प्रकार वायुगण ( स्तनयन्तम् ) गर्जना करते हुए या आकाश रूप गोमाता के स्तनों के समान विद्यमान ( अक्षितम् ) अक्षय मेघ से जलों को दोहते हैं उसी प्रकार वीर प्रजाजन भी ( उत्सं ) उत्तम ऐश्वर्यों और पदों को प्राप्त करने वाले

( स्तनयन्तम् ) सिंहनाद करते हुए ( अक्षितम् ) अक्षय कोष के समान अक्षय बलवाले, अथवा कभी क्षणी न होने वाले अमर, दीर्घजीवी, बलवान् पुरुष से ( दुहन्ति ) ऐश्वर्य और सामर्थ्य को दोहते या प्राप्त करते हैं।

म॒हि॒षासो॑ मा॒यिन॑श्चि॒त्रभा॑नवो गि॒रयो॒ न स्वत॑वसो रघु॒ष्यदः॑।
मृ॒गा इ॑व ह॒स्तिनः॑ खादथा॒ वना॒ यदारु॑णीषु॒ तवि॑षी॒रयु॑ग्ध्वम् ॥७॥

भा—हे वीर पुरुषो! आप लोग (महिषासः) बड़े बलवान्, (मायिनः) अति बुद्धिचातुरी से युक्त, ( चित्रभानवः ) अद्भुत कान्तिमान्, ( गिरयः न ) पर्वतों और मेघों के समान ( स्वतवसः ) अपने पराक्रम पर खड़े होने वाले, ( रघुष्यदः ) अति वेग से जानेवाले हों। ( यत् ) जब आप लोग (अरुणीषु) लाल वर्ण वाली, तेजस्विनी, या सुख देनेवाले रथों, यानों की बनी सेनाओं में (तवीषीः) समस्त बलों या सैन्यदलों को (अयुग्ध्वम्) जोड़ दें। तब भी ( हस्तिनः ) हाथी नामक ( मृगाः ) पशु जिस प्रकार ( वनानि ) जंगलों को खा जाते या उपभोग करते हैं उनको तहस नहस करते हैं उसी प्रकार तुम भी (हस्तिनः) क्रियाकुशल और सिद्धहस्त बनकर ( मृगाः ) शत्रुओं को खोजनेवाले होकर ( वना ) शत्रु सेनासमूहों को (खादथ) विनाश करो और (वना) भोग्य ऐश्वर्यों को (खादथ) भोग करो। वायुपक्ष में—वायुगण बड़े सामर्थ्य वाले, भूमि पर बहनेवाले (मायिनः) कुटिलगामी, अद्भुत दीप्तिवाले, नाना अग्नियों वाले, ( गिरयः ) जलों को अपने भीतर लेनेवाले, स्वतः बलवान्, वेग से जानेवाले हैं। वे भी हाथियों के समान वनों को वेग से तोड़ते फोड़ते हैं और वे (अरुणीषु) प्रातःवेलाओं में बलों को प्राप्त करावें।

सिं॒हा इ॑व नानदति॒ प्रचे॑तसः पि॒शा इ॑व सु॒पिशो॑ वि॒श्ववे॑दसः।
क्षपो॒ जिन्व॑न्तः॒ पृष॑तीभिर्ऋ॒ष्टिभिः॒ समित्स॒बाधः॒ शव॒साहि॑मन्यवः॥८॥

भा०—(प्रचेतसः) उत्कृष्ट और बहुत अधिक ज्ञानवाले विद्वान्, वीर पुरुष (सिंहाः इव) शेरों के समान बलवान्, पराक्रमी होकर ( नानदति )

गर्जना करें। और वे (विश्ववेदसः) समस्त ऐश्वर्यों के स्वामी और समस्त विद्याओं के जाननेहारे, (सुपिशः) उत्तम, सुदृढ़ अंगों वाले होकर (पिशाः इव) बलवान् शरीरों वाले गजों के समान गम्भीर वेदी हों। (क्षपः) रात्रियां जिस प्रकार (पृषतीभिः) सेचनेवाली जलबिन्दु-पंक्तियों से भूमि को छा देती हैं उसी प्रकार ये वीर भी (क्षपः) शत्रुओं का नाश करनेहारे होकर (ऋष्टिभिः) आयुधों से (जिन्वन्तः) पृथ्वी का विजय करते हुए (सबाधः) एकसाथ शत्रुओं को पीड़न करनेवाले, (अहिमन्यवः) सर्प के क्रोध के समान शत्रु के एक ही वार में प्राण हरण करनेवाले कोप से युक्त अथवा (अहिमन्यवः) उत्तम कोप और उत्तम ज्ञानवाले, अति उग्र और अति बुद्धिमान् होकर (सम् इत्) एक साथ ही युद्ध में (शवसा) बल से जावें। वायुपक्ष में—(प्रचेतसः) उत्तम ज्ञान और चेतना के देने वाले, (सुपिशः) उत्तम रीति से सुखजनक अवयवों वाले (विश्ववेदसः) उत्तम ऐश्वर्यों और ज्ञानों के देनेवाले, (पृषतीभिः) सेचन करनेवाली (ऋष्टिभिः) वेगवान् मेघमालाओं से रात्रि के समान भूमियों के सेचते हुए, (सबाधः) एक साथ (अहिमन्यवः) मेघों को लानेवाले होकर (शवसा सम्) बल से हमें भली प्रकार प्राप्त हों।

**रोद॑सी॒ आ व॑दता गणश्रियो॒ नृषा॑चः शूराः॒ शव॒साहि॑मन्यवः।**
**आ ब॒न्धुरे॑ष्व॒मति॒र्न द॑र्श॒ता वि॒द्युन्न त॑स्थौ मरुतो॒ रथे॑षु वः ॥६॥**

भा०—हे (मरुतः) विद्वान् पुरुषो और वीर पुरुषो! हे (गणश्रियः) सैन्यगणों को अपने आश्रय या अधीन रखने वाले या गणों, जनों, सेना समूहों से शोभा देनेवाले! हे (नृषाचः) वीर नायकों के अधीन समवाय, संगठन बनाकर रहने वाले, (शूराः) शूरवीर (अहिमन्यवः) सर्प के समान शत्रु के प्राणहारी क्रोधवाले! या मेघ के समान अमित मन्यु, क्रोध या ज्ञानवाले या अक्षय या उत्तम ज्ञान और उद्वेग वाले वीर विद्वान् पुरुष! आप लोग (रोदसी) सूर्य और भूमि के समान राजा

और प्रजा दोनों वर्गों को ( शवसा ) अपने बल और ज्ञान सामर्थ्य से (आ वदत) सर्वत्र उपदेश करो अपने गुणों को बतलाओ। और हे विद्वानो! और वीरो! आप सब लोग ( अमतिःन ) सुन्दर रूप के समान दर्शनीय और ( विद्युत् न ) विद्युत् के समान अपनी कान्ति से स्वतः देखने योग्य होकर ( बन्धुरेषु ) दृढ़ बन्धनों से बंधे ( रथेषु ) रथों पर ( वः ) तुम्हारा पराक्रम ( तस्थौ ) स्थिर हो। विद्वानों का ज्ञान ( रथेषु ) रमण करने योग्य आत्मानन्द रूप रसों में या रमण योग्य प्राणों या देहों में सुन्दर रूप विद्युत् के समान मनोहर और दीप्ति रूप से विराजे। अथवा—[ एक नकारः पादपूरणार्थ है। ] विद्युत् आदि अस्त्र ही तुम्हारा (अमतिः) दर्शनीय रूप के समान उज्ज्वल रहे।

विश्ववेदसो रयिभिः समोकसः संमिश्लासस्तविषीभिर्विरप्शिनः। अस्तार इषुं दधिरे गभस्त्योरनन्तशुष्मा वृषखादयो नरः ॥१०॥७॥

भा०—( विश्ववेदसः ) समस्त ऐश्वर्यों और ज्ञानों के स्वामी या विश्व को जानने, उसे और धन रूप में प्राप्त करनेवाले, (रयिभिः) अपने बल पराक्रमों और ऐश्वर्यों से ( समोकसः ) एक समान, या उत्तम स्थान के रहनेवाले, ( संमिश्लासः ) परस्पर अच्छी प्रकार सम्मिलित, ( तविषीभिः ) बलों और सेनाओं के द्वारा ( विरप्शिनः ) गुणों और कार्यों में महान्, (अस्तारः) अस्त्रों के चलानेहारे, (वृषखादयः) वीर्यवर्धक अन्न और जल के खानेवाले, (नरः) वीर पुरुष ( अनन्तशुष्माः ) अनन्त बल से युक्त होकर (गभस्त्योः) बाहुओं में ( इषुं दधिरे ) बाण आदि अस्त्रों को धारण करें। वायु-पक्ष में—( विश्ववेदसः ) सब पदार्थों को प्राप्त, उत्तम आश्रय में स्थित (संमिश्लासः) अग्नि आदि तत्वों से युक्त, बलवती क्रिया से महान् पदार्थों के इधर उधर उठा फेंकने वाले, (वृषखादयः) वृष्टि-जलों या मेघों को अपने में लेने वाले, दूसरों को उनका भोग देने वाले, (नरः) गतिशील वायुगण

(अनन्तशुष्माः) अनन्त बल वाले होकर (इषुं) प्रेरक बल को (गभस्त्योः) सूर्य और अग्नि दोनों के आश्रय से (दधिरे) धारण करते हैं।

हिरण्ययेभिः पविभिः पयोवृध उज्जिघ्नन्त आपथ्यो३न पर्वतान्।
मखा अयासः स्वसृतो ध्रुवच्युतो दुध्रकृतो मरुतो भ्राजदृष्टयः ॥११॥

भा०—(आपथ्यः नः) जिस प्रकार मार्ग में चलनेवाला रथ (हिरण्ययेभिः पविभिः उत् जिघ्नते) लोहे के बने या उससे मढ़े हुए चक्रों से उत्तम रीति से चलता है उसी प्रकार (आपथ्यः) वीर पुरुष सब तरफ़ के मार्गों के जानने और वश करनेहारे होकर (हिरण्ययेभिः) लोहे के बने हुए (पविभिः) खड्गों और शस्त्रास्त्रों से (पर्वतान्) पर्वत के समान अचल शत्रु राजाओं और प्रतिपक्षी वीरों को (उत् जिघ्नन्ते) उत्तम या अधिक बल से विनाश कर दें। वे (पयोवृधः) वीर्यबल के वर्धक (मखाः) पूजा के योग्य, (स्वसृतः) अपने बल पराक्रम से आगे बढ़ने वाले, (ध्रुवच्युतः) स्थिर राज्यों को भी डावांडोल करनेवाले, (दुध्रकृतः) धारण करने योग्य या असह्य बल पराक्रमों के करनेवाले, (भ्राजद्-ऋष्टयः) चमचमाते हुए शस्त्रों वाले होकर (मरुतः) वीर पुरुष (अयासः) सर्वत्र रण में जाने वाले हों। वायु-पक्ष में—(पयोवृधः) वृष्टि जल के बढ़ाने वाले, (पर्वतान् उत् जिघ्नन्तः) मेघों और पर्वतों को अधिक बल से ताड़नेहारे, (स्वसृतः) अपने वेग से जाने वाले, (ध्रुवच्युतः) स्थिर पदार्थों को भी कंपाने वाले (दुध्रकृतः) धारण करने योग्य बलों के धारने वाले, (अयासः) व्यापक वायुगण हैं।

घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसि।
रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चत श्रिये ॥ १२ ॥

भा०—हम लोग (घृषुम्) शत्रुओं के बल के नाश करने वाले, (पावकम्) अग्नि के समान तेजस्वी, (वनिनम्) भोग्य ऐश्वर्य या वेतन को प्राप्त करने वाले, (विचर्षणिम्) विविध मनुष्यों से बने हुए, (रुद्रस्य)

शत्रु-दल को रुलाने वाले, संग्राम के अथवा वीर सेनापति के (सूनुम्) पुत्र के समान उनके अधीन, (रजस्तुरम्) राजस भाव, ऐश्वर्य की प्राप्ति से शीघ्र कार्यकारी, ( तवसम् ) बलवान्, ( ऋजीषिणम् ) ऋजु अर्थात् धर्म और न्याय के मार्ग पर चलने वाले, (वृषणं ) बलवान्, दुष्टों पर शर वृष्टि करने वाले, ( मारुतं गणम् ) वायु के समान तीव्र वेगवान् शत्रुओं के मारने वाले सैनिकों के गण को हम ( हवसा ) देने योग्य वेतन, स्वीकार योग्य उपहार, तथा भक्ष्य भोज्य आदि द्वारा ( गृणीमसि ) शिक्षित करें या उनका आदर करें । हे प्रजाजनो ! तुम उनको ( श्रिये ) लक्ष्मी या ऐश्वर्य और शरण या आश्रय प्राप्त करने के लिये ( सश्चत ) प्राप्त करो । वायु-गग के पक्ष में—घर्षग उत्पन्न करने वाले, पवित्रकारक ( वनिनं ) सब पदार्थों को पृथक् २ बांटने वाले, ( विचर्षणिम् ) विलेखन करने वाले, तीव्र, (रुद्रस्य सूनुम्) प्राण रूप से जीव के प्रेरक और परमेश्वर के पुत्र के समान अथवा कारण रूप वायु से उत्पन्न को ( हवसा ) उसके ग्राह्य रूप से हम (गृणीमसि) उपदेश करें । हे मनुष्यो ! हम लोग (रजस्तुरम्) लोकों और धूलियों को वेग से चलाने वाले बलवान्, उत्तम जीवन के प्रेरक, वृष्टिकारक ( मारुतं गणम् ) वायुगण को ( श्रिये ) विद्या, शिक्षा, राज्य आदि सुख प्राप्ति के लिये प्राप्त होवें । पूर्वोक्त रीति से विद्वान् जन भी मरुत् हैं । वे भी पाप नाशक होने से 'पावक' हैं । ज्ञानोपदेश के दाता होने से 'रुद्रके सूनु' हैं । लोगों को चलाने वाले होने से 'रजस्तुर' हैं, ऋजु-मार्गगामी होने से 'ऋजीषी' हैं । उनको विद्या और ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये प्राप्त करो ।

प्र नू स मर्तः शवसा जनाँ अति तस्थौ व ऊती मरुतो यमावत ।
अर्वद्भिर्वाजं भरते धना नृभिरापृच्छ्यं क्रतुमा क्षेति पुष्यति ॥१३॥

भा०—हे ( मरुतः ) वायु के समान तीव्र वेग से जाने हारे वीर पुरुषो ! एवं विद्वान् पुरुषो ! ( वः ) आप लोग ( ऊती ) अपनी रक्षा के

लिये ( यम् ) जिस पुरुष को ( आवत ) रक्षा करते या जिसकी शरण में प्राप्त होते हो। और जो (अर्वद्भिः) अश्वों, अश्वारोही वीर पुरुषों के द्वारा ( वाजं ) संग्राम को ( भरते ) विजय करता है और ( नृभिः ) नायक पुरुषों के साथ मिल कर जो ( धना ) ऐश्वर्यों को प्राप्त करता है और जो ( आपृच्छ्यम् ) परस्पर पूछ कर जिज्ञासा से प्राप्त करने योग्य (क्रतुम्) ज्ञान को ( आ क्षेति) प्राप्त करता है ( सः मर्तः ) वह मनुष्य ( शवसा ) बल और ज्ञान से ( नु ) शीघ्र ( जनान् अति ) समस्त जनों से बढ़ कर ( तस्थौ ) उच्च आसन पर विराजता है। अध्यात्म में—हे ( मरुतः ) प्राणगणो ! आप जिस आत्मा को अपनी देहरक्षा के लिये प्राप्त हो, जो ( अर्वद्भिः ) इन्द्रिय गणों से ज्ञान को प्राप्त करता है जो ( नृभिः ) प्राणों से ऐश्वर्यों को पाता है, और ज्ञातव्य परम पद ज्ञानमय परमेश्वर को प्राप्त करता और उसका अभ्यास करता है, वह सब जनों को ज्ञान के बल से पार कर उनसे ऊंचा होकर परमपद में विराजता है।

चर्कृत्यं मरुतः पृत्सु दुष्टरं द्युमन्तं शुष्मं मघवत्सु धत्तन।
धनस्पृतमुक्थ्यं विश्वचर्षणिं तोकं पुष्येम तनयं शतं हिमाः ॥१४॥

भा०—हे ( मरुतः ) विद्वान् वीर पुरुषो ! आप लोग ( चर्कृत्यं ) समस्त करने योग्य कार्यों में कुशल ( पृत्सु दुस्तरं ) संग्रामों में शत्रुओं से पराजित न होने वाले, ( द्युमन्तम् ) सूर्य के समान तेजस्वी, ( शुष्मम् ) बलवान् ( धनस्पृतम् ) ऐश्वर्यों को कमाने या उसकी रक्षा करने वाले ( विश्वचर्षणिम् ) समस्त राष्ट्र के द्रष्टा, ( तोकम् ) शत्रु के नाशकारी ( तनयम् ) राष्ट्र के विस्तार करने वाले पुरुष को ( मघवत्सु ) धन सम्पन्न पुरुषों के ऊपर ( धत्तन ) स्थापित करो। अपने पुत्र और पौत्र के समान प्रिय, ऐसे ( उक्थ्यम् ) प्रशंसनीय को हम (शतं हिमाः) सौ बरसों तक ( पुष्येम ) पुष्ट करें।

नू ष्ठिरं मरुतो वीरवन्तमृतीषाहं रयिमस्मासु धत्त।
सहस्रिणं शतिनं शूशुवांसं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात् ॥१५॥८॥११॥

भा०—हे ( मरुतः ) विद्वान् पुरुषो ! वीर जनो ! आप लोग ( नु ) शीघ्र ही ( स्थिरम् ) चिरस्थायी, विनाश को प्राप्त न होने वाले ( वीरवन्तम् ) वीर पुरुषों से युक्त ( ऋतीषाहम् ) युद्ध के विजय करने वाले, ( रयिम् ) ऐश्वर्य को और वीर्यवान् पुरुष को ( अस्मासु ) हममें ( धत्त ) धारण करो। और ( सहस्रिणम् ) हज़ारों के स्वामी और ( शतिनं ) सैकड़ों के स्वामी, शतदलपति, सहस्रदलपति, ( शुशुवांसं ) समस्त सुखों के दाता महापुरुष को भी हम में ( धत्त ) स्थापित करो। और ( धियावसुः ) प्रज्ञा और कर्म के धनी पुरुष ( मक्षु ) शीघ्र ही (प्रातः) दिन के प्रारम्भ समय में, या सभी कार्यों के प्रारम्भ काल में हमें ( जगम्यात् ) प्राप्त हों। इत्यष्टमो वर्गः। इति एकादशोऽनुवाकः॥

[ ६५ ]

पराशर ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१—४, ५ निचृत्पङ्क्तिः। ४ विराट् पंक्तिः॥ पञ्चर्चं सूक्तम्॥

पश्वा न तायुं गुहा चतन्तं नमो युजानं नमो वहन्तम्।
सजोषा धीराः पदैरनु ग्मन्नुप त्वा सीदन्विश्वे यजत्राः॥ १॥

भा०—(धीराः) धीर, बुद्धिमान् पुरुष जिस प्रकार (गुहा चतन्तम्) वन गुफा में छिपे हुए (पश्वा) पशु के साथ विद्यमान (तायुम्) चोर को (पदैः) उसके चरणचिह्नों से ( अनुग्मन् ) पीछा करते हैं उसी प्रकार हे परमेश्वर ! हे आत्मन् ! ( पश्वा ) सबके द्रष्टा रूप से ( गुहा चतन्तं ) ब्रह्माण्ड रूप गुहा या हृदय रूप गुहा में व्यापक, ( तायुम् ) सबके पालक (नमः) अन्न, ऐश्वर्य, पद या सर्व वशकारी बल को ( युजानं ) अपने में धारण करने वाले ( नमः वहन्तम् ) सबके पोषक अन्न और सबके भक्तिभाव

को धारण करते हुए ( त्वा ) तुझको ( सजोषाः ) समान प्रेम से तेरा सेवन करने हारे, ( धीराः ) ध्यानवान्, ( विश्वे ) समस्त ( यजत्राः ) उपासक, सत्संगी पुरुष ( पदैः ) ज्ञान साधनों से ( उपग्मन् ) तुझे प्राप्त होते हैं और ( विश्वे ) वे सब ( त्वा उपसीदन् ) तेरे ही आश्रय पर रहते हैं। राजा के पक्ष में—( पश्वा ) पशु सम्पत्ति के साथ विद्यमान ( गुहा ) राष्ट्र रूप गुफा में रहने वाले ( नमः ) आदर, अन्न, पदाधिकार ऐश्वर्य आदि के धारण करने और प्राप्त कराने वाले को विद्वान् पुरुष प्रेम युक्त होकर ( पदैः ) प्राप्तव्य पदाधिकारों से उसके अनुकूल रहें और (यजत्राः) उसके साथ संघ बना कर उसके आश्रय पर रहें। अग्नि के पक्ष में—सब पदार्थों के भीतर वर्त्तमान अन्नादि को खाने वाले जन अग्नि को उपायों से प्राप्त करें। यज्ञशील वेद मन्त्रों से उपासना करते हैं।

ऋतस्य॑ दे॒वा अनु॑ व्र॒ता गु॒र्भुव॒त्परि॑ष्टि॒र्द्यौर्न भूम॑।
वर्ध॑न्ती॒मापः॑ प॒न्वा सुशि॑श्विमृ॒तस्य॒ योना॒ गर्भे॒ सुजा॑तम् ॥ २ ॥

भा०—( देवाः ) दिव्य, अग्नि आदि तेजस्वी पदार्थ, भूमि आदि सुखप्रद लोक तथा समस्त प्राकृतिक शक्तियां और विद्वान् और विजयेच्छु वीरगण ( ऋतस्य ) सत्य स्वरूप, सबके प्रवर्त्तक परमेश्वर के तथा (ऋतस्य) सत्य ज्ञानमय, वेद ज्ञान और ( ऋतस्य ) सबके संचालक सत्यव्यवहार वाले शासनव्यवस्था के ( व्रता ) उपदेश किये कर्त्तव्यों का ( अनुगुः ) अनुसरण करते हैं। उनकी (परिष्टिः) परीक्षा करना और ज्ञानदर्शन भी (द्यौः न) सूर्य के समान स्पष्ट, प्रकाशक और ( भूम ) पृथ्वी के समान दृढ़ आश्रय है। ( आपः ) गर्भस्थ जल या आप्त पुरुष जिस प्रकार ( सुशिश्विम् ) उत्तम रीतिसे पुष्टि पाने वाले ( सुजातम् ) उत्तम बालक को ( वर्धन्ति ) बढ़ाते और पुष्ट करते हैं उसी प्रकार ( आपः ) आप्त पुरुष ( ऋतस्य ) सत्य न्याय शासन कार्य के ( गर्भे ) समस्त प्रजा को वश करने वाले राजपद पर ( सुजातम् ) उत्तम गुणों से प्रसिद्ध हुए ( ईम् )

इस राजा को ( पन्वा ) उत्तम व्यवहार और सत् उपदेश और स्तुति युक्त वाणी से ( वर्धन्ति ) बढ़ावें, उसे उत्साहित करें ।

परमेश्वर-पक्ष में—(आपः) व्यापक शक्तियें (सु-शिश्विम्) उत्तम गुणों से महान्, उत्तम गुणों में प्रसिद्ध, सत्य के आश्रय में विराजमान प्रभु को ( वर्धन्ति ) बढ़ाते हैं । उसकी महिमा की वृद्धि करते हैं । अग्नि के पक्ष में—सब तेजस्वी पदार्थ उस अग्नि के व्रत का अनुकरण करते हैं । उनका दर्शन भी विस्तृत है । सर्वत्र व्यापक अग्नि और जल अपने भीतर विद्युत् रूप से विद्यमान को भी गर्भ में सोते बालक के समान बढ़ाते हैं ।

पुष्टिर्न रण्वा क्षितिर्न पृथ्वी गिरिर्न भुज्म क्षोदो न शंभु ।
अत्यो नाज्मन्त्सर्गप्रतक्तः सिन्धुर्न क्षोदः क ईं वराते ॥ ३ ॥

भा०—ज्ञान करने योग्य परमेश्वर और अग्नि तथा राजा वा सभाध्यक्ष (पुष्टिः न रण्वा) शरीर, इन्द्रिय, मन और आत्मा के सुख को बढ़ानेवाली पुष्टि के समान अग्नि, विद्युत्, राजा और परमेश्वर तीनों में से प्रत्येक सुख देने वाला है । वह (क्षितिः न पृथ्वी) भूमि के समान सबको अपने में आश्रय देने वाला है । ( गिरिः न भुज्म ) पर्वत के समान सबको पालन करने वाला है ।( अज्मन् अत्यः न ) वेग में, शत्रुओं के उखाड़ फेंकने में अश्व के समान ( सर्गप्रतक्तः ) छूटते ही शत्रु के पास पहुंचने और पहुंचाने वाला है । अथवा—( सर्ग-प्रतक्तः ) जल को अपने भीतर दबाव से रखने वाला ( क्षोदः ) जल समूह जिस प्रकार ( सिन्धुः ) वेग से बहता है, वह रोके नहीं रुकता इसी प्रकार ईश्वर भी ( सर्ग-प्रतक्तः ) सृष्टि द्वारा जाना जाकर ( सिन्धुः न) अगाध सागर के समान सर्जनशक्ति का अक्षय भण्डार है । अग्नि भी जल के समान संसार में अपरिमित है । राजा भी (सर्ग-प्रतक्तः ) वेग से आक्रमण करने पर अदम्य वेग से शत्रु पर टूटता और बड़ा पीड़ा-जनक, ( सिन्धुः न ) उमड़ते समुद्र के समान भयंकर है । ( ईं ) इन

सबको ( कः ) कौन ( वराते ) वारण कर सकता है। उस प्रभु को कौन पूर्णतया जान सकता है।

जामिः सिन्धूनां भ्रातेव स्वस्रामिभ्यान्न राजा वनान्यत्ति।
यद्वातजूतो वना व्यस्थादग्निर्ह दाति रोमा पृथिव्याः॥ ४॥

भा०—( अग्निः ) अग्नि ( वातजूतः ) जिस प्रकार वायु से प्रचण्ड होकर ( वना ) जंगलों में ( वि अस्थात् ) विविध रूपों से फैलता है तब वह ( वनानि ) जंगलों को ( अत्ति ) खा जाता है, जला डालता है उसी समय मानो वह ( पृथिव्याः ) पृथिवी के (रोमा) लोमों के समान उत्पन्न ओषधि आदि वनस्पतियों को ( दाति ) कुठार के समान काट डालता है, उनको जलाकर छिन्नभिन्न करता है उसी प्रकार ( अग्निः ) अग्रणी नेता पुरुष जो ( वातजूतः ) वायु के समान प्रचण्ड वेगवाले वीर पुरुषों के बल से प्रचण्ड होकर ( वना ) शत्रु के सैनिक दलों पर ( वि अस्थात् ) विविध दिशाओं से जा चढ़ता है, (ह) वह निश्चय से (पृथिव्याः रोमा) पृथिवी पर स्थित लोमों के समान, उसको छा लेने वाले, या ( रोमा ) मारकाट कर गिरा देने योग्य शत्रुसैन्य को (दाति) काट गिराता है। वह राजा (वनानि) नाना भोग्य ऐश्वर्यों को ( अत्ति ) भोग करता है। वह ( सिन्धूनां जामिः) बहती नदियों के समान अदम्य वेगवाला होने से उनका बन्धु है। वह ( स्वस्राम् भ्राता इव ) बहिनों के रक्षा करने वाले भाई के समान स्वयं अपने बल से रणक्षेत्र में शत्रु पर धावा बोलनेवाली सेनाओं का ( भ्राता ) भरण पोषण करनेवाला रक्षक है। ( इभ्यान् न राजा ) हाथियों को वश करने वाले, अथवा हाथियों पर सवारी करनेहारे ऐश्वर्यवान् पुरुषों का राजा के समान वश करने हारा है। आत्मा के पक्ष में—आत्मा (सिन्धूनां जामिः) प्राणों का एकमात्र उद्भव और बन्धु है। ( स्वस्रां भ्राता ) इन्द्रियों का पोषक, प्राणों का राजा होकर ऐश्वर्यों या देहों का भोग करता है। वह

प्राण के वेग से प्रेरित होकर देहों में विराजता है। वह आत्मा ही (पृथिव्याः) जड़ प्रकृति के नाना उच्छेद करने योग्य बन्धनों को काटता है।

रोम—लूयते छिद्यते इति रोम ॥

श्वसित्यप्सु हंसो न सीदन् क्रत्वा चेतिष्ठो विशामुषर्भुत् ।
सोमो न वेधा ऋतप्रजातः पशुर्न शिश्वा विभुर्दूरेभाः ॥५॥९॥

भा०—( अप्सु हंसः न ) हंस नाम पक्षी जिस प्रकार जलों में ( श्वसिति ) डुबकी लगाकर भी श्वास लेता रहता है, उसी प्रकार राजा ( अप्सु ) आप्त प्रजाजनों के बीच ( सीदन् ) विराजता हुआ ( श्वसिति ) प्राण लेता, जीता जागता रहे। वह ( क्रत्वा ) यज्ञादि से अग्नि के समान उत्तम ज्ञान और कर्म के द्वारा ( चेतिष्ठः ) अति अधिक ज्ञानवान् होकर ( विशाम् ) प्रजाओं के बीच में ( उषर्भुत् ) प्रातः चेतनेवाले अग्नि के समान ही सबको (उषर्भुत्) जीवन के प्रारम्भ के वयस में ही बोध कराने वाला हो। ( सोमः न वेधाः ) ओषधि आदि गण जिस प्रकार शरीर का पोषक है उसी प्रकार वह राजा भी राष्ट्र का पोषक हो। वह (ऋतप्रजातः) सत्य व्यवहार, न्यायशासन और ज्ञान में कुशल और प्रसिद्ध होकर (शिश्वा) छोटे बछड़े से युक्त ( पशुः न ) गौ आदि पशु के समान प्रजा के प्रति प्रेमवान्, कृपालु होकर रहे। और ( विभुः ) विशेष सामर्थ्यवान् और कोश-युक्त होकर भी अग्नि के समान ( दूरे-भाः ) दूर दूर तक अपने तेज दीप्ति को फैलानेवाले सूर्य के समान तेजस्वी हो। इति नवमो वर्गः ॥

## [ ६६ ]

पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता। छन्दः—१ पंक्तिः। २ भुरिक् पंक्तिः। ३ निचृत्पंक्तिः। ४, ५ विराट् पंक्तिः ॥

रयिर्न चित्रा सूरो न संदृगायुर्न प्राणो नित्यो न सूनुः ।
तक्वा न भूर्णिर्वना सिषक्ति पयो न धेनुः शुचिर्विभावा ॥ १ ॥

भा०—(रयिः न) जिस प्रकार ऐश्वर्यमय द्रव्य ( चित्रा) नाना प्रकार के संग्रह करने योग्य पदार्थों से पूर्ण होता है उसी प्रकार अग्रणी नायक भी ( चित्रः ) आश्चर्यजनक गुणों वाला हो। वह ( सूरः न ) विद्वान् पुरुष या सूर्य के समान ( संदृक् ) सम्यक् दृष्टि वाला तत्वज्ञानी और अन्यों को अच्छे प्रकार दीखने और दिखाने वाला हो। ( आयुः न प्राणः ) वह प्राण के समान राष्ट्र में आयु का वर्धक हो। (सूनुः न नित्यः) वह पुत्र के समान सबका स्थिर दायभागी, सबकी जायदाद का स्वामी है। जिस जायदाद का कोई वारिस नहीं उसका वारिस राजा हो। और (भूर्णिः ) हिंसाकारी ( तक्वा ) चोर पुरुष जिस प्रकार ( वना सिषक्ति ) प्रजा को लूटकर जंगलों में जा छिपता है उसी प्रकार वह भी ( तक्वा ) शत्रुओं को कठोर दण्ड देने वाला और (भूर्णिः) प्रजाओं का पालक होकर (वना) संविभाग करने और देने योग्य ऐश्वर्यों को ( सिषक्ति ) प्रदान करे। या वह ( वना सिषक्ति ) सैन्यदलों को संघटित करे। वह ( धेनुः न ) दुधार गाय के समान(पयः) प्रजा को पुष्टिकारक अन्न प्रदान करे। ( शुचिः ) वह ईमानदार, शुद्ध आचरणवान्, सच्चा होकर ( विभावा ) अग्नि के समान विशेष दीप्ति से चमके। अग्नि के पक्ष में—( तक्वा न भूर्णिः ) ज्वर के समान भून डालने वाला संतापजनक अथवा अश्व के समान अपने स्वामी का पोषक है।

दाधार क्षेममोको न रण्वो यवो न पक्वो जेता जनानाम्।
ऋषिर्न स्तुभ्वा विक्षु प्रशस्तो वाजी न प्रीतो वयो दधाति ॥२॥

भा०—जो अग्रणी नायक, सेनापति ( जनानाम् जेता ) सब मनुष्यों का विजय करने हारा ( ओकः न ) घर के समान ( रण्वः ) सुखदायी होकर ( क्षेमम् दाधार ) प्राप्त धन के रक्षा का उपाय करता है और प्रजा का कल्याण करता है। जो (यवः न पक्वः) पके जौ के समान स्वयं परिपक्व अनुभव और बल से युक्त होकर प्रजा को पुष्ट करता है और जो ( ऋषिः न स्तुभ्वा ) ज्ञानी विद्वान् ऋषि के समान यथार्थ बात का वर्णन करता

है वह (विक्षु प्रशस्तः) प्रजाओं के बीच सबसे श्रेष्ठ, कार्यकुशल, (वाजी न) वेगवान् अश्व के समान धुरन्धर, (प्रीतः) अन्न ऐश्वर्य से प्रसन्न, तृप्त किया जाकर (वयः) राष्ट्र में बल, सामर्थ्य, जीवन को (दधाति) धारण कराता है।

दुरोकशोचिः क्रतुर्न नित्यो जायेव योनावरं विश्वस्मै ।
चित्रो यदभ्राट् श्वेतो न विक्षु रथो न रुक्मी त्वेषः समत्सु ॥३॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार ( दुरोकशोचिः ) दूर २ स्थानों तक अपनी दीप्ति को फैलाता है और उसकी ज्वाला को कोई पकड़ नहीं सकता। इसी प्रकार नेता भी (दुरोकशोचिः) दूर दूर स्थानों, देशों तक अपने असह्य तेज को फैलाने वाला हो। वह ( क्रतुः न ) कर्मों और प्रज्ञानों के कर्ता के समान ( नित्यः ) नित्य, ध्रुव, स्थायी होकर अपने किये कर्मों के फलों का भोक्ता हो। वह (योनौ जाया इव) घर में स्त्री के समान, राष्ट्र में सबका अन्न वस्त्र से पालक पोषक और सुखजनक हो। वह ( विश्वस्मै ) सबके लिए ( अरं ) अति अधिक या पर्याप्त हो। वह ( चित्रः ) आश्चर्यजनक कर्मों का कर्त्ता ( यत् ) जो ( विक्षु ) प्रजाओं के बीच ( श्वेतः न ) तीव्र तेजस्वी सूर्य के समान ( अभ्राट् ) अन्यों से प्रकाशित न होने वाला, (रथः न रुक्मी) रथ या सूर्य के समान दीप्तिमान्, उज्ज्वल कर्मों का करने वाला और स्वर्ग आदि ऐश्वर्यों का स्वामी होकर सबको संकट से पार पहुंचानेवाला और (समत्सु) संग्रामों में ( त्वेषः ) अति दीप्तिमान् हो।

सेनेव सृष्टामं दधात्यस्तुर्न दिद्युत्त्वेषप्रतीका ।
यमो ह जातो यमो जनित्वं जारः कनीनां पतिर्जनीनाम् ॥४॥

भा०—राजा ( सृष्टा ) युद्ध के लिये भेजी या तैयार हुई (सेना इव) सेना के समान शत्रु के हृदय में (अमं दधाति) भय को उत्पन्न करे और राष्ट्र में बल की वृद्धि करे, ( अमं दधाति ) और निर्बल राष्ट्रवासी जन की रक्षा करे। ( अस्तुः) बाणों के फेंकने वाले वीर पुरुष की ( त्वेषप्रतीका ) दीप्ति

को अग्रभाग में रखने वाले, तीव्र मुख वाले (दिद्यत् न) खूब गहरे छेदने वाले बाण के समान शत्रुओं को छेदन भेदन या नाश करने वाला और तेजस्वी मुख वाला हो। वह ( यमः ) राष्ट्र का नियन्ता होकर ( जातः ) जो प्रकट वर्तमान उसका स्वामी और या ( यमः ) अपने समान बलशाली पुरुष के साथ मिलकर युगल पति पत्नी के समान (जनित्वम् ) आगे उत्पन्न होने वाले सब पदार्थों को वश कराने वाला हो। वह ही ( कनीनाम् ) कन्याओं के समान नव कान्ति से युक्त, उषाओं के ( जारः ) प्रथम वयस की हानि करके प्रौढ़ता में लाने वाले सूर्य के समान तेजस्वी, उठती प्रजाओं को और अधिक प्रौढ़ ऐश्वर्यवान्, बलवान् बनाने हारा और ( कनीनाम् ) विवाहित पत्नियों के ( पतिः ) पति के समान सम विषम, सब दशाओं में प्रजाओं का सब प्रकार से भरण पोषण करके पालक हो।

तं वश्चराथा वयं वसत्यास्तं न गावो नक्षन्त इद्धम् ।
सिन्धुर्न क्षोदः प्र नीचीरैनोन्नवन्त गावः स्व१र्दृशीके ॥५॥१०॥

भा०—( गावः ) गौएँ ( न ) जिस प्रकार ( अस्तं ) घर को ( नक्षन्ते) आ जाती हैं उसी प्रकार (तं) उस ( इद्धम् ) अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष की शरण को ( वः ) तुम लोग और ( वयं ) हम लोग भी ( चराथा ) चर सम्पत्ति, पशु गण और ( वसत्या ) बसने योग्य गृह आदि स्थिर सम्पत्ति के सहित ( नक्षन्ते ) प्राप्त हों। ( सिन्धुः क्षोदः न ) जिस प्रकार बहने वाला जल ( नीचीः ) नीचे जाने वाली धाराओं को ( प्र एनोत् ) प्रबल वेगसे बहाता है उसी प्रकार ( सिन्धुः ) सिन्धु के समान प्रबल वेग-वान् सेनापति समस्त सेना गणों को नियम व्यवस्था में बाँध कर ( क्षोदः ) आज्ञा द्वारा प्रेरण कियेजाने वाले सेना बल या भृत्य वर्ग को ( नीचीः ) नीचे प्रदेशों, पदों या अधीन रहने वाली प्रजाओं के प्रति (प्रएनोत्) भेजे। (गावः) किरणें जिस प्रकार (दृशीके) दर्शनीय (स्वः) सूर्य में ( नवन्त ) प्राप्त हैं उसी प्रकार ( गावः ) ज्ञानवान् विद्वान् पुरुष और

बलवान् पुरुष पुंगव भी ( दृशीके ) दर्शनीय, ( स्वः ) शत्रु संतापजनक प्रतापी, तेजस्वी राजा को ( नवन्त ) प्राप्त हों। इति दशमो वर्गः ॥

[ ६७ ]

पराशरः शाक्त्य ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥छन्दः—१ पङ्क्तिः। २ भुरिक् पङ्क्तिः। ३ निचृत्पङ्क्तिः। ४,५ विराट् पङ्क्तिः॥ पंचर्चं सूक्तम्॥

वनेषु जायुर्मर्तेषु मित्रो वृणीते श्रुष्टिं राजेवाजुर्यम्।
क्षेमो न साधुः क्रतुर्न भद्रो भुवत्स्वाधीर्होता हव्यवाट् ॥१॥

भा०—जो वीर पुरुष ( वनेषु) वनों में भस्म कर देने वाले अग्नि के समान, भोग्य ऐश्वर्यों और सैनिक दलों के बीच ( जायुः ) शत्रुओं का विजय करने वाला हो, जो ( मर्त्तेषु ) मनुष्यों के बीच उनका ( मित्रः ) प्राण के समान स्नेही ( श्रुष्टिम् ) अन्नादि भोग्य पदार्थ को एवं शीघ्रकारी कुशल पुरुष को ( वृणीते ) वरण करता, प्राप्त करता है और जो (राजा इव) राजा के समान ( अजुर्यम् ) जरा रहित, बलवान्, जवान मर्द को अपने कार्य के लिये चुन लेता है वह ( क्षेमः न साधुः ) रक्षक पुरुष के समान सब कार्यों का साधक और सज्जन पुरुष के समान कल्याणकारी ( क्रतुः न ) क्रिया कुशल, प्रजावान् पुरुष के समान ( भद्रः ) सब को सुख देने और कल्याण करने वाला, ( स्वाधीः ) उत्तम आचरण करने वाले उत्तम रीति से प्रजाओं का पालक पोषक, (होता) सब को उचित अधिकारों, ऐश्वर्यों, और वेतनों का देने वाला, ( हव्यवाट् ) ग्राह्य और देने योग्य ऐश्वर्य को धारण करने वाला ( भुवत् ) हो। वही अग्रणी, ज्ञानी पुरुष 'अग्नि' पद पर स्थापित करने योग्य है।

हस्ते दधानो नृम्णा विश्वान्यमे देवान्धाद् गुहा निषीदन्।
विदन्तीमत्र नरो धियन्धा हृदा यत्तष्टान्मन्त्राँ अशंसन् ॥२॥

भा०—( गुहा ) गुफा या उत्तम ज्ञान में स्थित विद्वान्, आचार्य देवान् अन्य ज्ञानेच्छु पुरुष को ( अमे धात् ) अपने ज्ञान में धारण करता है। और जिस प्रकार (गुहा निषीदन्) सुरक्षित स्थान में स्थित राजा (देवान्) विजयी पुरुषों को ( अमे धात् ) छूट अपनी शरण में, या भय के अवसरों में नियुक्त करता है उसी प्रकार परमेश्वर ( विश्वानि नृम्णा ) समस्त ऐश्वर्यों को ( हस्ते दधानः ) अपने हाथों में या वश में रखता हुआ ( गुहा निषीदन् ) ब्रह्मांड आकाश या बुद्धिरूप गुहा में विराजता हुआ ( अमे ) अपने ज्ञान और बल के अधीन ( देवान् ) पृथिवी सूर्य आदि समस्त दिव्य लोकों, विद्वान् पुरुषों और प्राणों को ( धात् ) स्वयं धारण करता है। और ( अत्र ) इसी बुद्धिरूप गुहा में ( इम् ) इसको वे ( धियं-धाः ) ज्ञान, उत्तम प्रज्ञा और श्रेष्ठ कर्मों के धारण करने वाले ( विदन्ति ) साक्षात् करते हैं। ( यत् ) जब वे ( हृदा ) हृदय से ( तष्टान् ) अति तीक्ष्ण किये हुए, अति सूक्ष्म रीति से विवेचित किये हुए ( मन्त्रान् ) विचारों और वेदमन्त्रों का ( अशंसन् ) उपदेश करते हैं। राजा के पक्ष में—अपने हाथ में समस्त ऐश्वर्यों को रखने हारा सम्पन्न पुरुष विद्वानों को अपनी शरण में रक्खे। वह स्वयं ( गुहा ) सबकी रक्षा में विराजे। ( धियं-धाः नरः ) प्रज्ञावान्, विद्वान्जन सुविचारित विचारों और वेदमन्त्रों का उपदेश करें और ज्ञान प्रदान करें।

अजो न क्षां दाधार पृथिवीं तस्तम्भ द्यां मन्त्रेभिः सत्यैः।
प्रिया पदानि पश्वो नि पाहि विश्वायुरग्ने गुहा गुहं गाः ॥३॥

भा०—( अजः ) गतिमान् और अन्यों को गति देने वाला सूर्य (न) जिस प्रकार ( पृथिवीं ) पृथिवी को धारण करता है ( द्यां तस्तम्भ ) और प्रकाश और आकाश को या उसमें स्थित पिण्डों को भी आकर्षण द्वारा स्थिर करता है और (अजः) जिस प्रजार जन्म न लेने वाला, अजन्मा परमेश्वर ( सत्यैः मन्त्रैः ) सत्य ज्ञानों और सत्य वैज्ञानिक नियमों के द्वारा

( पृथिवीं द्यां ) सब लोकों के निवास योग्य भूमि और आकाश को भी ( दाधार, तस्तम्भ ) धारण करता और थामता है उसी प्रकार विद्वान् राजा भी ( सत्यैः मन्त्रेभिः ) सत्य विचारों और ज्ञानों से स्वयं ( अजः ) ज्ञानवान् और शत्रुओं का पराजेता होकर ( क्षां ) प्रजा से बसी (पृथिवी) पृथिवी और ( द्याम् ) ज्ञान प्रकाश से युक्त विद्वत्-सभा को ( दाधार ) धारण करे और ( तस्तम्भ ) विजयशालिनी सेना को भी थामे, अपने वश करे। हे परमेश्वर और राजन् ! हे ( अग्ने ) विद्वन् ! ( विश्वायुः ) समस्त प्रजाजनों का स्वामी होकर (प्रिया) हृदय को सन्तुष्ट करनेवाले ( पदानि ) प्राप्त करने योग्य ज्ञानों, ऐश्वर्यों और पदाधिकारों तथा उत्तम स्थानों का प्रदान कर और ( पश्वः ) पशुओं के बन्धन से हमें ( निपाहि ) बचा। अथवा—(पश्वः पदानि निपाहि) हे राजन् ! तू पशुओं के लिए गोचर स्थानों की रक्षा कर। अथवा—( पदानि पश्वः निपाही ) उत्तम स्थानों और उत्तम पशुओं को नष्ट होने से बचा। ( अग्ने गुहा गुहं गाः ) हे विद्वन् ! तू बुद्धि में स्थिर होकर गूढ़ विज्ञान को प्राप्त कर। हे परमेश्वर ! तू बुद्धि के भी अति गूढ़ स्थान में परम विचार से प्राप्त होता है।

य ईं चिकेत गुहा भवन्तमा यः ससाद धारामृतस्य।
वि ये चृतन्त्यृता सपन्त आदिद्वसूनि प्र ववाचास्मै ॥ ४ ॥

भा०—( यः ) जो मनुष्य ( गुहा भवन्तम् ) परम बुद्धि या हृदय में विद्यमान व्यापक परमेश्वर को ( चिकेत ) जान लेता है और ( यः ) जो ( ऋतस्य ) सत्य ज्ञानमय वेदविद्या की ( धाराम् ) वाणी को या सत्य व्यवहार को धारण करनेवाली विद्या, शास्त्रव्यवस्था को (आ ससाद) प्राप्त कर लेता, अपने वश कर लेता है और ( ये ) जो विद्वान् पुरुष ( सपन्तः ) परस्पर एक स्थान पर संगत होकर ( ऋता ) सत्य सत्य ज्ञानों को ( विचृतन्ति ) विशेष रूप से और विविध प्रकारों से खोलते, उनको प्रकट

करते हैं। ( आत् इत् ) वह पूर्वोक्त शासक पुरुष (अस्मै) उस विद्वान् जन के लिए ( वसूनि ) नाना ज्ञानों और ऐश्वर्यों के प्राप्त करने का (प्रववाच) प्रवचन करे।

**वि यो वीरुत्सु रोधन्महित्वोत प्रजा उत प्रसूष्वन्तः।**
**चित्तिरपां दमे विश्वायुः सद्मेव धीराः संमाय चक्रुः ॥ ५ ॥ ११ ॥**

भा०—( यः ) जो परमेश्वर ( वीरुत्सु ) विविध रूपों से छुपे कार्यों को प्रकट करने वाले कारणों में से ( महित्वा ) अपने महान् सामर्थ्य से ( प्रजाः ) आगे उत्पन्न होने वाले कार्यों को ( वि रोधत् ) विविध रूपों से प्रकट करता है। और ( यः वीरुत्सु प्रजाः वि रोधत् ) और जो लताओं में विविध पुष्प फलों को भी विशेष विविध रूपों से प्रकट करता है, ( उत ) और (प्रसूषु अन्तः) माताओं के गर्भ में जो प्रजाओं को (वि रोधत् ) विविध प्रकारों से उत्पन्न करता है, वह ( चित्तः ) ज्ञानवान्, चित् स्वरूप, सब में चेतना का देने वाला, ( विश्वायुः) सबका जीवनाधार होकर ( अपां दमे ) प्राणों और जलों के बीच में समस्त प्रजाओं को उत्पन्न करता है। (धीराः) ध्यानी, बुद्धिमान् पुरुष ( संमाय ) निर्माण करके जैसे ( सद्म इव ) अपना घर खड़ा कर लेते हैं उसी प्रकार विद्वान् पुरुष जिसको ( संमाय ) अच्छी प्रकार ज्ञान करके ( सद्म इव चक्रुः ) अपना परम आश्रय या शरण बना लेते हैं। राजा के पक्ष में—राजा ( वीरुत्सु ) शत्रुओं को विविध उपायों से रोकने वाली सेनाओं और ( प्रसूषु ) उत्तम ऐश्वर्यवान् धनाढ्यों के आधार पर (प्रजाः वि रोधत् ) प्रजाओं को विविध उपायों से वश करे। वह ( चित्तिः ) ज्ञानवान्, प्रजाओं का चेताने वाला हो। (अपां) प्रजाओं के ( दमे ) दमन में तत्पर हो। और ( विश्वायुः) सबके जीवनों का रक्षक हो।। धीर जन उसको ( संमाय ) अच्छी प्रकार राजा बनाकर ( सद्म इव चक्रुः ) सद्म प्रजा के शरण स्थान के समान बनावें। इत्येकादशो वर्गः ॥

[ ६८ ]

पराशरः शाक्त्य ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४ निचृत् पंक्तिः ॥ २, ३, ५ पंक्तिः ॥ पंचर्चं सूक्तम् ॥

**श्रीणन्नुप॑ स्थाद्दिवं॑ भुर॒ण्युः स्था॒तुश्च॒रथ॑म॒क्तून्व्यू॑र्णोत् ।**
**परि॒ यदे॑षा॒मेको॒ विश्वे॑षां॒ भुव॑द्दे॒वो दे॒वानां॑ महि॒त्वा ॥ १ ॥**

भा०—जिस प्रकार सूर्य ( भुरण्युः ) सबका पालक पोषक होकर ( श्रीणन् ) ओषधियों को परिपक्व करता है, आकाश में स्थित होता है, और स्थावर और जंगम चराचर जगत् को प्रकाशित करता है और वह समस्त प्रकाशमान पिण्डों में से अपने महान् सामर्थ्य के कारण सबसे श्रेष्ठ है इसी प्रकार परमेश्वर ( श्रीणन् ) समस्त ब्रह्माण्ड का कालाग्नि द्वारा परिपाक करता हुआ (दिवम् ) ज्योतिर्मय प्रकाश को तथा महान् आकाश और समस्त तेजोमय सूर्य आदि को ( उप स्थात् ) व्यापता है । वह ( भुरण्युः ) सबका पालक पोषक प्रभु ( स्थातुः चरथम् ) स्थावर और जंगम संसार को और ( अक्तून् ) जगत् को प्रकाशित करने वाले किरणों या रात्रियों को (वि ऊर्णोत् ) विविध प्रकार से प्रकट करता है, उनके अन्धकारों के आवरणों को दूरकर प्रकाशित करता है । ( यत् ) जो ( एकः ) अकेला ही ( एषां विश्वेषां ) इन सब ( देवानाम्) प्रकाशक और सुखप्रद लोकों और पदार्थों के बीच (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (देवः) सबसे बड़ा प्रकाशक और सुखदाता (परिभुवत् ) सर्वत्र विद्यमान है । विद्वान् राजा और (दिवं श्रीणन्) ज्ञान और विद्वत्-सभा को दृढ़ करता हुआ स्थावर और जंगम को पोषण करे, प्रकाशकारी विज्ञानों को प्रकट करे । वह अकेला ही अपने महान् सामर्थ्य से सब विद्वानों और विजिगीषुओं में सबसे बड़ा बने ।

**आदित्ते॒ विश्वे॒ क्रतुं॑ जुषन्त॒ शुष्का॒द्यद्दे॑व जी॒वो जनि॑ष्ठाः ।**
**भज॑न्त॒ विश्वे॑ देव॒त्वं नाम॑ ऋ॒तं सप॑न्तो अ॒मृत॒मेवैः॑ ॥ २ ॥**

भा०—( यत् ) जो तू हे जीवात्मन् ! ( जीवः ) जीव ( शुष्कात् ) सूखे काठ से प्रज्वलित अग्नि के समान ( शुष्कात् ) कार्य आदि के शोषण रूप तप, धर्मानुष्ठान से ( जनिष्ठाः ) विशेष रूप से प्रकाशित होता है ( आत इत् ) तब ही ( विश्वे ) समस्त प्राण आदि गण और मनुष्य जन ( ते ) तेरे ( क्रतुम् ) ज्ञान और कर्म का ( जुषन्त ) प्रेम से ग्रहण करते और सेवन करते हैं। और ( एवैः ) ज्ञान मार्गों से ( अमृतम् ) अविनाशी ( ऋतम् ) मोक्षमय परम सत्य को ( सपन्तः ) प्राप्त होते हुए ( विश्वे ) सभी वे विद्वान् गण ( देवत्वं ) दिव्य गुण से युक्त (नाम) स्वरूप को ( भजन्त ) प्राप्त करते हैं।

ऋतस्य प्रेषा ऋतस्य धीतिर्विश्वायुर्विश्वे अपांसि चक्रुः ।
यस्तुभ्यं दाशाद्यो वा ते शिक्षात्तस्मै चिकित्वान्रयिं दयस्व ॥३॥

भा०—हे परमेश्वर! (ऋतस्य) सर्वव्यापक, सर्वज्ञानमय अनादि सत्य स्वरूप तेरे ही (प्रेषाः) ये समस्त उत्तमकोटिकी प्रेरणाएं हैं। और (धीतिः) ध्यान, धारणा और उस द्वारा आनन्द रस का पान भी ( ऋतस्य) अनादि सत्य स्वरूप तेरी ही जल के पान के समान शान्तिदायक और जीवन की वर्धक हैं। इसीसे तू ( विश्वायुः ) समस्त लोकों और प्राणियों का जीवन स्वरूप,प्राणों का प्राण है। (विश्वे) समस्त जन (अपांसि) तेरे उपदिष्ट सत्य कर्मों ही को (चक्रुः) करें। (यः) जो ( तुभ्यम् ) तेरे निमित्त अपने आपको ( दाशात् ) समर्पण करें और ( यः वा ) जो कोई ( ते ) तेरे विषय की ( शिक्षात् ) अन्यों को शिक्षा दे तू ( चिकित्वान् ) सब कुछ जानता हुआ ( तस्मै ) उसको ( रयिम् ) ऐश्वर्य प्रदान कर। राजा और विद्वान् के पक्ष में—हे राजन् !हे विद्वन् ! तू सत्य व्यवस्था और ज्ञान का प्रेरक, उपदेशक और धारक हो। सब तेरे बनाये नियम कर्तव्यों का पालन करें। जो तुझे धन दे और जो तुझे उत्तम शिक्षा दे उसके (रयिम् ) ऐश्वर्य धन की तू भी ( दयस्व ) रक्षा कर। अथवा उसको तू ऐश्वर्य प्रदान कर।

होता निषत्तो मनोरपत्ये स चिन्न्वासां पती रयीणाम् ।
इच्छन्त रेतो मिथस्तनूषु सं जानत स्वैर्दक्षैरमूराः ॥ ४ ॥

भा०—( होता ) सब सुखों का दाता परमेश्वर ( मनोः ) मननशील पुरुष के ( अपत्ये ) होनेवाले संतान में भी ( निषत्तः ) अधिष्ठातृ रूप से है । (स चित् नु) वह ही (आसां रयीणाम् ) इन समस्त ऐश्वर्यमयी रमण करनेहारी उत्पादक शक्तियों का (पतिः) पालक है । इसी कारण (अमूराः) मूढ़ता रहित, ज्ञानवान् प्रजाजन और मरण या मृत्यु से रहित युवा पुरुष (इच्छन्त) पुत्र प्राप्त करने की चाह करते हैं । और (मिथः ) परस्पर मिल कर ( स्वैः दक्षैः ) अपने प्राण बलों से ( तनुषु ) एक दूसरे के शरीरों में ( रेतः ) उत्पादक वीर्य को पुत्ररूप से उत्पन्न हुआ ( जानत ) जानते हैं ।

पितुर्न पुत्राः क्रतुं जुषन्त श्रोषन्ये अस्य शासं तुरासः ।
वि राय और्णोद्दुरः पुरुक्षुः पिपेश नाकं स्तृभिर्दमूनाः ॥५॥१२॥

भा०—( पुत्राः पितुः न ) पुत्रगण जिस प्रकार प्रेम से पिता के ( क्रतुं ) ज्ञानमय उपदेश को ( जुषन्त ) प्राप्त करते हैं उसी प्रकार ( ये ) जो विद्वान् पुरुष ( तुरासः ) अति शीघ्रकारी, आलस्य रहित होकर (अस्य) इस परमेश्वर या आचार्य या अग्रणी नायक के ( शासं ) शासन को प्रेम और आदर से श्रवण करते और उसको बिना विलम्ब के पालन करते हैं ( दमूनाः ) दमन करनेवाले, ज्ञान से युक्त, जितेन्द्रिय, सर्ववशकारी वह विद्वान् या परमेश्वर ( पुरुक्षुः ) बहुत से अन्नादि कर्मफलों का स्वामी होकर ( रायः ) ऐश्वर्यों और ( पुरः ) द्वारों को ( वि और्णोत् ) खोल देता है, प्रकट करता है । ( स्तृभिः नाकम् ) नक्षत्रों से आकाश के समान उनके दुःखरहित सुख को ( स्तृभिः ) उत्तम २ गुणों से ( पिपेश ) जड़ देता है । इसी प्रकार जो प्रजागण राजा के शासन को पिता के पुत्र के समान सुनते और पालते हैं वह जितेन्द्रिय राजा उन्हें ऐश्वर्य प्राप्ति के उनके नाना द्वार

खोल देता है, उनके सौभाग्य को नाना उत्तम सुखों से सजा देता है। इति द्वादशो वर्गः ॥

[ ६९ ]

परशरः शक्तिपुत्र ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः । २, ३ निचृत् पंक्तिः । ४ भुरिक्पंक्तिः । ५ विराट्पंक्तिः पंचर्चं सूक्तम् ॥

**शुक्रः शुशुक्वाँ उषो न जारः पप्रा समीची दिवो न ज्योतिः ।**
**परि प्रजातः क्रत्वा बभूथ भुवो देवानां पिता पुत्रः सन् ॥ १ ॥**

भा०—(शुक्रः) शुद्ध, कान्तिमान्, ( उषः जारः न ) प्रभात बेला को अपने उदय और प्रवेश से जीर्ण करने हारे सूर्य के समान ( शुशुक्वान् ) निरन्तर तेजस्वी, सब पदार्थों को यथार्थ रूप से प्रकाशित करने हारा और ( दिवः ज्योतिः न ) सूर्य का प्रकाश जिस प्रकार ( समीची ) परस्पर संगत भूमि और आकाश दोनों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार ( दिवः ज्योतिः ) ज्ञान प्रकाश का प्रकाशक, सूर्य के तुल्य विद्वान् पुरुष (समीची) परस्पर सम्बन्ध से मिले हुए स्त्री पुरुष दोनों को ( पप्रा ) ज्ञान से पूर्ण करने हारा हो। हे विद्वन्! तू ( क्रत्वा ) विज्ञान और उन्नत कर्मों द्वारा ही ( परि ) ऊपर ( प्रजातः ) उत्तम रीति से विराजमान ( बभूथ ) हो। और तू ( देवानां ) विद्वान् उत्तम पुरुषों का ( पुत्रः सन् ) पुत्र, शिष्य होकर ही ( देवानां ) अन्य विद्या के अभिलाषी शिष्यों का भी ( पिता ) पिता के समान आचार्य परिपालक, गुरु ( भुवः ) हो। वीर्य के पक्ष में—आकाश में सूर्य के समान वीर्य देह में कान्तिजनक है। वह परस्पर संगत प्राण और अपान दोनों को पूर्ण बल देता है, वह ज्ञान और क्रिया सामर्थ्य से सबके ऊपर होकर ( देवानां ) प्राण गण को 'पुं' नाम नरक अर्थात् शारीरिक कष्टों से बचाने से पुत्र और उनका पालक होने से पिता

है। वीर्य रक्षा से देह में रोगादि नहीं होते और सभी इन्द्रियें बलवान् सुरक्षित रहती हैं।

वेधा अदृप्तो अग्निर्विजानन्नूधर्न गोनां स्वाद्मा पितूनाम्।
जने न शेव आहूर्यः सन्मध्ये निषत्तो रण्वो दुरोणे ॥ २ ॥

भा०—( वेधाः ) ज्ञानवान्, मेधावी और उत्तम कर्त्तव्यों का विधान और उपदेश करने वाला ( अग्निः ) अग्रणी, ज्ञानी पुरुष ( विजानन् ) विशेष रूप से और विविध विद्याओं का ज्ञाता होकर भी ( अदृप्तः ) गर्व रहित हो। ( गोनां ऊधः न ) वह गौवों के थान के समान उत्तम ज्ञान रसों का देने वाला और ( पितूनाम् स्वाद्मा ) पुष्टि कारक अन्नों का खाने वाला और अन्यों को उत्तम अन्नों के खिलाने वाला हो। वह ( जने शवः नः ) जनों के बीच में सब को सुखकारी सर्व प्रिय के समान ( आहूर्यः ) आदर से बुलाने योग्य हो। ( सन् ) वह प्राप्त होकर ( मध्ये ) समस्त सभा जनों के बीच में ( निषत्तः ) विराजमान हो। और ( दुरोणे ) घर में ( रण्वः ) सबको आनन्द देने हारा हो। अध्यात्म में—आत्मा ज्ञानवान्, गर्व रहित, गायों के थान के समान आनन्दघन, अन्नादि कर्म फलों का भोक्ता, सुखकारी, स्मरणीय, देह के बीच विराजमान, नवद्वारमय देह में रमण करने हारा है, वह जीव भी 'अग्नि' है।

पुत्रो न जातो रण्वो दुरोणे वाजी न प्रीतो विशो वि तारीत्।
विशो यदह्वे नृभिः सनीळा अग्निर्देवत्वा विश्वान्यश्याः ॥ ३ ॥

भा०—(जातः पुत्रः न) उत्पन्न हुए सुशील पुत्र के समान ( दुरोणे ) घर में ( रण्वः ) सबको सुखी करने हारा, ( प्रीतः ) स्वयं प्रसन्न और सन्तुष्ट रह कर ( वाजी न ) अश्व के समान वेगवान्, ज्ञानवान्, बलवान् होकर ( विशः ) प्रजाओं को विद्वान् सभापति या राजा ( वि तारीत् ) विविध संग्रामों और कष्टों से पार कर देता है। वह ( अग्निः ) अग्रणी, ज्ञानी पुरुष अग्नि के समान तेजस्वी होकर ( अह्वे ) राष्ट्र के व्यापक, सार्व-

जनिक हितकारी कार्य में ( सनीड़ाः ) एक ही देश या स्थान में रहने वाली ( विशः ) प्रजाओं को (नृभिः ) अपने नायक पुरुषों द्वारा वश करे। और ( विश्वानि ) सब ( देवत्वा ) विद्वानों के योग्य पदों और उत्तम २ कार्यों को ( अश्याः ) अन्यों को प्राप्त करावे और स्वयं प्राप्त करे।

नकिंष्ट एता व्रता मिनन्ति नृभ्यो यदेभ्यः श्रुष्टिं चकर्थ।
तत्तु ते दंसो यदहन्त्समानैर्नृभिर्यद्युक्तो विवे रपांसि ॥४॥

भा०—हे राजन्! सभाध्यक्ष! ( ते ) तेरे नियत किये हुए एवं उपदिष्ट ( एता ) इन ( व्रता ) कर्तव्यों और धर्मों का ( नकिः ) कोई भी (मिनन्ति) नाश नहीं करे, कोई भी नहीं तोड़ें। ( यत् )जिस तू ( एभ्यः ) इन ( नृभ्यः ) मनुष्यों के हित के लिये ( श्रुष्टिम् ) अति शीघ्र ही सुख जनक कार्य, प्रबन्ध अथवा उत्तम अन्नादि भोग्य पदार्थ ( चकर्थ ) प्रदान करता है। और ( यत् ) जिस कारण से तू (समानैः ) अपने समान मान आदर और बल से युक्त विद्वान् ( नृभिः ) नायक, नेता पुरुषों के साथ ( युक्तः ) मिलकर ( रपांसि ) आज्ञा-वचनों को ( विवेः ) प्रकट करता है और उनसे मिलकर ( यत् ) जब ( ते ) तेरा ( यत् ) जो भी कार्य होता है ( तत् ) उसको भी कोई ( नकिः अहन् ) कोई नाश नहीं करे। अथवा-( यत्-ते दंसः अहन् ) जब कोई तेरे कार्य का नाश करे, ( तत् ) तभी तू ( नृभिः युक्तः रपांसि विवेः ) अपने समान बलवान् पुरुषों से मिलकर उनके सहोद्योग से बाधक कारणों को दूर कर।

उषो न जारो विभावोस्रः संज्ञातरूपश्चिकेतदस्मै।
त्मना वहन्तो दुरो व्यृण्वन्नवन्त विश्वे स्वर्दृशीके ॥५॥१३॥

भा०—( उषः जारः न ) प्रभात वेला को अपने उदय से जीर्ण कर देने वाले सूर्य के समान ( विभावा ) विशेष प्रभा से युक्त तेजस्वी राजा और विद्वान् को (उस्रः) समस्त प्रजाओं को ( संज्ञातरूपः ) समस्त रूपों, प्रजाजनों ऐश्वर्यों को जानने वाला, सुख से बसाने वाला होकर ( अस्मै )

उस प्रजाजन को ( चिकेतत् ) जाने, उसके अभिमत फल प्रदान करे। और ( विश्वे ) समस्त जन ( त्मना ) स्वयं ( दृशीके ) उस दर्शनीय पुरुष के अधीन रहकर ( स्वः ) सुखजनक ऐश्वर्य को ( वहन्तः ) धारण करते हुए ( नवन्त ) उसके आगे आदर से झुकें और ( दुरः ) द्वारों को (वि ऋणवन् ) उसके स्वागत के लिये खोलदे। परमात्मा के पक्ष में—वह परमेश्वर सूर्य के समान विशेष कान्ति से युक्त, समस्त पदार्थों का ज्ञाता ( उस्रः ) प्रकाशमान्, सबमें बसने वाला, अन्तर्यामी है। सब मनुष्य ( अस्मै ) उस को ज्ञान करें। अथवा (सः अस्मै चिकेतत्) वही इस जीव को ज्ञान और सुख प्रदान करता है। विद्वान्‌जन ( विश्वे ) सब ( त्मना ) अपने आत्मा से ( स्वः वहन्तः ) सुख और ज्ञान को धारण करते हुए (दुरः वि ऋणन् ) दुष्ट भावों को दूर करें। और उस ( दृशीके नवन्त ) परम दर्शनीय प्रभु के अधीन होकर उसकी स्तुति करें। इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[ ७० ]

पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४ विराट्पंक्तिः । २ पङ्क्तिः । ३, ५ निचृत् पंक्तिः । ६ याजुषी पंक्तिः ॥ षडर्चं सूक्तम् ॥

**व॒नेम॑ पू॒र्वीर॒र्यो म॑नी॒षा अ॒ग्निः सु॒शोको॒ विश्वा॒न्यश्याः । आ दैव्या॑नि व्र॒ता चि॑कि॒त्वाना मानु॑षस्य॒ जन॑स्य॒ जन्म॑ ॥ १ ॥**

भा०—( अग्निः ) अग्नि जिस प्रकार ( सुशोकः ) उत्तम कान्ति, ज्वाला और दीप्ति से युक्त होकर ( विश्वानि) समस्त पदार्थों को (अश्याः) व्यापता है, या खा जाता, अर्थात् भस्म कर देता है, ( मनीषा ) बुद्धि और विज्ञान के बल से ( अर्यः ) सबका स्वामी (अग्निः ) ज्ञानवान् (सुशोकः) उत्तम कान्तिमान्, तेजस्वी होकर ( पूर्वी ) ऐश्वर्य से समृद्ध, धनधान्य से पूर्ण प्रजाओं और ( विश्वानि ) समस्त राष्ट्र के ऐश्वर्यों को ( अश्याः ) व्यापता और उनका भोग करता है। वह ( दैव्यानि ) विद्वानों के बताये

अथवा ( दैव्यानि) सूर्य, मेघ आदि के लोकोपकारक गुणों के अनुकरण में ( व्रता ) प्रजा के हितकारी कर्त्तव्यों को और ( मानुषस्य ) मननशील ( जनस्य ) जनों के ( जन्म ) जन्म को भी ( आ अश्युः ) पालन करे और उसको सफल करे । हम सब उसकी ही ( वनेम ) शरण जावें । ईश्वरपक्ष में—वह ( मनीषा अर्यः ) ज्ञान से सबका प्रेरक, स्वामी तेजस्वी होकर सब पूर्ण शक्तियों, प्रजाओं और सब पदार्थों के में व्यापक है । ( चिकित्वान् ) वह सर्वज्ञ, सब दिव्य पदार्थों के धर्मों को और मननशील प्राणियों के जन्मों तक को व्यापता है, उनको जानता है । हम उसकी उपासना करें । जीवपक्ष में—जीव अपनी बुद्धि बल से सब शक्तियों को तेजस्वी अग्नि के समान ज्ञान करे और भोग करे । वह दिव्य पदार्थों और विद्वानों के गुणों, धर्मों और कर्त्तव्यों को जाने, मानुष जन्म को प्राप्त करे, हम उस जीव को जानें ।

गर्भो॒ यो अ॒पां गर्भो॒ वना॑नां॒ गर्भ॑श्च स्था॒तां गर्भ॑श्च॒रथा॑म् ।
अद्रौ॑ चिदस्मा अ॒न्तर्दु॑रो॒णे वि॒शां न विश्वो॑ अ॒मृतः॑ स्वा॒धीः ॥२॥

भा०—( यः ) जो परमेश्वर (अपां गर्भः ) प्राणों और सर्वत्र व्यापक प्रकृति के परमाणुओं और लोकों के बीच गर्भ के समान छुपा है, या ( गर्भः ) उनको पकड़ने या थामने और वश करने वाला है । जो ( वनानां ) किरणों के बीच सूर्य के समान सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों को ( गर्भः ) वश करना है । जो ( स्थाताम् गर्भः ) स्थावर अचेतन पदार्थों के भीतर व्यापक, उनको भी वश करने वाला है । जो ( चरथाम् गर्भः ) विचरने वाले जंगम पदार्थों के बीच व्यापक और उनका भी वशीकर्त्ता है और जो ( अद्रौ चित् अन्तः ) पर्वत के समान अभेद्य, कठिन पदार्थ के बीच में और ( दुरोणे ) गृह के समान द्वारवान्, सच्छिद्र पदार्थों में भी व्यापक है, जो ( विशाम् ) प्रजाओं को ( विश्वः न ) सुख से बसाने वाले राजा के समान ( विश्वः ) समस्त पदार्थों में चेतना रूप से विद्य-

मान, ( अमृतः ) जन्म मरण रहित, अमृतमय ( स्वाधीः ) और समस्त संसार को उत्तम रीति से धारण करने हारा, स्थापन करने हारा सबको पोषण करने हारा है। ( अस्मै चित् आ वनेम ) हम उसी परमेश्वर का भजन करें। जीवपक्ष में—( यः अपां गर्भः ) अप् अर्थात् लिङ्ग शरीरों और प्राणों के बीच छुपा, उनको ग्रहण या धारण करने वाला है। ( वनानां गर्भः ) वनस्पतियों के बीच छुपा हुआ, या सेवनीय पदार्थों का भोक्ता है। ( स्थातां चरथां गर्भः ) चर, अचर, स्थावर, जंगम में भी विद्यमान है। ( अद्रौ ) कठिन पदार्थ अस्थि और ( दुरोणे ) गृह के समान देह में भी विद्यमान है। ( विश्वः ) 'विश्वरूप' सब प्राणियों में प्रविष्ट ( अमृतः ) न नाश होने वाला, ( स्वाधीः ) सब कर्मों का कर्त्ता और भोक्ता, उत्तम कर्म और ज्ञानवान् हो। ( अस्मै ) उसके भोग के लिये ये सब पदार्थ हैं। उस जीव को हम जानें, प्राप्त करें।

**स हि क्षपावाँ अग्नी रयीणां दाशद्यो अस्मा अरं सूक्तैः।**
**एता चिकित्वो भूमा नि पाहि देवानां जन्म मर्तांश्च विद्वान् ॥३॥**

भा०—( यः ) जो परमेश्वर और ज्ञानी पुरुष ( अस्मै ) इस मनुष्य प्राणी को ( सूक्तैः ) उत्तम उपदेश वचनों से ( अरम् ) बहुत अधिक ज्ञान ( दाशत् ) प्रदान करता है वह ही ( अग्निः ) अग्नि जिस प्रकार रात्रि के अन्धकार को नाश करने से रात्रि का स्वामी कहाता है, उसी प्रकार (क्षपावान्) अज्ञानमय मोहरात्रि का नाश करने वाला ( अग्निः ) ज्ञानमय परमेश्वर ( रयीणां ) ऐश्वर्यों को ( अरं दाशत् ) बहुत अधिक प्रदान करता है। हे (चिकित्वः) ज्ञानवन् विद्वन्! और परमेश्वर ! (देवानां जन्म ) विद्वानों और उत्तम गुणों की उत्पत्ति और (मर्त्तान् च) सब मनुष्यों को भी उनके विषय में ( विद्वान् ) अच्छी प्रकार जानता हुए ( एता ) इन समस्त ( भूमा ) भूमिवासी, जीवों और पदार्थों को ( नि पाहि ) रक्षा कर। इसी प्रकार ( अग्निः ) अग्रणी पुरुष प्रजाजन को ऐश्वर्य दे, उत्तम वचनों से ज्ञान दे

और वह सब उत्तम व्यवहारों, विद्वानों और मनुष्यों को जानकर उनके हितार्थ नाना जीवों और धनों की रक्षा करे।

वर्धान्यं पूर्वीः क्षपो विरूपाः स्थातुश्चरथमृतप्रवीतम्।
अराधि होता स्व१र्निषत्तः कृण्वन्विश्वान्यपांसि सत्या ॥ ४ ॥

भा०—( क्षपः ) अंधेरी रात्रियें जिस प्रकार उगते सूर्य या प्रकाशमान् अग्नि को ( वर्धान् ) बढ़ाती हैं, उसके महान् सामर्थ्य को प्रकट करती हैं इसी प्रकार ( यम् ) जिस अग्रणी नायक ( विरूपाः ) विविध रूपों वाली विविध प्रकार की ( पूर्वीः क्षपः ) पूर्व से ही विद्यमान या पूर्व शिक्षित, सिद्धहस्त, नाना साधनों से पूर्ण शत्रु-नाशकारिणी सेनाएं ( वर्धान् ) बढ़ावें और ( ऋत-प्रवीतम् ) जल से युक्त भूमि प्रदेश को जिस प्रकार ( स्थातुः चरथम् ) स्थावर वृक्ष आदि और जंगम हरिण, गौ आदि जन्तु समृद्ध करते हैं उसी प्रकार ( ऋत-प्रवीतम् ) सत्य-न्याय और ज्ञान से उज्वल हुए उत्तम शासक को ( स्थातुः चरथम् ) स्थावर और जंगम, चराचर सभी ( वर्धान् ) उसके ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं। वह (विश्वा) समस्त ( अपांसि ) कर्मों को ( सत्या ) सर्व हितकारी, सत्य, न्यायानुकूल, ठीक ठीक ( कृण्वन् ) करता हुआ ( स्वः निषत्तः ) प्रजा का सुखकारी, प्रतापी और तेजस्वी राज-पद पर विराज कर ( होता ) विद्वान् के समान सबको सुखों, अधिकारों और ऐश्वर्यों का देने वाला होकर ( अराधि ) सेवा और आश्रय किया जाता है। इसी प्रकार परमेश्वर के सामर्थ्य को नाना प्रकार की सर्ग-प्रलय-कारिणी शक्तियां बढ़ा रही हैं। जिस सत्यज्ञानमय की महिमा को चराचर बढ़ा रहा है, वह सब सत्य कर्मों के करने वाला सुखमय, सर्वसुखप्रद, सर्वत्रव्यापक परमेश्वर ( अराधि ) उपासना और आराधना करने योग्य है। जीव के पक्ष में— ( क्षपः ) रात्रियां और दिन जिसके शरीर को बढ़ाती हैं, प्राणों से युक्त जिसके सामर्थ्य को चर

अचर देह बतला रहे हैं, वह सब कर्मों का कर्त्ता सुखकारी सुखप्रद, हृदय में स्थित आत्मा साधना करने योग्य है ।

"स्थातुः । च । रथम् ।" इति पदपाठश्चिन्त्यः ।

गोषु प्रशस्तिं वनेषु धिषे भरन्त विश्वे बलिं स्वर्णः ।
वि त्वा नरः पुरुत्रा सपर्यन्पितुर्न जिव्रेर्वि वेदो भरन्त ॥ ५ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू ( गोषु ) पृथिवी आदि लोकों और ज्ञान वाणियों में और ( वनेषु ) सेवन करने योग्य किरणों और जलों में सूर्य के समान ( प्रशस्तिम् ) उत्तम कथन करने योग्य गुण को ( धिषे ) धारण कराता है । ( विश्वे ) सब ही ( नः ) हममें से ( स्वः ) आदित्य के समान तेजस्वी ( बलिम् ) बलवान् तुझ को ( भरन्त ) प्राप्त होते हैं । ( पुरुत्रा ) बहुत से ( नरः ) मनुष्य ( त्वा ) तेरी ( वि सपर्यन् ) विविध प्रकार से उपासना करते हैं । ( जिव्रेः पितुः न ) बूढ़े पिता के धन को जिस प्रकार पुत्र ले लेते हैं उसी प्रकार तू ( जिव्रेः ) अति पुराण, सनातन पालक तुझ से ( वेदः ) परम ज्ञान और ऐश्वर्य को सब मनुष्य ( वि भरन्त ) प्राप्त करें । राजा के पक्ष में—राजा गवादि पशु और भोग्य ऐश्वर्यों के निमित्त उत्तम कीर्त्ति को धारण करे । सब सुखकारी प्रतापी बलवान् को शरण रूप से प्राप्त हों, या कर प्रदान करें । नायक जन उसकी सेवा करें । पिता के धन के समान उसके ऐश्वर्य को प्रजागण भोग करें, या बढ़ावें ।

साधुर्न गृध्नुरस्तेव शूरो यातेव भीमस्त्वेषः समत्सु ॥ ६ ॥ १४ ॥

भा०—यह परमेश्वर ( साधुः न ) साधना करने वाले भक्त के समान ही ( गृध्नुः ) उसकी उन्नति करने का अभिलाषी होता है । वह ( अस्ता इव ) शस्त्रास्त्र की वर्षा करने वाले शूरवीर के समान दुःखों को दूर फेंक देने वाला या पृथिवी आदि लोकों का संचालक और ( शूरः ) सर्वत्र व्यापक है । वह ( याता इव ) चढ़ाई करने वाले राजा के समान ( त्वेषः ) सदा अन्धकार पर विजय पाने वाला अति कान्तिमय होकर

( समत्सु ) आत्मा का परमात्मा के साथ मिलकर प्राप्त करने योग्य आनन्द लाभ के अवसरों पर अनुभव करने योग्य है। राजा या सेनापति पक्ष में– वह ( गृध्नुः ) राज्य वृद्धि की आकांक्षा करता है, धनुर्धर के समान सदा शूरवीर सेना बल से प्रयाण करने वाला होकर ( भीमः ) अति भयानक ( समत्सु त्वेषः ) संग्राम के अवसरों पर अति तेजस्वी हो। इवश्चार्थः॥ इति चतुर्दशोवर्गः॥

[ ७१ ]

पराशर ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१, ६, ७ त्रिष्टुप्। २, ५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ४, ८, १० विराट् त्रिष्टुप्। भारिक्पंक्तिः॥

**उप प्र जिन्वन्नुशतीरुशन्तं पतिं न नित्यं जनयः सनीळाः।**
**स्वसारः श्यावीमरुषीमजुष्रञ्चित्रमुच्छन्तीमुषसं न गावः॥ १॥**

भा०—( उशन्तीः ) कामनाशील स्त्रियें ( उशन्तं पतिं न ) अपने कामना युक्त पति को जिस प्रकार (उप प्र जन्वन् ) प्राप्त होकर उसे प्रसन्न करती हैं उसी प्रकार ( सनीळाः ) एक ही देश में रहने वाली ( जनयः ) प्रजाएं ( उशतीः ) प्रेमपूर्वक चाहती हुई ( उशन्तं पतिम् ) अपने प्रति प्रेम करने वाले पालक राजा को (उप प्र जिन्वन् ) प्राप्त होकर उसे अच्छी प्रकार समृद्ध करें। ( गावः ) किरणें जिस प्रकार ( उच्छन्तीम् ) अन्धकार के आवरण को दूर करती हुई ( श्यावीम् ) कुछ २ अन्धकार से अन्धियारी ( अरुषीम् ) कुछ २ ललाई लिये हुए ( उषसम् न ) उषःकाल को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार ( स्वसारः ) स्वयं अपने बल से आगे बढ़ने वाली ( गावः ) भूमियें, उनके निवासी प्रजागण या विद्वान् जन ( श्यावीम् ) ज्ञान से सम्पन्न, आगे बढ़ने वाले ( अरुषीम् ) कान्तिमान्, तेजस्वी ( चित्रम् ) संग्रह करने योग्य अद्भुत ऐश्वर्य को ( उच्छन्तीम् ) प्रकट करने वाले ( उषसम् ) शत्रुओं को जला डालने वाले, राजा या विद्वत्सभा को

( अजुषन् ) प्राप्त हों । परमेश्वर के पक्ष में—प्रेम वाली स्त्रियें जिस प्रकार प्रेमी पति को चाहती हैं उसी प्रकार एक स्थान की प्रजाएं अपने पालक नित्य परमेश्वर को भजन करें । किरणें जिस प्रकार उषा को प्राप्त हों उसी प्रकार विद्वान्, ज्ञानवाली प्रजाएं पापनाशक, प्रकाशस्वरूप परमेश्वर का भजन करें ।

वीळु चिद्दृळ्हा पितरो न उक्थैरद्रिं रुजन्नङ्गिरसो रवेण ।
चक्रुर्दिवो बृहतो गातुमस्मे अहः स्वर्विविदुः केतुमुस्राः ॥२॥

भा०—( पितरः ) विश्वको पालन करने वाले ( अंगिरसः ) वायु गण जिस प्रकार ( वीणुचित् ) बड़े बलवान्, ( दृढा ) दृढ़ ( अद्रिम् ) मेघ को (रुजन्) छिन्नभिन्न कर देते हैं और (अंगिरसः) अग्नि से बलवान् विद्युतें या बारूद की नालें जिस प्रकार (रवेण) बड़े गर्जना सहित दृढ़ पर्वत को तोड़ फोड़ देती हैं उसी प्रकार ( पितरः ) प्रजाका पालन करने वाले ( अंगिरसः ) ज्ञानी पुरुष और ( अंगिरसः ) देह में प्राणों के समान देश के रक्षक वीर जन ( उक्थैः ) ज्ञानोपदेशों से ( वीडु दृढाचित् ) बड़े बलवान् और दृढ़ ( अद्रिम् ) अभेद्य अज्ञान अन्धकार को और शत्रु गढ़ को ( रवेण ) बड़े भारी वेदमय शब्द और घोर गर्जना से (रुजन्) तोड़े, विनाश करे । (उस्राः) किरणें जिस प्रकार ( केतुम् अहः ) सब पदार्थों के ज्ञान कराने वाले प्रकाश को करते हैं और ( स्वः विविदुः ) आदित्य को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार ( अंगिरसः ) ज्ञानी विद्वान् पुरुष ( बृहतः दिवः ) बड़े भारी ज्ञान-स्वरूप परमेश्वर को प्राप्त होने के लिये ( अस्मे ) हमें ( गातुम् चक्रुः ) मार्ग का उपदेश करें । और ( उस्राः ) अधीन होकर वास करने वाले अन्तेवासी, शिष्यगण ( केतुम् ) ज्ञानवान् गुरु को ( विविदुः ) प्राप्त हों । अथवाः ( उस्राः ) निष्ठ होकर रहने वाले पुरुष ( स्वः ) सुखकारी (केतुम् ) ज्ञानवान् परमेश्वर का ( विविदुः) ज्ञान करें, उसे प्राप्त हों । इसी प्रकार वीर पुरुष ( अस्मे ) हमारे हित के लिये ( बृहतः दिवः ) बड़े तेजस्वी पुरुष के अधीन (गातुं चक्रुः) पृथिवी को प्रदान करें । और वे विद्वान् ( केतुम् अहः

स्वः ) सूर्य के समान तेजस्वी, शत्रुओं से न मारे जाने वाले, ध्वजा के समान ऊंचे वीर पुरुष को ( विविदुः ) प्राप्त हों ।

दधन्नृतं धनयन्नस्य धीतिमादिदर्यो दिधिष्वो३ विभृत्राः ।
अतृप्यन्तीरपसो यन्त्यच्छा देवाञ्जन्म प्रयसा वर्धयन्तीः ॥ ३ ॥

भा०—(अर्यः) स्वामी, वैश्यगण जिस प्रकार (धनयन्) धन का संग्रह करते हैं और उस की वृद्धि करते हैं और लोभ से स्वयं उसका भोग न कर के साधु सज्जनों और सन्तानों पर व्यय कर देते हैं उसी प्रकार ( अर्यः ) विद्याभिलाषिणी कन्याएं और गृह की स्वामिनी, ( दिधिष्वः ) ज्ञान ऐश्वर्य और पति को धारण करने वाली, ( विभृत्राः ) विविध उपायों से प्रजाओं का भरण पोषण करने में कुशल होकर ( ऋतम् ) सत्य वेद ज्ञान को (दधन्) धारण करें और ( धनयन् ) धन का लाभ करें या उसे धन के समान सञ्चय करें और ( आत् इत् ) वाद में भी ( धीतिम् ) उसका अध्ययन और चिन्तन तथा स्मरण और पोषण करें । वे ( अतृप्यन्तीः ) तृष्णा से या लोलुपता से धन का लोभ न करती हुईं ( अच्छ ) अच्छी प्रकार ( देवान् ) विद्वान् पुरुषों को और ( जन्म ) अपने उत्पन्न हुए पुरुषों को ( प्रयसा ) उत्तम ज्ञान और अन्न से ( वर्धयन्तीः ) बढ़ाती हुईं (अपसः) उत्तम कर्मों और फलों को ( यन्ति ) प्राप्त हों ।

मथीद्यदीं विभृतो मातरिश्वा गृहेगृहे श्येतो जेन्यो भूत् ।
आदीं राज्ञे न सहीयसे सचा सन्ना दूत्यं१ भृगवाणो विवाय ॥४॥

भा०—( यत् ) जिस प्रकार ( विभृतः) विशेष बल को धारण करनेवाला या विविध प्रजाओं का पालक पोषक नली आदि द्वारा विशेष उपाय से धारण किया जाकर ( मातरिश्वा ) वायु ( ईम् ) इस अग्नि को ( मथीत् ) मथता है, नाना प्रकार से तीव्र करता है, तब वह ( गृहे गृहे ) घर २ में ( श्येतः ) श्वेत, शुभ्रवर्ण का होकर ( जेन्यः )

प्रकट होता, प्रकाशित होता है। तभी वह (भृगवाणः) भूनने वाला तीव्र अग्नि के रूप में होकर ( दूत्यं आविवाय ) ताप क्रिया को प्रकट करता है। उसी प्रकार ( विभृतः) विशेष एवं विविध प्रजाओं का पोषक और विशेष रूप से धारित और पोषित (मातरिश्वा) पृथिवी पर वेग से प्रयाण करनेवाला राजा ( ईम् ) इस अग्रणी नायक को ( मथीत् ) मथे, प्रकट करे। अर्थात् संघर्ष या प्रतिस्पर्द्धा द्वारा जो सबसे अधिक उत्तम सिद्ध हो उसको अग्रणी सेनापति बनावे। वह ( गृहे गृहे ) प्रत्येक स्वीकार करने और प्रजा और देश को अपने वश करने के अधिकार पर (श्येतः) अति प्रबल और सम्पन्न होकर (जेन्यः) विजयशील (भूत् ) हो। (आत् ईम्) अनन्तर (भृगवाणः) सब पदार्थों को भून देने वाले, अग्नि के समान शत्रुओं को पीड़ित करने में समर्थ होकर राजा ( ईम्) उस नायक को (सचा सन् ) समवाय बल से प्राप्त होकर (सहीयसे राज्ञे न) राजा के समान प्रबल राष्ट्र के विजय के लिए (दूत्यम् ) दूत अर्थात् अपने प्रतिनिधि के कार्य पर (आ विवाय) स्थापित करे।

म॒हे यत्पि॒त्र ईं॒ रसं॑ दि॒वे कर॒व त्स॑रत्पृश॒न्य॑श्चिकि॒त्वान् ।
सृ॒जद॑स्ता धृष॒ता दि॒द्युम॑स्मै॒ स्वायां॑ दे॒वो दु॑हि॒तरि॒ त्विषिं॑ धात् ।५।१५॥

भा०—मनुष्य ( यत् ) जब ( महे पित्रे ) सबसे बड़े पालक परमेश्वर के ( दिवे ) ज्ञान प्रकाश को प्राप्त करने के लिए ( ईम् ) प्राप्त करने योग्य साक्षात् ( रसम् ) रस रूप आत्मानन्द का ( कः ) सम्पादन करता है तब वह चिकित्वान् ( ज्ञानवान् ) होकर ( पृशन्यः ) परमेश्वर को स्पर्श करता हुआ अर्थात् उसका योगज आनन्द लेता हुआ (अवत्सरत्) बन्धन से मुक्त हो जाता है या अन्धकार को दूर करता है। ( अस्ता ) धनुर्धर जिस प्रकार ( धृषता ) प्रगल्भता से बाण फेंकता है उसी प्रकार ( अस्ता ) सब विषय वासनाओं को या कर्मबन्धनों को दूर फेंकनेहारा ( धृषता ) बाधक कारणों को पराजित करनेवाले सामर्थ्य से ( अस्मै ) साधक के इस हित के लिए (दिद्युम् ) अज्ञान नाशक ज्ञान प्रकाशको ( सृजत् ) प्रदान करता

है और ( देवः ) सूर्य जिस प्रकार ( दुहितरि ) अपनी कन्या के समान उषा में ( त्विषिम् धात् ) कान्ति को धारण कराता है और (देवः दुहितरि) कामनावान् पति अपने समस्त मनोरथों को पूर्ण करनेवाली अपनी भार्या में (त्विषिं धात् ) तेज,अर्थात् वीर्य को धारण कराता है उसी प्रकार (देवः) दानशील ज्ञानों का प्रकाशक परमेश्वर या प्रकाश का द्रष्टा आत्मा (स्वायाम् ) अपनी ( दुहितरि ) कन्या के समान अपने ही से उत्पन्न होनेवाली, सब संकल्पों को पूर्ण करनेवाली अथवा ( दुहितरि ) परमानन्द रस को दोहन करनेवाली चिति शक्तिमें (त्विषिम्) कान्ति, प्रकाश, दीप्ति को (धात् ) धारण कराता है। राजा के पक्ष में—( महे पित्रे दिवे ) जैसे बड़े भारी जगत् के पालक आकाश या प्रकाश के लिए ( पृशन्यः ) क्षितिज को स्पर्श करनेवाला सूर्य ( ईम् रसं अवसृजत् ) इस प्रकाश को फेंकता और अन्धकार को दूर करता है वैसे ही ( चिकित्वान् ) प्रजापालक ज्ञानी पुरुष सबके पालक ज्ञान प्रकाश के लिए ( ईं रसम् ) ऐसे बल को उत्पन्न करे और ( शत्रुम् अवत्सरत् ) शत्रु को दूर करे। ( अस्ता धृषता अस्मै दिद्युम् सृजत् ) धनुर्धर होकर प्रगल्भता से शत्रु पर बाण फेंकें। ( देवः ) दानशील या विजिगीषु राजा ( स्वायां दुरितरि ) अपने ऐश्वर्य को पूर्ण करनेवाली प्रजा में (त्विषिं) तेज पराक्रम को धारण करावे। और उसके आश्रय रहकर अपने में तेज में धारण करे। इति पञ्चदशो वर्गः।

**स्व आ यस्तुभ्यं दम आ विभाति नमो वा दाशादुशतो अनु द्यून्।**
**वर्धो अग्ने वयो अस्य द्विबर्हा यासद्राया सरथं यं जुनासि ॥ ६॥**

भा०—हे परमेश्वर ! हे आचार्य ! (तुभ्यमे) तेरे लिये, तुझे प्राप्त प्रसन्न करने के लिये ( यः ) जो पुरुष ( स्वे दमे ) अपने घर में या अपने इन्द्रियों के दमन कार्य या देह में ( आ विभाति ) सब प्रकार से विशेष तेजस्वी होकर सूर्य के समान चमकता है। ( अनु द्यून् ) प्रति दिन ( उषतः ) कान्तिमय देव और प्रिय आचार्य के लिये ( नमः ) नमस्कार

आदर और अन्नादि पदार्थ ( वा ) भी ( दाशात् ) प्रदान करता है हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! आचार्य ! परमेश्वर ! तू (द्विबर्हाः ) विद्या और शिक्षा से तथा ज्ञान और कर्म दोनों से बढ़ाने हारा होकर (अस्य) इस शिष्य या साधक के ( वयः ) ज्ञान, बल और आयु को ( वर्धः ) बढ़ा और तू (यं) जिस ( सरथम् ) रथवान्, देहवान् या आत्मवान् या आनन्द रस से युक्त पुरुष को ( जुनासि ) सन्मार्ग पर चलाता है वह ( राया यासत् ) ऐश्वर्य से युक्त हो जाता है । राजा के पक्ष में—(यः तुभ्यं दमे आविभाति) जो तेरे शासन में चमक जाता है और जो सब दिनों तेरा आदर करता और तुझे इच्छानुसार अन्नादि देता है, हे (अग्ने) अग्रणी राजन् ! तू ( द्विबर्हः ) राजा प्रजा दोनों को बढ़ाने हारा होकर ( अस्य वयः वर्धः ) उसके बल को बढ़ा और जिस रथरोही, महारथी शासक को तू अपनी आज्ञा में चलावे वह ऐश्वर्य से युक्त हो ।

अ॒ग्निं विश्वा॑ अ॒भि पृक्षः॑ सचन्ते समु॒द्रं न स्र॒वतः॑ स॒प्त य॒ह्वीः ।
न जा॒मिभि॒र्वि चि॑किते॒ वयो॑ नो वि॒दा दे॒वेषु॒ प्रम॑तिं चिकि॒त्वान् ॥७॥

भा०—( स्रवतः ) क्षरने वाली ( सप्त ) देशों में सर्पण करने वाली, बहती २ ( यह्वीः ) बड़ी २ नदियां ( समुद्रम् न ) जिस प्रकार समुद्र को प्राप्त होती हैं उसी प्रकार ( विश्वाः ) समस्त ( पृक्षः ) विद्याभिलाषी जन ( अग्निम् ) ज्ञानवान् आचार्य को ( अभि सचन्ते ) प्राप्त करते हैं और ( विश्वाः पृक्षः ) समस्त परस्पर सम्पर्क, परस्पर सहयोग से मिलकर एक हुई सेनाएं और संगठित प्रजाएं ( अग्निं ) अग्रणी नायक और सेनापति का ( अभि सचन्ते ) आश्रय लेती हैं । ( नः ) हमारा ( वयः ) सेना बल और अन्नादि ऐश्वर्य ( जामिभिः ) बन्धुओं द्वारा ( न ) न ( विचिकिते) जाना जाय, अर्थात् कोई हमारे बल और ऐश्वर्य का पार न पा सके । ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् पुरुष ( देवेषु ) विद्वानों और विजयी पुरुषों के द्वारा उनके बल पर ( नः ) हमें ( प्रमतिम् ) उत्तम ज्ञान और स्तम्भन

बल (विदाः) प्राप्त करावें। परमेश्वर के पक्ष में—समुद्र का नदियों के समान समस्त भक्त जन ज्ञानवान् प्रभु का आश्रय लेते हैं। हमारा ज्ञान और आयु ( जामिभिः ) इन्द्रियों द्वारा व्यय न हो। वह ज्ञानी आत्मा (देवेषु) विद्वानों और प्राणों के आश्रय उत्तम ज्ञान प्राप्त करें।

**आ यदिषे नृपतिं तेज आनट् शुचि रेतो निषिक्तं द्यौरभीके।**
**अग्निः शर्धमनवद्यं युवानं स्वाध्यं जनयत्सूदयंच॥ ८॥**

भा०—(यत् तेजः) जो तेज या ओज, आग्नेय तत्व, (नृपतिम्) शरीर में, जीवन के रक्षा करनेवाले, या प्राणों के पालन करनेवाले पुरुष को (इषे) अन्न के खाने पचाने तथा कामना और संकल्प करने के लिये (आ आनट्) प्राप्त होता है वही ( शुचि ) अति शुद्ध ( रेतः ) वीर्य ( अभीके ) स्त्री-पुरुष के परस्पर संग काल में ( निषिक्तम् ) गर्भ में स्थापित किया जाता है। तभी ( द्यौः ) तेजस्वी सूर्य के समान ( अग्निः ) अग्नि के समान कामना से युक्त पुरुष (शर्धम्) वीर्यवान् (अनवद्यम्) दोष रहित (युवानं) हृष्ट पुष्ट, युवा होने वाले ( स्वाध्यम् ) उत्तम गुणों और कर्मों को धारण करने वाले, अथवा उत्तम ध्यान ज्ञान वाले, पुत्र को ( जनयत् ) उत्पन्न करता है और (सूदयत् ) उसको उत्तम मार्ग में प्रेरित करता है।

राजा के पक्ष में—( इषे ) सबको शासन करने के लिये ( नृपतिं ) राजा को शुद्ध शासन, बल अभिषेक द्वारा प्राप्त हो। वह अग्रणी तेजस्वी, युद्ध में अनिन्दनीय, उत्तम बलवान्, युवा पुरुषों को पैदा करे और उनको ठीक राह पर चलावे।

**मनो न योऽध्वनः सद्य एत्येकः सत्रा सूरो वस्व ईशे।**
**राजाना मित्रावरुणा सुपाणी गोषु प्रियममृतं रक्षमाणा॥ ९॥**

भा०—( यः ) जो शूरवीर राजा और ज्ञानी विद्वान् ( मनः ) मन के समान तीव्र होकर ( एकः ) अकेला ही ( सद्यः ) शीघ्र ही ( अध्वनः )

युद्ध के मार्ग के समान इस संसार के आवागमन के मार्ग को भी ( एति ) पार कर जाता है और जो दूसरा (सूरः) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष (सत्रा) एक ही साथ सत्य गुणों और ( वस्वः ) ऐश्वर्यों का ( ईशे ) स्वामी हो जाता है। वे दोनों ( मित्रावरुणा ) शरीर में प्राण और अपान के समान राष्ट्र में रहते हुए मित्र, सबका स्नेही, ज्ञानवान् ब्राह्मण और 'वरुण' दुष्टों का वारक क्षत्रिय दोनों (राजाना) गुणों से प्रकाशमान् मन्त्री और राजा, ( सुपाणी ) उत्तम बलवान् बाहुओं वाले अथवा श्रेष्ठ व्यवहारों में कुशल, ( गोषु ) गौओं में ( प्रियम् अमृतम् ) तृप्तिकारी दुग्ध रस के समान (गोषु) विद्वानों और प्राणों में प्रिय, अमृत, आत्मज्ञान या आत्मतत्व के समान ( गोषु ) भूमियों में और प्रजाओं में ( प्रियम् ) सबको तृप्त करने वाले ( अमृतम् ) जल और अन्न की ( रक्षमाणा ) रक्षा करते हुए रहें।

**मा नो॑ अग्ने स॒ख्या पित्र्या॑णि॒ प्र म॑र्षिष्ठा अ॒भि वि॒दुष्क॒विः सन् ।**
**नभो॒ न रू॒पं ज॑रि॒मा मि॑नाति पु॒रा त॒स्या॑ अ॒भिश॑स्ते॒रधी॑हि ॥१०॥१६॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! अग्रणी राजन् ! प्रभो ! तू ( नः ) हमारे ( पित्र्याणि ) पितामह आदि से चले आये ( सख्या ) मैत्री भावों को ( मा प्रमर्षिष्ठाः ) नष्ट मत होने दे। तू ( कविः ) क्रान्तदर्शी, विद्वान् और ( विदुः ) सब पदार्थों के जानने हारा होकर ( अभिसन् ) सदा हमारे सन्मुख रह। (जरिमा) बुढ़ापा (रूपं) इस रूप को (नभः न ) जल के समान या मेघखण्ड के समान ( मिमाति ) नाश कर देता है (तस्याः अभिशस्तेः ) महा विपत्तियां, संकट या मृत्यु के ( पुरा ) पहले ही तू हमें ( अधि-इहि ) ज्ञान प्रदान कर। इति षोडशो वर्गः ॥

[ ७२ ]

पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ५, ६, ६ विराट् त्रिष्टुप् । ४, १० त्रिष्टुप् । ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ८ भुरिक्पंक्तिः ।

नि काव्या वेधसः शश्वतस्कर्हस्ते दधानो नर्या पुरूणि ।
अग्निर्भुवद्रयिपती रयीणां सत्रा चक्राणो अमृतानि विश्वा ॥१॥

भा०—जो पुरुष ( शश्वतः ) अनादि ( वेधसः ) सनातन जगत् के विधाता, ज्ञानवान् परमेश्वर के (काव्या) विज्ञान और कर्म के प्रतिपादक वेद-मन्त्रों को ( नि कः ) अच्छी प्रकार अभ्यास करता है । वह (नर्या) मनुष्यों के हितकारी ( पुरूणि ) बहुत से ज्ञानों को ( हस्ते ) हाथ में, अपने वश में ( दधानः ) रखता हुआ ( अग्निः ) ज्ञानी पुरुष अग्रणी नायक, (विश्वा) समस्त ( अमृतानि ) जलों के समान जीवन प्रद, अन्नों के समान सुखप्रद अमृत, आत्म ज्ञानों को और ( सत्रा ) नित्य सत्यार्थ प्रतिपादन करने वाले वेद ज्ञानों को ( चक्राणः ) प्रकाशित करता हुआ ( रयीणाम् ) सब ऐश्वर्यों का ( रयिपतिः ) ईश्वर या स्वामी ( भुवत् ) हो जाता है ।

अस्मे वत्सं परि षन्तं विन्दन्निच्छन्तो विश्वे अमृता अमूराः ।
श्रमयुवः पदव्यो धियंधास्तस्थुः पदे परमे चार्वग्नेः ॥ २ ॥

भा०—( अस्मे ) हममें से ( वत्सं ) सब में व्यापक होकर बसने वाले ( परि सन्तं ) सबके उपर, सबके भीतर और बाहर विद्यमान प्रभु को ( इच्छन्तः ) चाहते हुए भी (विश्वे ) सब कोई उसे (न विन्दन्) नहीं पाते । प्रत्युत ( अमूराः ) मोह रहित, ज्ञानी, ( श्रमयुवः ) श्रमशील, तपस्वी, ( पदव्यः ) परम पद को प्राप्त ( धियं-धाः ) ज्ञान और कर्म के धारण करने वाले ( अमृताः ) अमर जीव, सूक्ष्म जल जिस प्रकार सूर्य के किरणों द्वारा उच्च आकाश में चले जाते हैं उसी प्रकार ( अग्नेः ) उस ज्ञान मय प्रभु के (परमे पदे) परम प्राप्तव्य स्वरूप मोक्ष में (तस्थुः) विराजते हैं ।

तिस्रो यदग्ने शरदस्त्वामिच्छुचिं घृतेन शुचयः सपर्यान् ।
नामानि चिद्दधिरे यज्ञियान्यसूदयन्त तन्वः सुजाताः ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! आचार्य ! राजन् ! ( यत् ) जो

( शुचयः ) शुद्ध पवित्र होकर ( शुचिम् ) शुद्ध पवित्र ( त्वाम् ) तुझको ( तिस्रः शरदः ) तीन वर्षों तक ( सपर्यान् ) सेवन करे तेरा ही सत्संग करें वे ( सुजाताः ) उत्तम क्रिया कुशल और आवरणीय, उत्तम चरित्रवान् पुरुष ( यज्ञियानि ) यज्ञ, अर्थात् परमेश्वर के उपासना, प्रार्थना, तथा उत्तम श्रेष्ठ कर्मों के अनुसार ही समस्त व्यवहारों और ( नामानि ) उत्तम नामों को भी ( दधिरे ) धारण करें। और वे ( घृतेन ) जल से (तन्वः) अपने देहों को ( असूदयन्त ) स्नान करावें, गुरुओं के पास विशेष योग्यता प्राप्त करने के लिये तीन वर्ष उसका सत्संग करके निष्णात हों। इसी प्रकार अग्नि अर्थात् राजा के अधीन भी तीन वर्ष निष्कपट सेवा करके स्थिर कार्य पर विशेष उपाधि सहित नियुक्त किये जायँ। अभिषेक द्वारा उनको विशेष रूप से दीक्षित कर दिया जाय। परमेश्वरपक्ष में—शुद्ध भाव से तीन वर्ष लगातार ब्रह्मचर्यपूर्वक निष्कपटता से रहने पर तपस्वी जन परमेश्वर के गुणों और स्वरूपों को साक्षात् करने लगते हैं और (घृतेन) तेज, से उनके देह तमतमाने लगते हैं। यह अनुभवापेक्ष है।

**आ रोदसी बृहती वेविदानाः प्र रुद्रिया जभ्रिरे यज्ञियासः।**
**विदन्मर्तो नेमधिता चिकित्वानग्निं पदे परमे तस्थिवांसम् ॥४॥**

भा०—( रुद्रियाः ) मरण समय में प्राणियों को रुलाने वाले प्राणों के साधक ( वेविदानाः ) निरन्तर ज्ञान सम्पादन करने वाले, ( यज्ञियासः ) सर्वोपास्य परमेश्वर के उपासक विद्वान् जन ( बृहती रोदसी ) बड़े २ भारी सूर्य और पृथिवी के समान देह में स्थित प्राण और अपान भूमि और राज्य, या विद्या और कर्म दोनों को ( प्र जभ्रिरे ) उत्तम रीति से धारण करते और पुष्ट करते हैं। ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् पुरुष ( नेमधिता ) समस्त प्राप्त शक्तियों को धारण करता हुआ ( परमे ) परम सर्वोच्च ( पदे ) प्राप्त करने योग्य मोक्ष पद में ( तस्थिवांसम् ) स्थित ( अग्निम् ) प्रकाश-स्वरूप परमेश्वर को ( विदत् ) साक्षात् करे। राजा के पक्ष में—(रुद्रियाः)

शत्रुओं को रुलाने वाले वीर राजा के अधीन और ( यज्ञियासः ) राष्ट्र या प्रजा पालक प्रभु के अधीन ( वेविदानाः ) विशेष ज्ञान प्राप्त किये हुए पुरुष ( रोदसी ) बड़े राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को ( प्र जभ्रिरे ) अपने वश करें । ( चिकित्वान् ) ज्ञानी ( नेमधिता ) राजा के आधे पदाधिकार को धारण करने हारा ( मर्त्तः ) प्रजाजन सर्वोच्चपद पर स्थित अग्रणी नायक को प्राप्त करे । राजा का आधा बल उसका राष्ट्र है । और आधा वह स्वयं है । तभी राजा प्रजावर्ग दोनों तुले रह सकते हैं नहीं तो एक दूसरे को नष्ट कर दें ।

सं॒जा॒ना॒ना उप॑ सीदन्नभि॒ज्ञु पत्नी॑वन्तो नम॒स्यं॑ नमस्यन् ।
रि॒रि॒क्वांस॑स्त॒न्वः॑ कृण्वत॒ स्वाः सखा॒ सख्यु॑र्नि॒मिषि॒ रक्ष॑माणाः ॥५॥१७

भा०—हे आचार्य ! विद्वन् ! पूजनीय ! ( संजानानाः ) अच्छी प्रकार परस्पर जानने हारे जिस प्रकार ( अभिज्ञु ) गोड़े समेट करके सभ्यता से बैठते हैं उसी प्रकार शिष्य गण और गुरुजन के समीप ( उपसीदन् ) बैठें । और साधक जन भी उसी प्रकार हे परमेश्वर ! आसन लगा कर ईश्वरोपासना के लिये बैठें । ( पत्नीवन्तः ) गृहपत्नियों से युक्त गृहस्थजन भी ( नमस्यं ) नमस्कार और आदर सत्कार योग्य पुरुष को ( नमस्यन् ) नमस्कार और आदर सत्कार करें । ( सख्युः ) मित्र के लिये जिस प्रकार ( सखा ) मित्र ( निमिषि ) उसके देखते ही अपने शरीर तक को आलिंगन आदि द्वारा त्याग देता है उसी प्रकार हे वीरो और विद्वान् जनो ! ( रक्षमाणाः ) परस्पर एक दूसरे की रक्षा करते हुए आप लोग (निमिषि) स्पर्द्धा पूर्वक एक दूसरे के ज्ञान और बल की वृद्धि में ( स्वाः ) अपने ( तन्वः ) शरीरों तक को भी ( रिरिक्वांसः ) परित्याग कर दो । एक दूसरे के लिये प्राण तक त्याग दो । इसी प्रकार हे साधको ! त्याग, और तप द्वारा कृश करते हुए ( रक्षमाणाः ) अधर्म से अपने को बचाते रहो ।

इति सप्तदशो वर्गः ॥

त्रिः स॒प्त यद् गुह्या॑नि॒ त्वे इत्प॒दावि॑द॒न्निहि॑ता य॒ज्ञिया॑सः ।
तेभी॑ रक्षन्ते अ॒मृतं॑ स॒जोषाः॑ प॒शूँश्च॑ स्था॒तॄँश्च॒रथं॑ च पाहि ॥ ६ ॥

भा०—( यज्ञियासः ) सर्वोपास्य परमेश्वर की उपासना में कुशल पुरुष ( यत् ) जिन ( त्रिः सप्त ) २१ (पदा) ज्ञान करने योग्य (गुह्यानि) गुहा अर्थात् बुद्धि से साक्षात् करने योग्य तत्वों का (अविदन्) साक्षात् ज्ञान करते हैं वे सब ( त्वे इत् निहिता ) तुझ में ही स्थित हैं। ( तेभिः ) उन इक्कीसों के द्वारा ( सजोषाः) समान आश्रय पर स्थित, समान रूप से एक ही को सेवन या प्रेम करने वाले मित्र के समान प्रेम से ( अमृतं ) अमृत, आत्मतत्व की (रक्षन्ते) रक्षा करते हैं। हे प्रभो! तू विद्वान्‌जन (पशून्) पशुओं के समान मूर्ख जनों को और ( स्थातॄन् ) स्थावर वृक्ष और भूमि आदि लोकों को और ( चरथम् च ) अन्य समस्त जंगम प्राणिसमूह को ( पाहि ) पालन कर। राजा के पक्ष में—( यज्ञियासः ) प्रजापालक राजा या राष्ट्र के उपकारी जन रहस्यमय २१ अधिकार पदों को जानें। वे सब राजा के ही आश्रय पर स्थित हैं। वे सब समान रूप से राजा की रक्षा करें। और राजा राष्ट्र में गौ आदि पशुओं, वृक्ष, ओषधि आदि स्थावरों और अन्य वन के जन्तुओं की भी रक्षा करे। अध्यात्म में—शरीर के धारक २१ सों तत्व तुझ आत्मा में आश्रित हैं। उन द्वारा ही आत्मा की रक्षा करते हैं। वह आत्मा ( पशून् ) ज्ञानेन्द्रियों को, ( स्थातन् ) कर्मेन्द्रियों को और ( चरथं ) देह की रक्षा करें।

अथवा—विद्वान् लोग (गुह्यानि) चित्त में धारण करने योग्य ( सप्त ) चार वेद और तीन क्रिया, विज्ञान और उद्योग इन सातों को (त्रिः) श्रवण, मनन निदिध्यासन द्वारा धारण करें। उनसे अमृत, मोक्ष सुख को तथा पशु, भृत्य, स्थावर, चर आदि सम्पदा को प्राप्त करें और रक्षा करें ( द० )।

त्रिः सप्त—७ पाकयज्ञ, ७ हविर्यज्ञ और ७ सोमयज्ञ ( सा० )। विशेष विवरण देखो अथर्ववेद ( १ । १ । १ )

विद्वाँ अग्ने वयुनानि क्षितीनां व्यानुषक् शुरुधो जीवसे धाः ।
अन्तर्विद्वाँ अध्वनो देवयानानतन्द्रो दूतो अभवो हविर्वाट् ॥ ७ ॥

भा०—( अग्ने ) विद्वन् ! राजन् ! ईश्वर ! तू ( वायुनानि ) समस्त जानने योग्य पदार्थों और ज्ञानों को ( विद्वान् ) जानता हुआ ( क्षितीनां ) प्रजाओं के ( जीवसे ) जीवन धारण करने के लिए ( शुरुधः ) दुःखदायी अज्ञान, क्षुधा, पीड़ा आदि रोकने वाले अन्नादि ओषधियों और उपायों को ( आनुषक् ) निरन्तर उनके स्वभाव के अनुकूल ( विधाः ) विविध प्रकार से रचता और प्रदान करता है । और ( अन्तः ) भीतर आत्मा के समस्त तत्वों को ( विद्वान् ) जानता हुआ हे विद्वन् ! तू ( अतन्द्रः ) आलस्य रहित होकर ( देवयानान् अध्वनः ) विद्वान् पुरुषों से आचरण करने योग्य मोक्ष मार्गों को (विधाः) नाना प्रकार से विधान या उपदेश कर। तू (हविर्वाट् ) ग्राह्य ज्ञानों को प्राप्त करानेहारा, ( दूतः ) सबको ज्ञानवाणी का संदेश सुनानेहारा ( अभवः ) हो । राजा के पक्ष में—अग्रणी नायक सब कुछ ज्ञातव्यों को जानता हुआ प्रजाओं की नाना विपत्तियों के रोकनेवाले अन्न संग्रह आदि उपायों को प्रजाओं के जीवन के लिए करे । ( अन्तः ) राष्ट्र के भीतर बड़े ( देवयानान् अध्वनः ) राजमार्गों को बनवावे, आलस्य रहित होकर ( हविर्वाट् ) आज्ञाएँ देता हुआ ( दूतः ) शत्रु संतापक एवं दुष्टों का दण्डकारी हो ।

स्वाध्यो दिव आ सप्त यह्वी रायो दुरो व्यृतज्ञा अजानन् ।
विदद्गव्यं सरमा दृळ्हमूर्वं येना नु कं मानुषी भोजते विट् ॥ ८ ॥

भा—( स्वाध्यः ) उत्तम रीति से आत्मचिंतन करनेवाले ( ऋतज्ञाः ) सत्य वेदज्ञान के वेत्तापुरुष, (सप्त यह्वीः) सातों इन बड़े प्राणों को (दिवः) मूर्धा स्थान के, या ज्ञान प्रकाशक ( रायः ) ज्ञानैश्वर्य के ( द्वारः ) सात द्वार ही ( वि अजाजन् ) जानते हैं । ( सरमा ) बोध कराने वाली बुद्धि

( गव्यम् ) इन्द्रियों में होनेवाले ( दृढम् ) दृढ ( ऊर्वं ) बल को ( विदत् ) प्राप्त करती है जिससे ( मानुषी विट् ) मानुष प्रजा ( कं नु भोजते ) सुख प्राप्त करती है। राष्ट्रपक्ष में—( यह्वीः सप्त दुरः ) स्वामी, अमात्य, राष्ट्र, दुर्ग, सुहृत् कोष और बल इन सातों को विद्वान् जन ऐश्वर्य का द्वार जानें। ( सरमा ) अपने आक्रमण से शत्रु का नाश करनेवाली सेना ( गव्यम् दृढम् ऊर्वम् ) पृथ्वी के शासन करने वाले प्रबल शत्रुनाशक बल को प्राप्त करती है और ( येन ) जिससे मानुष प्रजा भी सुख और अन्नैश्वर्य का भोग करती है। अथवा—( सप्त यह्वीः ) पूर्वोक्त ७अथवा वेद और उनके ६ अंग इन सातों को वेदज्ञ पुरुष ऐश्वर्यों का द्वार जानते हैं। ज्ञानवती बुद्धि या विद्वान् जन इनसे ही ( गव्यं ) वेदवाणियों का प्रबल ज्ञान प्राप्त करती और मनुष्य नाना सुख भोगते हैं।

**आ ये विश्वा स्वपत्यानि तस्थुः कृण्वानासो अमृतत्वाय गातुम्।**
**मह्ना महद्भिः पृथिवी वि तस्थे माता पुत्रैरदितिर्धायसे वेः ॥९॥**

भा०—( ये ) जो विद्वान्जन ( सु-अपत्यानि ) उत्तम सन्तानों को ( कृण्वानासः ) उत्पन्न कर उनको सुशिक्षित कर चुकते हैं वे ( अमृतत्वाय ) अमरपद ब्रह्म को प्राप्त करने के लिए ( गातुम् ) मोक्षमार्ग का (आतस्थुः) आश्रय लेवें। (माता पुत्रैः) माता जिस प्रकार अपने पुत्रों सहित विराजती है उसी प्रकार ( पृथिवी ) समस्त पृथिवी ( अदितिः ) अखण्ड ऐश्वर्य वाली होकर ( महद्भिः ) अपने बड़े-बड़े सामर्थ्यों से ( वेः ) कर्मफलों के भोक्ता या देह से देहान्तर में जाने वाले आत्मा जीवगण के ( धायसे ) धारण पोषण के लिए ( मह्ना ) अपने महान् सामर्थ्य से ( वितस्थे ) विशेष रूप से स्थित होती है। अथवा (पृथिवी अदितिः) वह विस्तृत अखण्ड परमेश्वरी शक्ति ( वेः ) तेजस्वी सूर्य के समान मुमुक्षु को ( मह्ना धायसे ) महान् सामर्थ्य और आनन्द रस से धारण पोषण के लिए (महद्भिः पुत्रैः माता इव) बड़े २ पुत्रों से माता के समान ( वितस्थे ) विशेष रूप से स्थित रहती है।

राज्यपक्ष में—जो (अपत्यानि) शत्रुओं को दूर करने के सब उत्तम उपायों को करते हैं। वे ( अमृतत्वाय ) अन्न जल के तथा राज्य के सुख पाने के लिए पृथिवी पर शासन करें। और पृथिवी माता ( अदितिः ) अखण्ड, अदीन होकर अपने बड़े बड़े तेजस्वी वीर पुत्रों सहित ( मह्ना ) बड़े भारी बल से ( वेः धायसे ) सूर्य के समान तेजस्वी राजा के पालन पोषण के लिए ( वितस्थे ) विविध प्रकार से हो।

अधि श्रियं नि दधुश्चारुमस्मिन्दिवो यदक्षी अमृता अकृण्वन्।
अधं क्षरन्ति सिन्धवो न सृष्टाः प्र नीचीरग्ने अरुषीरजानन् १०।१८।

भा०—( ये ) जो ( अमृताः ) मरण धर्म से रहित, मुमुक्षु या मुक्त जन ( अक्षी ) बाह्य और आभ्यन्तर दोनों चक्षु या इन्द्रियों को ( दिवः ) सूर्य के समान ज्ञान प्रकाश से युक्त (अकृण्वन्) कर लेते हैं वे ( अस्मिन् ) इस परमेश्वर के आश्रय में ( चारुम् श्रियम् ) अति उत्तम शोभा या ज्ञान दीप्ति को ( अधि निदधुः ) धारण करते हैं। ( सृष्टाः सिन्धवः ) मेघ से गिरती जलधाराएं या वेग से चलती नदियें जिस प्रकार ( नीचीः ) नीचे की ओर बह आती हैं हे ( अग्ने ) विद्वन्! हे ईश्वर! ( अध ) उसी प्रकार साधकों की पूर्वोक्त दशा में भी (सिन्धवः) रसधाराएं ( नीचीः ) साक्षात् ( क्षरन्ति ) स्रवित हों। (अरुषीः) ज्योतिष्मती, प्रजाओं को (प्र अजानन्) वे जानें या साक्षात् करें। राष्ट्रपक्ष में—( अमृताः ) विद्वान्जन ( दिवः अक्षी ) ज्ञान से युक्त विद्वत्-सभा के दो आंखों के समान दो मुख्य पुरुषों को नियुक्त कर लें तब ( अस्मिन् ) उस मुख्य राजा के ऊपर राज्यलक्ष्मी का भार रक्खें। तब ( सिन्धवः ) जलधाराएं नद-धाराओं के समान उस पर बहें अर्थात् उसका अभिषेक हो। हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक! तब विद्वान् लोग ( अरुषीः ) तेजोयुक्त वेदवाणियों का ज्ञानोपदेश करें या तेजस्विनी उषाओं के समान प्रभाववर्द्धक क्रियाओं का तुझे ज्ञान दें।

[ ७३ ]

पराशर ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, २, ४, ५, ७, ६, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ६ त्रिष्टुप् । ८ विराट्त्रिष्टुप् ॥ दशर्चं सूक्तम् ॥

र॒यिर्न यः पि॑तृवि॒त्तो व॑यो॒धाः सु॒प्रणी॑तिश्चिकि॒तुषो॒ न शासुः॑ ।
स्यो॒न॒शीरति॑थि॒र्न प्री॑णा॒नो होते॑व॒ सद्म॑ विध॒तो वि ता॑रीत् ॥ १ ॥

भा०—( पितृवित्तः ) पिता से प्राप्त ( रयिः न ) धन जिस प्रकार ( वयो धाः ) सन्तान को अन्न प्रदान करता है उसी प्रकार विद्वान् और राजा भी (पितृवित्तः) आचार्यादि पालक जनों से सुशिक्षित, उत्तम शासकों द्वारा स्वीकृत हो । वह ( चिकितुषः ) ज्ञानवान् शासक के ( सुप्रणीतिः शासुः न ) उत्तम रीति से प्रयोग किये गये शासन वचन के समान (सुप्रणीतिः ) उत्तम मार्ग पर ले जाने वाला और ( शासुः ) सर्व शास्त्रों का उपदेष्टा हो । वह ( स्योनशीः ) सुख से शयन करनेहारे ( अतिथिः न ) अतिथि के समान ( स्योन-शीः ) समस्त सुखजनक उत्तम पुरुषार्थों में स्थित हो । वह ( होता इव ) सुखप्रद दाता के समान ( प्रीणानः ) स्वयं सबसे प्रसन्न और सबको सुखी करनेहारा हो । वह विद्वान् राजा ( विधतः ) विशेष विशेष काम या राजसेवा करनेवाले पुरुष को ( सद्म ) आश्रय रहने का घर भी ( वितारीत् ) देवे । राजा अपने सेवकों को उत्तम आश्रय या गृह दे । उत्तम गुणवान्, परमेश्वर ( विधतः ) अपने भक्त साधक को शरण देता है ।

दे॒वो न यः स॑वि॒ता स॒त्यम॑न्मा॒ क्रत्वा॑ नि॒पाति॑ वृ॒जना॑नि॒ विश्वा॑ ।
पु॒रु॒प्र॒श॒स्तो अ॒मति॒र्न स॒त्य आ॒त्मेव॒ शेवो॑ दिधि॒षाय्यो॑ भूत् ॥ २ ॥

भा०—( यः ) जो ( सविता ) सबका आज्ञापक ( देवः न ) सूर्य के समान सत्य अर्थ का प्रकाशक ( सत्यमन्मा ) सत्य, यथार्थ ज्ञान का

दाता और सर्व सज्जनों का हितचिन्तक होकर ( क्त्वा ) अपने कर्म और ज्ञान द्वारा ( विश्वा ) समस्त ( वृजनानि ) शत्रु और बाधक विघ्नों के वर्जन करने में समर्थ सैन्य-बलों को ( निपाति ) सब प्रकार से सुखी रखता है वह राजा और विद्वान् पुरुष ही ( पुरु प्रशस्तः ) बहुत-सी प्रजा द्वारा प्रशंसा योग्य ( अमतिः न) सुन्दर तेजस्वी, रूपवान् दीपक आदि के समान (सत्यः) यथार्थ तत्व का दर्शानेवाला और (आत्मा इव ) आत्मा के समान ( शेवः ) सुखप्रद, एवं सेवा योग्य और ( दिधिषाय्यः ) राष्ट्र के समस्त अंगों और प्रजाओं को धारण पोषण करने में समर्थ (भूत्) हो। परमेश्वर के पक्ष में—प्रभु (सविता) सर्वोत्पादक सत्यज्ञानवान् होकर समस्त अन्धकारों को दूर करने वाले ज्ञानों और सूर्यादि लोकों की रक्षा करता है वह (अमतिः) अति स्तुत्य, तेजो रूप के समान सत्य अथवा(अमतिः) अचिन्त्य, अपने आत्मा के समान सदा सेवनयोग्य, सुखप्रद होकर हृदय में धारण करने योग्य है।

देवो न यः पृ॑थि॒वीं वि॒श्वधा॑या उप॒क्षेति॑ हि॒तमि॑त्रो॒ न राजा॑।
पु॒रः॒सदः॑ शर्म॒सदो॒ न वी॒रा अ॑नव॒द्या पति॑जुष्टेव॒ नारी॑ ॥ ३ ॥

भा०—( यः ) जो ( देवः ) दानशील, सर्वप्रकाशक, मेघ और सूर्य के समान ( विश्वधायाः ) समस्त विश्व को और समस्त जीवगण को धारण और पोषण और आनन्द रस का पान करनेहारा है। जो (हितमित्रः) जलांशों को अपने भीतर धारण करनेवाले सूर्य के समान हितकारी मित्रों से युक्त राजा ( पृथिवीम् उपक्षेति ) भूमि पर सुख से निवास करता है। (शर्मसदः) एक ही शरण या आश्रय स्थान में रहनेवाले (वीराः न) वीरगण जिस प्रकार प्रेम से रहते हैं उसी प्रकार जिस राजा के अधीन ( पुरः सदः ) पुरों में रहने वाले प्रजागण तथा (पुरः सदः) आगे बढ़कर शत्रु पर जा पड़नेवाले या उच्च पदों पर स्थित नायकगण भी ( शर्मसदः ) एक वृत्ति दाता के आश्रय रहते हुए (वीराः) शत्रुओं को विविध रीति से उखाड़नेहारे हों। ( नारी ) स्त्री जिस प्रकार ( अनवद्या) निन्दा योग्य, बुरे लक्षणों और पापों से रहित (पतिजुष्टा

इव ) पति के प्रति प्रेम से बद्ध होकर रहती हुई कभी विपरीत नहीं होती उसी प्रकार (नारी) नायकगणों से बनी हुई प्रजा या सेना भी (पतिजुष्टा) अपने पालक राजा या सेनापति को प्रेम करनेहारी होकर (अनवद्या) गर्हा या निन्दा के योग्य, पापाचारों से रहित हो। सेनापति की आज्ञापालक सेना ही उत्तम होती है।

अध्यात्म में—देव, ईश्वर और जीव। पृथिवी प्रकृति। वीर प्राण। नारी बुद्धि।

**तं त्वा नरो दम आ नित्यमिद्धमग्ने सचन्त क्षितिषु ध्रुवासु।**
**अधि द्युम्नं निदधुर्भूर्यस्मिन्भवा विश्वायुर्धरुणो रयीणाम् ॥४॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! परमेश्वर ! ( नरः ) लोग जिस प्रकार ( दमे ) अपने शासन कार्य या देहरूप गृह में ( नित्यम् इद्धम् सचन्ते ) नित्य प्रज्वलित अग्नि को अन्न पाक आदि कार्यों में सेवन करते, उसको प्रयोग में लाते हैं और जिस प्रकार ( नरः ) प्राणगण ( नित्यम् ) नित्य आत्मा को ( दमे ) अपने शासन कार्य या देहरूप गृह में ( इद्धम् सचन्ते ) जीवित जागृत आत्मा का आश्रय लिए रहते हैं और जिस प्रकार (नरः) लोग (दमे) अपने गृहों में ( नित्य) निरन्तर ( इद्धम् ) ज्ञान से दीप्त विद्वान् पुरुष की सेवा करते हैं उसी प्रकार (ध्रुवासु क्षितिषु ) इन अचल भूमियों में (नरः) नायकगण ( दमे ) दमन या शासन कार्य में नियुक्त होकर ( नित्यम् ) चिरस्थायी ( इद्धम् ) प्रज्वलित अग्नि के समान तेजस्वी राजा को (सचन्त) प्राप्त हों, उसका आश्रय लें। और ( अस्मिन् ) इस अपने राजा में या उसके अधीन, ही ( भूरि ) बहुत अधिक ( द्युम्नं ) यश, तेज और ज्ञान ( निदधुः ) प्राप्त करें। हे राजन् ! ईश्वर ! तू ( विश्वायुः ) सबको जीवन देनेवाला, सब प्रजागण का स्वामी, सबको प्रेम से प्राप्त होने वाला और ( धरुणः ) सबका धारक पालक और आश्रय होकर ( रयीणाम् ) ऐश्वर्यों का देनेहारा ( भव ) हो।

**वि पृक्षो अग्ने मघवानो अश्युर्वि सूरयो ददतो विश्वमायुः।**
**सनेम वाजं समिथेष्वर्यो भागं देवेषु श्रवसे दधानाः ॥ ५॥ १६ ॥**

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् परमेश्वर ! अग्रणी राजन् ! ( मघवानः ) धनाढ्य लोग ( ददतः ) दान करते हुए ही (पृक्षः) खूब जलादि से परिसेचित और परिवर्धित और शरीर में बल और वीर्य के देने वाले अन्नों को और ( विश्वम् आयुः ) समस्त आयु को ( वि अश्युः ) विविध प्रकारों से भोग करें। और ( सूरयः ) सूर्य-किरणों के समान ज्ञानवान्, विद्वान् जन ( पृक्षः ) स्नेह, सुख को सेचन करनेवाले ज्ञानों का ( ददतः ) ज्ञान प्रदान करते हुए ही (विश्वम् आयुः वि अश्युः) पूर्ण आयुका विशेष रूप से भोग करें। और (समिथेषु) ज्ञान प्राप्ति के निमित्त एकत्र होने के अवसरों पर (अर्यः) स्वामी या ज्ञानी के ( भागं वाजं ) सेवने योग्य ज्ञान को प्राप्त करें। और (समिथेषु) संग्रामों में ( अर्यः भागं वाजं ) शत्रुगण के भोग योग्य ऐश्वर्यों को (देवेषु) विद्वानों और वीर पुरुषों में ( श्रवसे ) उनके यश के लिए पारितोषिक रूप में ( भागं ) उनके भाग को ( दधानाः ) प्रदान करते हुए ( सनेम ) हम प्राप्त करें।

ऋ॒तस्य॒ हि धे॒नवो॑ वावशा॒नाः स्मदू॑ध्नीः पी॒पय॑न्त॒ द्युभ॑क्ताः ।
प॒रा॒वतः॑ सुम॒तिं भिक्ष॑माणा॒ वि सिन्ध॑वः स॒मया॑ सस्रु॒रद्रि॑म् ॥६॥

भा०—( वावशानाः ) अपने बछड़ों को अति प्रेम से चाहती हुई ( स्मदूध्नीः ) अच्छे बड़े स्तनमण्डलों वाली ( द्युभक्ताः ) तेजोयुक्त, स्वच्छ अन्न खानेवाली (धेनवः) गौएं जिस प्रकार (ऋतस्य) दूध का ( पीपयन्त ) पान कराती हैं उसी प्रकार ( द्युभक्ताः ) ज्ञानप्रकाश का सेवन करने वाले ( धेनवः ) ज्ञानरस का पान कराने में कुशल, ( वावशानाः ) उपदेश करते हुए विद्वान् पुरुष लोगों को ( ऋतस्य ) वेदोक्त या सत्यज्ञान सत् व्यवस्था शासन का ( पीपयन्त ) पान करावें। जिस प्रकार ( सिन्धवः ) नदियें और जलधाराएं ( अद्रिम् समया ) मेघ से या पर्वत से निकलकर ( परावतः ) दूर दूर देशों तक ( वि सस्रुः ) विविध दिशाओं में बह जाती हैं उसी प्रकार ( सिन्धवः ) ज्ञान के सागर एवं प्रजाओं को

प्रेमसूत्र में बाँधने वाले नायकगण ( अद्रिम् समया ) कभी भी खण्डित न होने वाले परमेश्वर राजा का आश्रय लेकर ( सुमतिम् ) उत्तम ज्ञान और ( भिक्षमाणाः ) अन्नमात्र की याचना या प्राप्ति करते हुए ( परावतः ) दूर २ देशों तक ( वि सस्रुः ) जावें और ( सुमतिम् ) उत्तम ज्ञान को विस्तृत करें।

त्वे अ॑ग्ने सुम॒तिं भिक्ष॑माणा दि॒वि श्रवो॑ दधिरे य॒ज्ञिया॑सः।
नक्ता॑ च च॒क्रुरु॒षसा॒ विरू॑पे कृ॒ष्णं वर्ण॑म॒रु॒णं च॒ सं धुः॥ ७॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! गुरो ! परमेश्वर ! ( त्वे ) तेरे अधीन ही (यज्ञियासः) अध्ययनाध्यापन वा ज्ञान का आदान प्रदान करनेहारे गुरु शिष्यजन, अथवा ईश्वर के उपासक सज्जन ( दिवि ) सूर्य के समान तेजस्वी तुझ गुरु के अधीन रहकर ( सुमतिम् ) उत्तम ज्ञान और उत्तम अन्न की ( भिक्षमाणाः ) याचना करते हुए ( श्रवः ) उत्तम श्रवण योग्य ज्ञान और अन्न को ( दधिरे ) धारण करें। और वे ( नक्ता च उषसा च ) रात और दिन उनके समान ही ( विरूपे ) विपरीत स्वरूप वाले ( कृष्णम् अरुणं च वर्णम् ) कृष्ण और अरुण वर्ण को धारण करें। अर्थात् रात और दिन जिस प्रकार क्रम से अन्धकार और प्रकाश को धारण करते हैं उसी प्रकार शिष्य और गुरुजन भी 'कृष्ण' मृगच्छाला और 'अरुण' काषाय वस्त्र धारण करें। अथवा, गुरुजन विद्या प्रकाश से उज्वल होकर अरुण वर्ण हैं और शिष्यगण अज्ञानयुक्त होने से कृष्णवर्ण हैं। वे दोनों विपरीत रूपों को धारण करते हैं। अथवा, प्रत्येक जानने योग्य विषय में पूर्व पक्ष और प्रतिपक्ष, साधर्म्य और वैधर्म्य, गुण और दोष दोनों प्रकार के ( वर्णम् ) विवरणों को ( सं धुः) अच्छी प्रकार ज्ञान करें।

यान्रा॒ये मर्ता॒न्त्सुषू॑दो अग्ने॒ ते स्या॑म म॒घवा॑नो व॒यं च॑।
छा॒येव॒ विश्वं॒ भुव॑नं सिसक्ष्यापप्रि॒वान्रोद॑सी अ॒न्तरि॑क्षम्॥ ८॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! राजन् ! ईश्वर ! (यान्) जिन (सुसूदः) उत्तम, दृढ़, नश्वर देहों से युक्त ( मर्त्तान् ) पुरुषों को ( राये ) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए ( सिसक्षि ) एकत्र कर उनको संघटित करता है ( ते ) वे और ( वयम् ) हम प्रजाजन भी ( ते ) तेरे अधीन रहकर ( मघवानः ) ऐश्वर्यवान् ( स्याम ) हों । अथवा—(यान् मर्त्तान् राये सुषूदः) तू जिनको ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिए प्रेरित करता है वे और हम सब धन सम्पन्न हों ॥ तू ( विश्वम् भुवनम् ) समस्त संसार को ( रोदसी ) आकाश और भूमि तथा (अन्तरिक्षम्) अन्तरिक्ष को भी (आपप्रिवान्) सब तरह से पूर्ण करता हुआ ( छाया इव ) छाया के समान उनके भीतर व्याप्त है । राजा के पक्ष में—( रोदसी ) राज-प्रजावर्ग और ( अन्तरिक्षम् ) मध्यस्थ पद को ( आपप्रिवान् ) पूर्ण करता हुआ विद्वान् राजा (विश्वम् भुवनम्) समस्त राष्ट्र को (छाया इव) आच्छादक छत्र या वृक्ष की छाया के समान (सिसक्षि) उनको शान्तिप्रद, रक्षक शरण रूप से प्राप्त हो ।

अर्वद्भिरग्ने अर्वतो नृभिर्नॄन्वीरैर्वीरान्वनुयामा त्वोताः ।
ईशानासः पितृवित्तस्य रायो वि सूरयः शतहिमा नो अश्युः ॥६॥

भा०—हे (अग्ने) परमेश्वर ! अग्रणी सेनापते ! राजन् ! ( त्वा उताः ) तेरे से सुरक्षित रहकर हम ( अर्वद्भिः ) अश्वों, अश्वारोहियों से ( अर्वतः ) अश्वों, अश्वारोहियों को, ( नृभिः नन् ) नायकों से नायकों को और ( वीरैः वीरान्) वीर पुरुषों से वीरों को (आ वनुयाम) प्राप्त हों और युद्ध में अश्वारोही, नायक और पैदल वीरों से शत्रु के अश्वारोहियों, नायकों और पैदल वीरों का ( वनुयाम ) विनाश करें । हम ( पितृवित्तस्य ) अपने पिता पितामह और गुरुओं द्वारा प्राप्त ( रायः ) ऐश्वर्य के ( ईशानासः ) स्वामी हों । और ( नः ) हमारे ( सूरयः ) विद्वान् जन ( शतहिमाः ) सौ वर्षों तक दीर्घजीवी होकर उस ऐश्वर्य का ( वि अश्युः ) विविध प्रकार से भोग करें ।

एता ते अग्न उचथानि वेधो जुष्टानि सन्तु मनसे हृदे च ।
शकेम रायः सुधुरो यमं तेऽधि श्रवो देवभक्तं दधानाः ।१०।२०।१२।

भा०—हे ( वेधः ) समस्त शासन-विधानों के विधातः विद्वन् और ज्ञानप्रद परमेश्वर ! हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! ज्ञानवन् ! ( ते ) तेरे ( एता ) ये नाना ( उचथानि ) ज्ञानमय वचन ( मनसे ) मन और ( हृदे ) हृदय, या आत्मा को ( जुष्टानि ) प्रिय लगें । अर्थात् 'मन', मनन तर्क वितर्ककारी बुद्धि द्वारा सुविचारित और अन्तःकरण द्वारा श्रद्धा और विश्वास करने योग्य सत्य और प्रिय हों । हम लोग ( सुधुरः ) धुरा के समान उत्तम रीति से कार्यभार को उठाने में समर्थ होकर ( ते ) तेरे अधीन ( देवभक्तं ) विद्वानों और वीरों से सेवन करने योग्य (श्रवः ) ज्ञान अन्न, और ऐश्वर्य को ( दधानाः ) धारण करते हुए ( रायः ) राज्य आदि ऐश्वर्यों का ( यमं ) संयमन अर्थात् प्रबन्ध करने में ( अधिशकेम ) अच्छी प्रकार समर्थ हों । इति विंशो वर्गः ॥ इति द्वादशोऽनुवाकः ॥

[ ७४ ]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥

उपप्रयन्तो अध्वरं मन्त्रं वोचेमाग्नये । आरे अस्मे च शृण्वते ॥१॥

भा०—हम लोग ( उप प्रयन्तः ) समीप प्राप्त होते हुए, उपासना करते हुए ( आरे ) दूर ( च ) और समीप (शृण्वते) हमारी प्रार्थनाओं को श्रवण करनेवाले ( अग्नये ) सर्वज्ञ परमेश्वर की स्तुति के लिए ( अध्वरम्) हिंसा या पीड़ा से रहित, शान्तिदायक (मन्त्रम् ) वेदमन्त्र का ( वोचेम ) उच्चारण करें । राजा के पक्ष में—पास और दूर की प्रजा के प्रार्थनाओं को श्रवण करनेहारे ( अग्नये ) प्रतापी राजा को हम लोग हिंसारहित, प्रजा को शान्ति और सुख देनेवाले मन्त्र या मन्त्रणा का उपदेश करें ।

यः स्नीहितीषु पूर्व्यः संजग्मानासु कृष्टिषु । अरक्षद्दाशुषे गयम् ॥२॥

भा०—(यः) जो ईश्वर ( स्नीहितीषु ) स्नेह करने वाली ( संजग्मानासु ) अतएव परस्पर प्रेमभाव से सत्संग करनेवाली (कृष्टिषु) प्रजाओं में (पूर्व्यः) सदा पूर्व उत्पन्न शिक्षित विद्वानों द्वारा अपने से आगे आनेवालों के प्रति साक्षात् उपदेश करने योग्य है । और जो ( दाशुषे ) अन्यों को विद्या आदि का दान करने वाले तथा अपने आपको ईश्वर के प्रति समर्पण करने वाले उपासक के ( गयम् ) धनैश्वर्य और प्राण जीवन की भी ( अरक्षत् ) रक्षा करता है। राजा के पक्ष में—जो स्नेह से परस्पर संघटित प्रजाओं के बीच ( पूर्व्यः ) सबसे मुख्यपद के योग्य है, वह दानशील, धनाढ्य और ज्ञानवान् पुरुष के ( गयम् ) धन और प्राण की रक्षा करे ।

उत ब्रुवन्तु जन्तव उदग्निर्वृत्रहाजनि । धनञ्जयो रणेरणे ॥ ३ ॥

भा०—( उत ) और ( जन्तवः ) समस्त प्राणी ( ब्रुवन्तु ) उसकी स्तुति और प्रवचन करें कि ( धनंजयः ) ऐश्वर्य के विजय प्राप्त करनेवाला ( अग्निः ) ज्ञानवान् परमेश्वर और राजा ( वृत्रहा ) विघ्नों का और बढ़ते हुए शत्रुओं का नाशक होकर ( रणेरणे ) प्रत्येक युद्ध तथा प्रत्येक रमण योग्य आनन्दप्रद अवसर में ( उत् अजनि ) सबसे उत्तम पद पर विराजे ।

यस्य दूतो असि क्षये वेषि हव्यानि वीतये । दस्मत्कृणोष्यध्वरम् ॥४॥

भा०—हे ज्ञानवन् ! विद्वन् ! तू ( यस्य क्षये ) जिसके घर में ( दूतः असि ) अग्नि के समान अग्रणी, मार्गदर्शक होकर ज्ञान का संदेश श्रवण करानेहारा होता है और ( हव्यानि ) उत्तम अन्नों को ( वीतये ) खाने के लिए ( वेषि ) जावे वह तू उसके लिए ( दस्मत् ) सब दुःखों के नाश करने वाले ( अध्वरम् ) हिंसारहित, सुखदायी ज्ञानोपदेश और यज्ञोपासन ( कृणोषि ) कर। [ उत्तम विद्वानों के आतिथ्यरूप यज्ञ का वर्णन देखो अथर्व काण्ड १५ । ] ईश्वरपक्ष में—( यस्य क्षये हव्यानि वीतये

दूतः असि वेषि च ) जिसके घर में या हृदय में उत्तम ज्ञानों के प्रकाश के लिए तू दुःखों का नाशक होकर रहता और प्राप्त होता है उसके ( अध्वरम् दस्मत् कृणोषि ) यज्ञ और हिंसा रहित उपासना को ही सब भव-बन्धनों का नाशक बना देता है। अग्नि जिसके घर में प्रकाश के लिए और चरु आदि सुगन्धित रोगनाशक पदार्थों को जलाने के लिए रोगनाशक होकर रहता और व्यापता है वह उसके इस अहिंसायुक्त उत्तम काम को ( दस्मत् ) पीड़ाओं का नाशक कर देता है।

तमित्सुहृव्यमङ्गिरः सुदेवं सहसो यहो। जना आहुः सुबर्हिषम्॥५॥२१

भा०—हे ( अंगिरः ) समस्त देह के अवयवों में रस या प्राण के समान समस्त ब्रह्मांड के अवयव २ में चेतनता या शक्तिरूप में व्यापक! हे ( सहसः यहो ) शक्ति के रूप में प्रकट होने वाले प्रभो ! ( जनाः ) विद्वान् लोग ( तम् इत् ) उस तुझको ही ( सुहव्यम् ) उत्तम स्तुति योग्य आश्रय योग्य ( सुदेवम् ) उत्तम दानी, ज्ञानप्रकाशक और द्रष्टा और ( सुबर्हिषम् ) उत्तम ज्ञान, बल और आश्रय वाला ( आहुः ) बतलाते हैं। राजा उत्तम अन्नों का स्वामी, स्तुत्य और शिरोधार्य आज्ञा वाला होने से 'सुहव्य' है; उत्तम राजा होने से 'सुदेव', और उत्तम वृद्धिशील बल और उत्तम प्रजाजन होने से 'सुबर्हिष्' है। राष्ट्र का प्राण, तथा जलते अंगारों के समान तेजस्वी होने से 'अंगिरा' और शक्ति से राजा बनने से 'सहसः-यहु' कहाता है। इत्येकविंशो वर्गः॥

आ च वहासि ताँ इह देवाँ उप प्रशस्तये। हव्या सुश्चन्द्र वीतये॥६॥

भा०—हे ( सुश्चन्द्र ) उत्तम रीति से सबको आह्लादित करनेहारे ! चन्द्र के समान प्रिय, मनोहर ! उत्तम ऐश्वर्यवन् ! परमेश्वर ! विद्वन् ! राजन् ! तू ( इह ) इस लोक में राष्ट्र में या गृह पर ( तान् ) उन नाना ( देवान् ) ज्ञान के द्रष्टा और उपदेष्टा पुरुषों को ( प्रशस्तये ) उत्तम रीति से ज्ञानोपदेश करने और (हव्या) ग्रहण करनेयोग्य ज्ञानों के (वीतये)

प्रकाश करने और उत्तम अन्नों के जाने के लिये ( उप आवह ) प्राप्त करा। अथवा—स्वयं ( वीतये ) सुख प्राप्ति आदि के लिए ( हव्या ) स्तुति योग्य विद्वानों को प्राप्त कर।

न योरुपब्दिरश्व्यः शृण्वे रथस्य कच्चन। यदग्ने यासि दूत्यम्॥७॥

भा०—हे ( अग्ने ) सर्वज्ञ प्रभो ! ( यत् ) जब तू ( दूत्यम् ) उपासना के कर्म को ( यासि ) प्राप्त होता है अर्थात् उपासना किया जाता है तब ( योः ) सब दुःखों के दूर करने वाले ( रथस्य ) रमण योग्य रस स्वरूप तेरा ( उपब्दिः ) अति समीप होकर प्राप्त करने योग्य अज्ञान का नाशक और भक्तों का पालक ( अश्व्यः ) भोक्ता आत्मा का हितकारी शब्द ( कच्चन ) क्या ( न शृण्वे ) नहीं सुनाई देता है ? हे ( अग्ने ) तेजस्विन् ! अग्रणी नायक ! ( यत् दूत्यम् यासि ) जब तू इस अर्थात् शत्रु के पीड़न कार्य पर ( उपब्दिः ) उनको प्राप्त होकर उनका छेदन भेदन करने हारा और ( अश्व्यः ) अश्वबल में कुशल होकर (यासि) प्रयाण करता है तब (योः रथस्य) जाते हुए रथ का ( कत् चित् ) क्या ( न शृण्वे ) शब्द नहीं सुनाई देता है ? देता ही है।

त्वोतो वाज्यह्रयोऽभि पूर्वस्मादपरः। प्र दाश्वाँ अग्ने अस्थात्॥८॥

भा०—हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! ( त्वा-उतः ) तेरे से संगत और सुरक्षित होकर ( वाजी ) वेग से जाने हारा ( अह्रयः ) भय, लज्जा और संकोच से रहित ( दाश्वान् ) दानशील, शस्त्रादि फेंकने में कुशल होकर ( पूर्वस्मात् ) पूर्व अर्थात् मुख्य पद से ( अपरः ) दूसरा होकर भी ( अभि प्र अस्थात् ) आगे बढ़े। हे परमेश्वर ! ज्ञानी पुरुष भी निःसंकोच होकर ( पूर्वस्मात् ) अपने पूर्व के अनुभवी ज्ञाननिष्ठ गुरु से ( अपरः ) शिष्यवत् ज्ञान प्राप्त करके वह आगे बढ़े।

उत द्युमत्सुवीर्यं बृहदग्ने विवाससि। देवेभ्यो देव दाशुषे॥९॥२२॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! हे ( देव ) द्रष्टः ! दातः ! तू (दाशुषे) दान देने हारे या अपने को त्याग देने वाले उपासक और ( देवेभ्यः ) विद्वान् पुरुषों के हित के लिये ( बृहत् ) बहुत बड़ा ( द्युमत् ) उत्तम प्रकाश युक्त ( सुवीर्यम् ) उत्तम बल या बलवान् वीर पुरुषों से युक्त ऐश्वर्य ( विवाससि ) प्रदान कर । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

[ ७५ ]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता । छन्दः—१ गायत्री । २, ४, ५ निचृद्गायत्री । ३ विराड् गायत्री । पञ्चर्चं सूक्तम् ।

जुषस्वं सुप्रथंस्तमं वचो देवप्संरस्तमम् । हुव्या जुह्वान आसनि ॥१॥

भा०—हे विद्वन् ! तू ( आसनि ) मुख में ( हव्या ) उत्तम भोजन करने योग्य अन्नों को ( जुह्वानः ) खाता हुआ ( देवप्सरस्तमम् ) विद्वानों को बहुत अधिक प्रसन्न करने वाले ( सप्रथस्तमम् ) अति विस्तृत, ज्ञान-युक्त ( वचः ) वाणी का ( जुषस्व ) सेवन कर । अथवा ( आसनि ) मुख्य पद पर विराज कर ग्रहण करने योग्य अन्नों और ऐश्वर्यों को (जुह्वानः) स्वयं लेता और अन्यों को देता हुआ विद्वानों के प्रिय उत्तम वचन का सेवन कर ।

अथा ते अङ्गिरस्तमाग्ने वेधस्तम प्रियम् । वोचेम ब्रह्म सानसि ॥२॥

भा०—हे ( अंगिरस्तम ) तेजस्वी सर्वोत्तम पुरुषों में सर्वश्रेष्ठ ! हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! हे ( वेधस्तम ) उत्तम ! मेधावी बुद्धिमान् जन ! ( अथ ) अनन्तर ( ते ) तुझे हम (प्रियम्) प्रिय ( सानसि ) सनातन से चले आये, एवं सब को सेवने योग्य ( ब्रह्म ) वेद ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्ति का ( वोचेम ) उपदेश करें ।

कस्ते जामिर्जनानामग्ने को दाश्वंध्वरः । को ह कस्मिन्नसि श्रितः ॥३

भा०—शिष्य बनाने के पूर्व आचार्य शिष्य से पूछे—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! तेजस्विन् शिष्य ! ( ते जामिः कः ) तेरा कौन बन्धु है ? ( कः दाश्वध्वरः ) तुझे अन्न वस्त्र देने वाला और तेरा रक्षक कौन है ? ( कः ह ) तू निश्चय से कह, कौन है ? तू ( कस्मिन् ) किसके आश्रय पर ( श्रितः असि ) स्थित है ? अध्यात्म में—जीवात्मा के विषय में—जिज्ञासु इन प्रश्नों का समाधान करे और जाने कि सिवाय परमेश्वर के इस जीव का कोई बन्धु, दाता, रक्षक और आश्रय नहीं है। परमेश्वर विषय में भी—उन प्रश्नों का समाधान करे कि उसका कोई बन्धु, दाता या रक्षक या आश्रय नहीं है। वह स्वयं ( कः ) कर्त्ता है।

त्वं जामिर्जनानामग्ने मित्रो असि प्रियः। सखा सखिभ्य ईड्यः ॥४॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् विद्वन् ! परमेश्वर ! ( त्वं ) तू ही ( जनानां जामिः ) समस्त जनों का बन्धु है। तू ही ( प्रियः मित्रः असि ) प्रिय मित्र है। तू ( सखिभ्यः ) हित मित्र जनों का ( ईड्यः ) स्तुति योग्य ( सखा ) परम सखा है।

यजा नो मित्रावरुणा यजा देवाँ ऋतं बृहत्। अग्ने यक्षि स्वं दमम् ॥५॥२३॥

भा०—हे (अग्ने) विद्वन् ! तू ( स्वं दमम् ) अपने गृह के और उसके समान देह या इन्द्रियों के दमन कार्य को ( यक्षि ) अभ्यास कर। (नः) हमारे ( मित्रावरुणा ) प्राण और अपान दोनों को ( यज ) संसगत कर। ( बृहत् ऋतम् यज ) बड़े भारी ऋत, सत्य, वेद ज्ञान को प्राप्त कर और अन्यों को उसका उपदेश कर। इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

## [ ७६ ]

॥ ७६ ॥ १—५ गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५ विराट् त्रिष्टुप् ॥ १—५ धैवतः स्वरः ॥

का त उपेतिर्मनसो वराय भुवदग्ने शंतमा का मनीषा ।
को वा यज्ञैः परि दक्षं त आप केन वा ते मनसा दाशेम ॥ १ ॥

भा०—हे विद्वन् ! (मनसः वराय) मन या संकल्प विकल्प करने वाले चित्त और ज्ञान को वरण करने, प्राप्त करने या श्रेष्ठ बनाने के लिये (ते) तुझे (का उपेतिः) क्या उपायन, भेंट उचित है । हे परमेश्वर, ज्ञान की प्राप्ति और चित्त को उत्तम बनाने के लिए (ते) तेरी (का उपेतिः) किस प्रकार की प्राप्ति या उपासना आवश्यक है । हे (अग्ने) विद्वन् ! प्रभो ! तेरी (का मनीषा) कौनसी स्तुति या अभिलाषा (शंतमा) अति सुखकारिणी (भुवत्) है । (ते) तेरे (दक्षं) ज्ञान और कर्म सामर्थ्य को (यज्ञैः) अध्ययनाध्यापनादि कर्मों, दान देने योग्य पदार्थों तथा उपासनाओं द्वारा (कः) कौन (परि आप) पूर्ण रूप से प्राप्त कर सकता है । (केन वा मनसा) किस चित्त से हम (ते) तुझे (दाशेम) अर्पण करें । आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजा तन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः । इति स्नातकधर्मः । परमेश्वर के लिये (उपेतिः) उपगमन, उपासना (मनीषा) स्तुति और (यज्ञैः) उपासना आवश्यक हैं ।

एह्यग्न इह होता नि षीदादब्धः सु पुरएता भवा नः ।
अवतां त्वा रोदसी विश्वमिन्वे यजामहे सौमनसाय देवान् ॥२॥

भा०—हे परमेश्वर ! हे विद्वन् ! हे (अग्ने) सबके पूर्व विद्यमान, सर्वप्रकाशक ! आप (होता) सब सुखों और ज्ञानों के दाता होकर (इह) यहां (निषीद) विराजमान हो । आप (अदब्धः) कभी तिरस्कार और वध पीड़ा आदि न प्राप्त करके (नः) हमारे (पुरः एता) आगे २ नायक के समान अग्रणी पथदर्शक होकर (भव) रहो । (विश्वमिन्वे) समस्त संसार को जल, अन्न और प्रकाश से पूर देने वाले (रोदसी) सूर्य और भूमि दोनों के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग (त्वा अवतां) तेरा ज्ञान करें । हे राजन् ! वे दोनों तेरी रक्षा करें । हम लोग (सौमनसाय)

मनको परस्पर वैररहित, प्रेमयुक्त उत्तम भाव वाला बनाये रखने के लिये ( देवान् ) विद्वानों का (यजामहे) सत्संग करें। अथवा—[ यज । महे । सौमनसाय इति पदपाठः ] हे ईश्वर ! हे विद्वन् ! आप ( महे सौमनसाय ) बड़े भारी पारस्परिक उत्तम प्रेम युक्त चित्त बने रहने के लिये (देवान् यज) उत्तम गुणों और विद्वान् पुरुषों का सत्संग हमें प्रदान करे। हे मनुष्य ! तू उत्तम चित्त के भाव करने के लिये विद्वानों का सत्संग कर।

प्र सु विश्वा॑न्र॒क्षसो॒ धक्ष्य॑ग्ने॒ भवा॑ य॒ज्ञाना॑मभिशस्ति॒पावा॑ ।
अथा व॑ह॒ सोम॑पतिं॒ हरि॑भ्यामाति॒थ्यम॑स्मै चकृमा सु॒दाव्ने॑ ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन् ! परमेश्वर ! तू ( विश्वान् रक्षसः ) समस्त दुष्ट मनुष्यों और बुरे दोषों को (प्र सु धक्षि) अच्छी प्रकार भस्म कर, उनको जला डाल और ( यज्ञानाम् ) दान शील पुरुषों, उत्तम कर्मों और परस्पर के सत्संगों को ( अभिशस्तिपावा ) निन्दा, घात प्रतिघात, या विनाश, या विच्छेदन होने से बचाने वाला (भव) हो। और (हरिभ्याम्) धारण और आकर्षण से युक्त (सोमपतिम्) सूर्य के समान दो अश्वों से युक्त, या दो प्रमुख विद्वानों सहित (सोमपतिम्) ऐश्वर्य युक्त राष्ट्रपति को ( वह ) प्राप्त कर। ( सुदाव्ने ) सुखों और उत्तम ऐश्वर्यों के देने वाले का हम ( आतिथ्यम् ) आतिथ्य सत्कार (चकृम) करें।

प्र॒जाव॑ता॒ वच॑सा॒ वह्नि॑रा॒सा च॑ हु॒वे नि च॑ सत्सी॒ह दे॒वैः ।
वेषि॑ हो॒त्रमु॒त पो॒त्रं य॑जत्र बो॒धि प्र॑यन्तर्जनित॒र्वसू॑नाम् ॥ ४ ॥

भा०—हे ( प्रयन्तः ) उत्तम नियन्त्रण करने हारे ! हे ( वसूनाम् जनितः ) समस्त लोकों और बसने वाली प्रजाओं के पिता के समान पालक ! हे ( यजत्र ) सबको दान देने हारे, सबको संगति करने और पूजने योग्य ! तू ( इह ) इस राष्ट्र में इस मुख्य पद पर ( देवैः ) विद्वानों और वीरों के साथ और ( प्रजावता वचसा ) प्रजा के संमति से युक्त वाणी, व्यवस्था शास्त्र से ( बोधि ) ज्ञानवान् के साथ ( वह्निः ) समस्त शासन-

भार को अपने कन्धों पर उठाकर ( निसत्सि ) नियमपूर्वक राज्यासन पर विराजमान हो। मैं ( आसा ) मुख से ( हुवे ) तेरी स्तुति करता और तुझे उपदेश करता या तुझे राजा स्वीकार करूं। हे विद्वन् ! राजन् ! तू ( होत्रम् ) प्रजा से त्याग की हुई कर आदि सामग्री, (उत) और (पोत्रम्) दुष्टों को दमन करके राष्ट्र को बुरे पुरुषों से स्वच्छ पवित्र करने के कार्य को (वेषि) प्राप्त कर, उन साधनों वा पदार्थों को प्राप्त कर। अथवा हे विद्वन् तू ( होत्रम् ) उत्तम खाद्य और (पोत्रं) पवित्र पदार्थ ( वेषि ) खा। परमेश्वर पक्ष में—ईश्वर प्रजा की हितकारी वाणी वेद से सब ज्ञान और विश्व को धारण करता और सब दिव्य पदार्थ अग्नि आदि पदार्थों के साथ व्यापक है। मैं उसकी मुख से या मुख्य रूप से स्तुति करूं। वह ग्राह्य और पावन तेज को धारता है और वह सर्वोपास्य, सर्वनियन्ता, सर्वोत्पादक होकर सबको ज्ञान प्रदान करता है।

यथा विप्रस्य मनुषो हविर्भिर्देवाँ अयजः कविभिः कविः सन्।
एवा होतः सत्यतर त्वमद्याग्ने मन्द्रया जुह्वा यजस्व ॥ ५ ॥ २४ ॥

भा०—( यथा ) जिस प्रकार कोई (कविः) क्रान्तदर्शी, उत्तम कोटि का विद्वान् ( कविः ) अन्य उत्तम २ विद्वान् ज्ञानी पुरुषों के साथ मिल कर ( विप्रस्य) विविध धनों से पूर्ण, धनाढ्य ( मनुषः ) मनुष्य के घर में ( हविर्भिः ) उत्तम वचनों द्वारा ( देवान् अयजः ) उत्तम २ व्यवहारों का उपदेश करता और (हविर्भिः) उत्तम अन्न आदि हवियों से (देवान् अयजः) अपने प्राणों को तृप्त करता और ( देवान् अयजः ) विद्वानों का आदर सत्कार करता और कराता है ( एवा ) उसी प्रकार हे ( होतः ) सब सुखों के दातः ! विद्वन् ! हे ( सत्यतर ) सज्जनों के बहुत अधिक हितकारिन् ! (अग्ने) ज्ञानवन् ! नायक ! ( त्वम् ) तू (अद्य) आज के समान सब दिन या शीघ्र ही ( मन्द्रया ) अति हर्षजनक, स्तुति योग्य ( जुह्वा ) वाणी से (यजस्व) सबको सुख दे, उनको संगठित कर। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

[ ७७ ]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१ निचृत्पंक्तिः । २ निचृत् त्रिष्टुप् । ३, ५ विराट् त्रिष्टुप् । पंचर्चं सूक्तम् ॥

कथा दाशेमाग्नये कास्मै देवजुष्टोच्यते भामिने गीः ।
यो मर्त्येष्वमृत ऋतावा होता यजिष्ठ इत्कृणोति देवान् ॥ १ ॥

भा०—( यः ) जो ( मर्त्येषु ) मरणशील प्राणियों में (अमृतः) स्वयं कभी न मरने वाला, ( ऋतावा ) सत्य गुणों और ज्ञानों से युक्त, (होता) सब सुखों का दाता सब ऐश्वर्यों का लेने या वश करने वाला, ( यजिष्ठः ) सबसे अधिक पूजनीय है । जो ( देवान् ) दिव्य पदार्थ सूर्य आदि लोकों का बना है, ( अस्मै अग्नये ) उस सर्व प्रकाशक परमेश्वर के लिये ( कथं ) किस प्रकार से और क्योंकर हम (दाशेम) प्रदान करें अर्थात् उसको क्योंकर हम आत्म समर्पण करें ? और (देव जुष्टा) विद्वानों के हृदय को प्रिय लगने वाली ( का ) कौनसी ( गीः ) वाणी ( भामिने ) दुष्टों के प्रति कोप करने वाले इस के लिये ( उच्यते ) कही जाय ? राजा और विद्वान् के पक्ष में—( मर्त्येषु ) मनुष्यों में ( अमृतः ) अमृत ज्ञानवान्, हृदयवान् , सदा जागृत, उत्साही, सत्य न्याय वाला जो ( देवान् कृणोति ) विद्वानों को नियुक्त करता है । उसको कैसे हम भेंट आदि दें । उसके आदरार्थ कैसे वचन कहें ? इस सब बात का विचार करना चाहिये ।

यो अध्वरेषु शंतम ऋतावा होता तमू नमोभिरा कृणुध्वम् ।
अग्निर्यद्वेर्मर्ताय देवान्त्स चा बोधाति मनसा यजाति ॥ २ ॥

भा०—पूर्व मन्त्र में कहे 'कथं' का उत्तर इस मन्त्र में बतलाते हैं । ( यः ) जो ( अध्वरेषु ) हिंसा रहित, न नाश करने योग्य श्रेष्ठ कर्मों और श्रेष्ठ पुरुषों में भी ( शंतमः ) अत्यन्त अधिक शान्तिदायक, कल्याणकारी, ( ऋतावा ) सत्य गुण कर्म स्वभाव वाला, ( होता ) सब सुखों का

दाता है ( तम् उ) उसको ही ( नमोभिः ) नमस्कारों द्वारा ( आकृणुध्वम् ) अपने अभिमुख करो, उसको प्राप्त करो और प्रसन्न करो । और ( या ) जो स्वयं ( अग्निः ) सब का आग्रणी, ज्ञान-प्रकाशक ( मर्ताय ) मनुष्य के हित के लिये ( देवान् ) दिव्यज्ञानों, प्रकाश की किरणों तथा उत्तम विद्वानों को ( वेः ) प्रकाशित करता और या स्वयं धारण करता है । ( सः च ) वही ( बोधाति ) सब को ज्ञान प्रदान करता और ( मनसा ) ज्ञान से (यजाति ) सबको युक्त करता है। इससे यह सबके पूजा के योग्य है । विद्वान् राजा के पक्ष में—सबका कल्याणकारी, सत्य न्यायवाला होकर मनुष्यों के हितार्थ विद्वानों को नियुक्त करता और उत्तम २ गुणों को प्रकट करता है, ज्ञान से सबको ज्ञानवान् करता और सबको परस्पर संगत करता है वह ( अग्निः ) अग्रणी नायक, विद्वान् है । उसको ( नमोभिः ) आदर सत्कार और अन्नों से प्रसन्न करो ।

स हि क्रतुः स मर्यः स साधुर्मित्रो न भूदद्भुतस्य रथीः ।
तं मेधेषु प्रथमं देवयन्तीर्विश उप ब्रुवते दस्ममारीः ॥ ३ ॥

भा०—( स हि ) वह ही ( क्रतुः ) उत्तम कर्मों का कर्त्ता और उत्तम ज्ञानों का प्रकाशक, (सः मर्यः) वह उत्तम मनुष्य, शत्रुओं का मारनेवाला, (सः साधुः ) वही परोपकार, सन्मार्ग में स्थित सब कार्यों का साधक, शत्रु को वश करने में समर्थ, ( मित्रः न ) सूर्य के समान तेजस्वी, (अद्भुतस्य) आश्चर्यजनक युद्ध करनेवाले सैन्यबल का (रथीः) महारथी, अथवा आश्चर्यजनक ऐश्वर्य को लानेहारा ( भूत् ) हो । ( तम् ) उस (दस्मम् ) शत्रुओं के नाशक दर्शनीय पुरुष को ( देवयन्तीः ) चाहती हुई, ( आरीः विशः ) ज्ञानयुक्त प्रजाएं ( मेधेषु ) यज्ञों और श्रेष्ठ कार्यों और संग्राम के अवसरों में भी ( प्रथमम् ) सबसे प्रथम, ( उपब्रुवते ) प्रस्तुत करती हैं, उसको सर्वश्रेष्ठ जानकर अग्रासन देती हैं।

स नो नृणां नृतमो रिशादा अग्निर्गिरोऽवसा वेतु धीतिम् ।

तना च ये मघवानः शविष्ठा वाजप्रसूता इषयन्त मन्म ॥ ४ ॥

भा०—जो ( रिशादाः ) हिंसक दुष्ट पुरुषों और शत्रुओं का नाश करने हारा ( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी है ( सः ) वह ही ( नः ) हमारे ( नृणां ) समस्त नायकों मे से ( नृतमः ) सबसे श्रेष्ठ पुरुष होकर ( अवसा ) अपने ज्ञान और पालन समार्थ्य से ( धीतिम् ) राष्ट्र के धारण करने वाली शक्ति और ( गिरः ) उपदेश युक्त वाणी और शासनकारिणी आज्ञाओं को ( वेतु ) प्राप्त करें। ( ये च ) और जो ( शविष्ठाः ) अति बलवान्, ( वाजप्रसूतः ) बल, वीर्य, ज्ञान और ऐश्वर्यों से उत्तम पदों को प्राप्त, ( मघवानः ) ऐश्वर्य सम्पन्न पुरुष हैं वे ( तना ) नाना धन और ( मन्म ) मनन करने योग्य ज्ञान को (इषयन्त) प्राप्त करे। वे भी (अवसा धीतिम् गिरः यन्तु ) अपने ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य से उत्तम वाणियें प्रकाशित करें, राष्ट्र के कार्य में प्रतापी पुरुष सभापति और विद्वान् ऐश्वर्यवान् पुरुष सभासद् हों।

एवाग्निर्गोतमेभिर्ऋतावा विप्रेभिरस्तोष्ट जातवेदाः । स एषु द्युम्नं पीपयत्स वाजं स पुष्टिं याति जोषमा चिकित्वान् ॥५॥२५॥

भा०—( एव ) निश्चय से वही ( अग्निः ) अग्रणी, ज्ञानवान्, नायक ( ऋतावा ) सत्य गुण कर्म स्वभाव वाला, सत्य न्यायवान् ( जातवेदाः ) ऐश्वर्यों का स्वामी, (विप्रेभिः) विविध विद्याओं के वेत्ता विद्वान् (गोतमेभिः) उत्तम स्तुतिकर्त्ता, वाग्मी पुरुषों द्वारा ( अस्तोष्ट ) प्रस्तुत किया जावे, ( सः ) वह ही ( एषु ) इन धार्मिक विद्वान् पुरुषों के बीच ( द्युम्नं ) धन ( पीपयत् ) प्राप्त कराता है ( सः वाजम् ) वही ऐश्वर्य, ज्ञान और बल को प्राप्त कराता और ( सः पुष्टिं पीपयत् ) वह अन्नादि समृद्धि और गौ आदि पशु सम्पत्ति की वृद्धि करता है वही ( चिकित्वान् ) ज्ञानवान् पुरुष ( आ जोषम् याति ) सबके सेवन करने योग्य और सबका प्रेमपात्र हो जाता है। इति पञ्चविंशो वर्गः।

these five mantras should be recited by Bhaktas every day in the morning.

## [ ७८ ]

॥७८॥ १—५ गोतमो राहूगण ऋषिः॥ अग्निर्देवता ॥ १—५ गायत्री छन्दः ॥

**अभि त्वा गोतमा गिरा जातवेदो विचर्षणे। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ।१।**

भा०—हे (विचर्षणे) सबके आदि द्रष्टा! सबके देखनेहारे ! हे (जातवेदः ) समस्त धनों और ज्ञानों के उत्पादक स्वामिन्! परमेश्वर ! (गोतमा) ज्ञान-वाणियों के उत्तम विद्वान् स्तुतिकर्त्ता जन ( त्वा अभि ) तुझे ही लक्ष्य कर ( गिरा ) वेदवाणी से स्तुतिकरते हैं। हम भी ( द्युम्नैः ) तेरे गुणों के प्रकाश करने वाले मन्त्रों तथा तेरे गुणों और ऐश्वर्यों से मुग्ध होकर ( त्वा अभि ) तुझे लक्ष्य कर ( प्र नोनुमः ) सदा नमस्कार करें। राजा के पक्ष में—हे राजन् ! ( गोतमाः ) उत्तम भूमियों के स्वामी और हम प्रजाजन तुझे वाणी से मुख्य पद पर प्रस्तुत करते और धनों सहित तेरे आगे झुकते हैं। ऐश्वर्यवान् होने से 'जातवेदा' और सर्वनिरीक्षक साक्षी, द्रष्टा होने से या विविध प्रजाओं का स्वामी होने से 'विचर्षणि' है।

**तमु त्वा गोतमो गिरा रायस्कामो दुवस्यति। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः २**

भा०—हे परमेश्वर ! एवं विद्वन् ! (रायःकामः) ऐश्वर्य की कामना करने वाला ( गोतमः ) विद्वान् स्तुतिकर्त्ता जन ( तम् उ त्वा ) उस स्तुति योग्य तुझ को ही ( गिरा ) वाणी से ( दुवस्यति ) भजन करता है। हम भी ( द्युम्नैः ) उत्तम गुणों के प्रकाशक स्तुति वचनों और यश कीर्तनों से ( त्वा अभि ) तुझे लक्ष्य करके ( प्र नोनुमः ) अच्छी प्रकार स्तुति करें।

**तमु त्वा वाजसातममङ्गिरस्वद्धवामहे। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥३॥**

भा०—( वाजसातमम् ) ज्ञानों, अन्नों और ऐश्वर्यों के उत्तम दान देने वाले ( अङ्गिरस्वत् ) शरीर में प्राणों के समान और आकाश में सूर्य के समान सबको चेतना और प्रकाश देने वाले ( तम् त्वा उ) उस तेरी ही

हम (हवामहे) स्तुति करते हैं (द्युम्नैः अभि प्र नोनुमः) उत्तम यश संकीर्तनों से हम तेरी स्तुति करें।

**तमु त्वा वृत्रहन्तमं यो दस्यूँरवधूनुषे। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः ॥४॥**

भा०—(यः) जो तू (दस्यून्) प्रजा के नाशक दुष्ट पुरुषों को (अव धूनुषे) कठोर दण्डों से भयभीत कर देता है (तम् उ त्वा) उस तुझ (वृत्रहन्तमम्) मेघ या अन्धकार के समान प्रबल शत्रु को सूर्य के समान छिन्न भिन्न करने वाले को हम (द्युम्नैः) धनों और चमचमाते शस्त्र अस्त्रों से सुसज्जित होकर (प्र नोनुमः) अच्छी प्रकार स्तुति करें। तेरे यश का कीर्त्तन करें।

**अवोचाम रहूगणा अग्नये मधुमद्वचः। द्युम्नैरभि प्र णोनुमः५।२६।**

भा०—(रहूगणाः) अधर्म को त्यागने वाले और शत्रु से अपने देश को छुड़ा लेने वाले अथवा अति वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले हम सदा (अग्नये) अग्नि के समान तेजस्वी अग्रणी वीर नायक के आदर और हित के लिये (मधुमत्) मधुर और मनन योग्य, विचार पूर्ण, हर्षजनक (वचः) वचन (अवोचाम) कहा करें। और (द्युम्नैः) उत्तम गुण प्रकाशक स्तुति-वचनों से (अभि प्र नोनुम) उसके गुणों को सर्वत्र प्रकाशित करें। इति षड्विंशो वर्गः॥

[ ७९ ]

गोतमो राहूगण ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१ विराट् त्रिष्टुप्। २, ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ आर्ष्युष्णिक्। ५, ६ निचृदार्ष्युष्णिक्। ७, ८, १०, ११ निचृद्गायत्री। ९, १२ गायत्री॥ द्वादशर्चं सूक्तम्॥

**हिरण्यकेशो रजसो विसारेऽहिर्धुनिर्वात इव ध्रजीमान्।**
**शुचिभ्राजा उषसो नवेदा यशस्वतीरपस्युवो न सत्याः ॥ १ ॥**

भा०—पुरुष कैसा हो? (रजसः) अन्धकार और राजस आवरण

को दूर करने के कार्य में और ( विसारे ) विविध दिशाओं में फैलने या आक्रमण करने में ( हिरण्यकेशः ) सुवर्ण के समान तेज या ज्योति से युक्त या सूर्य के समान तेजस्वी हो । और ( विसारे ) विविध सार अर्थात् बलों के प्राप्त करने और विविध ऐश्वर्यों के दान करने के कार्य में भी ( अहिः ) मेघ के समान उदार, निष्पक्षपात भाव से सब पर सुखों का वर्षक हो । (वातः इव ) प्रचण्ड वायु के समान ( ध्रजीमान् ) वेगवान्, उग्र होकर ( धुनिः ) शत्रुओं को भय से कंपा देने वाला हो । स्त्रियें किस प्रकार की बनें ? स्त्रियें और कुमारी कन्याएं ( शुचि-भ्राजाः ) शुचि, पवित्र, निष्कलंक आचार के प्रकाश या कान्ति से सुशोभित, (उषसः न) प्रातः कालिक नव प्रभात वेलाओं के समान हृदय को पवित्र करने वाली ( नवेदाः ) लौकिक कुटिल, अधार्मिक कुसंग और दुराचारों से सर्वथा अनभिज्ञ, निष्पाप ( Innocent and Ignorant ) और ( यशस्वतीः ) उत्तम यश वाली, सुनामधन्य, (उपस्युवः) नित्य उत्तम कर्म और ज्ञानों की करने की इच्छा वाली, कभी निकम्मा न रहने वाली ( न ) और ( सत्याः ) सत्य व्यवहार करने वाली, सन्तानों के प्रति सद्-व्यवहार करने में कुशल हों ।

आ ते सु॒प॒र्णा अ॑मिनन्तँ॒ एवैः॑ कृ॒ष्णो नो॑नाव वृष॒भो यदी॒दम् ।
शि॒वाभि॒र्न स्मय॑मानाभि॒रागा॒त्पत॑न्ति॒ मिहः॑ स्त॒नय॑न्त्य॒भ्रा ॥ २ ॥

भा०—( सुपर्णाः ) किरण गण जिस प्रकार ( एवैः ) गति देने वाले वायुगण से मिलकर ( यदि इदम् ) जब इस प्रकार मेघ पर ( आ अभिनन्त ) सब तरफ़ से आघात करते हैं तब ( कृष्णः ) श्याम रंग का ( वृषभः ) बरसने वाला बादल ( नोनाव ) गर्जन करता है । और वह ( शिवाभिः ) अति शान्तिदायक ( स्मयमानाभिः ) मानो मुस्कराती हुई विद्युतों से ( आगात् ) युक्त हो जाता है । तब ( मिहः ) जल वृष्टियां ( पतन्ति ) गिरती हैं और (अभ्रा स्तनयन्ति) मेघ गरजते हैं । (न) इसी प्रकार ( ते ) वे ( सुपर्णाः ) उत्तम पालन और ज्ञान सामर्थ्य वाले

विद्वान् पुरुष ( एनैः ) अपने प्रकाशक ज्ञानों से ( आ अमिनन्त ) सब तरफ व्यापते हैं। ( कृष्णः ) अज्ञान अंधकार को काटने वाला, सब के चित्तों को आकर्षण करने वाला विद्वान् पुरुष मेघ के समान ( वृषभः ) ज्ञानों और सुखों की वर्षा करने वाला होकर ( यदि इदम् ) जिस प्रकार यह वृष्टि का कार्य होता है उसी प्रकार ( नोनाव ) उत्तम उपदेश करे। और ( शिवाभिः ) कल्याण करने वाली, ( स्मयमानाभिः ) किञ्चित हास से खिले मुख वाली सुन्दरियों के समान सबके उपकार करने वाली, विकसित भावों वाली वाणियों से वह ( आ अगात् ) सबको प्राप्त हो। और ( मिहः ) जल वृष्टियों के समान ज्ञानवर्षाएं ( पतन्ति ) हों। और ( अभ्राः ) ज्ञानों के देने वाले गुरुजन मेघों के समान गंभीरता से ( स्तनयन्ति ) उपदेश करें। गृहस्थ पक्ष में—(कृष्णो वृषभः शिवाभिः स्मयमानाभिः आ अगात् न) जब चित्ताकर्षक बलवान् पति कल्याणी, प्रसन्नवदना ब्रह्मचारिणी कन्याओं के साथ उनकी इच्छानुसार उन्हें प्राप्त होता है तब (मिहः पतन्तिः) सुखों की वर्षा होती है। या तभी उत्तम रीति से निषेक आदि कर्म होते हैं और उत्तम प्रजाएं उत्पन्न होती हैं।

**यदी॑मृ॒तस्य॒ पय॑सा॒ पिया॑नो॒ नय॑न्नृ॒तस्य॑ प॒थिभी॒ रजि॑ष्ठैः।**
**अ॒र्य॒मा मि॒त्रो वरु॑णः॒ परि॑ज्मा॒ त्वचं॑ पृञ्च॒न्त्युप॑रस्य॒ योनौ॑ ॥ ३ ॥**

भा०—( यत् ) जिस प्रकार ( ऋतस्य पयसा पियानः ) आकाश को पूर देने वाले जल के वाष्पमय रूप से खूब भर पूर, तृप्त होकर वायु ( इम् ) इस मेघ को या जल को ( ऋतस्य ) अन्तरिक्ष के ( रजिष्ठैः ) धूलिकणों से युक्त मार्गों से ( नयन् ) लेजाता है तब ( अर्यमा ) सूर्य ( मित्रः ) वायु, ( वरुणः ) जल ( परिज्मा ) सर्वत्र व्यापक भूमि के अंश धूलि आदि ये सब पदार्थ ( उपरस्य योनौ ) मेघ के उत्पन्न होने के स्थान में ( त्वचं ) जल की त्वचा को अर्थात् जल के बाह्यांश को ( पृञ्चन्ति ) संयुक्त करते हैं। और तब वह मिलकर जल का बून्द तैयार हो जाता है।

उसी प्रकार ( ऋतस्य ) अन्न के ( पयसा ) परिपोषक सूक्ष्म अंश शुक्र से ( पियानः ) परि पुष्ट होकर पुरुष ( ऋतस्य ) मूल सत्कारण के ( ईम् ) उस वीर्यांश को ( रजिष्ठैः पथिभिः ) रजो युक्त मार्गों से ( नयन् ) प्राप्त कराता है और ( अर्यमा ) सूर्य का तेज, ( मित्रः ) प्राण, ( वरुणः ) उदान और ( परिज्मा ) सर्वत्रगामी जीव ये सब ( योनौ ) गर्भाशय के उत्पत्ति कमल में ( त्वचं ) त्वग् को ( पृञ्चन्ति ) सम्पर्क करते हैं तब उस स्थान में जीव की उत्पत्ति होती है। इसी प्रकार ( अर्यमा ) सूर्य ( मित्रः ) वायु और ( वरुणः ) जल और भूमि ये जब ( त्वचं पृञ्चन्ति ) भूमि की त्वचा पृष्ठ पर संयुक्त होते हैं जल से भरा मेघ जल को धूलि मार्गों से पहुंचाता है तब भूमि पर अन्न, ओषधि तथा जीवों की उत्पत्ति होती है। आचार्य के पक्ष में—( ऋतस्य ) सत्य ज्ञान के सार भाग से परिपुष्ट आचार्य शिष्य को ( ऋतस्य रजिष्ठैः पथिभिः ) वेद के ऋजु, धार्मिक मार्गों से ले जाता है और न्यायकारी शासक, स्नेही बन्धुवर्ग दुष्ट वारक सैनिक गण ( परिज्मा ) भ्रमणशील परि व्राजक गण ये सब ( उपरस्य योनौ ) उपनयन द्वारा ज्ञान प्रदान करने वाले आचार्य के आश्रय में ( त्वचं पृञ्चन्ति ) ब्रह्मचर्य के रक्षा साधन को प्रस्तुत करें। तभी उत्तम शिष्य उत्पन्न होते हैं।

अग्ने वाजस्य गोमत ईशानः सहसो यहो।
अस्मे धेहि जातवेदो महि श्रवः॥ ४॥

भा०—हे (जातवेदः) समस्त पदार्थों के जानने हारे परमेश्वर ! विज्ञानों से युक्त विद्वन् ! ऐश्वर्यवन् ! ( सहसः यहो ) शक्ति के एकमात्र आश्रय प्रभो ! शक्तिमान् पुरुष से उत्पन्न विद्वन् ! ( अग्ने ) सर्वप्रकाशक ! तू ( गोमतः ) गौ आदि पशुओं से युक्त ( वाजस्य ) ऐश्वर्य का ( ईशानः ) स्वामी है। तू ( अस्मे ) हमें (महि श्रवः) बड़ा भारी धन ( धेहि ) प्रदान कर। हे विद्वन् ! तू ( गोमतः वाजस्य ) वेद वाणियों से युक्त ज्ञान का

( ईशानः ) स्वामी है । तू ( महिः श्रवः ) बड़ा भारी श्रवण करने योग्य वेद ज्ञानोपदेश ( अस्मे धेहि ) हमें प्रदान कर ।

स इधानो वसुष्कविरग्निरीळेन्यो गिरा । रेवदस्मभ्यं पुर्वणीक दीदिहि ५

भा०—( सः ) वह परमेश्वर, विद्वान् और राजा ( अग्निः ) अग्नि के समान तेजस्वी, प्रकाशक और प्रतापी ( इधानः ) अति दीप्त होकर ( वसुः ) सबको सुख से बसाने हारा ( गिरा ) वाणी से ( ईडेन्यः ) स्तुति करने योग्य है । हे ( पुर्वणीक ) बहुत सी सेनाओं से युक्त बहुत से बलों और ज्ञानोपदेशक मुखों या वचनों से युक्त ( कविः ) क्रान्त दर्शी, परम मेधावी, ज्ञानी होकर तू ( अस्मभ्यम् ) हमारे हित के लिये ( रेवत् ) उत्तम ऐश्वर्यों से युक्त ( श्रवः ) ज्ञान का (दीदिहि) प्रकाश कर।

क्षपो राजन्नुत त्मनाग्ने वस्तोरुतोषसः । स तिग्मजम्भ रक्षसो दह प्रति

भा०—हे ( राजन् ) राजन् ! गुणों से प्रकाशमान ! ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! परमेश्वर ! तू (रक्षसः) दुष्ट पुरुषों और विघ्नकारी दुष्टभावों का ( क्षपः ) विनाश कर । ( उत ) और हे (तिग्मजम्भ) अग्नि के समान तीक्ष्ण, तेजोमय मुख या ज्वाला के तीक्ष्ण नाशक साधनों, शस्त्रास्त्रों वाले ! ( सः ) वह तू ( त्मना ) अपने बल और ज्ञान सामर्थ्य से ( वस्तोः उत उषसः) दिन और रात (रक्षसः) दुष्ट पुरुषों को (प्रति दह) काठों को आग के समान भस्म कर डाल । इति सप्तविंशो वर्गः ॥

अवा नो अग्न ऊतिभिर्गायत्रस्य प्रभर्मणि । विश्वासु धीषु वन्द्य ॥७॥

भा०—हे ( वन्द्य ) स्तुति करने योग्य ( अग्ने ) सर्वप्रकाशक, परमेश्वर ! तू ( नः ) हमें ( गायत्रस्य ) गान करने या स्तुति करने वाले पुरुष की रक्षा करने में समर्थ वेद ज्ञान के ( प्रभर्मणि ) अच्छी प्रकार धारण करने के कार्य में और ( गायत्रस्य प्रभर्मणि ) इस पृथिवी लोक के उत्तम रीति से भरण पोषण के कार्य में (नः) हमारा (ऊतिभिः) ज्ञानों और रक्षा साधनों द्वारा ( अव ) पालन कर और ( विश्वासु ) समस्त ज्ञानों और

कर्मों के प्राप्त करने के अवसरों में हमारी रक्षा कर। राजा केवल इस भूलोकस्थ प्रजाजन के भरण पोषण में ( विश्वासु धीषु ) समस्त प्रकार के कार्यों में हम प्रजाजनों की रक्षा करे।

आ नो अग्ने रयिं भर सत्रासाहं वरेण्यं। विश्वासु पृत्सु दुष्टरम् ॥८॥

भा०—हे (अग्ने) अग्रणी नायक! हे प्रभो! हे ऐश्वर्यवन्! तू (नः) हमें ( सत्रासाहम् ) एक ही साथ विद्यमान समस्त शत्रुओं और कष्टों के पराजित कर देने वाले ( वरेण्यम् ) उत्तम मार्ग में ले जाने वाले, अथवा सर्वश्रेष्ठ गुण कर्म स्वभाव के उत्पादक (विश्वासु) समस्त ( पृत्सु ) सेनाओं और संग्रामों में भी (दुस्तरम्) दुस्तर, न समाप्त होने वाला, अक्षय (रयिम् आ भर ) ऐश्वर्य प्राप्त करा।

आ नो अग्ने सुचेतुना रयिं विश्वायुपोषसम्। मार्डीकं धेहि जीवसे ७६

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् विद्वन्! हे प्रभो! तू ( नः ) हमें ( जीवसे ) दीर्घजीवन को प्राप्त करने के लिए ( सुचेतुना ) उत्तम ज्ञान विज्ञान के साथ २ ( विश्वायुपोषसम् ) समस्त प्राणियों के जीवनों और आयु की वृद्धि और पुष्टि करनेवाले (मार्डीकम् ) सुखों के देनेवाले (रयिम् आ धेहि ) ऐश्वर्य का प्रदान कर।

प्र पूतास्तिग्मशोचिषे वाचो गोतमाग्नये। भरस्व सुम्नयुर्गिरः ॥१०॥

भा०—हे ( गोतम ) ज्ञानवाणियों के उत्तम विद्वन्! तू ( तिग्मशोचिषे ) तीक्ष्ण ज्वाला या दीप्तिवाले ( अग्नये ) अग्नि के समान तेजस्वी, परमेश्वर विद्वान् और राजा के वर्णन करने के लिए स्वयं ( सुम्नयुः ) सुख की इच्छा करता हुआ ( पूताः ) आचारादि में पवित्र प्रभावजनक ( वाचः ) वाणियों को और ( गिरः ) ज्ञानोपदेशयुक्त वेदवाणियों को और (प्र भरस्व) अच्छी प्रकार कहा कर।

यो नो अग्नेऽभिदासत्यन्ति दूरे पदीष्ट सः। अस्माकमिद्वृधे भव ॥११॥

भा०—हे ( अग्ने ) तेजस्विन्! अग्रणी नायक! ज्ञानवन्! ( यः )

जो ( नः ) हमें ( दूरे अन्ति ) दूर और पास सर्वत्र ही ( अभिदासति ) सब प्रकार से देना चाहता है और ( पदीष्ट ) हमें प्राप्त होना चाहता है ( सः ) वह आप ( अस्मान् ) हमारे ( वृधे भव ) वृद्धि के लिए हो। अथवा—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन्! नायक! ( यः ) जो ( नः अन्ति ) हमारे पास आकर हम पर ( अभिदासति ) सब प्रकार से नाश करना या हानि पहुंचाना चाहता है ( सः ) वह हमसे ( दूरे पदीष्ट ) दूर हो। और तू ( अस्माकं वृधे भव ) हमारी वृद्धि के लिए हो।

सहस्राक्षो विचर्षणिरग्नी रक्षांसि सेधति। होता गृणीत उक्थ्यः॥१२॥२८

भा०—( सहस्राक्षः ) हजारों देखनेवाले साधनों वाला, (विचर्षणिः) विशेषरूप से द्रष्टा ( अग्निः ) ज्ञानवान् परमेश्वर, विद्वान् और तेजस्वी राजा ( रक्षांसि ) समस्त विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों को ( सेधति ) दूर करे। और ( होता ) वह ज्ञान का दाता, ( उक्थ्यः ) स्तुति योग्य, एवं वेदज्ञान का विद्वान् होकर ( गृणीते ) उपदेश करे। राजा सहस्रों चरों और राजसभा के सभासदों से राष्ट्र के कार्यों को देखने वाला होने से 'सहस्राक्ष' है। इत्यष्टाविंशो वर्गः॥

## [ ८० ]

गोतमो राहूगण ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ११ निचृदास्तारपंक्तिः। ५, ६, ९, १०, १३, १४ विराट्पंक्तिः। २—४, ७ १२, १५ भुरिग्बृहती। ८, १६ बृहती॥ षोडशर्चं सूक्तम्॥

इत्था हि सोम इन्मदे ब्रह्मा चकार वर्धनम्।
शविष्ठ वज्रिन्नोजसा पृथिव्या निः शशा अहिमर्चन्ननु स्वराज्यम्॥१॥

भा०—( मदे ) अति हर्षजनक ( सोमे ) ऐश्वर्य राज्यशासन के व्यवस्थित हो जाने पर ( ब्रह्मा ) महान् ज्ञानवान् एवं बड़े भारी ब्रह्म, आचार्य या पुरोहित पर विराजमान् वेदज्ञ विद्वान् ( इत् ) ही ( इत्था )

The mantras of this Sukta should be well understood concerning self government by yogis.

इस प्रकार से ( वर्धनम् ) राज्यशासन बढ़ाने का उपदेश ( चकार ) करे। हे ( वज्रिन् ) शस्त्रास्त्र सेना बल के स्वामिन् ! हे ( शविष्ठ ) सबसे अधिक शक्तिवाले ! तू ( स्वराज्यम् अनु अर्चन् ) अपने राज्य की निरन्तर वृद्धि और मान आदर करता हुआ ( ओजसा ) अपने पराक्रम से ( पृथिव्याः ) इस पृथिवी में से ( अहिम् ) सूर्य जिस प्रकार मेघ को छिन्न-भिन्न कर देता है उसी प्रकार सर्प के समान कुटिलाचारी और मेघ के समान शस्त्रवर्षी शत्रु को ( निः शशाः ) सर्वथा दण्डित कर, परास्त कर।

**स त्वा॑मद॒द्वृषा॒ मदः॒ सोमः॑ श्ये॒नाभृ॑तः सु॒तः।**
**येना॑ वृ॒त्रं निर॒द्भ्यो ज॒घन्थ॑ वज्रि॒न्नोज॒सार्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म्॥ २॥**

भा०—हे ( वज्रिन् ) शस्त्रास्त्र सेनाबल के स्वामिन् राजन् ! ( सः ) वह ( वृषा ) सब सुखों का वर्षक ( श्येनाभृतः ) वाज के समान आक्रमण द्वारा बलपूर्वक प्राप्त किया हुआ, ( सुतः ) अभिषेक द्वारा प्राप्त ऐश्वर्ययुक्त ( सोमः ) राष्ट्र वैभव ( त्वा ) तुझे ( अमदद् ) हर्षित करे। ( येन ) जिसके बल पर तू ( स्वराज्यम् अनु अर्चन् ) अपने राज्यशासन को निरन्तर अधिक मान आदर देता हुआ, उसकी ही वृद्धि करता हुआ ( ओजसा ) बल पराक्रम से ( अद्भ्यः वृत्रं ) जलों से मेघ को सूर्य के समान (अद्भ्यः) आप्त प्रजाओं के बीच में से (वृत्रम्) बढ़ते हुए, या नाना चाल चलते हुए विघ्न-कारी शत्रु को ( निर्जघन्थ ) सर्वथा निकाल बाहर कर।

**प्रेह्य॒भी॑हि धृष्णु॒हि न ते॒ वज्रो॒ नि यं॑सते।**
**इन्द्र॑ नृ॒म्णं हि ते॒ शवो॒ हनो॑ वृ॒त्रं जया॑ अ॒पोऽर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म्॥३॥**

भा०—हे राजन् ! तू ( स्वराज्यम् अनु अर्चन् ) अपने राज्यपद की ही प्रतिदिन प्रतिष्ठा करता हुआ (प्र इहि) आगे बढ़, प्रयाण कर (अभिइहि) अभिमुख शत्रु को लक्ष्य करके जा। (धृष्णुहि) उनको परास्त कर। (ते) तेरा ( वज्रः ) शस्त्रास्त्र बल सूर्य की किरणों के समान ( न नियंसते ) कभी रोका नहीं जा सकता। हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! शत्रुहन्तः ! ( ते शवः )

तेरा बल ( नृम्णं हि ) ही परम धन है, वह सब मनुष्यों और नायकों को अपने अधीन दबाकर रखने में समर्थ है। तू ( वृत्रं हनः ) मेघ के समान फैलते हुए शत्रु को ( हनः ) मार, दण्डित कर। ( अपः जय ) समस्त राष्ट्रवासिनी प्रजाओं को विजय कर। अथवा जलों के समान वेग से भागने वाली शत्रु सेनाओं को जीत।

निरिन्द्र भूम्या अधि वृत्रं जघन्थ निर्दिवः।
सृजा मरुत्वतीरव जीवधन्या इमा अपोऽर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ४ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् राजन्! तू ( स्वराज्यम् अनु अर्चन् ) नित्यप्रति अपने ही राज्य या राजशासन के महत्व को बढ़ाता हुआ, ( वृत्रं ) मेघ को जिस प्रकार सूर्य ( निर्जघन्थ ) अपने किरणों से छिन्न भिन्न करता है। और ( मरुत्वतीः ) वायुओं में विद्यमान ( जीवधन्याः ) जीवों को तृप्त करने वाला ( इमाः अपः ) इन जलधाराओं को ( दिवः अव ) आकाश से नीचे गिराता है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् राजन्! तू भी ( भूम्या अधि ) भूमि पर अधिकार करने के लिये ( वृत्रं निर् जघन्थ ) अपने बढ़ते हुए शत्रु को मार। और ( मरुत्वतीः ) मनुष्य आदि प्रजाओं को या वीर भटों की बनी ( इमाः ) इन ( जीवधन्याः ) जीवन को ही धन के समान जानने वाली ( अपः ) प्रजाओं को ( अव सृज ) अपने अधीन कर।

इन्द्रो वृत्रस्य दोधतः सानुं वज्रेण हीळितः।
अभिक्रम्याव जिघ्नतेऽपः सर्माय चोदयन्नर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥५।२१

भा०—( इन्द्रः ) सूर्य या विद्युत् जिस प्रकार ( दोधतः वृत्रस्य ) वायु वेगसे कांपते हुए मेघ के ( सानुम् ) उन्नत भाग को ( वज्रेण ) विद्युत् के आघात से ( अभिक्रम्य ) आक्रमण कर के ( अपः सर्माय ) जलों के बह जाने के लिये प्रेरित करता है उसी प्रकार ( स्वराज्यम् अनु अर्चन् ) अपने राजत्व पद की वृद्धि और प्रतिष्ठा करता हुआ—(दोधतः वृत्रस्य) क्रोध करते

हुए, उमड़ते हुए शत्रु के ( सानुम् ) एक २ अंग को ( हीळितः ) स्वयं क्रुद्ध हो कर ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा ( अभिक्रम्य ) सब ओर से आक्रमण कर के और ( अपः ) जलधाराओं के समान सेनाओं को ( सर्माय ) भाग निकलने के लिये प्रेरित करता हुआ (अव जिघ्नते) उसे मार गिरावे । अथवा— ( जिघ्नते सर्माय ) आगे बढ़ने वाले और प्रहार करते हुए शत्रु के पराजय के लिये उस को ( अभिक्रम्य ) सब तरफ़ से आक्रमण कर के ( अव ) नीचे दबावे ।

अधि सानौ नि जिघ्नते वज्रेण शतपर्वणा ।
मन्दान इन्द्रो अन्धसः सखिभ्यो गातुमिच्छत्यर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥६॥

भा०—( स्वराज्यम् अनु अर्चन् ) अपने राजत्वपद की प्रतिष्ठा करता हुआ ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा, सूर्य के समान तेजस्वी होकर ( शतपर्वणा वज्रेण ) सैकड़ों अंगों वाले शास्त्रास्त्र बल से ( जिघ्नते ) प्रहार करने वाले शत्रु के ( सानौ अधि ) प्रत्येक अंग पर ( नि ) अच्छी प्रकार प्रहार करे । और स्वयं ( अन्धसः ) अन्नादि ऐश्वर्य का ( इन्द्रः ) स्वामी, और दाता होकर ( मन्दानः ) सब को प्रसन्न करता हुआ ( सखिभ्यः ) मित्र राजाओं के हित के लिये ( गातुम् ) भूमि को ( इच्छति ) चाहे ।

इन्द्र तुभ्यमिदद्रिवोऽनुत्तं वज्रिन्वीर्यम् ।
यद्ध त्यं मायिनं मृगं तमु त्वं माययावधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥७॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! हे ( वज्रिन् ) वीर्यवन् ! हे ( अद्रिवः ) अखंड राज्य शासन, शस्त्र और पर्वतयुक्त राज्य के स्वामिन् ! ( यत् ) जिस बल से तू ( स्वराज्यम् अनु अर्चन् ) अपने राज्यपद की प्रतिष्ठा करता हुआ ( त्यं ) उस ( मायिनं ) मायावी, ( मृगं ) इधर उधर भागते या आक्रमण करते हुए शत्रु को ( त्वं ) तू ( मायया ) अपने बुद्धि कौशल से (अवधीः) विनाश करता है। वह (अनुत्तं) अपराजित (वीर्यम् ) बल (तुभ्यम् इत् ) तेरे ही वृद्धि के लिये है ।

वि ते वज्रासो अस्थिरन्नवतिं नाव्या३ अनु।
महत्त इन्द्र वीर्यं बाह्वोस्ते बलं हितमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ८ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( ते ) तेरे ( वज्रासः ) शस्त्र अस्त्र बल ( नवतिं नाव्याः अनु ) नावों से खेये जाने वाली ९० नदियों को भी ( वि अस्थिरन् ) अपने शासन में रखने में समर्थ हों। तेरे अधीन ९० महानदियों वाला देश हो। (ते) तेरा ( वीर्यम् ) वीरों का बना सैन्य-बल ( महत् ) बहुत बड़ा हो। और ( बाह्वोः ) बाहुओं में और शत्रु को पीड़न करने वाली सेना के दोनों बाजुओं में भी ( महत् बलं हितम् ) बड़ा बल हो। उससे तू ( स्वराज्यम् अनु अर्चन् ) अपने राज्य शासन की वृद्धि करता रह।

सहस्रं साकमर्चत परि ष्टोभत विंशतिः।
शतैनमन्वनोनवुरिन्द्राय ब्रह्मोद्यतमर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ ९ ॥

भा०—जो राजा ( स्वराज्यम् ) अपने राज्यपद की ( अनु ) प्रतिदिन ( अर्चन् ) अर्चना, मान आदर और वृद्धि करता रहे उस ( सहस्रं ) बलवान् सहस्रों प्रजाओं, ऐश्वर्यों और राष्ट्र कार्यों के आश्रय स्वरूप पुरुष का आप सब लोग ( साकम् ) एक साथ मिल कर ( अर्चत ) सत्कार करो। ( विंशतिः ) बीसों अमात्य, सहायक मिल कर ( परिस्तोभत ) सब प्रकार से राज्य कार्य को संभालें। ( एनम् ) इस राज्यपद को ( शता ) सैकड़ों सेना के पुरुष ( अनु अनोनवुः ) आदर से नमस्कार और सत्कार करें। ( ब्रह्म ) यह महान राष्ट्र, धनैश्वर्य और महान् पद और ज्ञानमय वेद (इन्द्राय ) परम ऐश्वर्यवान् राजा की वृद्धि के लिये (उद्यतम्) उत्तम रीति से व्यवस्था पूर्वक स्थिर हो, वही उसका रक्षक स्वामी हो।

इन्द्रो वृत्रस्य तविषीं निरहन्त्सहसा सहः।
महत्तदस्य पौंस्यं वृत्रं जघन्वाँ असृजदर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१०॥३०॥

भा०—( इन्द्रः ) विद्युत् या वायु सूर्य के समान तेजस्वी राजा ( वृत्रस्य ) मेघ के समान उमड़ते हुए शत्रु की ( तविषीम् ) बलवती सेना को और उस के ( सहः ) सामर्थ्य को ( सहसा ) अपने बल पराक्रम से ( निर् अहन् ) सब प्रकार से नाश करे। जो वह ( वृत्रं जघन्वान् ) बढ़ते हुए या विरुद्धाचरण करते हुए शत्रु को नाश कर ( असृजत् ) जलधाराओं के समान प्रजाओं को आनन्द से युक्त सुखी कर देता है ( तत् ) वह ही ( अस्य ) उस का ( महत् ) बड़ा भारी ( पौंस्यम् ) पौरुष है। वह ही ( स्वराज्यम् अनु अर्चन् ) अपनी राज्यशक्ति को नित्य बढ़ाता रहे।

इमे चित्तव मन्यवे वेपेते भियसा मही।
यदिन्द्र वज्रिन्नोजसा वृत्रं मरुत्वाँ अवधीरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥११॥

भा०—हे ( इन्द्र ) राजन्! ऐश्वर्यवन्! ( यत् ) जब तू ( स्वराज्यम् अनु अर्चन् ) अपनी राज्य शक्ति को बराबर बढ़ाता हुआ ( मरुत्वान् ) वायु के वेग से युक्त विद्युत् के समान शत्रु के मारने में समर्थ वीर सेनागण का स्वामी होकर ( ओजसा ) पराक्रम से ( वृत्रं ) मेघ के समान उमड़ते हुए शत्रु को ( अवधीः ) विनाश करता है तब जिस प्रकार ( मही ) बड़ी विशाल आकाश और पृथिवी दोनों, सूर्य या विद्युत् के प्रकोप से कांपते हैं उसी प्रकार ( तव मन्यवे ) तेरे क्रोध के ( भियसा ) भय से ( इमे ) ये दोनों राजवर्ग और प्रजावर्ग अथवा स्वसेना और परसेना दोनों ( वेपेते ) कांपें।

न वेपसा न तन्यतेन्द्रं वृत्रो वि बीभयत्।
अभ्येनं वज्र आयसः सहस्रभृष्टिरायतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार ( वृत्रः ) मेघ ( इन्द्रं ) सूर्य या विद्युत् को ( न वेपसा ) न वेग से और ( न तन्यता ) न गर्जन से ही ( वि बीभयत् ) विशेष रूप से भयभीत कर सकता है प्रत्युत ( आयसः ) तेजोमय, ( सहस्र-

भृष्टिः ) बलपूर्वक गिरने वाला ( वज्रः ) विद्युत् ही ( एनम् अभि आयत ) उसको छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार ( स्वराज्यम् अनु अर्चन् ) अपने राज्य सामर्थ्य को बढ़ाता हुआ राजा ( एनम् अभि ) उस शत्रु को लक्ष्य करके ( आयसः ) लोहमय शस्त्रास्त्रों से सुसज्जित और ( सहस्र-भृष्टिः ) सहस्रों पीड़ा या दाहों को उत्पन्न करने वाला ( वज्रः ) साक्षात् खड्ग के समान नाशकारी होकर ( आयत ) सब तरफ़ उसका नाश करे । वह ( वृत्रः ) शत्रु ( इन्द्रम् ) उस राजा को ( न वेपसा ) न अपने वेग से और ( न तन्यता ) न गर्जनमात्र से ( विभयत् ) डरा सकता है ।

यद्वृत्रं तव॑ चाशनिं॒ वज्रे॑ण स॒मयो॑धयः ।
अहि॑मिन्द्र॒ जिघां॑सतो दि॒वि ते॑ बद्बधे॒ शवोऽर्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥१३॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! सेनापते ! ( यत् ) जिस प्रकार ( अशनिम् ) विद्युत् को प्रेरित करके वायु ( वृत्रम् ) मेघ को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार तू भी ( तव ) अपने ( वज्रेण ) शत्रु के वारण करने वाले सैन्य-बल से ( अशनिम् ) शत्रु सैन्य को खा जाने वाले, व्यापक शक्ति वाले अस्त्र को प्रहार करके ( वृत्रम् सम् अयोधयः ) बढ़ते, वा युद्ध करते हुए शत्रु से युद्ध कर । और ( दिवि ) सूर्य के प्रकाश के बल पर या आकाश में ( अहिम् ) सर्वत्र फैला मेघ छिन्न भिन्न हो जाता है उसी प्रकार ( अहिम् ) आगे से प्रहार करने वाले शत्रु को ( जिघांसता ) नाश करते हुए ( ते ) तेरा ( शवः ) बल शत्रु का ( बद्बधे ) नाश करे । तू ( स्वराज्यम् अनु-अर्चन् ) इस प्रकार अपनी राज्य की खूब वृद्धि करता रह ।

अ॒भि॒ष्टने॑ ते अद्रिवो॒ यत्स्था जग॑च्च रेजते ।
त्वष्टा॑ चि॒त्तव॑ म॒न्यव॒ इन्द्र॑ वेवि॒ज्यते॑ भि॒यार्च॒न्ननु॑ स्व॒राज्य॑म् ॥१४॥

भा०—हे ( अद्रिवः ) अखण्ड बल वीर्य के स्वामिन् ! प्रबल सेनापते ! हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् राजन् ! ( यत् ) जब ( ते ) तेरे ( अभिस्तने )

गर्जना और आज्ञा में (स्थाः) स्थावर और (जगत् च) जंगम सभी (रेजते) कांपता है। (तव मन्यवे) तेरे क्रोध और ज्ञान सामर्थ्य के (भिया) भय से (त्वष्टा चित्) सूर्य के समान तेजस्वी तथा छेदन भेदन करने वाला सैन्य गण और शिल्पीगण भी [ वेविज्यते ] भय से कांपा करे। तू इस प्रकार (स्वराज्यम् अनु अर्चन्) अपनी राजसत्ता की निरन्तर वृद्धि करता रह।

नहि नु यादधीमसीन्द्रं को वीर्या परः।
तस्मिन्नृम्णमुत क्रतुं देवा ओजांसि सं दधुरर्चन्ननु स्वराज्यम् ॥१५॥

भा०—(क नहि नु इन्द्रं यात) कोई क्यों नहीं राजा की शरण में जावे? (अधि इमसि इन्द्रं) हम राजा को ही शरण रूप से प्राप्त करें। हम विचार करें कि (वीर्या) बल वीर्य में (परः कः) राजा से बढ़ कर दूसरा कौन है। जो (स्वराज्यम् अर्चन् अनु) अपने राज्य की प्रतिष्ठा बढ़ाता रहे। (तस्मिन्) उसका आश्रय लेकर (देवाः) दानशील, ज्ञानी और विजय या ऐश्वर्य की कामना करने वाले पुरुष (नृम्णम्) मनुष्यों के अभिलाषा योग्य मन चाहे धन, (उत क्रतुम्) ज्ञान और कर्म सामर्थ्य और (ओजांसि) समस्त बल पराक्रमों को (संदधुः) अच्छी प्रकार स्वयं धारण करते हैं और उस ही में वे सब ऐश्वर्यों, सामर्थ्यों और पराक्रमों को (संदधुः) स्थापित करते हैं। परमेश्वर के पक्ष में-(इन्द्रं नहि नु यात कः?) उस भगवान्, परमेश्वर को कोई क्यों न प्राप्त हो। कोई क्यों न उसकी शरण में जावे। (अधीमसि इन्द्रम्) हम तो नित्य उस परमेश्वर का ही स्मरण करते हैं। (वीर्या परः- कः) वीर्य और बल में सब से श्रेष्ठ दूसरा कौन है? (देवाः) सूर्य आदि लोक और विद्वान् जन (तस्मिन्) उसमें ही (नृम्णम् क्रतुम् ओजांसि संदधुः) समस्त ऐश्वर्य, ज्ञान, कर्म और बल पराक्रम स्थापित करते और उसके आश्रय पर स्वयं इन को अपने में अच्छी प्रकार धारण करें। अथवा—(यात इन्द्रं नहि नु अधीमसि) सर्वव्यापक परमेश्वर को हम

नहीं जान सकते। ( वीर्या कः परः ) समस्त बलों को दूसरा कौन धारण करता है ? सिवाय परमेश्वर के दूसरा नहीं। ( शेष पूर्ववत् ) ( स्वराज्यम् अनु अर्चन् ) वही प्रभु परमेश्वर अपने परम शासन को प्रतिष्ठित किये हुए है।

यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत। तस्मिन्ब्रह्माणि पूर्वथेन्द्र उक्था समग्मतार्चन्ननु स्वराज्यम् ॥ १६ ॥ ३१ ॥ ५ ॥

भा०—( अथर्वा ) प्रजा का पीड़न न होने देने वाला, प्रजा के दुःखों की शान्ति करने वाला, ( मनुः ) मननशील, ज्ञानवान् ( पिता ) सबका पालक गुरु ( दध्यङ् ) प्रजाओं का धारण पोषण करने वाले समस्त उपायों और गुणों को स्वयं प्राप्त करने और अन्यों को प्राप्त कराने वाला होकर ( याम् ) जिस ( धियम् ) ज्ञान या कर्म को करता उसी कर्म को तुम लोग भी ( अत्नत ) करो। और ( तस्मिन् ) उस (इन्द्रे) ऐश्वर्यवान् वीर पुरुष के आश्रय रहकर ( पूर्वथा ) पूर्व पुरुषों के ( ब्रह्माणि ) समस्त ऐश्वर्य और ( उक्था ) स्तुति योग्य गुणों को ( सम् अग्मत ) प्राप्त कराओ। वह ( स्वराज्यम् अनु अर्चन् ) अपने राज्य की सदा वृद्धि करे।

यह समस्त सूक्त परमेश्वरोपासना परक भी है। 'स्वराज्य' अपने आत्मा के प्रकाशस्वरूप का साक्षात्कार या स्वतः प्रकाशक परमेश्वर परम स्वरूप ही स्वराज्य है। उस की प्राप्ति उस की अर्चना है। इन्द्र यह आत्मा है। ( १ ) सोम परमानन्द रस है। उस में मग्न आत्मा ईश्वर की स्तुति अपनी वृद्धि के लिये करे। अज्ञान का नाश करे ( २ ) ज्ञानवान् पुरुष है। वृत्र अज्ञान है। ( ३ ) नृ-इन्द्रियां। उनको दबाने वाला सामर्थ्य 'नृम्ण' है। 'अपः' प्राणगण। वज्र ज्ञान है। ( ४ ) भूमि = चित्तभूमि। 'मरुत्वती अपः' प्राणमय वृत्तियां ( ५ ) अन्धसः, आनन्द रस। 'सखायः' प्राण गण, (७) मायी मृग मन है। 'नवतिः नाव्या' ९० वर्ष है। ( ८ ) 'विंशति' दश २ बाह्य और आभ्यन्तर प्राणगण, 'शत' सौ वर्ष। (११) मही, प्राण और अपान

( १४ ) त्वष्टा-प्राण । ( १५ ) दध्यङ्-ध्यानी पुरुष । ( ब्रह्माणि ) उत्तम स्तुतियां । इतिदिक् । इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

इति पञ्चमोध्यायः ॥

---

## अथ षष्ठोध्यायः ॥

## [ ८१ ]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ७, ८ विराट् पंक्तिः । ३—६, ९ निचृदास्तारपंक्तिः । २ भुरिग् बृहती ॥ नवर्चं सूक्तम् ॥

**इन्द्रो मदाय वावृधे शवसे वृत्रहा नृभिः ।**
**तमिन्महत्स्वाजिषूतेमर्भे हवामहे स वाजेषु प्र नोऽविषत् ॥ १ ॥**

भा०—( वृत्रहा ) मेघों को छिन्न भिन्न करने वाले सूर्य या विद्युत् के समान तेजस्वी, बढ़ते हुए शत्रु का नाश करने वाला ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, तेजस्वी, राजा ( नृभिः ) अपने नायक पुरुषों के साथ ही ( मदाय ) प्रजा गण के हर्ष की वृद्धि और ( शवसे ) बल की वृद्धि करने के लिये ( वावृधे ) बढ़े और अधिक ऐश्वर्य प्राप्त करे । ( महत्सु आ-जिषु ) बड़े २ संग्रामों ( उत अर्भे ) और छोटे २ संग्राम में भी ( तम इत् हवामहे ) हम उसको ही शरण रूप से प्राप्त करें । ( सः ) वह ( वाजेषु ) संग्राम-कार्यों में ( नः प्र अविषत् ) हमें अच्छी प्रकार रक्षा करे । अध्यात्म में और परमात्मा के पक्ष में—इन्द्र, आत्मा और परमात्मा । नृ, प्राणगण, विद्वान्-गण । मद—अति हर्ष, परमानन्द । शवः—ज्ञान और बल । आजि—व्यापक गुण, महान् पदार्थ । अर्भ—हृदयाकाश और परमाणु । वाज—ज्ञानैश्वर्य ।

**असि हि वीर सेन्योऽसि भूरि परादृदिः ।**
**असि दभ्रस्य चिद्वृधो यजमानाय शिक्षसि सुन्वते भूरि ते वसु ॥२॥**

भा०—हे ( वीर ) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने हारे शूर राजन् ! सेनापते ! तू ( सेन्यः असि ) सेनाओं में सबसे श्रेष्ठ और उनका हित-कारी है, तू सेना द्वारा संग्राम कुशल ( असि ) हो । तू ( भूरि ) बहुत से उपायों से ( परादंदिः ) शत्रुओं को पराजित करने हारा ( असि ) हो । ( दभ्रस्य चित् ) छोटे, अल्प बल वाले को भी तू ( वृधः भव ) बढ़ाने वाला हो । और ( सुन्वते यजमानाय ) अन्यों के लिये नाना सुख उत्पन्न करने वाले दानशील धर्मात्मा की वृद्धि के लिये तू ( ते ) अपना ( भूरि वसु ) बहुत सा ऐश्वर्य (शिक्षसि) प्रदान कर । परमात्मा के पक्ष में-'इन' अर्थात् स्वामी आत्मा से युक्त इन्द्रिय गणों में सर्व श्रेष्ठ होने से आत्मा 'सेन्य' है । स्वामी प्रभु समस्त लोकों में व्यापक होने से प्रभु 'सेन्य' है । बहुत देने से 'परादंदि' है । स्वल्प जीव की अपेक्षा करने वाले या दभ्र हृदयाकाश को आनन्द सामर्थ्य से बढ़ाता है । सवन अर्थात् उपासनाशील आत्मसमर्पक जीव को वह बहुत ऐश्वर्य प्रदान करता है ।

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना ।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधोऽस्माँ इन्द्र वसौ दधः ॥३॥

भा०—हे ( इन्द्र ) सेनापते ! राजन् ! ( यत् ) जब ( आजयः ) नाना संग्राम ( उत् ईरते ) उठ खड़े होते हैं उस समय ( धृष्णवे ) शत्रुओं का पराजय करने वाले बल को दृढ़ करने के लिये ( धना धीयते ) नाना प्रकार के धनों को धारण किया जाता है, उन को कोश में संग्रह किया जाता है । उसी समय ( मदच्युता ) अति हर्ष से आवेग को प्राप्त होने वाले, दृढ़ शत्रुओं का गर्व ढीला कर देने वाले ( हरी ) रथ में दो घोड़ों के समान राज्य के भार को उठाने के लिये दो मुख्य विद्वानों को भी ( युक्ष्व ) नियुक्त कर । तू ( कं हनः ) किसी शत्रु को मार और ( कं ) किसी को ( वसौ ) ऐश्वर्य या राष्ट्र के ऊपर अधिकारी रूप से ( दधः ) स्थापित कर । हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( अस्मान् ) हमें ( वसौ ) बसने योग्य राष्ट्र में या

ऐश्वर्य के बल पर (दधः ) पालन पोषण कर। अथवा–( कं हनः ) हे इन्द्र तू किस को मारे और किस को राष्ट्र में स्थापित करे इस बात का विवेक कर और ( अस्मान् इन्द्र वसौ दधः ) हम प्रजा जन को राष्ट्र में पालन पोषण कर ।

क्रत्वा॑ म॒हाँ अ॑नुष्व॒धं भी॒म आ वा॑वृधे॒ शवः॑। श्रि॒य ऋ॒ष्व उ॑पा॒कयो॒र्नि शि॒प्री हरि॑वान्दधे॒ हस्त॑यो॒र्वज्र॑माय॒सम् ॥ ४ ॥

भा०—( क्रत्वा ) कर्म सामर्थ्य और बुद्धि में ( महान् ) बड़ा शक्ति शाली, ( भीमः ) भयंकर ( ऋष्वः ) शत्रुओं का नाशक, प्रबल ( शिप्री ) तेजस्वी, सूर्य के समान ( हरिवान् ) वेगवान् अश्वों, अश्वारोहियों और वीरों, विद्वानों का स्वामी, सेनापति या राजा ( अनुस्वधम् ) अपने अन्न आदि धारण पोषण के सामर्थ्य के अनुसार ही ( शवः ) सैन्य-बल की वृद्धि करे। और ( श्रिये ) राज्यलक्ष्मी के विजय के लिये ( हस्तयोः ) हाथों में (आयसम् वज्रम् ) लोह के बने खड्ग के समान ही ( उपाकयोः ) पार्श्व-वर्त्ती, बाजुओं में स्थित सेनाओं में भी ( आयसम् ) वेगसे जानेवाले बल वीर्य को ( निदधे ) धारण करावे !

आ प॑प्रौ॒ पार्थि॑वं॒ रजो॑ बद्ब॒धे रो॑च॒ना दि॒वि ।
न त्वावाँ॑ इन्द्र॒ कश्च॒न न जा॒तो न ज॑निष्य॒तेऽति॒ विश्वं॑ ववक्षिथ ।५।१।

भा०—हे परमेश्वर ! तू ( पार्थिवं रजः ) पृथिवी और अन्तरिक्ष में स्थित परमाणु आदि वस्तुओं और समस्त लोक समूह को ( आ पप्रौ ) सब प्रकार से पूर्ण कर रहा है। तू उनमें भी व्यापक है। तू ( दिवि ) सूर्य में ( रोचना ) प्रकाशमय दीप्ति को तथा आकाश में ( रोचना ) चमकते सहस्रों सूर्यों को ( बद्बधे ) थाम रहा है। हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! ( त्वावान् ) तेरे जैसा ( कः चन ) कोई भी ( न जातः) न पैदा हुआ और ( न जनिष्यते ) न पैदा होगा। तू ( विश्वं ) समस्त विश्व को ( अति व-वक्षिथ ) बहुत अच्छी प्रकार से धारण करने में समर्थ है। तू उस विश्व

से कहीं बड़ा है । राजपक्ष में—हे इन्द्र तुझ से दूसरा न कोई पैदा हुआ, न होगा । तू समस्त राष्ट्र के भार को उस से बढ़ कर अपने में धारण करने का यत्न कर । तू ( पार्थिवं रजः ) पृथिवी निवासी लोक समूह, या जनों को ( आप्रौ ) सब प्रकार के ऐश्वर्य से पूर्ण कर और ( दिवि ) ज्ञानवान् पुरुषों की सभा में ( रोचना बद्बधे ) रुचिकर कार्यों को नियत करे ।

यो अर्यो मर्तभोजनं परादादाति दाशुषे ।
इन्द्रो अस्मभ्यं शिक्षतु वि भजा भूरि ते वसु भक्षीय तव राधसः ॥६॥

भा०—( यः ) जो परमेश्वर और राजा ( अर्यः ) स्वयं सब का स्वामी होकर ( दाशुषे ) दान देने हारे पुरुष को ( मर्तभोजनम् ) मनुष्यों को पालन करने और भोग करने योग्य ऐश्वर्य ( परादादाति ) प्रदान करता है वह ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्–परमेश्वर और राजा ( अस्मभ्यम् ) हमें भी ( भूरि ) बहुतसा ऐश्वर्य (शिक्षतु) प्रदान करे । हे प्रभो ! तू ( ते ) अपने (भूरिवसु) बहुत से राष्ट्र में बसने हारे ऐश्वर्य का ( विभज ) विविध रूपों में विभागों में प्रजाओं में विभक्त कर । हम राष्ट्र वासी, ( तव राधसः ) तेरे ऐश्वर्य का ( भक्षीय ) सेवन कर आनन्द लाभ करें । राष्ट्र में स्थित महान् ऐश्वर्य का विभाग देखो ( यजुर्वेद अ० २८ ) ।

मदेमदे हि नो ददिर्यूथा गवामृजुक्रतुः ।
सं गृभाय पुरू शतोभया हस्त्या वसु शिशीहि राय आ भर ॥७॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू ( ऋजुक्रतुः ) अति ऋजु, सरल धर्मानुकूल, सुखप्रद, विज्ञानवान् और कर्म-सामर्थ्यवान् है । तू ( नः ) हमें ( मदेमदे ) प्रत्येक हर्ष के अवसर में या प्रत्येक आनन्दजनक पदार्थ में ( गवां यूथा ) सूर्य जिस प्रकार किरणों को प्रदान करता है । उसी प्रकार ( गवांयूथा ) ज्ञानमय किरणों, ज्ञानवाणियों, लोकसमूहों, विद्वानों तथा पशु आदि समूहों को और इन्द्रियों को भी ( नः ददिः ) हमें प्रदान करता है । ( उभया हस्त्या ) दोनों हाथों से भर २ कर देने वाले महादानी के समान

( पुरू शता ) बहुत सैकड़ों ( वसु ) ऐश्वर्यों को या वसने वाले जीवों और लोकों को (संगृभाय) अच्छी प्रकार वश करता है और एकत्र किये हुए तू ( रायः ) ऐश्वर्यों को ( शिशीहि ) प्रदान कर और ( आ भर ) हमें सब प्रकार भरण पोषण कर। इसी प्रकार, राजा भी ( मदेमदे ) प्रत्येक हर्ष के अवसर ( गवां यूथा ददिः ) गौओं के समूह के समूह, जूथ के जूथ देने वाला हो, वह ( ऋजुक्रतुः ) साधु धर्माचरण करने वाला और धार्मिक चित्तवाला हो। वह दोनों हाथों से भर भर कर ऐश्वर्यों का संग्रह करे और ऐश्वर्यों का दान करे और प्रजा का पालन पोषण करे।

मादयस्व सुते सचा शवसे शूर राधसे।
विद्मा हि त्वा पुरूवसुमुप कामान्त्ससृज्महेऽथा नोऽविता भव॥८॥

भा०—हे ( शूर ) शत्रुओं के नाशक राजन्! तू ( सुते ) अभिषेक द्वारा प्राप्त, एवं ऐश्वर्यमय राष्ट्र में ( शवसे राधसे ) बल और ऐश्वर्य की प्राप्ति, वृद्धि और उसके उपभोग के लिये ( मादयस्व ) तू सब को तृप्त कर, उनको भर पूर साधन दे। ( त्वा पुरुवसुम् ) नाना ऐश्वर्यों के स्वामी तुझ को ( उपविद्मा हि ) हम आश्रय लें। और ( कामान् ससृज्महे ) समस्त अभिलाषाओं को प्राप्त करें। ( अथ ) और तू ( नः ) हमरा [ अविता ] रक्षक ( भव ) हो। परमेश्वर के पक्ष में—हे दोषों के निवारक! ( सुते ) इस जगत् में तू ज्ञान और बल धन से सब को तृप्त कर। शेष पूर्ववत्।

एते त इन्द्र जन्तवो विश्वं पुष्यन्ति वार्यम्।
अन्तर्हि ख्यो जनानामर्यो वेदो अदाशुषां तेषां नो वेद आ भर॥९॥२॥

भा०—हे ( इन्द्र ) राजन्! और ईश्वर! ( एते जन्तवः ) वे समस्त जीव गण तथा पशु आदि, ( ते ) तेरे ( विश्वं वार्यं ) सब वरण करने योग्य ऐश्वर्य की ( पुष्यन्ति ) वृद्धि करते हैं। तू ( अर्यः ) सब का स्वामी ( जनानाम् अन्तः ख्यः हि ) जनों के भीतर भी देखता और या उनको ज्ञान

उपदेश करता है, (वेदः) उनके भीतर ज्ञान को प्रदान कर। (अदाशुषां) दान न देने वाले ( तेषां ) उन का ( वेदः ) धन ( नः, आभर ) हमें प्रदान कर। गवादि पशु सब राजा के ऐश्वर्य को बढ़ाते हैं। वह स्वामी राजा सब प्रजाओं के बीच ज्ञान का उपदेश करे। योग्य अधिकारी पुरुष दान न देने वाले कंजूसों के धन को दण्ड भय से प्रजा को दिलवावे।

## [ ८२ ]

गोतमो राहूगण ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः-१, ४ निचृदास्तारपंक्तिः। २, ३, ५ विराडास्तारपंक्तिः। ६ विराड् जगती॥ षड्‌र्चं सूक्तम्।

**उपो षु शृणुही गिरो मघवन्मातथा इव।**
**यदा नः सूनृतावतः कर आदर्थयास इद्योजा न्विन्द्र ते हरी॥१॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यप्रद! राजन्! विद्वन्! हे ( मघवन् ) धनों के स्वामिन्! तू ( अतथाः इव ) प्रतिकूल पुरुष के समान अन्यथा भाव होकर ( मा ) मत रह। और ( उपो ) अति समीप सावधान होकर ( सु ) उत्तम रीति से ( गिरः ) वाणियों का श्रवण कर। (आत् अर्थयासे) अनन्तर तुझ से यही प्रार्थना है कि ( नः ) हमें ( सूनृतावतः ) उत्तम सत्य ज्ञानमय वाणी से युक्त तथा अन्नादि युक्त ( करः ) कर। और ( हरी ) तथा रथ में दो अश्वों के समान दुःखों के हरने वाले दो मुख्य विद्वानों को ( योज नु ) लगा, नियुक्त कर।

**अक्षन्नमीमदन्त ह्यव प्रिया अधूषत।**
**अस्तोषत स्वभानवो विप्रा नविष्ठया मती योजा न्विन्द्र ते हरी॥२॥**

भा०—( स्वभानवः ) अपने तेज या दीप्ति से चमकने वाले सूर्य आदि के समान तेजस्वी होकर ( विप्राः ) मेधावी, ज्ञानी पुरुष ( नविष्ठया ) अति नूतन, नयी से नयी बुद्धि से युक्त होकर ( अस्तोषत ) ईश्वर की स्तुति करें तथा नाना विद्याओं का उपदेश करें। वे ( अक्षन् ) सब

उत्तम गुणों को प्राप्त करें और सब ऐश्वर्यों का भोग करें। वे (अमीमदन्त) ये निरन्तर आनन्द प्रसन्न रहें और (प्रियाः) सबके प्रति प्रेम भाव से युक्त होकर सबके प्रिय होकर (अव अधूषत) अपने दुर्व्यसनों, दोषों और बुरे पुरुषों का त्याग करें, जैसे कपड़े को झटक कर झाड़ देते हैं उसकी धूलि दूर हो जाती है उसी प्रकार विद्वान् अपने आत्मा में से मलों को दूर करें। हे (इन्द्र) राजन्! हे आत्मन्! तू (ते) अपने (हरी) प्राण और अपान के समान और ज्ञानी और कर्मनिष्ठ विद्वानों को रथ में अश्वों के समान (योज नु) नियुक्त कर। वे राष्ट्र की व्यवस्था करें।

सुसंदृशं त्वा वयं मघवन्वन्दिषीमहि।
प्र नूनं पूर्णवन्धुर स्तुतो याहि वशाँ अनु योजान्विन्द्र ते हरी॥३॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! राजन्! विद्वन्! ईश्वर! (सुसंदृशं) राष्ट्र कार्यों, ज्ञानों और जगत् के समस्त व्यवहारों को उत्तम रीति से देखने हारे (त्वा) तुझको हम (वन्दिषीमहि) नमस्कार और स्तुति करें। तू (पूर्णबन्धुरः) पूर्ण रीति से स्नेहबन्धन से बंधकर (नूनं) निश्चय से (स्तुतः) स्तुति किया जाकर (प्र याहि) आगे बढ़, प्रयाण कर। (अनु वशान्) और शत्रुओं को वश कर। अथवा हे परमेश्वर! तू (वशान् अनु प्रयाहि) कामना करने वाले या इन्द्रियों पर वश करने वाले साधकों को प्राप्त हो। हे (इन्द्र ते हरी योजनु) इत्यादि पूर्ववत्।

स घा तं वृषणं रथमधि तिष्ठाति गोविदम्।
यः पात्रं हारियोजनं पूर्णमिन्द्र चिकेतति योजान्विन्द्र ते हरी॥४॥

भा०—हे (इन्द्र) शत्रुओं के नाशक! वीर! राजन्! (यः) जो (हारियोजनम्) वेगवान् अश्वों और अश्वारोहियों और विद्वानों को अपने अधीन नियुक्त करने वाले, (पूर्णं) पूर्ण (पात्रं) सबके पालन करने वाले, रक्षक सेनाबल को (चिकेतति) अच्छी प्रकार वश करता या जानता है (सः घ) वह ही (तं) उस (वृषणं) प्रजापर सुखों और शत्रुओं पर बाणों की

चर्या करने वाले ( गोविदम् ) भूमि राज्य को प्राप्त करने वाले विजयी ( रथम् अधितिष्ठाति ) रथ पर विराजे । वैसा सामर्थ्य होकर ( ते ) तू अपने ( हरी ) अश्वों और दोनों बाजू के सेना-दलों को ( योजनु ) नियुक्त कर, संचालित कर । योगी के पक्ष में—जो ( हारियोजनम् ) सब दुःखों के वारक परमेश्वर को समाधि से प्राप्त कराने वाले ( पूर्णं पात्रं ) पूर्ण पालनकर्त्ता परमेश्वर को ( चिकेतति ) जान लेता है वह ( तं ) उस ( वृषणं ) समस्त सुखों के बरसाने वाले ( रथम् ) रसस्वरूप, सब दुःखों के छुड़ाने वाले, ( गोविदम् ) सूर्यादि लोकों में व्यापक, ज्ञानवाणियों के प्रापक परमेश्वर को ( अधितिष्ठाति ) प्राप्त होता है । उसकी उपासना करता है । हे आत्मन् ! तू अपने वेगवान् प्राण और अपान दोनों को वश कर । अध्यात्म में—( हारियोजनम् ) इन्द्रिय रूप अश्वों से युक्त ( पूर्णं ) पालक आत्मा को जानता है वह ( तं वृषणं ) उस बलवान्, सुखप्रद (गोविदम् ) इन्द्रियों को वश करने वाले ( रथम् ) रथ के समान आत्मा या देह आदि को ( अधितिष्ठाति ) प्राप्त करता या वश करता है ।

युक्तस्ते अस्तु दक्षिण उत सव्यः शतक्रतो ।
तेन जायामुप प्रियां मन्दानो याह्यन्धसो योजा न्विन्द्र ते हरी ॥५॥

भा०—हे ( शतक्रतो ) सैकड़ों प्रकार के कर्म, सामर्थ्य और प्रज्ञानों के जानने हारे ! विद्वन् ! ( ते ) तू अपने (हरी ) दोनों अश्वों को (योज नु) रथ में जोड़ । ( ते ) तेरे ( दक्षिणः ) दायें पार्श्व का ( उत ) और ( सव्यः ) बायें पार्श्व का अश्व भी ( युक्तः अस्तु ) अच्छी प्रकार से जुड़े । (तेन) उस रथ से ( प्रियां जायां मन्दानः ) पुत्रों की उत्पादक प्रिय स्त्री को और ऐश्वर्यों की उत्पादक प्रिय भूमि को ( मन्दानः ) अति हर्षित करता हुआ (अन्धसः उप याहि) ऐश्वर्यों को प्राप्त कर । अथवा ( अन्धसः प्रियां मन्दानः रथेन उपयाहि ) अन्न आदि भोग्य पदार्थों से प्रिय पत्नी को प्रसन्न करता हुआ रथ से देश देशान्तर को प्राप्त हो ।

युनज्मि ते ब्रह्मणा केशिना हरी उप प्र याहि दधिषे गभस्त्योः ।
उत्त्वा सुतासो रभसा अमन्दिषुः पूषण्वान्वज्रिन्त्समु पत्न्यामदः ॥६॥३

भा०—हे ( वज्रिन् ) उत्तम शस्त्रास्त्र सेनाबल से युक्त सेनापते ! राजन् ! विद्वन् ! ( ते ) तेरे ( केशिना ) उत्तम केशों वाले ( हरी ) रथ को ले जाने वाले बलवान् अश्वों को मैं सारथि ( ब्रह्मणा ) अन्न धन के निमित्त, या ज्ञान के साथ, रथ संचालन की कला के ज्ञान सहित ( उप-युनज्मि ) रथ में जोड़ूं । ( गभस्त्योः ) अपने बाहुओं के अधीन उन दोनों अश्वों को तथा अपने अधीन राज्य शकट के संचालक दोनों मुख्य पुरुषों को ( दधिषे ) रख । ( उप प्र याहि ) इस प्रकार तू प्रयाण कर । ( त्वा ) तुझे ( रभसाः ) अति वेगवान् ( सुतासः ) दीक्षा प्राप्त सुभट ( उत् अमन्दिषुः ) खूब सुप्रसन्न करें । और तू ( पूषण्वान् ) राष्ट्र के पोषक, शत्रु के बल के रोकने वाले वीर पुरुषों और भूमि का स्वामी होकर ( पत्न्या ) अपनी स्त्री तथा प्रजापालन करनेवाली राजसभा, उत्तम नीति तथा पालक राजशक्ति के साथ ( सम् अमदः ) अच्छी प्रकार आनन्द लाभ कर । इति तृतीयो वर्गः ॥

## [ ८३ ]

१–६ गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः–१, ३, ४, ५ निचृज्जगती । २ जगती । ६ त्रिष्टुप् ॥

अश्वावति प्रथमो गोषु गच्छति सुप्रावीरिन्द्र मर्त्यस्तवोतिभिः ।
तमित्पृणक्षि वसुना भवीयसा सिन्धुमापो यथाभितो विचेतसः ॥१॥

भा०—हे ( इन्द्र ) सेनापते! राजन् ! ( अश्वावति ) अश्व से युक्त रथ या रथारोहियों के सेनादल में ( प्रथमः ) सबसे मुख्य ( मर्त्यः ) पुरुष ( तव ऊतिभिः ) तेरे रक्षा साधनों से स्वयं ( सुप्रावीः ) सुख से समस्त

प्रजाजनों की अच्छी प्रकार रक्षा करने में समर्थ होकर ( गोषु ) भूमियों, पशुओं के विजय द्वारा लाभ के निमित्त ( गच्छति ) जावें । अथवा उत्तम प्रजारक्षक पुरुष तेरे किये रक्षार्थ विधानों द्वारा ( अश्वावति ) रथ पर बैठ कर ( गोषु गच्छति ) भूमियों पर विचरण करे । तू ( तम् इत् ) उसको ही ( भवीयसा वसुना ) बहुत अधिक ऐश्वर्य से ऐसे ( पृणक्षि ) पूर्ण कर ( यथा ) जैसे ( विचेतसः आपः ) चेतना रहित जलधाराएं अनायास ( अभितः ) सब तरफ़ से आ २ कर ( सिन्धुम् ) महान् सागर को पूर देती हैं । अथवा उस मुख्य पुरुष को इसलिये ऐश्वर्य प्रदान कर ( यथा ) जिससे ( विचेतसः ) विशेष ज्ञानों वाले ( आपः ) आप्त विद्वान् जन ( सिन्धुम् ) सबको केन्द्र के समान अपने में बांधने वाले सागर के समान गम्भीर राजा को प्राप्त हों ।

**आपो न देवीरुप यन्ति होत्रियमवः पश्यन्ति विततं यथा रजः ।**
**प्राचैर्देवासः प्र णयन्ति देवयुं ब्रह्मप्रियं जोषयन्ते वरा इव ॥ २ ॥**

भा०—( आपः न ) जिस प्रकार जलधाराएं स्वयं नीचे स्थल को प्राप्त हो जाती हैं उसी प्रकार ( देवीः ) विदुषी स्त्रियें ( होत्रियम् ) प्रेम पूर्वक स्वीकारने वाले विद्वान् पुरुष को ( उप यन्ति ) प्राप्त हों । ( यथा ) जिस प्रकार लोग ( रजः ) अन्तरिक्ष या सूर्य को ( विततम् ) विस्तृत रूप में देखते हैं उसी प्रकार वे स्त्रियें तथा प्राप्त विद्वान् जन ( अवः ) रक्षास्थान तथा ज्ञान को भी साक्षात् करें । ( देवासः ) विद्वान् तेजस्वी, ज्ञान की कामना करने हारे पुरुष ( प्राचैः ) अपने आगे २ या अपने उत्तम रीति से आगे २ चलने वाले उत्तम विद्वानों सहित ( देवयुम् ) योग्य शिष्यों के स्वामी पुरुष को ( प्र नयन्ति ) प्रमुख स्थान पर स्थापित करते हैं । और वे सब मिल कर ( वराः इव ) वरण करने योग्य या श्रेष्ठ पुरुष जिस प्रकार कन्या के स्वयंवर में आकर कन्या की अभिलाषा करते हैं उसी प्रकार वे भी मिल कर (ब्रह्मप्रियम्) वेद ज्ञान, परमेश्वर और

अति ऐश्वर्य से पूर्ण उनके प्रिय विद्वान् पुरुष को (जोषयन्ते) प्रेमपूर्वक प्राप्त करते हैं, उसकी सेवा शुश्रूषा करते हैं।

अधि द्वयोरदधा उक्थ्यं१ वचो यतस्रुचा मिथुना या सपर्यतः।
असंयत्तो व्रते ते क्षेति पुष्यति भद्रा शक्तिर्यजमानाय सुन्वते ॥३॥

भा०—हे विद्वन्! गुरो! परमेश्वर! (या) जो दोनों (मिथुना) परस्पर सम्मिलित स्त्री पुरुष, गुरु शिष्य, राजा प्रजा आदि जोड़े (यतस्रुचा) मन, वाणी, प्राणी और इन्द्रिय गण पर वशी होकर (सपर्यतः) तेरी सेवा या आज्ञा पालन करते हैं तू (द्वयोः) उन दोनों के हित के लिये (उक्थ्यं वचः) उपदेश योग्य वचन, वेद-ज्ञान का उपदेश (अदधाः) प्रदान कर, अथवा जो दोनों मिल कर (द्वयोः उक्थ्यं वचः सपर्यतः) एक दूसरे के प्रति कहने योग्य ज्ञानोपदेश या आचरण करते हैं उन दोनों को (अदधाः) तू धारण पोषण कर। हे परमेश्वर! जो (असंयत्तः) संयम वा जितेन्द्रियता से न रहने वाला पुरुष भी (ते व्रते) तेरे उपदेश किये नियम में (क्षेति) रहता है उस (सुन्वते यजमानाय) ऐश्वर्य के अभिलाषी, अपने आपको अधीन शिष्य रूप से अर्पण करने वाले दानशील पुरुष की (भद्रा) कल्याण करने वाली, सुखजनक (शक्ति) शक्ति (पुष्यति) पुष्ट हो जाती है। अर्थात् गुरुसेवा और ईश्वरभक्ति से अजितेन्द्रिय भी जितेन्द्रिय और दुर्बल भी प्रबल हो जाता है।

आदङ्गिराः प्रथमं दधिरे वय इद्धाग्नयः शम्या ये सुकृत्यया।
सर्वं पणेः समविन्दन्त भोजनमश्वावन्तं गोमन्तमा पशुं नरः ॥४॥

भा०—(ये) जो (अङ्गिराः) जलते अंगारों के समान तेजस्वी, ज्ञानी पुरुष (इद्धाग्नयः) बाहर की यज्ञाग्नियों और भीतर की प्राणाग्नियों को प्रज्वलित कर के (सुकृत्यया) उत्तम कर्तव्य कर्मों से युक्त (शम्या) शान्तिजनक साधना से (प्रथमं) प्रथम (वयः) अवस्था को ब्रह्मचर्य

पूर्वक ( दधिरे ) धारण करते हैं अथवा जो ( प्रथमं वयः ) मुख्य बल, ब्रह्मचर्य को धारण करते हैं ( अङ्गिराः पशुम् ) बछड़ा जिस प्रकार अपनी माता को प्राप्त होता है और दूध आदि भोजन वा सुख पाता है उसी प्रकार वे ( नरः ) मनुष्य ( पणेः ) स्तुति योग्य उत्तम व्यवहार और उपदेश योग्य वेद-ज्ञान के ( भोजनम् ) पालन सामर्थ्य और ( अश्वावन्तं ) अश्वों और ( गोमन्तम् ) गौओं से युक्त ऐश्वर्य को ( सम् अविन्दन्त ) प्राप्त करते हैं। अथवा जो ज्ञानी पुरुष प्रथम बल को धारण करते हैं वे ( पणेः ) स्तुति योग्य, उत्तम व्यवहार-कुशल सम्पन्न पुरुष के योग्य भोजन, अश्वों और गौओं से युक्त ( पशुं ) पशु सम्पत्ति को भी प्राप्त करते हैं।

यज्ञैरथर्वा प्रथमः पथस्तते ततः सूर्यो व्रतपा वेन आजनि।
आ गा आजदुशना काव्यः सचा यमस्य जातममृतं यजामहे॥५॥

भा०—(अथर्वा) प्रजाओं को पीड़ा न देने हारा, शान्तिदायक, प्रजापालक पुरुष ( यज्ञैः ) उत्तम परस्पर के संगति कराने वाले विद्या, विज्ञान, प्रचार तथा अन्य अन्य उत्तम साधनों से ( प्रथमः ) सब से मुख्य पद पर स्थित होकर ( पथः ) नाना मार्गों को, नाना विधानों को ( तते) विस्तृत करता है, बना लेता है, ( ततः ) उस के पश्चात् जिस प्रकार ( सूर्यः ) कान्तिमान् सूर्य उत्पन्न होकर ( गा आ आजत् ) अपनी किरणों को सब तरफ फेंकता है उसी प्रकार ( वेनः ) तेजस्वी ( व्रतपाः ) व्रतों, धर्म नियमों का पालक पुरुष ( आ अजनि ) प्रकट होता है ( काव्यः ) विद्वान् पुरुष का पुत्र या शिष्य, सुशिक्षित, ( उशनाः ) तेजस्वी, सब प्रजा की हित कामना वाला पुरुष ( गाः आजत् ) समस्त वेद वाणियों को सर्वत्र प्रकाश करता है और ( काव्यः उशनाः ) क्रान्तदर्शी, तेजस्वी, राज्यलक्ष्मी का इच्छुक राजा ( गाः आजत् ) भूमियों को प्राप्त करता है। ( सचा ) तब सब मिलकर हम ( यमस्य ) यम नियम में निष्ठ, सर्वनियन्ता परमेश्वर के ( जातम् ) प्रसिद्ध या प्रकाशित ( अमृतम् ) सब दुःखों से रहित, अमृत-

मय मोक्षसुख को सूर्य द्वारा वृष्टि जल के समान अतिशान्तिदायक रूप में (यजामहे) प्राप्त करते हैं। उत्तम विद्वान् के भूमियां प्राप्त कर लेने पर (सचा) हम सब परस्पर संगठित होकर (यमस्य) सर्वनियन्ता राजा के (जातम्) प्रकट रूप से (अमृतम्) अविनाशी, स्थिर शासन के सुख को (यजामहे) स्वयं बनाते और सुव्यवस्थित करते हैं। विद्वान् सूर्य के समान ज्ञानी आचार्य नव वाणियों का उपदेश करता है तब (यमस्य) यम नियम पालन रूप ब्रह्मचर्य के प्रकट (अमृतम्) अविनाशी वीर्य को हम प्राप्त करते हैं।

बर्हिर्वा यत्स्वपत्याय वृज्यतेऽर्को वा श्लोकमाघोषते दिवि।
ग्रावा यत्र वदति कारुरुक्थ्य१स्तस्येदिन्द्रो अभिपित्वेषु रण्यति।६।४

भा०—(वा) जिस प्रकार (स्वपत्याय) उत्तम, अविनाशी, नीचे न गिरने देने वाले, श्रेष्ठ यज्ञ कर्म या उत्तम फल के प्राप्त करने के लिये (बर्हिः) कुशा-घास (वृज्यते) काट ली जाती है उसी प्रकार (यत्) जिस राज्य में (सु-अपत्याय) उत्तम सन्तान के लिये (बर्हिः) यह समस्त भूलोक और उसमें रहने वाले प्रजाजन (वृज्यते) त्यागे जाते है अर्थात् जहां उत्तम सन्तति के लिये मा बाप अपना सर्वस्व त्यागते हैं और जहां (दिवि) आकाश में (अर्कः) सूर्य के समान (दिवि अर्कः) ज्ञान प्रकाश में अर्चना करने योग्य ज्ञानवान् पुरुष (श्लोकम्) वेदवाणी का (आघोषते) सर्वत्र उपदेश करता है और (यत्र) जिस देश में (उक्थ्यः) उत्तम उपदेश करने योग्य वचनों में कुशल (कारुः) ज्ञानोपदेष्टा पुरुष (ग्रावा) मेघ के समान गंभीर ध्वनि से उपदेश करता हुआ (वदति) उपदेश करता है (तस्य इत्) उस ही प्रजाजन के हित के लिये (अभिपित्वेषु) सब प्रकार के प्राप्त करने योग्य कार्य-व्यवहारों में (इन्द्रः) उत्तम ऐश्वर्यों-सुखों का दाता पुरुष (रण्यति) उपदेश करता है। इति चतुर्थो वर्गः॥

[ ८४ ]

गोतमो राहूगण ऋषिः । इन्द्रो देवता । छन्दः—१, ३—५ निचृदनुष्टुप् । २ विराडनुष्टुप् । ६ भुरिगुष्णिक् । ७—६ उष्णिक् । १०, १२ विराडास्तारपंक्तिः । ११ आस्तारपंक्तिः । २० पंक्तिः । १३—१५ निचृद्गायत्री । १६ निचृत् त्रिष्टुप् । १७ विराट् त्रिष्टुप् । १८ त्रिष्टुप् । १९ आर्चीत्रिष्टुप् । विंशत्यृचं सूक्तम् ।

**असावि सोम इन्द्र ते शविष्ठ धृष्णवा गहि ।**
**आ त्वा पृणक्त्विन्द्रियं रजः सूर्यो न रश्मिभिः ॥ १ ॥**

भा०—हे ( धृष्णो ) शत्रुओं का धर्षण, पराजय करने हारे! प्रगल्भ! हे ( शविष्ठ ) अति शक्तिशालिन् ! हे ( इन्द्र ) राजन् ! सेना, सभाध्यक्ष, विद्वन् ! तू ( आगहि ) आ, प्राप्त हो । ( ते ) तेरे लिये ही ( सोमः ) यह ओषधि रस, अन्न और ऐश्वर्य और अध्यात्म में परमानन्द रस ( असावि ) उत्पन्न होता है । ( रश्मिभिः ) किरणों से जिस प्रकार (सूर्यः न ) सूर्य ( रजः ) समस्त अन्तरिक्ष को व्याप लेता है उसी प्रकार (इन्द्रियम् ) ऐश्वर्य, आत्मिक बल और सामर्थ्य ( त्वा आपृणक्तु ) तुझे सब प्रकार से पूर्ण करे ।

**इन्द्रमिद्धरी वहतोऽप्रतिधृष्टशवसम् ।**
**ऋषीणां च स्तुतीरुप यज्ञं च मानुषीणाम् ॥ २ ॥**

भा०—( हरी ) वेगवान् अश्व ( अप्रतिधृष्टशवसम् ) जिसके बल को कोई दबा या परास्त नहीं कर सके ऐसे ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् राजा को ( इत् ) ही ( हरी ) वेगवान् दोनों अश्व तथा दो ज्ञानवान् पुरुष ( ऋषीणां च ) वेदमन्त्रार्थों के जानने वाले विद्वानों की स्तुतियों और ( मानुषाणां यज्ञं च ) मनुष्यों के यज्ञ को भी ( वहतः ) प्राप्त कराते हैं । अर्थात् विद्वानों और मनुष्यों के सत्संगों में राजा अश्वों द्वारा रथ पर चढ़ कर ही जावे । और दूसरे, उसके अधीन दो विद्वान्

उसके राज-कार्य-भार को चलाने के लिये नियुक्त हों। एक का कार्य विद्वानों के सत्आदेश राजा तक पहुंचाना है और दूसरे का कार्य साधारण प्रजा के उत्तम कार्यों के साथ राजा को सम्बद्ध रखना है।

आ तिष्ठ वृत्रहन्रथं युक्ता ते ब्रह्मणा हरी।
अर्वाचीनं सु ते मनो ग्रावा कृणोतु वग्नुना ॥ ३ ॥

भा०—हे ( वृत्रहन् ) सूर्य के समान शत्रु-दल को छिन्न भिन्न करने हारे! (ते हरी) तेरे अधीन कार्य निर्वाहक दो विद्वान्, दो अश्वों के समान ( रथम् ) रथ रूप राज्य-कार्य-भार में ( युक्ता ) नियुक्त हों। तू उस कार्य पर ( आतिष्ठ ) अधिष्ठाता रूप से विराज। ( ग्रावा ) उत्तम वचनोपदेशों का देने वाला वाग्मी पुरुष ( वग्नुना ) उत्तम वचनोपदेश से ( ते मनः ) तेरे चित्त को ( सुते ) अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्य की ओर ( अर्वाचीनम् कृणोतु ) आकर्षित करे।

इममिन्द्र सुतं पिब ज्येष्ठममर्त्यं मदम्।
शुक्रस्य त्वाभ्यक्षरन्धारा ऋतस्य सादने ॥ ४ ॥

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! तू (इमम्) इस (ज्येष्ठम्) सबसे उत्तम ( अमर्त्यम् ) साधारण मनुष्यों को प्राप्त न होने वाले ( मदम् ) सबको सन्तुष्ट करने वाले, ( सुतं ) उत्तम ओषधि रस के समान ( सुतम् ) अभिषेक द्वारा प्राप्त राज्यपद को (पिब) प्राप्त कर, उस का उपभोग कर। ( त्वा ) तुझे ( शुक्रस्य ऋतस्य धाराः ) शुद्ध जल की धाराओं के समान ( शुक्रस्य ) शुद्ध, ( ऋतस्य ) सत्य ज्ञान की व्यवस्थापुस्तक वेद की ( धाराः ) ज्ञानवाणियां ( अभि अक्षरन् ) सब प्रकार से तेरा अभिषेक करें, तुझे प्राप्त होकर ज्ञान प्रदान करें।

इन्द्राय नूनमर्चतोक्थानि च ब्रवीतन।
सुता अमत्सुरिन्दवो ज्येष्ठं नमस्यता सहः ॥ ५ ॥ ५ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग ( इन्द्राय ) ऐश्वर्यवान् राजा

का ( नूनम् ) अवश्य ( अर्चत ) आदर सत्कार करो। और उसके लिये ( उक्थानि च ) योग्य आदर वचनों तथा उपदेश करने योग्य शास्त्रोपदेशों का भी ( ब्रवीतन ) उपदेश करो। ( सुताः ) अभिषेक को प्राप्त होकर ( इन्दवः ) ऐश्वर्यवान् पुरुष ( अमत्सुः ) हर्ष को प्राप्त हों। हे प्रजाजनो ! आपलोग ( ज्येष्ठं सहः ) सबसे उत्तम बल का एवं सर्वोत्तम बलवान् पुरुष का ( नमस्यत ) आदर किया करो।

नकिष्ट्वद्रथीतरो हरी यदिन्द्र यच्छसे।
नकिष्ट्वानु मज्मना नकिः स्वश्व आनशे ॥ ६ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! ( यत् हरी यच्छसे ) जब तू अश्वों को जोड़ता है तब क्या (त्वत् रथीतरः नकिः) तुझसे बढ़कर उत्तम रथारोही कोई नहीं होता? और (त्वा अनु) तेरे बराबर क्या ( मज्मना ) बल में भी ( नकिः ) कोई दूसरा नहीं होता? और क्या (स्वश्वः नकिः आनशे) उत्तम अश्वारोही भी तुझ से दूसरा नहीं होता ? होता है। तब तू अतिगर्व में मत भूल। सावधान होकर राज्य शासन कर। अथवा [ नकिर्निषेधार्थे ] हे इन्द्र ! जब तू (हरी यच्छसे) अश्वों को जोड़ता है तब (त्वद् रथीतरः नकिः) तुझसे दूसरा बड़ा महारथी नहीं। ( त्वा अनु मज्मना नकिः ) तेरे जैसा बल में दूसरा नहीं। (स्वश्वः नकिः आनशे) तुझ से दूसरा उत्तम अश्वारोही कोई राष्ट्र को नहीं भोग सकता। अर्थात् तू ही सबसे बड़ा महारथी, बलशाली और उत्तम अश्वारोही राष्ट्र का पालक हो।

य एक इद्विदयते वसु मर्ताय दाशुषे। ईशानो अप्रतिष्कुत इन्द्रो अङ्ग ७

भा०—( यः ) जो ( एकः इत् ) अकेला ही, अद्वितीय होकर ( दाशुषे ) दानशील ( मर्त्ताय ) मनुष्य को ( वसु विदयते ) ऐश्वर्य भी नाना प्रकार से देता और दिलाता है ( अङ्ग ) हे विद्वान् लोगो ! वह ही ( अप्रतिस्कुतः ) प्रतिकूल शब्द अर्थात् विरोधी निन्दा से रहित, अथवा जिसके समान पद पर दूसरे किसी को प्रस्तुत न किया जा सके ऐसा

अद्वितीय, अथवा किसी से पराजित न होनेवाला (ईशानः) राष्ट्र का स्वामी हो। परमेश्वर के पक्ष में—वह आत्मसमर्पक भक्त को नाना ऐश्वर्य देता है। वह एक अद्वितीय शासक स्वामी है।

कदा मर्तमराधसं पदा क्षुम्पमिव स्फुरत्।
कदा नः शुश्रवद्गिर इन्द्रो अङ्ग ॥ ८ ॥

भा०—( अङ्ग ) हे विद्वान् पुरुषो ! ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा (कदा) न जाने कब (अराधसं मर्त्तम्) वश न आने वाले, दुःसाध्य, या धनहीन, या बलहीन शत्रु पुरुष को (पदा क्षुम्पम् इव) पैर से अहिच्छत्र के समान (स्फुरत्) उछाल दे, नष्ट कर दे और वह (नः गिरः) हमारी वाणियां (कदा शुश्रवत्) न जाने कब सुन ले। 'क्षुम्पम्'—अहिच्छत्रकं भवति। इति यास्कः। अहिच्छत्तक को भाषा में 'पदबहेड़ा' कहते हैं जो बरसात में पड़े काठ पर गोल २ छतरी सी पैदा हो जाती है जिसे 'सांप की छतरी' या पंजाबी में 'खुम्ब' कहाते हैं। ( क्षुम्प = खुम्ब ) वह पैर के थोड़े से धक्के से ही उखड़ कर नष्ट हो जाती है। इसी प्रकार राजा ( अराधसं ) न वश आने वाले उद्दण्ड निर्बल या निर्धन, कोश रहित या भयभीत राजा को न जाने कब नष्ट कर दे। उसको वह कभी भी नष्ट कर सकता है। इसी प्रकार प्रजा की कामनाओं को भी वह कभी अनायास ही पूर्ण कर सकता है।

यश्चिद्धि त्वा बहुभ्य आ सुतावाँ आविवासति।
उग्रं तत्पत्यते शव इन्द्रो अङ्ग ॥ ९ ॥

भा०—( अङ्ग ) हे राजन् ! ( यः चित् ) जो पुरुष ( हि ) भी ( बहुभ्यः ) बहुतों में से ( सुतावान् ) उत्तम ऐश्वर्य का स्वामी होकर ( त्वा ) तेरे अधीन ( आविवासति ) रह कर तेरी सेवा करता है ( तत् ) उसको ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान् राजा का ही (उग्रं शवः) उग्र, भयकारी बल ( पत्यते ) प्राप्त होता है।

स्वादोरित्था विषूवतो मध्वः पिबन्ति गौर्यः ।
या इन्द्रेण सयावरीर्वृष्णा मदन्ति शोभसे वस्वीरनु स्वराज्यम् ।१०।६

भा०—( गौर्यः ) दीप्तियें, किरणें जिस प्रकार ( वृष्णा ) वृष्टि के कारणस्वरूप ( इन्द्रेण ) सूर्य के साथ २ ( सयावरीः ) रहने वाली ( शोभसे ) उसी की शोभा के लिये ( मदन्ति ) प्रकाशित होती हैं, अर्थात् प्रकाशित होकर उसी की शोभा बढ़ाती हैं और वे ( स्वादोः ) स्वादुयुक्त, मधुर ( विषू-वतः ) व्याप्ति से युक्त, सूक्ष्म ऊपर होकर फैल जाने वाले, वाष्पमय ( मधोः ) जल को ( पिबन्ति ) पान कर लेती हैं ( इत्था ) उसी प्रकार ( याः ) जो ( गौर्यः ) अपने सेनापति की आज्ञा या वाणी में रहने वाली या भूमियों में आनन्द से रमण करने वाली उत्तम वीर प्रजाएं और सेनायें ( इन्द्रेण ) अपने शत्रुहन्ता सेनापति के ( सयावरीः ) साथ २ रह कर चलती हैं वे ( स्वादोः ) स्वादु, आनन्दप्रद, (विषुवतः ) व्यापक ( मध्वः ) मधुर अन्न और ऐश्वर्य का ( पिबन्ति ) भोग करती हैं और ( स्वराज्यम् अनु ) स्वराज्य प्राप्त करके ( वृष्णा वस्वीः ) वृषभ के साथ गौओं के समान ( वस्वीः ) राष्ट्र में रहने वाली प्रजाएं ( शोभसे ) राष्ट्र की शोभा को बढ़ाने और नायक के तेजोवृद्धि के लिये उसके साथ ही ( मदन्ति ) हर्षित और सुखी होती हैं ।

ता अस्य पृशनायुवः सोमं श्रीणन्ति पृश्नयः ।
प्रिया इन्द्रस्य धेनवो वज्रं हिन्वन्ति सायकं वस्वीरनु स्वराज्यम् ।११

भा०—( धेनवः वस्वीः ) दुधार गौएं जिस प्रकार ( अस्य पृशनायुवः ) अपने बच्चे से मिलना चाहती हुई उस के लिये ( सोमं श्रीणन्ति ) दुग्ध रस प्रदान करती हैं उसी प्रकार ( स्वराज्यम् अनु ) अपने ही राज्य की वृद्धि के लिये, (वस्वीः ) राष्ट्रवासिनी प्रजाएं ( इन्द्रस्य धेनवः ) ऐश्वर्यवान् राजा को धारण और पोषण करने वाली और ( इन्द्रस्य प्रियाः ) उस राजा की अति प्रिय, हितकारी होकर उस के ( सायकं ) शत्रु का

अन्त कर देने वाले ( वज्रं ) शस्त्रास्त्रयुक्त सैन्यबल की ( हिन्वन्ति ) वृद्धि करें । और ( ताः ) वे ( पृशनायुवः ) आपस का स्पर्श, अर्थात् एक दूसरे के साथ दृढ़ संगति, प्रेम रखती हुई, सुसंगठित होकर ( पृश्नयः ) किरणों के समान परस्पर मिश्रित होकर ( सोमं ) ऐश्वर्य को ( श्रीणन्ति ) परिपक्व करें अर्थात् किरणें जिस प्रकार मिल कर ओषधियों में रस का परिपाक करती हैं उसी प्रकार प्रजागण भी परस्पर मिल कर बलवती होकर राजपद और राज्य के ऐश्वर्य को परिपक्व और सुदृढ़ करें ।

**ता अस्य नमसा सहः सपर्यन्ति प्रचेतसः ।**
**व्रतान्यस्य सश्चिरे पुरूणि पूर्वचित्तये वस्वीरनु स्वराज्यम् ॥१२॥**

भा०—( ताः ) वे ( प्रचेतसः ) उत्तम ज्ञान से युक्त, विदुषी ( वस्वीः ) प्रजाएं, ( अस्य ) इस नायक के ( सहः ) शत्रु पराजयकारी बल की ( नमसा ) अपने शत्रु को नमाने वाले शस्त्रास्त्र बल तथा आदर सत्कार और अन्नादि समृद्धि से ( सपर्यन्ति ) आराधना करती हैं, उस की वृद्धि करती हैं । ( स्वराज्यम् अनु ) अपने राज्यैश्वर्य की वृद्धि के लिये (पूर्वचित्तये ) अपने पूर्व पुरुषों के अनुभवों का ज्ञान प्राप्त करने के लिये, अथवा ( पूर्वचित्तये ) अपने पूर्वोक्त मुख्य पुरुषों को उचित रीति से बतलाने के लिये ( अस्य ) अपने राजा के ( पुरूणि व्रतानि ) बहुत से नियमों, विधानों और कर्तव्यों को ( सश्चिरे ) धारण करें, उनका पालन और रक्षण करें ।

**इन्द्रो दधीचो अस्थभिर्वृत्राण्यप्रतिष्कुतः । जघान नवतीर्नव ॥१३॥**

भा०—( इन्द्रः ) सूर्य जिस प्रकार ( दधीचः ) समस्त पदार्थों को धारण करने वाले वायु आदि पदार्थों में भी व्यापक प्रकाश के ( अस्थभिः ) आघात करने वाले, इधर उधर गति देने वाले किरणों से ( वृत्राणि ) मेघस्थ जलों को ( जघान ) आघात करता है, उनको छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार (अप्रतिष्कुतः) मुकाबले के प्रतिस्पर्धी शत्रु सेना से पराजित न होने

वाला ( इन्द्रः ) शस्त्रों को छिन्न भिन्न करने वाला राजा ( दधीचः ) बल धारण या शस्त्रों को धारण करने वाले वीरों को अपने बश में रखने वाले वीर सेनापति के ( अस्थभिः ) बाण फेंकने में कुशल वीर सैनिकों से ( नवतीः नव ) नव गुण नब्बे [ ८१० ] वृत्राणि 'बढ़ते शत्रुसैन्यों को ( जघान ) पराजित करे।' नवतीः नव ८१० वृत्राणि–' ८१० शत्रुसैन्य कैसे ? शत्रु, मित्र और उदासीन भेद से तीन हुए, उन के मित्र और मित्रों के मित्र इस प्रकार प्रत्येक के तीन तीन होकर ९ भेद हुए। उत्तम, अधम और मध्यम भेद से प्रत्येक के २७ हुए। इनमें भी प्रत्येक प्रभाव, उत्साह और मन्त्र इन तीन शक्तियों के भेद से ८१ हुए। दश दिशा भेद से ८१० हुए। अध्यात्म में ( इन्द्रः ) आत्मा ( दधीचः ) शरीर धारक प्राण के रोग नाशक बलों से बलवान् होकर ( नवतीः नव ) ८१० प्रकृति जन्य विकारों को नाश करे अथवा वा ( नवतीः नव ) ९९ वर्षों का पार करता है, पूर्णायु, सुखी जीता है।

इ॒च्छन्नश्व॑स्य॒ यच्छिरः॒ पर्व॑ते॒ष्वप॑श्रितम्। तद्वि॑दच्छर्य॒णाव॑ति॥१४॥

भा०—( अश्वस्य ) शीघ्रगामी मेघ का ( शिरः ) मुख्य भाग, जलांश ( यत् ) जो (शर्यणावति) आकाश में और ( पर्वतेषु ) मेघों के खण्ड २ में व्यापक है उस को जिस प्रकार सूर्य अपनी किरणों से व्याप लेता है और उस को छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार ( इच्छन् ) विजय की कामना करता हुआ, विजिगीषु बलवान् पुरुष ( अश्वस्य ) तुरग बल या व्यापक राष्ट्र का (यत् शिरः) जो शिर या मुख्य भाग (पर्वतेषु) पर्वत अर्थात् पालक बल से सुरक्षित भागों में या पर्वत के समान उन्नत और प्रजापालक पुरुषों पर (अपश्रितम्) आश्रित है (तत्) वह उस को (शर्यणावति) हिंसा वाले, संग्राम या सैन्यबल के आश्रय पर ( विदत् ) प्राप्त करे।

अत्राह॒ गोर॑मन्वत॒ नाम॒ त्वष्टु॑रपी॒च्य॑म्। इ॒त्था च॒न्द्रम॑सो गृ॒हे॥१५॥७

भा०—(अत्र) इस संसार में विद्वान् जन (त्वष्टुः) सूर्य के (गोः) किरणों के

जैसे ( अपीच्यम् ) उत्तम, प्रकट, उज्ज्वल ( नाम ) स्वरूप को ( अमन्वत ) जानते हैं ( इत्था ) इसी प्रकार के स्वरूप को वे ( चन्द्रमसः गृहे ) चन्द्रमा के भीतर भी जानें अर्थात् वहां भी वही सूर्य रश्मियों का प्रकाश है। उसी प्रकार राजा के पक्ष में—( अत्र ) उस राष्ट्र में ( त्वष्टुः ) तेजस्वी, तीक्ष्ण राजा की ( गोः ) वाणी, आज्ञा का जैसा ( अपीच्यम् ) उत्तम या प्रकट ( नाम ) शत्रु को दबाने वाला स्वरूप है ( इत्था ) वैसा ही ( चन्द्रमसः ) चन्द्रमा के समान प्रजा के चित्तों को आह्लादकारी शीतल या मधुर स्वभाव के राजा की आज्ञा का भी ( गृहे ) राष्ट्र के वश करने के कार्य में ( अपीच्यम् नाम ) उत्तम परिणाम, उत्तम वशकारक प्रभाव ( अमन्वत ) मानते हैं। अर्थात् उग्रता से जैसे वश किया जाता है वैसे ही मधुरता, नम्रता, शीतलता से भी वश किया जाता है। राजा को भीम और कान्त, भयानक और कमनीय दोनों प्रकार का होना चाहिये।

भीमकान्तैर्नृपगुणैः स बभूवोपजीविनाम्।
अधृष्यश्चाभिगम्यश्च यादोरत्नैरिवार्णवः॥ रघुवंशे।

को अद्य युङ्क्ते धुरि गा ऋतस्य शिमीवतो भामिनो दुर्हृणायून्।
आसन्निषून्हृत्स्वसो मयोभून्य एषां भृत्यामृणधत्स जीवात्॥१६॥

भा०—[ प्रश्न ] ( अद्य ) आज के समान सदा ( कः ) कौन समर्थ पुरुष ( ऋतस्य धुरि गाः ) गतिशील रथ में जिस प्रकार बैलों या वेगवान् अश्वों को जोड़ा जाता है उसी प्रकार (ऋतस्य धुरि) सत्य न्याय प्रकाशन, यज्ञ सम्पादन, वेद ज्ञान अध्ययनाध्यापनादि कार्यों के धुरा उठाने के कार्यों में (शिमीवतः) उत्तम कर्मों वाले (भामिनः) विरोधियों पर असह्य क्रोध करने वाले तेजस्वी, ( दुर्हृणायून् ) विरोधियों से असह्य, पराक्रम और कोप करने वाले (आसन्-इषून्) मुख्य लक्ष्य पर वाण फेंकने वाले, लक्ष्यवेधी (हृत्स्वसः) शत्रु के हृदय आदि मर्मस्थानों पर निशाना लगाने वाले, मर्मवेधी,

( मयोभून् ) प्रजा को सुख शान्ति देने वाले वीर, कर्मिष्ठ, उग्र, लक्ष्य वेधी और मर्मच्छेदी सुखप्रद पुरुषों को ( युङ्क्ते ) कार्य में लगाये रखता है ? [ उत्तर ] ( कः ) वह प्रजापति, राजा ही इनको राष्ट्र के उचित कर्मों में नियुक्त करें । ( यः ) जो राजा ( एषाम् ) इन उक्त लोगों की (भृत्याम्) भरण पोषण या जीविका पर लगी सेना को, ( ऋणधत् ) खूब प्रबल, समृद्ध कर लेता है ( सः ) वही राजा ( जीवात् ) जीया करता है, उसका राज्य चिरस्थायी रहता है । अथवा—( यः भृत्याम् एषाम् ऋणधात् ) जो भृति अर्थात् वेतन पर उनको रखकर समृद्ध करता है वह ही जीता रहता है । अथवा ( एषाम् भृत्याम् ) इन लोगों के भरण पोषण को जो अच्छा बनाये रखता है वह स्थायी होकर रहता है । फलतः अधीनस्थ अधिकारियों को राजा अपनी स्थिरता के लिये उत्तम वेतनों पर नियुक्त करे ।

क ईषते तुज्यते को बिभाय को मंसते सन्तमिन्द्रं को अन्ति ।
कऽस्तोकाय क इभायोत रायेऽधि ब्रवत्तन्वे३को जनाय ॥ १७ ॥

भा०—(कः ईषते) कौन युद्ध में आगे बढ़ता, शत्रुओं को मारता या सब प्रजा और सेना पर निरीक्षण करता है ? ( कः तुज्यते ) कौन मारा जाता है ? ( कः बिभाय ) कौन डरता ? या शत्रु को डराता है ( कः मंसते ) कौन मान आदर करता है, ( सन्तम् इन्द्रम् ) विद्यमान राजा के ( कः ) कौन ( अन्ति ) समीप रहता है ? ( कः ) कौन (तोकाय) प्रजा के सन्तानों पुत्रों की रक्षा के लिये योग्य है । ( कः इभाय ) हाथी आदि युद्धोपयोगी पशुओं की रक्षा और शिक्षा के लिये कौन उपयोगी है ? ( उत ) और ( राये अधि ) धन या कोश की रक्षा के लिये, ( तन्वे ) विस्तृत राष्ट्र, या ( जनाय तन्वे कः ) प्रजाजनों की शारीरिक उन्नति के लिये ( कः ) कौन ( ब्रवत् ) शिक्षा देता है ? इत्यादि सभी बातों का राजा ठीक प्रकार से विचार कर यथायोग्य पुरुष को यथायोग्य कार्य में नियुक्त करे ।

को अ॒ग्निमी॑ट्टे ह॒विषा॑ घृ॒तेन॑ स्रु॒चा य॑जाता ऋ॒तुभि॑र्ध्रु॒वेभिः॑ ।
कस्मै॑ दे॒वा आ व॑हाना॒शु होम॒ को मं॑सते वी॒तिहो॑त्रः सुदे॒वः ॥१८॥

भा०—( अग्निम् हविषा घृतेन ) अग्नि को जिस प्रकार हविष्य चरु और घृत से यज्ञ में बढ़ाया जाता है और जिस प्रकार अन्न और घृत के भोजन से ( अग्निम् ) जाठराग्नि या जीवन को पुष्ट किया जाता है उसी प्रकार ( हविषा ) सबके स्वीकारने योग्य धन और विज्ञान से और ( घृतेन ) तेजोयुक्त पराक्रम से ( अग्निम् ) युद्ध के बीच अग्नेयास्त्र और राष्ट्र के बीच में स्थित तेजस्वी राजा को पुष्ट करता है ? और ( ध्रुवेभिः ) स्थिर, नियम से अवश्य आने वाले ( ऋतुभिः ) ऋतुओं से ( स्रुचा ) स्रुच् नाम यज्ञपात्र से ( कः यजातै ) कौन यज्ञ करता है और ( ध्रुवैः ऋतुभिः ) स्थिर राजसभा के सदस्यों द्वारा या ( स्रुचा ) ज्ञानयुक्त वाणी द्वारा ( कः यजातै ) कौन सत्संग करने और परस्पर वादानुवाद करने में निपुण है ? ( देवाः ) विद्वान् जन और वीर पुरुष ( कस्मै ) किसके हितार्थ ( आशु ) शीघ्र ही (होम) ग्राह्य, एवं स्वीकार्य पदार्थों को ( आवहान् ) लाते और किसके आज्ञा वचनों को आदर से धारते हैं ? (कः) कौन (वीतिहोत्रः ) नाना विज्ञानों को प्राप्त करने वाला, ( सुदेवः ) उत्तम द्रष्टा, तेजस्वी और युद्धकुशल ( कः मंसते ) कौन सब कुछ जानता है, कौन सबपर ध्यान रखने और चलाने में समर्थ है ? यह सब बातें राजा नियुक्त करने के पूर्व ही विचार कर ले ।

त्वम॒ङ्ग प्र शं॑सिषो दे॒वः श॑विष्ठ॒ मर्त्य॑म् ।
न त्वद॒न्यो म॑घवन्नस्ति मर्डि॒तेन्द्र॒ ब्रवी॑मि ते॒ वचः॑ ॥ १९ ॥

भा०—(अङ्ग ) हे राजन् ! ( शविष्ठ ) शक्तिशालिन् ! ( त्वम् देवः ) तू, तेजस्वी, विजयेच्छु और सब कार्य दर्शी होकर ही ( मर्त्यम् ) मनुष्यों को ( प्र शंसिषः ) उत्तम मार्ग का उपदेश कर, उन का अच्छी प्रकार शासन कर । हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! हे ( इन्द्र ) शत्रुओं के दुःखों के

नाशक ! ( त्वद् अन्यः ) तेरे से दूसरा कोई (मर्डिता न अस्ति) प्रजाओं को सुख देने हारा कृपालु नहीं है। ( ते वचः ) तेरे लिये मैं उत्तम वचन, धर्मयुक्त वाणी का ( ब्रवीमि ) उपदेश करूं, कहूं। परमेश्वर के पक्ष में— मैं तुम्हारी स्तुति करता हूं।

**मा ते राधांसि मा त ऊतयो वसोऽस्मान्कदा चना दभन्।**
**विश्वा च न उपमिमीहि मानुष वसूनि चर्षणिभ्य आ ॥२०॥८॥१३॥**

भा०—हे ( वसो ) समस्त प्रजाजनों को राष्ट्र में सुख से बसाने हारे ! ( ते राधांसि ) तेरे ऐश्वर्य, समृद्धियां या समृद्ध होने के साधन ( अस्मान् ) हम प्रजाजनों को ( कदाचन ) और कभी भी ( मा दभन् ) विनाश न करें। ( ते ऊतयः ) तेरे राष्ट्र को रक्षा करने के उपाय और शत्रुओं को कंपा देने वाले सेना चतुरंग आदि भी (अस्मान् कदाचन मा दभन्) कभी हमारा नाश न करें। हे ( मानुष ) मनुष्य ! उत्तम मननशील पुरुष ! ( विश्वा च वसूनि ) समस्त ऐश्वर्य ( नः ) हमारे ( चर्षणिभ्यः ) विचारवान् दीर्घदर्शी, उत्तम विद्वान् तथा समस्त प्रजा पुरुषों के उपकार के लिये ( आ उप मिमीहि ) प्राप्त कर।

## [ ८५ ]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः १, २, ६, ११ जगती। ३, ७, ८ निचृज्जगती। ४, ६, १० विराड्जगती। ५ विराट् त्रिष्टुप्। १२ त्रिष्टुप् ॥ द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

**प्र ये शुम्भन्ते जनयो न सप्तयो यामन् रुद्रस्य सूनवः सुदंससः।**
**रोदसी हि मरुतश्चक्रिरे वृधे मदन्ति वीरा विदथेषु घृष्वयः ॥१॥**

भा०—( यामन् ) जाने के अवसर में ( जनयः न ) जिस प्रकार स्त्रियें ( शुम्भन्ते ) अपने को सजाती हैं और ( यामन् ) जानेयोग्य मार्ग में जिस प्रकार ( सप्तयः ) वेग से जाने वाले अश्व ( शुम्भन्ते ) शोभा

प्राप्त करते हैं, उसी प्रकार ( रुद्रस्य सूनवः ) शत्रुओं को रुलाने वाले, या आज्ञा के प्रवर्तक राजा और उपदेष्टा आचार्य के ( सूनवः ) पुत्र के समान पदाभिषिक्त शासक वीर सैनिक और शिष्य गण ( सुदंससः ) उत्तम कर्म और आचरण वाले ( मरुतः ) विद्वान् वायु के समान तीव्र गति से जाने वाले ( घृष्वयः ) पर-पक्ष वालों से संघर्ष या स्पर्द्धा करने वाले ( वीराः ) वीर्यवान्, वीरगण, ( रोदसी ) सूर्य और पृथिवी के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग या स्वपक्ष और परपक्ष दोनों की ( वृधे ) वृद्धि के लिये, ( चक्रिरे ) कार्य करते हैं और ( विदथेषु ) संग्रामों और ज्ञान लाभ के अवसरों पर ( मदन्ति ) हर्षित होते हैं।

त उ॑क्षि॒तासो॑ महि॒मान॑माशत दि॒वि रु॒द्रासो॒ अधि॑ चक्रिरे॒ सदः॑।
अर्च॑न्तो अ॒र्कं ज॒नय॑न्त इन्द्रि॒यमधि॒ श्रियो॑ दधिरे॒ पृश्नि॑मातरः ॥२॥

भा०—जिस प्रकार ( उक्षितासः ) जलों के वर्षण करने हारे (रुद्रासः) प्रबल वायुगण (दिवि सदः चक्रिरे) आकाश में स्थान प्राप्त करते या सूर्य के प्रकाश के आश्रय लेते हैं और (महिमानम् आशत) महान् बल को प्राप्त करते हैं (अर्कं अर्चन्तः इन्द्रियं जनयन्तः) सूर्य का आश्रय लेते हुए वे बल को और विद्युत् को उत्पन्न करते हैं और वे ( पृश्निमातरः श्रियो दधिरे ) आदित्य से उत्पन्न होने वाले या मेघ के उत्पादक वायुगण शोभा को धारण करते हैं उसी प्रकार ( ते ) वे ( उक्षितासः ) अपने २ पदों पर नायक रूप से अभिषिक्त हुए (रुद्रासः) शत्रुओं को रुलाने हारे वीर नायक गण ( महिमानम् ) अपने महान् सामर्थ्य को ( आशत ) प्राप्त करें और ( दिवि ) सूर्य के समान तेजस्वी पद पर (सदः चक्रिरे) अपना उत्तम स्थान बनावें। अथवा ( दिवि सदः चक्रिरे ) भूमि पर ही सभाभवन और गृह आदि बनावें। वे ( अर्कम् अर्चन्तः ) सूर्य के समान तेजस्वी, आदर करने योग्य प्रधान राजा का आदर, मान, प्रतिष्ठा करते हुए ( इन्द्रियम् ) महान् ऐश्वर्य को ( जनयन्तः ) उत्पन्न करते हुए ( पृश्निमातरः ) भूमि को अपनी माता

मानते हुए, मातृभूमि के पुत्र होकर ( श्रियः ) राज्यवासियों पर ( अधि-दधिरे ) अपना पूर्ण अधिकार करें ।

गोमा॑तरो॒ यच्छु॒भय॑न्ते अ॒ञ्जिभि॑स्त॒नूषु॑ शु॒भ्रा द॑धिरे वि॒रुक्म॑तः ।
बाध॑न्ते॒ विश्व॑मभिमा॒तिन॒मप॒ वर्त्मा॑न्येषा॒मनु॑ रीयते घृ॒तम् ॥ ३ ॥

भा०—जिस प्रकार ( गोमातरः ) सूर्य या पृथिवी या तीव्र गमन से उत्पन्न होने वाले वायुगण ( अञ्जिभिः ) प्रकाशित होने वाली विद्युतों से सुशोभित होते हैं, अपने में (विरुक्मतः) विध कान्तिवाले मेघों को धारण करते हैं ( विश्वम् अभिमातिनम् बाधन्ते ) विविध दिशाओं में फैलाने वाले मेघ को पीड़ित करते हैं तब ( एषां वर्त्मानि घृतम् रीयते ) उनके मार्गों पर ही मेघ का जल भी जाता है अर्थात् जिधर वायु बहता मेघ की वृष्टि उधर ही जाती है, ठीक इसी प्रकार ( गोमातरः ) पृथिवी माता के पुत्र, देशभक्त वीरजन ( यत् ) जब ( अञ्जिभिः ) नाना पदों और मान प्रतिष्ठा के सूचक पदकों और चिह्नों से ( शुभयन्ते ) अपने को सुशोभित करते हैं, अथवा—विद्याओं के प्रकाशक वचनों और शास्त्रों द्वारा शुभ, कल्याण कारी वचनों का उपदेश करते हैं और ( शुभ्राः ) शुद्ध होकर ( तनूषु ) शरीरों पर ( विरुक्मतः ) नाना रुचि, कान्ति और दीप्ति वाले आभूषणों और पदार्थों या वस्त्रों और शस्त्रास्त्रों को ( दधिरे ) धारण करते हैं और वे ( विश्वम् ) सब प्रकार के ( अभिमातिनम् ) गर्वीले शत्रु को ( बाधन्ते ) पीड़ित करते हैं तब ( एषां वर्त्मानि ) इन मार्गों पर ही ( घृतम् ) तेजस्वी समस्त शस्त्रास्त्र बल और ऐश्वर्य, राज्यपद ( रीयते ) चलता है ।

वि ये भ्राज॑न्ते॒ सुम॑खास ऋ॒ष्टिभिः॑ प्रच्या॒वय॑न्तो॒ अच्यु॑ता चि॒दोज॑सा ।
म॒नो॒जुवो॒ यन्म॑रुतो॒ रथे॒ष्वा वृष॑व्रातासः॒ पृष॑तीरयु॑ग्ध्वम् ॥ ४ ॥

भा०—जिस प्रकार ( मरुतः ) वायुगण ( सुमखासः ) उत्तम सूर्य प्रकाश को धारण करने वाले होकर ( ऋष्टिभिः ) तीव्र आघात करने वाली विद्युतों से चमकते हैं (ओजसा) बल से (अच्युता प्रच्यावयन्तः) न गिरने वाले

जलों को बरसाते हुए, ( मनोजुवः ) मन के समान तीव्र वेग वाले तथा ( वृषव्रातासः ) वर्षणशील मेघ के समूहों से युक्त होकर ( पृषतीः ) वर्षणशील मेघमालाओं को एकत्र करते हैं, उसी प्रकार ( ये ) जो (सुमखासः ) उत्तम संग्राम में कुशल होकर (ऋष्टिभिः) शत्रुबल के नाशकारी शस्त्रों से ( भ्राजन्ते ) चमचमाते हैं और अपने ( अच्युता ओजसा ) अक्षय बल पराक्रम से ( प्रच्यावयन्तः ) प्रबल शत्रुओं को भी पदभ्रष्ट और रण से विमुख करते हुए ( यत् ) जब ( मनोजुवः ) मन के समान अति तीव्र वेग वाले होकर ( रथेषु ) रथों पर विराजते हो तब हे ( मरुतः ) वीर पुरुषो ! आप लोग ( वृषव्रातासः ) शत्रुओं पर शस्त्रास्त्रों के वर्षण करने वाले बलवान् वीर पुरुषों के गणों को साथ लिये हुए ( पृषतीः ) प्रबल सेनाओं को ( अयुग्ध्वम् ) अपने अधीन नियुक्त करो, उनको अपनी आज्ञा में संचालित करो। अथवा—(ओजसा अच्युता प्रच्यावयन्तः) पराक्रम से प्रबल शत्रुओं को भी गिराते हुए ( रथेषु ) अपने रथों में ( पृषतीः ) हृष्ट पुष्ट घोड़ियोंके समान ( रथेषु पृषतीः ) रथों के अधीन शस्त्र वर्षी अगल बगल में पदाति सेनाओं का सञ्चालन करो ।

प्र यद्रथेषु पृषतीरयुग्ध्वं वाजे अद्रिं मरुतो रंहयन्तः ।
उतारुषस्य वि ष्यन्ति धाराश्चर्मेवोदभिर्व्युन्दन्ति भूम ॥५॥

भा०—( मरुतः ) वायुएं जिस प्रकार ( वाजे ) पृथ्वी पर अन्नादि के उत्पत्ति के लिये ( अद्रिं रंहयन्तः ) मेघ को लाते हुए ( पृषतीः ) जल सेचन करने वाली मेघमालाओं को एकत्र करते हैं ( अरुषस्य ) चमचमाते सूर्य या विद्युत के बलसे ( धाराः ) जलधाराओं को ( वि स्यन्ति ) विविध दिशाओं में बरसा देते हैं और ( उदभिः भूम व्युन्दन्ति ) जलों से समस्त भूमि को ( चर्म इव ) गाय के चमड़े के बराबर की थोड़ी सी भूमि के समान ही खूब गीला, तरबतर करते हैं, उसी प्रकार हे ( मरुतः ) हे विद्वान् जनो ! आप लोग (यत्) जब २ और जिन २ यन्त्र आदि में (पृषतीः)

जल सेचन करने वाली यन्त्र-कलाओं को ( अयुग्ध्वम् ) जोड़ कर बनाओ तब ( वाजे ) वेग उत्पन्न करने के लिये ( अद्रिम् ) कभी नाश न होने वाले स्थिर मेघ के समान जल-वर्षक यन्त्र को ( रंहयन्तः ) चलाते रहो, (उत) और ( अरुषस्य ) अति दीप्त अग्नि के बल से ( धाराः ) नाना जल-धाराएं ( वि स्यन्ति ) विविध दिशाओं में छूटें। और वे ( उदभिः ) जलों से ( चर्म इव भूम व्युन्दति ) थोड़ीसी भूमि के समान ही बहुत बड़ी भूमि को तरबतर कर दें। वीरों के पक्ष में—( यत् ) जब (रथेषु) रथों में उनके अधीन आप लोग ( पृषतीः प्र अयुग्ध्वम् ) अश्व के समान अगल बगल रहने वाली शस्त्रवर्षण में कुशल पदाति सेनाओं को नियुक्त करो। ( वाजे ) युद्ध में ( अद्रिम् ) शत्रु से छिन्न भिन्न होने वाले मेघ के समान शस्त्रास्त्र वर्षण करने वाले सेना के प्रबल भाग को ( रंहयन्तः ) वेग से आगे को बढ़ाए हुए चलो। ( उत ) और ( अरुषस्य ) अश्व-बल की ( धाराः ) धाराएं, पंक्तियों की पंक्तियें लगातार ( विस्यन्ति ) विविध दिशाओं में छूटें। ( उदभिः ) जलों के समान समस्त भूमि को ( चर्म इव ) छोटे से स्थान के समान ( वि उन्दन्ति ) गीला कर दें उसे भर दें। 'चर्म इव—चर्म' भूमि नापने का नपैना है। जिसमें लगभग १½ वर्ग गज़ भूमि आती है।

**आ वो वहन्तु सप्तयो रघुष्यदो रघुपत्वानः प्र जिगात बाहुभिः। सीदता बर्हिरुरु वः सदस्कृतं मादयध्वं मरुतो मध्वो अन्धसः॥६॥६**

भा०—(मरुतः) जिस प्रकार वायुगण के (सप्तयः रघुस्यदः) वेगवान् झकोरे अति शीघ्रगामी होते हैं, (बर्हिः ) अन्तरिक्ष में व्यापते और (मध्वः) जलों और ( अन्धसः ) अन्नों से सब को तृप्त करते हैं। उसी प्रकार हे ( मरुतः ) विद्वान् और वीर पुरुषो! ( वः ) आप लोगों को ( रघुस्यदः ) वेग से मार्गों में जाने वाले, (रघुपत्वानः) अति स्वल्प काल में बहुतसा मार्ग चले जाने वाले ( सप्तयः ) अश्व गण ( वहन्तु ) धारण करें, अर्थात् आप अति वेगवान् अश्वों पर सवारी करें। आप लोग ( बाहुभिः ) अपने बाहु-

बलों से ( प्र जिगात ) अच्छी प्रकार आगे बढ़ो । (बर्हिः सीदत) इन भूमि-वासी प्रजाओं पर शासक रूप से विराजमान होवो । ( वः सदः ) आप लोगों का गृह, सभास्थान आदि (उरुकृतम्) विशाल रूप में बनाया जावे। आप लोग ( मध्वः ) मधुर जल और ( अन्धसः ) अन्न आदि रसों का ( मादयध्वम् ) उपभोग कर के स्वयं खूब तृप्त और स्वतः आनन्दित हों और औरों को भी तृप्त करें । इति नवमो वर्गः ॥

तेऽवर्धन्त स्वतवसो महित्वना नाकं तस्थुरुरु चक्रिरे सदः ।
विष्णुर्यद्धावद्वृषणं मदच्युतं वयो न सीदन्नधि बर्हिषि प्रिये ॥ ७ ॥

भा०—वायुगण जिस प्रकार ( स्वतवसः ) अपने बल से युक्त होकर ( नाकं तस्थुः ) आकाश में स्थित हैं उसी प्रकार ( ते ) वे वीर जन भी ( स्वतवसः ) अपने बल से बलशाली होकर ( महित्वना ) अपने बड़े भारी सामर्थ्य से ( अवर्धन्त ) वृद्धि को प्राप्त होते हैं । और ( उरु ) विशाल ( नाकं सदः ) अति सुखप्रद गृह को ( चक्रिरे ) बनावे और ( तस्थुः ) उस में रहे । ( बर्हिषि ) आकाश में जिस प्रकार (मदच्युतं) जल के गिराने वाले ( वृषणं ) वृष्टिकारक मेघ को ( विष्णुः आवत् ) व्यापक या भीतर २ तक प्रविष्ट होने वाला प्रकाशक सूर्य ( आवत् ) प्राप्त होता है और उस में व्यापता है और उस के उपर के आकाश में ( वयः नः ) पक्षी के समान ऊपर २ रहता है उसी प्रकार ( विष्णुः ) व्यापक शक्ति और ज्ञान वाला विद्वान् ( मदच्युतं वृषणम् ) शत्रुओं के मद को नाश करने और प्रजा के हर्ष को बढ़ाने वाले सैन्य-गण की ( आ आवत् ) सब प्रकार से रक्षा करे ( प्रिये ) ऐश्वर्य से तृप्ति करने वाले और प्रिय ( बर्हिषि अधि ) अन्तरिक्ष के समान उच्चासन या भूमि-शासक के पद पर (वयः) आकाश में पक्षी या सूर्य के समान तेजस्वी होकर (अधिसीदन्) अधिष्ठित होकर रहे ।

शूरा इवेद्युयुधयो न जग्मयः श्रवस्यवो न पृतनासु येतिरे ।
भयन्ते विश्वा भुवना मरुद्भ्यो राजान इव त्वेषसंदृशो नरः ॥८॥

भा०—जिस प्रकार वायुगण ( पृतनासु ) समस्त मनुष्यों में प्राण रूप से सब प्रकार के प्रयत्नों और चेष्टाओं को करते हैं उसी प्रकार वे (युयुधयः न ) युद्ध करने वाले ( शूरा इव ) शूरवीर उत्साही पुरुषों के समान विद्वान् गण सदा सावधान और आलस्य रहित होकर ( जग्मयः ) अपने कार्यों पर जाने वाले ( श्रवस्यवः न ) अन्नों और ज्ञानों के धर्त्ता और यशों के अभिलाषी होकर ( पृतनासु ) प्रजाओं और संग्रामों के बीच में ( येतिरे ) नाना प्रकार के प्रयत्न और उद्योग करें। उन ( मरुद्भ्यः ) विद्वान् पुरुषों से और उद्योगी पुरुषों से ( विश्वा भुवना ) समस्त लोक और प्राणी ( भयन्ते ) भय करते हैं। वे ( राजानः ) राजाओं के ( नरः ) नायक पुरुष ( त्वेषसंदृशः ) तेज और पराक्रम को दिखलाने वाले हों।

त्वष्टा यद्वज्रं सुकृतं हिरण्ययं सहस्रभृष्टिं स्वपा अवर्तयत्।
धत्त इन्द्रो नर्यपांसि कर्तवेऽहन्वृत्रं निरपामौब्जदर्णवम् ॥ ६ ॥

भा०—( त्वष्टा ) सूर्य जिस प्रकार जिस ( वज्रम् ) ( सहस्रभृष्टिं ) सहस्रों पाक करने वाले, तापदायक और ( हिरण्ययं ) तेजोमय किरण समूह को ( अवर्तयत् ) प्रकट करता है ( इन्द्रः ) सूर्य उसको ( अपांसि कर्त्तवे धत्ते ) नाना कर्म करने के लिये धारण करता है उससे ही ( वृत्रं अहन् ) मेघ को आघात करता और ( अपाम् अर्णवम् निर् औब्जत् ) जलों के सागर रूप मेघ को नीचे गिरा देता है अर्थात् प्रचुर वृष्टि करता है। इसी प्रकार (सु-अपाः त्वष्टा) उत्तम प्रजा हित के कर्मों के करने हारा तेजस्वी पुरुष ( हिरण्ययम् ) प्रजा के हित और उनको अच्छा लगने वाला ( सहस्रभृष्टिं ) सहस्रों प्रकार से दुष्टों को संताप देने वाला, सहस्रों शत्रुसैन्यों को गिरा देने वाला, ( सुकृतम् ) उत्तम रीति से बने ( यत् ) जिस ( वज्र ) शस्त्रास्त्र बल को ( अवर्त्तयत् ) सञ्चालित करता है (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् वह सेनापति या राजा उस सैन्यबल को ( निर )

नायक के अधीन रख कर ( अपांसि ) नाना कर्म ( कर्त्तवे ) करने के लिये ( धत्ते ) धारण करता और उसको पालता, पुष्ट करता है उससे ही ( वृत्रं अहन् ) बढ़ते हुए या विरुद्धाचरण करते हुए शत्रु को दण्डित करता है। और ( अपाम् अर्णवम् ) शत्रु सैनिकों के सागर को भी ( निर् औब्जत् ) सर्वथा नीचे गिरा देता है, परास्त करता है।

ऊर्ध्वं नुनुद्रेऽवतं त ओजसा दादृहाणं चिद्बिभिदुर्वि पर्वतम्।
धमन्तो वाणं मरुतः सुदानवो मदे सोमस्य रण्यानि चक्रिरे॥१०॥

भा०—( मरुतः ) वायुगण ( ओजसा ) अपने बल या सूर्य के तेज से ( अवतं ) नीचे भूमि पर स्थित जल को ( ऊर्ध्वं नुनुद्रे ) ऊपर उठा ले जाते हैं और वे ही ( दादृहाणं ) बढ़ते हुए ( पर्वतम् ) मेघ को ( वि बिभिदुः ) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न भी कर देते हैं। वे ( वाणं ) जलों के समूह मेघ को ( धमन्तः ) कंपाते हुए ( सोमस्य मदे ) सूर्य के बल पर वा जल के बल पर ( रण्यानि चक्रिरे ) संग्राम के सदृश बल युक्त या अति रमणीय कार्यों को करते हैं उसी प्रकार ( ते मरुतः ) वे वीर, विजयेच्छु सैनिक गण ( ओजसा ) अपने बल पराक्रम से ( अवतम् ) नीचे गिरे हुए राष्ट्र को ( ऊर्ध्वं नुनुद्रे ) ऊंचा करें। अथवा—वे अपने पराक्रम में ( अवतम् ) सुरक्षित राज्य और राष्ट्रपति को ( ऊर्ध्वं नुनुद्रे ) ऊंचा करें। और ( दादृहाणं ) बराबर बढ़ते हुए, दृढ़ ( पर्वतम् ) नाना पालन सामर्थ्यों से युक्त, पर्वत के समान दुर्गम, बीच में बाधा डालने वाले, शत्रु को ( ओजसा ) अपने पराक्रम से ( वि बिभिदुः ) विविध उपायों से तोड़ फोड़ डालें। वे ( सुदानवः ) उत्तम, दानशील या उत्तम रीति से शत्रु बल को खण्ड २ कर देने में कुशल ( वाणं ) बाण आदि शस्त्रास्त्रों को अभियुक्त करते हुए और (बाणं धमन्तः) शब्द करने वाले मारू बाजे को बजाते हुए ( सोमस्य मदे ) ऐश्वर्य प्राप्ति के हर्ष में ( रण्यानि ) संग्रामोचित नाना कर्मों को ( चक्रिरे ) करें।

जि॒ह्मं नु॑नुद्रे॒ऽव॒तं तया॑ दि॒शासि॑ञ्च॒न्नुत्सं॒ गोत॑माय तृष्ण॒जे ।
आ ग॑च्छन्ती॒मव॑सा चि॒त्रभा॑नवः॒ कामं॒ विप्र॑स्य तर्पयन्त॒ धाम॑भिः ॥११

भा०—वायुगण ( तृष्णजे गोतमाय ) प्यासे भूमिपालक किसान जन के हित के लिये या प्यासे उत्तम प्रदेशों के लिये ( तया दिशा ) उसी दिशा से ( अवतम् ) प्रजा की रक्षा करने वाले ( उत्सम् ) कूप के समान अगाध जल को धारण करने वाले जलप्रद मेघ को ( जिह्मम् ) तिरछा, आकाश मार्ग से ( नुनुद्रे ) उड़ा ले जाते हैं और ( असिञ्चन् ) जल बरसा देते हैं। वे ( चित्रभानवः ) अद्भुत विद्युत् कान्तियों से युक्त होकर ( ईम् आगच्छन्ति ) उस प्रदेश को प्राप्त हो जाते हैं ( विप्रस्य ) विविध प्रकारों से भूमियों को जल और अन्नादि से पूर्ण कर देने वाले मेघ के ( धामभिः ) धारण पोषणकारी जलों से ( कामं ) कामना युक्त प्रजाजन को ( तर्पयन्तः ) उनकी अभिलाषानुसार खूब तृप्त कर देते हैं। उसी प्रकार ( चित्रभानवः ) चित्र विचित्र दीप्ति वाले, सूर्य के समान तेजस्वी, अग्नि के समान प्रतापी और नाना चमचमाते, आग्नेयादि अस्त्र शस्त्रों से सुसज्जित वीरगण ( तृष्णजे गोतमाय ) और अधिक ऐश्वर्य के अभिलाषी 'गोतम' अर्थात् पुरुष पुंगव, नरश्रेष्ठ राजा की वृद्धि के लिये (तया दिशा) उसी दिशा से अर्थात् विजय करने की रीति से ( अवतं ) कूप के समान नीच ( जिह्मम् ) कुटिलगामी, शत्रुजन को ( नुनुद्रे ) मार भगावें और (उत्सं) उत्तम मार्ग से जाने वाले भले पुरुषों को (धामभिः) नाना ऐश्वर्यों से वृक्ष के समान सींच २ कर बढ़ावें। (अवसा) अपने रक्षण सामर्थ्य और ज्ञान-बल से ( ईम् ) इस राजा को (आगच्छन्ति) प्राप्त हों। और उस को (विप्रस्य) विद्वान् गण तथा विविध ऐश्वर्यों और तेजों से पूर्ण सूर्य के (धामभिः) किरणों के समान प्रजा को धारण पोषण कारी नाना सामर्थ्यों, तेजों और प्रतापों से ( तर्पयन्त ) खूब तृप्त करें, खूब बढ़ावें। सामान्यतः—दानी लोग प्यासे पथिकों के लिये गहरा कूआ खोदें, जल पिलावें, भूमियों को सींचें,

विद्वान् ब्राह्मणों की अभिलाषाओं को स्थान, अन्नादि से तृप्त करें। उनकी रक्षा करें।

**या वः शर्म शशमानाय सन्ति त्रिधातूनि दाशुषे यच्छताधि।**
**अस्मभ्यं तानि मरुतो वियन्त रयिं नो धत्त वृषणः सुवीरम्।१२।१०॥**

भा०—( मरुतः ) प्राण गण जिस प्रकार ( शशमानाय दाशुषे ) शम आदि साधना करने वाले, भगवान् में आत्म समर्पण करने वाले पुरुष को ( त्रिधातूनि शर्म ) शरीर के धारण करने वाले वात, पित्त, कफ़ इन तीन धातुओं से युक्त सुखों या इन से बने देहों को वश करते हैं उसी प्रकार हे ( मरुतः ) विद्वानों और वीर पुरुषो ! (वः) तुम्हारे ( या ) जो ( त्रिधातूनि ) लोह, सुवर्ण और रजत तीनों धातुओं के बने अथवा वाणी, मन और काय तीनों को पोषण करने वाले ( शर्म ) सुखप्रद साधन या गृह ( सन्ति ) हैं उन को तुम लोग ( शशमानाय ) उत्तम ज्ञानोपदेश करने वाले ( दाशुषे ) ज्ञानप्रद गुरु विद्वान् पुरुषों के लिये (अधि यच्छत) प्रदान करो। ( तानि ) वेही सुख साधन हे ( मरुतः ) विद्वान् वीर पुरुष ! ( अस्मभ्यम् ) हमें भी ( वियन्त ) विशेष रूप से प्रदान करो। हे (वृषणः) सुखों के वर्षा करने हारे ! आप लोग ( नः ) हमें ( सुवीरम् ) उत्तम वीर पुत्रों और पुरुषों से युक्त ( रयिम् ) ऐश्वर्य ( धत्त ) प्रदान करो। इति दशमो वर्गः ॥

## [ ८६ ]

गोतमो राहूगण ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, ४, ८, ९ गायत्री। २, ३, ७ पिपीलिका मध्या निचद्गायत्री। ५, ६, १० निचृद्गायत्री ॥
दशर्चं सूक्तम् ॥

**मरुतो यस्य हि क्षये पाथा दिवो विमहसः। स सुगोपातमो जनः॥१॥**

भा०—हे ( विमहसः ) विविध प्रकार के और विशेष तेजों वाले ज्ञानों और प्रभावों से युक्त (मरुतः ) विद्वान् और वीर पुरुषो ! आप लोग

( यस्य क्षये ) जिस के घर में या जिस के आश्रय रह कर (दिवः) पृथिवी की और विद्या, विज्ञान की ( पाथ ) रक्षा करते हो ( सः ) वह ( जनः ) मनुष्य ( सुगोपातमः) उत्तम रक्षक है। अध्यात्म में—( मरुतः ) प्राणगण जिस आत्मा के देह में रह कर शरीर की रक्षा करते हैं वह आत्मा शरीर का उत्तम रक्षक है। उस ब्रह्माण्ड में जिस सूर्य के अधीन ये वायु गण रह कर जल का किरणों द्वारा पान करते हैं वह सूर्य ही समस्त प्रजाओं का बड़ा रक्षक है। इसी प्रकार वह परमेश्वर जिस के आश्रय में रह कर विद्वान् गण आनन्द रस का पान करते हैं वह सब से बड़ा रक्षक है।

यज्ञैर्वा यज्ञवाहसो विप्रस्य वा मतीनाम्। मरुतः शृणुता हवम् ॥२॥

भा०—हे ( यज्ञवाहसः ) यज्ञों, उत्तम कर्मों, सत्संगों और ज्ञान के श्रवण और प्रवचन को स्वयं धारण करने और अन्यों को प्राप्त कराने वाले [ मरुतः ) देह में प्राण के समान राष्ट्र में जीवन धारण कराने हारो! आप लोग ( यज्ञैः ) पूर्व कहे उत्तम २ कर्मों द्वारा ( वा ) और अन्यान्य परोपकार के कार्यों द्वारा ( विप्रस्य ) विद्वान् पुरुष के और ( मतीनां वा ) मननशील पुरुषों के (हवम्) उपदेशों को (शृणुता) श्रवण करो और कराओ।

उत वा यस्य वाजिनोऽनु विप्रमतक्षत। स गन्ता गोमति व्रजे ॥३॥

भा०—(उत वा) और ( यस्य वाजिनः ) जिस ज्ञानैश्वर्य वाले पुरुष के ( अनु ) अधीन रह कर ( विप्रम् अतक्षत ) विद्वान् पुरुष को गुरु जन और अधिक तीक्ष्ण बुद्धि वाला विद्वान् बना देते हैं ( सः ) वह (गोमति-व्रजे ) ज्ञान वाणियों के मार्ग में तथा इन्द्रियों के ज्ञान करने के मार्ग में ( गन्ता ) सफलता से जाने वाला हो।

अस्य वीरस्य बर्हिषि सुतः सोमो दिविष्टिषु। उक्थं मदश्च शस्यते ॥४॥

भा०—( बर्हिषि ) वृद्धिशील प्रजाजन के हित के निमित्त तथा ( दिविष्टिषु ) दिव्य उत्तम कर्मों के निमित्त ( अस्य वीरस्य ) इस वीर्यवान् पराक्रमी पुरुष को ( सुतः ) अभिषेक द्वारा प्राप्त हुआ ( सोमः ) राज्यैश्वर्य

और ( उक्थं ) उत्तम वचन और ( मदः ) आनन्द, हर्ष ( च ) और अन्यान्य गुण भी ( शस्यते ) प्रशंसा योग्य होते हैं ।

**अस्य श्रोषन्त्वा भुवो विश्वा यश्चर्षणीरभि । सूरं चित्सस्रुषीरिषः ॥५॥११**

भा०—( यः ) जो ( चर्षणीः अभि ) सब विद्वान् मनुष्यों के प्रति कृपालु है और ( सूरंचित् ) सूर्य के चारों ओर जिस प्रकार किरणें सूर्य के अधीन रहती हैं उस प्रकार ( विश्वाः ) समस्त ( भुवः ) बलशालिनी भूमिवासिनी ( सस्रुषीः ) वेग से प्रयाण करने वाली ( इषः ) प्रजाएं और सेनाएं ( अस्य ) इसके आज्ञा-वचनों और उपदेशों को ( श्रोषन्तु ) श्रवण करें । इत्येकादशो वर्गः ॥

**पूर्वीभिर्हि ददाशिम शरद्भिर्मरुतो वयम् । अवोभिश्चर्षणीनाम् ॥६॥**

भा०—( मरुतः ) वायुगण ( शरद्भिः ) शरत् आदि ऋतुओं से जिस प्रकार ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों को सुख प्रदान करते हैं उसी प्रकार हम लोग ( पूर्वीभिः अवोभिः ) पूर्व के विद्वानों से प्राप्त रक्षा-साधनों और ज्ञानों से ( वयम् ) हम लोग ( हि ) भी ( चर्षणीनाम् ) मनुष्यों के सुख साधन ( ददाशिम ) प्रदान करें ।

**सुभगः स प्रयज्यवो मरुतो अस्तु मर्त्यः । यस्य प्रयांसि पर्षथ ॥७॥**

भा०—( मरुतः प्रयज्यवः ) वायुगण और प्राणगण नाना उत्तम सुखों के देने वाले होकर ( प्रयांसि ) अन्न, जल आदि नाना प्रिय पदार्थों को वर्षाते हैं और भूमि निवासी जन ऐश्वर्य प्राप्त करते हैं उसी प्रकार हे ( मरुतः ) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग (प्रयज्यवः) उत्तम ज्ञानों और ऐश्वर्य के देने वाले हो । आप लोग ( यस्य ) जिस को ( प्रयांसि ) अन्न और आत्मा को तृप्त करने वाले ज्ञान आदि ( वर्षथ ) प्रदान करते हैं ( सः ) वह ( मर्त्यः ) मनुष्य ( सुभगः अस्तु ) बड़े उत्तम ऐश्वर्य का स्वामी हो ।

**शशमानस्य वा नरः स्वेदस्य सत्यशवसः । विदा कामस्य वेनतः ॥८॥**

भा०—हे ( नरः ) नायक पुरुषो ! हे ( सत्यशवसः ) सत्य ज्ञान

और नित्य बल से युक्त पुरुषो ! (स्वेदस्य) पसीना बहाने वाले, परिश्रमी, ( शशमानस्य ) सत्य ज्ञान का उपदेश करने वाले, ( वेनतः ) नाना उत्तम कामना करने वाले पुरुष के ( कामस्य ) उत्तम संकल्प को ( विद ) जानो। अथवा—( सत्यशवसः ) सत्य के बल पर आश्रित, ( स्वेदस्य ) परिश्रम से प्राप्त करने योग्य ( शशमानस्य ) उत्तम पुरुषों द्वारा उपदेश योग्य, ( वेनतः ) विद्वानों और शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित कामना करने योग्य [कामस्य) धर्मानुकूल काम नामक अभिलाषा योग्य, पुत्रैषणा रूप पुरुषार्थ का भी ( वेद ) अच्छी प्रकार ज्ञान करो। प्रजनश्चास्मि कंदर्पः ॥ धर्माविरुद्धो भूतेषु कामोस्मि भरतर्षभ ॥ गीता० ॥

यूयं तत्संत्यशवस आविष्कर्त महित्वना। विध्यंता विद्युता रक्षः॥६॥

भा०—हे ( सत्यशवसः ) सत्य ज्ञान वाले और नित्य बल वाले, सदा हृष्ट पुष्ट पुरुषो ! हे वीर जनो ! ( महित्वना ) अपने महान् सामर्थ्य से ( यूयम् ) तुम लोग ( तत् ) उस पूर्वोक्त काम अर्थात् अभिलाषा करने योग्य पुरुषार्थ का ( आविष्कर्त ) प्रकट कर, सब को उस का उपदेश करो। और ( रक्षः ) कामना योग्य पदार्थों की प्राप्ति में विघ्नकारी पुरुषों और पदार्थों को तथा बाधक कारणों को ( विद्युता ) उत्तम प्रकाश युक्त ज्ञान और विशेश दीप्ति वाले आग्नेय शस्त्रास्त्र तथा विद्युत् और ज्ञान, के प्रयोग से ( विध्यत ) विनाश करो। और इष्ट की प्राप्ति करो।

गूहंता गुह्यं तमो वि यांत विश्वमत्रिणंम्। ज्योतिष्कर्ता यदुश्मसिं१०।१२

भा०—आप लोग अपने महान् ज्ञान सामर्थ्य से ( गुह्यं ) बुद्धि में स्थित ( तमः ) खेद जनक अज्ञान रूप अन्धकार को ( वि गूहत ) विनष्ट करो। और ( विश्वम् अत्रिणम् ) सब कुछ खाजाने वाले सर्वस्व नाशक लोभ या कामतृष्णा रूप तामस विकार को भी ( वि यात) विविध उपायों से दूर करो। (यत् उश्मसि) जिस परम ज्ञानमय तेज की हम कामना करें उस (ज्योतिः) उत्तम प्रकाश को (कर्त) प्रकट करो। इति द्वादशो वर्गः ॥

[ ८७ ]

गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१, २, ५ विराड् जगती । ३ जगती । ६ निचृज्जगती । ४ त्रिष्टुप् । षड्चं सूक्तम् ॥

**प्रत्व॑क्षसः प्रत॑वसो विर॒प्शिनोऽना॑नता अवि॑थुरा ऋजी॒षिण॑ः ।**
**जुष्ट॑तमासो॒ नृत॑मासो अ॒ञ्जिभि॒र्व्या॑नज्रे के चि॑दु॒स्रा इ॑व स्तृ॒भि॑ः ॥१॥**

भा०—( केचित् ) कुछ वीर पुरुष ( उस्राः इव ) किरणों के समान हों । वे ( प्रत्वक्षसः ) तीक्ष्ण शस्त्रों से शत्रुओं की खूब काट छांट करने में कुशल, ( प्रतवसः ) सब प्रकार से बड़े शक्तिशाली, ( अनानताः ) शत्रु के सामने कभी न झुकने वाले, ( ऋजीषिणः ) ऋजु, सरल धर्म युक्त मार्ग में जाने वाले, अथवा ऐश्वर्यों और बल उपार्जन में दत्तचित्त, (जुष्टतमासः) सब राजकार्यों में खूब सेवा करने वाले, तथा राजपुरुषों द्वारा सेवा करने योग्य, ( अविथुराः ) भय से कभी न कांपने वाले, ( नृतमासः ) उत्तम नायक, नेता पुरुष (स्तृभिः ) विस्तृत, परराज्य, स्वराष्ट्र सब पर आच्छादन, अपना अधिकार या शासन करने वाले, या शत्रुओं के नाशक, (अञ्जिभिः) रक्षा, ज्ञान आदि के प्रकाशक और प्रकट चिन्हों और गुणों सहित हों । वे (वि आनज्रे) विविध उपायों से शत्रुओं और वाधक कारणों को उखाड़ फेंकें ।

**उ॒प॒ह्व॒रेषु॒ यदचि॑ध्वं य॒यिं वय॑ इव मरुतः॒ केन॑ चित्प॒था ।**
**श्चोत॑न्ति॒ कोशा॒ उप॑ वो॒ रथे॒ष्वा घृ॒तमु॑क्षता॒ मधु॑वर्ण॒मर्च॑ते ॥ २ ॥**

भा०—( मरुतः उपह्वरेषु यत् ययिं केन चित् पथा अचिध्वम् ) वायुगण कुटिलता से जाने योग्य आकाश भागों में जाते हुए मेघ को किसी भी मार्ग से लाकर संचित कर देते हैं तब ( कोशाः चोतन्ति ) मेघ जल बरसाते हैं वायुगण ( रथेषु ) अपने वेगपूर्वक झकोरों में ही ( अर्चते ) जलाभिलाषी प्राणिवर्ग के लिये ( मधुवर्णम् घृतम् उक्षत ) मधुर जल

बरसाते हैं उसी प्रकार हे ( मरुतः ) वीरो और विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( उपह्वरेषु ) कुटिल मार्गों वाले, दुर्गम, सुरक्षित स्थानों में ( वयः इव ) पक्षियों के समान ( केन चित् पथा) आकाश आदि किसी भी अज्ञात मार्ग से जाकर ( ययिम् ) संग्रामों में प्राप्त करने योग्य विजयैश्वर्य को ( अचिध्वम् ) संचय कर लिया करो। ( वः ) आप लोगों के ( रथेषु ) रथों पर ( कोशा ) मेघों के समान (कोशा) शत्रुओं के तुणीर तथा राजा के खजाने ( चोतन्ति ) वाण और ऐश्वर्य बरसावें। और आप लोग ( अर्चते ) आप को सत्कार पूर्वक रखने वाले स्वामी के लिये ( मधुवर्णम् ) मधुर जल के समान स्वच्छ (घृतम्) तेज, बल और जल का (आ उक्षतम्) सेचन करो। उस को प्रकट करो उसका अभिषेक करो। विद्वानों के पक्ष में-(रथेषु घृतम् आ उक्षतम्) विमानादि रथों में तैल, जलादि का सेचन करो।

प्रैषामज्मेषु विथुरेव रेजते भूमिर्यामेषु यद्ध युञ्जते शुभे।
ते क्रीळयो धुनयो भ्राजदृष्टयः स्वयं महित्वं पनयन्त धूतयः ॥३॥

भा० -( यत् ) जब भी वे वीरगण ( शुभे ) उत्तम, शोभाजनक युद्ध के लिये ( यामेषु ) मार्गों में ( युञ्जते ) एक साथ गमन करते हैं तब ( एषाम् ) इन के ( अज्मेषु ) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले युद्धादि परा क्रमों के अवसरों पर, ( विथुरा इव ) भय से कांपती हुई स्त्री के समान ( भूमिः ) भूमि भी ( प्र रेजते ) मानो भयभीत होकर कांप जाती है। वे ( क्रीडयः ) युद्धक्रीड़ा के व्यसनी ( धुनयः ) शत्रुओं को धुन डालने वाले, ( भ्राजद्-ऋष्टयः ) चमचमाते शस्त्र अस्त्रों से सुसज्जित ( धूतयः ) शत्रु के हृदय में कंपकपी उत्पन्न कर देने में समर्थ होकर स्वयं अपने ( महित्वं ) महान् सामर्थ्य को (पनयन्त) अपने कार्यव्यवहार से प्रकट कर देते हैं। क्रिया द्वारा अपना बल बतला देते हैं। वायुपक्ष में—(शुभे) उत्तम वृष्टि लाने के लिये जब वायुगण चलते हैं तब ( अज्मेषु ) मेघों को इधर उधर फेंकने वाले प्रबल वेगों में भूमि भयभीत स्त्री के समान कांपती है। वे वृक्षों को

कंपाते हुए, विद्युतें चमकाते हुए, पर्वतों को कंपाने वाले वायु अपने कामों से ही अपने महान् सामर्थ्य को प्रकट करते हैं।

स हि स्वसृत्पृषदश्वो युवा गणोऽया ईशानस्तविषीभिरावृतः।
असि सत्य ऋणयावाऽनेद्योऽस्या धियः प्राविताथा वृषा गणः ॥४॥

भा०—( सः हि ) वह पूर्वोक्त ( गणः ) वीर नायक और विद्वान् का दल ( स्वसृत् ) स्वयं अपने बल से आगे बढ़ने वाला ( पृषदश्वः ) मृग के समान अति वेग से जाने वाले अश्वों वाला, ( युवा ) जवान, हृष्ट पुष्ट ( अया ) इस राष्ट्र का ( ईशानः ) पूर्ण सामर्थ्यवान्, राष्ट्र का पूर्ण स्वामी ( तविषीभिः ) बलवती सेनाओं से ( आवृतः ) युक्त हो। और वह (सत्यः) सज्जनों के प्रति उत्तम व्यवहार वाला, उनका हितकारी, सत्य धर्माचरण करने वाला, ईमानदार, ( ऋणयावा) अपने और परायों के ऋणों को चुकाने वाला, ( अनेद्यः ) उत्तम, निन्दा के सर्वथा अयोग्य, शुद्धाचारी, ( गणः ) सब में उत्तम गिना जाने योग्य, ( वृषा ) सुखों का बर्षक, उत्तम बलवान् होकर ( अस्याः ) इस ( धियः ) उत्तम ज्ञान और धारण करने योग्य कर्मों शक्तियों का ( प्र अविता ) अच्छी प्रकार रक्षा करने और उनको बतलाने वाला ( असि ) हो। वायुओं के पक्षमें—अपने बलों से चलने हारा ( पृषदश्वः ) बर्षणशील मेघ रूप अश्वों वाला, शक्तियों से युक्त होकर सब प्राणिसमूह का प्राणप्रद होने से स्वामी है। (सत्यः) विद्यमान जंतुओं का हितकारी, ( ऋणयावा ) जल लाने वाला, अनिन्द्य है, वह ( धियः प्राविता ) उत्तम कर्मों और धारण योग्य प्रजाओं का रक्षक है।

पितुः प्रत्नस्य जन्मना वदामसि सोमस्य जिह्वा प्र जिगाति चक्षसा।
यदीमिन्द्रं शम्यृक्वाण आशतादिन्नामानि यज्ञियानि दधिरे ॥ ५ ॥

भा०—( प्रत्नस्य पितुः ) प्राचीन, पूर्व के (पितुः) पालक पुरुष के वीर्य से प्राप्त हुए ( जन्मना ) जन्म, उत्पत्ति से ही हम लोग अपने ( नामानि ) नामों को (वदामसि) कहा करते हैं। (सोमस्य) उत्पादक के ( चक्षसा )

गुणों के देखने से ही ( जिह्वा ) वाणी भी ( नामानि ) तदनुरूप व्यवहार योग्य नामों को ( प्र जिगाति ) कहती है। ( शमि ) उत्तम यज्ञ आदि के कर्म में ( यत् ) जब ( ऋक्वाणः ) वेदमन्त्रों के धारण करने वाले विद्वान् जन भी ( ईम् इन्द्रम् ) उस परमेश्वर को ( आशत ) स्तुति प्रार्थना द्वारा प्राप्त होते हैं ( आत् इत् ) तभी वे ( यज्ञियानि नामानि ) अपने उपास्य प्रभु परमेश्वर के गुणों और तदनुरूप नामों को भी (दधिरे) धारण करते हैं। उसी प्रकार पालक पुरुष के द्वारा ही वीर सैनिकों के भी नाम कहें जाय। ( सोमस्य चक्षसा ) उनके प्रेरक नाम के देखने से ही ( वाणी ) उनका वर्णन करे। राष्ट्र के कामों में ( ऋक्वाणः ) विद्वान पुरुष राजा को प्राप्त हों तभी वे (यज्ञियानि) राष्ट्रपति के दिये विशेष २(नामानि) उपाधियों और पदों को धारण करें।

श्रियसे कं भानुभिः सं मिमिक्षिरे ते रश्मिभिस्त ऋक्वभिः सुखादयः।
ते वाशीमन्त इष्मिणो अभीरवो विद्रे प्रियस्य मारुतस्य धाम्नः॥६॥१३

भा०—जो ( श्रियसे ) शोभा और राज्यलक्ष्मी की वृद्धि के लिये ( मातृभिः ) सूर्य की किरणों के समान राजा के तेज की वृद्धि करने वाले सहायकारी पुरुषों द्वारा ( कम् ) कर्त्ता, प्रजापति पुरुष को ( संमिमिक्षिरे ) अच्छी प्रकार उत्तम राज्यपद पर अभिषिक्त करते हैं और जो पुरुष ( रश्मिभिः ) रासों से अश्वों के समान नायक और राष्ट्र को वश में रखने में कुशल हैं और जो ( ऋक्वभिः ) ऋचाओं, वेदमन्त्रों, वाणियों, व्यवस्थाओं, आज्ञाओं और राष्ट्र के राज्यांगों द्वारा ( सुखादयः ) राष्ट्र को उत्तम रीति से, धर्मानुकूल उपायों से भोगने वाले और (सुखादयः) उत्तम अनिन्दनीय, स्वच्छ पदार्थों का भोग और भोजन करने वाले वाग्मी विद्वान् ( इष्मिणः ) प्रबल इच्छाशक्ति वाले, स्वयं गतिमान्, उत्साही और दूसरों को भी अपनी आज्ञा में चलाने हारे, सेना के स्वामी, ( अभीरवः ) शत्रु से कभी भय न खाने वाले हैं ( ते ते ते ) वे, वे, वे, क्रम से तीनों

प्रकार के व्यक्ति ( प्रियस्य ) सबको प्रिय लगने वाले, सबको प्रसन्न और तृप्त करने वाले, मनोहर ( मारुतस्य ) मारुत ( धाम्नः ) पद, स्वरूप सामर्थ्य को (विद्रे) प्राप्त करते हैं। अर्थात् राष्ट्र की समृद्धि की वृद्धि ये तेजस्वी पुरुष राज्याभिषिक्त करने वाले जन मारुत तेज को धारण करते हैं अर्थात् वे शत्रुहन्ता सैनिक बल को वश करने में समर्थ होते हैं, दूसरे वे अपने बल से वृक्षों को वायु के समान शत्रुओं को उखाड़ने में समर्थ होते हैं। (२) जो अश्वों के समान रासों से राष्ट्र को वश करते हैं और सूर्य की किरणों के समान जलवत् सुखों की वर्षा करते हैं वे भी वायुओं के समान प्रजा के प्राणप्रद जीवनाधार होते हैं। ( २ ) जो ऋचा, अर्थात् वेदज्ञान से युक्त होकर ज्ञानजल का वर्षण करते और सात्विक भोजन करते और धर्माचारी विवेकी हैं वे मारुत अर्थात् प्राणबल को शरीर में आरोग्य रूप से भोगते हैं। जो वाणी वाले वाग्मी हैं, प्रबल, निर्भय हैं, वे वीर सैनिक नायकों का पद प्राप्त करते हैं। वायु पक्ष में वायुगग ( मातृभिः ) सूर्य की किरणों से बल प्राप्त करके ( कं मिमिक्षिरे ) जल का सेचन करते हैं। प्राण शक्तियों से उत्तम अन्न देते हैं। ( वाशीमन्तः ) गर्जना मय विद्युत वाले तीव्र वेगवान् होते हैं। अथवा—( कं श्रियसे ) सुख प्राप्त करने के लिये जो पुरुष ( रश्मिभिः ) अग्नियों से जलों की वर्षा करते हैं वे शिल्पज्ञ होते हैं।

इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[ ८८ ]

गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः ॥ मरुतो देवता ॥ छन्दः—१ पंक्तिः। २ भुरिक्पंक्तिः। ५ निचृत्पङ्क्तिः। ३ निचृत् त्रिष्टुप्। ४ विराट्त्रिष्टुप्। ६ निचृद्बृहती॥

**आ विद्युन्मद्भिर्मरुतः स्वर्कै रथेभिर्यात ऋष्टिमद्भिरश्वपर्णैः।**
**आ वर्षिष्ठया न इषा वयो न पप्तता सुमायाः ॥ १ ॥**

भा०—हे ( मरुतः ) विद्वान् पुरुषो ! उत्तम गृहस्थो और गण बना

कर रहने वाले वीर पुरुषो ! वायुगण जिस प्रकार ( ऋष्टिमद्भिः ) दीप्ति वाले ( अश्वपर्णैः ) सूर्य के पालन सामर्थ्यों और गमन वेगों वाले (स्वर्कैः) उत्तम किरणों से युक्त होकर ( विद्युन्मद्भिः ) विजुलियों वाले मेघों सहित ( वर्षिष्ठया इषा ) खूब जल वृष्टि से बढ़ी हुई अन्न सम्पत्ति से आते हैं उसी प्रकार ( मरुतः ) विद्वान् जन ( विद्युन्मद्भिः ) विजुली की दीप्ति से युक्त, ( सुअर्कैः ) उत्तम विचारित यन्त्रों से बनाये गये ( ऋष्टिमद्भिः ) चालक खूटियों तथा शस्त्रास्त्रों से युक्त ( अश्वपर्णैः) घोड़ों और अग्नि आदि पदार्थों के द्वारा शीघ्र मार्ग में जाने वाले, ( रथेभिः ) रथों या योग्य सवारियों द्वारा ( आयात ) आया जाया करो। हे ( सुमायाः ) उत्तम बुद्धिमान् और कर्मकुशल पुरुषो ! ( वयः न ) पक्षियों के समान ( वर्षिष्ठया इषा ) अति वृष्टि से उत्पन्न अन्न और बहुत अधिक बढ़ी हुई अधीन प्रजा या सेना के साथ ( आ पप्तत ) आया जाया करो।

तेऽ॑रु॒णेभि॒र्वर॒मा पि॒शङ्गैः॑ शु॒भे कं या॑न्ति रथ॒तूर्भि॒रश्वैः॑ ।
रु॒क्मो न चि॒त्रः स्वधि॑तीवान्प॒व्या रथ॑स्य जङ्घनन्त॒ भूम॑ ॥ २ ॥

भा०—( रुक्मः ) तेजस्वी ( चित्रः ) अद्भुत, ( स्वधितीवान् ) खड्ग धर योद्धा ( न ) जिस प्रकार ( पव्या ) शस्त्र से शत्रु सेना का नाश कर देता है उसी प्रकार ( ते ) वे वीर विद्वान् गण ( रथस्य ) रथ की ( पव्या ) चक्रधारा से ( भूम ) भूमि को ( जंघनन्त ) पीड़ित करते हैं। ( ते ) वे ( अरुणेभिः ) लाल ( पिशङ्गैः ) पीले ( रथतूर्भिः अश्वैः ) रथों को वेग से ले जाने वाले अश्वों से ( शुभे ) उत्तम शोभा प्राप्त करने के लिये ( वरम् ) श्रेष्ठ, ( कं ) सुखकारी प्रजापालक राजा को ( आयान्ति ) प्राप्त होते हैं।

श्रि॒ये कं वो॒ अधि॑ त॒नूषु॒ वाशी॑र्मे॒धा वना॒ न कृ॑णवन्त ऊ॒र्ध्वा ।
यु॒ष्मभ्यं॒ कं म॑रुतः सुजातास्तुविद्यु॒म्नासो॑ धनयन्ते॒ अद्रि॑म् ॥ ३ ॥

भा०—( न ) जिस प्रकार लोग ( वाशीः ) काटने वाले कुल्हाड़े

आदि शस्त्रों को (तनूषु अधि) कन्धों पर उठाते और (ऊर्ध्वा वना) ऊंचे २ वृक्षों को (कृणवन्ते) काट गिराते हैं उसी प्रकार हे (मरुतः) वीर सैनिक लोगो! (वः तनूषु अधि) आप लोग अपने शरीरों, या कन्धों पर (मेधा) शत्रुओं का हिंसन या बध करने वाले (वाशीः) शस्त्रास्त्रों को (श्रिये) राज्यलक्ष्मी को प्राप्त करने के लिये धारण करो। और (ऊर्ध्वा) ऊंचे उमड़ते हुए (वना) शत्रु-सेना के दलों को (कृणवन्ते) काट गिराओ। (सुजाताः) उत्तम विद्या और ऐश्वर्य में प्रसिद्ध (तुविद्युम्नाः) अति धनाढ्य जन भी (युष्मभ्यम्) तुम लोगों के भरण पोषण और रक्षा के लिये ही (अद्रिम्) अक्षय शस्त्रास्त्र बल को (धनयन्ते) अपना धन बना लेते हैं। अथवा तुम्हारे रक्षणार्थ वे पर्वत के समान उच्च धन राशिका संग्रह करते हैं। विद्वानों के पक्ष में—(श्रिये) उत्तम शोभा के लिये ही (तनूषु) विद्वान् जन शरीरों में (मेधा वाशीः) पावन बुद्धियों, पवित्र वाणियों को धारण करें। (ऊर्ध्वा वना) उच्च कोटि के ऐश्वर्यों को प्राप्त करें। हे विद्वानो! तुम्हारे भरण पोषण आदि के लिये (सुजाताः) उत्तम कोटि के (तुविद्युम्नासः) बहुत ऐश्वर्यों के स्वामी सम्पन्न लोग भी (अद्रिम् धनयन्ते) पर्वत के समान विशाल धन प्राप्त करते हैं।

**अहा॑नि॒ गृध्राः॒ पर्या॑ व॒ आगु॑रि॒मां धियं॑ वार्का॒र्यां च॑ दे॒वीम्।**
**ब्रह्म॑ कृ॒ण्वन्तो॒ गोत॑मासो अ॒र्कैरू॒र्ध्वं नु॑नुद्र उत्स॒धिं पिब॑ध्यै ॥ ४ ॥**

भा०—[१] (ब्रह्म कृण्वन्तः) वेद का अध्ययन करते हुए (गोतमासः) उत्तम वाणी को धारण करने वाले विद्वान् जन (अर्कैः) उत्तम वेद मन्त्रों द्वारा (पिबध्यै) ज्ञान-रस का पान करने और औरों को पान कराने के लिये (ऊर्ध्वं) सबसे ऊपर ऊंचे स्थान पर विद्यमान, सर्वोच्च, परम (उत्सधिम्) ज्ञानानन्द रसों को कूप के समान धारण करने वाले परमेश्वर को (नुनुद्रे) प्रेरते अर्थात् उसकी उत्तम रीति से स्तुति वर्णन करते हैं। जैसे ऊंचे स्थान पर बने जलाशय कूप या टैंक से पानी को पान स्नान

आदि करने के लिये विद्वान् जन यन्त्रों द्वारा नीचे बहा लेते हैं उसी प्रकार बिद्वान् जन अपने से ऊपर, अधिक उच्च कोटि में स्थित परमेश्वर और आचार्य को अपनी ज्ञान-रस पिपासा को शान्त करने के लिये प्रेरित करते हैं, उससे प्रार्थना करते और उसकी स्तुति करते हैं। विद्वान् जन जिस प्रकार ( वार्कार्याम् धियम् ) जल प्राप्त करने की क्रिया को ( परि आ अगुः ) सब प्रकार से साधते हैं उसी प्रकार स्तुतिकर्त्ता विद्वान् जन भी ( वार्कार्याम् ) दुःखों के वारण करने वाली और वरण करने योग्य ज्ञान और ऐश्वर्य को उत्पन्न करने वाली ( देवीम् ) ज्ञानप्रद, सुखप्रद, चित्तों के प्रकाशक देवी, वेदविद्या को ( परि आ आगुः ) सब प्रकार से अभ्यास करते हैं। हे विद्वान् पुरुषो ! ( उत्सधि पिबध्यै ) उत्तम ज्ञान के धारण करने वाले परम रस को पान करने के लिये और ( इमां धियं च ) इस ज्ञान और कर्ममयी दिव्य ऐश्वर्यमय विद्या को प्राप्त करने के लिये ( गृध्राः ) विद्या के और धन के अभिलाषी पुरुष ( अहानि ) सब दिनों ( वः ) तुम लोगों के पास ( परिआ आगुः) सब देशों से आ आ कर एकत्र हों और ज्ञान का अभ्यास करें। [ २ ] किरणों और वृष्टिविद्या के पक्ष में- ( अहानि ) दिन गण या सूर्य के प्रकाश ( गृध्राः ) गीधों के समान जलों को अपने भीतर लेने की इच्छा वाले होकर ( इमां ) इस ( वार्कार्याम् ) जल उत्पन्न करने वाली ( देवीम् ) प्रकाशमयी या सूर्य की (धियं) धारण शक्ति को ( परि आ अगुः ) सब तरफ फैलाते हैं। ( गोतमासः ) उत्तम सूर्यगण या ( अर्कैः ) किरणों से ( ब्रह्म कृण्वन्तः ) प्रकाश करते हुए, ( पिबध्यै ) पान करने के लिये ( ऊर्ध्वम् उत्सधिम् ) ऊपर, अन्तरिक्ष में कूप के समान अधिक जल को धरने वाले मेघ को (नुनुद्रे) प्रेरित करते हैं। [३] (ब्रह्म कृण्वन्तः गोतमासः) जल को उत्पन्न करने वाले कृषि-कर विद्वान् जन ( पिबध्यै ) भूमियों को जल पान कराने अर्थात् सेचने के लिये ( अर्कैः ) नाना साधनों से ( उत्सधिम् ) कूप में स्थित जल को ( ऊर्ध्वं

नुनुद्रे ) ऊपर खींच लेवें । ( गृध्राः ) जल के अभिलाषी लोग भी ( इमां वार्कार्यां देवीं धियम् ) इस जल प्राप्त करने की सुखप्रद उत्तम क्रिया को ( वः ) तुम लोगों से (परि आ अगुः) सीखें । [४] ( ब्रह्म कृण्वन्तः गोतमासः ) ऐश्वर्य या महान् राष्ट्र को वश करते हुए विद्वान् भूमिपति लोग ( अर्कैः ) उत्तम आदर मान सत्कारों से ( उत्सधिम् पिबध्यै ) स्वयं राष्ट्र का भोग करने के लिये हे वीरो ! ( वः ) तुममें से जो ( गृध्राः ) धनाकांक्षी हैं वे ( इमां देवी वार्कार्याम् धियं परि आ अगुः ) इस धन प्रद उत्तम रक्षाकारिणी बुद्धि का पालन करें ।

**एतत्त्यन्न योजनमचेति सुस्वर्ह यन्मरुतो गोतमो वः ।**
**पश्यन्हिरण्यचक्रानयोदंष्ट्रान्विधावतो वराहून् ॥ ५ ॥**

भा०—हे ( मरुतः ) हे वीर सैनिक गणो ! ( एतत् ) यह प्रत्यक्ष (योजनम्) तुम लोगों का योजन अर्थात् विशेष व्यवस्था या कार्य में नियुक्ति ( त्यत् न ) पूर्व योजन या नियुक्ति के समान ही ( अचेति ) जानना चाहिये ( यत् ) जिसको ( वः ) तुम लोगों के लिये ( गोतमः ) तुममें सबसे श्रेष्ठ वह प्रधान सेनापति, विद्वान् ( सस्वः ) उपदेश करता है जो तुमको ( हिरण्य चक्रान् ) सुवर्ण के चक्रों और ( अयोदंष्ट्रान् ) लोह की शस्त्रास्त्र रूप शत्रुनाशकारी दाढ़ों वाले ( वराहून् ) जंगली शूकरों के समान क्रोधान्ध होकर ( विधावतः ) विविध दिशाओं में (धावतः) दौड़ते हुओं को ( पश्यन् ) देखा करता है । शिक्षक सेनापति वीर सैनिकों को पूर्व शिक्षित व्यूहों की आज्ञा करे । युद्ध में सशस्त्र होकर वेग से दौड़ते हुए सैनिकों पर अपनी आंख रक्खे । वेतन बद्ध होने से सुवर्ण या धन प्राप्ति ही मानो उनके वेग से जाने का कारण है । शस्त्र ही उनके शत्रुओं को फाड़ खाने के साधन हैं । वे शूकर के समान क्रोधान्ध होकर दौड़ते हैं । अथवा अपने उत्कृष्ट बल वाले को ललकारने से वे वीर गण 'वराहू' हैं । (२) शिल्पपक्ष में—(मरुतः) अग्नि, वायु, जल आदि वेग युक्त, अति

घोर शब्दकारी पदार्थों का यह (योजनं) विशेष प्रकार का संयोजन पूर्व के समान ही जानना चाहिये जिसका उपदेश ( गोतमः ) गति विद्या का उत्तम विद्वान् उपदेश करता है। जो ( वराहून् ) श्रेष्ठ पुरुषों को लेकर जाने वाले या खूब शब्द करके चलने वाले ( विधावतः ) नाना दिशाओं में वेग से जाते हुए ( हिरण्यचक्रान् ) लोह के चक्रों और ( अयोदंष्ट्रान् ) लोह के ही हाल से मढ़े रथों को ( पश्यन् ) देखता है, उनका आविष्कार करता है। (३) अध्यात्म में—हे प्राणगण मुख्य गोतम आत्मा पूर्व कल्प के समान ही तुम प्राणों का देह में संयोजन करता है। वह तुमको हिरण्य रूप आत्मा के कर्त्ता से चलने वाला और ( अयोदंष्ट्रान् ) वेग से चलने वाले मनो बल से ग्राह्य विषय के भोग करने वाले नाना दिशा में जाते हुए ( वराहून् ) उत्तम अन्नों को प्राप्त होने वाला तुमको देखता है, तुम पर वश करता है।

एषा स्या वो मरुतोऽनुभर्त्री प्रति ष्टोभति वाघतो न वाणी।
अस्तोभयद्वृथासामनु स्वधां गभस्त्योः॥ ६॥ १४॥

भा०—( वाघतः ) विद्वान् स्तुतिकर्त्ता पुरुष की ( वाणी ) वाणी जिस प्रकार बांध लेती है उसी प्रकार हे ( मरुतः ) देह में प्राणों के समान राष्ट्र के जीवन रूप विद्वानो, वीर सैनिक पुरुषो! ( वः ) आप लोगों की ( एषा ) यह ( स्या ) वह नाना प्रकार की ( अनुभर्त्री ) प्रतिदिन भरण पोषण करने वाली आजीविका ही है जो ( वः प्रतिस्तोभति ) आप में से प्रत्येक को अपने २ कार्य पर बांध रही है। ( स्वधाम् अनु ) देह को धारण पोषण करने वाली अन्न या पिण्डपोषणी आजीविका के ( अनु ) अनुसार ही वह प्रधान राजा ( आसाम् ) इन सेनाओं के ( गभस्त्योः ) बाहुओं को भी (वृथा) अनायास ही (अस्तोभयत् ) बांध लेता है। अर्थात् वीर पुरुषों के बाहुबल भी वेतन के अधीन होते हैं। इति चतुर्दशो वर्गः॥

[ ८९ ]

गोतमो रहूगणपुत्र ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः—१, ५ निचृज्जगती । २, ३, ७ जगती । ४ भुरिक् त्रिष्टुप् । ८ विराट् त्रिष्टुप् । ६, १० त्रिष्टुप् । ६ स्वराड् बृहती ॥ दशर्चं सूक्तम् ।

**आ नो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतोऽदब्धासो अपरीतास उद्भिदः । देवा नो यथा सदमिद्वृधे असन्नप्रायुवो रक्षितारो दिवेदिवे ॥१॥**

भा०—( नः ) हमारे वीचमें जो पुरुष ( क्रतवः ) उत्तम क्रिया कुशल, ज्ञानी और ( भद्राः ) सब के कल्याणकारी, सुखकारक एवं सेवा और सत्संग करने और ऐश्वर्य की वृद्धि करने वाले हैं वे ( अदब्धासः ) कभी मारने, पीड़ा देने और वध करने योग्य नहीं हैं । वे ( अपरीतासः ) कभी किसी अवस्था में परित्याग या उपेक्षा न किये जावें । वे ( उद्भिदः ) सदा उत्तम वृक्षों के समान उत्तम कर्मों और फलों को देने वाले या उत्तम कृषकों के समान उत्तम ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने हारे होकर ( नः ) हमें (सदम्) सदा (आ यन्तु) प्राप्त हों । अथवा वे (नः सदम् आयन्तु) हमारे घरों पर आवें । ( यथा ) जिस कारण से ( देवाः ) ज्ञानवान्, विद्वान्, विद्याप्रद, दानी और विजयेच्छु पुरुष ( दिवे दिवे ) प्रतिदिन ( अप्रायुवः ) कभी आयु और जीवन शक्ति को न खोने वाले, सदा दीर्घायु, बलवान् ( रक्षितारः ) रक्षक होकर भी ( नः वृधे इत् असन् ) हमारी वृद्धि के लिये ही हों ।

**देवानां भद्रा सुमतिर्ऋजूयतां देवानां रातिरभि नो नि वर्तताम् । देवानां सख्यमुप सेदिमा वयं देवा न आयुः प्र तिरन्तु जीवसे ॥२॥**

भा०—( ऋजूयताम् ) सरल मार्ग से जाने वाले धर्मात्मा ( देवानाम् ) विद्वानों की ( भद्रा ) कल्याण और सुख देने वाली ( सुमतिः ) उत्तम बुद्धि, उनके उत्तम ज्ञान (नः) हमें ( नि वर्तताम् ) सदा प्राप्त हों ।

सरल, धर्मात्मा ( देवानां ) विद्वानों की ( भद्रा रातिः नः नि वर्तताम् ) सुखदायी कल्याणमय विद्या आदि का उपदेश रूप दान हमें सदा प्राप्त हो। ( वयम् ) हम ( देवानाम् ) दानशील, विजयी, उत्साही, तेजस्वी पुरुषों के ( सख्यम् ) मित्र भावों को ( उप सेदिम ) सदा प्राप्त करें। वे ( देवाः ) विद्वान् जन ( नः ) हमारे ( आयुः ) जीवन को ( जीवसे ) दीर्घ काल तक जीवन के लिये (प्र तिरन्तु) खूब बढ़ावें ! उसी प्रकार (ऋजूयताम् ) ऋतु अनुकूल प्राप्त होने वाले या प्राण बल को धारण करने वाले अग्नि, वायु, जल, पृथिवी, सूर्य आदि दिव्यगुण वाले तेजस्वी पदार्थों का (सुमतिः) उत्तम स्तम्भन बल तथा धर्मात्मा विद्वानों की शुभ मति हमें प्राप्त हो उनकी उत्तम (रातिः) दानशक्ति हमें प्राप्त हो। हम उनकी ( सख्यम् ) अनुकूलता को प्राप्त करें। वे हमारे जीवन की वृद्धि करने वाले हों।

**तान्पूर्वया निविदा हूमहे वयं भगं मित्रमदितिं दक्षमस्त्रिधम्।**
**अर्यमणं वरुणं सोममश्विना सरस्वती नः सुभगा मयस्करत् ॥३॥**

भा०—( भगम् ) ऐश्वर्यवान्, सेवा करने योग्य, सुखजनक, ( मित्रम् ) सब सुहृद् ब्राह्मण, मरणादि दुःखों से बचाने वाले वैद्य आदि, (अदितिम्) कभी नाश, पीड़ा या दुःख न देने योग्य, सदा पूज्य माता, पिता, भूमि और गुरु आदि पूज्य जन, ( दक्षम् ) कार्यों में चतुर ज्ञानी, गुरु और पिता आदि, ( अस्त्रिधम् ) अहिंसक, ( अर्यमणम् ) शत्रुओं को वश करने में समर्थ, न्यायकारी, ( वरुणम् ) सर्वश्रेष्ठ, दुःखों और दुष्टों के वारक, ( सोमम् ) सर्वोत्पादक, पिता, सर्वप्रेरक, उपदेशक, शम दमादि सम्पन्न साधक जन, ( अश्विना ) गुरु शिष्य तथा स्त्री पुरुष, अग्नि, जल, दिनरात्रि आदि युगल, (तान्) उन सभी को हम ( पूर्वया निविदा ) अपने से पूर्व के गुरुओं द्वारा पढ़ने, ज्ञान करने योग्य, सनातन से चली आयी वेदवाणी द्वारा ( हूमहे ) प्रशंसा करें, उनका वेदानुसार ज्ञान, उपयोग और आदर करें। (सरस्वती) विदुषी स्त्री और उत्तम ज्ञानों से भरपूर वेद वाणी और ज्ञानवान् परमे-

श्वर और विद्वज्जन भी ( सुभगा ) उत्तम ऐश्वर्यों तथा पुत्र पौत्रादि, धन धान्यादि से युक्त सेवनीय सुखकारी ज्ञान से युक्त हो कर ( नः ) हमें ( मयः करत् ) सुख प्रदान करें ।

**तन्नो वातो मयोभु वातु भेषजं तन्माता पृथिवी तत्पिता द्यौः । तद्ग्रावाणः सोमसुतो मयोभुवस्तदश्विना शृणुतं धिष्ण्या युवम् ।४।**

भा०—( वातः ) वायु और प्राण ( नः ) हमें ( तत् ) वह नाना प्रकार के ( मयोभु ) सुखकारक ( भेषजम् ) रोग दूर करने का सामर्थ्य ( वातु ) प्राप्त करावे । ( माता पृथिवी ) माता और माता के समान पृथिवी दोनों ( तद् भेषजं वातु ) वह रोगनाशक बल दें । ( द्यौः पिता ) प्रकाशमय सूर्य पालक होकर पिता के समान ( तत् भेषजम् वातु ) उस रोगनाशक बल को प्राप्त करावे । ( सोमसुतः ) सोम अर्थात् रोगों को निकाल बाहर कर देने वाले और नाना सुखों और बलों के उत्पादक ओषधियों के रसों को तैयार करने वाले ( ग्रावाणः ) विद्वान् पुरुष तथा सिलबटा, खरल आदि साधन, उपकरण ( मयोभुवः ) सुखकारी होकर ( तत् भेषजम् ) नाना प्रकार के दुःखों के दूर करने के उपायों को प्राप्त करावें । हे ( अश्विना ) स्त्री पुरुषो ! माता पिताओ ! गुरु शिष्यो ! ( युवम् ) आप लोग ( धिष्ण्या ) बुद्धिमान् होकर ( तत् ) रोगों को और दुःखों को दूर करने के उपायों और साधनों का ( शृणुतं ) श्रवण करो और करावो ।

**तमीशानं जगतस्तस्थुषस्पतिं धियञ्जिन्वमवसे हूमहे वयम् । पूषा नो यथा वेदसामसद्वृधे रक्षिता पायुरदब्धः स्वस्तये ॥५॥१५॥**

भा०—( वयम् ) हम लोग (जगतः) चर, जंगम, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि प्राणधारी और ( तस्थुषः ) वृक्ष, पर्वत आदि स्थावर संसार के ( पतिम् ) पालक ( धियं-जिन्वम् ) धारण पोषण करने वाले अन्न से सब जीवों को तृप्त करने वाले ( तम् ईशानम् ) उस परम ऐश्वर्यवान् स्वामी परमात्मा को (अवसे) ज्ञान और रक्षा को प्राप्त करने के लिये (हूमहे) स्मरण

करते हैं। वह ( पूषा ) सबका पोषक ( रक्षिता ) दुष्टों से रक्षक, (वायुः) सब प्रजाओं का पालन करने हारा और ( अदब्धः ) कभी विनष्ट न होकर, नित्य सुरक्षित रहकर ( नः ) हमारे ( वेदसाम् ) धनों और ऐश्वर्यों की ( वृधे ) वृद्धि और ( नः स्वस्तये ) सुख और कल्याण के लिये ( असत् ) हो। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

**स्वस्ति न इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्ति नः पूषा विश्ववेदाः ।**
**स्वस्ति नस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्ति नो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ६ ॥**

भा०—( वृद्धश्रवाः ) बढ़े हुए, बहुत अधिक ज्ञान और अन्नादि सम्पत्ति का स्वामी ( इन्द्रः ) आचार्य और परमेश्वर ( नः ) हमें ( स्वस्ति दधातु ) सुख कल्याण प्रदान करे। ( विश्ववेदाः ) समस्त ज्ञानों और ऐश्वर्यों का स्वामी, (पूषा) सबका पोषक प्रभु ( नः स्वस्ति दधातु ) हमें शरीर पोषण का सुख प्रदान करे। ( तार्क्ष्यः ) विद्वान् ज्ञानी या वेग से अन्यत्र जाने हारा शिल्पी ( अरिष्टनेमिः ) रथ चक्र की न टूटने वाली धारा वाला होकर (नः स्वस्ति दधातु) हमें मार्ग लांघने का सुख प्रदान करे और ( तार्क्ष्यः ) वेग से शत्रुपर आक्रमण करने वाला वीर पुरुष ( अरिष्टनेमिः ) अटूट, दृढ़ हथियारों से युक्त होकर ( नः स्वस्ति दधातु ) हमें शत्रु जय से प्राप्त होने वाले सुख को दे। ( बृहस्पतिः ) वेदवाणी और बड़े राष्ट्र का स्वामी ( नः स्वस्ति दधातु ) हमें ज्ञानोपदेश और ऐश्वर्य समृद्धि का सुख दे। (२) प्रचुर अन्न और ज्ञान का स्वामी होने से परमेश्वर 'वृद्धश्रवा', सर्वज्ञ और धनों का स्वामी होने से 'विश्ववेदाः' व्यापक, सबका प्रेरक होने से 'तार्क्ष्य' और दुष्टों का नाशक होने से 'अरिष्टनेमि' और वेदवाणी और महान् ब्रह्माण्ड का पालक होने से वही 'बृहस्पति' है। वह हमें सब सुख प्रदान करे।

**पृषदश्वा मरुतः पृश्निमातरः शुभंयावानो विदथेषु जग्मयः ।**
**अग्निजिह्वा मनवः सूरचक्षसो विश्वे नो देवा अवसा गमन्निह ॥७॥**

भा०—( पृषदश्वाः पृश्निमातरः मरुतः जग्मयः शुभंयावानः अग्नि-जिह्वाः अवसा गमन् ) जिस प्रकार जल सेचन करने वाले व्यापक मेघों से युक्त, सेचन में समर्थ मेघों के उत्पादक, वायुगण गति करते हुए लोगों को उत्तम सुख प्राप्त कराते हैं और वेही अग्नि की ज्वाला से युक्त होकर (देवाः) प्रकाशयुक्त होकर ( सूरचक्षसः ) सूर्य के समान चमकते हुए हमें ( अवसा ) दीप्ति सहित प्राप्त होते हैं उसी प्रकार ( देवाः मरुतः ) तेजस्वी, दानशील, ज्ञान-दर्शक विद्वान् और वीर पुरुष (पृषदश्वाः) हृष्ट पुष्ट और नाना वर्णों के अश्वादि यानों पर चढ़ कर, ( पृश्निमातरः ) मातृभूमि से उत्पन्न ( शुभंयावानः ) प्रजा को सुख और शुभ कर्मों को प्राप्त कराने वाले, ( विदथेषु जग्मयः ) संग्रामों, ज्ञान-सत्संगों में जाने वाले, ( अग्निजिह्वाः ) अग्नि के समान समस्त पदार्थों को प्रकाशित करने वाली उपदेशप्रद वाणी से युक्त, ( मनवः ) विचारशील ( सूरचक्षसः ) सूर्य के समान तेजस्वी चक्षुवाले, अथवा सूर्य, प्राण, अन्न आदि के परम सूक्ष्म तत्वों को देखने और उनको स्पष्ट रीति से वर्णन करने वाले, ( विश्वे देवाः ) समस्त दानशील और ज्ञानोपदेष्टा, ज्ञान द्रष्टा पुरुष ( इह ) इस राष्ट्र में ( अवसा ) ज्ञान प्रकाश और रक्षण सामर्थ्य सहित ( नः ) हमें ( गमन् ) प्राप्त हों।

**भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः।**
**स्थिरैरङ्गैस्तुष्टुवांसस्तनूभिर्व्यशेम देवहितं यदायुः ॥ ८ ॥**

भा०—हे ( यजत्राः ) सत्संग करने योग्य, एवं ईश्वरोपासना करने और विद्या आदि उत्तम पदार्थों के देने हारे ( देवाः ) विद्वान् दानशील पुरुषो ! हम लोग ( कर्णेभिः ) कानों से ( भद्रं ) सुखकारी कल्याणकारक वचनों का ( शृणुयाम ) श्रवण करें। ( अक्षभिः ) आंखों से (भद्रं पश्येम) सुखकारी, कल्याण जनक दृश्य को ( पश्येम ) देखें। ( तुष्टुवांसः ) परमेश्वर की स्तुति, प्रार्थना, उपासना करते हुए और ज्ञानयोग्य पदार्थों का यथार्थ रूप से वर्णन करते हुए, हम लोग ( स्थिरैः अङ्गैः ) स्थिर, दृढ़, निश्चल

अंगों से और (तनूभिः) विस्तृत, हृष्ट पुष्ट शरीरों से (यद् आयुः) जो दीर्घ जीवन (देवहितम्) विद्वान् जनों को हितकारी है वह हम भी (अशेम) प्राप्त करें।

शतमिन्नु शरदो अन्तिदेवा यत्रा नश्चक्रा जरसं तनूनाम्।
पुत्रासो यत्र पितरो भवन्ति मा नो मध्या रीरिषतायुर्गन्तोः ॥९॥

भा०—हे (अन्ति) उत्तम साधनों से प्राण धारण करने और कराने में समर्थ (देवाः) विद्वानो! और अग्नि, जल, वायु, सूर्य, पृथिवी अन्न आदि जीवन देने वाले पदार्थो! (अन्ति) जिस जीवन दशा में (शतम् शरदः इत्) सौ वर्ष ही (नः तनूनां) हमारे शरीरों की (जरसं) जीर्ण दशा को (चक्र) करते हैं और (यत्र) जब (पुत्रासः पितरः भवन्ति) पुत्र भी बड़े होकर गृहस्थ धारण कर बच्चों के पिता अथवा हम वृद्धों के पालन करने योग्य (भवन्ति) हो जांय (तत्र) उस दशा तक (गन्तोः) पहुंचने तक के (मध्या) बीच २ में (नः) हमारी (आयुः) आयु को (मा रीरिषत) मत नष्ट होने दो।

अदितिर्द्यौरदितिरन्तरिक्षमदितिर्माता स पिता स पुत्रः।
विश्वे देवा अदितिः पञ्च जना अदितिर्जातमदितिर्जनित्वम्॥१०॥१६॥

भा०—(द्यौः अदितिः) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर, सूर्य, नक्षत्रादि और आकाश ये कभी नाश न होने से 'अदिति' हैं। (अन्तरिक्षम्) आकाश और उस में स्थित वायु भी (अदितिः) नाश न होने से 'अदिति' हैं। (माता) पुत्रों को उत्पन्न करने वाली माता, नित्य आदर करने योग्य, कभी पीड़ा या आज्ञा भंग न करने योग्य होने से 'अदिति' है। सर्वोत्पादक 'माता' प्रकृति और मातृस्नेहवान् परमेश्वर भी अविनाशी होने से 'अदिति' है। (पिता सः) इसी प्रकार पालन करने वाला और वीर्य और विद्या से उत्पन्न करने वाला पालक, जनक और आचार्य ये भी (अदितिः) पीड़ा न देने और आज्ञा उल्लंघन करने योग्य न होने से तथा उनके उपकार कभी नष्ट न होने

से और उनके सदा एक भाव में आदर योग्य बने रहने से वे भी 'अदिति' कहाने योग्य हैं। ( सः पुत्रः ) पुत्र, पिता और पालक जनों को शारीरिक, मानसिक और सामाजिक कष्टों से बचाने वाला पुत्र, शिष्य चाहे वह क्षेत्र सम्बन्ध और विद्या सम्बन्ध से हो वह भी सन्तति-परम्परा, कुल-परम्परा और सम्प्रदायपरम्परा को खण्डित करने हारा न होने से 'अदिति' है। ( विश्वे देवाः ) समस्त देव गण, विद्वान् पुरुष तथा सूर्यादि दिव्य पदार्थ (अदितिः) पीड़ा न देने योग्य नथा नाश न होने हारे होने से 'अदिति' कहाते हैं। (पञ्चजनाः अदितिः) ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद ये पांचों जन नाश न करने योग्य होने तथा प्रवाह से सदा विद्यमान रहने से 'अदिति' हैं। ( जातम् ) समस्त उत्पन्न पदार्थ कारणरूप से ( अदितिः ) और नाशवान् न होने से 'अदिति' हैं और (जनित्वम् अदितिः) आगे भविष्यत् में भी उत्पन्न होने वाले पदार्थ कारण पदार्थों में अव्यक्त रूप से विद्यमान होने से 'अदिति' कहाते हैं। इति षोडशो वर्गः समाप्तः॥

[ ९० ]

गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवताः॥ छन्दः—१, ८ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री। २, ७ गायत्री। ३ पिपीलिकामध्या विराड्गायत्री। ४ विराड् गायत्री। ५, ६ निचृद् गायत्री। ९ निचृत्त्रिष्टुप्॥ नवर्चं सूक्तम्॥

**ऋजुनीती नो वरुणो मित्रो नयतु विद्वान्। अर्यमा देवैः सजोषाः॥१॥**

भा०—( वरुणः ) गुण, कर्म और स्वभाव से श्रेष्ठ, सब दुःखों का वारण करने वाला, सबसे मुख्य पद के लिये वरण करने योग्य, (मित्रः) मृत्यु से बचाने वाला, सबका स्नेही, ( अर्यमा ) शत्रुओं और बाधक दुःखदायी कारणों का नियन्त्रण करने वाला, न्यायकारी, ( देवैः ) उत्तम विद्वान् पुरुषों के साथ ( सजोषाः ) समान भाव से प्रीतियुक्त होकर ( विद्वान् ) विद्वान् पुरुष राजा ( नः ) हमें ( ऋजुनीती ) ऋजु, सरल, कुटिलता रहित

नीति अर्थात् धर्म मार्ग से (नयतु) सन्मार्ग पर चलावे। (२) इसी प्रकार उत्तम गुणों से युक्त परमेश्वर हमें ( देवैः) उत्तम गुणों, कर्मों और स्वभावों से युक्त होने के कारण ( सजोषाः ) सबसे समान भाव से प्रेम करने हारा और सबका प्रेमपात्र होकर हमें उत्तम धर्म मार्ग से चलावे।

ते हि वस्वो वसवानास्ते अप्रमूरा महोभिः। व्रता रक्षन्ते विश्वाहा॥२॥

भा०—जो लोग ( विश्वाहा ) सब दिनों, नित्य ( व्रता ) नियत धर्म नियमों को ( रक्षन्ते ) स्वयं पालन करते और औरों से पालन कराते हैं ( ते हि ) वे ही वस्तुतः ( वस्वः ) बसे हुए प्रजाजन और ऐश्वर्य के ( बसवानाः) सुख से बसाने और उनकी रक्षा करने में समर्थ होते हैं और ( ते ) वे ( विश्वाहा ) सब दिनों ( महोभिः ) बड़े २ गुणों, कर्मों और नाना उपायों द्वारा ( अप्रमूराः ) असावधानता मोह, प्रमाद और आलस्य से रहित होकर रहें।

ते अस्मभ्यं शर्म यंसन्नमृता मर्त्येभ्यः। बाधमाना अप द्विषः॥३॥

भा०—( ते ) वे ( अमृताः ) कभी न मरने वाले अर्थात् यशस्वी, बलवान्, अपराजित, जीवन्मुक्त, दीर्घजीवी, प्रजा, पुत्र, शिष्य, एवं उत्तराधिकारी आदि परम्परा से सदा बने रहने वाले अधिकारी विद्वान् जन (द्विषः) अप्रीति करने योग्य, द्वेष्य, दुष्ट पुरुषों और बुरे, खोटे कर्मों और विचारों को ( अपबाधमानाः ) दूर करते हुए, ( अस्मभ्यं ) हम ( मर्त्येभ्यः ) मरणधर्मा मनुष्यों के लिये ( शर्म ) सुख ( यंसन् ) प्रदान करें।

वि नः पथः सुविताय चियन्त्विन्द्रो मरुतः। पूषा भगो वन्द्यासः॥४॥

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, विद्यावान् और शत्रुओं का नाश करने वाला ( पूषा ) सबका पोषक, अन्न देने वाला और राजा ( भगः ) उत्तम सेवनीय पदार्थों और गुणों से युक्त परमेश्वर, विद्वान् आचार्य और राजा आदि ( मरुतः ) और विद्वान् वीर तथा वैश्यादि गण, (नः) हमारे (सुविताय ) सुखपूर्वक देश देशान्तर में जाने और उत्तम ऐश्वर्यों के प्राप्त करने

के लिये ( पथः ) मार्गों और नाना उपायों को ( वि चियन्तु ) निर्धारित करें, बनावें ।

उत नो धियो गोअंग्राः पूषन्विष्णवेवयावः। कर्ता नः स्वस्तिमतः ॥५॥

भा०—हे ( पूषन् ) सबके पोषण करने हारे ! हे ( विष्णो ) व्यापक सामर्थ्य वाले परमेश्वर ! हे ( एवयावः ) ज्ञानों को स्वयं प्राप्त करने और औरों को प्राप्त कराने वाले ( मरुतः ) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( नः ) हमारी (धियः) बुद्धियों को (गो-अग्राः कर्त्त) उत्तम वेद वाणियों से प्रकाशित होने वाला करो । अर्थात् हमारे कर्म और विचारों में 'गो-अग्र' अर्थात् वेद-वाणी मुख्य साक्षी रूप से रहे । अथवा—(धियः गो अग्राः) हमारे समस्त विचार उत्तम वाणियों द्वारा आगे आने या प्रकाशित होने वाले हों । हमारे विचार उत्तम वचनों में प्रकाशित हों । इसी प्रकार अधीनस्थ सैनिक आदि अपने नायक से कहते हैं— हे पोषक ! हे विष्णो ! महान् सामर्थ्य और अधिकार वाले नायक ! ( नः धियः गो-अग्राः ) हमारे सब काम तेरी वाणी को आगे रख कर हों । तेरी आज्ञा पहले हो और हमारे कार्य तदनुसार हों । हे ( एवयावः ) गति देने हारे या शीघ्रगामी रथ से जाने हारे महा-रथ ! तू ( नः ) हमें ( स्वस्तिमतः ) सुख कल्याण से युक्त कर । अथवा—( धियः गो-अग्राः ) हमारे सब काम ज्ञानवान् आदित्य के समान तेजस्वी पुरुषों के नायकत्व में हो । इति सप्तदशो वर्गः ॥

मधु वाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीः॥६

भा०—( ऋतयते ) अन्न को प्राप्त करने की इच्छा वाले मानव समाज के लिये ( वाताः ) वायुगण जिस प्रकार ( मधु क्षरन्ति ) जल बरसाते हैं उसी प्रकार (ऋतयते) सत्य ज्ञान के इच्छुक जिज्ञासु जन के लिये (वाताः) ज्ञानवान् पुरुष ( मधु ) मधुर ब्रह्म विद्या का ( क्षरन्ति ) उपदेश दें । और जिस प्रकार ( सिन्धवः ) महा नदियें अन्न के इच्छुक को नहरों से (मधु क्षरन्ति) जल बहाती हैं उसी प्रकार (सिन्धवः) ज्ञान के अगाध सागर

एवं विद्या सम्बन्ध से अपने साथ शिष्यों को बांधने वाले आचार्य गण सत्य ज्ञान के जिज्ञासु को ( मधु क्षरन्ति ) मधुर ब्रह्मज्ञानोपदेश प्रदान करते हैं। ( ओषधीः ) ओषधियां जिस प्रकार ( नः ) हमारे लिये ( माध्वीः ) मधुर गुण से युक्त एवं मधुर, सुखजनक स्वास्थ्य और पुष्टि प्रदान करने वाली होती हैं उसी प्रकार (ओषधीः) तेज और ताप को धारण करने वाले पदार्थ और प्रतापी, तेजस्वी, वीर सेनाएं और परिपक्व ज्ञान वाले जन (नः) हमारे लिये ( माध्वीः सन्तु ) मधुर ज्ञानप्रद हों।

**मधु॒ नक्त॑मु॒तोषसो॒ मधु॑म॒त्पार्थि॑वं॒ रजः॑। मधु॒ द्यौर॑स्तु नः पि॒ता॥ ७॥**

भा०—( नक्तम् मधु ) रात्रि का समय हमारे लिये मधुर, सुखकारी हो। ( उत ) और ( उषसः ) उषाकाल, प्रभात वेलाएं हमारे लिये मधुर, सुखकारी, शान्तिप्रद, आरोग्यकारक हों। ( पार्थिवं रजः ) पृथिवी की धूलि और पृथिवी पर बसे यह समस्त लोक भी (मधुमत्) मधुर गुण से युक्त सुख और आरोग्य कारक और बलकारक हों। ( द्यौः ) सूर्य ( नः ) हमारे ( पिता ) पालक पिता के समान ( मधु अस्तु ) मधुर, सुखकारी, आरोग्यजनक हों।

**मधु॑मान्नो॒ वन॒स्पति॒र्मधु॑माँ अस्तु॒ सूर्यः॑। माध्वी॒र्गावो॑ भवन्तु नः॥ ८॥**

भा०—( वनस्पतिः नः मधुमान् ) वनस्पति हमारे लिये मधुर रस, फल और छाया से युक्त हो और (सूर्यः नः मधुमान् अस्तु) सूर्य और शरीर गत प्राण हमारे लिये मधुर सुखदायी प्रकाश और बल देने वाला हो। ( नः ) हमारी ( गावः ) गौ आदि पशु और सूर्य की किरणें और वेद वाणियें और देहगत इन्द्रियें ( नः ) हमें क्रम से ( माध्वीः भवन्तु ) मधुर दुग्ध, घृत आदि रस, मधुर प्रकाश से उत्पन्न होने वाले रोग नाशक प्रभाव, ज्ञान और सुखप्रद अनुभव देने वाले हों।

**शं नो॑ मि॒त्रः शं वरु॑णः॒ शं नो॑ भवत्वर्य॒मा।**
**शं न॒ इन्द्रो॒ बृह॒स्पतिः॒ शं नो॒ विष्णु॑रुरुक्र॒मः॥ ६॥ १८॥**

भा०—( नः ) हमें ( मित्रः ) सब का स्नेही, परमेश्वर ( शं ) शान्ति प्रदान करे। वह ( वरुणः ) सर्वश्रेष्ठ, दुःखों का निवारक ( शं ) शान्तिदायक हो। वह ( अर्यमा नः शं भवतु ) न्यायकारी, दुष्टों का नियन्ता शान्तिदायक हो। ( बृहस्पतिः ) वेद वाणी का पालक और बड़े बड़े लोकों का पालक ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् प्रभु, ( नः शम् ) हमें शान्तिदायक हो। ( उरुक्रमः विष्णुः ) बड़े भारी पराक्रम वाला, अनन्य बलशाली और सर्वव्यापक परमेश्वर ( नः शम् ) हमें शान्तिदायक हो। इत्यष्टादशो वर्गः ॥

[ ९१ ]

गोतमो रहूगणपुत्र ऋषिः ॥ सोमो देवता ॥ छन्दः—१, ३, ४ स्वराट्पङ्क्तिः। २ पङ्क्तिः। १८, २० भुरिक्पङ्क्तिः। २२ विराट्पंक्तिः। ५ पादनिचृद्गायत्री। ६, ८, ९, ११ निचृद्गायत्री। ७ वर्धमाना गायत्री। १०, १२ गायत्री। १३, १४ विराड्गायत्री। १५, १६ पिपीलिकामध्या निचृदगायत्री। १७ परोष्णिक्। १९, २१, २३ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ त्रयोविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

**त्वं सो॑म॒ प्र चि॑कितो मनी॒षा त्वं रजि॑ष्ठ॒मनु॑ नेषि॒ पन्था॑म्।**
**तव॒ प्रणी॑ती पि॒तरो॑ न इन्दो दे॒वेषु॒ रत्न॑मभजन्त॒ धीराः॑ ॥१॥**

भा०—हे ( सोम ) सब जगत् के प्रेरक, उत्पादक परमेश्वर ! और विद्वान् ! (त्वं) आप ( मनीषा ) मन की प्रबल इच्छा द्वारा ( प्र चिकितः ) अच्छी प्रकार जानते और ज्ञान देते हो। ( त्वं ) आप ( रजिष्ठम् ) अति ऋजु, सरल ( पन्थाम् ) मार्ग की ओर ( अनु नेषि ) लेजाते हो। (तव) आपकी ही ( प्रणीती ) उत्तम नीति से (नः पितरः) हमारे मा बाप के समान स्नेहवान् होकर ( धीराः ) धीर और कर्मशील बुद्धिमान् पुरुष ( देवेषु ) विद्वानों के बीचमें रहते हुए ( रत्नम् ) उत्तम ऐश्वर्य और परमसुख को ( अभजन्त ) प्राप्त करते हैं ॥ (२) राजा वै सोमः। श० १४। १। ३। १२। राजा और विद्वान् के पक्षमें—तू (मनीषा) अपनी बुद्धि से

सब कुछ भली प्रकार जान। ऋजु धर्म मार्ग पर ले चल, हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! (पितरः) पालक, शासक जन (देवेषु) विद्वानों और विजयेच्छु वीर पुरुषों के आधार पर ही तेरी उत्तम नीति से धैर्यवान् होकर (रत्नम्) रमण योग्य ऐश्वर्य प्राप्त करें। (३) अध्यात्म में—अन्नं वै सोमः। श० ३।१।१।८॥ प्राणः सोमः। श० ७।३।१।२॥ रेतः सोमः। श० ३।३।२।१। हे अन्न! प्राण! और प्रजा के उत्पादक हे शुक्र! तू मन की प्रेरणा से या कामना या हर्ष द्वारा (प्र चिकितः) समस्त रोगों को दूर करता और उत्तम ज्ञान सामर्थ्य देता है। और (रजिष्ठम् पन्थाम्) राजस भाव से युक्त मार्ग की तरफ गृहस्थोचित कार्य में भी प्रवृत्त करता है। बुद्धिमान् (पितरः) मा बाप (तव प्रणीती) तेरे उत्तम उत्तम उपयोग से (देवेषु) विद्वानों के बीच (रत्नम्) पुत्र और (देवेषु) प्राणों के बल पर (रत्नम्) रमण योग्य शारीरिक सुखप्रद बल को (अभजन्त) प्राप्त करते हैं।

त्वं सो॒म॒ क्रतु॑भिः सु॒क्रतु॑र्भू॒स्त्वं दक्षैः॑ सु॒दक्षो॑ वि॒श्ववे॑दाः।
त्वं वृषा॑ वृष॒त्वेभि॑र्महि॒त्वा द्यु॒म्नेभि॑र्द्यु॒म्न्य॑भवो नृ॒चक्षाः॑॥२॥

भा०—हे (सोम) अभिषेक योग्य, ऐश्वर्यवन्, ज्ञानवन्, सर्वाज्ञापक, प्रेरक राजन्! परमेश्वर! विद्वन्! (त्वं) तू (क्रतुभिः) उत्तम कर्मों और उत्तम २ ज्ञानों से (सुक्रतुः) उत्तम कर्म करने हारा और उत्तम ज्ञानवान् (भूः) है। (त्वं) तू (दक्षैः) नाना बलों से (सुदक्षः) उत्तम बलशाली और (विश्ववेदाः) समस्त संसार को जानने हारा, समस्त धनों का स्वामी (भूः) है। (त्वं) तू (वृषत्वेभिः) समस्त काम्य पदार्थों, सुख, विद्या, धन आदि के वर्षण करने के सामर्थ्यों से और (महित्वा) अपने महान् सामर्थ्य से (वृषा) मेघ के समान वर्षणकारी, 'वृषा' (अभवः) हो। और तू (नृचक्षाः) समस्त मनुष्यों को देखने हारा, सब पर साक्षी अधिष्ठाता होकर (द्युम्नेभिः) ऐश्वर्यों से (द्युम्नी) ऐश्वर्यवान् (अभवः)

होता है। शुक्र शरीर में क्रिया सामर्थ्यों का उत्पादक होने से 'सुक्रतु' और ज्ञान या मनन शक्तियों और बलों का वर्धक होने से 'सुदंस' है। पुरुषत्वं आदि गुणों का उत्पादक होने से 'वृषा' है। कान्तियों और तेज, ओज आदि का जनक होने से 'द्युम्नी', प्राणों, इन्द्रियों और 'नृ' अर्थात् नरों में दीखने से 'नृचक्षा' है। सब काम्य सुखों को देने से 'विश्ववेदा' है।

राज्ञो नु ते वरुणस्य व्रतानि बृहद्गभीरं तव सोम धाम।
शुचिष्ट्वमसि प्रियो न मित्रो दक्षाय्यो अर्यमेवासि सोम ॥ ३ ॥

भा०—हे राजन्! हे ( वरुण ) सर्वश्रेष्ठ, सब दुष्टों के वारक, सबसे वरण करने योग्य! (ते राज्ञः) तुझ राजा के ही बनाये ( व्रतानि ) ये सब राज्यपालन के नियम हों। हे ( सोम ) राजन्! ( तव ) तेरा ( धाम ) धारण सामर्थ्य और नाम, जन्म और स्थान तथा यश भी ( बृहत् ) बहुत बड़ा और ( गभीरम् ) गम्भीर, सब पर प्रभाव डालने वाला हो। ( त्वम् ) तू ( प्रियः मित्रः न ) प्रिय मित्र के समान ( शुचिः असि ) शुद्ध, निष्कपट व्यवहार वाला ( असि ) हो। और हे ( सोम ) सब ऐश्वर्यवन्! तू ( अर्यमा इव ) शत्रुओं का दमन करने वाले सेनापति और न्यायकारी धर्माध्यक्ष के समान ( दक्षाय्यः ) बल और यथार्थ न्याय शासन करने हारा (असि) हो। [२] परमेश्वर के सब सत्य नियम और उसका बल महान् अगाध है। वह प्यारे मित्र के समान स्वच्छ हृदय है, वह सूर्य के समान समस्त बलों और ज्ञानों का आश्रय है।

या ते धामानि दिवि या पृथिव्यां या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु।
तेभिर्नो विश्वैः सुमना अहेळन्राजन्त्सोम प्रति हव्या गृभाय ॥ ४॥

भा०—हे ( राजन् ) राजन्! सबके अधिपते! और सर्वत्र प्रकाशमान! हे ( सोम ) सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर! (ते) तेरे ( या ) जो ( धामानि ) जगत् को धारण करने वाले महान् बल, सामर्थ्य, ( दिवि ) सूर्य में, ( या ) जो धारण पोषण सामर्थ्य ( पृथिव्याम् ) पृथिवी में और

( या पर्वतेषु ) जो पर्वतों में, ( या ओषधीषु ) जो ओषधियों में और ( या अप्सु ) जो जलों में हैं, ( तेभिः ) उन ( विश्वैः ) सब सामर्थ्यों से हम पर अनुग्रह करता हुआ ( हव्या ) देने और ग्रहण करने योग्य समस्त पदार्थों का (प्रति गृभाय) प्रत्येक प्राणी को प्रदान कर और अपने वश कर। (२) राजा के पक्ष में—( दिवि ) ज्ञानसम्बन्धी कार्यों व्यवहार या विद्वत् सभा में ( पृथिव्यां ) पृथिवी निवासी प्रजा में ( पर्वतेषु ) पर्वतों और मेघों के समान अचल और शस्त्रवर्षी नायकों में और ताप, दाह युक्त प्रतापी सेनाओं में जो तेरे ( धामनि ) तेज, पराक्रम हैं उन सबसे हम प्रजाओं का तिरस्कार न करता हुआ ( हव्या ) ग्राह्य और दान योग्य ऐश्वर्यों को ले और दान कर। अथवा अन्तरिक्ष पृथिवी, पर्वत आदि स्थानों में सब उत्तम पदार्थ तेरे हैं, प्रजा को वञ्चित न करता हुआ योग्य रीति से राज-स्व, और प्रजा-स्व का विभाग कर।

त्वं सोमासि सत्पतिस्त्वं राजोत वृत्रहा। त्वं भद्रो असि क्रतुः ॥५॥१९॥

भा०—हे ( सोम ) सब जगत् के उत्पादक परमेश्वर ! ( त्वं ) तू ( सत् पतिः ) नित्य कारण, विद्यमान कार्य और सज्जनों का पालक ( असि ) है। ( त्वं ) तू ( राजा ) सब का प्रकाशक, सब का अधिपति, राजा ( उत ) और ( वृत्रहा ) सूर्य के समान अज्ञान आवरण का नाश करने वाला है। तू ( रुद्रः ) सबको सुख और कल्याणकारी सबके सेवने योग्य और ( क्रतुः ) ज्ञानवान्, कर्मसामर्थ्यवान् ( असि ) है। (२) इसी प्रकार विद्वान्, राजा सद्‌गणों का, सज्जनों का पति, ( वृत्रहा ) शत्रुनाशक ( भद्रः ) सज्जन और कर्मण्य हो। (३) सोम नाम ओषधि रस और शरीर में शुक्र दोनों सद्‌गुणों के पालक, रोगनाशक, सुखकारक, सेवन करने योग्य और बल बुद्धि के वर्धक हैं। इत्येकोनविंशो वर्गः ॥

त्वं च सोम नो वशो जीवातुं न मरामहे। प्रियस्तोत्रो वनस्पतिः ॥६॥

भा०—हे (सोम) राजन् ! और परमेश्वर ! (त्वं च) और आप (नः) हमारे ( जीवातुम् ) जीवन को ( वशः ) वश या स्थिर करने वाले और उसके चाहने वाले हो तब हम ( न मरामहे ) मृत्यु को प्राप्त न हों । तू ( वनस्पतिः ) सेवनीय ऐश्वर्यों का, जीवों का और वनों तक का पालक, स्वामी और ( प्रियस्तोत्रः ) प्रिय प्रीतिकारी स्तुति वचनोंवाला है । तेरे स्तुति-वचन सुन कर हृदय में प्रेम उत्पन्न होता है इसीसे तू प्रियस्तोत्र है । (२) देह में शुक्र रस, जीवन का स्थापक, उसमें तेज बल का धारक, होने से मृत्यु को दूर करता है । 'वन' अर्थात् इन्द्रियों का पालक उत्तम गुणों से युक्त है । (३) सोम रस, जीवन में बलदायक, मृत्यु आदि दुःखों का नाशक, उत्तम गुणों वाला वनस्पति है ।

त्वं सो॑म म॒हे भग॒ं त्वं यून॑ ऋताय॒ते । दक्षं॑ दधासि जी॒वसे॑ ॥ ७ ॥

भा०—हे ( सोम ) सर्वोत्पादक परमेश्वर ! सर्वप्रेरक राजन् ! ( त्वं ) तू ( महे ) महान् ( यूने ) युवा, बलवान् ( ऋतयते ) सत्यज्ञान, बल और शासन व्यवस्था को चाहने वाले पुरुष को ( भगं ) सेवन करने योग्य ऐश्वर्य, ( दधासि ) धारण कराता है और ( जीवसे ) दीर्घ जीवन के लिये ( दक्षं दधासि ) बल और सामर्थ्य प्रदान करता है । (२) सोम रस और शुक्र युवा पुरुष को कान्ति और बल देते हैं । (२) राजा युवा पुरुषों को अधिकार ऐश्वर्य और जीविका के लिये अन्न वृत्ति देता है ।

त्वं नः॑ सोम वि॒श्वतो॒ रक्षा॑ राजन्नघाय॒तः । न रि॑ष्ये॒त्त्वाव॑तः॒ सखा॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे (सोम) विद्वन् ! हे ( राजन् ) राजन् ! परमेश्वर ! ( त्वं ) तू ( नः ) हमें ( विश्वतः ) सब प्रकार के ( अघायतः ) हम पर पाप और अत्याचार करने के इच्छुक दुष्ट पुरुषों से ( रक्ष ) बचा । ( त्वावतः ) तेरे जैसे बलशाली रक्षक का ( सखा ) मित्र ( न रिष्येत् ) कभी नष्ट नहीं हो सकता । वीर्य तथा ओषधिरस भी शरीर पर सब प्रकार के आघातकारी

रोग आदि से बचावें । वीर्य के समान सहायक पदार्थ का मित्र देह कभी नष्ट नहीं होता।

सोम॒ यास्ते॑ मयो॒भुव॑ ऊ॒तय॒: सन्ति॑ दा॒शुषे॑ । ताभि॑र्नोऽवि॒ता भ॑व ॥९॥

भा०—हे ( सोम ) सोम, राजन् ! प्रभो ! ( याः ) जो ( ते ) तेरे ( मयोभुवः ) सुखजनक ( ऊतयः ) रक्षा के साधन और ज्ञान (दाशुषे) दानशील पुरुष के हित के लिये ( सन्ति ) हैं ( ताभिः ) उनसे तू ( नः ) हमारा ( अविता ) रक्षक ( भव ) हो। वीर्य तथा ओषधिरस के सुख-जनक गुणों से देह की रक्षा होती है ।

इ॒मं य॒ज्ञमि॒दं वचो॑ जुजुषा॒ण उ॒पाग॑हि । सोम॒ त्वं नो॑ वृ॒धे भ॑व ॥१०॥२०॥

भा०—हे ( सोम ) प्रभो ! ( इमं यज्ञम् ) इस यज्ञ, उपासना कर्म को और (इदं वचः) इस स्तुति-वचन को तू ( जुजुषाणः ) स्वीकार करता हुआ ( नः ) हमें ( उपगहि ) प्राप्त हो। हे राजन् ! तू ( इमं यज्ञम् ) इस रक्षाकारी प्रजापालन के कार्य को और ( इदं वचः ) इस विद्वान् के धर्म युक्त वचन अर्थात् शास्त्र को (जुजुषाणः) सेवन या प्रेम से पालन करता हुआ ( उप आगहि ) हम प्रजाजनों को प्राप्त हो। ( त्वं ) तू ( नः) हमारे वृधे ) बल, ज्ञान और सुख की वृद्धि के लिये ( भव ) हो। (२) शरीर में शुक्र देह में जीवन धारण रूप यज्ञ और (वचः) विद्याभ्यास के करने में उप युक्त हो। शरीर की वृद्धि करे। ओषधिरस नाना अन्य रसों के मिश्रण को प्राप्त हो, शास्त्र प्रोक्त गुण को धारण करे। शरीर की वृद्धि करे । इति विंशो वर्गः ॥

सोम॑ गी॒र्भिष्ट्वा॑ व॒यं व॒र्धया॑मो वचो॒विदः॑ । सु॒मृ॒ळी॒को न॒ आ वि॑श ॥११॥

भा०—हे ( सोम ) सकल जगत् के उत्पादक परमेश्वर ! ( वयम् ) हम ( वचोविदः ) स्तुतिवचन कहने में चतुर, वाग्मी पुरुष (त्वा) तुझको ( गीर्भिः ) वाणियों से ( वर्धयामः ) बढ़ावें । तेरी महिमा को बढ़ावें । तू ( नः ) हमें ( सुमृळीकः ) उत्तम सुखप्रद होकर ( आविश ) प्राप्त हो। ( २ ) हे ( सोम ) सावित्री वेद-माता के गर्भ से उत्पन्न होने वाले !

शिष्य जन ! (वयं वचोविदः) विद्या युक्त वाणियों, प्रवचनों को जानने हारे होकर ( त्वां ) तुझको (गीर्भिः) उत्तम ज्ञानमय वाणियों से ( वर्धयामः) बढ़ावें, तुझे अधिक ज्ञानवान् करें, तू (सुमृळीकः) गुरुजनों का उत्तम सुख-दायी, प्रिय शिष्य होकर ( नः ) हमारे पास ( आविश ) आकर रह । शिष्यगण माता सावित्री के गर्भ तथा आश्रय में प्रविष्ट हो । स्तुतिकर्त्ता विद्वान् जन राजा सोम को उपदेश देकर ज्ञानवान् करें और वह प्रजा में सुखकारी होकर रहे ।

गयस्फानो अमीवहा वसुवित्पुष्टिवर्धनः । सुमित्रः सोम नो भव ॥१२॥

भा०—हे ( सोम ) ऐश्वर्यवन् ! प्रभो ! तू ( गयस्फानः ) ऐश्वर्यों और पशुओं को बढ़ाने वाला, ( अमीवहा ) रोगों के समान दुःखदायी कारणों को नाश करने हारा, ( वसुवित् ) राष्ट्र में बसने वाले प्रजाजनों को तथा ऐश्वर्यों को लाभ कराने वाला, ( पुष्टिवर्धनः ) गौ, अन्न आदि पुष्टिकारक समृद्धि को बढ़ाने हारा और ( नः ) हमारा ( सुमित्रः ) उत्तम मित्र ( भव ) हो । ओषधि रस सोम और देह में शुक्र ( गयस्फानः ) प्राणों और अपत्यों की वृद्धि करने हारा, रोगनाशक, जीवन और देह में इन्द्रिय शक्तियों को प्राप्त कराने वाला, पुष्टिकारक और उत्तम रीति से मृत्यु-कष्ट से बचाने हारा हो । शिष्य और पुत्रजन ( गयस्फानः ) ज्ञान और सन्तति का बढ़ाने हारा, कष्टों को दूर करने हारा, धनप्रापक, पोषक अन्नादि का बढ़ाने हारा गुरुजनों के प्रति उत्तम स्नेही मित्र होकर रहे ।

गयः इत्यपत्य नाम, धननाम, गृहनाम च ( निघ० ) । तद् यद् गच्छति तस्माद् गयः । एष ह वै सोमः सर्वान् लोकान् गच्छति । गो० ५०।५।१४॥ प्राणा वै गयाः । श० १४ । ८ । १५ । ७ ॥ गवां नःस्फावयिता प्रतारयितै धीत्याह । ऐ० १ । १३ ॥

सोम रारन्धि नो हृदि गावो न यवसेष्वा । मर्य इव स्व ओक्ये ॥१३॥

भा०—( यवसेषु ) खाने योग्य उत्तम घासों के बीच ( नः ) जिस

प्रकार ( गावः ) गौवें :प्रसन्न होती हैं और ( मर्यः ) पुरुष ( इव ) जिस प्रकार ( स्वे ओक्ये ) अपने घर में आनन्द प्रसन्न होता है उसी प्रकार हे ( सोम ) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! तू ( नः ) हमारे ( हृदि ) हृदय में ( रारन्धि ) रमण कर, हमारे हृदय में प्रकाशित हो । (२) शुक्रः, सोम ! ( नः हृदि रारन्धि ) हमारे हृदय में हर्ष, चित्त-प्रसाद उत्पन्न करे।

**यः सोम सख्ये तव रारणद्देव मर्त्यः । तं दक्षः सचते कविः॥१४॥**

भा०—हे ( देव ) सर्वप्रकाशक ! ( सोम ) ऐश्वर्यवन्, सर्वोत्पादक विद्याशिक्षक ! परमेश्वर ! गुरो ! विद्वन् ! ( यः ) जो ( मर्त्यः ) पुरुष ( तव ) तेरे ( सख्ये ) मित्र भाव, सत्संग में रहकर ( रारणत् ) विद्याभ्यास और स्तुति करता है वह ( दक्षः ) ज्ञानवान्, क्रियाकुशल और ( कविः ) क्रान्तदर्शी, परम विद्वान् होकर ( तं त्वां ) उस तुझ परम पुरुष को ही ( सचते ) प्राप्त होता है । (२) शुक्र पक्ष में—ब्रह्मचर्यपूर्वक विद्याभ्यास करनेवाला पुरुष विद्वान्, क्रियावान्, बुद्धिमान् होकर बल वीर्यवान् भी होता है ।

**उरुष्या णो अभिशस्तेः सोम नि पाह्यंहसः ।**
**सखा सुशेव एधि नः ॥ १५ ॥ २१ ॥**

भा०—हे ( सोम ) परमेश्वर ! राजन् ! तथा हे छात्र ! तू ( अभिशस्तेः ) निन्दा-वचन और घात-प्रतिघात करनेवाले दुष्ट पुरुष से (नः उरुष्य) हमारी रक्षा कर । और तू ( नः ) हमारा ( सखा ) मित्र और (सुशेवः) उत्तम सुखजनक हो । तू ( अंहसः ) पाप से ( नि पाहि ) हमारी रक्षा कर । इत्येकविंशो वर्गः ॥

**आ प्यायस्व समेतु ते विश्वतः सोम वृष्ण्यम् ।**
**भवा वाजस्य सङ्गथे ॥ १६ ॥**

भा०—हे ( सोम ) राजन् ! विद्वन् ! छात्र ! तू ( आप्यायस्व ) सब

प्रकार से वृद्धि को प्राप्त हो, ( ते ) तुझे ( विश्वतः ) सब तरफ़ से ( वृष्ण्यम् ) वीर्यवान् पुरुषों में होनेवाला उत्पादक बल ( सम् एतु ) प्राप्त हो। तू ( वाजस्य ) बल, ज्ञान, ऐश्वर्य और अन्नादि के ( संगथे ) प्राप्ति करने में (भव) सहायक और यत्नवान् हो। (२) परमेश्वर गुणों से महान् है उसे सब प्रकार का बल प्राप्त है। वह ऐश्वर्य के प्राप्त करने में सहायक हो।

आप्यायस्व मदिन्तम सोम विश्वेभिरंशुभिः ।
भवा नः सुश्रवस्तमः सखा वृधे ॥ १७ ॥

भा०—हे ( मदिन्तम ) अति हर्षदायक ! ( सोम ) ऐश्वर्यवन् राजन् ! विद्वन् ! परमेश्वर ! छात्र ! शरीर में शुक्र ! तू ( विश्वेभिः अंशुभिः ) अपने सर्वव्यापक ज्ञान आदि गुणों से ( आप्यायस्व ) खूब वृद्धि को प्राप्त हो। तू (सुश्रवस्तमः) उत्तम यश कीर्ति, ज्ञान और बल से युक्त होकर (नः वृधे) हमारी वृद्धि के लिये और (नः) हमारा ( सखा भव ) मित्र के समान वर्धक और पोषक हो।

सं ते पयांसि समु यन्तु वाजाः सं वृष्ण्यान्यभिमातिषाहः ।
आप्यायमानो अमृताय सोम दिवि श्रवांस्युत्तमानि धिष्व ॥१८॥

भा०—हे ( सोम ) राजन् ( अभिमातिषाहः ) चारों ओर से आक्रमण करने और प्रजा को पीड़न करने वाले, सब ओर से शस्त्रास्त्रों को फेंकने वाले, शत्रुओं को पराजित करने वाले ( ते ) तुझे ( पयांसि ) पुष्टिकारक जल और अन्न रस (सं यन्तु) अच्छे प्रकार प्राप्त हों। (वाजाः सं यन्तु) वेगवान् अश्व गण, संग्रामकारी योद्धा तथा सेना-बल ( सं यन्तु ) एक साथ मिल कर चलें। ( वृष्ण्यानि सं यन्तु ) समस्त प्रकार के प्रजा पर सुखों और शत्रुओं पर शस्त्रों को वर्षाने वाले, बलवान् पुरुषों के दल बल एक साथ, अच्छी प्रकार प्राप्त हो। तू ( अमृताय ) प्रजा और राष्ट्र के दीर्घ जीवन और स्थिरता के लिये ( आप्यायमानः ) खूब सब प्रकार से हृष्ट

पुष्ट और वृद्धि को प्राप्त होता हुआ ( धिष्व ) विद्या प्रकाश के बल पर, सूर्यवत् ज्ञानवान् पुरुषों का आश्रय लेकर ( उत्तमानि श्रवांसि ) उत्तम, सर्वश्रेष्ठ श्रवण करने योग्य ज्ञानोपदेश अन्नादि ऐश्वर्य तथा श्रवण करने योग्य यश, ख्याति को ( धिष्व ) धारण कर। हे छात्र ! तुझे उत्तम, जल, अन्न, बल, वीर्य अच्छी प्रकार प्राप्त हो। अमृतमय मोक्ष ज्ञान लिये ( दिवि ) ज्ञानवान् गुरु के आश्रय होकर उत्तम श्रवण योग्य ज्ञानों को धारण कर। परमेश्वर के पुष्टिकारक अन्न, जल, बल, वीर्य, सभी हमें प्राप्त हों। वह सदा भरपूर है। वह अमृत आनन्द के प्रदान के लिये तेजोमय नाना बलों और ज्ञानों को रखता हैं।

या ते धामा॑नि ह॒विषा॒ यज॑न्ति॒ ता ते॒ विश्वा॑ परि॒भूर॑स्तु य॒ज्ञम्।
ग॒य॒स्फान॑: प्र॒तर॑णः सु॒वीरोऽवी॑रहा॒ प्र च॑रा सोम॒ दुर्या॑न् ॥ १६ ॥

भा०—हे ( सोम ) सूर्य के समान ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! ( ते ) तेरे ( या ) जिन ( धामानि ) तेजों, लोकों, स्थानों और पदाधिकारों को (हविषा) देने योग्य कर या आदर से प्रदान या स्वीकार कर के (यज्ञम्) सब के पूजनीय, प्रजापालक ( यजन्ति ) तेरा मान आदर करते हैं ( ता ) वे ( विश्वा ) समस्त तेज और पदाधिकार या बल ( ते ) तुझे ही प्राप्त हैं। ( गयस्फानः ) धन तथा गौ आदि पशुओं का बढ़ाने वाला, ( प्रतरणः ) दुःखों से प्रजा को पार उतारने वाला, ( सुवीरः ) उत्तम वीरों से युक्त, सेनापति, ( परिभूः ) सब प्रकार से शक्ति और प्रजा का रक्षक हो। वह ( अवीरहा ) वीर पुरुषों का व्यर्थ नाश करने वाला न हो। हे राजन् ! तू ( नः ) हमारे ( दुर्यान् ) घरों को या द्वारों वाले नगरो में भी ( प्र चर ) अच्छी प्रकार आ, जा, उसी प्रकार विद्वान पुरुष हमारे घरों पर जावे आवे। (२) छात्रपक्षमें—हे छात्र ! जिन बलों और तेजों को विद्वान् जन अन्न और ज्ञान द्वारा तुझे प्रदान करते हैं वे तेरे ( यज्ञं ) अध्ययन आदि कार्य को सम्मान करते हैं। तू ज्ञान, प्राण और वेदवाणियों का वर्धक, उत्तम गुरु से

विद्या प्राप्त कर पार पहुंचने वाला, उत्तम वीर्यवान्, अपने वीर्य और प्राण गण का नाश न करने हारा होकर हमारे गृहों को भिक्षार्थ और उपदेशार्थ प्राप्त हो।

**सोमो॑ धे॒नुं सोमो॒ अर्व॑न्तमा॒शुं सोमो॑ वी॒रं क॑र्म॒ण्यं॑ ददाति।**
**सा॒द॒न्यं॑ वि॒द॒थ्यं॑ स॒भेयं॑ पितृ॒श्रव॑णं॒ यो ददा॑शदस्मै ॥ २० ॥ २२ ॥**

भा०—( यः ) जो राष्ट्र ( अस्मै ) इस राजा को पुष्ट करने के लिये (दाशत्) कर प्रदान करे उसको वह (सोमः) ऐश्वर्यवान् राजा ( धेनुम् ) दुधार गौवें, (अर्वन्तम्) वेगवान् अश्वगण, (कर्मण्यं वीरम्) कर्मकुशल वीर पुरुष, ( सादन्यम् ) गृह बसा कर रहने वाले उत्तम गृहस्थ, (विदथ्यम्) ज्ञान, सत्संग, यज्ञ, और संग्राम में कुशल तथा (सभेयं) सभा में उत्तम वक्ता, ( पितृश्रवणम् ) मां बाप के समान प्रजा की प्रार्थनाओं को हित से श्रवण करने वाले अधिकारी ( ददाति ) प्रदान करता है। इति द्वाविंशो वर्गः ॥

**अषा॑ळ्हं यु॒त्सु पृत॑नासु॒ पप्रिं॑ स्व॒र्षाम॒प्सां वृ॒जन॑स्य गो॒पाम्।**
**भ॒रे॒षु॒जां सु॑क्षि॒तिं सु॒श्रव॑सं॒ जय॑न्तं॒ त्वामनु॑ मदेम सोम ॥ २१ ॥**

भा०—हे ( सोम ) राजन्! सेनापते! ( युत्सु ) युद्धों में ( अषाळ्हम् ) शत्रु से कभी पराजित न होने वाले, ( पृतनासु पप्रिं ) संग्रामों में या सेनाओं के बल पर राष्ट्र का पालन करने वाले, ( स्वर्षाम् = स्वः-साम् ) सुखों के देने वाले तथा शत्रुओं को उपताप, पीड़ा देने वाले, ( वृजनस्य ) शत्रु के वर्जने में समर्थ बल को ( गोपाम् ) रक्षक, ( भरेषुजाम् ) राज्य के भरण पोषण करने और शत्रुओं को उखाड़ फेंकने वाले, धनाढ्य वैश्यों और बलशाली क्षत्रिय लोगों के उत्पादक अथवा संग्रामों में प्रसिद्ध, कुशल योद्धा, ( सुक्षितिम् ) उत्तम निवासस्थान और उत्तम भूमि के स्वामी, ( सुश्रवसम् ) उत्तम यशों, ज्ञानों और ऐश्वर्यों से युक्त ( जयन्तम् त्वाम् ) विजय करते हुए तेरे विजय के साथ २ ही हम भी ( अनुमदेम ) खूब प्रसन्न हों।

**त्वमिमा ओषधीः सोम विश्वास्त्वमपो अजनयस्त्वं गाः ।**
**त्वमा ततन्थोर्व१न्तरिक्षं त्वं ज्योतिषा वि तमो ववर्थ ॥ २२ ॥**

भा०—हे ( सोम ) सर्व जगत् के उत्पादक परमेश्वर ! ( त्वम् ) तू इन ( विश्वाः ) समस्त ( ओषधीः ) ओषधियों को, ( अपः ) जलों को और ( गाः ) गौ आदि पशुओं को ( अजनयः ) उत्पन्न करता है । (त्वम्) तू ( उरु अन्तरिक्षम् ) विशाल अन्तरिक्ष, या आकाश को ( आततन्थ ) विस्तृत करता है और तू ( ज्योतिषा ) प्रकाश से ( तमः ) अन्धकार को (वि ववर्थ) विविध प्रकार से दूर करता है । (२) अथवा—हे (सोम) विद्वन्! राजन् ! परमेश्वर ! तू ( ओषधीः ) ताप, प्रकाश और रोगनाशक गुणों को धारण करने वाले तेजस्वी पुरुषों, सेनाओं और उत्तम २ ओषधियों को उत्पन्न करता ( अपः ) जलों, आप्तजनों और उत्तम कर्मों प्राणों और ज्ञानों को प्रकट करता है, ( गाः ) इन्द्रियों, वेदवाणियों पृथिवियों तथा जंगम जीवों और गतिमान् लोकों को उत्पन्न करता है । हे राजन् ! तू अपने (अन्तरिक्षम् ) विशाल राष्ट्र को जिसके बीच प्रजाएं बसें फैला, और ज्ञान प्रकाश से ( तमः ) खेद, दुःखों और क्लेशों को दूर कर ।

**देवेन नो मनसा देव सोम रायो भागं सहसावन्नभि युध्य ।**
**मा त्वा तनदीशिषे वीर्यस्योभयेभ्यः प्र चिकित्सा गविष्टौ ।२३।२३॥**

भा०—हे ( देव ) विजय की कामना करने हारे ! हे ( सोम ) सबके आज्ञापक ! ऐश्वर्यवन् ! हे ( सहसावन् ) बलवन् ! तू ( नः ) हमारे ( रायः ) ऐश्वर्य के ( भागम् ) सेवन तथा प्राप्त करने योग्य अंश को उद्देश्य करके (मनसा) विचार, ज्ञान तथा शत्रु को स्तम्भन कर लेने में समर्थ, दृढ़ बल से ( अभि युध्य ) मुक़ाबले पर लड़, शत्रु पर खूब प्रहार कर । वह शत्रु ( त्वा ) तुझे ( मा तनत् ) पीड़ित न कर सके, तुझ पर बल न जमा सके । तू ( ईशिषे ) हमारे समस्त ऐश्वर्य का स्वामी है । तू (गविष्टौ) पृथिवी, पशु सम्पत्ति, इन्द्रियों से भोग्य पदार्थों और ज्ञान और वाणी

प्रकाश की नाना कामनाओं को प्राप्त कराने वाले संग्राम या प्रति स्पर्द्धा में ( प्रचिकित्स ) खूब अच्छी प्रकार विचार करके बाधक शत्रुओं और रोगादि दुःख कारणों को दूर कर । इति त्रयोविंशो वर्गः ॥

[ ९२ ]

गोतमो राहूगणपुत्र ऋषिः ॥ उषा देवता ॥ छन्दः—१, २ निचृज्जगती । ३ जगती । ४ विराड् जगती । ५, ७, १२ विराड् त्रिष्टुप् । ६, १२ निचृत्त्रिष्टुप् । ८, ९ त्रिष्टुप् । ११ भुरिक्पंक्तिः । १३ निचृत्परोष्णिक् । १४, १५ विराट्परोष्णिक् । १६, १७, १८ उष्णिक् ॥

**एता उ त्या उषसः केतुमक्रत पूर्वे अर्धे रजसो भानुमञ्जते । निष्कृण्वाना आयुधानीव धृष्णवः प्रति गावोऽरुषीर्यन्ति मातरः॥१॥**

भा०—( उषसः ) प्रभात वेलाएं जिस प्रकार ( केतुम् ) सब जगत् का ज्ञान कराने वाले प्रकाश को ( अक्रत ) उत्पन्न करती हैं और (रजसः) इस महान् लोक के ( पूर्वे अर्धे ) पहले या पूर्व दिशा के आधे भाग में ( भानुम् ) सूर्य के प्रकाश को ( अञ्जते ) प्रकट करती हैं । ( धृष्णवः ) शत्रुओं का पराजय करने में समर्थ, प्रगल्भ, वीर, योद्धा जन जिस प्रकार (आयुधानि इव ) अपने हथियारों को अच्छी प्रकार चमका लेते हैं उसी प्रकार सूर्य को उत्पन्न करने वाली या प्राणियों के जीवनों को मापने वाली उषाएं ( गावः ) नित्य गमनशील, या किरणें ( अरुषीः ) लाल वर्ण वाली होकर ( निष्कृण्वानाः ) दिनों को प्रकाशित करती हुई (प्रतियन्ति ) भूमि के प्रत्येक स्थान पर जाती हैं । उसी प्रकार ( एता उ त्याः ) ये वे ( उषसः ) उषा के समान जीवन के पूर्ववयस में वर्त्तमान ( उषसः ) प्रातः सूर्य प्रभाओं के समान मनोहर एवं (उषसः) अपनी स्वच्छ शुद्ध भावनाओं से पापों और पापियों को दाह उत्पन्न करने वाली, एवं, पतिकामना से युक्त होकर स्त्रियें (रजसः) अपने राजस भाव से युक्त जीवन अर्थात् यौवन

के ( पूर्वे अर्धे ) पहले आधे भाग में, या पूर्ण समृद्ध काल में ( भानुम् ) तेजस्वी पुत्र को ( अञ्जते ) प्रकट करें, उत्पन्न करें । ( धृष्णवः आयुधानि इव निःकृण्वानाः प्रतियन्ति ) प्रगल्भ वीर जन जिस प्रकार अपने आयुधों को चमचमाते हुए आगे बढ़ते हैं और ( गावः ) गौवें जिस प्रकार ( निः-कृण्वानाः ) समस्त सुखैश्वर्यों से गृहों को सुशोभित करती हुई आती हैं उसी प्रकार ( मातरः ) पुत्रों की उत्पादक माताएं ( निष्कृण्वानाः ) अपने गृहों को अच्छी प्रकार सुशोभित करती हुई, ( अरुषीः ) क्रोध आदि से रहित सौम्य स्वभाव होकर ( प्रति यन्ति ) रहें । इसी प्रकार धर्षणशील सेनाएं भी, शत्रु को भून देने से 'उषस्' हैं वे अपने पूर्ण सामर्थ्य में झण्डे को उठातीं और प्रतापी सेनापति का तेज प्रकट करती हैं । वे गमनशील होकर तेजस्विनी, राष्ट्र निर्मात्री या रक्षक होकर आगे मुकाबले पर बढ़ें ।

उद॑पप्तन्नरु॒णा भा॒नवो॑ वृथा॑ स्वा॒युजो॒ अरु॑षी॒र्गा अ॑युक्षत ।
अक्र॑न्नु॒षासो॑ व॒युना॑नि पू॒र्वथा॒ रुश॑न्तं भा॒नुमरु॑षीरशिश्रयुः ॥ २ ॥

भा०—( अरुणाः ) अरुण वर्ण के, लाल रंग के ( भानवः ) किरण जिस प्रकार (वृथा) आपसे आप अनायास ( उत्-अपप्तन् ) उदय को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार तेजस्वी पुरुष ( अरुणाः ) नव उदित सूर्य के समान अनुराग राग से रञ्जित होकर ( उत् अपप्तन् ) उदय को प्राप्त होते हैं । और ( स्वायुजः ) उत्तम रीति से स्वयं आजुतने वाले, सुशील ( गाः ) बैलों को जैसे कोई रथवान् (अयुक्षत) रथ में जोड़ता है उसी प्रकार ( सु-आयुजः ) उत्तम पुरुषों के साथ योग चाहने वाली ( गाः ) गमनयोग्य, सुभग, ( अरुषीः ) दीप्तिमती, कन्याओं को विद्वान् लोग ( अयुक्षत ) योग्य वरसे संयुक्त करें । ( उषासः ) दिन के प्रारम्भ भाग की प्रभात वेलाएं जिस प्रकार ( पूर्वथा ) सबसे पूर्व ( वयुनानि ) ज्ञान ( अक्रन् ) प्रकट करती हैं उसी प्रकार ( उषासः ) यौवन या जीवन के पूर्व वयस में विद्यमान कन्याएं भी ( पूर्वथा ) अपने पूर्व काल में ( वयुनानि ) नाना

प्रकार के ज्ञानों का ( अक्रन् ) सम्पादन करें। वे भी पढ़ें और ज्ञान लाभ करें। और विद्या पढ़ चुकने पर ( अरुषीः भानुम् ) जिस प्रकार तेजस्विनी उषाएं सूर्य का आश्रय लेती हैं उसी प्रकार ( अरुषीः ) अति तेजस्विनी वा रोषरहित, सौम्यस्वभाव वाली कन्याएं ( भानुम् ) तेजस्वी पुरुष का (अशि-श्रयुः ) आश्रय करें। उसके पृथिवी पर प्रथम उषा का आगमन तदनन्तर सूर्य का वरण, इसी प्रकार वेदि में प्रथम कन्या का आगमन तब वर का वरण, यह भी व्यंग्योक्त है। (२) उदयशील पुरुष सूर्य के समान उदय होते हैं। उत्तम आज्ञा में नियुक्त सेनाएं उनके नीचे रहती हैं। वे शत्रु तापक सेनाएं नाना युद्ध कला का ज्ञान करती हैं तब वे सूर्यवत् तेजस्वी राजा का आश्रय लेती हैं।

अर्चन्ति नारीरपसो न विष्टिभिः समानेन योजनेना परावतः।
इषं वहन्तीः सुकृते सुदानवे विश्वेदह यजमानाय सुन्वते ॥ ३ ॥

भा०—( अपसः ) कर्म करने वाले अधीन भृत्यों को जिस प्रकार ( विष्टिभिः ) वेतनों द्वारा ( अर्चन्ति ) अपने वश करते या उनका सत्कार करते हैं उसी प्रकार ( समानेन योजनेन ) समान योग द्वारा अर्थात् गुण, शरीर, बल और विद्या आदि में समान पुरुष के साथ संयुक्त करने से ही ( परावतः नारीः ) दूर देश से प्राप्त करने योग्य स्त्रियों का ( अर्चन्ति ) सत्कार करें। कन्याओं को दूर देश में पुरुषों से योग्य जोड़ा मिलाकर विवाह देना ही कन्याओं का सत्कार करना है। और ( सुकृते ) उत्तम क्रियाकुशल, सदाचारी, ( सुदानवे ) उत्तम दानशील या उत्तम रक्षक, ( सुन्वते यजमानाय ) ओषधि आदि रस का सेवन करने वाले या उत्तम रीति से निषेक करने हारे सुसंगत पति के लिये अपने ( इषं ) समस्त कामना और अन्नादि सुख सम्पदा को ( वहन्ती ) प्राप्त कराने वाली हों। उनका ही सब लोग आदर करते हैं।

अधि पेशांसि वपते नृतूरिवापोर्णुते वक्ष उस्रेव बर्जहम्।
ज्योतिर्विश्वस्मै भुवनाय कृण्वती गावो न व्रजं व्यु१षा आवर्तमः॥४॥

भा०—( नृतूः इव ) नाऊ जिस प्रकार नाना केशों को काट देता है उसी प्रकार (उषा पेशांसि अधिवपते) उषा नाना कृष्ण रूप अन्धकारों को काट डालती हैं। अथवा—(नृतूः इव) नर्त्तक जिस प्रकार नाना रूप बदल लेता है उसी प्रकार ( उषाः ) वह प्रभात बेला भी ( पेशांसि ) नाना प्रकार के रूपों को (अधि वपते) धारण करती हैं। अर्थात् हलकी प्रकाश रेखा से सूर्योदय तक उषा के नाना प्रकार के रूप बदलते हैं। उसी प्रकार नर्त्तकी के समान ही ( उषाः ) पूर्व वयस में वर्त्तमान कन्या, या योग्य पुरुष की कामना करने वाली, कान्तिमयी नववधू भी ( पेशांसि ) सुवर्ण आदि के बने नाना आभूषणों को (अधि वपते ) धारण करे। ( उस्रा बर्जहम् इव ) उदय होने वाली उषा जिस प्रकार अन्धकार निवारक प्रकाश के विनाशक घोर अन्धकार को ( अप ऊर्णुते ) दूर कर देती है और जिस प्रकार ( उस्रा ) गाय ( बर्जहम् ) दूध देने वाले थन भाग को ( अप ऊर्णुते ) विशाल रूप में प्रकट करती है उसी प्रकार नवयुवती भी ( वक्षः ) वक्षःस्थल को ( अप-ऊर्णुते ) प्रकट करती है अर्थात् छाती के उभार को प्रकट करती है उसके प्रकट होने पर ही उचित विवाह योग्य काल है। उस समय (विश्वस्मै भुवनाय) सब लोकों के हितार्थ ( ज्योतिः कृण्वती ) प्रकाश प्रदान करती हुई उषा के समान वधू भी अपने गुणों का प्रकाश करे। ( गावः न व्रजं ) गौवें जिस प्रकार स्वयं अपने बाड़े में अनायास प्राप्त हो जाती हैं उसी प्रकार नव-युवतियें भी ( व्रजं ) प्राप्त करने योग्य पति को अपने सहज प्रेम से आश्रय रूप में प्राप्त करें। और ( उषाः ) प्रभात की प्रभाएं जिस प्रकार ( तमः वि आवः ) अन्धकार को दूर कर देती हैं उसी प्रकार वधू भी ( तमः ) खेद, दुःख और गृह के सूने पन को ( वि आवः ) विविध उपायों से दूर कर घर को उजियाला करें।

प्रत्यर्ची रुशदस्या अदर्शि वि तिष्ठते बाधते कृष्णमभ्वम्।
स्वरुं न पेशो विदथेष्वञ्जञ्चित्रं दिवो दुहिता भानुमश्रेत् ॥५॥२४॥

भा०—( अस्याः ) इस उषा की ( रुशत् ) देदीप्यमान कान्ति ( प्रति अदर्शि ) प्रत्येक स्थान पर दिखाई देती है और वह ( वि तिष्ठते ) विविध दिशाओं में फैल जाती हैं। और वह ( अभ्वम् ) नेत्रादि के सामर्थ्य को विनाश करदेने वाले ( कृष्णम् ) काले अन्धकार को ( वि बाधते ) दूर कर देती है। उसी प्रकार ( अस्याः ) इस कन्या की ( अर्चिः ) आदर सत्कार से देखने योग्य उत्तम गुण राशि ( प्रति अदर्शि ) प्रत्येक को दीखने लगती है। वह कीर्ति ( वि तिष्ठते ) सब देशों में फैलजाती है। वह गुण राशि ( अभ्वम् कृष्णं बाधते ) बड़े भारी कलंक को भी मिटा देता है। जिस प्रकार ( स्वरुम् ) प्रकाशमान् सूर्य को उषा प्रकट कर देती है उसी प्रकार ( विदथेषु ) ज्ञान सत्संगों में जहां अनेक विद्वान् एकत्र हों वहां ही ( पेशः न स्वरुं ) अपने रूप के समान ही ज्ञान और अध्ययन और वाक् पाटव को भी कन्या ( अञ्जन् ) प्रकट करे। तब ( दिवः दुहिता ) उषा जिस प्रकार ( भानुम् अश्रेत् ) सूर्य को प्रकाश से पूर्ण कर देने वाली आकाश का आश्रय लेती है उसी प्रकार ( दिवः दुहिता ) कामना युक्त पति के मनोरथों को पूर्ण करने वाली अथवा ( दिवः दुहिता ) ज्ञानी पुरुष की कन्या ( भानुम् अश्रेत् ) दीप्तिमान् तेजस्वी, ब्रह्मचारी पुरुष का आश्रय ग्रहण करे। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

अतारिष्म तमसस्पारमस्योषा उच्छन्ती वयुना कृणोति।
श्रिये छन्दो न स्मयते विभाती सुप्रतीका सौमनसायाजीगः ॥६॥

भा०—( उषा ) प्रभात वेला जिस प्रकार ( उच्छन्ती ) प्रकट होती हुई और अन्धकार को दूर करती हुई ( वयुना कृणोति ) समस्त पदार्थों का ज्ञान कराती है, उसी प्रकार कमनीय कन्या प्रथम वयस में वर्त्तमान रहकर ( उच्छन्ती ) बाल भाव को दूर करती हुई ( वयुना कृणोति )

नाना ज्ञानों व कर्मों को सम्पादन करती है। वह ( छन्दः न ) खुश करने वाले अनुकूल प्रेमी के समान होकर ( श्रिये ) शोभा और सौभाग्य के लिये ( स्मयते ) ईषत् हास करे और ( विभाती ) विविध गुणों से प्रकाशित होती हुई ( सुप्रतीका ) सुमुखी होकर ( सौमनसाय ) शुभ-चित्तता, उत्तम हृदय या सौहार्द की वृद्धि के लिये (अजीगः) वचन कहे। इस प्रकार हम गृहस्थजन ( अस्य तमसः ) इस शोक, दुःख आदि रूप अन्धकार के ( पारम् अतारिष्म ) पार उतरें। अथवा—वह कन्या ( छन्दः न श्रिये ) वेद के समान ज्ञान का प्रकाश करने या आच्छादन करने वाले गृह के समान ही सम्पत्ति की वृद्धि के लिये हो। वह (विभाती स्मयते ) इत्यादि पूर्ववत्। (२) उषापक्ष में—(छन्दः न स्मयते) उषा वेद वाणी के समान शोभा के लिये प्रकाश करती, सुन्दर मुख, रूप या प्रतीति प्रकट करनेवाली होकर उत्तम हृदय के भावों को उत्पन्न करने के लिये ( अजीगः ) अज्ञान अन्धकार को ग्रसती है। इस प्रकार हम रात्रि के अन्धकार से पार हों। ( ३ ) इसी प्रकार विशोका या ज्योतिष्मती प्रज्ञा का उदय होने पर भी योगी को प्रज्ञातिरेक अर्थात् विशेष पारमार्थिक ज्ञान उत्पन्न होते हैं हृदय में प्रकाश हो जाता है, वह संसार के दुःखान्धकार से पार हो जाता है।

**भास्वती नेत्री सूनृतानां दिवः स्तवे दुहिता गोतमेभिः।**
**प्रजावतो नृवतो अश्वबुध्यानुषो गोअग्राँ उप मासि वाजान्॥७॥**

भा०—जिस प्रकार 'उषा', प्रभात की सूर्यप्रभा (दिवः दुहिता) आकाश को और पृथिवी को प्रकाश से पूर्ण करनेवाली, ( भास्वती ) नाना प्रकाशों से युक्त होकर ( सूनृतानां नेत्री ) उत्तम विचारक योगी जनों के हृदयों में उत्तम २ सत्य ज्ञानों, स्तुति-वचनों तथा वेद-वाणियों प्राप्त कराती है उसी प्रकार योगी के साधना काल में उत्पन्न हुई ज्योतिष्मती प्रज्ञा भी ( दिवः दुहिता ) ज्ञान प्रकाश का दोहन करने वाली, ( सुनृतानां ) उत्तम सत्य

ज्ञानों और वाणियों को ( नेत्री ) प्रकट करने वाली ( भास्वती ) प्रकाश-मयी, ज्योतिष्मती होकर ( गोतमेभिः ) विद्वान्, वाणीकुशल पुरुषों द्वारा ( स्तवे ) स्तुति की जाती है। इसी प्रकार कमनीया कन्या भी ( सूनृतानां नेत्री ) उत्तम वचन और वाणियों की बोलने वाली, ( भास्वती ) गुणों से प्रकाशित होती हुई ( नेत्री ) नायिका सर्वश्रेष्ठ महिला रूप ( गोतमेभिः स्तवे ) श्रेष्ठ पुरुषों द्वारा स्तुति की जाती है, नाना कविजन भी उसका यश गाते हैं। हे ( उषः ) प्रभात वेला के समान कान्ति और कमनीय गुणों से युक्त कन्ये ! तू ( प्रजावतः ) उत्तम प्रजाओं से युक्त, ( नृवतः ) भृत्यादि कर्म-कर पुरुषों से युक्त ( अश्वबुध्यान् ) अश्वादि विजय के साधन रूप बलवान् पशुओं के दृढ़ आश्रय वाले ( गो-अग्रान् ) गौ आदि पशु और भूमि आदि मुख्य सम्पत्ति से युक्त ( वाजान् ) ऐश्वर्यों को (उपमासि) प्राप्त करा। स्त्री द्वारा घर बसने पर पुत्र भृत्य, अश्व हाथी, गौ भूमि आदि समस्त ऐश्वर्य बढ़ें। और उनका नाश न हो। उषा के पक्ष में—हे उषः ! तू ( गो-अग्रान् वाजान् ) किरणों से युक्त प्रकाशों को देती है। सेना आदि भी शत्रु पीड़क होने से 'उषा' है। वह भी राष्ट्र, प्रजा, नायक, चतुरंग सेना गवादि तथा भूमि से युक्त ऐश्वर्यों को प्राप्त करावे।

उषस्तमश्यां यशसं सुवीरं दासप्रवर्गं रयिमश्वबुध्यम्।
सुदंससा श्रवसा या विभासि वाजप्रसूता सुभगे बृहन्तम् ॥ ८ ॥

भा०—जिस प्रकार उषा (वाजप्रसूता) सूर्य के गमनागमन से उत्पन्न होती है वह स्वयं ज्ञान को उत्पन्न करने वाली है और ( सुदंससा ) उत्तम रीति से अन्धकार-नाशक प्रकाश से चमकती है उसी प्रकार ( या ) जो तू ( वाजप्रसूता ) ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने वाली ( सुदंससा ) उत्तम कर्म और ( श्रवसा ) उत्तम ज्ञान से ( विभासि ) शोभित है, उस तेरे द्वारा हे ( उषः ) प्रभात वेला की सूर्य प्रभा के समान कान्तिमति ! एवं योग्य अनुरूप पति की कामना करने हारी स्त्रि ! हे ( सुभगे ) उत्तम ऐश्वर्यवति

सौभाग्यवति ! मैं पुरुष ( तम् ) उस ( यशसम् ) यशोजनक (सुवीरम्) उत्तम वीर पुरुषों से युक्त, (दासप्रवर्गम् ) दास, भृत्यजनों के उत्तम आज्ञाकारी वर्गों वाले, अथवा शत्रु नाशक वीर सैनिकों के उत्तम दलों सहित ( अश्वबुध्यम् ) अश्वारोही सेनाओं को सधाने वाले या उसके आश्रय पर स्थापित ( बृहन्तम् ) बड़े भारी ( रयिम् ) ऐश्वर्य, धन, कोश को ( अश्याम् ) प्राप्त करूं और भोग करूं । अध्यात्म में—यशस् = आत्मा, वीर, प्राण, अश्वबुध्य = व्यापक परमात्मा से बोध करने हारा, श्रवः = ज्ञान, वात, ज्ञान ।

**विश्वानि देवी भुवनाभिचक्ष्या प्रतीची चक्षुरुर्विया वि भाति ।**
**विश्वं जीवं चरसे बोधयन्ती विश्वस्य वाचमविदन्मनायोः॥ ६ ॥**

भा०—( देवी ) प्रकाशमान सूर्य की प्रभा जिस प्रकार ( विश्वानि भुवना अभिचक्ष्य ) समस्त लोकों को प्रकाशित करके ( प्रतीची ) पूर्व से पश्चिम को जाती हुई ( उर्विया चक्षुः ) बड़े भारी प्रकाशक तेज या सूर्य से ( विभाति ) विशेष रूप से प्रकाशित होती हैं । और ( विश्वं जीवं ) समस्त प्राणिमात्र को ( चरसे ) चलने फिरने और कार्य्य व्यवहार करने के लिये ( बोधयन्ती ) जगाती हुई ( विश्वस्य मनायोः ) समस्त चेतनावान्, मान या ज्ञान के इच्छुक पुरुष के ( वाचम् अविदत् ) वाणी को प्राप्त करती है उसी प्रकार ( देवी ) उत्तम गुणों से युक्त स्त्री ( विश्वानि भुवनानि ) समस्त लोकों, पदार्थों को ( उर्विया ) विशाल ज्ञान से युक्त ( चक्षुः ) चक्षु द्वारा ( अभिचक्ष्य ) साक्षात् करके (प्रतीची) साक्षात् सब के सन्मुख ( विभाति ) विशेष रूप से शोभा को प्राप्त होती है । वह ( विश्वं जीवं ) समस्त प्राणिमात्र को ( चरसे ) सत् कर्म के आचरण करने के लिये ( बोधयन्ती ) ज्ञान प्रदान करती हुई ( विश्वस्य मनायोः ) मान सत्कार या ज्ञान के इच्छुक समस्त विद्वान् मनुष्यों के ( वाचम् ) वाणी को ( अविदत् ) प्राप्त करे, विद्वानों का उपदेश ग्रहण किया करे ।

अध्यात्म में—वह ज्योतिष्मती ( प्रतीची ) साक्षात् आत्म तत्वमयी चिति शक्ति ज्ञानप्रकाशक चक्षु होकर प्रकाशित होती है। उत्तम पद को प्राप्त होने के लिये जीव को प्रबुद्ध, ज्ञानवान् करती है और मननशील स्तुतिकर्त्ता की या ज्ञानमय परमेश्वर की वेदवाणी को प्राप्त करती है।

**पुनः पुनर्जायमाना पुराणी समानं वर्णमभि शुम्भमाना।**
**श्वघ्नीव कृत्नुर्विज आमिनाना मर्तस्य देवी जरयन्त्यायुः॥१०॥२४॥**

भा०—जिस प्रकार ( पुनः पुनः जायमाना ) प्रतिदिन प्रकट होने वाली, ( पुराणी ) प्रवाह से नित्य उषा ( समानं वर्णम् अभि शुम्भमाना ) एक समान प्रकाशित रूप प्रकट करती है और ( श्वघ्नी इव ) कुत्तों की सहायता से मृगों को मारने वाली व्याधिनी या कुक्कुर आदि पशुओं को मारने वाली भेड़ियन के समान ( कृत्नुः ) पोरु २ काटने वाली या बाज पक्षिणी के समान ( विजः ) भय से व्यथित प्राणियों को ( आमिनाना ) काल धर्म से विनाश करती हुई ( मर्त्तस्य आयुः जरयन्ती ) मरणधर्मा प्राणी की आयु को शेष कर देती हैं उसी प्रकार ( देवी ) उत्तम गुणों से प्रकाशित होने वाली सौभाग्यवती स्त्री, ( पुनः पुनः जायमाना ) बार २ उत्तम रूपों में प्रकट होने वाली, या ( पुनः पुनः जायमाना ) बार २ पुत्र प्रसव करती हुई और ( समानं वर्णम् अभि शुम्भमाना ) अपने समान वर्ण, रूप गुणों से युक्त पुरुष को या प्रसव द्वारा पुत्र को ( अभि ) प्राप्त करके (शुम्भमाना) शोभा को प्राप्त होती हुई ( विजः ) उद्वेग करने वाले भयजनक बाधक कारणों और शत्रुओं को ( श्वघ्नी इव विजः कृत्नुः ) पक्षी गणों को वृकी या व्याघ्री के समान (आमिनाना) विनाश करती हुई (पुराणी) पुर, अर्थात् अन्तःपुर में जीवन स्वरूप होकर या ( पुराणी ) स्वयं वृद्ध होकर ( मर्त्तस्य आयुः जरयन्ती ) और अपने साथ अपने संगी पति की आयु को भी वृद्धावस्था तक प्राप्त कराती हुई जीवन व्यतीत करे।

व्यूर्ण्वती दिवो अन्ताँ अबोध्यप स्वसारं सनुतर्युयोति ।
प्रमिनती मनुष्या युगानि योषा जारस्य चक्षसा वि भाति ॥११॥

भा०—( उषा ) सूर्य की प्रातःकालिक प्रभा जिस प्रकार ( वि ऊर्ण्वती ) रात्रि के अन्धकार को दूर करती हुई ( दिवः अन्तान् अबोधि ) आकाश के पर्यन्त अर्थात् दूर २ तक के भागों को भी जगा देती या प्रकाशित कर देती है। ( सनुतः ) निरन्तर, नित्य ( स्वसारम् ) प्रकाश के आगमन से आप से आप भाग जाने वाली या अपनी बड़ी भगिनी के समान साथ रहने वाली रात्रि को ( अप युयोति ) दूर कर देती है और वह ( मनुष्या युगानि ) मनुष्यों के आयु के वर्षों को या स्त्री पुरुष आदि के बने जोड़ों को काल धर्म से ( प्र मिनती ) नाश करती हुई ( जारस्य चक्षसा योषा ) अपने प्रेमी पुरुष के दर्शन से स्त्री के समान मानो प्रसन्न होकर ( जारस्य ) रात्रि को या उषाः-काल को अपने उदय से विनाश कर देने वाले सूर्य के ( चक्षसा ) दर्शन से वह ( विभाति ) विशेष शोभा से खिल उठती है। उसी प्रकार स्त्री ( वि ऊर्ण्वती ) दोषों को दूर करती हुई अपने गुणों से ( दिवः ) ज्ञान प्रकाश के ( अन्तान् ) परली सीमाओं को ( अबोधि ) जानले अर्थात् उत्तम कोटि के शास्त्रों का भी ज्ञान करे। ( स्वसारं ) अपनी भगिनी को ( सनुतः ) निरन्तर, सदा, ( अप युयोति ) अपने से दूर देश में सम्बन्ध करावे। अर्थात् एक ही घर में कई बहनें न विवाही जावें। नहीं तो कलह हो जाने से परस्पर भगिनी-जन का स्नेह भी नाश हो जाता है। वह स्त्री ( मनुष्या युगानि प्र मिनती ) मनुष्य के आयु के वर्षों को व्यतीत करती हुई ( जारस्य ) विद्वान् धर्मोपदेष्टा पुरुष के ( चक्षसा ) दर्शन, ज्ञान, सत्संग या कथनोपकथनों द्वारा ( विभाति ) विशेष शोभा को प्राप्त हो। अथवा—( जारस्य चक्षसा ) अपने आयु को वृद्धावस्था तक पहुंचा देने वाले अपने प्रिय पति के दर्शन या उपदेश से विशेष शोभा को प्राप्त हो।

पशून्न चित्रा सुभगा प्रथाना सिन्धुर्न क्षोद उर्विया व्यश्वैत्।
अमिनती दैव्यानि व्रतानि सूर्यस्य चेति रश्मिभिर्दृशाना ॥ १२ ॥

भा०—जिस प्रकार (चित्रा) संग्रहशील वैश्य प्रजा ( पशून् ) पशुओं को प्राप्त होकर वृद्धि को प्राप्त होती है और जिस प्रकार (सिन्धुः क्षोदः न) समुद्र या वेगवती नदी जल को प्राप्त होकर बढ़ती, या फैलती है उसी प्रकार (उर्विया) अति अधिक तेज को प्राप्त होकर ( सुभगा ) उत्तम ऐश्वर्यवती ( चित्रा ) सूर्य की प्रातः-प्रभा ( प्रथाना ) वृद्धि को प्राप्त होती हुई ( अश्वैत् ) सर्वत्र फैलती है। इसी प्रकार ( चित्रा ) सञ्चयशील एवं गुणों से आदर करने योग्य ( सुभगा ) उत्तम सौभाग्यवती स्त्री ( उर्विया ) बड़े डील तथा अधिक ज्ञान और तेज से ( प्रथाना ) बढ़ती हुई अपने ऐश्वर्य यश को बढ़ाती हुई ( अश्वैत् ) सर्वत्र प्रसिद्ध हो जाती है। जिस प्रकार प्रातःप्रभा ( दैव्यानि व्रतानि अमिनती ) देव, परमेश्वर सम्बन्धी उपासना आदि नियमों को न विनाश होने देती हुई, भक्त, व्रतपालक जनों से पालन कराती हुई ( सूर्यस्य रश्मिभिः ) सूर्य की किरणों सहित ( दृशाना ) देखी जाती और उनसे ही ( चेति ) जानी जाती है, एवं सूर्य-किरणों से ही अन्यों को जगत् के पदार्थ दिखाती और उनका ज्ञान कराती है, उसी प्रकार उत्तम महिला भी ( दैव्यानि ) देव, परमेश्वरसम्बन्धी, संध्या उपासना, अग्नि-होत्रादि और देव, अर्थात् विद्वानों सम्बन्धी बलि-वैश्वदेव और आतिथ्य सत्कार तथा देव अर्थात् अग्नि, जल, पृथिवी आदि पञ्चभूत तथा शरीरस्थ इन्द्रियों के हितकारी परोपकारक जगत् के हित तथा शरीर के हित के स्नानादि ( व्रतानि ) नित्य कृत्यों को (अमिनती) कभी न विनाश करती हुई उनको करने से कभी न चूकती हुई (दैव्यानि व्रतानि) देव अर्थात् अपने प्रिय इच्छुक पति के कार्यों की हानि न करती हुई ( सूर्यस्य ) सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष के ( रश्मिभिः ) ज्ञान प्रकाशों से ( दृशाना ) तत्वों का दर्शन करती हुई और औरों को दिखाती हुई ( चेति ) ज्ञान प्राप्त

करे और करावे। अथवा—वह स्त्री (चित्रा पशून् प्रथाना उर्विया व्यश्वैत्) महानदी जिस प्रकार जल राशि का विस्तार करके बड़ी हो जाती है उसी प्रकार सञ्चयशील होकर पशुओं को बढ़ाती हुई बहुत अधिक विविध प्रकार से समृद्ध हो।

उषस्तच्चित्रमा भरास्मभ्यं वाजिनीवति ।
येन तोकं च तनयं च धामहे ॥ १३ ॥

भा०—हे ( उषः ) पति की कामना करने हारी कमनीये कन्ये ! हे ( वाजिनीवति ) ऐश्वर्य और अन्न की वृद्धि, उत्पत्ति तथा परिशोधन या परिपाक आदि करने में कुशल नववधू ! तू ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिये ( चित्रम् ) ऐसा उत्तम, संग्रह करने योग्य, धन ऐश्वर्य ( अस्मभ्यम् ) हमें ( आभर ) प्रदान कर ( येन ) जिससे हम ( तोकं तनयं च ) पुत्रों और पौत्रों का भी (धामहे) पालन पोषण करें।

उषो अद्येह गोमत्यश्वावति विभावरि ।
रेवदस्मे व्युच्छ सूनृतावति ॥ १४ ॥

भा०—उषा, प्रातः प्रभा किरणों से युक्त होने से 'गोमती' और गतिमान् या व्यापक तेजस्वी सूर्य से युक्त होने से 'अश्वावती' है। वह विशेष कान्ति से युक्त होने से 'विभावरी' है। वही भक्तों की स्तुतियों से युक्त होने के कारण 'सूनृतावती' होती है। उसी प्रकार हे ( उषः ) कान्तिमति ! पति को हृदय से चाहने वाली प्रियतमे ! कमनीये ! कान्तिसुभगे ! हे ( गोमति ) गृह में उत्तम पशु सम्पदा और देह में उत्तम इन्द्रिय शक्तियों से युक्त! हे ( अश्वावति ) अश्व आदि वेगवान् साधन, हाथी घोड़े आदि सवारी के पशुओं, तथा रथों और अश्वारोहियों की स्वमिनि! तथा भोक्ता उत्तम आत्मा से युक्त ! अथवा कल पर कार्य न छोड़ने वाली, आलस्य रहित ! हे ( विभावरि ) विशेष गुणों से प्रकाशमान, रात्रि के समान सुख से शयन आदि का सुख देने वाली ! हे ( सूनृतावति ) उत्तम ज्ञान वाणी को

बोलने हारी सुकण्ठि ! मधुरालपिनि ! तू ( इह ) इस गृहस्थ में और ( अद्य ) इस जीवन काल में ( अस्मे ) हमें ( रेवत् ) ऐश्वर्य सम्पन्न गृह सुख ( वि उच्छ ) विविध प्रकारों से प्रकट कर। अथवा–विवाह काल में 'नववधू' गवादि पशुसम्पदा से 'गोमती' और अश्वों के रथ में जुते रहने से 'अश्ववती' है वह अन्न आदि से युक्त होने से 'सूनृतावती' है।

युक्ष्वा हि वाजिनीवत्यश्वाँ अद्यारुणाँ उषः ।
अथा नो विश्वा सौभगान्या वह ॥ १५ ॥ २६ ॥

भा०—जिस प्रकार (उषः) उषा प्रातकाल के समय उत्तम ज्ञान उत्पन्न करने वाली नाना क्रियाओं से युक्त होने से 'वाजिनीवती' है वह (अरुणान् अश्वान् ) लाल घोड़ों के समान लाल वर्ण के प्रकाशों को फैलाती है, उसी प्रकार हे ( उषः ) कान्तिमती नववधू ! तू ( वाजिनीवती ) उत्तम ऐश्वर्य-जनक मङ्गल क्रियाओं को करने हारी होकर ( अरुणान् ) लाल वर्ण के, या बे रोक चलने वाले ( अश्वान् ) अश्वों को ( युक्ष्व ) रथमें लगा और ( अरुणान् ) स्नेह से युक्त अश्व के समान बलवान् पुरुषों को ( युक्ष्व ) अपने अधीन भृत्य नियुक्त कर ( अथ ) और ( नः ) हमें ( विश्वा सौभगानि ) समस्त उत्तम ऐश्वर्यों को ( आ वह ) प्राप्त करा।

अश्विना वर्तिरस्मदा गोमद्दस्रा हिरण्यवत् ।
अर्वाग्रथं समनसा नि यच्छतम् ॥ १६ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) एक दूसरे के हृदय में व्यापने वाले वर वधू ! पति पत्नी ! तुम दोनों ( दस्रा ) विरोधी अपवादों का नाश करने हारे एवं गुणों और अनुरागों से दर्शनीय ! हे ( समनसा ) समान चित्त वाले तुम दोनों ( अस्मत् ) हमारे (वर्तिः अर्वाग्) घर के सामने आकर ( गोमत् ) गोचर्म से मढ़े या तांत से बंधे ( हिरण्यवत् ) लोह, पीतल धातुओं से सजे ( रथं ) रथ को ( नि यच्छतम् ) रोको और हमारा आतिथ्य स्वीकार करो। अध्यात्म में—शरीर में प्राण और अपान दोनों ( दस्रा ) रोगों के

नाशकारी होकर इन्द्रियों और आत्म से युक्त रमण योग्य सुखकारी देह को ( अस्मद् वर्तिः अर्वाग ) हमारे वर्तमान जीवन के अनुकूल ( नियच्छतम् ) नियम में रखें।

याविृत्था श्लोकमा दिवो ज्योतिर्जनाय चक्रथुः।
आ न ऊर्जं वहतमश्विना युवम् ॥ १७ ॥

भा०—( अश्विना ) दिन रात्रि जिस प्रकार ( दिवः ज्योतिः ) सूर्य के प्रकाश को ( जनाय ) मनुष्यों के हित और सुख के लिये ( चक्रथुः ) सेवन करने योग्य बना देते हैं उसी प्रकार ( यौ ) जो आप दोनों ( दिवः-ज्योतिः श्लोकम्) तेजस्वी गुरु से प्राप्त प्रकाशक वेद वाणी रूप ज्योति का (इत्था) इस प्रकार से (जनाय) समस्त जनों के हित के लिये (चक्रथुः) उपदेश करते हो ( नः ) हमें ( युवम् ) तुम दोनों (न) हमारे कल्याण के लिये ( ऊर्ज ) उत्तम अन्न, बल और पराक्रम को ( आ वहतम् ) प्राप्त कराओ।

एह देवा मयोभुवा दस्रा हिरण्यवर्तनी।
उषर्बुधो वहन्तु सोमपीतये ॥ १८ ॥ २७ ॥

भा०—जिस प्रकार सुखप्रद सूर्य और पवन ( सोमपीतये ) प्रकाश और पदार्थों के उपभोग प्रदान करने के लिये ( उषः-बुधः ) प्रातः वेला को प्रकट करने वाले किरणों को हमें प्राप्त कराते हैं उसी प्रकार ( देवाः ) दान आदि उत्तम गुणों वाले, ( मयोभुवा ) सुखों के मूल उत्पादक ( दस्रा ) बाधक कारणों के नाश करने वाले ( हिरण्यवर्तनी ) हित और प्रिय व्यवहार मार्ग में चलने वाले होकर ( सोमपीतये ) उत्तम पदार्थों के ऐश्वर्य को प्राप्त कराने के लिये ( उषर्बुधः ) प्रातःकाल की वेला में चेतन या जागृत होने वाले विद्वानों को ( आ वहन्तु ) प्राप्त करावे।

[ ९३ ]

गोतमो रहूगणपुत्र ऋषिः॥ अग्नीषोमौ देवते॥ छन्दः—१ अनुष्टुप्।

२विराड्नुष्टुप् । ३भुरिगुष्णिक् । ४ स्वराट् पंक्तिः । ५, ७ निचृत् त्रिष्टुप् । ६ विराट् त्रिष्टुप् । ८ स्वराट् त्रिष्टुप् । १२ त्रिष्टुप् । ६, १०, ११ गायत्री ॥

अग्नीषोमाविमं सु मे शृणुतं वृषणा हवम् ।
प्रति सूक्तानि हर्यतं भवतं दाशुषे मयः ॥ १ ॥

भा०—हे (अग्नीषोमौ) अग्ने ! ज्ञानवान् विद्वन् ! और हे ( सोम ) उत्पादक पितः ! शम आदि गुणों से युक्त परीक्षक जनो ! आप दोनों (वृषणौ) मेघ के समान ज्ञानोपदेशो की वर्षा करने हारे हो । ( मे ) मेरे ( इमं ) इस ( हवं ) ग्राह्य वचन को ( शृणुतं ) श्रवण करो और ( मे इमं हर्यतं हवं शृणुतम् ) कुछ मेरे हित के लिये ग्राह्य, श्रवण करने योग्य उपदेश, ज्ञान-प्रवचन का श्रवण कराओ । और ( सूक्तानि प्रति ) वेद के सूक्तों के प्रतिदिन ( हर्यतम् ) प्रवचन, व्याख्यान करने की अभिलाषा करो । ( दाशुषे ) अपने द्रव्य और सर्वस्व को अर्पण करने वाले शिष्य जन के लिये ( मयः ) कल्याणकारक ( भवतम् ) होओ । राष्ट्रपक्ष में—अग्नि अग्रणी नायक, सोम ऐश्वर्यवान् आज्ञापक दोनों प्रजा के वचन श्रवण करें और उनकी प्रार्थनों पर उत्सुकता से ध्यान दें और उनके लिये सुखकारी हों । आत्मा और ब्रह्म भी स्तुति श्रवण करते, स्तुतियों द्वारा भक्त को चाहते और सुख देते हैं ।

अग्नीषोमा यो अद्य वामिदं वचः सपर्यति ।
तस्मै धत्तं सुवीर्यं गवां पोषं स्वश्व्यम् ॥ २ ॥

भा०—हे ( अग्निषोमा ) अग्नि और सोम, आचार्य और उत्तम विद्वन् ! ( वाम् ) आप दोनों के ( इदं वचः ) इस ज्ञानमय वचन का ( यः ) जो ( अद्य ) आज और सदा ही ( सपर्यति ) आदर करे (तस्मै) उसको ( सुवीर्यं ) उत्तम वीर्य, ब्रह्मचर्य ( गवां पोषं ) वाणियों और ज्ञानेन्द्रियों का पोषण और ( सु-अश्व्यम् ) प्राणों और शीघ्र क्रिया करने में

चतुर मन आत्मा और कर्मेन्द्रियों के हितकर्म से युक्त बल को ( धत्तम् ) धारण कराओ। राष्ट्र पक्ष में—जो प्रजा उनकी आज्ञा वचन का आदर करे उसको वे पशुओं अश्वादि रथों के उत्तम बल और अधिकार दें।

अग्नीषोमा य आहुतिं यो वां दाशाद्धविष्कृतिम्।
स प्रजया सुवीर्यं विश्वमायुर्व्यश्नवत् ॥ ३ ॥

भा०—हे ( अग्निषोमा ) अग्ने ! हे सोम, वायो ! ( यः ) जो (वाम्) तुम दोनों के बीच ( हविष्कृतिम् ) भावी में प्रचुर अन्न को उत्पन्न करने वाली ( आहुतिं ) आहुति ( दाशात् ) प्रदान करता है ( सः ) वह ( प्रजया ) प्रजा सहित ( सुवीर्यम् ) उत्तम बल से युक्त ( विश्वम् ) पूर्ण (आयुः) आयु को ( वि-अश्नवत् ) विविध प्रकार से भोग करे। हे अग्रणी ज्ञानवन् ! ब्राह्मण ! हे ( सोम ) सबके आज्ञापक राजन् ! जो आप दोनों के ( हविष्कृतिम् ) राष्ट्र को वश करने में योग्य बना देने वाली ( आहुतिम् ) कर की अदायगी कर देते हैं वह उत्तम प्रजा, बल और पूर्णायु का भोग करें।

अग्नीषोमा चेति तद्वीर्यं वां यदमुष्णीतमवसं पणिं गाः।
अवातिरतं बृसयस्य शेषोऽविन्दतं ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ ४ ॥

भा०—हे ( अग्नीषोमा ) अग्नि और सोम विद्वन् ! एवं राजन् ! ( वां ) तुम दोनों का ( वीर्यम् चेति ) वह वीर्य भी विदित ही है (यत्) कि आप दोनों ( अवसम् ) ज्ञान, ( पणिम् ) व्यवहार और ( गाः ) वाणियों को ( अमुष्णीतम् ) हर लेते हो। तुम दोनों ( बृसयस्य ) अपने समीप बसने वाले, अन्तेवासी आच्छादक छात्र को माता पिता के हितकारी ( शेषः ) पुत्र के समान ज्ञान साधना को ( अवातिरतम् ) प्रदान करो और ( बहुभ्यः ) बहुतों के लिये हितकारी ( एकम् ) एक सूर्य के समान आत्मरूप (ज्योतिः) ज्योति को ( अविन्दतम् ) प्राप्त कराओ।

युवमेतानि दिवि रोचनान्यग्निश्च सोम सक्रतू अधत्तम् ।
युवं सिन्धूँरभिशस्तेरवद्यादग्नीषोमावमुञ्चतं गृभीतान् ॥ ५ ॥

भा०—( सक्रतू ) समान एक काल और एक देश में क्रियाशील होकर जिस प्रकार अग्नि और सोम, प्रकाश और वायु दोनों (दिवि) आकाश या सूर्य के प्रकाश में ( रोचनानि धत्तः ) नाना रुचिकर कार्यों को धारण करते हैं और ( सिन्धून् ) जलप्रवाहों को वृष्टि रूप से मेघ में से मुक्त कर देते हैं, वर्षा देते हैं उसी प्रकार उत्तम विद्वान् शिक्षक (अग्ने) और हे ( सोम ) शम आदि के शिक्षक आचार्य तुम दोनों ( दिवि ) ज्ञान के आधार पर ( एतानि रोचनानि ) इन नाना रुचिकर विज्ञानों को (सुक्रतू) समान क्रिया और प्रज्ञा वाले होकर ( अधत्तम् ) तुम दोनों को धारण करो। ( युवं ) तुम दोनों ( गृभीतान् सिन्धून् इव ) मेघ में स्थित जलों के समान ( गृभीतान् ) बन्धन में बंधे ( सिंधून् ) प्राण वाले प्राणियों को (अभिशस्तेः) निन्दा योग्य पीड़ा और ( अवद्यात् ) गर्हणीय पाप बन्धन से ( अमुञ्चतम् ) मुक्त करो।

आन्यं दिवो मातरिश्वा जभारामथ्नादन्यं परि श्येनो अद्रेः ।
अग्नीषोमा ब्रह्मणा वावृधानोरुं यज्ञाय चक्रथुरु लोकम् ॥६॥२८॥

भा०—( अन्यं ) अग्नि और सोम इन दोनों में से एक अग्नि को जिस प्रकार ( मातरिश्वा ) वायु ( दिवः ) सूर्य के बल से ( आजभार ) धारण करता है और ( अन्यं ) दूसरे आकाशस्थ ( सोमम् ) मेघ को जिस प्रकार ( श्येनः ) वेगवान् प्रबल वायु का झकोरा ( अद्रे परि ) पर्वत पर ( आमथ्नात् ) जा टकराता है और वे दोनों ही ( अग्निषोमा ) अग्नि और सोम ( ब्रह्मणा ) बड़े भारी बल से ( वावृधाना ) बढ़ती हुई ( उरु लोकम् ) इस महान् दृश्य जगत् को ( यज्ञाय ) परस्पर लेन देन, तथा सुसंम्बद्ध रहने के लिये ( उरुं ) बहुत बड़ा (चक्राथः) बना लेते हैं। उसी प्रकार (मातरिश्वा) पृथ्वी माता के विजय के निमित्त वेग से

जाने हारा पुरुष ( दिवः ) ज्ञानवान् पुरुषों के बीच में एक अग्नि अर्थात् अग्रणी, ज्ञानवान् पुरुष ( जहार ) प्राप्त होता है। और दूसरा ( श्येनः ) बाज़ के समान शत्रु पर आक्रमण करने हारा ( अद्रेः ) दृढ़ अभेद्य जन समूह में से (अन्यम्) दूसरे सोम, ऐश्वर्यवान् आज्ञापक श्रेष्ठ पुरुष को दूध से मखन के समान मथ कर प्राप्त करे। वे दोनों विद्वान् और ऐश्वर्यवान् ब्राह्मण और क्षत्रिय जन ( ब्रह्मणा ) वेद ज्ञान और बड़े ऐश्वर्य से ( वावृधाना ) वृद्धि को प्राप्त होते हुए ( उरुं ) इस महान् ( लोकम् ) लोक को ( यज्ञाय ) महान् राष्ट्र के बनाने के लिये ( चक्रथुः ) तैयार करें।

**अग्नीषोमा हविषः प्रस्थितस्य वीतं हर्यतं वृषणा जुषेथाम्।**
**सुशर्माणा स्ववसा हि भूतमथा धत्तं यजमानाय शं योः ॥ ७ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( अग्नीषोमा ) अग्नि और सोम आग और वायु दोनों मिल कर ( प्रस्थितस्य हविषः ) प्राप्त हुए चरु आदि खाद्य पदार्थ को (वीतम् ) भस्म कर देते हैं और (हर्यतम् ) अपने बीच में सूक्ष्म रूप से धारण करके ( वृषणा ) वर्षणशील होकर ( जुषेथाम् ) उससे स्वयं तृप्त हो, अन्यों को सुखी करते हैं। ( सु-अवसा सुशर्मणा भूतम् ) अपने उत्तम रक्षा सामर्थ्य से उत्तम सुख देने वाले होकर शान्ति और रोग नाश करते है उसी प्रकार हे (अग्नीषोमा) अग्ने! अग्रणी, मुख्य ज्ञानप्रकाशक विद्वन्! हे ( सोम ) ऐश्वर्यवन् राजन्! अथवा आचार्य और शिक्षक! तुम दोनों ( प्रस्थितस्य हविषः ) आप के पास प्रस्तुत किये 'हवि' ग्राह्य स्वीकार करने योग्य अन्नादि पदार्थों को ( वीतम् ) प्राप्त करो, स्वीकार करो। ( हर्यतं ) उसको चित्त से चाहें। और ( वृषणा ) समस्त अधीन शिष्यों और प्रजाजनों पर ज्ञान और सुखों की वर्षा करने वाले होकर ( जुषेथाम् ) उस स्वीकृत पदार्थों का सेवन करें। आप दोनों ( स्ववसा ) अपने उत्तम ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य से ( हि ) निश्चय से ( सुशर्माणा ) उत्तम सुख शरण देने वाले ( भूतम् ) होवें। ( अथ ) और (यजमानाय)

दानशील पुरुष के लिये ( शम् ) शान्ति प्राप्त करने और ( योः ) दुःखों को दूर करने वाले उपाय ( धत्तम् ) प्रदान करो।

यो अग्नीषोमा हविषा सपर्याद्देवद्रीचा मनसा यो घृतेन।
तस्य व्रतं रक्षतं पातमंहसो विशे जनाय महि शर्म यच्छतम् ॥८॥

भा०—( यः ) जो पुरुष ( हविषा ) उत्तम संस्कृत 'हवि अर्थात् चरु से ( अग्नीषोमा ) अग्नि और वायु दोनों को ( सपर्यात् ) परिचर्या करता है अर्थात् उनमें उत्तम पदार्थ की आहुति करता है और ( यः ) जो ( देवद्रीची ) परमेश्वर और विद्वानों के सत्कार करने वाले ( मनसा) चित्त से युक्त होकर (घृतेन) घृत से और विद्वानों की अर्घ्य पाद्य, आचमनीय आदि जलों से (सपर्यात्) उनका सत्कार करता है वे दोनों (तस्य) उसके (व्रतं) सत्य भाषण, तप, स्वाध्याय आदि नित्य कर्मों का ( रक्षतम् ) पालन करते हैं। और वे दोनों उसको ( अंहसः पातम् ) ज्वरादि दुःखों से बचाते और ( विशे जनाय ) प्रजाजन के हित के लिये ( महि शर्म ) बड़ा सुख ( यच्छतम् ) प्रदान करते हैं। इसी प्रकार अग्रणी, विद्वान् राजा दोनों को जो अन्नादि द्वारा आदर सत्कार करे और विद्वानों के प्रति सत्कार और आदरवान् चित्त से और ( घृतेन ) जलादि से सत्कार करते व उसके नियमों का पालन करते उसे पाप कर्मों से बचाते प्रजाजन को शासन और शास्त्रानुशासन द्वारा बड़ा सुख प्रदान करते हैं।

अग्नीषोमा सवेदसा सहूती वनतं गिरः। सं देवत्रा बभूवथुः ॥९॥

भा०—( अग्निषोमा ) अग्नि और वायु जिस प्रकार एक समान रूप से चरु को ग्रहण करते हैं और समस्त पृथिवी, जल, आकाश, अन्तरिक्ष आदि पदार्थों पर समान रूप से व्याप जाते हैं उसी प्रकार ज्ञानवान् और ऐश्वर्यवान् मन्त्री और राजा, आचार्य और शिष्य दोनों (सवेदसा) समान ज्ञान और ऐश्वर्यवान् होकर ( सहूती ) एक दूसरे के समान, एक साथ

ही वर्णन योग्य होकर ( गिरः वनतम् ) स्तुति वाणियों का सेवन करते हैं। वे ( देवत्रा ) विद्वान् पुरुषों के बीच में ( सं बभूवथुः ) एक साथ मिल कर ही शक्तिशाली और कार्यसम्पादन करने में समर्थ होते हैं।

अग्नीषोमावनेन वां यो वां घृतेन दाशति। तस्मै दीदयतं बृहत् ॥१०॥

भा०—जिस प्रकार ( घृतेन अग्निषोमौ दाशति ) घृत और जल के साथ अग्नि और वायु दोनों के बीच ग्राह्य अंश को प्रदान करता है उसके लिये वे दोनों ( बृहत् दीदयतम् ) बहुत प्रकाशित करते हैं। अग्नि में घृताहुति देने से वह बहुत उज्ज्वल हो जाती है और वायु में जलांश अधिक आ जाने से वृष्टि द्वारा अन्नादि अधिक मात्रा में होता है उसी प्रकार हे ( अग्नीषोमौ ) विद्वन्! हे राजन्! ( यः ) जो भी पुरुष ( वां ) तुम दोनों में किसी को ( घृतेन ) स्नेह से या तेजस्विता से या नम्रता से प्रदान करता है ( तस्मै ) उस को ( बृहत् ) बहुत २ ज्ञान और ऐश्वर्य ( दीदयतम् ) प्रकाशित करते और प्रदान करते हैं।

अग्नीषोमाविमानि नो युवं हव्या जुजोषतम्।
आ यातमुप नः सचा ॥११॥

भा०—हे ( अग्निषोमा ) पूर्वोक्त अग्नि और वायु या अग्नि और जल के समान उपकारक स्वभाव वाले विद्वान् पुरुषो! ( युवम् ) तुम दोनों ( नः ) हमारे ( हव्या ) स्वीकार करने योग्य ( इमानि ) इन पदार्थों को ( जुजोषतम् ) प्रेम से स्वीकार करो। और ( नः ) हमें ( सचा ) सदा एक साथ ( आयातम् ) प्राप्त होओ।

अग्नीषोमा पिपृतमर्वतो न आ प्यायन्तामुस्रिया हव्यसूदः।
अस्मे बलानि मघवत्सु धत्तं कृणुतं नो अध्वरं श्रुष्टिमन्तम् १२।२६।१४

भा०—( अग्निषोमा ) अग्नि और जल या अग्नि और वायु के समान राष्ट्र का शिक्षण और पालन करने वाले आप दोनों ( नः ) हमारे ( अर्वतः )

अश्वों को ( पिपृतम् ) खूब पालन करो। और ( नः ) हमारे ( हव्यसूदः ) दुग्ध आदि खाद्य पदार्थों को देने वाली ( उस्रियाः ) गौवों को और अन्नों उत्पादक भूमियों को ( आप्यायन्ताम् ) खूब हृष्ट पुष्ट और जल से सेचित करो। ( अस्मे ) हमारे ( मघवत्सु ) धनाढ्य पुरुषों के आश्रय पर ( बलानि ) राष्ट्र के रक्षक सैन्यों को ( धत्तम्) पालन करो। और ( नः अध्वरम् ) हमारे प्रजा पालन रूप यज्ञ को ( श्रुष्टिमन्तम् ) खूब अन्न-समृद्धि और सुख सामग्री से युक्त करो।

## [ ६४ ]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्देवता ॥ छन्दः—१, ४, ५, ७, ६,१० निचृज्जगती। १२, १३, १४ विराड् जगती। २, ३, १६ त्रिष्टुप्। ६ स्वराट् त्रिष्टुप्। ११ भुरिक् त्रिष्टुप्। ८ निचृत् त्रिष्टुप्। १५ भुरिक् पङ्क्तिः ॥ षोडशर्चं सूक्तम् ॥

**इमं स्तोम॒मर्ह॑ते जा॒तवे॑दसे॒ रथ॑मिव॒ सं म॑हेमा मनी॒षया॑ ।**
**भ॒द्रा हि नः॒ प्रम॑तिरस्य सं॒सद्यग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥१॥**

भा०—जिस प्रकार ( मनीषया ) बुद्धि पूर्वक ( रथम् इव ) वेग से जाने वाले रथको संचालित करते और उस का उपयोग करते और उस की देख भाल और रक्षा करते हैं उसी प्रकार ( अर्हते ) पूजनीय ( जातवेदसे ) समस्त पदार्थों के जानने वाले विद्वान् और ऐश्वर्यों के स्वामी धनाढ्य तथा वेदों के परम उत्पत्ति स्थान परमेश्वर इन के उपदेश, प्रवचन तथा उपासना के लिये ( इमं) इस ( स्तोमम् ) स्तुति को ( मनीषया ) बुद्धि पूर्वक बड़े विचार से ( सं मेहम ) अच्छी प्रकार करें जिस से बुरे परिणाम उत्पन्न हों। जैसे वेगवान् रथ के संञ्चालन में थोड़ासा चूकने पर बहुत हानि होती है इसीप्रकार विद्वानों, ऐश्वर्यवानों और परमेश्वर की स्तुति और आदर सत्कार में चकजाने पर भी बहुत हानि होती है। ( अस्य ) इस विद्वान्

और ऐश्वर्यवान् की ( संसदि ) सभा, और सत्संग में ( हि ) निश्चय से ( नः ) हमें ( भद्रा ) सुख और कल्याण के देने वाला ( प्रमतिः ) उत्कृष्ट ज्ञान प्राप्त होता है। इसी प्रकार ( अस्य संसदि ) इस परमेश्वर की उपासना में हमें सुखकारिणी उत्कृष्ट मति प्राप्त होती है। हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! अग्रणी नायक ! परमेश्वर ( तव सख्ये ) तेरे मित्र भाव में रहते हुए ( वयम् ) हम कभी ( मा रिषाभ ) दुःखी और विनाश को प्राप्त न हों। और कभी तेरा व्रत खण्डित न करें।

यस्मै॒ त्वमा॒यज॑से॒ स सा॑धत्य॒नर्वा॒ क्षे॑ति॒ दध॑ते सु॒वीर्य॑म् ।
स तू॑ताव॒ नैन॑मश्नोत्यंहु॒तिरग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ॥२॥

भा०—हे ( अग्ने ) विद्वन् ! राजन् ! परमेश्वर ( अनर्वा ) विना अश्व के भी, अग्नि या विद्युत् के बल से जिस प्रकार रथ चला जाता है उसी प्रकार ( त्वम् ) तू ( यस्मै ) जिसको ( आयजसे ) थोड़ासा भी अपना ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करता है ( सः अनर्वा सधति ) वह अपने ( १ ) विना सहायक के, सब काम सिद्ध करता है, ( २ ) वह विना शिक्षक के, उत्तम और कुशल हो जाता है, (३) वह शत्रुओं को विना चतुरंग के वश करलेता है, ( ४ ) अपने विना अश्व आदि सवारी के उद्देश्य तक पहुंच जाता है, अग्नि या विद्युत् के बल से चलने वाले रथके समान ( सः क्षेति ) वह पृथ्वी पर आदर पूर्वक रहता है। वह ( सुवीर्यम् दधते ) उत्तम वीर्य, बल, तेज को धारण करता है। ( सः तूताव ) वह स्वयं वृद्धि को प्राप्त होता और औरों को भी बढ़ाता है ( एवं ) उसको ( अंहतिः ) पाप, दुःख, पीड़ा, बाधा ( न अश्नोति ) कुछ भी प्राप्त नहीं होता। हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! हे नायक ! हे परमेश्वर ! ( वयम् ) हम ( ते सख्ये-मा रिषाम ) हम तेरे मित्रभाव में रह कर कभी पीड़ित नहीं होते।

श॒केम॑ त्वा स॒मिधं॑ सा॒धया॒ धिय॒स्त्वे दे॒वा ह॒विर॑दन्त्याहु॑तम् ।
त्वमा॑दि॒त्याँ आ व॑ह॒ तान्ह्यु१॒॑श्मस्यग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑॥३॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञ में अग्नि को अति प्रदीप्त करते हैं, वह समस्त यज्ञ कर्मों को साधता है, आहुति किये हविष्य को समस्त वायु जल आदि पदार्थ अग्नि के द्वारा ही प्राप्त करते हैं और अग्नि सूर्य की किरणों को अपने में रखता है उसी प्रकार हे ( अग्ने ) विद्वन्! राजन्! हम ( त्वा ) तुझे ( समिधे शकेम ) अति उज्वल, तेजस्वी, प्रतापी बनाने में समर्थ हों। तू ( धियः साधय ) ज्ञानों और राष्ट्र के कार्यों की साधना कर, उनको प्राप्त कर, अपने वश कर। ( त्वे ) तेरे आश्रय पर ही ( देवाः ) विद्वान् पुरुष, ( आहुतम् ) दान किये हुए ( हविः ) अन्नादि ग्राह्य पदार्थों का (अदन्ति) भोग करते हैं। ( त्वेदेवाः हविः अदन्ति ) तेरे आश्रय रह कर देव अर्थात् विजयेच्छु जन प्राप्त अन्न वेतनादि को भोगते हैं। तू ( आदित्यान् ) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुषों को और अदिति अर्थात् भूमि माता के पुत्रों, वीर सैनिकों को ( आवह ) धारण कर। हम भी ( तान् उष्मसि हि ) उनको ही चाहते हैं। ( तव सख्ये मा वयं रिषाम ) हम तेरे मित्र भाव में कभी पीड़ा को न प्राप्त हों। परमेश्वरपक्ष में—तुझ तेजस्वरूप को हम प्राप्त कर सकें, तू हमें ज्ञान और कर्मों का उपदेश कर। तेरे आश्रय पर विद्वान् जन और कामना वाले जीव गण ( हविः ) कर्म फल भोगते हैं। तू सूर्यों और जीवन्मुक्तों को धारण करता है। हम भी उनकी कामना करते हैं। शेष पूर्ववत्।

भरा॑मे॒ध्मं कृ॒णवा॑मा ह॒वींषि॑ ते चि॒तय॑न्तः॒ पर्व॑णापर्वणा व॒यम्।
जी॒वात॑वे प्रत॒रं सा॑धया॒ धियोऽग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑॥४॥

भा०—जिस प्रकार यज्ञार्थ अग्नि के लिये हम ( इध्म ) ईंधन लाते हैं। ( हवींषि ) चरु पदार्थ तैयार करते हैं ( पर्वणा पर्वणा ) पर्व, पर्व पर हम उसे चेताते हैं और वह हमारे सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करने के समस्त साधनों को उपस्थित करता है उसी प्रकार हे राजन्! ( अग्ने ) ज्ञानवन् नायक! हम ( ते ) तेरी वृद्धि और तेज को बढ़ाने के लिये (इध्मं) तेजस्वी, उज्वल होने के साधनों का ( भराम ) संग्रह करें। ( ते ) तेरे

निमित्त ( हवींषि ) सब प्रकार के उत्तम अन्नों और स्वीकार करने योग्य समस्त ऐश्वर्यों को ( कृणवाम ) उत्पन्न करें । ( पर्वणा पर्वणा ) प्रत्येक पालन करने और ऐश्वर्य को पूर्ण करने वाले साधन और वेदज्ञानमय व्यवस्था-पुस्तक या शास्त्र के एक २ पर्व, या अध्याय अध्याय से (वयम्) हम (चितयन्तः ) ज्ञान प्राप्त करते हुए और तुझे चेताते हुए ( तव सख्ये ) तेरे मित्र भाव में रह कर ( मा रिषाम ) कभी पीड़ित न हों । ( जीवातवे ) हमारे जीवनों के लिये ( धियः ) उत्तम २ ज्ञानों और उत्तम २ कार्यों को (प्रतरं) खूब अच्छी प्रकार से (साधय) अनुष्ठान कर । परमेश्वर और आचार्य के पक्ष में—(इध्मं) तेजस्वरूप तुझको धारण करें, ( ते हवींषि ) तेरे लिये स्तुति-वचन कहें, वेदानुशासन के प्रतिपर्व, प्रति-अध्याय, अथवा पर्व २ पर तेज और ज्ञान का सम्पादन करें । तू सुख से जीवन व्यतीत करने के लिये ज्ञानों ओर कर्मों का उत्तम रीति से उपदेश कर ।

विशां गोपा अस्य चरन्ति जन्तवो द्विपच्च यदुत चतुष्पदक्तुभिः ।
चित्रः प्रकेत उषसो महाँ अस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥५॥३०॥

भा०—(अस्य) इस सभापति, राजा और विद्वान् के राज्य में (विशां गोपाः ) प्रजाओं के रक्षक पुरुष और ( द्विपत् च ) दोपाये, भृत्य, कर्म-कर आदि ( यत् उत ) और जो (चतुष्पद्) चौपाये ( जन्तवः ) सब जन्तु (अक्तुभिः) प्रकट चिह्नों या गुणों सहित होकर ( चरन्ति ) विचरें । अर्थात् राजपुरुषों, भृत्यों के भी शरीरों पर उनके भिन्न २ विभाग का चिह्न, पदक आदि हो, और पशुओं पर भी चक्र, शूल आदि का चिह्न हो । हे (अग्ने) राजन् ! ( चित्रः ) पूजा आदर सत्कार करने योग्य ( प्रकेतः ) उत्तम ज्ञान-वान् होकर ( उषसः महान् ) सूर्य से भी अधिक तेजस्वी और गुणों से महान् सामर्थ्य वाला है । (तव सख्ये मा रिषाम) तेरे मित्र भाव में हम कभी पीड़ित न हों । परमेश्वरपक्ष में—परमेश्वर के बनाये दोपाये, चौपाये तथा अन्यान्य सभी प्राणी ( विशां गोपाः ) प्रजाओं के रक्षा करने हारे होकर

ही विचरते हैं। परमेश्वर पूज्य, अद्भुत सामर्थ्यवाला, महान् है। उसके प्रेम भाव में हम कभी पीड़ित न हों। इति त्रिंशो वर्गः ॥

**त्वम॑ध्व॒र्युरु॒त होता॑सि पू॒र्व्यः प्र॒शास्ता पोता॑ ज॒नुषा॑ पु॒रोहि॑तः।**
**विश्वा॑ वि॒द्वाँ आर्त्वि॑ज्या धीर पुष्य॒स्यग्ने॑ स॒ख्ये मा रि॑षामा व॒यं तव॑ ८**

भा०—हे विद्वन्! अध्यक्ष! ( त्वम् ) तू ( अध्वर्युः ) अध्वर, अर्थात् हिंसा कर्म से रहित, प्रजाओं के परस्पर हिंसन, परिपीड़न आदि से रहित, प्रेम भाव से मिल कर रहने और प्रजापालन के कार्य का संयोजक, उसको चाहने वाला और शत्रु से कभी नष्ट या पराजित न होने वाले राष्ट्र का स्वामी है। ( उत ) और तू ( पूर्व्यः ) सबसे मुख्य ( होता ) सब अधिकारों और ऐश्वर्यों को स्वयं ग्रहण करने और अन्यों को वितरण करने हारा ( असि ) है। तू ही ( प्रशास्ता ) सबसे मुख्य शासक, एवं ज्ञानोपदेष्टा है। तू ( पोता ) राष्ट्र से कण्टकों, दुष्ट पुरुषों को दूर करके उसे स्वच्छ, पापाचरणों से रहित करने वाला, एवं सबको पवित्र करने वाला, पंक्तिपावन है। तू ( जनुषा ) जन्म से ही, स्वतःसिद्ध, स्वभावतः ( पुरोहितः) यज्ञ में ब्रह्मा के समान, रात्रि में दीपक के समान सबके आगे, मुख्य, अग्रणी पद पर स्थापित है। तू ( विश्वा आर्त्विज्या ) समस्त ऋत्विजों के यज्ञोपयोगी कार्यों को जानने वाले विद्वान् के समान समस्त ऋतु अर्थात् सभा के सदस्यों के सुसंगत करने तथा सभा आदि के नियमों को (विद्वान्) जानता हुआ, उनको हे ( धीर ) बुद्धिमान् ( पुष्यसि ) खूब पुष्ट, दृढ़ कर देता है। हे (अग्ने तव सख्ये वयं मा रिषाम) ज्ञानवन्! नायक! तेरे मित्रभाव में हम कभी पीड़ित न हों। (२) परमेश्वर समस्त यज्ञों का स्वामी होने से 'अध्वर्यु' है, सर्वश्रेष्ठ सुखों का दाता होने से 'होता', ज्ञानप्रद होने से 'प्रशास्ता' हृदयपावन होने से 'पोता', सब का साक्षी होने से 'पुरोहित' है।

यो विश्वतः सुप्रतीकः सदृङ्ङसि दूरे चित्सन्तळिदिवाति रोचसे।
रात्र्याश्चिदन्धो अति देव पश्यस्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥७॥

भा०—अग्नि जिस प्रकार ( सुप्रतीकः ) उत्तम रूपवान्, ( सदृङ् ) सबको एक समान दिखाने हारा, ( दूरे चित् तडित् इव अति रोचते ) दूर रह कर भी विद्युत् के समान खूब चमकता है ( राज्याः अन्धः चित् अतिपश्यति) रात के अन्धकार को वार पार करके भी स्वयं देखता अर्थात् दूर तक प्रकाशित करता है उसी प्रकार ( यः ) जो विद्वान् पुरुष ( विश्वतः ) सब प्रकार से (सुप्रतीकः) उत्तम, सुन्दर मुख या दृढ़ अंग वाला या (सुप्रतीकः) उत्तम प्रतीति या ज्ञान से युक्त, अन्यों को भी उत्तम ज्ञान कराने हारा, (सदृङ्) सबको समान रूप से देखने वाला, निष्पक्षपात, ( दूरे चित् सन् ) दूर रह कर भी ( तडित् इव ) विद्युत् के समान ( अति ) अबसे अधिक ( रोचसे ) रुचि कर, प्रकाशमान, तेजस्वी होकर रहता है। हे ( देव ) विद्वन् ! तू ( राज्या अन्धः चित् ) रात में अन्धकार को ( अति ) पार कर जाने वाले अग्नि के समान अज्ञानान्धकार को पार करके सबसे अधिक दूर तक ( अति पश्यसि ) देखता और अन्यों को अपने ज्ञान से तत्वों को दिखलाता है। हे (अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! (तव सख्ये वयं मा रिषाम) हम तेरे मित्रभाव में रह कर कभी पीड़ा, कष्ट, रोग और अज्ञान से दुखी न हों।

पूर्वो देवा भवतु सुन्वतो रथोऽस्माकं शंसो अभ्यस्तु दूढ्यः।
तदा जानीतोत पुष्यता वचोऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥८॥

भा०—हे ( देवाः ) विद्वान् और वीर पुरुषो ! ( अस्माकम् ) हमारे ( सुन्वतः ) आज्ञा देने हारे, ऐश्वर्यवान् एवं अभिषेक प्राप्त राजा का ( रथः ) रथ ( पूर्वः ) सबसे मुख्य और शक्ति और बल से पूर्ण ( भवतु ) हो। और ( अस्माकम् ) हमारा (शंसः) उपदेश और शास्त्र भी ( दूढ्यः ) अनधिकारी पुरुषों के लिये दुःख से ज्ञान करने योग्य, दुर्गम अथवा (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धि और दुष्टाचरण करने वालों को ( अभि-अस्तु ) पराजय करने

वाला हो। अथवा (अस्माकं शंसः दूढ्यः अभि अस्तु) हमारा आज्ञा-वचन शत्रुओं को समझ में न आने वाला हो। उसके रहस्य भेद को शत्रु न समझ सकें। हे (देवाः) विद्वानों, हे विजयशील सैनिको! (तत् आजानीत) तुम लोग उसके (वचः) वचन को अच्छी प्रकार जानो। (उत) और (पुष्यत) और भी पुष्ट, बलवान् करो। अर्थात्, अग्रणी नायक के आज्ञा के अनुकूल चलकर उसके आज्ञावचन को प्रबल करो, उसका अनुमोदन करो। हे (अग्ने) विद्वन्! नायक! (तव सख्ये वयम् मा रिषाम) तेरे मैत्रीभाव में हम पीड़ित और शत्रु से व्यथित न हों।

वधैर्दुःशंसाँ अप दूढ्यो जहि दूरे वा ये अन्ति वा केचिदत्रिणः।
अथा यज्ञाय गृणते सुगं कृध्यग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥९॥

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानवन्! हे नायक! तू (दुःशंसान्) दुःखदायी और दुष्परिणामजनक वचनों को कहने वालों और लोगों को बुरी बात सिखाने वालों को (वधैः) नाना दण्डों से (अप जहि) पीड़ित करके राष्ट्र से दूर कर। (ये) जो लोग (दूरे वा) दूर देश में और (अन्ति वा) समीप मे भी (के चित्) कोई भी (दूढ्यः) दुष्ट बुद्धियों और दुःखदायी, हीन आचार चरित्रों वाले, (अत्रिणः) प्रजा के माल को हड़पजाने वाले, खाऊ लोग हैं उनको नाना दण्डों से दण्डित करके प्रजा से परे हटा। उनको प्रजा में मत रहने दे। (अथ) और (यज्ञाय गृणते) यज्ञ, परस्पर सत्संग और ज्ञानोपदेश तथा परमेश्वरोपासना आदि कार्यों की वृद्धि के लिये तथा 'यज्ञ' अर्थात् उपास्य या पूजा और आदर के योग्य प्रजा पालक राजा और आचार्य के हित के लिये (गृणते) स्तुति-चर्चा और उपदेश करने वाले पुरुष के लिये (सुगं कृधि) सुखप्रद साधन उपस्थित कर। हम (तव-सख्ये मा रिषाम) तेरे मैत्रीभाव में रह कर कभी दुष्ट पुरुषों द्वारा पीड़ित न हों।

यदयुक्था अरुषा रोहिता रथे वातजूता वृषभस्येव ते रवः।
आदिन्वसि वनिनो धूमकेतुनाग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव॥१०॥

भा०—जिस प्रकार अग्नि ( रथे ) वेग से चलने वाले यान या रथ में ( अरुषा रोहिता वातजूता अयुक्थाः ) दीप्ति से युक्त, दृढ़, वायु के वेग से जाने वाले दो वेगदायक यन्त्रों को सञ्चालित करता है तब ( वृषभस्य इव रवः) सांड के समान धुधकारने का सा शब्द होता है, ( वनिनः ) जल से युक्त अग्नि के ( धूमकेतुना ) धूम के से झण्डे से वह अग्नि युक्त होता है, इस प्रकार एंजिन द्वारा अग्नि-रथ चलता है। उसी प्रकार हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक ! जब तू ( रथे ) अपने रथ में ( अरुषा ) रोग रहित, सुस्वभाव, सुशील ( रोहिता ) हृष्ट पुष्ट अश्वों को ( अयुक्थाः ) जोड़ता है तब ( वनिनः ) वन अर्थात् सेनासमूह के स्वामी रूप से विद्यमान ( ते वृषभस्य इव रवः ) तुझ श्रेष्ठ पुरुष का वृषभ या बरसने वाले मेघ के समान शब्द, या वचन भी गंभीर गर्जना के तुल्य हो। ( आत् इत् ) तभी तू ( धूमकेतुना ) शत्रुओं के हृदय में कंपकंपी पैदा कर देने वाले ध्वजा से युक्त होकर ( इन्वसि ) आगे बढ़े। (तव सख्ये वयं मा रिषाम) तेरे मित्रभाव में रह कर हम कभी पीड़ित न हों। इत्येकत्रिंशो वर्गः ॥

अध स्वनादुत बिभ्युः पतत्रिणो द्रप्सा यत्ते यवसादो व्यस्थिरन्।
सुगं तत्ते तावकेभ्यो रथेभ्योऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥११॥

भा०—जिस प्रकार वन में लगे अग्नि के (स्वनात् पतत्रिणः बिभ्युः) चटचटा शब्द से पक्षी भय खाते हैं। और (द्रप्साः) द्रुत गति से जाने वाले या वृक्ष-पत्राहारी और ( यवसादः ) तृणचारी पशु ( वि अस्थिरन् ) विविध स्थानों में आश्रय के लिये जा छिपते या व्याकुल हो जाते हैं। अथवा— ( ते द्रप्साः ) द्रुत गति वाले, वृक्षों को जला देने वाले ( अग्नि ) के ज्वाला गण (यवसादः) तृणों को भस्म करने वाले होकर ( वि अस्थिरन् ) विविध दिशाओं में फैल जाते हैं इसी प्रकार ( अथ ) उसके पश्चात् हे रणनायक ! ( ते स्वनात् ) तेरे भयंकर शब्द या गर्जना या रणवाद्य से ( पतत्रिणः ) पक्षियों के समान भीरु हृदय वाले, रथारोही शत्रुजन भी ( बिभ्युः ) भय

खानें और ( द्रप्साः ) द्रुत गति से जाने वाले, ( यवसादः ) तृणचारी अश्व ( वि अस्थिरन् ) विशेष रूप से स्थिर होकर रहें । ( तत् ) तब (तावकेभ्यः ) तेरे अधीन रहने वाले ( रथेभ्यः ) रथारोही, वीर पुरुषों के लिये ( सुगम् ) विजय सुख प्राप्त हो । हे ( अग्ने ) नायक ! ( तव सख्ये वयं मा रिषाम ) तेरे मित्रभाव में हम कभी पीड़ित न हों ।

अयं मित्रस्य वरुणस्य धायसेऽवयातां मरुतां हेळो अद्भुतः ।
मृळा सु नो भूत्वेषां मनः पुनरग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार (मित्रस्य वरुणस्य धायसे) मित्र, सूर्य या दिन के प्रकाश और ताप को वरुण, रात्रि काल की शीतलता को धारण करने के लिये (अवयातां मरुतां अद्भुतः हेळः) नीचे और ऊपर की ओर आने जाने वाले, वायुगण का वेष्टन, अर्थात् वातावरण भी अद्भुत, आश्चर्यकारी रूप से बना हुआ है ( एषां मनः नः सुभूतु ) इनका स्तम्भन बल हमें सुखकारी होता है उसी प्रकार ( मित्रस्य ) स्नेह करने और प्रजा को मृत्यु कष्ट से बचाने वाले और ( वरुणस्य ) सब से श्रेष्ठ वरण करने योग्य, दुष्ट शत्रुओं के वारक राजा और न्यायाधीश के ( धायसे ) अधिकार-बल और शासन को धारण पोषण करने के लिये ( अवयाताम् ) अधीन होकर कार्यों पर जाने वाले ( मरुताम् ) मनुष्यों, विद्वानों, सैनिकों और प्रजाओं का (हेडः) यह वेष्टन अर्थात् घेरा डाले रहना, और राष्ट्र में जाल के समान फैले रहना, आना जाना और आक्रमण करना भी ( अद्भुतः ) अति आश्चर्यकारी हो । अथवा—मित्रों और श्रेष्ठ पुरुषों के धारण अर्थात् पालन पोषण के लिये ( अवयातां मरुतां हेडः) नीचे मार्ग पर जाने वाले, नीचवृत्ति के ,कुपथगामी पुरुषों को (अद्भुतः) विस्मयकारी रूप से, जैसा उनके जीवन में कभी भी नहीं हुआ हो, ऐसा घोर अनादर, अपमान, कष्ट हो । हे राजन् ! तू ( नः ) हमें ( मृळ ) सुखी कर । और ( एषां ) इन प्रजाजनों, विद्वानों और वीर पुरुषों का ( मनः ) चित्त सदा ( सु भूतु ) उत्तम मार्ग में रहे । ( पुनः ) और हे

( अग्ने ) नायक ! विद्वन् ! ( तव सख्ये ) तेरे मित्र भाव में ( वयम् ) हम ( मा रिषाम) कभी पीड़ित न हों। 'हेडः'—हिडि गत्यनादरयोः। हेड अनादरे। हेड वेष्टने।

देवो देवानामसि मित्रो अद्भुतो वसुर्वसूनामसि चारुरध्वरे।
शर्मन्त्स्याम तव सप्रथस्तमेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१३॥

भा०—जिस प्रकार ( देवानां चारुः देवः ) पृथिवी आदि पांचों दिव्य पदार्थों में सब से अधिक व्यापक, तीव्र गतिशील और श्रेष्ठ प्रकाशवान् अग्नि या विद्युत् है उसी प्रकार हे (अग्ने) ज्ञानवन् ! हे राजन् ! हे परमेश्वर! तू ही ( देवानाम् ) समस्त ज्ञानी, विजिगीषु और तेजस्वी पुरुषों में ( देवः ) श्रेष्ठ, विजिगीषु और तेजस्वी ( असि ) है। तू ही ( अद्भुतः मित्रः असि ) तू अद्भुत, स्नेहवान्, प्रजाओं को प्राण वायु के समान मृत्यु से बचाने वाला है। तू ( वसूनाम् वसुः ) देह में बसने वाले गौण वसु आदि प्राणगण में मुख्य आत्मा के समान बसने वाले प्रजाजनों में श्रेष्ठ बसने और उनको बसाने वाला एवं ब्रह्माण्ड में पृथिवी आदि लोकों में सब से श्रेष्ठ, ( वसुः ) सब में बसने हारा, व्यापक और सब को बसाने हारा है। तू ( अध्वरे ) उपासना आदि यज्ञकर्म तथा संग्राम और अन्य दानादि श्रेष्ठ कार्यों में ( चारुः ) सब से श्रेष्ठ है। ( तव ) तेरे ( सप्रथ-स्तमे ) अति विस्तृत ( शर्मन् ) शरणप्रद, सुखकारी शरण में ( स्याम ) हम रहें और ( वयं तव सख्ये मा रिषाम ) हम तेरे मित्रभाव में रह कर कभी कष्ट प्राप्त न करें।

तत्ते भद्रं यत्समिद्धः स्वे दमे सोमाहुतो जरसे मृळयत्तमः।
दधासि रत्नं द्रविणं च दाशुषेऽग्ने सख्ये मा रिषामा वयं तव ॥१४॥

भा०—हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! विद्वन् ! राजन् ! ( ते ) तेरा ( तत् ) यही कार्य ( भद्रम् ) कल्याणकारक और प्रजा का सुखकारक है कि (यत्) जो तू ( सम्-इद्धः ) अच्छी प्रकार ज्ञानों और पराक्रमों युक्त सैन्य-बलों से

तेजस्वी होकर ( स्वे दमे ) अपने गृह और इन्द्रिय दमन और राज्य-शासन में ही ( सोमाहुतः ) राज्यैश्वर्य और अन्नादि ओषधि रस से परिपुष्ट होकर और ( मृडयत्-तमः ) प्रजाओं को सबसे अधिक सुख देने वाला हो और ( जरसे ) स्तुति का पात्र बन। तू ( दाशुषे ) दानशील, कर आदि देने वाले प्रजाजन के हित और रक्षा के लिये (रत्नं) राज्य, उत्तम रत्न और ( द्रविणं च ) श्रेष्ठ ऐश्वर्य और ( रत्नं द्रविणं च ) आत्मा को रमण कराने वाला, आत्मज्ञान ( दधासि ) धारण कर। हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! पुरुष ! एवं नायक राजन् ! ( तव सख्ये ) तेरी मित्रता में रहते हुए ( वयम् मा रिषाम ) हम कभी पीड़ित न हों। परमेश्वर पक्षमें—हे प्रभो ( तत् ते-भद्रम् ) वही तेरा सब से अधिक कल्याणजनक सुखकारी रूप है कि तू ( समिद्धः ) तेजस्वरूप है। ( स्वे दमे = स्वे मदे ) अपने अति आनन्दमय रूप में ( मृळयत्-तमः सोमाहुतः ) सब से अधिक आनन्दप्रद और ऐश्वर्यवान् होकर स्तुति किया जाता है। तू ही समस्त सुख और ऐश्वर्य को धारण करता है। तेरे प्रेम भाव में मग्न रह कर हम कभी पीड़ित न हों।

**यस्मै॒ त्वं सु॑द्रविणो॒ ददा॑शोऽनाग॒स्त्वम॑दिते स॒र्वता॑ता ।**
**यं भ॒द्रेण॒ शव॑सा चो॒दया॑सि प्र॒जाव॑ता॒ राध॑सा॒ ते स्या॑म ॥ १५ ॥**

भा०—हे ( अदिते ) अखण्ड ! नाशरहित परमेश्वर ! अचार्य, एवं अखण्ड शासन वाले बलवान् ! राजन् ! ( त्वं ) तू ( सुद्रविणः ) उत्तम ऐश्वर्यवान् है। तू ( यस्मै ) जिस को ( सर्वताता ) समस्त कार्यों में ( अनागास्त्वम् ) पापरहितता, शुद्ध आचारण का ( ददाशः ) उपदेश प्रदान करता है और ( यं ) जिस को तू ( शवसा ) बल से और ज्ञान से ( चोदयसि ) सन्मार्ग में चलाता है वह ( प्रजावता ) उत्तम पुत्र पौत्रों से युक्त, ( राधसा ) ऐश्वर्य से युक्त होजाता है। हे राजन् ! विद्वन् ! प्रभो ! हम भी ( ते ) तेरे दिये ( शवसा ) ज्ञान, बल और ( प्रजावता राधसा ) प्रजा से समृद्ध ऐश्वर्य से युक्त ( स्याम ) हों।

स त्वमग्ने सौभगत्वस्य विद्वानस्माकमायुः प्र तिरेह देव ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः १६।३२।६

भा०—हे (अग्ने) ज्ञानप्रकाशक! विद्वन्! राजन्! प्रभो! परमेश्वर! हे (देव) ज्ञानप्रद! सुखप्रद! विद्याप्रकाशक! (त्वम्) तू (विद्वान्) सब कुछ जानने हारा है। (सः) वह तू (अस्माकम्) हमारे (सौभगत्वस्य) उत्तम ऐश्वर्यों के स्वामित्व और (आयुः) जीवन और ज्ञान (इह) इस लोक, इस जन्म और इस राष्ट्र में (प्र तिर) खूब बढ़ा। और (नः) हमें (मित्रः) प्राण, (वरुणः) अपान तथा दिन और रात्रि, सूर्य और मेघ, (अदितिः) अविनाशी कारण, (सिन्धुः) सागर या नदी गण, (पृथिवी) पृथिवी (उत) और (द्यौः) विद्युत्, या महान् आकाश ये सब भी (नः) हमें (तत्) वह परम सुख सौभाग्य प्रदान करें और बढ़ावें। इति द्वात्रिंशो वर्गः ॥

इति षष्ठोऽध्यायः ॥

---

## अथ सप्तमोऽध्यायः ॥

### [ ९५ ]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ औषसगुणविशिष्टः, सत्यगुणविशिष्टः, शुद्धोऽग्निर्वा देवता ॥ छन्द—१, ३ विराट् त्रिष्टुप् । २, ७, ८, ११ त्रिष्टुप् । ४, ५, ६, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ९ भुरिक्पंक्तिः ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

द्वे विरूपे चरतः स्वर्थे अन्यान्या वत्समुप धापयेते ।
हरिरन्यस्यां भवति स्वधावाञ्छुक्रो अन्यस्यां ददृशे सुवर्चाः ॥१॥

भा०—(द्वे विरूपे स्वर्थे चरतः) जैसे दो स्त्रियें भिन्न २ रूप रंग वाली अपने शुभ प्रयोजन के निमित्त विचरती हैं और (अन्यान्या वत्सम्

उपधापयेते) वे दोनों एक दूसरे के बच्चे को दूध पिलाती, पालती पोसती हैं। (अन्यस्यां) एक की गोद में (हरिः भवति) मनोहर श्याम रंग का बालक हो और (अन्यस्यां सुवर्चाः शुक्रः ददृशे) दूसरी की गोद में शुक्र, शुद्ध उज्वल वर्ण का बालक हो। उसी प्रकार (द्वे) दोनों (विरूपे) प्रकाश और अन्धकार से भिन्न २ रूप के दिन और रात्रि (सु-अर्थे) अपने उत्तम जगत् के कल्याण करने के प्रयोजन से ( चरतः ) मानो दो स्त्रियों के समान विचरते हैं। वे दोनों (अन्या-अन्या) एक दूसरे के या पृथक् २ अपने २(वत्सम् उपाधापयेते) अग्नि और सूर्य या चन्द्र और सूर्य दोनों को बालक के समान ही अपना रस प्रदान करके पुष्ट करते हैं। अर्थात् रात्रि के गर्भ से उत्पन्न सूर्य का पोषण दिन करता है और दिन से उत्पन्न अग्नि का पोषण रात्रि करती है। सूर्य और अग्नि उन दोनों को अधिक उज्वल रूप में प्रकट करना उनका पोषण करना है। ( अन्यस्याम् ) एक में या अपनी जननी दिन वेला में ( हरिः ) जलों और रसों का हरण करने वाला सूर्य (स्वधावान् भवति) अपनी रश्मियों से जल को धारण करने वाला होता है। ( अन्यस्याम् ) और दूसरी रात्रि में ( शुक्रः ) शुद्ध कान्तिमान् अग्नि या जल ही ( सुवर्चाः ) उत्तम तेजस्वी होकर (ददृशे) दिखाई देता है। (२)अथवा—(द्वे) दोनों रात्रि और दिन, भिन्न २ रूप के होकर उत्तम प्रजा पालन के कार्य में परस्पर मिलकर ( वत्सं ) बसे हुए संसार को बालक के समान पालते हैं। ( अन्यन्यां ) दिन से भिन्न रात्रिकाल में (हरिः) उष्णता को दूर करने वाला चन्द्र ( स्वधावान् ) अपने गुण से धारण करने योग्य ओषधि रस से युक्त होता है और ( अन्यस्यां ) दूसरी, रात्रिकाल से भिन्न दिन वेला में (शुक्रः) कान्तिमान सूर्य उज्वल रूप में दिखाई देता है॥ अथवा—आकाश और पृथिवी दोनों संसार रूप बालक को या सूर्य और अग्नि या मेघ और अग्नि को पालते हैं, सूर्य औरमेघ दोनों जल लेने और लाने से 'हरि' और 'स्वधावान्' हैं। अग्नि तेजस्वी होने से 'शुक्र' है। अध्यात्म में—विरूप अर्थात् भिन्न रूप के प्राण और अपान दो प्राण

की गति हैं। वे देह में बसे आत्मा को पुष्ट करती हैं। एक देह को धारण करने और अन्न को पचाने और भूख लगाने वाला होने से प्राण 'हरि' है दूसरा अपान अर्थात् नाभि से नीचे के अधश्चारी प्राणशक्ति में शुक्र, वीर्य जो देह में कान्तिजनक होता है वह आश्रित है। (४) इसी प्रकार ब्राह्मण वर्ग और क्षत्र वर्ग, ये दोनों शान्त और उग्र स्वभाव से भिन्न २ होकर भी परस्पर मिल-कर प्रमुख विद्वान् और नेता को, तथा बसते प्रजाजन को पालते हैं, एक में ज्ञानवान् विद्वान् है दूसरे में तेजस्वी नायक है। (५) आकाश और पृथिवी दोनों दो भिन्न २ रूप वाली होकर वत्सरूप वायु या मेघ को पुष्ट करते है अर्थात् जल से पूर्ण करते हैं, या बसे प्राणि संसार को पालते हैं। एक की गोद में हरि सूर्य हे दूसरे की गोद में 'शुक्र' अर्थात् जल है।

दशेमं त्वष्टुर्जनयन्त गर्भमतन्द्रासो युवतयो विभृत्रम्।
तिग्मानीकं स्वयशसं जनेषु विरोचमानं परि षीं नयन्ति ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार ( दश युवतयः ) दस जवान स्त्रियें ( जनेषु विरोचमानं ) मनुष्यों में विशेष तेज से तेजस्वी (तिग्मानीकं) तीक्ष्ण तेज से उज्वल मुख वाले, या तीक्ष्ण सैन्य वाले ( स्वयशसं ) अपने बाहुबल से यशस्वी पुरुष को अपने २ पति रूप से ( परि नयन्ति ) परिणय करती हैं और वे दसों जैसे ( अतन्द्रासः ) आलस्य रहित होकर ( त्वष्टुः ) अपने तेजस्वी पति से प्राप्त ( विभृत्रम् ) विविध उपायों से भरण पोषण किये ( गर्भम् ) गर्भ को ( अतन्द्रासः ) अनालस्य होकर ( जनयन्त ) उत्पन्न करती हैं उसी प्रकार (दश) ये दश दिशाएं, उन मेव बसी प्रजाएं (युव-तयः ) परस्पर मिलने और न मिलने अर्थात् पृथक् २ रहने से हैं वे दसों ( जनेषु ) लोगों में ( विरोधमानं ) विविध गुणों से प्रकाशमान, ( तिग्मा-नीकं ) तीक्ष्ण सेना बल से युक्त, ( स्वयशसं ) अपने भुजाओं से कीर्त्ति की कामना वाले पुरुष को, सूर्य को दिशाओं के समान ( सीं परि नयन्ति ) सब तरफ से घेर लेतीं, उसके शरण प्राप्त होती हैं और वे ( इमं ) उस

( विभृत्रम् ) विविध उपायों से भरण पोषण करने वाले बलवान् पुरुष को ( त्वष्टुः गर्भम् ) तेजस्वी सैन्यबल को तेजस्वी सूर्य के समान प्रतापी ( गर्भम् ) वश करने में समर्थ करते हैं। ( अतन्द्रासः ) आलस्य रहित होकर ( जनयन्त ) उत्पन्न करते हैं।

त्रीणि जाना परि भूषन्त्यस्य समुद्र एकं दिव्येकमप्सु ।
पूर्वामनु प्रदिशं पार्थिवानामृतून्प्रशासद्वि दधावनुष्ठु ॥ ३ ॥

भा०—( १ ) ( अस्य ) इस अग्रणी नायक के ( जाना ) प्रजा जनों के हितार्थ ( त्रीणि ) तीन रूप ( परिभूषन्ति ) होते हैं। ( एकं समुद्रे ) एक रूप उसका समुद्र में है। अर्थात् वह समुद्र के समान गम्भीर हो। ( एकं दिवि ) एक रूप उसका महान् आकाश या सूर्य में है, अर्थात् वह सूर्य के समान तेजस्वी और आकाश के समान महान्, सब पर वशी हो। तीसरा रूप (अप्सु) जलों या प्राणों में है, अर्थात् वह सबके जीवनों का आधार और शान्तिदायक हो। वह तीन ही कार्य करता है जैसे प्रथम, वह (पूर्वाम् दिशम् अनु प्रशासत्) अपने मुख्य दिशा या देश को शासन करता है। दूसरे, ( पार्थिवानां मध्ये ) राजाओं और पृथिवी निवासी प्रजाजनों के बीच में ( ऋतून् ) प्राणस्वरूप मुख्य राजसभा के सदस्यों को ( प्रशासत् ) अच्छी प्रकार शासन करे। तीसरा ( अनुष्ठु ) सब काम ठीक २ प्रकार से ( वि दधौ ) धारण करे और विधान अर्थात् कायदे क़ानून की व्यवस्था करे। ( २ ) अग्नि के पक्ष में—अग्नि के तीन रूप हैं एक समुद्र में वाडवाग्नि, दूसरा आकाश में सूर्य, एक प्राणों में जाठर या अन्तरिक्ष में विद्युत् वह सूर्य रूप से उदय होकर पूर्व दिशा को प्रकट करता है ऋतुओं को बनाता है। सब काम ठीक २ नियम से निभाता है। इसी प्रकार काल के तीन रूप भूत, भवत् और भविष्यत्। वह सर्वत्र हैं। वह सूर्य रूप से उक्त तीनों कार्य करता है। आत्मा के भी तीन जन्म या रूप हैं। एक (समुद्रे) समुद्र अर्थात् जल में, जीवनोत्पादक अंश दूसरे आकाश में तेजो रूप,

तीसरा ( अप्सु ) प्राणों में वायु रूप। वह आत्मा पार्थिव देहों के बीच मुख्य दिशा अर्थात् चेतना को प्रकट करता है, ( ऋतून् ) प्राणों को वश करता और अपने अनुकूल समस्त कर्म करता है। इसी प्रकार परमेश्वर के तीन रूप—एक महान् आकाश में, एक सूर्य में, एक प्राणों में, वह सब लोकों में मुख्य शक्ति धरता है, वह गतिमान् पदार्थों को चलाता और सब को (अनुष्ठु) अपने अधीन ठीक २ प्रकार से बनाता या रचता है।

क इमं वो निण्यमा चिकेत वत्सो मातृर्जनयत स्वधाभिः।
बह्वीनां गर्भो अपसामुपस्थान्महान्कविर्निश्चरति स्वधावान् ॥४॥

भा०—सूर्य और तत्सदृश राजा की बालक के समान उत्पत्ति का रहस्य कहते हैं। ( इमं ) इस ( निण्यम् ) छुपे रहस्य को ( कः ) कौन ( आचिकेत ) जानता है कि ( वत्सः ) बालक ( स्वधाभिः ) स्वधाओं से प्राणशक्तियों से ( मातृः जनयत ) माताओं को पैदा कराता अर्थात् अपने बलों से ही माताओं का प्रसव करने में प्रेरित करता है, या प्रकट करता है। ( वत्सः ) समस्त प्राणियों को बसाने वाला सूर्य रूप बालक ( स्वधाभिः ) अपने धारण पोषण सामर्थ्यों, कान्तियों से ( मातृः ) माता रूप दशों दिशाओं को प्रकट करता है। मेघ रूप वत्स ( स्वधाभिः ) जलों से ( मातृः ) समस्त ओषधियों की उत्पादक भूमियों से ( जनयत ) अन्न उत्पन्न करवाता है। वृष्टि जलों से भूमियों में ओषधि अन्न वृक्षादि उपजते हैं। इसी प्रकार ( वत्सः ) सब के बसाने वाला राजा ( स्वधाभिः ) अन्नों और वेतनों तथा स्वराष्ट्र को धारण, शासन पोषण की शक्तियों से ही ( मातृः ) विद्वान् ज्ञानी पुरुषों तथा अपने को राजा बनानेवाली प्रजाओं को ( जनयत ) प्रकट करता है या उनको अपने राजा बनाने के लिये प्रेरित करता है। (२) मातृ गर्भ में जिस प्रकार ( गर्भः ) गर्भ रूप बालक ( बह्वीनाम् अपसाम् उपस्थात् ) बहुत से जलों की गोद में से ही प्रकट होता है और सूर्य जिस प्रकार ( बह्वीनां अपसां उपस्थात् गर्भः ) बहुत

से जलों अर्थात् समुद्र में से निलकता प्रतीत होता है और आत्मा जैसे (बह्वीनां अपसां गर्भः ) बहुत से नाना प्राणों के भीतर गर्भ के समान घिरा रह कर उनके बीच में से प्रकट होता है उसी प्रकार तेजस्वी राजा (बह्वीनाम् ) बहुत सी, नाना प्रकार की ( अपसाम् ) आप्त प्रजाओं के बीच ( गर्भः ) गर्भ के समान घिरा हुआ, या उनको अपने वश में ग्रहण करने हारा होकर उनके ( उपस्थात् ) बीच में से ही उत्पन्न या प्रकट होता है । वह ( स्वधावान् ) स्वयं अपनी शक्ति से युक्त होकर ( महान् ) गुणों में महान् और ( कविः ) क्रान्तदर्शी होकर ( निश्चरति ) प्रकट होता है । इसी प्रकार अग्नि अपने तेजों से मातृ रूप काष्ठों को उज्ज्वल करता है । वह विद्युत् रूप से जलों के बीच में प्रकट होता है । वह दूर तक दीखने वाले आदित्य रूप से आकाश में विचरता है ।

आविष्ट्यो॑ वर्धते॒ चारु॑रासु जि॒ह्मना॑मू॒र्ध्वः स्वय॑शा उ॒पस्थे॑ ।
उ॒भे त्वष्टु॑र्बिभ्यतु॒र्जाय॑मानात्प्रती॒ची सिं॒हं प्रति॑ जोषयेते ॥ ५॥ १ ॥

भा०—जिस प्रकार ( आसु उपस्थे ) इन गर्भ धारण करने हारी माताओं के भीतर ( उपस्थे ) गर्भाशय में ( आविष्ट्यः ) बाद में वेदना पीड़ा उत्पन्न करने वाला बालक ( बर्धते ) वृद्धि को प्राप्त होता है । और वह ( जिह्मानाम् ऊर्ध्वः ) कुटिल आकार की नाड़ियों के ऊपर ( स्वयशाः ) अपने आत्मा के बल परया माता के अपने खाये अन्न पर पलता है । (उभे) दोनों माता पिता ( त्वष्टुः जायमानात् ) उत्पन्न होते हुए पीड़ाजनक या तेजस्वी बालक से ( बिभ्यतुः ) उस समय भय खाते हैं कि कहीं वह बाहर आता हुआ माता की मृत्यु आदि का कारण न हो । ( प्रतीची ) वे दोनों उसके प्रत्यक्ष देखने पर ( सिंहं ) पीड़ाजनक बालक को ही ( प्रति जोषयेते ) स्नेह करते हैं । ठीक इसी प्रकार (आविःत्यः) स्वयं अपने तेजों से प्रकट होने वाला ( चारुः ) उत्तम श्रेष्ठ नायक राजा ( जिह्मानाम् ऊर्ध्वः ) कुटिल, कूट षड्यन्त्रकारियों के भी ऊपर, उनसे अधिक प्रबल

होकर ( स्वयशाः ) अपने बल से यशस्वी होता हुआ और ( आसु उपस्थे ) इन प्रजाजनों के बीच, उनके ही मानो गोद में, उन पर अधिष्ठित होकर ( वर्धते ) बृद्धि को प्राप्त होता, अधिक शक्तिशाली हो जाता है। ( जायमानात् ) उत्पन्न या प्रकट होते हुए उस ( त्वष्टुः ) सूर्य के समान तेजस्वी राजा से ( उभे ) राजवर्ग और प्रजा वर्ग तथा स्ववर्ग और शत्रुवर्ग दोनों ( बिभ्यतुः ) भय करते हैं। और वे दोनों ( प्रतीची ) उसके सन्मुख आकर ( सिंहम् प्रति ) उस सिंह के समान पराक्रमी एवं सहनशील और शत्रुओं के हिंसक बलवान् राजा को ( जोषयेते ) आदर और प्रेम से देखते और उसकी सेवा करते अर्थात् उसकी आज्ञा का पालन करते हैं। ( २ ) सूर्य प्रकट होता हुआ दिशाओं के ऊपर विद्यमान रहता है ( उभे ) दिन रात्रि दोनों उदयकाल में उससे भय करती अर्थात् रात्रि भागती और दिन उसके पीछे चलता है दोनों उसके अधीन हैं। उदय के बाद उस अन्धकारनाशक सूर्य को ( प्रतीची ) पूर्व और पश्चिम दोनों सूर्य का सेवन करती हैं। ( ३ ) विद्युत् कुटिलता से जाने वाले मेघस्थ जलों के बीच में ऊपर २ पृष्ठ भाग पर रहता है अपने तेज से चमकता है, उसके प्रकट होने पर अन्तरिक्ष और पृथिवी दोनों कांपते हैं। उसका सेवन करते हैं। (४) अग्नि काष्ठों के बीच में ऊर्ध्व ज्वाला होकर अपने तेज से प्रकट रूप से जलता है। दोनों अरणि-काष्ठ जल जाने के भय से डरते हैं, वे उसी जलाने वाले से स्नेह भी करती हैं। इति प्रथमो वर्गः ॥

उभे भद्रे जोषयेते न मेने गावो न वाश्रा उप तस्थुरेवैः।
स दक्षाणां दक्षपतिर्बभूवाञ्जन्ति यं दक्षिणतो हविर्भिः ॥ ६ ॥

भा०—( भद्रे मेने न ) सेवने योग्य, शोभन अंग वाली, सुखप्रद दो स्त्रियां जैसे एक ही पुरुष को प्रेम करें उस प्रकार मानो ( उभे ) दोनों पक्षों की प्रजाएं ( यं ) जिस उत्तम पुरुष को ( जोषयेते ) प्रेम करती हैं ( वाश्राः गावः न ) जिस प्रकार हंभारती हुई गौवें ( एवैः ) अपने

शीघ्रतापूर्वक गमनों द्वारा अपने बच्चों को पहुंचती है उस प्रकार (गावः) भूमि वासी प्रजाजन भी ( यम् उपतस्थुः ) जिसके पास प्रेम से पहुंचते हैं और जिस प्रकार ( हविर्भिः ) नाना यज्ञ-सामग्रियों से ( दक्षिणतः ) दक्षिणायन काल में अथवा दायें हाथ से अग्नि को प्रज्वलित करते हैं उसी प्रकार (यं) जिस वीर नायक विद्वान् जन को (हविर्भिः) नाना स्वीकार योग्य उपायों द्वारा ( दक्षिणतः ) दक्षिण अर्थात् दायें हाथ की ओर ( अञ्जन्ति ) सुशोभित करते हैं, (सः) वह ( दक्षाणाम् ) समस्त क्रिया-कुशल पुरुषों में से (दक्षपतिः ) सबका स्वामी, सबसे बड़ा ( बभूव ) हो। (२)सूर्य को आकाश और पृथ्वी दोनों सेवते हैं, किरणें उसे अपने प्रकाशों से प्राप्त होती हैं। (दक्षिणतः) दक्षिणायन काल में वे किरणें उसके प्रकाश को अधिक उज्ज्वल कर देते हैं। वह सब यज्ञ क्रियासाधकों का स्वामी है।

**उद्यंयमीति सवितेव बाहू उभे सिचौ यतते भीम ऋञ्जन्।**
**उच्छुक्रमत्कंमजते सिमस्मान्नवा मातृभ्यो वसना जहाति ॥ ७ ॥**

भा०—( सविता इव ) सूर्य जिस प्रकार ( सिचौ ) वृष्टि करने वाले वायु और मेघ दोनों को ( ऋञ्जन् ) अपने वश करता हुआ ( उत् यंयमीति ) ऊपर उठाता और नियम में रखता है और समस्त भूमण्डल से ( अत्कम् ) सार भूत, व्यापक, सूक्ष्म (शुक्रम्) जल को ऊपर खींच लेता है और पुनः बरसाकर भूमियों को नये हरे चोले पहना देता है उसी प्रकार जो नेता, सेनानायक (भीमः) शत्रुओं के लिये भयंकर होकर ( उभे सिचौ ) दोनों पक्षों की शस्त्र-वर्षण-कारी सेनाओं को ( बाहू ) दो बाजुओं के समान ( उद् यंयमीति ) युद्ध के लिये उद्यत करता है, उनको सदा आक्रमण के लिये तैयार रखता है और ( ऋञ्जन् ) उनको अच्छी प्रकार तैयार करता हुआ ( उत् यतते ) आक्रमण का उद्योग करता है वह ( सिमस्मात् ) समस्त राष्ट्र से ( शुक्रम् ) शीघ्र कार्य करने वाले चुस्त, बलवान्, पराक्रमशील ( अत्कम् ) निरन्तर गतिशील सैन्य-बल को

( उत्-अजते ) उठा लेता है, चुन लेता है और ( मातृभ्यः ) माता के समान अपने शरीर को अर्पण करके रक्षा करने वाली सेनाओं को ( नवा वसना ) नयी २ पोशाकें (जहाति) प्रदान करता है। अथवा—(मातृभ्यः) मातृ रूप भूमियों को नये वस्त्रों के समान नये रक्षक सैन्य प्रदान करता है। शुक्रम् इत्युदकनाम। निघ० ॥

त्वेषं रूपं कृणुत उत्तरं यत्संपृञ्चानः सदने गोभिरद्भिः।
कविर्बुध्नं परि मर्मृज्यते धीः सा देवताता समितिर्बभूव ॥ ८ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार ( गोभिः अद्भिः ) किरणों और जलों से युक्त होकर अपने ( उत्तरं त्वेषं कृणुते ) प्रदीप्त तेज को और अधिक उत्कृष्ट कर लेता है और ( कविः ) दूर तक प्रकाश फेंकने हारा ( बुध्नं परि मर्मृज्यते ) अन्तरिक्ष को भी स्वच्छ कर देता है तब ( देवताता समितिः बभूव ) प्रकाशमान किरणों की एकत्र स्थिति होती है उसी प्रकार राजा (यत्) जब (सदने) एक ही सभा-भवन में (गोभिः) ज्ञानी पुरुषों और ( अद्भिः ) आप्त जनों या ( गोभिः ) भूमि निवासी प्रजाओं और विद्वान् आप्त जनों सहित ( सं पृञ्चानः ) समान रूप से संगत होकर भी अपने ( त्वेषं रूपं ) उज्वल रूप को ( उत्तरं ) उनसे उत्कृष्ट ( कृणुते ) बना लेता है ( धीः ) धारक, बुद्धिमान्, व्यवस्थापक ( कविः ) विद्वान् क्रान्त-दर्शी पुरुष ( बुध्नं ) सबके आश्रय रूप, सबको एकत्र बांधने वाले मुख्य केन्द्रस्थ पद को ( परि मर्मृज्यते ) सुशोभित करता है तब ( सा ) वही ( देवताता ) विद्वानों की राजकीय ( समितिः ) सभा ( बभूव ) बन जाती है। अर्थात् देवसभा या राजसभा में विद्वानों और भूमिवासी प्रजाओं के प्रतिनिधि हों। विद्वान्, ज्ञानी और सभा पर वश करने में समर्थ पुरुष मुख्य सभापति पद पर विराजें।

उरु ते ज्रयः पर्येति बुध्नं विरोचमानं महिषस्य धाम।
विश्वेभिरग्ने स्वयशोभिरिद्धोऽदब्धेभिः पायुभिः पाह्यस्मान् ॥९॥

भा०—( महिषस्य ) बड़े भारी सूर्य का ( त्रयः ) अन्धकार को नाश करने वाला, ( विरोचमानं ) विशेष रूप से देदीप्यमान, (धाम) तेज जिस प्रकार ( बुध्नं परि एति ) आकाश या अन्तरिक्ष को व्याप लेता है उसी प्रकार हे (अग्ने) सूर्य और अग्नि के समान तेजस्विन् ! नायक राजन् ! (महिषस्य ) बड़े दानशील, ( ते ) तेरा ( त्रयः ) शत्रुओं को पराजय करने वाला, ( विरोचमानं ) विविध प्रकार की प्रजा को प्रिय लगने वाला, अति देदीप्यमान ( उरु ) बड़ा भारी ( धाम ) तेज भी ( बुध्नम् ) सबको बांधने वाले, मुख्य, आश्रय रूप भूलोक या राष्ट्र को या मुख्य पद को (परि- एति ) प्राप्त करता है तू ( विश्वेभिः स्वयशोभिः ) अपने समस्त यशों से ( इद्धः ) सूर्य और अग्नि के समान ही खूब तेजस्वी होकर ( अदब्धेभिः ) कभी नाश को प्राप्त न होने वाले, स्थायी ( पायुभिः ) रक्षा प्रबन्धों से ( अस्मान् पाहि ) हमारी रक्षा कर ।

**धन्व॑न्त्स्रोतः॑ कृणुते गातुमूर्मिं शुक्रैरूर्मिभिरभि न॑क्षति॒ क्षाम् ।
विश्वा॒ सना॑नि ज॒ठरे॑षु धत्तेऽन्तर्नवा॑सु चरति प्र॒सूषु॑ ॥ १० ॥**

भा०—सूर्य जिस प्रकार (धन्वन् स्रोतः कृणुते) अन्तरिक्ष में जल के प्रवाह को मेघ रूप से उत्पन्न करता है । अथवा वह (ऊर्मिम्) ऊपर उठने वाले जल-प्रवाह को या दीप्ति को ( गातुम्) दूर तक जाने वाला या भूमि को प्राप्त होने वाला करता है और (ऊर्मिभिः शुक्रैः) ऊपर उठे जलों से ही ( क्षाम् नक्षति ) पृथिवी को व्याप लेता है अर्थात् उन्हें भी भूमि पर बरसा देता है । और ( विश्वा सनानि ) समस्त देने योग्य जलों या अन्नों को ( जठरेषु ) परिपाक योग्य ओषधि बनस्पतियों के बीच में धारण पोषण करता और ( नवासु प्रसूषु ) नयी उत्पन्न होने वाली लताओं में ( अन्तः चरति ) रस परिपाक करने वाले तेज रूप से व्यापता है । उसी प्रकार राजा भी ( धन्वन् ) मरु भूमियों में ( स्रोतः ) जल प्रवाह को नहरों के रूप में ( कृणुते ) बनवावे । वह ( गातुम् ) मार्ग और भूमि को

( ऊर्मिम् ) जल तरङ्ग के समान उत्तम बनवावे । ( ऊर्मिभिः शुक्रैः ) जल-तरंगों या ऊर्ध्व देश में स्थित जलों से ( क्षाम् नक्षति ) भूमि को सिचवावे । ( जठरेषु ) प्राणियों के पेटों में ( विश्वा सनानि ) सब प्रकार के अन्न प्रदान करे, अथवा ( जठरेषु ) भीतरी कोषों में ( विश्वा सनानि ) सब दान देने योग्य ऐश्वर्यों को धारण करे । ( नवासु ) नयी ( प्रसूषु ) उत्तम भूमियों में, भूवासिनी प्रजाओं में ( अन्तः चरति ) उनके भीतर विचरे ।

एवा नो अग्ने समिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥२

भा०—अग्नि जिस प्रकार ( समिधा ) काष्ठ से बढ़ता हुआ विशेष दीप्तिसे चमकता है उसी प्रकर हे ( अग्ने ) अग्नि और सूर्य के समान तेजस्वी राजन् ! ( एवैः ) पूर्वोक्त प्रकारों से (नः ) हमारे बीच ( समिधा ) एक साथ तेजस्वी होने के उपाय से (वृधानः) बढ़ता और हम राष्ट्र वासियों को बढ़ाता हुआ ( रेवत् श्रवसे ) ऐश्वर्य से युक्त ज्ञान, यश और ऐश्वर्य की प्राप्ति के लिये ( वि भाहि ) विशेष रूप से चमक । ( मित्रः वरुणः-अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ) सूर्य, मेघ, अखण्ड शासन, समुद्र, पृथिवी और आकाश ये सब ( नः ) हमें ( तत् ) वह ऐश्वर्य सम्पदा ( मामहन्ताम् ) प्रदान करें । इति द्वितीयो वर्गः ॥

[ ९६ ]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ द्रविणोदा अग्निः शुद्धोग्निर्वा देवता ॥ त्रिष्टुप् छन्दः ॥
नवर्चं सूक्तम् ॥

स प्रत्नथा सहसा जायमानः सद्यः काव्यानि बळधत्त विश्वा ।
आपश्च मित्रं धिषणा च साधन्देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥१॥

भा०—( देवाः ) ऐश्वर्य की कामना करने वाले, विजयेच्छु लोग

( द्रविणोदाम् ) ऐश्वर्यों के देने वाले ( अग्निम् ) अग्रणी और अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष को ( धारयन् ) धारण करें और वे ( आपः च ) प्राणों को, आप्त जनों को ( मित्रम् ) स्नेही मित्र और बन्धु को ( धिषणा च ) बुद्धि बल को भी ( साधन् ) अपने बश करें। ( सः ) वह ऐश्वर्य देने वाला नायक, वीर पुरुष ( प्रत्नथा ) पुरातन, अपने से पूर्व के नायकों के समान उनके ही चरणचिह्नों पर चलता हुआ और (सहसा) शत्रुओं को पराजय करने वाले सैन्य बल से ( जायमानः ) विजयी और यशस्वी होता हुआ ( सद्यः ) शीघ्र ही ( विश्वा ) सब प्रकार के ( काव्यानि ) विद्वान् कवियों के काव्यमय स्तुति वचनों को ( बट् ) वस्तुतः ( अधत्त ) अपने में धारण करे। ( २ ) परमेश्वर अपने सामर्थ्य से सदा समस्त विद्वानों का स्तुति का पात्र है, वह पुराण पुरुष है। वह प्राणों को, सूर्य को और प्रज्ञानों को वश करता है वे विद्वान्, ऐश्वर्यप्रद परमेश्वर को अपने में धारण करते हैं।

**स पूर्वया निविदा कव्यतायोरिमाः प्रजा अजनयन्मनूनाम्।**
**विवस्वता चक्षसा द्यामपश्च देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥२॥**

भा०—( सः ) वह परमेश्वर ( पूर्वया ) ज्ञान से पूर्ण और सब संसार से भी पूर्व विद्यमान ( निविदा ) ज्ञानमय ( कव्यता ) परम कवि परमेश्वर द्वारा प्रकाशित वाणी से ही ( आयोः ) सनातन, चैतन्य मय कारण से ( मनूनाम् ) मननशील पुरुषों की ( इमाः प्रजाः ) इन समस्त प्रजाओं को ( अजनयत् ) उत्पन्न करता है। अथवा ( मनूनाम् ) मन्वन्तरों में उत्पन्न होने वाली ( आयोः इमाः प्रजा ) मनुष्य की इन प्रजाओं को ( अजनयत् ) उत्पन्न करता है। वही ( विवस्वता ) विविध वसु अर्थात् बसे हुए लोकों के स्वामी रूप ( चक्षसा ) सब जगत् के प्रकाशक सूर्य से ( द्याम् ) प्रकाश और ( आपः च ) सूक्ष्म जलांशों को धारण करता है। उस ( द्रविणोदाम् ) परमैश्वर्यप्रद ( अग्निम् ) सब के

आगे विद्यमान अनादि सिद्ध परमेश्वर को ( देवाः ) विद्वान् जन ( धारयन् ) धारण करते हैं। राजा भी ( पूर्वया कव्यता निविदा ) पूर्व के मेधावी, ज्ञानवान् पुरुषों के ज्ञानमय उपदेश किये वाणी से ( मनूनां इमाः आयोः प्रजाम् ) मननशील पुरुषों में बसी मनुष्य की प्रजा को ( अजनयत् ) उत्पन्न करे। ( विवस्वता चक्षसा ) विविध बसी प्रजा के स्वामी की दृष्टि से ( द्याम् अपः च ) ज्ञान और कर्मों को प्रकाश करता हुआ उनको धारण करे। ( देवाः ) विद्वान् गण उसी ऐश्वर्यप्रद नायक को धारण करें।

तमी॑ळत प्र॒थ॒मं य॑ज्ञ॒साधं॒ विश॒ आरी॒राहु॑तमृञ्ज॒सा॒नम्।
ऊ॒र्जः पु॒त्रं भ॑र॒तं सृ॒प्रदा॑नुं दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन्द्रविणो॒दाम् ॥ ३ ॥

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( तम् ) उस (प्रथमं) सब से प्रथम विद्यमान सर्वश्रेष्ठ, ( यज्ञसाधम् ) महान् ब्रह्माण्ड रूप यज्ञ को वश करने वाले, अथवा यज्ञों और श्रेष्ठ कर्मों द्वारा प्राप्त करने योग्य परम पुरुष की ( ईडत ) उपासना, स्तुति, प्रार्थना करें। ( आरीः ) प्राप्त करने योग्य या स्वयं शरण में आने वाली ( विशः ) प्रजाओं को ( ऋञ्जसानम् ) उत्तम रीति से समृद्ध करते हुए, (ऊर्जः) बल, अन्न से (पुत्रं) उत्पन्न, पुरुष को क्षुधादि मरण से त्राण करने वाले, ( भरतं ) भरणपोषण करने वाले तथा ( सृप्रदानुम् ) सर्पणशील, व्यापक चेतना या बल को देने वाले प्राण और अन्न को उत्पन्न करने वाले ( आहुतम् ) सर्वपूज्य ( द्रविणोदाम् ) धनैश्वर्य के दायक परमेश्वर को ( देवाः अधारयन् ) देवगण धारण करें।

स मा॑त॒रिश्वा॑ पु॒रु॒वार॑पुष्टिर्वि॒दद्गा॒तुं तन॑याय स्व॒र्वित्।
वि॒शां गो॒पा ज॑नि॒ता रोद॑स्योर्दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन्द्रविणो॒दाम् ॥ ४ ॥

भा०—( सः ) वह परमेश्वर ( मातरिश्वा ) आकाश में व्यापक वायु के समान जगत् को निर्माण करने में उपादान रूप प्रकृति के परमाणु २ में व्यापक, एवं ( मातरिश्वा ) प्रमाता, ज्ञानकर्त्ता आत्मा के भी भीतर वर्तमान

रह कर (पुरुवार-पुष्टिः) बहुत से अभिलाषा करने योग्य ऐश्वर्यों और काम्य-सुखों की सम्पत्ति को देने हरा, ( स्वर्वित् ) सब सुखों, ज्ञान प्रकाशों को प्राप्त कराने हारा होकर ( तनया ) पुत्र के लिये माता पिता के समान और शिष्य को आचार्य के समान ( गातुम् ) ज्ञानमयी वाणी वेद का ( विदत् ) ज्ञान कराता है। वह ( विशां गोपाः ) समस्त प्रजाओं का रक्षक ( रोदस्योः ) सूर्य और पृथिवी और आकाश पृथिवी का ( जनिता ) उत्पादक है। ( देवाः ) विद्वान् गण उसी ( द्रविणोदाम् ) समस्त ऐश्वर्यों को देने वाले ( अग्निम् ) ज्ञानस्वरूप परमेश्वर को ( धारयन् ) धारण करते और उसकी स्तुति करते हैं। (२) उसी प्रकार राजा, (मातरिश्वा) अपने माता पृथिवी के अधार पर जीने वाला, बहुत से ऐश्वर्यों का दाता, सुखप्रद होकर प्रजाओं को पुत्र के समान जान ( गातुम् ) भूमि आदि प्रदान करे। वह प्रजाओं का रक्षक और राजा प्रजा वर्गों का उत्पादक है। विजयेच्छु वीर जन उस ऐश्वर्यप्रद, वृत्तिदाता नायक की रक्षा करें।

**नक्तोषासा वर्णमामेम्याने धापयेते शिशुमेकं समीची।**
**द्यावाक्षामा रुक्मो अन्तर्विभाति देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम्॥५॥**

भा०—जिस प्रकार दो स्त्री पुरुष (समीची आमेम्याने) परस्पर अच्छी प्रकार मिल कर (एकं शिशुं धापयेते) एक बालक को दुग्ध आदि पान कराते पालते पोसते हैं और जिस प्रकार ( नक्तोषासा) रात और दिन ( समीची ) अच्छे प्रकार संगत होकर ( वर्णम् आमेम्याने ) एक दूसरे के वर्ण का अर्थात् रूप का नाश करती हुई (एकं शिशुं धापयेते) बीच में स्थित सूर्य को बालक के समान धारण करती हैं और वह (रुक्मः) कान्तिमान होकर (द्यावाक्षामा) आकाश और भूमि के ( अन्तः विभाति ) बीच में शोभा पाता और चम-कता है। ( देवाः ) किरण गण उस ( द्रविणोदाम् ) प्रकाश और जीवन देने वाले सूर्य रूप अग्नि को ( धारयन् ) धारण करते हैं। विद्वान् गुरुजन उस गुरु दक्षिणादि देने वाले बालक को अपने भीतर शिष्य रूप से धारण

करते हैं उसी प्रकार दिन रात्रि के समान दो प्रकार की संस्थाएं, विद्वत्सभा और राजसभा दोनों ( समीची ) परस्पर संगत होकर ( वर्णम् आमेम्याने ) भेद भाव को नाश करती हुई ( एकं ) एक ( शिशुम् ) ज्ञानवान् पुरुष को ( धापयेते ) पुष्ट करें। ( रुक्मः ) सब को रुचिकर, प्रिय नायक ( द्यावाक्षामा ) ज्ञानवान् विद्वानों और भूमि के वासी प्रतिनिधियों के ( अन्तः ) बीच में ( विभाति ) विशेष रूप से विराजे। ( देवाः ) विद्वान् पुरुष ( द्रविणोदाम् ) ज्ञान और ऐश्वर्यों के देने वाले उस ( अग्निम् ) अग्रणी नायक को व्यवस्थापक के रूप में ( धारयन् ) धारण करें। इति तृतीयो वर्गः ॥

रायो बुध्नः संगमनो वसूनां यज्ञस्य केतुर्मन्मसाधनो वेः।
अमृतत्वं रक्षमाणास एनं देवा अग्निं धारयन्द्रविणोदाम् ॥ ६ ॥

भा०—जो ( रायः ) समस्त ऐश्वर्यों का ( बुध्नः ) आश्रय, मूल कारण और ( वसूनां ) समस्त वास करने हारे जीवों और राष्ट्रवासियों को ( संगमनः ) एक साथ मिलाने हारा, सब को जोड़ने हारा ( यज्ञस्य ) एक दूसरे से लेन देन के, और आदर सत्कार और परस्पर संग के व्यवहार को बतलाने हारा ( वेः ) अभिलाषा करने योग्य पदार्थ का ( मन्मसाधनः ) इच्छानुरूप रीति से प्राप्त कराने वाला है ( एनं अग्निम् ) उस अग्रणी नायक, ( द्रविणोदाम् ) ऐश्वर्यप्रद पुरुष को ( अमृतत्वं रक्षमाणासः ) अविनाशी स्थिर पद की या दीर्घजीवन की रक्षा करते हुए (देवाः) विद्वान् और वीर जन ( धारयन् ) धारण करते हैं। (२) परमेश्वर ( रायः बुध्नः ) सब ऐश्वर्यों का आश्रय तथा ( बुध्नः ) बोध कराने वाला ( वसूनां ) पृथिवी आदि लोकों का ज्ञान कराने वाला है। वही ( यज्ञस्य केतुः) विद्यादि तथा श्रेष्ठ कर्मों का ज्ञान कराता है। वही ( वेः मन्म ) काम्य कर्मों का ज्ञान कराने वाला है तथा आश्रय। (अमृतत्वं रक्षमाणासः देवाः) मोक्षभाव अर्थात् सांसारिक बन्धनों से मुक्त दशा को प्राप्त हुए विद्वान् जन

उसी को ( द्रविणोदाम् अग्निम् ) ऐश्वर्यप्रद, ज्ञानस्वरूप करके ( धारयन् ) मानते और जानते हैं ।

नू च॑ पु॒रा च॒ सद॑नं रयी॒णां जा॒तस्य॑ च॒ जाय॑मानस्य च॒ क्षाम् ।
स॒तश्च॑ गो॒पां भव॑तश्च॒ भूरे॑र्दे॒वा अ॒ग्निं धा॑रयन्द्रविणो॒दाम् ॥ ७ ॥

भा०—( नू च ) अब और ( पुरा च ) पहले भी ( रयीणां ) समस्त ऐश्वर्यों का ( सदनम् ) एकमात्र आश्रय, ( जातस्य च ) उत्पन्न हुए कार्य-जगत् के और ( जायमानस्य च ) पुनः २ उत्पन्न होने वाले संसार के ( क्षाम् ) एकमात्र आश्रय, ( सतः च ) अनादि काल से वर्तमान अविनाशी कारण और ( भवतः च ) वर्तमान में विकार को प्राप्त होने वाले और ( भूरेः ) व्यापक तथा ( च ) अन्यान्य बहुत से असंख्य पदार्थों के ( गोपाम् ) रक्षक, धारण करने वाले ( द्रविणोदाम् अग्निम् ) ऐश्वर्यप्रद, जीवनप्रद, सब से पूर्व विद्यमान परमेश्वर को (देवाः धारयन्) समस्त विद्वान् गण और दिव्य शक्तियां धारण करती हैं । वह उन में व्यापक है। (२) उसी प्रकार नायक पुरुष भी ऐश्वर्यों का आश्रय, वर्त्तमान में उत्पन्न और आगे होने वाले प्राणियों और अब, विद्यमान और आगे प्राप्त होने वाले सब पदार्थों के रक्षक पुरुष को देव, विद्वान् जन मुख्य पद पर स्थापित करें ।

द्र॒वि॒णो॒दा द्रवि॑णसस्तु॒रस्य॑ द्रविणो॒दाः सन॑रस्य॒ प्र यं॑सत् ।
द्र॒वि॒णो॒दा वी॒रव॑तीमिषं॑ नो द्रविणो॒दा रा॑सते दी॒र्घमायुः॑ ॥ ८ ॥

भा०— (द्रविणोदाः) वह ऐश्वर्यों का दाता राजा और परमेश्वर (तुरस्य) शीघ्र गति करने वाले ( द्रविणसः ) वेगवान् रथ आदि वा जंगम धन, पशु आदि का ( नः प्र यंसत् ) हमें दान दे । वह ( सनरस्य प्रयंसत् ) परस्पर बांट लेने योग्य स्थावर धन सुवर्ण रजतादि का प्रदान करे । वह ( वीरवतीम् इषम् ) वीर पुरुषों से युक्त सेना (नः प्रयंसत् ) हमें दे । और वह (नः दीर्घम् आयुः) हमें दीर्घ जीवन (रासते) प्रदान करे ।

एवानो अग्ने सुमिधा वृधानो रेवत्पावक श्रवसे वि भाहि ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥६॥४॥

भा०—व्याख्या देखो म० १।सू० ९५। म० ११॥ इति चतुर्थो वर्गः॥

[ ९७ ]

॥ ९७ ॥ १ ८ कुत्स आङ्गिरस ऋषिः॥ अग्निर्देवता॥ छन्दः—१,७, ८ पिपिलिकामध्यनिचृद् गायत्री। २, ४, ५ गायत्री। ३, ६ निचृद्गायत्री च॥

अष्टर्चं सूक्तम्॥

अप नः शोशुचद्घमग्ने शुशुग्ध्या रयिम्। अप नः शोशुचद्घम्॥१॥

भा०—हे ( अग्ने ) प्रकाशस्वरूप परमेश्वर !( नः )हमारे ( अघम् ) पाप को ( अप शोशुचत् ) काष्ठ को आग के समान भस्म कर के दूर कीजिये और ( नः रयिम् ) हमारे प्राण, देह और ऐश्वर्य को ( शुशुग्धि ) शुद्ध, प्रकाशित और उज्ज्वल कीजिये, पुनः प्रार्थना है कि ( नः पापम् ) हमारे पाप को ( अप शोशुचत् ) भस्म कर के दूर कीजिये। ( २ ) इसी प्रकार विद्वान् राजा और सभाध्यक्ष भी ( नः अघम् ) हमारे असत्य भाषण, रोग, आलस्य तथा अज्ञान आदि दोषों को तथा हमारे बीच में रहने वाले पापकारी पुरुष को दूर करें और दंडित करें। इसी प्रकार समस्त सूक्त में समझना चाहिये। इस सूक्त का ईश्वर परक अर्थ देखो अथर्ववेद आलोकभाष्य का० ४। सू० ३३।

सुक्षेत्रिया सुगातुया वसूया च यजामहे। अप नः शोशुचद्घम्॥२॥

भा०—हे विद्वन्! राजन्! परमेश्वर! हम लोग ( सुक्षेत्रिया ) उत्तम क्षेत्र अर्थात् कर्मों के उत्तम बीजरूप संस्कारों के वपन के लिये उत्तम देह और सन्तान वपन के लिये उत्तम स्त्री, और अन्न वपन के लिये उत्तम से उत्तम भूमि को प्राप्त करने की इच्छा से और ( सुगातुया ) उत्तम मार्ग,

This Sooktha is meant for Sobina kar Souls

भूमि, ज्ञान और व्यवहार को प्राप्त करने की इच्छा से और ( वसूया च ) प्राण, प्रजा और ऐश्वर्यों और उत्तम लोकों या निवास के प्राप्त करने की इच्छा से हम ( यजामहे ) तेरी उपासना करें, तुझे प्राप्त हों और परस्पर संगत होकर अध्ययन, यज्ञ आदि सत्कर्म करें। हे ( अग्ने ) ज्ञानवन् ! तेजस्विन्! आप (नः अघम् अपशोशुचत्) हमारे पाप पुण्य को भस्म कर डालो।

**प्र यद्भन्दिष्ठ एषां प्रास्माकांसश्च सूरयः। अप नः शोशुचदघम्॥३॥**

भा०—( यत् ) जो ( अस्माकासः ) हमारे ( सूरयः च ) विद्वान्, बुद्धिमान् पुरुष हैं, हे ( अग्ने ) अग्रणी नायक! विद्वन् ! प्रभो ! ( एषाम् ) उनमें से भी आप ही ( भंदिष्ठः ) सबसे अधिक प्रजा को सुखकारी और कल्याणकारी हैं। और वे सब (प्र प्र जायेरन्) उत्तम रूपसे सभापति और सभासद् रूप से मान आदर प्राप्त करें। ( नः अघम् अपशोशुचत् ) हमारा पाप, रोग, आलस्य तथा दुराचार, असत्य भाषण चौर्य हिंसा आदि कार्य दण्ड, प्रायश्चित्त और उपदेश आदि से भस्म कर दूर कर दिया जाय।

**प्र यत्ते अग्ने सूरयो जायेमहि प्र ते वयम्। अप नः शोशुचदघम्॥४॥**

भा०—( यत् ) जो ( ते ) तेरे ही अधीन रह कर, हे ( अग्ने ) विद्वन् ! तेजस्विन् ! ( सूरयः प्र ) विद्वान् जन उत्तम रूप से प्रकट होते हैं उसी प्रकार ( ते ) तेरे अधीन रह कर ( वयम् ) हम लोग भी ( प्रजायेमहि ) उत्तम बनें। अर्थात् आचार्य के अधीन जैसे शिष्य उत्तम विद्वान् हो जाते हैं उत्तम राजा के अधीन प्रजाएं भी उसी प्रकार सुशिक्षित सुसभ्य बनें। ( नः अघम् अप शोशुचत् ) हमारे पाप-कर्मों को भस्म करके दूर कर।

**प्र यदग्नेः सहस्वतो विश्वतो यन्ति भानवः। अप नः शोशुचदघम्॥५॥**

भा०—( अग्निः ) सूर्य और अग्नि के समान ( यत् ) जिस ( सह-

स्वतः ) बलवान् विद्वान् तेजस्वी राजा के भी ( भानवः ) किरणों और ज्वालाओं के समान तेज और विद्वान् पुरुष ( विश्वतः यन्ति ) सब ओर को निकलते और व्यापते हैं वह ( नः अघम् अपशोशुचत् ) हमारे पापों को दूर करे।

त्वं हि विश्वतोमुख विश्वतः परिभूरसि। अप नः शोशुचदघम्॥६॥

भा०—हे ( विश्वतोमुख ) सब तरफ, सब बातों में मुखस्थानीय सब में मुख्य ! तू ( हि ) क्योंकि ( विश्वतः ) सब प्रकार से और सबके ( परिभूः ) ऊपर विराजमान ( असि ) है, तेरे शासन से ( नः अघम् अप शोशुचत् ) हमारे समस्त पापाचरण दूर हो। परमेश्वर सर्वव्यापक होने से 'विश्वतोमुख' है। सर्वोपरि शक्तिशाली होने से 'परिभू' है।

द्विषो नो विश्वतो मुखाति नावेव पारय। अप नः शोशुचदघम्॥७॥

भा०—हे ( विश्वतोमुख ) सब तरफ मुखों वाले, अर्थात् सब स्थानों पर मुख्य पदाधिकार को अपने वश करने हारे ! (नावा इव) नाव से जैसे नदी को पार किया जाता है उसी प्रकार तू (द्विषः) शत्रुओं से (अतिपारय) हमें पार कर, उन पर विजयी कर। ( नः अघम् अपशोशुचत् ) हमारे हत्याकारी पापी पुरुष को तथा शत्रु से उत्पन्न दुःख को निवारण कर। परमेश्वर हमारे द्वेष भावों से हमें नाव से नदी के समान पार करे। मनुष्य के हृदय में बैठे क्रोध और द्वेष तथा अन्यान्य भीतरी शत्रुओं से पार होना कठिन होता है। ईश्वर का भजन ही उनसे पार कराता है।

स नः सिन्धुमिव नावयाति पर्षा स्वस्तये। अप नः शोशुचदघम्।८।५

भा०—( सः ) वह तू ( नावया सिन्धुम् इव ) नौका से जिस प्रकार महानद को पार किया जाता है उसी प्रकार ( नः ) हमें ( स्वस्तये ) सुख, शान्ति और उत्तम जीवन प्राप्त करने के लिये ( अति पर्ष ) पार कर। (नः अघम् अप शोशुचत्) वह हमारे शोक, दुःख और अन्य पापों को दूर करे।

इति पञ्चमो वर्गः ॥

[ ९८ ]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ अग्निर्वैश्वानरो देवता विराट् त्रिष्टुप् । २ त्रिष्टुप् । ३ निचृत् त्रिष्टुप् । तृचं सूक्तम् ॥

वैश्वानरस्यं सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः ।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण ॥ १ ॥

भा०—हम लोग ( वैश्वानरस्य ) समस्त नरों के हितकारी विद्वान् राजा और परमेश्वर की ( सुमतौ ) शुभ मति, उत्तम ज्ञान और शासन में ( स्याम ) रहें। ( हि कम् ) क्योंकि वह ( राजा ) तेजस्वी, सबसे ऊपर सबका स्वामी होकर ( भुवनानाम् ) उत्पन्न हुए समस्त लोकों का (अभिश्रीः ) आश्रय करने योग्य, आधार और भजन और सेवा करने योग्य है। जिस प्रकार ( इतः ) इस काष्ठ से उत्पन्न होकर अग्नि और इधर पूर्व दिशा से उत्पन्न होकर सूर्य ( इदं सर्वं ) इस समस्त ( विश्वम् ) विश्व को ( विचष्टे ) प्रकाशित करता है उसी प्रकार वह सब का हितकारी राजा और विद्वान् पुरुष ( इतः जातः ) इस राष्ट्र से ही उत्पन्न होकर ( इदं विश्वं ) इस समस्त विश्व को ( विचष्टे ) विशेष रूप से देखता और समस्त ज्ञान को प्रकाशित करता है। इस प्रकार ( वैश्वानरः ) समस्त नरों का हितकारी पुरुष ( सूर्येण ) सूर्य के सदृश होकर ( यतते ) यत्नवान् होता है। (२) परमेश्वर (इतः) इस विश्व के द्वारा ही प्रसिद्ध होता है इस विश्व को साक्षी, नियन्ता रूप से देखता है। वह भी सूर्य के समान इसको प्रकाशित करता है।

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश।
वैश्वानरः सहसा पृष्टोः अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम् ॥२॥

भा०—( वैश्वानरः ) सब मनुष्यों का नेता, सबका सञ्चालक, नायक परमेश्वर ( दिवि ) सूर्य और महान् आकाश में ( पृष्टः ) व्यापक है, वह

( अग्निः ) इस संसार के अंग २ में व्यापक होकर ( पृथिव्यां पृष्टः ) इस समस्त पृथिवी में व्यापक है, वह ( पृष्टः ) सर्वत्र रसों का सेचन करने हारा होने से ( विश्वाः ओषधीः ) समस्त ओषधियों में भी ( आविवेश ) प्रविष्ट है। वह विद्युत् के समान ( पृष्टः ) वर्षा से जल सेचन करने हारा होकर ( सहसा ) बड़े भारी बल से ( अग्निः ) समस्त संसार को चला रहा है। ( सः ) वह ( नः ) हमें ( दिवा नक्तम् ) दिन और रात (रिषः) हिंसक शत्रु आदि नाशकारी मृत्यु से (पातु) बचावे। (२) राजा के पक्ष में— राजा ( दिवि पृथिव्या ) ज्ञानवान्, विद्वानों के समुदाय में और ( पृथिव्यां ) सामान्य पृथिवीवासी प्रजा में और ( ओषधीः ) शत्रुओं को संतापकारी सैनिक जनों के प्रति ( पृष्टः = स्पृष्टः ) आदर से आश्रय लेने योग्य होता है। ( पृष्टः ) उन पर ऐश्वर्यों का वर्षण करता है, ( पृष्टः ) वह शत्रुओं पर शरवर्षणकारी होकर सैन्यों के भीतर ( आविवेश ) प्रविष्ट होता है। वह ( सहसा पृष्टः ) बल से ही अग्रगी पुरुष सब के आश्रय योग्य होकर (नः) हम प्रजाजन को सब हिंसक शत्रुओं से बचावे। विद्युत् अग्नि और सूर्य वृष्टि का कारण होने से 'पृष्ट' हैं। ( ३ ) अथवा—परमेश्वर पक्ष में—वह ( पृष्टः ) विद्वानों द्वारा नाना प्रकार से प्रश्नों द्वारा जानने योग्य है। वह आकाश, भूमि, ओषधि, जल आदि सब में व्यापक है।

**वैश्वानर तव तत्सत्यमस्त्वस्मान्रायो मघवानः सचन्ताम्।**
**तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥३॥६॥**

भा०—हे ( वैश्वानर ) सब नायकों का स्वामी, सर्वोपरि, सर्वहितकारी! ( तव ) तेरा ( तत् ) वह परम सामर्थ्य यश ( सत्यम् अस्तु ) अवश्य सत्य, सदा स्थिर ही रहे। ( अस्मान् ) हमें ( रायः ) ऐश्वर्य और ( मघवानः ) ऐश्वर्यवान् उन के पालक, जन भी ( सचन्ताम् ) प्राप्त हों। ऐश्वर्य और ऐश्वर्य के स्वामी सम्पन्न पुरुष हमारे बीच में स्थिर होकर रहें। (मित्रः) प्रजा का मित्र, (वरुणः) सर्वश्रेष्ठ, (अदितिः) समस्त अखण्डनीय

विद्वान्, और विजयी पुरुष, ( सिन्धुः ) मेघ, और सागर ( पृथिवी उत द्यौः ) पृथिवी और सूर्य सब ( नः ) हमें ( तत् ) वह समस्त ऐश्वर्य ( मामहन्ताम् ) प्रदान करें । इति षष्ठो वर्गः ॥

[ ९९ ]

कश्यपो मरीचिपुत्र ऋषिः ॥ अग्निर्जातवेदा देवता ॥ निचृत् त्रिष्टुप् । एकर्चं सूक्तम् ॥

**जातवेदसे सुनवाम सोममरातीयतो नि दहाति वेदः ।**
**स नः पर्षदति दुर्गाणि विश्वा नावेव सिन्धुं दुरितात्यग्निः ॥१॥७॥**

भा०—हम लोग ( जातवेदसे ) ऐश्वर्य के स्वामी को पुष्ट करने और ज्ञान सम्पन्न आचार्य के प्रसन्न करने के लिये ( सोमम् ) ऐश्वर्य का ( सुनवाम ) लाभ करें । वह (अरातीयतः) शत्रुता का आचरण करने वाले के ( वेदः ) धन को ( निदहाति ) सर्वथा भस्म करदे । वह ( नः ) हमें ( दुर्गाणि ) दुर्गम से दुर्गम दुःखप्रद कष्टों और ( दुरिता ) दुर्गतियों से ( नावा सिन्धुम् इव ) नावसे नदी के समान ( अति पर्षत् ) पार करे । परमेश्वर पक्ष में—हम ( जातवेदसे ) ज्ञान के एक मात्र आश्रय परमेश्वर को प्राप्त करने के लिये ( सोमम् सुनवाम ) ज्ञानानन्द को प्राप्त करें । वह शत्रुता करने वाले द्वेषबुद्धि वाले पुरुष के ज्ञान को नष्ट कर देता है । परमेश्वर हमें सब कठिन दशा और दुर्गतों से पार करे । इति सप्तमो वर्ग ॥

[ १०० ]

वृषागिरो महाराजस्य पुत्रभूता वार्षागिरा ऋज्राश्वाम्बरीष सहदेवभयमानसुराधस ऋषयः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१, ५ पङ्क्तिः । २, १३, १७स्वराट् पङ्क्तिः ६, १०, १६ भुरिक् पङ्क्तिः । ३, ४, ११, १८ विराट् त्रिष्टुप् । ७, ८, ९, १२ १४, १५, १९ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ एकोन विंशत्यृचसूक्तम् ॥

**स यो वृषा वृष्ण्येभिः समोका महो दिवः पृथिव्याश्च सम्राट् ।**
**सतीनसत्वा हव्यो भरेषु मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १ ॥**

भा०—( मरुत्वान् इन्द्रः ) वायु गण से युक्त सूर्य या विद्युत् जिस प्रकार ( वृष्ण्येभिः ) वर्षण करने वाले मेघस्थ जलों से ( समोकाः ) संयुक्त होकर ( वृषा ) जल वर्षाने वाला होता है और वह ( दिवः पृथिव्याः च सम्राट् ) आकाश और पृथिवी पर अच्छी प्रकार प्रकाश करता है। वह ( सतीनसत्वा ) जलों में व्यापक होकर ( भरेषु हव्यः ) भरण पोषण करने वाले अन्न वायु, जल इत्यादि पदार्थों में प्रकाश और ताप रूप में प्राप्त करने योग्य होकर ( नः ) हमारी जीवन रक्षा के लिये होता है उसी प्रकार ( यः ) जो ( वृषा ) प्रजापर और शत्रु गणपर मेघ के समान ऐश्वर्यों और शस्त्रास्त्रों की क्रम से वृष्टि करने में समर्थ, बलवान् और ( वृष्ण्येभिः ) बलवान्, वीर्यवान् पुरुषों में विद्या, ओज, तेज, पराक्रम आदि गुणों से ( समोकाः ) युक्त होकर ( दिवः ) आकाश में सूर्य के समान ज्ञान में और ( पृथिव्याः ) पृथिवी और पृथिवी पर स्थित समस्त पदार्थों में और प्रजा जनों के बीच ( सम्राट् ) महाराजा के समान तेजस्वी और ( सतीनसत्वा ) वाणी, आज्ञा देने वाले प्रभु पद पर विराजने वाला ( भरेषु ) यज्ञों में अग्नि या और मुख्य पुरोहित के समान संग्राम में स्वीकार करने योग्य, (मरुत्वान्) वायु के समान प्रबल, वेगवान्, वीर सैनिक गणों तथा विद्वानों और प्रजा जनों का स्वामी, ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता राजा ( नः ऊती भवतु ) हम राष्ट्रवासियों की रक्षा के लिये हो।

यस्यानाप्तः सूर्यस्येव यामो भरेभरे वृत्रहा शुष्मो अस्ति।
वृषन्तमः सखिभिः स्वेभिरेवैर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥२॥

भा०—( सूर्यस्य इव ) जिस प्रकार सूर्य का ( यामः ) जाने का मार्ग तथा ( यामः ) अधीन ग्रहों को नियन्त्रण करने का महान् सामर्थ्य ( अनाप्तः ) अन्य ग्रहों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता और जिस प्रकार ( वृत्रहा ) सूर्य का मेघों को नाश करने वाला और ( शुष्मः ) शोषण कारी ताप ( भरेभरे ) प्रत्येक पोषणकारी अन्नादि पदार्थों में व्यापक

होता है वह (एभिः एवैः वृषन्तमः) अपने प्रकाशों से ही सब से अधिक जल वर्षण करने वाला होता है। (मरुत्वान् इन्द्रः) वह वायुगण से युक्त सूर्य हमारे जीवनों की रक्षा करने के लिये समर्थ होता है। उसी प्रकार (यस्य सूर्यस्य इव) जिस सूर्य समान तेजस्वी पुरुष का (यामः) याम अर्थात् यम का नियन्ता होने का महान् पद, अधिकार, सामर्थ्य और ( यामः ) प्रयाण करने का मार्ग ( अनाप्तः ) शत्रुओं और अधीनस्थों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सके और ( यस्य शुष्मः ) जिस का शत्रुओं को संतापजनक पराक्रम ( भरेभरे ) प्रत्येक संग्राम में ( वृत्रहा ) विघ्नकारी और बढ़ते हुए शत्रुओं का नाश करने हारा हो वह ( सखिभिः स्वेभिः ) अपने मित्रों सहित ( एवैः ) अपने प्रयत्नों द्वारा ( वृषन्तमः ) अति बलवान् होकर ( मरुत्वान् इन्द्रः ) वायु के समान तीव्र वेग से जाने वाले वीर नरों तथा विद्वानों का स्वामी, ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता पृथ्वीपति ही ( नः ऊती भवतु ) हमारी रक्षा के लिये हो।

दिवो न यस्य रेतसो दुघानाः पन्थासो यन्ति शवसापरीताः।
तरद्द्वेषाः सासहिः पौंस्येभिर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥३॥

भा०—( दिवः ) सूर्य के ( पन्थासः न ) रश्मिगण जिस प्रकार ( रेतसः दुघानाः ) जलों को प्रदान करने वाले होते हैं और ( शवसा ) बल या व्यापक सामर्थ्य से (अपरि-इतः) युक्त या सब से बढ़ कर (यन्ति) दूर तक जाते हैं उसी प्रकार ( यस्य ) जिस महान् राजा के ( पन्थानः ) नीति के मार्ग ( रेतसः ) बल, वीर्य, पराक्रम को बढ़ाने वाले और (शवसा) सैन्य-बल से ( अपरि-इतः ) अवर्जित अर्थात् उससे युक्त रहते हैं। वह ( तरद्-द्वेषाः ) समस्त शत्रुओं को पार कर जाने हारा ( पौंस्येभिः ) बलों से ( मरुत्वान् इन्द्रः नः ऊती भवतु ) वीर सैनिकों और विद्वानों का स्वामी राजा हमारी रक्षा के लिये हो।

सो अङ्गिरोभिरङ्गिरस्तमो भूद्वृषा वृषभिः सखिभिः सखा सन्।
ऋग्मिभिर्ऋग्मी गातुभिर्ज्येष्ठो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥४॥

भा०—( सः ) वह पूर्वोक्त राजा ( अङ्गिरोभिः ) ज्ञानवान्, अग्नि के समान तेजस्वी और प्राणों के समान जीवनधारी पुरुषों सहित होकर भी उनमें सबसे अधिक ज्ञानी, तेजस्वी और जीवन शक्ति से युक्त ( भूत् ) हो। वह ( वृषभिः वृषा भूत् ) वर्षणकारी मेघों के सहित सूर्य के समान प्रजा पर सुखों का वर्षक, परोपकारी और वीर पुरुषों के साथ रह कर भी सबसे अधिक बलवान् और सुखों का वर्षक हो। वह (सखिभिः सखा सन्) मित्रों के साथ सबसे बढ़ कर मित्र हो ( ऋग्मिभिः ऋग्मी ) वेद मन्त्र के ज्ञाता पुरुषों के साथ रह कर उनसे अधिक वेदों का अर्थज्ञ हो। वह (गातुभिः ज्येष्ठः ) साम आदि गान करने और उत्तम स्तुति करने हारे भक्तों के साथ रह कर उत्तम सामज्ञ और उत्तम स्तुतिकारी, सबमें श्रेष्ठ हो। ऐसा (मरुत्वान् इन्द्रः नः ऊती भवतु ) वीर सैनिकों और विद्वान् पुरुषों का स्वामी राजा और आचार्य हमारी रक्षा और ज्ञान वृद्धि के लिये हो।

स सूनुभिर्न रुद्रेभिर्ऋभ्वा नृषाह्ये सासह्वाँ अमित्रान्।
सनीळेभिः श्रवस्यानि तूर्वन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ५ ॥ ८ ॥

भा०—( मरुत्वान् इन्द्रः ) तीव्र वेग वाले वायुओं सहित विद्युत् जिस प्रकार ( श्रवस्यानि तूर्वत् नः ऊती ) अन्नों के उत्पादक जलों को अघात कर वृष्टि द्वारा हम लोगों की प्राणरक्षा के लिये होता है उसी प्रकार ( सः ) वह ( मरुत्वान् ) तीव्र, वायुवेग से जाने वाले, वीर सैनिकों का स्वामी, ( ऋभ्वा ) महान् ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा या सेनापति ( सूनुभिः न ) पुत्रों के समान प्रिय, ( रुद्रेभिः ) शत्रुओं को रुलाने वाले, अति भयंकर, (सनीळेभिः) एक ही समान आश्रय या छावनी में रहने वाले वीरों, भटों से ( नृषाह्ये ) नायक पुरुषों द्वारा विजय करने योग्य संग्राम में ( अमित्रान् ) शत्रुओं को पराजित करने हारा और ( श्रवस्यानि ) अन्नादि वेतनों के लिये युद्ध करने वाले शत्रु सैन्यों को ( तूर्वन् ) विनाश करता हुआ ( नः ऊती भवतु ) हमारी रक्षा के लिये हो। अथवा—

( नृषाहये श्रवस्यानि तूर्वन् ) संग्राम में बाज़ियें मारता हुआ अर्थात् विजय करता हुआ । इत्यष्टमो वर्गः ॥

स मन्युभीः समदनस्य कर्तास्माकेभिर्नृभिः सूर्यं सनत् ।
अस्मिन्नहन्त्सत्पतिः पुरुहूतो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ६ ॥

भा०—जो ( मन्युभीः ) क्रोध द्वारा शत्रुओं को मारने वाला अथवा मन्यु अर्थात् अभिमानयुक्त शत्रु को नाश करने वाला या अपने ही भीतरी क्रोध आदि का नाशक होकर (समदनस्य) संग्राम का (कर्त्ता) करने वाला है और जो ( अस्मिन् ) इस संग्राम के अवसर में ( अस्माकेभिः ) हमारे अपने ( नृभिः ) नायक और वीर पुरुषों के सहाय से ( अहन् ) शत्रुओं का नाश करता है वही ( सूर्यम् सनत् ) सूर्य के प्रकाश के समान न्याय व्यवहार का देने वाला होकर सूर्य के समान तेजस्वी पद को प्राप्त करता है । वही ( सत्पतिः ) सज्जनों का पालक ( पुरुहूतः ) नाना प्रजाओं द्वारा स्तुति किया हुआ, बहुत से शत्रुओं से ललकारा हुआ, वीर पुरुष ( मरुत्वान् इन्द्रः ) वीर सैनिक पुरुषों का स्वामी, ऐश्वर्यवान् राजा ( नः ऊती भवतु ) हमारी रक्षा के लिये हो ।

तमूतयो रणयञ्छूरसातौ तं क्षेमस्य क्षितयः कृण्वत त्राम् ।
स विश्वस्य करुणस्येश एको मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ७ ॥

भा०—( ऊतयः ) रक्षा करने हारे वीर पुरुष, और ज्ञानवान् विद्वान् और तेजस्वी पुरुष तथा रक्षा और उत्तम ज्ञान, तेज आदि सद्गुण ( तम् ) उस पूर्वोक्त वीर पुरुष को ( शूरसातौ ) शूरवीरों के योग्य संग्राम में ( रणयन् ) हर्षित करते, उसकी स्तुति करते, उसके गुणों का प्रकाश करते और उसको उपदेश करते हैं । ( तम् ) ऐसे वीर पुरुष को ही ( क्षितयः ) पृथ्वी निवासी प्रजागण ( क्षेमस्य ) अपने रक्षण-कार्य करने योग्य धन और जीवन सर्वस्व का ( त्राम् कृण्वत ) पालक नियत करते हैं । ( सः ) वह ( विश्वस्य करुणस्य ) सब प्रकार के अनुग्रह और निग्रह

आदि कर्म करने में ( ईशे ) समर्थ है। वह ( एकः ) अकेला ही ( मरुत्वान् इन्द्रः ) वीरभटों का स्वामी होकर सेनापति (नः उती भवतु) हमारी रक्षा के लिये हो।

तमप्सन्त शवस उत्सवेषु नरो नरमवसे तं धनाय।
सो अन्धे चित्तमसि ज्योतिर्विदन्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥८॥

भा०—( उत्सवेषु ) हर्षों के अवसरों पर और संग्राम के कालों में ( नरः ) प्रजाजन और नायक पुरुष और ( शवसः ) बलों के धारण करने वाले सैन्य से ( तम् ) उसी महारथी की शरण में ( अवसे ) रक्षा प्राप्त करने के लिये ( अप्सन्त ) आते हैं। और ( तम् ) उसी वीर पुरुष को वे ( धनाय ) धन प्राप्त करने के लिये भी प्राप्त होते हैं। ( सः ) वही ( अन्धे तमसि ) घोर अन्धकार में भी ( ज्योतिः ) सूर्य के समान ( विदत् ) प्रकाश देता और मार्ग दिखाता है। वह ( मरुत्वान् इन्द्रः ) वीर सैनिकों का स्वामी, ऐश्वर्यवान् राजा ( नः ऊती भवतु ) हम प्रजाजनों की रक्षा के लिये हो।

स सव्येन यमति व्राधतश्चित्स दक्षिणे संगृभीता कृतानि।
स कीरिणा चित्सनिता धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥९॥

भा०—( सः ) वह वीर पुरुष, सेना नायक ( व्राधतः चित ) अपने बढ़े और उमड़ते हुए बड़े २ शत्रुओं को भी ( सव्येन ) अपनी बाईं भुजा से ( यमति ) वश करे। या अपने बाईं तरफ़ की सेना से वह शत्रुओं को बांध ले। और ( सः ) वह ( दक्षिणे ) दायें हाथ में ( कृतानि ) अपने पराक्रम से किये विजय आदि कर्म तथा प्राप्त किये हुए ऐश्वर्यों को और ( कृतानि ) सिद्ध हस्त सैन्यों को ( संगृभीता ) अच्छी प्रकार वश करे ( सः ) वह ( कीरिणा चित् ) शत्रु को उखाड़ फेंकने वाले बल से ( धनानि सनिता ) ऐश्वर्यों को प्राप्त करता अन्यों को प्राप्त कराता है।

वह ( मरुत्वान् इन्द्रः ) वीर भटों का स्वामी वीर सेनापति ( नः ऊती भवतु ) हमारी रक्षा के लिये हो ।

स ग्रामेभिः सनिता स रथेभिर्विदे विश्वाभिः कृष्टिभिर्न्व१द्य ।
स पौंस्येभिरभिभूरशस्तीर्मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥ १० ॥ ९ ॥

भा०—( सः सनिता ) वह ऐश्वर्यों का दान करने हारा तथा उत्तम स्वामी होकर ( रथेभिः ) रथों, रथारोही सैनिकों से तथा ( ग्रामेभिः ) ग्रामों, जनसमूहों तथा सैन्यसमूहों से और ( विश्वाभिः ) समस्त ( कृष्टिभिः ) कृषि करने वाली प्रजाओं से और ( सः ) वह ( पौंस्येभिः ) बलवीर्य पराक्रमों से युक्त होकर ( विदे ) विजय लाभ के लिये ( नु अद्य ) अब के समान सदा ही, अति शीघ्र ( अशस्तीः ) दुर्दमनीय, असाध्य शत्रुओं को भी ( अभिभूः ) वश करने हारा हो वह ( मरुत्वान् इन्द्रः नः ऊती भवतु ) वीर भटों का स्वामी सेनापति या राजा हम प्रजाजनों का रक्षक हो । इति नवमो वर्गः ॥

स जामिभिर्यत्समजाति मीळ्हेऽजामिभिर्वा पुरुहूत एवैः ।
अपां तोकस्य तनयस्य जेषे मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ ११ ॥

भा०—( यत् ) जब ( सः ) वह ( पुरुहूतः ) बहुतों से प्रशंसा को प्राप्त होकर, एवं बहुतसे शत्रुओं से युद्ध में ललकारा जाकर (जामिभिः) अपने बन्धुवर्गों से और ( अजामिभिः ) वा बन्धु रहित , अथवा बन्धु बान्धवों से भिन्न वीर पुरुषों से सहायवान् होकर (मीढ़े) संग्राम में (एवैः) युद्ध में तीव्र वेग से जाने वाले वीर भटों से ( जेषे ) विजय प्राप्ति के लिये ( सम् अजाति ) मिल कर शत्रुओं को उखाड़ देता है तब वह ( मरुत्वान् इन्द्रः ) वीरों का स्वामी, सेनापति ( अपां ) शरण में आये ( नः ) हम आप्त प्रजाजनों और ( तोकस्य तनयस्य च ) पुत्रों और पौत्रों की ( ऊती ) रक्षा करने के लिये ( भवतु ) हो ।

स वंज्रभृद्दस्युहा भीम उग्रः सहस्रंचेताः शतनीथ ऋभ्वा ॥
चम्रीषो न शवसा पाञ्चंजन्यो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ १२ ॥

भा०—( नः ऊती ) हमारी रक्षा के लिये ( सः ) वह ( मरुत्वान् ) वीर सैनिकों और विद्वानों सहित ( इन्द्रः ) शत्रुहन्ता राजा ( वज्रभृत् ) शस्त्रास्त्र का धारण करने वाला, ( दस्युहा) प्रजा के नाशक पुरुषों को दण्ड द्वारा विनष्ट करने वाला, ( भीमः ) दुष्टों के चित्तों में भय उत्पन्न करने वाला, ( उग्रः ) शत्रुओं के भीतर उद्वेग उत्पन्न करने वाला, सदा दण्ड देने में समर्थ, ( सहस्र-चेताः ) सहस्रों विज्ञानों का जानने वाला तथा सहस्रों चित्तों तथा ज्ञानी पुरुषों का स्वामी, (शतनीथः) सैकड़ों पदार्थों को प्राप्त कराने वाला, ( ऋभ्वा ) स्वयं महान्, या बड़े भारी सामर्थ्य और सत्य ज्ञान से प्रकाशमान् तेजस्वी, ( शवसा ) बल से ही वह (चम्रीषः न) सेना द्वारा शत्रु नाशकारी महावीर के समान ( पाञ्चजन्यः ) पांचों जनों के बीच उनपर शासक रूप से विद्यमान ( भवतु ) हो ।

'पाञ्चजन्यः'—ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र और निषाद, अथवा—गन्धर्व, अप्सरस्, देव, असुर, राक्षस् (सा०) । अथवा—अध्यापक, उपदेशक, सभाध्यक्ष, सेनापति, सर्वजनाध्यक्ष ये पांच ( द० )

तस्य वज्रः क्रन्दति स्मत्स्वर्षा दिवो न त्वेषो रवथः शिमीवान् ।
तं सचन्ते सनयस्तं धनानि मरुत्वान्नो भवत्विन्द्रं ऊती ॥ १३ ॥

भा०—( तस्य ) उसका ( स्वर्षाः ) शत्रुओं को संताप देने वाला, घोर शब्दकारी ( रवथः ) महान् घोष करने वाला, गर्जनशील ( वज्रः ) अस्त्र समूह ( शिमीवान् ) अतिशक्तिशाली ( स्मत् ) खूब, ( क्रन्दति ) गरजे और मानो शत्रुओं को ललकारे । और उसका ( त्वेषः ) तेज ( दिवः न त्वेषः ) सूर्य के तेज के समान चमचमाता हो । (तं) उसको ( सनयः ) सब ऐश्वर्य ( सचन्ते ) प्राप्त होते हैं । ( तं धनानि ) उसको सब प्रकार

के धन प्राप्त होते हैं। ऐसा ( मरुत्वान् इन्द्रः नः ऊती भवतु ) वीर पुरुषों का स्वामी हमारी रक्षा के लिये नियुक्त हो।

यस्याजस्रं शवसा मानमुक्थं परिभुजद्रोदसी विश्वतः सीम्।
स पारिषत्क्रतुभिर्मन्दसानो मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती ॥ १४ ॥

भा०—( यस्य ) जिसका ( मानम् ) शत्रुओं को नाश करने का सामर्थ्य और ( उक्थम ) वचन अर्थात् आज्ञा-वचन ( अजस्रं ) निरन्तर बेरोक, अखण्डित होकर ( रोदसी ) आकाश और भूमि के समान राजवर्ग और प्रजावर्ग दोनों को ( विश्वतः सीम् ) सब तरफ़ से, सब प्रकारों से ( शवसा ) बलपूर्वक ( परिभुजत् ) रक्षा करता है वह ( मन्दसानः ) स्तुति और हर्ष को प्राप्त होकर ( क्रतुभिः ) उत्तम २ विज्ञानों से ( पारिषत् ) प्रजा का पालन करे। वह ( मरुत्वान् ) वीरों और विद्वान् पुरुषों का स्वामी ( इन्द्रः ) राजा ( नः ऊती भवतु ) हमारा रक्षक हो।

न यस्य देवा देवता न मर्ता आपश्चन शवसो अन्तमापुः।
स प्ररिक्वा त्वक्षसा क्ष्मो दिवश्च मरुत्वान्नो भवत्विन्द्र ऊती॥१४॥१०॥

भा०—( यस्य ) जिस ( देवता ) दान, प्रकाश आदि गुणों से युक्त ( अन्तम् ) परली सीमा को ( शवसा ) अपने बल, सामर्थ्य से ( न देवाः ) न देव अर्थात् योद्धा गण, (न मर्त्ता) न मरने वाले मनुष्य, ( आपः चन ) न आप्त जन, ( आपुः ) प्राप्त कर सकें ( सः ) वह ( त्वक्षसा ) शस्त्रास्त्र बल से ( क्ष्मः दिवः च ) पृथ्वी और अकाश तथा सामान्य प्रजा और राजवर्ग दोनों से ( प्ररिक्वा ) बढ़ा हुआ ( मरुत्वान् ) वीरों और विद्वानों का स्वामी ( इन्द्रः नः ऊती भवतु ) ऐश्वर्यवान् राजा हमारी रक्षा के लिये हो। ( २ ) वह महान् देव, परमेश्वर जिसके परम पार को न कोई विद्वान्, न सूर्य आदि देव, न मरने वाले प्राणी और न (आपः) प्राणगण अपने सामर्थ्य से पा सके, वह ( त्वक्षसा प्ररिक्वा ) अपने विवेचक और प्रकाशक

ज्ञान और प्रलयकारी सर्व संहारकारी अनन्त बल से आकाश और पृथ्वी के विस्तार से कहीं बड़ा है। वह हमारी रक्षा करे। इति दशमो वर्गः ॥

रोहिच्छ्यावा सुमदंशुर्ललामीर्द्युक्षा राय ऋज्राश्वस्य ।
वृषण्वन्तं बिभ्रती धूर्षु रथं मन्द्रा चिकेत नाहुषीषु विक्षु ॥ १६ ॥

भा०—( ऋज्राश्वस्य ) खूब सधे हुए, युद्धकुशल अश्वों और अश्वारोहियों के स्वामी सेनापति की ( नाहुषीषु ) सुप्रबद्ध प्रजाओं के बीच में ( रोहित् ) लाल पोशाक वाली और ( श्यावा ) श्याम वर्ण के अस्त्र शस्त्रों से युक्त, ( सुमद्-अंशुः ) उत्तम व्यापक साधनों से युक्त, या स्वयं बहुत बड़ी ( ललामीः ) पौरुष युक्त, वीर पुरुषों से बनी, ( द्युक्षा ) विजय कार्य में लगी हुई सेना ( धूर्षु ) मुख्य २ केन्द्र स्थानों पर ( वृषण्वन्तम् ) शस्त्र वर्षण करने में समर्थ, बलवान्, ( रथं ) रथारोही महारथी को ( बिभ्रती ) धारण करती हुई ( मन्द्रा ) अति वेग से जाने वाली होकर ( राये ) ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये ( चिकेत ) जानी जाती है। (२) अग्नि के पक्ष में—अग्नि की ज्वाला ( रोहित्-श्यावा ) लाल और नीली, उत्तम किरणों वाली ( ललामीः ) प्रदीप्त शिखा, धुरा स्थानों के बल पर वेग वाले रथ को धारण करती हैं। वही सुखप्रद हो, वह प्रजाओं के बीच ज्ञान करने योग्य हैं।

एतत्त्यत्त इन्द्र वृष्ण उक्थं वार्षागिरा अभि गृणन्ति राधः ।
ऋज्राश्वः प्रष्टिभिरम्बरीषः सहदेवो भयमानः सुराधाः ॥ १७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) राजन्! ऐश्वर्यवन्! (ऋज्राश्वः) वेगवान्, सरल, सधे हुए अश्वों का नायक, ( अम्बरीषः ) शब्दविद्या या महान् घोष और भयंकर शब्द उत्पन्न करने की विद्या को जानने वाला, ( सहदेवः ) विजिगीषु युद्धार्थी सैनिकों के साथ रहने वाला, ( भयमानः ) शत्रुओं को भय दिलाने वाले, उनमें भय सञ्चार करने के साधनों का वेत्ता और (सुराधाः) उत्तम धनों और वशकारी उपायों का वेत्ता, ये सब विद्वान् और साधना सम्पन्न पुरुष ( एतत् त्यत् ) इन और उन नवीन और प्राचीन, समीप

और दूर के और प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष अपने और पराये सब प्रकार के (राधः) शत्रु को वश करने के उपायों का (ते वृष्णे) तुझ बलवान् सेनापति या राजा को (अभि गृणन्ति) उपदेश करें।

दस्यूञ्छिम्यूँश्च पुरुहूत एवैर्हत्वा पृथिव्या शर्वा नि बर्हीत्।
सनत्क्षेत्रं सखिभिः श्वित्न्येभिः सनत्सूर्यं सनदपः सुवज्रः ॥ १८॥

भा०—(पुरुहूतः) बहुतसी प्रजाओं से स्तुति और आदर को प्राप्त होकर राजा (पृथिव्याम्) पृथिवी पर (दस्यून्) प्रजा को नाश करने वाले दुष्ट पुरुषों को और (शिम्यून्) लुक छिप कर प्राणियों के प्राणों को शान्त कर देने वाले हत्यारे पुरुषों को (एवैः) आक्रमणों से और (शर्वा) शस्त्र, या बाण के प्रयोग से (नि बर्हीत्) अच्छी प्रकार नाश कर दे। और (श्वित्न्येभिः) तेजस्वी और श्वेत वर्ण के, उज्वल, चरित्रवान् (सखिभिः) मित्र वर्गों के साथ मिलकर (क्षेत्रं सनत्) भूमि के क्षेत्र को अच्छी प्रकार विभाग करे, बांट ले और (सूर्यं) वह सूर्य के समान तेजस्वी पद को (सनत्) प्राप्त करे और (सुवज्रः) उत्तम वीर्यवान् होकर (अपः) जलों के समान शान्तिप्रद, सुखद, आप्त पुरुषों तथा शान्तिमय प्रजाजनों को (सनत्) स्वयं प्राप्त करे और मित्र राजाओं के बीच में विभाग करे।

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिहृताः सनुयाम वाजम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥१६॥११

भा०—(विश्वाहा) सब दिनों, (इन्द्रः) विद्याओं को साक्षात् देखनेहारा और ऐश्वर्यवान्, शत्रुओं का नाशक, विद्वान् आचार्य और सभाध्यक्ष, (नः) हम पर (अधिवक्ता) अध्यक्ष होकर उपदेश करने और आदेश देनेवाला (अस्तु) हो। हम लोग (अपरिहृताः) सब प्रकार से कुटिल विचारों और चेष्टाओं से रहित होकर सौम्यभाव से (वाजम्) उत्तम अन्न, ऐश्वर्य, धन आदि (सनुयाम) प्रदान करें।

और उससे उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य प्राप्त करें । ( तत् ) उसको ( मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः मामहन्ताम् ) मित्रगण, श्रेष्ठजन, माता, समुद्र, भूमि और आकाश ये सब बढ़ावें । इत्येकादशो वर्गः ॥

[ १०१ ]

आंगिरसः कुत्स ऋषिः। इन्द्रो देवता। १, ४ निचृज्जगती। २, ५, ७ विराड् जगती ॥ भुरिक्त्रिष्टुप्, ६ स्वराट् त्रिष्टुप्। ८। १० निचृत् त्रिष्टुप्। ९। ११। त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**प्र मन्दिने पितुमदर्चता वचो यः कृष्णगर्भा निरहन्नृजिश्वना। अवस्यवो वृषणं वज्रदक्षिणं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ १ ॥**

भा०—हे पुरुषो ! ( मन्दिने ) स्वयं सुप्रसन्न तथा अन्यों को आनन्दित करने वाले स्वामी के लिये ( पितुमत् ) अन्न आदि पालनकारी सामग्री सहित ( वचः ) वचन ( प्र अर्चत ) आदरपूर्वक प्रयोग करो उत्तम वचन तथा अन्नादि से उसका सत्कार करो। अथवा अपने पालक स्वामी प्रमुख राजा के आगे ऐसा वचन कहो जिससे वह प्रसन्न होकर उत्तम आजीविका पालक साधन और अन्नादि प्रदान करे। हे मनुष्यो ! ( यः ) जो राजा, सेनापति, राष्ट्रपति, ( ऋजिश्वना ) उत्तम सधे हुए अश्वों से युक्त सैन्यबल से ( कृष्णगर्भा ) काले अन्धकार को गर्भ में रखने वाली रात्रियों को जैसे प्रकाश से सूर्य विनाश करता है उसी प्रकार ( कृष्णगर्भाः ) कर्षण अर्थात् प्रजापीड़न करने वाले शत्रु को अपने भीतर रखने वाली शत्रु सेनाओं को ( निर् = अहन् ) अच्छी प्रकार विनाश कर सके। हम लोग ( श्रवस्यवः ) ऐश्वर्य और यश चाहने वाले पुरुष उस ( वृषणं ) बलवान्, शत्रुओं पर शस्त्रों का और प्रजापर सुखों का मेघ के समान वर्षण करनेवाले, ( वज्रदक्षिणम् ) वज्र अर्थात् शस्त्रास्त्र बल को अपने दायें हाथ में लिये ( मरुत्वन्तं ) वीर भटों के स्वामी, राष्ट्रपति

को हम प्रजाजन ( सख्याय ) मित्र भाव के लिये ( हवामहे ) स्वीकार करें । (२) आचार्य के पक्ष में—( यः ) जो आचार्य ( ऋजिश्वना ) धर्मानुकूल, सरल, वशीकृत इन्द्रियों के अभ्यास तथा अध्ययन द्वारा ( कृष्णगर्भाः निर् अहन् ) तामस भावों को अपने भीतर रखनेवाली दुश्चेष्टाओं को विनाश करता है ( मरुत्वन्तं ) जिज्ञासु जनों के गुरु, ( वज्रदक्षिणं ) अज्ञान के वर्जन करने वाले ज्ञानोपदेश में कुशल, ( वृषणं ) विद्याओं को मेघ के समान वर्षाने वाले आचार्य को ( श्रवस्यवः ) श्रवण योग्य वेद ज्ञान के अभिलाषी हम लोग ( सख्याय हवामहे ) सखा भाव के लिये स्वीकार करें ।

यो व्यंसं जाहृषाणेन मन्युना यः शम्बरं यो अहन्पिप्रुमव्रतम् । इन्द्रो यः शुष्णमशुषं न्यावृणङ् मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ २ ॥

भा०—( यः ) जो राष्ट्रपति, वीर पुरुष ( जाहृषाणेन ) निरन्तर सबको सन्तुष्ट करने और प्रजाओं में हर्ष उत्पन्न करने वाले ( मन्युना ) क्रोध और शत्रुस्तम्भनकारी बल से ( वि अंसं ) विविध स्कन्धावार अर्थात् छावनी वाले शत्रु को ( अहन् ) विनाश करने में समर्थ हो, और ( यः शम्बरम् ) जो वीर पुरुष शस्त्रास्त्र को धारण करनेवाले, प्रबल तथा खूब सुसंबद्ध, सुदृढ़ शत्रु को भी ( अहन् ) विनाश करने में समर्थ हो, और जो ( अव्रतम् ) व्रतों, नियमों और व्यवस्थाओं से रहित ( पिप्रुम् ) केवल अपना ही पेट पालने और भरनेवाले को भी ( अहन् ) नाश करे और (यः) जो ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान्, शत्रुहन्ता ( अशुषं ) अन्य शोषक अर्थात् बलनाशक विरोधी न होने के कारण ( शुष्णम् ) प्रजाओं का रक्त शोषण करने वाला हो उसको भी ( नि अवृणक् ) सर्वथा परास्त करे उस ( मरुत्वन्तं ) वीर सुभटों सहित वीर पुरुष को हम प्रजाजन ( सख्या हवामहे ) सखा भाव के लिये स्वीकार करें । आचार्य, परमेश्वर और आत्मा पक्षमें—( जाहृषाणेन मन्युना ) निरन्तर आत्मशान्तिप्रद ज्ञान अज्ञान

को ( वि-अंसं ) खण्ड २ कर नाश करे जो ( शम्बरं ) आत्मा को घेर लेने वाले ( पिप्रुम् ) केवल पेट भरने वाले व्रत, यम, नियम आदि सदाचार से रहित आचरण को नाश करे, न सूखने वाले, सदा बढ़ते ( शुष्णं ) रक्त शोषक लोभ को जो वर्जित करे और ( मरुत्वन्तं ) विद्वानों, शिष्यों और प्राणों सहित आत्मरूप इन्द्र को अपना मित्र बनावें ।

यस्य द्यावापृथिवी पौंस्यं महद्यस्य व्रते वरुणो यस्य सूर्यः । यस्येन्द्रस्य सिन्धवः सश्चति व्रतं मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ३ ॥

भा०—( यस्य ) जिस परमेश्वर का ( महत् पौंस्यम् ) बड़ा भारी बल ( द्यावा पृथिवी ) आकाश और पृथिवी दोनों को ( सश्चति ) व्याप रहा है । और ( यस्य व्रते ) जिसके बनाये नियम व्यवस्था में ( वरुणः ) चन्द्र या वायु है और ( यस्य व्रते सूर्यः ) जिसके महान् सामर्थ्य या शासन को ( सिन्धवः ) समस्त समुद्रगण और महानदियां भी स्वीकार करती हैं उस ( मरुत्वन्तम् ) महान् शक्तियों और समस्त वायुगणों तथा सब के प्राणों के स्वामी परमेश्वर को हम (सख्याय हवामहे) मित्र भाव के लिये स्वीकार करते हैं । उसी को हम अपना अन्तरंग सुहृद् करके जानें । राजा के पक्षमें—जिसके महान् सामर्थ्य तथा शासन को राज प्रजावर्ग, 'वरुण' दुष्टों का वारक सेनापति, 'सूर्य' सदृश तेजस्वी विद्वान्, 'सिन्धवः' तीव्र वेगवान् प्राप्त हैं । अथवा—जिसके बड़े सामर्थ्य को आकाश, पृथिवी, वायु, सूर्य और सागर आदि विशाल पदार्थ ( सश्चति ) प्राप्त हों अर्थात् उपमानरूप से उसके बड़े सामर्थ्य को दिखलाते हैं । अर्थात् जो आकाश और पृथिवी के समान सब का धारक, पोषक, वायु के समान प्रबल, सूर्य के समान तेजस्वी, समुद्रों के समान गम्भीर हैं उसको हम अपना सुहृद् बनावें ।

यो अश्वानां यो गवां गोपतिर्वशी य आरितः कर्मणिकर्मणि स्थिरः । वीळोश्चिदिन्द्रो यो असुन्वतो वधो मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥ ४ ॥

भा०—( यः ) जो ( वशी ) प्रजाओं और अपनी इन्द्रियों को वश में रखने में समर्थ, जितेन्द्रिय, ( गोपतिः ) पृथिवीपति होकर ( अश्वानां ) अश्वों का और ( गवां ) गौओं का भी स्वामी है और ( यः ) जो ( स्थिरः ) स्थायी रूप से ( कर्मणि कर्मणि ) राष्ट्र के प्रत्येक कार्य में ( आरितः ) प्रस्तुत किया जाता और आघोषित किया जाता है और ( यः ) जो ( असुन्वत ) यज्ञादि कार्य, अभिषेक और विद्याप्राप्ति आदि करने वालों से भिन्न ( बीडोः ) बलवान् शत्रु का ( चित् ) भी ( वधः ) मारने वाला है उस ( मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ) प्रबल सैनिक पुरुषों और विद्वानों के स्वामी पुरुष को हम मित्रभाव के लिये स्वीकार करते हैं। (२) इसी प्रकार जो ( अश्वानां गवां ) कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों और मन को वश करने वाला होकर गोपति है अर्थात् प्रत्येक कार्य में स्थिर ज्ञानवान् है। जो आसनादि के प्रबल बाधक विघ्नकारी दुष्ट पाप को भी नाश करता है, उस परमेश्वर आचार्य और आत्मा को हम अपना सखा बनावें।

यो विश्वस्य जगतः प्राणतस्पतिर्यो ब्रह्मणे प्रथमो गा अविन्दत्।
इन्द्रो यो दस्यूँरधराँ अवातिरन्मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ॥५॥

भा०—( यः ) जो परमेश्वर ( जगतः ) जंगम ( प्राणतः ) प्राणधारी ( विश्वस्य ) समस्त संसार का ( पतिः ) पालनकर्ता है। और ( यः ) जो ( ब्रह्मणे ) महान् सामर्थ्यवान् वेदज्ञ विद्वान् को ( प्रथमः ) सब से प्रथम, आद्य गुरु होकर ( गाः ) वेदवाणियों का ( अविन्दत् ) उपदेश करता है। और ( यः ) जो ( इन्द्रः ) परमेश्वर ( दस्यून् ) सज्जनों और अन्य प्राणियों को नाश करनेवाले दुष्ट पुरुषों को ( अधरान् ) नीचे, दुःखदायी लोकों या जन्मों को ( अवातिरत् ) पहुंचाता है उस ( मरुत्वन्तम् ) समस्त प्राणधारियों के स्वामी परमेश्वर को हम ( सख्याय हवामहे ) अपने परम मित्र भाव के लिये स्वीकार करें, उसको हम अपना परम सखा मानें। राष्ट्रपति के पक्षमें—जो राष्ट्र के सब जंगम पशु और

प्राणियों का पालक है, जो वेदज्ञ विद्वान् को भूमि और पशुओं का दान करे, दुष्टों को नीचे गिरावे वह हम प्रजाओं का मित्र हो।

यः शूरे॑भि॒र्हव्यो॒ यश्च॑ भी॒रुभि॒र्यो धाव॑द्भि॒र्हू॒यते॒ यश्च॑ जि॒ग्युभिः॑।
इन्द्रं॒ यं विश्वा॒ भुव॑ना॒भि सं॑द॒धुर्म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे॥६॥१२॥

भा०—( यः ) जो परमेश्वर ( शूरेभिः हव्यः ) शूरवीर पुरुषों द्वारा स्तुति करने योग्य है और ( यः च भीरुभिः ) जो भीरु, भयभीतों द्वारा भी प्रार्थना किया जाता है। ( यः धावद्भिः ) जो भागते हुए और जो ( जिग्युभिः ) विजय करते हुओं से भी ( हूयते ) आदर और प्रेम से स्मरण किया जाता है ( यं ) जिसको ( विश्वा भुवना ) समस्त प्राणी और लोक ( अभि संदधुः ) साक्षात् अपने भीतर धारण करते हैं उस (मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे) महान् शक्तियों और समस्त प्राणियों के स्वामी को हम मित्र भाव के लिये स्वीकार करें, उसे अपना परम सखा मानें। (२) इसी प्रकार वह वीर, राष्ट्रपति राजा हमारा परम मित्र हो जिसे (शूरेभिः हव्यः) शूरवीर ललकारें या अपना सहायक मित्र वरें। ( यः च भीरुभिः ) जिसे भीरु जन भी अपनी शरण स्वीकार करें। ( धावद्भिः जिग्युभिः हूयते ) जिसे मैदान छोड़ कर दौड़ने वाले और मैदान पर विजय पाने वाले दोनों प्रकार के लोग अपना शरण और सहायक मानें जिस राजा को सब प्रजाजन अपना साथी करके मानें अथवा जिससे सन्धि करें।

रु॒द्राणा॑मेति प्र॒दिशा॑ विचक्ष॒णो रु॒द्रेभि॒र्योषा॑ तनुते॒ पृ॒थु ज्रयः॑।
इन्द्रं॑ मनी॒षा अ॒भ्य॑र्चति श्रु॒तं म॒रुत्व॑न्तं स॒ख्याय॑ हवामहे॥ ७॥

भा०—जो ( विचक्षणः ) उत्तम चातुर्य आदि गुणों वाला, विविध विद्याओं तथा प्रजा के शासन कार्यों को देखने हारा, विद्वान् होकर ( रुद्राणाम् ) शत्रुओं को रुलाने वाले वीर पुरुषों के ( प्रदिशा ) उत्तम शासन तथा ( रुद्राणां ) ज्ञानोपदेष्टा जनों के ( प्रदिशा ) उत्तम अनु-शासन, प्रदेश या उपदेश से ( पृथुज्रयः ) बड़े भारी बल को प्राप्त कर लेता है

और जैसे (योषा) स्त्री या भेद नीति की वाणी भी जिस प्रकार (रुद्रेभिः) वीर पुरुषों की सहायता से बड़ा शत्रु संहारक बल प्रकट कर सकती है उसी प्रकार जो राजा ( रुद्रेभिः ) शत्रुओं को रुलाने वाले वीरों के सहायता से ( पृथु-ज्रयः तनुते ) बड़ा बल बढ़ा लेता है और जिस ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् और बलवान् ( श्रुतं ) प्रसिद्ध पुरुष को ( मनीषा श्रुतम् ) गुरूपदिष्ट वेद-वचन को बुद्धि के समान ( मनीषा अभि अर्चति ) स्तुति वाणी साक्षात् स्तुति करती है उस ( मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ) वीर पुरुषों के स्वामी पुरुष को हम अपने मित्र भाव के लिये स्वीकार करते हैं। आचार्य के पक्ष में— आचार्य ( रुद्राणाम् ) शिष्यों के अनुशासन से अधिक बल प्राप्त करता है। ( योषा ) वाणी भी विदुषी स्त्री के समान ( रुद्रेभिः ) शिष्यों या प्राणों के द्वारा ही बड़ा बल बढ़ाती है। बुद्धि द्वारा ही विस्तृत होकर (श्रुतं) गुरुपदेश को भी ( इन्द्रं ) उस इन्द्र अर्थात् आचार्य का ही आदर करती है। उसी ( मरुत्वन्तं सख्याय हवामहे ) विद्यार्थियों के परम गुरु को हम भी स्वीकार करें।

**यद्वा॑ मरुत्वः पर॒मे स॒धस्थे॒ यद्वा॑व॒मे वृ॒जने॑ मा॒दया॑से।**
**अत॒ आ या॑ह्यध्व॒रं नो॒ अच्छा॑ त्वा॒या ह॒विश्च॑कृमा सत्यराधः ॥८॥**

भा०—हे ( मरुत्वः ) वीर सैनिक पुरुषों के अध्यक्ष ! ( यद् वा ) चाहे तू ( परमे सधस्थे ) सर्वोत्तम स्थान में (यद्वा) या ( अवमें ) निकृष्ट, क्षुद्र ( वृजने ) घर या जीवन दुःखों के दूर करने के वृत्त्युपाय में ( माद-यासे ) तृप्त होकर रहे तो भी तू ( नः ) हमारे (अध्वरं आयाहि) यज्ञ, या स्थिर राज्य शासन को ( आयाहि ) प्राप्त हो। ( त्वाया ) तेरी कामना से या तेरे सहित हम लोग ( सत्यराधः ) सत्य ऐश्वर्य युक्त एवं सत्य आरा-धन से युक्त (हविः) अन्नादि उत्तम पदार्थ (चकृम) प्राप्त करें। (२) इसी प्रकार विद्वान् आचार्य भी चाहे ऊचे से ऊंचे स्थान या पद को प्राप्त हो या

वह छोटी से छोटी स्थिति पर हो वह हमारे ( अध्वरं ) श्रेष्ठ कार्य में आवे उसके लिये हम सच्चे हृदय से अन्नादि दें, सत्कार करें ।

त्वायेन्द्र सोमं सुषुमा सुदक्ष त्वाया हविश्चकृमा ब्रह्मवाहः ।
अधा नियुत्वः सगणो मरुद्भिरस्मिन्यज्ञे बर्हिषि मादयस्व ॥९॥

भा०—हे ( इन्द्र ) राजन् ! सेनापते ! ( त्वाया ) तेरे सहित, हम लोग ( सोमं ) ऐश्वर्य को ( सु सुम ) प्राप्त करें । हे ( सुदक्ष ) उत्तम कार्यकुशल ! ( त्वाया ) तेरे साथ मिल कर हम ( हविः चकृम ) अन्न आदि पदार्थों को उत्पन्न करें । हे ( ब्रह्मवाहः ) बहुत बड़े ऐश्वर्य को धारण करने वाले ! ( अध ) और हे ( नियुत्वः ) सेनाओं, अश्वों और अश्वारोहियों के स्वामिन् ! सेनापते ! तू ( सगणः ) अपने गणों, भृत्यजनों और दल बल सहित ( मरुद्भिः ) वीर भटों और विद्वानों सहित ( अस्मिन् यज्ञे ) इस प्रजापालन रूप यज्ञ वा सुव्यवस्थित राष्ट्र में ( बर्हिषि ) प्रजाजनों पर या राजसिंहासन पर स्थित होकर ( मादयस्व ) स्वयं तृप्त हो और औरों को आनन्दित कर। (२)आचार्य पक्ष में—हे (इन्द्र) विद्यावान् ! तेरे साथ मिल कर हम ( सोमम्) शास्त्र ज्ञान को प्राप्त करें । हे ( ब्रह्मवाहः ) ब्रह्म ज्ञान के कराने वाले ! हे ( सुदक्ष ) उत्तम ज्ञानबल युक्त ! तेरे संग से हम ( हविः ) प्राप्त करने योग्य तथा शिष्यों को देने योग्य ज्ञान प्राप्त करें । हे ( नियुत्वः ) शक्तियों से युक्त अथवा शिष्यों से युक्त और ( मरुद्भिः सगणः ) वायु के समान आलस्य रहित अप्रमादी सहित ( यज्ञे बर्हिषि ) अध्ययन अध्यापन रूप यज्ञ में रहकर अति उत्तम सर्वोपरि पद पर विराजमान हो ।

मादयस्व हरिभिर्ये त इन्द्र वि ष्यस्व शिप्रे वि सृजस्व धेने ।
आ त्वा सुशिप्र हरयो वहन्तूशन्हव्यानि प्रति नो जुषस्व ॥१०॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! राजन् ! ( येते ) जो तेरे अधीन

( हरिभिः ) विद्वान् जन और अश्व, अश्वारोही गण हैं उन सहित तू (माद-यस्व ) तृप्त, संतुष्ट और प्रसन्न होकर रह। ( शिप्रे ) भोजन करने हारा जिस प्रकार अपने दोनों जबाड़ों को खोलता है उसी प्रकार तू भी राष्ट्र के भोग्य पदार्थों के भोग करने और शत्रु राज्यों को बल द्वारा प्राप्त करने के लिये ( शिप्रे ) दायें बायें की दोनों सेनाओं ( विष्यस्व ) विस्तृत कर और ( धेने ) जिस प्रकार भोजनकर्त्ता पुरुष खाते समय जीभ चलाता है उसी प्रकार हे राजन् ! राष्ट्र के ऐश्वर्यों के भोग करने के लिये ( धेने ) रसपान करने वाली जिह्वा के समान प्रजा शासन और शत्रु दमन करने वाली दो प्रकार की वाणियों को प्रकट कर। अथवा जिह्वा के समान अगली दो सेनाओं का संचालन कर। हे ( सुशिप्र ) उत्तम सुखप्रद राजन् ! ( त्वा ) तुझे ( हरयः ) अश्व और विद्वान् ( आ वहन्तु ) दूर २ तक ले जावें। हे ( अशन् ) प्रजाओं को चाहने वाले उनके प्रिय ! तू ( नः ) हम प्रजा-जनों के ( हव्यानि ) अन्न आदि भोग्य पदार्थों को और युद्ध आदि राष्ट्र-कार्यों को ( प्रति मुञ्च ) ग्रहण कर। आचार्य के पक्ष में—वह प्रिय शिष्यों के साथ प्रसन्न होकर रहे। वह ( शिप्रे धेने ) ऐहिक और पारमार्थिक सुखों और ज्ञान-वाणियों को प्रकट करे। ( हरयः ) विद्वान् शिष्य तुझे धारण करें। तू हम गृहस्थ जनों के अन्नों को स्वीकार कर।

**म॒रुत्स्तो॑त्रस्य वृ॒जन॑स्य गो॒पा व॒यमिन्द्रे॑ण सनुयाम॒ वाज॑म्।**
**तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑ति॒ः सिन्धु॑ः पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥११॥१३**

भा०—( मरुत्स्तोत्रस्य ) वायु के वेगादि गुणों से स्तुति करने योग्य ( वृजनस्य ) शत्रुओं को वर्जन करने हारे सेनापति के ( गोपाः ) रक्षक हम लोग ( इन्द्रेण ) उस ऐश्वर्यवान् शत्रुहन्ता के साथ रह कर ही ( वाजम् सनुयाम ) संग्राम करें और ऐश्वर्य का लाभ करें। ( तन्नः मित्रः० इत्यादि पूर्ववत् ) इति त्रयोदशो वर्गः ॥

[ १०२ ]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्रो देवता ॥ छन्दः—१ जगती । ३, ५—८ निचृज्जगती । २, ४, ६ स्वराट् त्रिष्टुप् । १०, ११ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

इमां ते धियं प्र भरे महो महीमस्य स्तोत्रे धिषणा यत्त आनजे ।
तमुत्सवे च प्रसवे च सासहिमिन्द्रं देवासः शवसामदन्ननु ॥ १ ॥

भा०—हे प्रभो ! स्वामिन् ! ( ते धिषणा ) तेरी वाणी और बुद्धि (यत् आनजे ) जो ज्ञान और कर्त्तव्य (आनजे) प्रकट करती है ( अस्य ते ) साक्षात् पूजनीय तेरी ( इमां ) इस ( महः महीम् ) बड़ी आदरणीय ( धियम् ) ज्ञानप्रद और कर्मप्रद वाणी को ( स्तोत्रे ) स्तुति करने वाले वचन में तथा कर्म में ( प्र भरे ) धारण करता हूं । ( देवासः ) विद्वान् जन और विजय की कामना करने वाले पुरुष ( तम् ) उस ( सासहिम् ) शत्रु पराजयकारी ( इन्द्रम् ) राजा, सेनापति को ( उत्सवे च प्रसवे च ) आनन्द, उत्सव, उत्तम काम तथा शासन के कार्य में या जन्म आदि के अवसर में ( शवसा ) बल द्वारा ( अनु अमदन् ) हर्षित करते और उसके साथ स्वयं हर्षित होते हैं ।

अस्य श्रवो नद्यः सप्त बिभ्रति द्यावाक्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ।
अस्मे सूर्याचन्द्रमसाभिचक्षे श्रद्धे कमिन्द्र चरतो वितर्तुरम् ॥२॥

भा०—( अस्य ) इस परमेश्वर के ( श्रवः ) महान् सामर्थ्य को ( सप्त नद्यः ) बहने वाली नदियें और ( द्यावाक्षामा ) सूर्य और पृथिवी और ( पृथिवी ) अन्तरिक्ष सब ( वपुः ) अपने स्वरूप में ( बिभ्रति ) धारण कर रहे हैं । हे ( इन्द्र ) परमेश्वर ! ( अस्मे अभिचक्षे ) हमें दिखाने और आँखों से ज्ञान कराने और ( श्रद्धे ) सत्य ज्ञान को धारण कराने के लिये ( सूर्याचन्द्रमसा ) सूर्य और चन्द्रमा दोनों प्रकाशमान होकर ( वितर्तुरम् ) नाना प्रकार से आते जाते हुए ( चरतः ) गति

करते हैं। ( २ ) राजा के पक्ष में—तेरे ही यश और ऐश्वर्य को ( सप्त-नद्यः ) सर्पणशील समृद्ध प्रजाएं या नदियों के समान धारण करती हैं। पृथिवी आकाश और अन्तरिक्ष तीनों तेरे गुणों को अपने में धारण करते हैं। सूर्य चन्द्र और शान्ति के देने वाले पुरुष सत्य ज्ञान देने और विश्वास योग्य पदार्थों को उपदेश देने के लिये विचरण करें।

**तं स्मा रथं मघवन्प्राव सातये जैत्रं यं ते अनुमदाम संगमे।**
**आजा न इन्द्र मनसा पुरुष्टुत त्वायद्भ्यो मघवञ्छर्म यच्छ नः ॥३॥**

भा०—हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् परमेश्वर ! ( ते ) तेरे ( यं ) जिस ( जैत्रं ) समस्त दुःखों पर विजय करने वाले ( रथं ) रसस्वरूप, सबको अपने में रमण करने वाले स्वरूप को ( संगमे ) अच्छी प्रकार प्राप्त कर लेने पर योगदशा में हे (पुरुस्तुत) बहुतसी प्रजाओं से स्तुति करने योग्य ! तू ( आजा ) दुःखों को दूर करने वाले, तुझे प्राप्त करने वाले योगकाल में हे ( इन्द्र ) आत्मन्, परमात्मन् ! हम ( अनुमदाम ) अनुक्षण, निरन्तर आनन्द रस का लाभ करते हैं। तू ( तं रथं ) उसी रसस्वरूप को (सातये) हमें सदा आनन्द लाभ कराने के लिये ( प्र अव ) प्रकट कर। हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन् ! हे ( मघवन् ) परम पूज्य परमेश्वर ! ( मनसा त्वायद्भ्यः ) मनसे तुझे चाहने वाले ( नः ) हमें तू ( शर्म ) सुख ( यच्छ ) प्रदान कर। (२) राजा तथा सेनापति के पक्ष में—(यं ते जैत्रं रथं अनुमदेम) जिस विजय शील रथ को देख कर हम प्रसन्न होते हैं, हे ( मघवन् ) राजन् ! तू ( तं रथं सातये, आजा संगमे प्र अव ) उस रथ को ऐश्वर्य विजय के लाभ के लिये आगे बढ़ा। हे राजन् ! ( मनसा त्वायद्भ्यः शर्म यच्छ ) तू मन से तुझे चाहने वाले हम लोगों को सुख शरण प्रदान कर।

**वयं जयेम त्वया युजा वृतमस्माकमंशमुदवा भरेभरे।**
**अस्मभ्यमिन्द्र वरिवः सुगं कृधि प्र शत्रूणां मघवन्वृष्ण्या रुज ॥४॥**

भा०—हे ( इन्द्र ) हे परमेश्वर ! राजन् ! सेनापते ! ( त्वया युजा )

तुझ सहायक के साथ ( वयम् ) हम लोग ( जयेम ) विजय लाभ करें। तू ( भरे-भरे ) प्रत्येक संग्राम के अवसर पर ( अस्माकम् ) हमारे (वृतम्) प्राप्त होने योग्य, ग्राह्य ( अंशम् ) सेना के टुकड़े को अथवा जन, वस्त्र, शस्त्र, कोश, ऐश्वर्य आदि के हिस्से को तू ( उत अव ) उत्तम रीति से सुरक्षित रख। ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिये हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( वरिवः ) धन को ( सुगं कृधि ) सुगमता से प्राप्त होने योग्य कर। और ( शत्रूणां ) हमारे कार्यों, शरीरों और मनोरथों के नाशक, बाधक शत्रुओं के ( वृष्ण्या ) बलों को हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! ( प्र रुज ) अच्छी प्रकार तोड़ डाल।

**नाना हि त्वा हवमाना जना इमे धनानां धर्तरवसा विपन्यवः। अस्माकं स्मा रथमा तिष्ठ सातये जैत्रं हीन्द्र निभृतं मनस्तव ॥५॥१४**

भा०—हे ( धनानां धर्त्तः ) समस्त ऐश्वर्यों के धारण करने हारे वीर नायक ! ( हि ) निश्चय से ( त्वा ) तुझ से स्पर्द्धा करने वाले, तेरे सदृश बल और ज्ञान वाले ( इमे नाना ) ये नाना जन भी ( विपन्यवः ) विविध व्यवहारों में कुशल एवं नाना विद्याओं के प्रवक्ता जन ( अपसा ) ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य सहित विद्यमान हैं। इन सब में से तू ही (सातये) ऐश्वर्य के विभाग और प्राप्ति के लिये ( अस्माकम् ) हमारे ( जैत्रं ) विजयकारी, मुख्य ( रथम् ) रथ अर्थात् महारथी पद पर ( आतिष्ठ ) विराजमान हो। ( हि ) क्योंकि (तव मनः) तेरा चित्त और ज्ञान (निभृतं) खूब अच्छी प्रकार सुरक्षित, स्थिर और अच्छी प्रकार नियमित है। इति चतुर्दशो वर्गः ॥

**गोजिता बाहू अमितक्रतुः सिमः कर्मन्कर्मञ्छतमूतिः खजंकरः। अकल्प इन्द्रः प्रतिमानमोजसाथा जना वि ह्वयन्ते सिषासवः॥६॥**

भा०—हे राजन् ! सभापते ! एवं परमेश्वर ! तेरी ( बाहू ) बाहुएं, शत्रुओं को पीड़न करने वाली अगल बगल की सेनाएं ( गोजिता ) भूमियों

का विजय करने वाली हैं। और (बाहू) दोनों बाहू अर्थात् छाती का भाग अपने विस्तार और बल सामर्थ्य से (गोजिता) वृषभ को भी जीतने वाला, उससे भी अधिक शक्तिशाली हो। और तू स्वयं (अमित-क्रतुः) अमित, अनन्त ज्ञान और कर्म सामर्थ्य से युक्त, (सिमः) सबसे श्रेष्ठ तथा प्रजाओं को प्रबन्ध व्यवस्था द्वारा और शत्रुओं को बध, बन्धन, सन्धि आदि से बांधने वाला और (कर्मन् कर्मन्) प्रत्येक काम में (शतम्-ऊतिः) सैकड़ों ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य और पराक्रमों वाला (खजंकरः) संग्राम में शत्रुओं का नाश करने वाला है। वह (इन्द्रः) ऐश्वर्यवान् स्वामी (ओजसा) बल पराक्रम से (अकल्पः) अपने समान किसी को न रखने वाला, अनुपम और (प्रतिमानम्) सबके सामर्थ्य को मापने वाला पैमाना है। (अथ) और तुझ उसको (सिषासवः) भजन करने हारे भक्त जन एवं शरणार्थी और ऐश्वर्य के इच्छुक सभी (जनाः) जन (विह्वयन्ते) विविध रूपों से स्तुति करते हैं।

उत्ते॑ श॒तान्म॑घव॒न्नुच्च॒ भूय॑स॒ उत्स॒हस्रा॑द्रिरिचे कृ॒ष्टिषु॒ श्रवः॑। अ॒मा॒त्रं त्वा॑ धि॒षणा॑ तित्विषे म॒ह्यधा॑ वृ॒त्राणि॑ जिघ्नसे पुरन्दर ॥ ७ ॥

भा०—हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (ते) तेरा (श्रवः) ज्ञान, ऐश्वर्य, यश (कृष्टिषु) मनुष्यों में (शतात्) सौसे, (उत् रिरिचे) भी अधिक बढ़े। (भूयसः उत् च) और उसमें भी अधिक संख्यावाले पुरुषों से अधिक हो। (सहस्रात् उत् रिरिचे) हज़ार से भी अधिक हो। (मही) बड़ी भारी, अति पूजनीय, उत्तम (धिषणा) विद्या, बुद्धि और वाणी, (अमात्रं त्वा) अपरिमित बलशाली तुझको (तित्विषे) अधिक तेजस्वी बनावे। (अध) और हे (पुरन्दर) शत्रुओं के गढ़ों को तोड़नेहारे! तू (वृत्राणि) मेघों को सूर्य के समान अपने बढ़ते हुए और विपरीत आचरण करनेवाले शत्रुओं को (जिघ्नसे) दण्डित कर। (२) परमेश्वर के पक्षमें—हे परमेश्वर! सैकड़ों सहस्रों और उनसे भी अधिक असंख्यात लोकों

और ब्रह्माण्डों से भी तेरा सामार्थ्य बढ़ कर है । अनन्त बलशाली तुझको बड़ी भारी पूजनीय ( धिषणा ) वेदवाणी प्रकाशित करती है । तू जीवों को देह बन्धनरूप दुष्टों को ज्ञान वज्र से तोड़नेहारा है । तू ( वृत्राणि ) अज्ञान आवरणों को नाश कर ।

त्रिविष्टिधातु प्रतिमानमोजसस्तिस्रो भूमीर्नृपते त्रीणि रोचना ।
अतीदं विश्वं भुवनं ववक्षिथाशत्रुरिन्द्र जनुषा सनादसि ॥ ८ ॥

भा०—हे परमेश्वर ! तू ( ओजसः ) बल पराक्रम और तेज का कारण ( त्रिविष्टिधातु ) पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश, ब्रह्माण्ड के धारण करनेवाले इन तत्वों के उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, स्वल्प, अधिक और सम मात्रा में विचित्र या त्रिगुणमय व्यापन का आश्रय होकर ( प्रतिमानम् ) प्रत्येक पदार्थ के रचनेहारा है । तू ( तिस्रः ) पृथिवी, आकाश और अन्तरिक्ष तीनों को ( अति ववक्षिथ ) उन सबसे बढ़ कर धारण कर रहा है, उनसे भी महान् है । हे ( नृपते ) समस्त जीवों के पालक, तू ( त्रीणि रोचना ) सूर्य, विद्युत् और अग्नि तीनों से ( अति ववक्षिथ ) महान् है । तू ( इदं विश्वं भुवनं ) इस समस्त संसार या ब्रह्माण्ड को (अति ववक्षिथ) उससे महान् होकर उसे धारण कर रहा है । हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( जनुषा ) स्वभाव से ( सनात् ) और अनादि काल से (अशत्रुः) शत्रु रहित है, तेरा कोई नाश करनेवाला नहीं तू अविनाशी है । (२) राजा के पक्षमें—तू ( त्रिविष्टिधातु प्रतिमानम् ओजसः ) औरों के बल को नापनेवाला तीन गुणा शक्तिशाली हो । ( तिस्रः भूमीः ) तीनों उत्तम अधम और मध्यम, स्व, पर और उदासीन तीनों की तीनों भूमियों या राष्ट्रों को, ( त्रीणि रोचना ) तीन प्रजा के रुचिकर तेजोवर्धक, न्याय, बल और राज्य शासन, को ( अति ववक्षिथ ) सब से बढ़ कर धारण करने में समर्थ हो । (इदं विश्वं भुवनं अति ववक्षिथ) तू इस समस्त राज्य को धारण कर और (जनुषा सनात् अशत्रुः) स्वभावतः उसी से तू अजातशत्रु होकर रह ।

त्वां देवेषु प्रथमं हवामहे त्वं बभूथ पृतनासु सासहिः ।
सेमं नः कारुमुपमन्युमुद्भिदमिन्द्रः कृणोतु प्रसवे रथं पुरः ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन्! हम लोग ( देवेषु ) विजयशील, तेजस्वी पुरुषों और विद्वानों में ( प्रथमं ) सर्वश्रेष्ठ ( त्वां ) तुझको स्वीकार करें। ( त्वं ) तू ही ( पृतनासु ) संग्रामों में ( सासहिः ) सदा शत्रुओं का पराजय करने हारा ( बभूथ ) हो। ( सः ) वह ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा ही ( नः ) हममें से ( उपमन्युम् ) प्रत्येक पदार्थ को अति समीप होकर उसका ज्ञान करनेवाले रहस्यतत्वज्ञ ( इमं ) इस ( कारुम् ) शिल्पादि के बनाने वाले पुरुष को ( प्रसवे ) उत्तम २ पदार्थों के उत्पादन कार्य में ( पुरः ) सब के आगे प्रमुख ( कृणोतु ) करे। और ( उद्भिदम् रथम् ) जिस प्रकार शिल्पी पृथिवी फोड़ कर निकले हुए वृक्ष के काष्ठ को रथ बना देता है उसी प्रकार ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् पुरुष, राजा या सेनापति ( उद्-भिदम् ) सब से उत्तम या ऊर्ध्वचारी होकर शत्रु सेना को फोड़ने में समर्थ ( रथम् ) रथ नाम सेनाङ्ग को ( प्रसवे ) उत्तम ऐश्वर्य के प्राप्त करने और उत्तम रीति से सेना के प्रशासन कार्य में ( पुरः ) सबके आगे प्रमुख स्थान पर ( कृणोतु ) नियत करे अर्थात् शत्रु भेदन में कुशल महारथी को सर्वाग्रणी बनावे। ( २ ) परमेश्वर के पक्षमें—हम समस्त दिव्यगुण वाले प्रकाशक, लोकों और विद्वानों में प्रथम, मुख्य तुझे स्तुति करते हैं। तू ( पृतनासु ) सब मनुष्यों का वशीकर्त्ता है। वह तू परमेश्वर इस ( उप-मन्युम् कारुम् ) तेरे नित्य मनन करनेवाले, स्तुतिकर्त्ता, कर्मकर्त्ता जीव को और ( रथं ) रमण साधन देह को ( उद्भिदम् ) वनस्पति के समान ( प्रसवे ) उत्पन्न होने के लिये ( कृणोतु ) उत्पन्न करता है। अथवा ( रथम् ) रमण करनेवाले ( उद्भिदम् ) उत्तमांग या मूर्धास्थल या सूर्य-बिम्ब को भेदन करनेवाले आत्मा को ( पुरः ) सब से प्रथम ( प्रसवे ) अपने उत्तम ऐश्वर्य और आज्ञा में ले लेता है।

त्वं जिगेथ न धना रुरोधिथार्भेष्वाजा मघवन्महत्सु च।
त्वामुग्रमवसे सं शिशीमस्यथा न इन्द्र हवनेषु चोदय ॥ १० ॥

भा०—( मघवन् ) ऐश्वर्यवन्! शत्रुहन्तः! सेनापते! राजन्! ( अर्भेषु ) छोटे मोटे तथा ( महत्सु च ) बड़े २ ( आजा ) संग्रामों में ( त्वं ) तू ( जिगेथ ) विजय प्राप्त कर। तू ( धना ) ऐश्वर्यों को अपने पास ही मत ( रुरोधिथ ) रोके रह। प्रत्युत प्रजाओं और भृत्यों के उपकार में व्यय कर। ( उग्रम् ) उग्र, भयानक, शत्रुबल के नाश करने में समर्थ ( त्वाम् ) तुझको हम ( अवसे ) अपनी रक्षा के लिये आश्रय करके ( संशिशीमसि ) तुझे खूब तीक्ष्ण और उत्तेजित करें और तेरा आश्रय लेकर शत्रुओं को खूब नाश करें। ( अथ ) और ( नः ) हमें हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! तू ( हवनेषु ) युद्ध-आह्वानों में, संग्रामों में और स्वीकार करने योग्य उत्तम कर्मों में ( चोदय ) प्रेरित कर। ( २ ) हे परमेश्वर! तू हम छोटे बड़े सब उद्देश्यों और संग्रामों में ( जिगेथ ) जय प्राप्त करा। हमें ऐश्वर्य प्राप्त करा। तुझ बलशाली का आश्रय लेकर अपनी रक्षा के लिये हम शत्रुको नाश करें। तू उत्तम कर्मों में हमें प्रेरित कर।

विश्वाहेन्द्रो अधिवक्ता नो अस्त्वपरिह्वृताः सनुयाम वाजम्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥११॥१५॥

भा०—व्याख्या देखो म० १। सू० १००। मन्त्र १९॥ इति पञ्चदशो वर्गः॥

## [ १०३ ]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः॥ इन्द्रो देवता॥ छन्दः—१, ३, ५, ६ निचृत्त्रिष्टुप्। २, ४ विराट् त्रिष्टुप्। ७, ८, त्रिष्टुप्॥

तत्त इन्द्रियं परमं पराचैरधारयन्त कवयः पुरेदम्।
क्षमेदमन्यद्दिव्य१न्यदस्य समी पृच्यते समनेव केतुः ॥ १ ॥

भा०—हे परमेश्वर! ( ते ) तेरा ( तत् ) वह ( परमं इन्द्रियम् )

परम ऐश्वर्य, सामर्थ्य या सर्वोत्कृष्ट स्वरूप है जिसको ( कवयः ) क्रान्तदर्शी विद्वान् लोग ( पुरा ) बहुत पहले काल से ( पराचैः ) अपने दूर दर्शी पारमार्थिक साक्षात्कारों द्वारा ( इदम् ) 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार यथार्थ रूप से ( अधारयन्त ) धारण कर रहे हैं, ज्ञान करते चले आ रहे हैं। ( इदम् ) यह ईश्वर का महान् सामर्थ्य ( क्षमा ) पृथिवी में ( अन्यत् ) कुछ भिन्न ही प्रकार का है। और (दिवि) आकाश या सूर्य में वह सामर्थ्य ( अन्यत् ) भिन्न प्रकार का है। ( समना-इव ) प्रेम युक्त चित्तवाली स्त्री जिस प्रकार अपने प्रिय पति से जा मिलती है उस प्रकार, अथवा युद्ध में लड़ती सेना जैसे परसेना से जा भिड़ती है उसी प्रकार ( केतुः ) यह परमेश्वर का ज्ञापक, प्रकाशक दोनों प्रकार का स्वरूप ( सम्पृच्यते ) परस्पर सुसंगत हो जाता है। एक दूसरे के अनुकूल उपकार्य उपकारक भाव से सम्बद्ध है। पृथिवी में नाना जीव सृष्टि, ओषधि, लता अन्न, अग्नि इत्यादि सभी पदार्थ हैं। आकाश में सूर्य, वायु मेघ आदि पर दोनों स्थानों में स्थित ईश्वर के ये महान् सामर्थ्य एक दूसरे के उपकारक होते हैं। पृथ्वी के जल से मेघादि की उत्पत्ति और मेघ, सूर्य, वायु आदि के द्वारा पृथ्वी पर जीव संसार की उत्पत्ति और जीवन, अन्न आदि होते हैं। ( २ ) राजा के पक्षमें—यह राजा का बड़ा भारी ऐश्वर्य या शासन-बल है जो एक तो ( क्षमा ) पृथिवी निवासी प्रजा में व्यवस्था रूप से दूसरा ( दिवि ) राजसभा में है। वह उभयत्र उसका ज्ञापक होकर परस्पर सम्बद्ध है।

**स धा॑रयत्पृथि॒वीं प॒प्रथ॑च्च॒ वज्रे॑ण ह॒त्वा निर॒पः स॑सर्ज।**
**अह॒न्नहि॒मभि॑नद्रौहि॒णं व्यह॒न्व्यं॑सं म॒घवा॒ शची॑भिः ॥ २ ॥**

भा०—ईश्वर के महान् सामर्थ्यों का वर्णन करते हैं। ( सः ) वह परमेश्वर सूर्य के समान ( पृथिवीम् ) पृथिवी को ( धारयत् ) धारण करता है और ( पप्रथत् च ) उसको विशाल आकार का बनाता है जिस प्रकार

( वज्रेण मेघं हत्वा अपः निः ससर्ज ) सूर्य विद्युत् या प्रबल वायु से मेघ को आघात करके वृष्टि के जल को उत्पन्न करता है उसी प्रकार परमेश्वर भी ( वज्रेण ) विद्युत् के बल से ( हत्वा ) दो भिन्न २ प्रकार के वायु-तत्वों को मिलाकर ( अपः ) जलों को ( निः ससर्ज ) निर्माण करता है। ( मघवा ) सूर्य जिस प्रकार ( अहिम् अहन् ) मेघ को छिन्न-भिन्न करता, ( रौहिणम् अभिनत् ) रोहिणी नक्षत्र के योग में उत्पन्न मेघ को छिन्न-भिन्न करता और ( वि अंसं ) विविध कन्धों वाले मेघ को ( वि अहन् ) विविध प्रकार से नाश करता है उसी प्रकार परमेश्वर भी ( शचीभिः ) अपनी बड़ी २ शक्तियों से ( अहिम् ) सर्वत्र व्यापक, महान्, अन्धकारमय जगत् के कारण तत्व, प्रकृति को ( अहन् ) आघात करता, उसमें प्रविष्ट होता है और ( रौहिणम् ) संसार को प्रकट कर देनेवाले महान्, हिरण्य-गर्भ रूप अण्ड को (अभिनत्) भेदता है उसे विभक्त कर नाना लोक बनाता है। ( वि-अंसं ) विविध पृथिवी आदि पञ्चभूतों रूप स्कन्धों से युक्त, या विविध शाखाओं से युक्त वृक्ष के समान विस्तृत सर्ग को भी (वि अहन्) विविध रूपों में विभक्त करता, या विनाश करता या प्रकट करता है। (२) राजा के पक्षमें—वह पृथिवी को शासन द्वारा धारण करता, राष्ट्र को बढ़ाता है, शस्त्रास्त्र बल से शत्रु को मार कर प्रजाओं की वृद्धि करता है। मेघ के समान उमड़ते शत्रु का नाश करता ( व्यंसं ) विविध छावनियों को बसानेवाले और ( रौहिणं ) वट के समान फैलनेवाले शत्रु के राज्य या क्षात्रबल को छिन्न-भिन्न करता है।

स जातूभर्मा श्रद्दधान ओजः पुरो विभिन्दन्नचरद्वि दासीः।
विद्वान्वज्रिन्दस्यवे हेतिमस्यार्यं सहो वर्धया द्युम्नमिन्द्र ॥ ३॥

भा०—(सः) वह परमेश्वर ( जातुभर्मा ) उत्पन्न होनेवाले समस्त प्राणियों का पालन पोषण करनेहारा ( श्रद्दधानः ) सत्य स्वरूप को धारण करनेवाला ( ओजः ) अपने महान् सामर्थ्य से ( दासीः पुरः ) नाश

होनेवाली सृष्टियों को और ( पुरः ) आत्मा के देह-बन्धनों को ( विभिन्दन् ) विविध प्रकारों से विनाश करता हुआ ( वि अचरत् ) विशेष रूप से व्याप रहा है। हे ( वज्रिन् ) शक्तिशालिन् ! वह ( विद्वान् ) ज्ञानवान्, तू ( दस्यवे ) नाशकारी दुष्ट पुरुष को नाश करने के लिये ( हेतिम् ) उसके बध का उपाय करता है और हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( आर्य ) श्रेष्ठ पुरुषों और प्रजा के पालक स्वामीजनों के ( सहः ) शत्रुओं को पराजय करने योग्य बल और ( द्युम्नं ) ऐश्वर्य की ( वर्धय ) वृद्धि कर। ( २ ) राजा या सभा सेनादि के अध्यक्ष के पक्षमें—वह ( जातूभर्मा) विद्युत् से बने शस्त्रास्त्रवाला अथवा प्रजा का पोषक, ( ओजः दासीः पुरः विभिन्दन् वि अचरत् ) अपने पराक्रम से दुष्ट पुरुषों की नगरियों और गढ़ों को तोड़ता हुआ विविध दिशाओं में विचरे। वह विद्वान् विवेकी होकर दुष्टों पर शस्त्र का प्रयोग करे। ( आर्य सहः ) भले पुरुषों तथा प्रजा के स्वामी या वैश्य वर्ग के बल और ऐश्वर्य की वृद्धि करे।

**तदूचुषे मानुषेमा युगानि कीर्तेन्यं मघवा नाम बिभ्रत्।**
**उपप्रयन्दस्युहत्याय वज्री यद्ध सूनुः श्रवसे नाम दधे ॥ ४॥**

भा०—( वज्री ) वह शक्तिशाली परमेश्वर ( दस्युहत्याय ) नाशकारी अज्ञान को नाश करने के लिये (उप प्रयन् ) अति समीप प्राप्त होता हुआ ( सूनुः ) निश्चय से सबको प्रेरण करने हारा होकर ( श्रवसे ) ज्ञान की वृद्धि के लिये ( यत् नाम दधे ) जिस प्रसिद्ध तेजोमय स्वरूप को धारण करता है वह ( तत् ) उस ( ऊचुषे कीर्तेन्यं ) स्तुति करने वाले जन के लिये स्तुति करने योग्य ( नाम ) नाम और स्वरूप को ( इमा मानुषा युगानि) मनुष्यों के इन कल्पित अनेकों वर्षों तक (बिभ्रत् ) धारण करता है। ( २ ) राजा के पक्ष में—दुष्ट पुरुषों के कीर्त्ति के प्राप्त करने के लिये राजा जिस प्रसिद्ध नाम को धारण करे वह बहुत से वर्षों तक धारण करे। अर्थात् वह चिरस्थायी कीर्त्ति प्राप्त करे।

तदस्येदं पश्यता भूरि पुष्टं श्रदिन्द्रस्य धत्तन वीर्याय। स गा अविन्दत्सो अविन्ददश्वान्त्स ओषधीः सो अपः सवनानि ॥५॥१६॥

भा०—हे मनुष्यो! (अस्य) इस परमेश्वर का (इदं) यह प्रत्यक्ष दीखने वाला (भूरि) बहुत प्रकार का और बहुत अधिक (पुष्टम्) सब का परिपोषक और स्वतः पुष्ट, दृढ़ (तत्) वह परम बल (पश्यत) देखो और (वीर्याय) बल, वीर्य की वृद्धि और प्राप्ति के लिये (इन्द्रस्य) उस महान् ऐश्वर्यवान् परमात्मा पर (श्रद् धत्तन) श्रद्धा, दृढ़ विश्वास करो। अथवा (इन्द्रस्य पुष्टं श्रद् वीर्याय धत्तन) उस परमेश्वर के दृढ़ सत्य व्यवस्था को बल वृद्धि के लिये धारण करो। (सः) वह (गाः) गतिमान् समस्त सूर्यादि लोकों को (अविन्दत्) व्याप्त है। (सः) वह (अश्वान्) व्यापक आकाशादि पदार्थों तथा भोक्ता जीवों को भी (अविन्दत्) वश किये है। (सः ओषधीः) वह समस्त ओषधि, अन्न, लता, वृक्ष, वनस्पतियों तथा प्रताप और तेज के धारक सूर्य अग्नि आदि को भी वश करता है। (सः अपः) वह समुद्र, मेघ आदि में स्थित जलों, प्राणों, लिंग शरीरों तथा व्यापक जगत् निर्मातृ उपादान कारणावयवों को भी वश कर रहा है। (सः वनानि) भोग और सेवन करने योग्य समस्त ऐश्वर्यों को वश कर रहा है। (२) आत्मपक्ष में— इस अपने आत्मा के बड़े भारी बल का साक्षात् करो और इस 'इन्द्र' आत्मा के 'श्रत्' सत्य रूप को जानकर उस पर विश्वास करो, उसका आदर करो। वह वेद-वाणियों, ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों, ताप धारक लोकों और देह गत धातुओं को और (अपः) कर्मों, ज्ञानों और (वनानि) भोग्य सुखों को प्राप्त करता है। (३) राजा के पक्ष में—राजा का बढ़ा हुआ बल देखो और बल की वृद्धि के लिये उस पर विश्वास, भरोसा करो वह भूमियों, गो सम्पत्ति तथा अश्वों, ओषधियों, नदी ताल आदि जलस्थानों और वनों को अपने वश करे। इति षोडशो वर्गः॥

भूरिकर्मणे वृषभाय वृष्णे सत्यशुष्माय सुनवाम सोमम् ।
य आदृत्या परिपन्थीव शूरोऽयज्वनो विभजन्नेति वेदः ॥ ६ ॥

भा०—( यः ) जो ( शूरः ) शूरवीर पुरुष ( अयज्वनः ) अदानशील, कंजूस, दूसरों को अधिकार और आवश्यक भोजन, धन, वेतन आदि भी न देने वाले अत्याचारी पुरुषों को ( आ-दृत्य ) सब प्रकार से भयभीत करके उनसे ( परिपन्थी इव ) चोर डाकू के समान ( वेदः ) धन को ( वि-भजन् ) छीन ( एति ) ले आता है उस ( भूरिकर्मणे ) राष्ट्र के बहुत अधिक कार्य करने वाले, ( सत्य शुष्माय ) सत्य और न्याय के बल से बलवान्, ( वृष्णे ) सुखों के वर्षक ( वृषभाय ) नरश्रेष्ठ पुरुष के लिये हम लोग ( सोमम् ) ऐश्वर्य ( सुनवाम ) उत्पन्न करें । और ( सोमम् ) राज्यपद का ( सुनवाम ) अभिषेक करें ।

तदिन्द्र प्रेव वीर्यं चकर्थ यत्ससन्तं वज्रेणाबोधयोऽहिम् ।
अनु त्वा पत्नीर्हृषितं वयश्च विश्वे देवासो अमदन्ननु त्वा ॥ ७ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) सेनापते ! ( यत् ) जिस कारण से तू ( ससन्तं अहिम् ) सोता हुआ सांप जिस प्रकार विजली की कड़क से जाग जाता है उसी प्रकार (ससन्तम्) सोते हुए, बेखबर पड़े (अहिम्) सांप के समान कुटिल, सामने से चढ़ाई करने वाले शत्रु को (वज्रेण) अपने प्रबल शस्त्र-बल से (अबोधयः) खूब अपनी शक्ति का परिचय करा देता है, कि सुधर जाओ नहीं तो कठोर दण्ड पाओगे, ( तत् ) इसलिये तू ( वीर्यम् ) अपने बल को ( प्र इव चकर्थ ) खूब अच्छी प्रकार दृढ़ बनाये रख । ( हृषितं पत्नीः ) काम अभिलाषा से हृष्ट पुष्ट हुए अपने पति को देख कर जिस प्रकार स्त्रियें अधिक प्रसन्न होती हैं उसी प्रकार हे राजन् ( हृषितं ) अति हर्ष से युक्त ( त्वा ) तुझको ( अनु ) प्राप्त करके ( पत्नीः ) राष्ट्र के पालन करने वाली सेनाएं, ( वयः च ) और ज्ञानी पुरुष और वेग से जाने

वाले रथी और वीर भटगण और ( विश्वे ) समस्त ( देवासः ) विद्वान् और विजिगीषु जन, ( त्वा अनु अमदन् ) तेरे हर्ष में हर्षित हों ।

शुष्णं पिप्रुं कुयवं वृत्रमिन्द्र यदावधीर्वि पुरः शंबरस्य ।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥८॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार ( शुष्णं ) पृथ्वी पर सूखा डालने वाले अर्थात् न बनने वाले या बलवान् ( पिप्रु ) जल से भरे हुए, (कुयवं) पृथिवी से जौ आदि धान पैदा करने वाले ( वृतम् ) बढ़ते हुए मेघ को और ( शम्बरस्य ) जल से ( पुरः ) भरे हुए उसके भागों को ( वि अवधीः ) विविध प्रकार से छिन्न भिन्न करता है उसी प्रकार हे राजन् ! सेनापते ! तू ( शुष्णं ) प्रजा के रक्त शोषण करने वाले, ( पिप्रुं ) अपने पेट और कोशक को भरने वाले, ( कुयवं ) कुत्सित अन्न के खाने और अन्यों को देने वाले, ( वृत्रम् ) विघ्नकारी शत्रु को और ( शम्बरस्य ) नगर को घेरने वा नाश करने वाले शत्रु की ( पुरः ) नगरियों को ( यदा ) जब ( वि-अवधीः ) विविध उपायों से तोड़ता है तब ( मित्रः ) मित्र राजा, ( वरुणः ) सर्वश्रेष्ठ सेनापति, ( अदितिः ) शासनकारी, ( सिन्धुः ) अति वेग से जाने वाला सैन्यदल, ( पृथिवी ) भूमिवासी प्रजाजन और ( द्यौः ) सूर्य या आकाश के समान विद्वान् जन (नः) हमारी ( मामहन्ताम् ) वृद्धि करें । इति सप्तदशो वर्गः ॥

[ १०४ ]

१, ४, ५ स्वराट् पंक्तिः । ६ भुरिक् पंक्तिः । ३, ७ त्रिष्टुप् । ८, ६ निचृत् त्रिष्टुप् ॥

योनिष्ट इन्द्र निषदे अकारि तमा नि षीद स्वानो नार्वा ।
विमुच्या वयोऽवसायाश्वान्दोषा वस्तोर्वहीयसः प्रपित्वे ॥ १ ॥

भा०—( दोषावस्तोः ) दिन और रात ( प्रपित्वे ) प्राप्त करने योग्य

समीप में ( वहीयसः ) ढोकर ले जाने में समर्थ ( अश्वान् ) अश्वों, अश्वारोहियों को अब साथ रथ से तथा युद्धादि कार्य से युक्त करके और (वयः) ज्ञानवान् या वेग से जाने वाले अन्य पदाति सैन्यों को (विमुच्या) छोड़ कर अथवा ( वयः ) पक्षियों के समान पिन्जरे में बंधे कैदियों को छोड़ कर ( स्वानः अर्वा न ) ज्ञान का उपदेश करता हुआ विद्वान् ज्ञानी पुरुष जिस प्रकार अपने आसन पर विराजता है उसी प्रकार हे ( इन्द्र ) राजन् ! हे विद्वन् ! ( ते ) तेरे ( निषदे ) विराजने के लिये ( योनिः ) स्थान, आसन ( अकारि ) बनाया जावे तू ( तम् आ नि सीद ) उस पर विद्वान् या अन्तरिक्ष में गर्जते मेघ के समान विराज । अर्थात् युद्धादि द्वारा सिंहासन पर विराज । अथवा—( विमुच्य वयः ) किरणों को दूर २ तक फैला कर सूर्य जिस प्रकार अपने स्थान अन्तरिक्ष में विराजता है उसी प्रकार ( अश्वान् अवसाय ) घोड़ों या अश्वारोही वीर कार्य-कुशल पुरुषों को देश विजय और शासन के लिये छोड़ कर आप सिंहासन पर विराजे । ( २ ) अध्यात्म में—( प्रपित्वे वहीयसः ) प्राप्त विषय का ज्ञान कराने वाले ( वयः ) ज्ञानेन्द्रियों को ( विमुच्य अवसाय ) विषयों से छुड़ाकर आत्मा अपने आश्रय हृदय देश में विराजे । ( ३ ) जो ईश्वरअपने प्राप्त ज्ञानी और भोक्ता जीवों को मुक्त करता है वह हृदय देश में विराजे।

ओ त्ये नर॒ इन्द्र॑मू॒तये॑ गु॒र्नू चि॒त्तान्त्स॒द्यो अध्व॑नो ज॒गम्या॑त् ।
दे॒वासो॑ म॒न्युं दास॑स्य श्च॒म्नन्ते न॒ आ व॑क्षन्त्सुवि॒ताय॒ वर्ण॑म् ॥२॥

भा०—( त्ये ) वे नाना देशवासी ( नरः ) नायक, प्रजाओं के मुख्य पुरुष ( इन्द्रम् ) ऐश्वर्यवान् राजा और ज्ञानवान् विद्वान् के पास ( ऊतये ) रक्षा, शरण और ज्ञान प्राप्त करने के लिये ( आ गुः ) आवें । वह ( नूचित् सद्यः ) शीघ्र ही ( तान् ) उनको ( अध्वनः ) उत्तम २ मार्गों का ( जगम्यात् ) उपदेश करे । ( देवासः ) दानशील, अन्नादि का दाता विद्वान् स्वामी ( दासस्य ) अपने अधीन सेवक जन के (मन्युम्)

क्रोध, उद्वेग को (चम्नन्) सदा दूर करते रहें। (ते) वे (नः) हम प्रजाजनों के हितार्थ (सुविताय) उत्तम कार्य में लगाये गये को (वर्णम्) वरण करने योग्य उत्तम धन, वेतन आदि (आवक्षन्) प्राप्त करावें। अथवा—(देवासः) देव विद्वान् गण, नाशकारी दुष्ट पुरुष के (मन्युं) क्रोध को नाश करें। और (नः सुविताय) हम में से उत्तम मार्ग पर जाने वाले को (वर्गम् आवक्षन्) उत्तम वर्ग, पद या धन प्राप्त करावें।

**अव॒ त्मना॑ भरते॒ केत॑वेदा॒ अव॒ त्मना॑ भरते॒ फेन॑मु॒दन्।**
**क्षी॒रेण॑ स्नातः॒ कुय॑वस्य॒ योषे॑ ह॒ते ते स्या॑तां प्रव॒णे शिफा॑याः ॥३॥**

भा०—एक पुरुष (केतवेदाः) ऐश्वर्य प्राप्त करके और ज्ञानवान् होकर भी (त्मना) अपने मतलब से, अपने स्वार्थ से (फेनम्) चक्र वृद्धि आदि द्वारा बढ़े धन और ज्ञान को (अव भरते) नीच उपाय से प्राप्त करता है और नीच कार्य में ज्ञान का उपयोग करता है और दूसरा (त्मना अव भरते) स्वभावतः नीच उपाय से धनादि हरता है वे दोनों (उदन्) जलाशय में मानों (क्षीरेण स्नातः) जल से व्यर्थ नहाते हैं। वे दोनों भीतर मलिन होते हैं। वे दोनों (कुयवस्य) कुत्सित यव वाले अर्थात् दरिद्र की (योषे इव) स्त्रियां जिस प्रकार (शिफायाः प्रवणे) नदी की ढाल में खड़ी अथवा परस्पर के आक्षेप, निन्दा कलहवृत्ति के नीचे व्यवहार में पड़कर आपस में लड़ती और नष्ट हो जाती हैं उसी प्रकार वे दोनों भी नष्ट हो जाते हैं। (२) अथवा—(यः केतवेदाः त्मना अवभरते) ऐश्वर्य प्राप्ति का उत्तम उपाय ज्ञान करके भी स्वार्थ के निमित्त नीच उपाय से धन संग्रह करता है वह मानो (क्षीरेण स्नातः) जल से स्नान करके भी (त्मना) अपने निमित्त (उदन्) जल में (फेनम् अवभरते) फेना ही प्राप्त करता है। और यदि (कुयवस्य) कुत्सित अन्न खाने वाले दरिद्र पुरुष की (योषे स्याताम्) दो स्त्रियां हों तो वे दोनों (शिफायाः प्रवणे) नदी प्रवाह के समान कलह के नीच व्यवहार में डूब कर (ते हते स्याताम्) वे दोनों नष्ट हो जाती हैं।

युयोप नाभिरुपरस्यायोः प्र पूर्वाभिस्तिरते राष्टि शूरः ।
अञ्जसी कुलिशी वीरपत्नी पयो हिन्वाना उदभिर्भरन्ते ॥ ४ ॥

भा—( उपरस्य ) मेघ के समान प्रजाओं को नाना ऐश्वर्य देने वाले ( आयोः ) सब प्रजाओं को परस्पर मिलाये रखने वाले, सबके जीवनाधार, राष्ट्र के प्राण स्वरूप पुरुषों का ( नाभिः ) केन्द्र या आश्रय होकर राजा ( युयोप ) सबको मोहित करता है। वह ( शूरः ) शूरवीर होकर समुद्र के समान ( पूर्वाभिः ) धनैश्वर्यों से पूर्ण, समृद्ध प्रजाओं के साथ (राष्टि) राज्य करता और प्रकाशित होता है। (प्र तिरते) खूब अधिक वृद्धि को प्राप्त होता है। जिस प्रकार ( पयः हिन्वानाः) जल बहाती हुई बढ़ती उमड़ती नदियां ( उदभिः ) जलों से समुद्र को ( भरन्ते ) भरती हैं उसी प्रकार उस समुद्र समान पुरुष को ( अञ्जसी ) नाना उत्तम गुणों से युक्त या अन्न समृद्धि से भरी पूरी ( कुलिशी ) कुलिश अर्थात् शस्त्रास्त्र से राष्ट्र की रक्षा करने वाली और ( वीरपत्नी ) वीर नायक को अपने पालक रूप से धारण करने वाली अथवा वीर्यवान् पुरुषों को पालन करने वाली प्रजाएं ( पयः हिन्वानाः ) बल वीर्य की वृद्धि करती हुई समुद्र को जल से समान ऐश्वर्यों से ( भरन्ते ) उसे पूर्ण कर देती हैं।

प्रति यत्स्या नीथादर्शि दस्योरोको नाच्छा सदनं जानती गात्।
अध स्मा नो मघवञ्चर्कृतादिन्मा नो मघेव निष्षपी परा दाः ॥५॥

भा०—( नीथा दस्योः सदनम् ओकः न ) मार्ग जिस प्रकार भवन के रूप में बने डाकू के घर तक जाता है ठीक इसी प्रकार ( यत् ) जो ( स्या ) वह ( नीथा ) न्यायसरणि या आप्त प्रजा ( प्रति आदर्श ) दीख रही है वह एक मार्ग के समान ( दस्योः ओकः न सदनं ) डाकू के घर को ही अपना शरण सा ( जानती ) जानती हुई ( अच्छा गात् ) प्राप्त हो सकती है। अर्थात् प्रजाजन न्याय लेने के लिये डाकुओं के गढ़ को ही राजसभा सा जान कर उसमें भी प्रवेश

कर सकती है। फलतः प्रजा भी बुरे राजा को अच्छा राजा जान कर उसके अधीन हो जाती है। ( अध ) तब हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! ( चर्कृतात् इत् ) स्थिर रूप से निर्धारित किये धर्म-मार्ग से ( नः ) हमें ले चल। और ( निःषपी मघा इव ) स्त्री-भोग का व्यसनी जिस प्रकार स्त्री व्यसन में ही नाना धन नाश कर डालता है उसी प्रकार तू ( नः ) हमें ( मा परादाः ) अपने व्यसनों के कारण पराये हाथों मत दे डाल, हमारा विनाश मत कर।

स त्वं न इन्द्र सूर्ये सो अप्स्वनागास्त्व आ भज जीवशंसे।
मान्तरां भुजमा रीरिषो नः श्रद्धितं ते महत इन्द्रियाय ॥ ६ ॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् राजन् ! ( त्वं ) तू ( नः ) हमारे बीच में ( जीवशंसे सूर्ये ) जीवन प्रदान करने से स्तुतियोग्य सूर्य के समान सर्व जीवनप्रद, तेजस्वी पद पर ( आ भज ) प्राप्त हो। ( सः ) वह तू ( अप्सु ) प्रजाओं के बीच ( जीवशंसे अनागास्त्वे ) सब प्राणियों से स्तुति करने योग्य हिंसा, पीड़ा आदि पापाचरण से रहित रहने में (आभज) लगा रह। तू ( अन्तराम् ) अपने राष्ट्र के भीतर रमण करने वाली ( भुजम् ) तेरा पालन करने वाली और तेरे द्वारा भोगी जाने योग्य प्रजा को भी अपनी अन्तःपुर की भोक्तव्य स्त्री के समान ( मा आरीरिषः ) थोड़ा भी पीड़ित मत कर। ( ते ) तेरे ( महते ) बड़े भारी (इन्द्रियाय) सामर्थ्य और ऐश्वर्य पद और अधिकार के लिये ( नः ) हमारा ( श्रद्धितम् ) बड़ा आदर भाव बना रहे।

अधा मन्ये श्रत्ते अस्मा अधायि वृषा चोदस्व महते धनाय।
मा नो अकृते पुरुहूत योनाविन्द्र क्षुध्यद्भ्यो वय आसुतिं दाः ॥७॥

भा०—हे ( पुरुहूत ) अनेक प्रजाओं से सत्कार करने योग्य ! आदरणीय, माननीय राजन् ! ( अध ) मैं भी ( ते अस्मै ) तेरा ( मन्ये ) मान करता हूं। ( ते ) तेरे कार्य और वचन ( श्रत् अधायि ) सत्य और

आदर योग्य माना जाय। तू (वृषा) सब सुखों को वर्षाने हारा, मेघ और सूर्य के समान उदार, बलवान् होकर (महते धनाय) बड़े भारी ऐश्वर्य प्राप्त करने के लिये (चोदस्व) प्रेरित कर। हे राजन् (नः) हमें (अकृते योनौ) बे बने, बिन सजे, टूटे फूटे, ढहे घर में (मा दाः) मत रख, और (नः क्षुद्ध्यद्भ्यः) हम में से भूख से पीड़ित जनों को (वयः) अन्न और (आसुतिम्) दूध आदि पान करने योग्य पदार्थ (दाः) प्रदान कर, (२) परमेश्वरपक्ष में—हे स्तुत्य! मैं तेरा मनन करता हूं। तुझ पर श्रद्धा है। तू हमें महान् ऐश्वर्य की तरफ ले चल। (अकृते योनौ) कर्म और उत्तम कर्मफल से रहित योनि अर्थात् भोगयोनि पशु आदि शरीर में मत डाल। हम भूखे प्राणियों को अन्न और जल दूध आदि प्रदान कर।

**मा नो॑ वधीरिन्द्र॒ मा परा॑ दा॒ मा नः॑ प्रि॒या भोज॑नानि॒ प्र मो॑षीः।**
**आ॒ण्डा मा नो॑ मघवञ्छक्र॒ निर्भे॒न्मा नः॒ पात्रा॑ भेत्स॒हजा॑नुषाणि॥८॥**

भा०—हे (इन्द्र) ऐश्वर्यवन्! राजन्! (नः) हमें (मा वधीः) मत मार। (नः मा परा दाः) हमें कभी त्याग मत कर। (नः) हमारे (प्रिया भोजनानि) प्रिय भोजनों और भोगने योग्य वस्तुओं को (मा प्र मोषीः) मत चुरा, हम से मत छीन और मत छिनने दे। हे (मघवन्) ऐश्वर्यवन्! हे (शक्र) शक्तिशालिन्! (नः अण्डा) हमारे गर्भगत सन्तानों को (मा निर्भेत्) मत विनाश होने दे। अर्थात् भय व्यथित करके गर्भिणी स्त्रियों को दुःखित मत कर और मत होने दो। (नः) हमारे (सहजानुषाणि) सहोदर, जन्म से एक साथ उत्पन्न (पात्रा) कच्चे पात्रों के समान स्वरूप बल वाले, असमर्थ, पालन करने योग्य बालकों को (मा भेत्) मत विनष्ट कर अर्थात् गर्भगत और कच्ची उमर के बच्चों की रक्षा कर। (२) हे परमेश्वर! हमारे गर्भों को और (सहजानुषाणि) नाना जन्मोपार्जित कर्मों से युक्त (पात्राणि) पालन करने योग्य देहों को कच्चे घड़े के समान मत टूटने दे, उनकी रक्षा कर।

अर्वाङेहि सोमकामं त्वाहुरयं सुतस्तस्य पिबा मदाय।
उरुव्यचा जठर आ वृषस्व पितेव नः शृणुहि हूयमानः ॥९॥१९॥

भा०—हे राजन् ! तू ( अर्वाङ् एहि ) प्रजा के साक्षात् कार्य-व्यवहार में आगे आ। अथवा ( अर्वाङ् ) अश्वादि द्वारा जानने वाला, या साक्षात् आदर सत्कार योग्य या तेजस्वी होकर हमें प्राप्त हो। ( त्वा ) तुझे विद्वान् ( सोमकामं आहुः ) ऐश्वर्य का इच्छुक कहते हैं। ( अयं सुतः ) यह अभिषेक द्वारा प्राप्त होने योग्य ऐश्वर्य है। ( तस्य ) उसको (मदाय) प्रजा के हर्ष और आनन्द प्राप्त कराने के लिये (पिब) प्राप्त कर, उसका उपभोग कर। तू ( उरुव्यचाः ) विशाल और विविध सत्कारों, ज्ञानों और सामर्थ्यों से युक्त होकर (जठरे) उदर में दुग्ध आदि के समान ( जठरे ) अपने उत्पन्न होने के स्थान राष्ट्र में ही ( आ वृषस्व ) बलवान् होकर रह, उसमें सुखों की वर्षा कर। और ( नः ) हमारे ( पिता इव ) पालक के समान ( हूयमानः ) आदर पूर्वक बुलाया जाकर ( नः शृणुहि ) हमारी प्रार्थनाओं को सुन। ( २ ) अध्यात्म में—हे आत्मन् ! तू साक्षात् हो। तू आनन्द का इच्छुक है। इस आत्मनन्द रस का पान कर। तू अपने स्वरूप में बल प्राप्त कर, हमारे स्तुति वचन सुन।

## [ १०५ ]

॥ १०५ ॥ १—१९ आप्त्यस्त्रित ऋषिः, आङ्गिरसः कुत्सो वा ॥ विश्वे देवा देवता ॥ छन्दः—१, २ १६, १७ निचृत्पङ्क्तिः। ३, ४, ६, ९, १५, १८ विराट्पंक्तिः। ८, १० स्वराट् पंक्तिः। ११, १४ पंक्तिः। ५ निचृद्बृहती। ७ भुरिग्बृहती। १३ महाबृहती। १९ निचृत्त्रिष्टुप् ॥

चन्द्रमा अप्स्व१न्तरा सुपर्णो धावते दिवि।
न वो हिरण्यनेमयः पदं विन्दन्ति विद्युतो वित्तं मे अस्य रोदसी॥१॥

भा०—( चन्द्रमाः ) चन्द्र ( अप्सु अन्तरा ) अन्तरिक्ष में ( दिवि)

आकाश में (सुपर्णः) उत्तम रश्मियों से युक्त होकर ( धावते ) गति करता है। हे ज्ञानी पुरुषो! आकाश में (विद्युतः) विशेष दीप्तियें या किरणें (हिरण्य-नेमयः) सुवर्ण के समान धार वाले होकर भी (वः) तुम लोगों के (पदं) ज्ञान को ( न विन्दन्ति ) गोचर नहीं होतीं। हे (रोदसी) सूर्य और पृथिवी तुम दोनों ( मे ) मुझ ज्ञानेच्छु पुरुष को ( अस्य ) इस उक्त रहस्य का ( वित्तम् ) ज्ञान प्राप्त कराओ। ( २ ) राष्ट्रपक्ष में—( अप्सु दिवि अन्तरा ) प्रजाओं और ज्ञानवान् पुरुषों, विद्वत्सभा के बीच ( सुपर्णः ) उत्तम वेगवान् रथ या बाहनों से युक्त होकर ( चन्द्रमाः ) प्रजाओं को आल्हाद देने वाला, प्रजा के चित्तों को अनुरंजन करने वाला राजा (धावते) गति करता है। ( हिरण्यनेमयः ) हित और रमणीय स्वभाव वाले तेजस्वी पुरुष, हे प्रजाजनो! ( वः पदं न विन्दन्ति ) आप लोगों के स्थान तक नहीं आते। हे ( रोदसी ) राज-प्रजावर्गो! या विद्वान् आचार्य और गुरुजनो! ( मे ) मेरे ( अस्य ) इस रहस्य का ( वित्तम् ) आप दोनों ज्ञान कराओ और करो।

**अर्थमिद्वा उ अर्थिन आ जाया युवते पतिम्।**
**तुञ्जाते वृष्ण्यं पयः परिदाय रसं दुहे वित्तं मे अस्य रोदसी ॥२॥**

भा०—( अर्थिनः ) धन के अभिलाषी जन ( अर्थम् इत् उ ) धन को ( आयुवते ) प्राप्त होते हैं ( वा उ ) उसी प्रकार ( जाया ) स्त्री, पत्नी ( पतिम् ) पति को ( आ युवते ) प्राप्त होकर प्रसन्न होती है। स्त्री पुरुष दोनों मिल कर जिस प्रकार ( वृष्ण्यं पयः ) निषेक करने योग्य पुष्टिकारक धातु, वीर्य का ( तुञ्जाते ) एक दूसरे को प्रदान करते और लेते हैं उसी प्रकार धन और धनाभिलाषी दोनों भी (वृष्ण्यं पयः) सुखवर्षक, पुष्टिकारक अन्नादि लेते और देते हैं। धन ही अन्नादि देता है और अर्थी धन द्वारा ही लेता है। इसी प्रकार पृथ्वी और सूर्य, राजा और प्रजा भी मिल कर ( वृष्ण्यं पयः तुञ्जाते ) वर्षण योग्य जल तथा बलवान् पुरुषों के योग्य

बल वीर्य का परस्पर आदान प्रदान करते और जिस प्रकार भूमि सूर्य से प्रकाश (परिदाय) लेकर उसको अपना ( रसं दुहे ) जल प्रदान करती है। और स्त्री जिस प्रकार आश्रय, वस्त्र अन्न और हृदय-प्रेम आदि लेकर पति को (रसं दुहे) अति सुख प्रदान करती है और गौ जिस प्रकार (परिदाय) घास आदि खाकर ( रसं दुहे ) क्षीर दोहन करती है उसी प्रकार प्रजा या भूमि भी, ( परिदाय ) राजा के बल पराक्रम को लेकर बाद ( रसं दुहे ) सार मय बहुमूल्य ऐश्वर्य प्रदान करती है। हे ( रोदसी ) सूर्य और पृथिवी के समान स्त्री पुरुषो, राजा और प्रजाओ! गुरु शिष्यो! तुम दोनों ( मे ) मेरे (अस्य) इस प्रकार के कथन का सत्य रहस्य ( वित्तम् ) जानो।

**मो षु दे॑वा अ॒दः स्व१॑र्व पा॑दि दि॒वस्परि॑।**
**मा सो॒म्यस्य॑ श॒म्भुवः॒ शूने॑ भूम॒ कदा॑ च॒न वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी॥३॥**

भा०—हे ( देवाः ) विद्वानो और विजयाभिलाषी पुरुषो! ( अदः ) वह परला ( स्वः ) सूर्य समान तेजस्वी राजा तथा पारलौकिक सुख, ( दिवः परि ) आकाश में अन्तरिक्ष से भी परे विद्यमान सूर्य के समान ही ( दिवः परि ) ज्ञान प्रकाश के उत्तर काल में होता है वह ( मो अव पादि ) कभी नीचे न गिरे, कभी नष्ट न हो ( सोम्यस्य ) ऐश्वर्य के योग्य ( शंभुवः ) शान्ति देने वाले राजा के ( अव ) विपरीत हम प्रजाजन ( कदाचन मा भूम ) कभी न हों। हे ( रोदसी ) राजा प्रजा-वर्गो! तथा गुरु शिष्यो! स्त्री पुरुषो! ( मे अस्य वित्तम् ) मेरे इस उपदेश युक्त वचन को आप लोग ज्ञान करो। ( २ ) ( देवाः ) हे ज्ञानेच्छु शिष्यो! ( अदः स्वः ) वह परम सुखकारी ज्ञान प्रकाश (दिवः परि मा अव पादि) गुरु से प्राप्त होकर नष्ट न हो। हम शिष्य जन (सोम्यस्य) शिष्यों के हित-कारी ( शंभुवः ) शान्तिकारी, कल्याणजनक गुरु के ( शूने ) सुख सेवादि कार्य में ( मा अव भूम ) कभी आलस्य न करें। ( ३ ) ( दिवः ) गृहस्थ सुख के देने और रमण क्रीड़ा करने वाली स्त्री से प्राप्त होने वाला

( अदः स्वः ) वह गृह्य-सुख कभी नष्ट न हो। हम दाराजन ऐश्वर्यवान् शान्तिदायक पति की सेवा परिचर्या में प्रमाद न करें।

यज्ञं पृच्छाम्यवमं स तद्दूतो विवोचति।
क्व ऋतं पूर्व्यं गतं कस्तद्बिभर्ति नूतनो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥४॥

भा०—शिष्य कहता है हे विद्वान् गुरो! मैं ( अवमम् ) उत्तम रक्षा करने के साधनों से सम्पन्न (यज्ञम्) सब सुखों, ऐश्वर्यों के दाता, सर्व पूजनीय, परम उपास्य प्रजापति परमेश्वर को लक्ष्य करके ( पृच्छामि ) प्रश्न करता हूं। ( सः ) वह तू ( इतः ) तपस्वी, ज्ञानवान् परिचर्या करने योग्य आचार्य रूप होकर राजा का संदेशहर दूत जिस प्रकार खोज २ कर, गहरी २ बातें बतलाता है उसी प्रकार तू ( विवोचति ) विविध ज्ञानों को या विशेप ज्ञानों का विविध प्रकार से उपदेश करता है। (पूर्व्यं) पूर्व ऋषियों से प्राप्त, ( ऋतं ) वेद का सत्य ज्ञान ( क्व गतम् ) कहां है और ( नूतनः ) नया, वर्तमान का (कः) कौन नया विद्वान् ( तत् ) उस ज्ञान को ( बिभर्ति ) धारण करता है। ( रोदसी ) उपदेश करने और लेने हारे गुरु शिष्य ( मे अस्य ) मेरे उपदेश किये इस प्रकार के प्रश्नों का (वित्तम्) ज्ञान सम्पादन करें। ( ऋतं ) मूल सत्य कारण अब कहां गया और उस को कौनसा नूतन कारण धारण करता है इस बात को (रोदसी) आकाश और पृथिवी ही जानते हैं ( २ ) इसी प्रकार ( यज्ञं ) रक्षा-साधनों से युक्त, प्रजापति राजा के विषय में प्रश्न करूं या जानना चाहूं तो उसका विशेष ज्ञान गुप्त दूत ही बतला सकता है। पूर्व के राजाओं और अधिकारियों से प्राप्त ( ऋतं ) धन कहां है ? और अब उस को कौन धारण करता है ? यह राज प्रजावर्ग सब अच्छी प्रकार जानें। ( ३ ) ( अवमं ) सब से छोटा यज्ञ कौन है। यह विद्वान् ही बतलावे। पूर्व का ( ऋतम् ) जीवन का मूल कारण वीर्य आदि कहां जाता है। और नया पुत्र आदि कौन उस को धारण करता है। माता पिता इस रहस्य को जानें।

अमी ये देवाः स्थन त्रिष्वा रोचने दिवः ।
कद्व ऋतं कदनृतं क्व प्रत्ना व आहुतिर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥५॥२०॥

भा०—हे ( देवाः ) दिव्य गुणों से युक्त, विद्वान् जनो ! और पृथिव्यादि लोको ! ( ये ) जो ( अमी ) ये नाना पृथिवी आदि लोक ( दिवः रोचने ) सूर्य के प्रकाश में ( त्रिषु ) तीनों कालों और तीनों लोकों में ( आ स्थन ) व्यापक या प्रत्यक्ष विद्यमान हैं ( वः ) तुम्हारा ( ऋतं कत् ) मूल कारण, आदि प्रवर्तक बल कहां है । ( अनृतं कत् ) उस प्रवर्त्तक बल से भिन्न 'अनृत' अर्थात् जड़, प्रकृति अब ( कत् ) कहां है । ( वः ) तुम्हारी ( प्रत्ना ) अनादि काल से चली आई ( आहुतिः ) धारण करने और बल देने या उत्पन्न करने वाली पुनः अपने में समा लेने वाली शक्ति ( कत् ) कहां है । हे (रोदसी ) गुरु शिष्य दोनो ! (मे अस्य वित्त) मुझ विद्वान् से इस तत्व का ज्ञान करो । ( २ ) ये जो आप विद्वान् जन हैं ( दिवः रोचने त्रिषु ) सत्य ज्ञान के प्रकाश में उत्तम मध्यम और निकृष्ट कोटि के पुरुषों में या तीनों कालों में हैं । आप के लिये सत्य और असत्य कहां है । सनातन की वेद वाणी या मुख्य आज्ञा कहां स्थित है । यह राजा प्रजा वर्ग दोनों जानें । इति विंशो वर्गः ॥

कद्व ऋतस्य धर्णसि कद्वरुणस्य चक्षणम् ।
कदर्यम्णो महस्पथाति क्रामेम दूढ्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥६॥

भा०—( वः ) तुम्हारे ( ऋतस्य ) मूल सत् कारण, सत्य ज्ञान और बल, वीर्य के बल को मेघ या समुद्र के समान ( धर्णसिः ) धारण करने वाला ( कत् ) कहां है । ( वरुणस्य ) सर्व श्रेष्ठ परमेश्वर का ( चक्षणं ) साक्षात् दर्शन या ज्ञान ( कत् ) कैसा है ( अर्यम्णः ) सूर्य के समान तेजस्वी, सब दुष्टों के नियन्ता परमेश्वर को ( कत् महः पथा ) किस महान् उपदेशमय मार्ग से ( दूढ्यः ) कठिनता से चिन्तना करने योग्य, बुद्धि के अगम्य पदार्थों को ( अतिक्रामेम ) पार करें, ( २ ) हे शूरवीर, ज्ञानी

पुरुषो ! तुम्हारे (ऋतस्य) ऐश्वर्य को धारण करने वाला राजा कहां है ? दुःखों के वारक राजा का (चक्षणं) चक्षु अर्थात् राज्यप्रबन्ध देखने का साधन कहां है ? (अर्यमणः) न्यायकारी शत्रु नियन्ता राजा के (कत्) किस २ न्याय मार्ग से हम ( दूढ्यः ) दुष्ट पुरुषों को वश करें। राज प्रजावर्गो ! तुम दोनों इस बात का अच्छी प्रकार ज्ञान करो।

अहं सो अ॑स्मि यः पुरा सुते वदा॑मि कानि॑ चित्।
तं मा॑ व्यन्त्याध्यो३॒॑ वृको॒ न तृ॒ष्णजं॒ मृगं॒ वित्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी ॥७॥

भा०—( अहं ) मैं जीव ( सः ) वही ( अस्मि ) हूं ( यः ) जो (पुरा) पूर्व काल में, इस देह से पूर्व भी विद्यमान रहा। और (सुते) इस उत्पन्न जगत् में या ( सुते ) इस देह के उत्पन्न हो जाने पर अब ( कानि चित् ) कुछ पदों या वाक्यों का ( वदामि ) उच्चारण करता हूं। ( वृकः तृष्णजं- मृगं न ) भेड़िया जिस प्रकार प्यासे मृग को जा पकड़ता है, उसकी प्यास लगी की लगी रह जाती है और व्याघ्र उसके प्राण अपहरण कर लेता है ठीक उसी प्रकार ( तं मा ) उसी मुझ जीव को (आध्यः व्यन्ति) मानसी व्यथाएं और चिन्ताएं और देह के रोग आदि ( व्यन्ति ) आ घेरती हैं। जीव की कामनाओं की प्यास पूरी नहीं हो पाती और चिन्ताएं जीवन समाप्त कर देती हैं। ( वित्तं मे ) इत्यादि पूर्ववत् ! (२) राष्ट्रपक्ष में—मैं वही राजा हूं जो ( पुरा सुते ) पहले अभिषेक काल में कुछ एक वचन कहता हूं। प्यासे मृग को बाघ के समान अब मुझे प्रजापालन की चिन्ताएं खाए जाती हैं। राज प्रजा वर्ग दोनों उस को जाने और दूर करें।

सं मा॑ तपन्त्य॒भितः॑ स॒पत्नी॑रिव॒ पर्श॑वः। मूषो॒ न शिश्ना॒
व्य॑दन्ति मा॒ध्यः॑ स्तो॒तारं॑ ते शतक्रतो वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी ॥ ८ ॥

भा०—हे ( शतक्रतो ) सैकड़ों कर्मों और ज्ञानों के स्वामिन् ! प्रभो ! परमेश्वर ! ( पर्शवः ) पास रहने वाली या आलिंगन करने हारी ( सप- त्नीः ) बहुत सी स्त्रियां जिस प्रकार अपने दरिद्र या वृद्ध पति को बहुत

कष्ट देती हैं उसी प्रकार (पर्शवः) ग्राह्य विषयों तक पहुंचने वाली इन्द्रियां ( अभितः ) सब तरफ (मा) मुझ जीव को ( सं तपन्ति ) संताप उत्पन्न करती हैं। ( मूषः शिश्ना न ) मूषक जिस प्रकार विना धुले माड़ी आदि से मढ़े सूतों को खा जाता है, या जैसे मूषा अपनी तैलादि से युक्त पुच्छ-आदि को स्वादु जान कर खाता है उसी प्रकार ( आध्यः ) मानस चिन्ता और शारीरिक रोग ( ते स्तोतारं ) तेरी स्तुति करने हारे ( मा व्यदन्ति ) मुझे खाये जाते हैं। ( वित्तं मे० ) इत्यादि पूर्ववत्। ( २ ) मुझ प्रजाजन को सौतों के समान ( पर्शवः ) पास के जन या परशुओं को धारण करने वाले शस्त्र-धर शत्रुजन पीड़ित करते हैं। हे ( शतक्रतो ) राजन्! तेरे स्तुति करने वाले को मानस चिन्ताएं खाएं जाती हैं। ( रोदसी ) दुष्टों को रुलाने वाले वीर राजा और न्यायाधीश दोनों मुझ प्रजाजन की इस स्थिति को जानो और उपाय करो।

**अमी ये सप्त रश्मयस्तत्रा मे नाभिरातता।**
**त्रितस्तद्वेदाप्त्यः स जामित्वाय रेभति वित्तं मे अस्य रोदसी॥ ६॥**

भा०—( ये ) जो ( अमी ) ये ( सप्त ) सात या सर्पणशील, निरन्तर गति करने हारे ( रश्मयः ) दीपक या सूर्य की किरणों के समान फैलने वाले और अश्व की रासों के समान देह को बश करने वाले सप्त प्राण हैं (तत्र) उनके आश्रय ( मे नाभिः ) मेरी नाभि, देह का केन्द्र स्थान या सुप्रबन्ध ( आतना ) व्याप्त है। ( आप्त्यः ) आप्तजनों में श्रेष्ठ, अथवा प्राणों के तत्वों को जानने हारा योगी या आत्मा ही ( त्रितः ) सब अज्ञान बन्धनों को पार कर के ( तत् ) उस परम ज्ञान रहस्य को ( वेद ) जान लेता है। ( सः ) वही ( जामित्वाय ) परम बन्धुता को प्राप्त करने के लिये ( रेभति ) परमेश्वर की स्तुति करता है। हे ( रोदसी ) स्त्री पुरुषो! वा, हे गुरु शिष्यो! आप ( मे ) मुझ आत्मा के इस रहस्य को ( वित्तम् ) जानों। ( २ ) राष्ट्रपक्ष में—ये जो ( सप्तरश्मयः ) सात राष्ट्र को वश

करने वाले देह में सात धातु और सात प्राणों के समान राज्य के सात अंग हैं उन में ही ( मे ) मुझ राजा और प्रजाजन दोनों की ( नाभिः ) शासन सुप्रबन्ध स्थित है। ( आप्त्यः त्रितः ) आपः अर्थात् आप्त प्रजाजनों का हितकारी मित्र, शत्रु और उदासीन तीनों में से अधिक शक्तिमान् या तीनों के भीतर व्यापक ज्ञानवान् पुरुष उस तत्व को जाने। वह ( जामित्वाय ) परस्पर के बन्धु भाव की वृद्धि के लिये ( रेभति ) सब को उपदेश करे। राज प्रजा वर्ग दोनों मेरे इस तत्व-वचन को जानें।

**अमी ये पञ्चोक्षणो मध्ये तस्थुर्महो दिवः।**
**देवत्रा नु प्रवाच्यं सध्रीचीना नि वावृतुर्वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१०॥२१**

भा०—( उक्षणः मध्ये दिवः ) आकाश के बीच में जिस प्रकार जल वर्षण करने वाले मेघ विराजते हैं उसी प्रकार (अमी ये) वे जो ( पञ्च ) पांच ( उक्षणः ) सुखों के देने वाले ( महः दिवः ) महान् ज्ञानप्रकाश वाले आकाश के समान विशाल हृदयाकाश के ( मध्ये ) बीच ( तस्थुः ) स्थित पांच प्राण हैं वे ( सध्रीचीनाः ) एक साथ मिल कर रहने वाले संगियों के समान होकर ( नि ववृतुः ) नित्य रहते हैं। यही बात ( देवत्रा ) विद्वान् पुरुषों के बीच में ( प्रवाच्यम् ) उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य है। (वित्तं मे० इत्यादि पूर्ववत्) (२) राष्ट्रपक्ष में-(महः दिवः ) बड़ी भारी राजसभा के बीच ( पञ्च उक्षणः ) पांच नरश्रेष्ठ पाचों प्रकार की प्रजा के मुख्य प्रतिनिधि हों। वे एक साथ मिल कर रहें। विद्वानों के बीच कहने योग्य वचन को कहें। राज-प्रजावर्ग इस प्रबन्ध को भली प्रकार जानें। पञ्च उक्षणः—पृथिवी में अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु, आकाश में सूर्य, दिशाओं में चन्द्रमा, 'स्वः' अर्थात् दूर आकाश में नक्षत्र (तैत्ति०) पृथिवी में अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु, दूर आकाश में सूर्य, नक्षत्रों में चन्द्र और जलों में विद्युत्। (शांखायन ब्रा०) अग्नि, वायु, सूर्य, चन्द्र, विद्युत्।

(सा०)। अग्नि, वायु, मेघ, विद्युत्, सूर्य इनके प्रकाश, (दया०) अध्यात्म में—पञ्च प्राणादि, पञ्च वायुगण।

सुपर्णा एत आसते मध्य आरोधने दिवः।
ते सेधन्ति पथो वृकं तरन्तं यह्वतीरपो वित्तं मे अस्य रोदसी॥११॥

भा०—( दिवः मध्ये सुपर्णाः ) जिस प्रकार आकाश के बीच में किरणें ( आरोधने ) किसी रुकावट के आजाने पर ( आसते ) उसी पर पड़ती हैं। इसी रीति से ( ते ) वे सूर्य की किरणें ( पथः तरन्तम् ) क्रान्तिमार्गों पर गति करते हुए चन्द्र को भी प्राप्त होती हैं। और वे ही सूर्य की किरणें ( यह्वतीः अपः ) विशाल समुद्र के जलों पर भी पड़ती हैं इस प्रकार से वे चन्द्र को प्रकाशित करती हैं और उदय और अस्त कालों में जलपृष्ठ पर भी अद्भुत दृश्य उत्पन्न करती हैं। उसी प्रकार ( ऐते सुपर्णाः ) ये उत्तम रीति से पालन पोषण करने के साधनों वाले, उत्तम ज्ञानों से युक्त विद्वान् जन और उत्तम यान साधन रथों वाले वीर जन ( दिवः आरोधने ) विजयेच्छु पर राजा के ( आरोधने ) सकने के निमित्त ( मध्ये आसते ) बीच ही में आखड़े हों। ( ते ) वे ( पथः तरन्तम् ) मार्गों पर जाते हुए ( वृकं ) चोर पुरुष को ( सेधन्ति ) पकड़ लेवें। और ( यह्वतीः अपः तरन्तं ) बड़ी भारी प्रजाओं के भीतर जाते हुए, या बड़ी २ नदियों को तरते हुए ( वृकं ) चोर पुरुष को भी ( सेधन्ति ) पकड़ें। अर्थात् वे सूने रास्ते चलते हुए या भीड़ में छुपते हुए अपराधी को भी पकड़ें। हे राजा प्रजाजनो! और गुरु शिष्यो! आप ( रोदसी ) राज प्रजावर्गों के विषय में यही व्यवहार जानो। ( ३ ) ( सुपर्णाः ) वे उत्तम ज्ञानवान् तथा तेजस्वी पुरुष ( दिवः मध्ये आरोधने ) मोक्ष ज्ञान के बीच में संयमपूर्वक दमन कर्म में निष्ठ होकर विराजते हैं। ( पथः तरन्तं वृकं ) नाना मार्गों में जाते हुए, तथा ( यह्वतीः अपः तरन्तं ) बड़े बलशालीन प्राणों में

गति करने वाले ( वृकं ) सब दुःखों के छेदक वज्ररूप आत्मा को ( सेधन्ति ) प्राप्त होते हैं।

नव्यं तदुक्थ्यं हितं देवासः सुप्रवाचनम्।
ऋतमर्षन्ति सिन्धवः सत्यं तातान सूर्यो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१२॥

भा०—जिस प्रकार ( सिन्धवः ) नदियें ( ऋतम् ) जल बहाती हैं और ( सूर्यः ) सूर्य जिस प्रकार ( सत्यं तातान ) सत्य अर्थात् सबको साक्षात् दीखने वाला अपना प्रकाश सबके हित के लिये फैला देता है, वह प्रकाश को किसी से छिपाकर नहीं रखता है उसी प्रकार हे (देवासः) विद्या के देनेवाले विद्वान् पुरुषो ! और जिज्ञासु शिष्यो ! आप लोग (तत्) उस परम ( नव्यम् ) अति स्तुत्य, सद्यः प्राप्त, ( हितम् ) अपने में धारित और सबके हितकारी, लाभदायक ( उक्थ्यम् ) वेदमन्त्रों में विद्यमान (सुप्रवाचनम् ) उत्तम रीति से उपदेश करने योग्य ( सत्यं ऋतम् ) सत्य वेद ज्ञान को ( अर्षन्ति ) सबको प्रदान करो, ग्रहण करो और उसको फैलाओ। हे ( रोदसी ) स्त्री पुरुषो ! हे राज प्रजावर्गो ! हे गुरुशिष्यो ! ( मे अस्य वित्तम् ) मेरे इस उपदेश का ज्ञान करो।

अग्ने तव त्यदुक्थ्यं देवेष्वस्त्याप्यम्।
स नः सत्तो मनुष्वदा देवान्यक्षि विदुष्टरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१३॥

भा०—हे ( अग्ने ) सकल विद्याओं के जानने हारे विद्वन् ! ( तव ) तेरा ( त्यत् ) वह ज्ञान करने योग्य ( उक्थ्यम् ) उत्तम विद्यामय ज्ञान ( देवेषु ) ज्ञान की कामना करने हारे शिष्यों और विद्वानों में भी ( आप्यम् ) प्राप्त करने योग्य (अस्ति ) है। अथवा—( आप्यम् ) तेरा शिष्यों के प्रति वह उत्तम बन्धु भाव है। (सत्तः) तू उच्च आसन पर विराज कर और उनके अज्ञान आदि दोषों को नाश करने में समर्थ और (विदुस्तरः ) अधिक विद्वान् होकर (मनुष्वत् ) मननशील शिष्यों और विद्वानों से युक्त होकर ( नः ) हममें से ( देवान् ) धन देने में समर्थ तथा ज्ञान के

जिज्ञासु शिष्य जनों को (आ यक्षि) सब प्रकार के ज्ञानों का लाभ करा। ( वित्तं मे० इत्यादि पूर्ववत् )।

सत्तो होता मनुष्वदा देवाँ अच्छा विदुष्टरः।
अग्निर्हव्या सुषूदति देवो देवेषु मेधिरो वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१४॥

भा०—( सत्तः ) उच्च आसन पर विराजमान, शिष्यों और सत्संगियों के अज्ञानादि दोषों और दुःखों का नाश करने हारा ( मनुष्वत् ) मननशील पुरुषों का स्वामी ( होता ) सब ऐश्वर्यों और ज्ञानों का दाता (विदुस्तरः) अधिक या अपेक्षा से अन्यों से अधिक विद्वान् होकर (अग्निः) ज्ञानवान्, अग्रणी नायक और आचार्य, ( देवान् ) विद्वानों, धन और ज्ञान के अभिलाषी पुरुषों को ( हव्या ) ग्रहण करने योग्य अन्न, धनादि और ज्ञानों को ( सूषूदति ) प्रदान करे। वह ( देवः ) स्वयं विद्वान् सूर्य के समान ( देवेषु ) अन्य विद्या के अभिलाषी जनों के बीच (मेधिरः) मेधावी, बुद्धिमान्, वाग्मी होकर रहे। ( वित्तं मे० इत्यादि पूर्ववत् )। (२) नायक राजा ( देवान् ) विजयेच्छु वीरों को धनैश्वर्य दे। और उनके बीच में ( मेधिरः ) शत्रुनाशक तेजस्वी सूर्य के समान होकर रहे।

ब्रह्मा कृणोति वरुणो गातुविदं तमीमहे।
व्यूर्णोति हृदा मतिं नव्यो जायतामृतं वित्तं मे अस्य रोदसी ॥१५॥२२॥

भा०—जो ( वरुणः ) सर्वश्रेष्ठ, सबसे वरण करने योग्य, सब दुःखों का वारक वीर नायक, राजा, परमेश्वर और विद्वान् ( ब्रह्म ) ऐश्वर्य, ब्रह्म ज्ञान तथा दृढ़ रक्षण आदि कार्य ( कृणोति ) सम्पादन करता है ( तम् ) उस ( गातुविदम् ) वेद वाणी के जानने वाले, श्रेष्ठ मार्ग के बतलाने वाले और पृथ्वी के स्वामी को हम (ईमहे) याचना करें, अथवा—( ब्रह्म ) महान् परमेश्वर या विद्वान् ( गातुविदं कृणोति ) जिस शिष्य को वेदज्ञ बना देता है हम उसे सत्संग के लिये प्राप्त हों। वह ( नव्यं ) स्तुति करने योग्य, नव शिक्षित सदा प्रसन्न होकर ( हृदा ) हृदय से

बिचार २ कर ( मतिं ) ज्ञान को ( वि ऊर्णोति ) विविध प्रकारों से प्रकट करे। वह ( ऋतं ) उसका उपदेश प्रमाण योग्य, बिश्वास्य, सत्य ( जायताम् ) हो। अथवा—आचार्य ( हृदा मतिं व्यूर्णोति ) हृदय से मनन योग्य ज्ञान प्रकट करे और ( नव्यः ऋतं जायताम् ) नवीन शिष्य उस सत्य ज्ञान को प्राप्त करे! ( वित्तं मे० ) इत्यादि पूर्ववत्!

**असौ यः पन्था आदित्यो दिवि प्रवाच्यं कृतः।**
**न स देवा अतिक्रमे तं मर्तासो न पश्यथ वित्तं मे अस्य रोदसी॥१६॥**

भा०—( दिवि आदित्यः ) आकाश में या प्रकाश के निमित्त जिस प्रकार सूर्य है उसी प्रकार ( यः ) जो ( असौ ) वह परम उत्कृष्ट (पन्थाः) मार्ग मुमुक्षु और जिज्ञासु जनों को प्राप्त करने योग्य ( आदित्यः ) सबके स्वीकारने योग्य, प्रकाशमान अखण्ड ब्रह्म से उत्पन्न ( दिवि ) ज्ञान-प्रकाश के प्राप्त करने के लिये ( प्रवाच्यम् कृतः ) उपदेश प्रवचन द्वारा गुरु शिष्य परम्परा से उपदेश किया जाता है, हे ( देवाः ) विद्वान् पुरुषो! हे जिज्ञासुओ! ( सः ) वह महान् ज्ञानमार्ग, वेद प्रतिपादित मार्ग ( अतिक्रमे न ) कभी उल्लंघन करने योग्य नहीं है। हे ( मर्त्तासः ) मरणशील, दुखी पुरुषो! तुम लोग ( तं न पश्यथ ) उसको नहीं देख रहे हो। आओ उसके साक्षात् करने का यत्न करो। ( वित्तं मे० ) इत्यादि पूर्ववत्॥

**त्रितः कूपेऽवहितो देवान्हवत ऊतये।**
**तच्छुश्राव बृहस्पतिः कृण्वन्नंहूरणादुरु वित्तं मे अस्य रोदसी॥१७॥**

भा०—( त्रितः ) दुःखों में फंसा हुआ पुरुष तीनों प्रकार के आध्यात्मिक, आधिदैविक, और आधिभौतिक ( कूपे अवहितः ) मानो कूए में गिरे मनुष्य के समान ही ( देवान् ) उत्तम विद्वान्, ज्ञान और हस्तावलम्ब देने वाले दयाशील पुरुषों को ( ऊतये ) अपनी रक्षा और ज्ञान की प्राप्ति के लिये ( हवते ) पुकारता है, उन के पास जाता है। ( बृहस्पतिः ) वेद वाणी का तथा बड़े भारी ब्रह्माण्ड का स्वामी, प्रभु परमेश्वर और वह ( अंहू-

रणात् ) चारो तरफ से आघात करने वाले कष्टों और पापों से बचाने के लिये ( उरु ) बड़ा यत्न ( कृण्वन् ) करता हुआ ( तत् ) उस की पुकार को गुरु के समान ( शुश्रव ) श्रवण करता है। ( २ ) ( त्रितः ) विद्या, शिक्षा, ब्रह्मचर्य, तीनों में निष्णात होकर पुरुष ( कूपे अवहितः ) कूप अर्थात् हृदयगुफ़ा में अवहित, सावधान, दत्तचित्त, ध्यानावस्थित होकर ( ऊतये ) अपनी रक्षा तथा ब्रह्मज्ञान की प्राप्ति के लिये ( देवान् हवते ) उत्तम दिव्य गुणों को धारण करता और ( देवान् ) विषयों में क्रीड़ाशील इन्द्रियगणों को ( हवते ) अपने वश करता है। तब वह स्वयं ( बृहस्पतिः ) बड़ी भारी वेद वाणी का पालक, विद्वान् ज्ञानी होकर ( अंहूरणात् ) पापाचार से पृथक् होकर ( उरु कृण्वन् ) बड़ा यत्न करता हुआ ( तत् ) उस पर परम पद, ब्रह्म के स्वरूप या भीतरी आत्मादि के ज्ञान ( शुश्रव ) श्रवण करता है। ( वित्तं मे अस्य० इत्यादि पूर्ववत् )।

अ॒रु॒णो मा॑स॒कृद्वृकः॑ प॒था य॒न्तं॑ द॒दर्श॒ हि ।
उज्जि॑हीते नि॒चाय्या॒ तष्टे॑व पृष्ट्याम॒यी वि॒त्तं मे॑ अ॒स्य रो॑दसी ॥१८॥

भा०—( अरुणः मासकृत् वृकः पथा यन्तं ददर्श ) जिस प्रकार लाल रंग का मांसखोर वाघ मार्ग से जाते पुरुष को देखे और (पृष्ट्यामयी तष्टाइव निचाय्य उत् जिहीते) पीठ में थकान अनुभव करने वाले बढ़ईके समान दब करके उस पर जापड़ता है और जिस प्रकार (मासकृत् ) मासों को विभाग करने वाला ( अरुणः ) आकाश मार्ग से जाने वाला ( वृकः ) चन्द्र ( पथा-यन्तं ) विशाल आकशस्थ क्रान्ति मार्ग से जाते हुए सूर्य को ( ददर्श हि ) देखता है। (तष्टा इव पृष्ट्यामयी) बढ़ई जिस प्रकार झुक कर काम करता करता २ पीठ में पीड़ा अनुभव करने लगता है और वह ( निचाय्य इत् जिहीति ) वार २ बैठ २ कर पुनः उठता है उसी प्रकार चन्द्र भी (पृष्ट्यामयी) वार २ कलाकार या धनुषाकार कुबड़े के समान हो २ कर (निचाय्य) और आमावास्या काल में लुप्त २ होकर वार २ ( उत् जिहीते ) उदित होता

है। (३) (अरुणः) तेजस्वी, समस्त विद्याओं को प्राप्त करने वाला, शिष्य जन (मासकृत) ज्ञानों का संग्रह करता हुआ, (वृकः) सूर्य या चन्द्र के समान तेज, ज्ञानोपदेश, शील, सदाचार आदि को अपने में धारण करने हारा होकर (पथा यन्तम्) सन्मार्ग से जाते हुए अपने से बड़े गुरु आदि को (हि) अवश्य (ददर्श) देखे और उसका अनुकरण करे। (पृष्ठ्या-मयी तष्टा इव) पीठ में पीड़ा को अनुभव करने वाला बढ़ई जैसे वार २ उठता है उसी प्रकार शिष्य जन भी (पृष्टि-आमयी) वार २ पूछने या प्रश्न करने के कार्य में खूब आनन्द लेने वाला, खूब प्रश्नाभ्यासी होकर (निचाय्य) समस्त संदेहों को समाधान कर २ के और गुरु के उपदेशों को सुन २ कर और गुरु की वार २ पूजा सत्कार और विनय कर २ के (उत् जिहीते) ऊपर उठे, उन्नत पद को प्राप्त करे।

एनाङ्गूषेण वयमिन्द्रवन्तोऽभि ष्याम वृजने सर्ववीराः। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥१६॥२३॥१५

भा०—(एना) इस (आङ्गूषेण) उपदेश देने हारे विद्वान् तथा दिये उपदेश से (वयम्) हम (सर्व वीराः) सब प्रकार के वीर पुरुषों और बलवान् प्राणों से युक्त होकर (इन्द्रवन्तः) ऐश्वर्यवान् स्वामी तथा आचार्य के अधीन रह कर, उसको प्रमुख रूप से अपनाते हुए हम (वृजने) विरोधी शत्रु और भीतरी काम क्रोध आदि दुर्व्यहारों और दुराचारों को दूर करनेवाले बल को प्राप्त करने में (अभि स्याम) सदा तैयार रहें। (तन्नो मित्रो० इत्यादि) पूर्ववत्। इति त्रयोविंशो वर्गः॥

इति पञ्चदशोऽनुवाकः॥

[१०६]

॥ १०६ ॥ १–७ कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ विश्वेदेवा देवता ॥ छन्दः–१–६ जगती । ७ निचृत्त्रिष्टुप् ॥ स्वरः–१–६ निषादः । ७ धैवतः ॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमूतये मारुतं शर्धो अदितिं हवामहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥१॥

भा०—हम लोग ( इन्द्रं ) ऐश्वर्यवान् राजा, उपदेश प्रद आचार्य, विद्युत्, सूर्य ( मित्रं ) मरण भय से बचाने वाले प्राण, मित्रजन (वरुणम्) सर्वश्रेष्ठ, दुःखों के वारक, तथा समुद्र ( अग्निम् ) अग्नि, विद्युत् आदि तत्वज्ञानी, ज्ञानप्रकाशक विद्वान् तथा अग्रणी नायक जन और ( मारुतं शर्धः ) विद्वानों, वीरभटों तथा अन्यान्य वायुओं और प्राणों के ( शर्धः ) बल, शत्रुघातक सैन्य को ( अदितिम् ) पिता, माता, आचार्य तथा मूल उत्पादक कारण, शत्रुघातक सैन्य, तथा परब्रह्म आदि अन्य अखण्ड शक्ति वाले तत्वों और पूज्य पुरुषों को ( ऊतये ) अपनी रक्षा और ज्ञान प्राप्ति के लिये ( हवामहे ) स्वीकार करें । और (सुदानवः) उत्तम दानशील या रक्षाकारी, पुरुष जिस प्रकार (दुर्गात् रथं न) दुर्ग, अर्थात् विषम, स्थानों से रथ का बचा ले जाते हैं उसी प्रकार ( वसवः ) प्रजाओं को सुख से बसाने वाले और विद्यादि उत्तम गुणों में रहने वाले पुरुष ( नः ) हमें ( विश्वस्मात् ) सब प्रकार के ( अंहसः ) पाप से ( निः पिपर्त्तन ) सब प्रकार से पालन करें, बचावें ।

त आदित्या आ गता सर्वतातये भूत देवा वृत्रतूर्येषु शम्भुवः ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥२॥

भा०—( आदित्याः ) सूर्य के किरण अथवा अखण्ड, अविनाशी अग्नि आदि तत्व ( देवाः ) दिव्य शक्ति और तेज से युक्त एवं बल के देने वाले होकर ( वृत्रतूर्येषु ) मेघ और अन्धकार आदि आवरणकारी पदार्थों के नाश करने के कार्यों में सब सुखजनक और शान्तिजनक होते हैं । उसी प्रकार हे ( आदित्याः ) सूर्य के समान तेजस्वी, राष्ट्र के मुख्य कार्यों और ऐश्वर्यों को अपने हाथ में लेने वाले, (देवाः) विद्वान्, विजयार्थी और दानशील पुरुषो ! आप लोग ( आ गत ) आओ और ( वृत्रतूर्येषु ) बढ़ते

शत्रुओं के नाशकारी संग्रामों के अवसरों में आप लोग ( सर्वतातये ) सब प्राणियों और प्रजाओं के कल्याण के लिये ( शम्भुवः भूत ) शान्ति उत्पन्न करने वाले रहो । ( रथं न दुर्गात्० इत्यादि ) विषम भूमियों में रथ को बचाकर लेजाने वाले सारथियों के समान आप लोग हम लोगों को सब प्रकार के पापाचारों से, सब तरह से बचाते रहो ।

**अवन्तु नः पितरः सुप्रवाचना उत देवी देवपुत्रे ऋतावृधा ।**
**रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥३॥**

भा०—( नः ) हमें ( सुप्रवाचनाः ) उत्तम प्रवचन अर्थात् ज्ञान और धर्म का उपदेश करने में कुशल ( पितरः ) पालक पिता माता और गुरुजन ( अवन्तु ) रक्षा करें और ज्ञान दें । ( उत ) और ( देवपुत्रे ) विद्वान्, तेजस्वी किरणों और रत्नादि पदार्थों के समान पुत्रों को उत्पन्न करने वाले, ( ऋतावृधा ) स्वच्छ जलों के समान ज्ञानों और उत्तम आचरणों की वृद्धि करने वाले, ( देवी ) अन्नादि के देने और प्रकाश करने वाले, भूमि और सूर्य के समान पुष्टि और शिक्षा के देने और ज्ञान का प्रकाश करने वाले माता और पिता दोनों ( नः अवताम् ) हमारी रक्षा करें । वे सब ( वसवः सुदानवः ) सुखकारी जल की वृष्टि करने वाले सूर्यादि लोकों के समान सब प्रजाओं को सुख से बसाने वाले जन हम लोगों को विषम स्थान से रथ को सारथि के समान सब प्रकार के पापाचरणों से बचावें ।

**नराशंसं वाजिनं वाजयन्निह क्षयद्वीरं पूषणं सुम्नैरीमहे ।**
**रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥४॥**

भा०—( इह ) इस राष्ट्र में हम लोग ( नराशंसं ) नायक वीर पुरुषों से स्तुति करने योग्य तथा मनुष्यों के शासक ( वाजिनं ) ज्ञान और ऐश्वर्य से सम्पन्न बलवान् ( क्षयद्-वीरम् ) शत्रुनाशकारी वीरों के

स्वामी और उनका आश्रय ( पूषणम् ) सबके पोषक, सूर्य समान तेजस्वी पुरुष को ( वाजयन् ) विशेष ज्ञान, बल और ऐश्वर्य से सम्पन्न करते हुए हम ( सुम्नैः ) सुखजनक साधनों से युक्त उसकी ( ईमहे ) याचना करते हैं और उसकी शरण आते हैं। ( रथं न० इत्यादि ) पूर्ववत् ॥

बृहस्पते सदमिन्नः सुगं कृधि शंयोर्यत्ते मनुर्हितं तदीमहे ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥५॥

भा०—हे ( बृहस्पते ) वेदवाणी के पालक एवं बड़े भारी राष्ट्र के पालक राजन् ! विद्वन् ! और ब्रह्माण्ड के स्वामिन् ! परमेश्वर ! ( ते ) तेरा ( यत् ) जो ( मनुर्हितम् ) मनुष्यों को हितकारी (शं) शान्तिदायक और (योः) दुःख विनाशक, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इनके देने वाला है उसे ( नः ) हमारे लिये ( सदम् इत् ) सदा ही ( सुगं कृधि ) सुखदायक कर। हम ( तत् ) उसे ही ( ईमहे ) चाहते हैं, उसे ही प्राप्त हों। (रथं न दुर्गात्० इत्यादि पूर्ववत् )।

इन्द्रं कुत्सो वृत्रहणं शचीपतिं काटे निबाळ्ह ऋषिरह्वदूतये ।
रथं न दुर्गाद्वसवः सुदानवो विश्वस्मान्नो अंहसो निष्पिपर्तन ॥६॥

भा०—( कुत्सः ) विद्युत् ( ऋषिः ) वेग से जाने वाली होकर ( काटे ) कूप आदि गहरे स्थान में (निबाढः) गिरता हुआ ( वृत्रहणम् ) मेघों को छिन्न भिन्न करने वाले ( शचीपतिम् ) शक्ति या समस्त कर्मों के पालक ( इन्द्रम् ) जलों के भीतर उनको फाड़ने में समर्थ तेज को (अह्वत्) प्रकट करता है। इसी प्रकार (कुत्सः) विद्युद् आदि विद्याओं का प्रकट करने वाला विद्वान् (निबाढः) निरन्तर ज्ञानवान् होकर, (ऋषिः) मन्त्रार्थों और सत्य सिद्धान्तों का साक्षात् करने वाला होकर, (काटे) कूप आदि गिर जाने के विषम स्थान में ( वृत्रहणं ) अज्ञानान्धकार के नाशक, ( शचीपतिम् ) सब कर्म सामर्थ्यों और वाणियों के पालक, (इन्द्रम्) विद्याज्ञान और धन के स्वामी परमेश्वर आचार्य और नायक पुरुष को ( ऊतये ) रक्षा तथा ज्ञान वृद्धि के

लिये ( अह्वत् ) पुकारता है। उससे प्रार्थना करता है। कि वह उसे गिरा वट के स्थानों से बचावे। ( रथं न दुर्गात् ) इत्यादि पूर्ववत्।

**देवैर्नो देव्यदितिर्नि पातु देवस्त्राता त्रायतामप्रयुच्छन्।**
**तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥७॥२४**

भा०—( अदितिः देवी ) प्रकाश देने वाली, अविनाशी नित्य ज्ञान को देने वाली विद्या, माता और आचार्य आदि ( नः ) हमें ( देवैः ) दिव्य ज्ञानों, गुणों और सामर्थ्यों सहित ( नि पातु ) पालन करे। ( त्रातादेवः ) त्राण करने वाला रक्षक, राजा और विद्वान् ( त्रायताम् ) पालन करे। ( तत् नः मित्रः० इत्यादि ) पूर्ववत्। इति चतुर्विंशो वर्गः॥

## [ १०७ ]

कुत्स आंगिरस ऋषिः॥ विश्वेदेवा देवता॥ छन्दः—विराट्त्रिष्टुप्। २ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ त्रिष्टुप्॥ तृचं सूक्तम्॥

**यज्ञो देवानां प्रत्येति सुम्नमादित्यासो भवता मृळयन्तः।**
**आ वोऽर्वाची सुमतिर्ववृत्यादंहोश्चिद्या वरिवोवित्तरासत्॥ १॥**

भा०—( देवानां ) विद्वानों का ( यज्ञः ) विद्या दान और ( देवानां यज्ञः ) दानशील पुरुषों का अन्न, धन आदि देना और ( देवानां यज्ञः ) विद्वानों, विजयी वीर पुरुषों का परस्पर मिलना तथा दिव्य पदार्थों का परस्पर संयोग अर्थात् सुसंगत होकर रहना और उत्तम शिल्प आदि ( सुम्नम् ) सुख ( प्रति एति ) प्राप्त कराता है। हे ( आदित्यासः ) तेजस्वी, किरणों और १२ मासों के समान सुख, विद्या और ऐश्वर्यों के देने और लेने हारे या अखण्ड शक्ति ब्रह्म और राजशक्ति के धारक पुरुषो ! आप लोग (मृड-यन्तः ) सबको सुखी करते ( भवत ) रहो। ( या ) जो ( वः ) आप लोगों की ( सुमतिः ) शुभ मति और ज्ञानशक्ति ( वरिवोवित्-तरा )

उत्तम सुखों और ऐश्वर्यों को प्राप्त कराने वाली है वह ( अंहोः चित् ) विद्वान् को तथा दरिद्र पुरुष को भी ( अर्वाची ) सदा नये से नये रूप में प्रकट होकर ( आ ववृत्यात् ) प्राप्त हो।

**उप॑ नो दे॒वा अव॒सा ग॑म॒न्त्वङ्गि॑रसां॒ साम॑भिः स्तू॒यमा॑नाः।**
**इन्द्र॑ इन्द्रि॒यैर्म॒रुतो॑ म॒रुद्भि॑रादि॒त्यैर्नो॒ अदि॑तिः॒ शर्म॑ यंसत् ॥ २ ॥**

भा०—( अङ्गिरसां ) विद्वान् ज्ञानी पुरुषों के ( सामभिः ) साम, संगीतों द्वारा ( स्तूयमानाः ) स्तुति किये जाकर या ( सामभिः ) उत्तम वचनों द्वारा आदर पूर्वक प्रार्थना किये जाकर ( देवाः ) विद्वान् और विजयी पुरुष सूर्य की किरणों के समान ( अवसा ) अपने रक्षण सामर्थ्यों सहित ( नः उप गमन्तु ) हमें प्राप्त हों। इसी प्रकार आदरपूर्वक प्रार्थित ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् पुरुष ( इन्द्रियैः ) अपने ऐश्वर्यों सहित सौर (मारुतः) वीरगण ( मरुद्भिः ) अपने अन्य सहयोगी विद्वानों सहित ( अदितिः ) सूर्य और पृथिवी (आदित्यैः) किरणों या १२ मासों के समान आचार्य और राजा आदि पूजनीय पुरुषों अपने शिष्यों और भृत्यों सहित ( नः ) हमें ( शर्म ) सुख ( यंसत् ) प्रदान करे।

**तन्न॒ इन्द्र॒स्तद्वरु॑ण॒स्तद॒ग्निस्तद॑र्य॒मा तत्स॑वि॒ता चनो॑ धात्।**
**तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥३।२५**

भा०—( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् राजा, सेनापति, ( वरुणः ) सब दुःखों का वारक, सब से श्रेष्ठ, ( अग्निः ) अग्रणी नायक तथा ज्ञानी पुरुष, ( अर्यमा ) शत्रुओं का नियन्ता और न्यायकारी पुरुष, ( सविता ) उत्पादक माता पिता, धर्ममार्ग का प्रेरक आचार्य ये सब ( तत् तत्, तत्, तत् ) वे नाना प्रकार के ( चनः ) ऐश्वर्य, अन्न, सद्वचन नाना प्रकार के सुख, शिक्षण आदि ( धात् ) प्रदान करें। ( तन्नो मित्रः० ) इत्यादि पूर्ववत्। इति पञ्चविंशो वर्गः॥

## [ १०८ ]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ इन्द्राग्नी देवते ॥ छन्दः–१, ८, १२ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ३, ६, ११ विराट् त्रिष्टुप्। ७, ९, १० १३ त्रिष्टुप्। ४ भुरिक् पंक्तिः। ५ पंक्तिः। त्रयोदशर्चं सूक्तम् ॥

**य इन्द्राग्नी चित्रतमो रथो वामभि विश्वानि भुवनानि चष्टे।**
**तेना यातं सरथं तस्थिवांसाथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥ १ ॥**

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि! वायु और आग के समान अमात्य और राजन्! ( यः ) जो ( वाम् ) आप दोनों का ( चित्रतमः ) अति अद्भुत ( रथः ) रमणसाधन, विजयी रथ, या राष्ट्र शासन का काम ( विश्वानि भुवनानि ) समस्त लोकों, देश तथा जल स्थल और आकाश सबको ( अभिचष्टे ) दीखता और प्रकाश से चमकाता है, ( तेन ) उस रथ से आप दोनों ( सरथं ) एक ही रथ पर महारथी और सारथी के समान ( तस्थिवांसा ) बैठे हुए ( आयातम् ) आओ, हमें प्राप्त होओ, ( अथ ) और ( सुतस्य ) उत्पन्न हुए ( सोमस्य ) अन्नादि भोग्य पदार्थ तथा ऐश्वर्य का ( पिबतम् ) पान करो, उपभोग करो। ( २ ) आधिदैविक में—इन्द्र, अग्नि अर्थात् सूर्य के प्रकाश और प्रताप, दोनों से युक्त किरण, उनका चित्रतम रथ सूर्य सर्वत्र प्रकाश करता है। वे दोनों एक ही साथ आते हैं और जल का पान करते हैं, उसे सूक्ष्म रूप से खींच लेते हैं। ( ३ ) अध्यात्म में—'इन्द्राग्नी' जीव और परमेश्वर इनका अद्भुत रथ देह और ब्रह्माण्ड, दोनों में दोनों समान रूप से अधिष्ठित हैं। एक सोम अर्थात् अन्नादि का भोक्ता और दूसरा परमानन्द रसमय है।

**यावदिदं भुवनं विश्वमस्त्युरुव्यचा वरिमता गभीरम्।**
**तावाँ अयं पातवे सोमो अस्त्वरमिन्द्राग्नी मनसे युवभ्याम् ॥२॥**

भा०—(इदं) यह ( विश्वम् भुवनम्) समस्त भुवन, लोक (यावत्)

जितना विस्तृत है और जितना यह ( उरुव्यचा ) बहुत विस्तृत ( वरिमता ) विशालता से ( गभीरम् ) गंभीर, अगाध है ( तावान् ) उतना ही ( अयं ) यह ( सोमः ) ऐश्वर्यमय राष्ट्र भी है ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि सूर्य और वायु और सूर्य के समान तेजस्वी राजन् और सेनापते ! ( युवभ्यां ) तुम दोनों के ( मनसे ) चित्त के संतोष और ज्ञान और ( पातवे ) पालन करने और भोग करने के लिये ( अरम् अस्तु ) बहुत अधिक हो। ( २ ) अध्यात्म में—जीव और परमेश्वर के लिये तो यह समस्त संसार चिन्तन और ज्ञानवर्धन तथा आनन्द अनुभव के लिये ( सोमः ) परमानन्दमय हो जाता है। (३) सूर्य और वायु दोनों समस्त विश्वभर के जल को अपने में धारण करते हैं।

**च॒क्राथे॒ हि स॒ध्र्य॑१ङ् नाम॑ भ॒द्रं स॑ध्री॒चीना॑ वृत्रहणा उ॒त स्थः।**
**तावि॑न्द्राग्नी स॒ध्र्य॑ञ्चा नि॒षद्या॒ वृष्णः॒ सोम॑स्य वृष॒णा वृषे॑थाम् ॥३॥**

भा०—( इन्द्राग्नी वृष्णः सोमस्य वृषणा आवृषेथाम् ) सूर्य और वायु दोनों जिस प्रकार मिलकर वर्षा करने वाले मेघ के जल के वर्षाने वाले होकर वर्षा कर देते हैं अपना नाम, जन्म, स्वरूप आदि सब प्रजाओं के सुख के लिये समर्पित कर देते हैं उसी प्रकार ( तौ इन्द्राग्नी ) राष्ट्र में वे दोनों इन्द्र और अग्नि, ऐश्वर्यवान् और उत्तम अग्रणी या नायक विद्वान् पुरुष दोनों ( सध्रीचीना ) एक साथ मिल कर अपने ( नाम ) नाम या शत्रुओं को झुका डालने वाले बल को ( सध्यूङ् ) एक साथ ही मिल कर ( भद्रं ) प्रजा के सुखदायी रूप में ( चक्राथे ) कर देते हैं। (उत हि) और वे दोनों (वृत्रहणा) मेघ को सूर्य और वायु के समान, बढ़ते हुए शत्रु को नाश करने में समर्थ होते हैं। वे दोनों ( सध्यञ्चा ) एक साथ मिले हुए ही ( वृषणा ) बलवान् एवं प्रजाओं पर सुख और शत्रुओं पर शस्त्रास्त्रों को बरसाने में समर्थ होकर ( निषद्य ) अपने उच्च आसनों पर विराज कर, जमकर या परस्पर का ज्ञानोपदेश ग्रहण करते हुए ( वृष्णः सोमस्य )

वलवान्, सब सुखों के देने वाले सोम अर्थात् समृद्ध राष्ट्र ऐश्वर्य की (वृषेथाम्) वृद्धि कर देते हैं, प्रजाओं को खूब सुखी, समृद्ध कर देते हैं। (२) गुरु शिष्य भी परस्पर मिलकर एक दूसरे का नाम यशस्वी करते हैं, विघ्नों का नाश करते हैं, (निषद्य) एक दूसरे के संग में बैठ कर ब्रह्मज्ञान प्राप्त कर (वृष्णः सोमस्य) सुखवर्षक वलवान् शिष्यगण या वीर्य पालन और ब्रह्मचर्य वृद्धि करते हैं।

समिद्धेष्वग्निष्वानजाना यतस्रुचा बर्हिरु तिस्तिराणा।
तीव्रैः सोमैः परिषिक्तेभिरर्वागेन्द्राग्नी सौमनसाय यातम् ॥ ४ ॥

भा०—(१) (समिद्धेषु अग्निषु) यज्ञ में अग्नियों के प्रज्वलित हो जाने पर चरुओं को (आनजाना) घृतों से मिलाते हुए (यतस्रुचा) स्रुचा को हाथ में स्थिर करते हुए (उ बर्हिः तिस्तिराणा) कुश आसन बिछाते हुए अध्वर्यु और प्रतिप्रस्थाता दोनों तीव्र सोम रसों से सबके लिये सुचित्त भाव के हो जाते हैं उसी प्रकार (इन्द्राग्नी) इन्द्र और अग्नि के समान तेजस्वी, ऐश्वर्यवान् और विद्वान् पुरुष राजा और मन्त्री, या वायु और अग्नि के समान सेनापति और राजा दोनों (अग्निषु समिद्धेषु) अग्नियों के समान तेजस्वी नायकों के खूब उत्तेजित हो जाने पर (आनजाना) अपने गुणों का खूब प्रकाश करते हुए (यतस्रुचा) बाहुओं के समान सेनाओं को तथा राष्ट्र के स्त्री पुरुषों, भूमियों तथा वाणी और प्रजा लोकों को नियम में बद्ध, सुसंयत करके (ऊ) साथ ही (बर्हिः) विस्तृत शास्य प्रजाजन को (तिस्तिराणा) खूब विस्तृत करते हुए (तीव्रैः) अति तीव्र, शत्रुओं के प्रति वेग से जाने वाले, (सोमैः) जलों के समान सोम्य गुण वाले, उत्तम पदों पर (परिषिक्तेभिः) अभिषिक्त हुए नायकों सहित (सौमनसाय) उत्तम सुखप्रदाताप प्रजा के चित्तनुरंजन करने के लिये (अर्वाक् आयातम्) हमारे प्रति आवें। इस मन्त्र में नीचे लिखे स्रुच् के शब्दार्थों पर विचार करने से स्त्री पुरुषों के परस्पर प्रजोत्पत्ति और गुरु शिष्य के

ज्ञानप्राप्ति के उत्तम सिद्धान्तों पर भी प्रकाश पड़ता है। 'स्रुच्'—स्रुचश्चेत-द्वेदीश्चाह। विश्वा वेदि घृताची स्रुक्। श० ९।२।३।१७॥ योषा हि-स्रुक्। श० १।४।४।४॥ युजौ ह वा एते यज्ञस्य यत् स्रुचौ। श० १।८।३।२७॥ बाहू वै स्रुचौ। श० ७।४।१।३६॥ वाग वै स्रुक्। श० ६।३।१।८॥ गौर्वै स्रुचः॥ तै० ३।३।५।४॥ इमे वै लोका स्रुचः। तै० ३।३।१।२॥ यजमानः स्रुचः। तै० ३।३।६।३॥

**यानी॑न्द्राग्नी च॒क्रथु॑र्वी॒र्या॑णि॒ यानि॑ रू॒पाण्यु॒त वृष्ण्या॑नि।**
**या वां॑ प्र॒त्नानि॑ स॒ख्या शि॒वानि॒ तेभिः॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥५॥२६**

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) वायु और अग्नि के समान परस्पर उपकारक स्वामी, भृत्य और राजा और मन्त्री, क्षत्र ब्रह्म एवं स्त्री पुरुषो! आप दोनों ( यानि वीर्याणि ) जिन वीर्यों, बलों और सामर्थ्यों को ( यानि रूपाणि ) जिन नाना प्रकार के पदार्थों को या रुचिकर कार्यों को ( उत ) और ( यानि वृष्ण्यानि ) पुरुषार्थ युक्त और सुखवर्षक कार्यों को ( चक्रथुः ) प्रकट करें और ( वां ) आप दोनों ( या ) जो ( प्रत्नानि ) चिरस्थायी ( शिवानि ) शुभ, मङ्गल जनक, कल्याणकारी ( सख्यानि ) मित्रता के कार्य हैं ( तेभिः ) उन सबके साथ युक्त होकर ( सुतस्य ) तैयार किये हुए ( सोमस्य ) सांसारिक ऐश्वर्य तथा राज्य और ओषधि-रसों तथा अन्न और शारीरिक बल आदि का ( पिबतम् ) उपभोग करो।

**यदब्र॑वं प्रथ॒मं वां॑ वृणा॒नो॒३॑ऽयं सोमो॒ असु॑रैर्नो वि॒हव्यः॑।**
**तां स॒त्यां श्र॒द्धाम॒भ्या हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥६॥**

भा०—हे स्त्री पुरुषो! मैं ( वां ) तुम दोनों को ( वृणानः ) यज्ञ में यज्ञ के सम्पादन के लिये पुरोहितों के समान वरण करता हुआ, योग्य कार्य कुशल जान कर ( यत् ) जो कुछ भी ( अब्रवम् ) कहूं, उपदेश करूं ( अयं ) यह ( सोमः ) ज्ञानोपदेश ( नः ) हम में से ( असुरैः )

केवल प्राणों में रमण करने वाले ज्ञान रहित पुरुषों को ( विहव्यः ) विविध प्रकार से ग्रहण कर ज्ञानवान् होना चाहिये। हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि के समान स्त्री पुरुषो! आप दोनों ( तां ) उस ( सत्याम् ) सत्य ( श्रद्धा ) श्रद्धा को ( अभि आयातम् ) प्राप्त होओ ( अथ ) और ( सुतस्य सोमस्य ) प्राप्त ज्ञान और उससे प्राप्त सांसारिक पदार्थों का सुख ( पिबतम् ) प्राप्त करो। (२) ( अयं सोमः असुरेः विहव्यः ) यह राष्ट्र ऐश्वर्य बलवान् पुरुषों के विविध उपायों से भोग्य है। उसी के लिये मुख्य रूप से वरण करता हुआ अमात्य राजा या सेनाध्यक्ष या सभाध्यक्ष दोनों को उपदेश करता हूं कि आप दोनों सज्जनों को हितकारिणी सत्य धारण करने वाली वाणी को प्राप्त हों और तब न्यायानुकूल ऐश्वर्य का भोग करें।

यदि॑न्द्राग्नी॒ मद॑थः॒ स्वे दु॑रो॒णे यद् ब्र॒ह्मणि॒ राज॑नि वा यजत्रा।
अत॒: परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ७ ॥

भा०—( यत् ) जिससे हे ( इन्द्राग्नी ) ऐश्वर्यवान् और विद्यावान् पुरुषो! आप दोनों प्रकार के जन ( स्वे दुरोणे ) अपने घर में, ( मदथः ) स्वतः आनन्द प्रसन्न रहते हो ( यत् ) जिस कारण से आप दोनों ( ब्रह्मणि ) ब्राह्मणों के बीच में ( राजनि ) और राजा की सभा में राजा के द्वार पर भी ( यजत्रा ) आदर प्राप्त करने वाले हो ( अतः ) इस कारण से ही आप दोनों ( वृषणौ ) प्रजा पर सुखों की वर्षा करने हारे होकर ( आयातम् हि ) आवो और ( सुतस्य सोमस्य पिबतम् ) सम्पन्न सोम, राष्ट्रैश्वर्य तथा शासकपद का उपभोग करो। गृह में सम्पन्न विद्वानों और राजाओं के आदर योग्य पुरुषों को शासन कार्य में नियुक्त करना चाहिये। दरिद्र और निर्गुणों को नहीं।

यदि॑न्द्राग्नी॒ यदु॑षु तु॒र्वशे॑षु यद् द्रु॒ह्युष्वनु॑षु पू॒रुषु॒ स्थः।
अत॒: परि॑ वृषणा॒ वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ८ ॥

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) ऐश्वर्यवान् और ज्ञानवान् स्त्री पुरुषो ! ( यत् ) क्योंकि ( यदुषु ) यत्नवान्, यम नियमों में निष्ठ पुरुषों में ( तुर्वशेषु ) शत्रुओं के नाशकारी धर्मार्थ-काम-मोक्ष चारों के अभिलाषी, हिंसक दुष्ट पुरुषों के वश करने वाले पुरुषों में ( द्रुह्युषु ) द्रोहकारी या धनाभिलाषा से एक दूसरे से प्रतिस्पर्धा करने वाले, पुरुषों में, ( अनुषु ) प्राणमात्र पर आजीविका करने वाले या अन्यों को प्राण-प्रद पदार्थ अन्नादि देने वाले पुरुषों में और ( पुरुषु ) सबको विद्यादि से परिपूर्ण करने वाले उच्च कोटि के पुरुषों में ( स्थः ) आदरपूर्वक रहते हो ( अतः ) इस कारण से समस्त सुखों और ज्ञानों के वर्षक होकर आप दोनों ( परि आयातम् ) सर्वत्र आओ जाओ और ( सुतस्य सोमस्य पिबतम् ) उत्पन्न हुए ऐश्वर्ययुक्त बलवर्धक पदार्थों का उपभोग करो, सुख पूर्वक जीवन व्यतीत करो ।

यदि॑न्द्राग्नी अ॒व॒मस्यां॑ पृथि॒व्यां म॑ध्य॒मस्यां॑ प॒र॒मस्या॑मु॒त स्थः ।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ ९॥

यदि॑न्द्राग्नी प॒र॒मस्यां॑ पृथि॒व्यां म॑ध्य॒मस्या॑मव॒मस्या॑मु॒त स्थः ।
अतः॒ परि॑ वृषणा॒वा हि या॒तमथा॒ सोम॑स्य पिबतं सु॒तस्य॑ ॥ १०॥

भा०—( यत् ) जिस कारण से ( इन्द्राग्नी ) वायु और विद्युत् के समान न्यायाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष ( अवमस्याम् ) उत्तम गुण से रहित ( मध्यमस्यां ) मध्यम गुण वाली और ( परमस्यां ) अति उत्तम गुणों वाली तीनों प्रकार की ( पृथिव्यां ) पृथिवी में अधिकार, मान और सत्कार पूर्वक ( स्थः ) रहते हैं ( अतः ) उसी से वे दोनों सब प्रजा को सुखप्रद होकर प्राप्त हों और प्राप्त ऐश्वर्य का भोग करें ॥९॥

भा०—(यदिन्द्राग्नी०) इत्यादि पूर्ववत् । पूर्व मन्त्र में अवम, मध्यम, परम इस क्रम से पृथिवी के विशेषण हैं दूसरे मन्त्र में परम, मध्यम

और अवम इस क्रमसे विशेषण हैं। वायु और अग्नियों की स्थिति और क्रम दोनों प्रकार की जाननी चाहिये, एक भूमिसे अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष से आकाश में जाने वाले और दूसरे आकाश से मध्यम अन्तरिक्ष और अन्तरिक्ष से पृथिवी को आने वाले ये दो प्रकार के वायु और अग्नियों का वर्णन है। उसी प्रकार चढ़ते और उतरते क्रम से योग्य विद्वान् अधिकारियों का भी वर्णन समझना चाहिये। अर्थात् छोटे अधिकार वाले अपने से बड़े अधिकारी से निवेदन करते हैं और बड़े छोटे अधिकारियों को आज्ञा करते हैं। दोनों ही प्रकारों से वे प्रजा को सुखकारी हों।

यदिन्द्राग्नी दिवि ष्ठो यत्पृथिव्यां यत्पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥११॥

भा०—( यत् ) क्योंकि ( इन्द्राग्नी ) वायु और अग्नि ये दोनों तत्व ( दिवि ष्ठः ) सूर्य में भी हैं। ( यत् पृथिव्याम् ) पृथिवी में ( पर्वतेषु ) पर्वतों में ( ओषधीषु ) ओषधियों में और ( अप्सु ) समुद्र, नदी आदि जलों में भी विद्यमान हैं, वे दोनों इसी कारण से सुखों के देने वाले होकर सर्वव्याप्त हैं। वे दोनों (सुतस्य सोमस्य पिबतम्) उत्पादित अन्नादि रस में भी रहते हैं। ( २ ) वायु अग्नि के उपकारक जन ( दिवि ) विद्वानों के बीच, ( पृथिव्यां ) प्रजावासियों के बीच, (पर्वतेषु) मेघों के समान पालक, शिक्षक पर्वतों के समान अचल राजाओं के बीच ( ओषधीषु ) ओषधियों के समान शत्रुओं के नाशक सैन्यों में और ( अप्सु ) प्राणों के समान आप्तजनों में भी आदरपूर्वक रहते हैं। इसलिये वे सर्व सुखप्रद होकर प्राप्त हों और ऐश्वर्य का भोग करें।

यदिन्द्राग्नी उदिता सूर्यस्य मध्ये दिवः स्वधया मादयेथे ।
अतः परि वृषणावा हि यातमथा सोमस्य पिबतं सुतस्य ॥१२॥

भा०—( यत् ) जिस कारण से ( उद् इता ) ऊपर की तरफ़ गये हुए ( इन्द्राग्नी ) वायु और अग्नितत्व दोनों ( सूर्यस्य ) सूर्य ( दिवः )

और अन्तरिक्ष के बीच में ( स्वधया ) जल के साथ युक्त होकर स्वयं तृप्त, जलपूर्ण होते और ( मादयेथे ) सब प्राणियों को सुखकारी होते हैं। (अतः) इसी से वे दोनों ( वृषणौ ) जलों के वर्षणकारी होते हैं। वे प्राप्त होते और जल को भूपृष्ठ परसे पान करते हैं। इसी प्रकार ( सूर्यस्य दिवः मध्ये ) सूर्य के समान तेजस्वी प्रकाश देने वाले पुरुष के ज्ञान प्रकाश के मध्य में रह कर उदय को प्राप्त होने वाले इन्द्र और अग्नि, ऐश्वर्यवान् और ज्ञानी पुरुष ( स्वधया ) अपने शरीर को धारण करने वाली आजीविका या अन्न से तृप्त हों। वे बलवान् हृष्ट पुष्ट होकर आवें। पुनः ( सुतस्य सोमस्य ) प्राप्त वीर्य, ऐश्वर्य आदि गृहस्थोचित पदार्थों का भोग करें।

**एवेन्द्राग्नी पपिवांसा सुतस्य विश्वास्मभ्यं सं जयतं धनानि।**
**तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥१३।२७**

भा०—( एवा ) इस प्रकार से ( सुतस्य ) ऐश्वर्य का भोग करते हुए ( इन्द्राग्नी ) पूर्वोक्त प्रकार के विद्यावान् और ऐश्वर्यवान् स्त्री पुरुष ( अस्मभ्यम् ) हमारे लिये ( विश्वा धनानि ) समस्त धनों को ( सं जयतं ) अच्छी प्रकार विजय करें। ( तन्नो मित्रो वरुणो ० इत्यादि ) पूर्ववत्। इति सप्तविंशो वर्गः॥

## [ १०९ ]

॥ १०९ ॥ १—८ कुत्स आङ्गिरस ऋषिः॥ इन्द्राग्नी देवते॥ छन्दः—१, ३, ४, ६, ८ निचृत् त्रिष्टुप्। २, ५ त्रिष्टुप्। ७ विराट् त्रिष्टुप्। धैवतः स्वरः॥

**वि ह्यख्यं मनसा वस्य इच्छन्निन्द्राग्नी ज्ञास उत वा सजातान्।**
**नान्या युवत्प्रमतिरस्ति मह्यं स वां धियं वाजयन्तीमतक्षम्॥१॥**

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और हे अग्ने! हे आचार्य और शिक्षक! हे राजन्, हे विद्वन्! मैं ( वस्वः इच्छन् ) उत्तम से उत्तम ऐश्वर्यों को चाहता हुआ अथवा मैं स्वयं ( वस्यः ) गृहस्थ रूप से बसे हुए पुरुषों में सर्व

श्रेष्ठ होकर ( ज्ञासः ) ज्ञानवान् या ज्ञातिगण ( वा ) और ( सजातान् ) एक वंश, पद, समाज और कुल में उत्पन्न हुए लोगों को मैं ( मनसा ) अपने हृदय से ( वि अख्यं ) विविध प्रकार का उपदेश दूं। ( युवत् ) आप दोनों से ( अन्या ) कोई और दुसरा पुरुष ( मह्यं ) मेरे लिये ( प्रमतिः ) और अधिक उत्तम ज्ञानवान् और बुद्धिमान् ( न अस्ति ) नहीं है। ( सः ) वह मैं ( वां ) आप दोनों की ( वाजयन्तीम् ) ज्ञान और ऐश्वर्य की अभिलाषा करने वाली ( धियम् ) बुद्धि और कर्म को ( अतक्षम् ) करूं।

**अश्र॑वं॒ हि भू॑रि॒दाव॑त्तरा वां॒ विजा॑मातुरु॒त वा॑ घा स्या॒लात् ।**
**अथा॒ सोम॑स्य॒ प्रय॑ती यु॒वभ्या॒मिन्द्रा॑ग्नी॒ स्तोमं॑ जनयामि॒ नव्य॑म् ॥२॥**

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और अग्नि, विद्युत् अग्नि, या वायु और अग्नि के समान जीवनप्रद और ज्ञानप्रद पिता और आचार्य ! (विजामातुः) विपरीत गुणों वाले गुणहीन जमाई कन्या को प्राप्त करने के लिये अधिक धन व्यय करता है ( उत वा ) और ( स्यालात् ) अपना अति निकट सम्बन्धी अपनी स्त्री का भाई अर्थात् साला भी भगिनी के प्रेम से उत्तम जमाई को प्रसन्न रखने के लिये बहुत सा धन प्रदान करता है (घ) परन्तु उन दोनों से भी ( भूरिदावत्तरा ) कहीं बहुत अधिक ऐश्वर्यों के देने वाले ( वां ) आप दोनों को मैं ( अश्रवं ) सुनता हूं। ( अथ ) और मैं ( सोमस्य ) समस्त ऐश्वर्य के उत्तम दान प्राप्त करने के लिये ( युवभ्याम् ) आप दोनों के ( नव्यम् ) अति नवीन, नये से नया, उत्तम से उत्तम ( स्तोमम् ) स्तुति ( जनयामि ) प्रकट करता हूं।

**मा च्छे॑द्म र॒श्मीँरिति॒ नाध॑मानाः पितॄ॒णां श॒क्तीर॑नु॒यच्छ॑मानाः ।**
**इ॒न्द्रा॒ग्निभ्यां॒ कं वृष॑णो मदन्ति॒ ता ह्यद्री॑ धि॒षणा॑या उ॒पस्थे॑ ॥ ३ ॥**

भा०—हम लोग ( पितॄणां ) अपने पालन करने वाले माता पिता,

गुरु, आचार्य, तथा अन्य पालक जनों के ( रश्मीन् ) प्रजा तन्तुओं, सन्तानों, शिष्यों, उनकी नियत की हुई मर्यादाओं तथा उनके प्रकाशित विज्ञान किरणों का हम ( मा छेद्म ) कभी उच्छेद या विनाश न करें। ( इति ) इस बात की आशिषें और शुभ कामनाएं करते हुए और (पितृणां) पूर्वोक्त पालक गुरु जनों के ( शक्तीः ) नाना प्रकार के सामर्थ्यों को ( अनुयच्छमानाः ) समस्त लोकों के प्रकृति अनुकूल उनको सुख पहुंचाने के लिये नियमित व्यवस्थित करते हुए और अन्यों को प्रदान करते हुए ( वृषणः ) बलवान् वीर्यवान् पुरुष मेघों के समान दानशील होकर (इन्द्राग्निभ्याम्) पूर्वक हे पवन विद्युत् से मेघों के समान इन्द्र और अग्नि ऐश्वर्यवान् और तेजस्वी विद्वान् पुरुषों से युक्त होकर ( धिषणायाः ) प्रज्ञा बुद्धि और वाणी के ( उपस्थे ) समीप उसके आश्रय होकर ( कम् ) सुख का ( मदन्ति ) लाभ करते हैं, क्योंकि ( ता ) वे दोनों ही ( अद्री ) मेघों के समान उदार सुखों की वर्षा करने वाले एवं (अद्री) पर्वत के समान दृढ़ और विपत्ति और भय में कभी न भागने वाले अविनाशी स्वभाव के हैं।

**युवाभ्यां देवी धिषणा मदायेन्द्राग्नी सोममुशती सुनोति।**
**तावश्विना भद्रहस्ता सुपाणी आ धावतं मधुना पृङ्क्तमप्सु ॥४॥**

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) इन्द्र और विद्युत् या विद्युत् और अग्नि या वायु अग्नि के समान सर्वोपकारी जीवन और ज्ञान के देने वाले तेजस्वी गुरुजनो ! ( देवी ) दिव्य आदि गुणों से प्रकाशमान ( धिषणा ) प्रज्ञा बुद्धि ही ( उशती ) अति अभिलाषा युक्त प्रियतमा स्त्री के समान (युवाभ्याम् ) आप दोनों के ( मदाय ) अति हर्ष सुख के लिये ( सोमम् ) सब प्रकार के आनन्द रस तथा ऐश्वर्यों और योग्य विद्यार्थी को (सुनोति ) उत्पन्न करती है। अथवा ( ता ) वे आप दोनों ( अश्विना ) सूर्य चन्द्र, दिन रात, तथा स्त्री पुरुषों के समान परस्पर मिल कर ( भद्रहस्ता ) सर्व

दुःखकारी शत्रु और दुराचारी और कष्टों के नाशक उपायों और ( सुपाणी ) उत्तम व्यवहारों से युक्त होकर ( आधावतम् ) प्राप्त होओ। और (अप्सु) समस्त प्रजाओं में, जलों में जल के समान ( मधुना ) अपने मधुर स्वभाव तथा ज्ञान और आनन्द से ( आ पृङ्क्तम् ) खूब मिल जाओ। वे तुम्हारे और तुम उनके हो जाओ। ( देवी उशती ) कामनायुक्त स्त्री, पिता और आचार्य के सुख और हर्ष के लिये ही पुत्र को उत्पन्न करती है। उसी प्रकार ( देवी धिषणा) उत्तम विद्या भी "सोम" अर्थात् शिष्य को उत्पन्न करती है। ततोऽस्य माता सावित्री पिता त्वाचार्य उच्यते। ( मनु ) स्त्री पुरुष जिस प्रकार दानादि से कल्पहस्त हैं और कोमलता आदि गुणों और शुभ आभूषणादि से उत्तम कर कमल वाले होकर ( आधावतम् ) अग्नि के चारों ओर प्रदक्षिणा करते और जलों में जल के समान मिल कर एक हो जाते हैं। 'समापो हृदयानि नौ'।

युवामिन्द्राग्नी वसुनो विभागे तवस्तमा शुश्रव वृत्रहत्ये।
तावासद्या बर्हिषि यज्ञे अस्मिन्प्रचर्षणी मादयेथां सुतस्य ॥५॥२८॥

भा०—( इन्द्राग्नी ) विद्युत् और आग दोनों पदार्थों को मैं ( वसुनः विभागे ) जल के फाड़ने के कार्यों में ( तवस्तमा ) बहुत अधिक बल वाला ( शुश्रव ) सुनता हूं। उन दोनों के इस क्रियात्मक विज्ञान को मैं गुरु-मुख से श्रवण करूं। ( तौ ) वे दोनों ( अस्मिन् ) इस प्रत्यक्ष ( बर्हिषि ) बढ़ने योग्य ( यज्ञे ) सुसंगत, शिल्पादि मन्त्रों और वैज्ञानिक कार्यों में ( सुतस्य ) बनाये गये पदार्थ रथ आदि में ( आसद्य ) प्राप्त होकर ( मादयेथां ) अति हर्ष प्रदान करते हैं। ( २ ) इसी प्रकार राष्ट्र में विद्युत् और अग्नि के समान तेजस्वी पवन और सूर्य के समान सर्व प्राणप्रद, दुष्ट रोगादि के नाशक विद्वान् और बलवान् जन ( युवम् ) तुम दोनों ( वसुनः विभागे ) राष्ट्र के ऐश्वर्य, भूमि, पशु आदि के विभाग के कार्य और (वृत्रहत्ये) विघ्नकारी दुष्ट पुरुषों के उच्छेदन के कार्य में ( तवस्तमा

शुश्रव ) सबसे अधिक बलवान् सुनता हूं। ( तौ ) वे दोनों प्रकार के जन ( बर्हिषि ) बढ़ाने योग्य, अति विस्तृत ( यज्ञे ) सुव्यवस्थित प्रजा पालन आदि उत्तम कार्य के निमित्त ( चर्षणी ) सब कार्य-व्यवहारों के द्रष्टा होकर ( आसद्य ) उत्तम आसन पर विराज कर ( सुतस्य ) अभिषिक्त हुए राजा या राष्ट्रपति को ( प्र मादयेथां ) खूब अधिक हर्षित करें, उसके बल को खूब तृप्त और पूर्ण करें। गुरु शिष्यादि भी ज्ञानरूप धन के वितरण और अज्ञान नाश के कार्य में प्रबल हों। और अध्ययनाध्यापन रूप यज्ञ में विराज कर ज्ञान से तृप्त हों और अन्यों को करें।

प्र च॑र्षणिभ्यः पृतना॒ह॑वेषु॒ प्र पृ॑थि॒व्या रि॑रिचाथे दि॒वश्च॑ ।
प्र सिन्धु॑भ्यः॒ प्र गि॒रिभ्यो॑ महि॒त्वा प्रेन्द्रा॑ग्नी॒ विश्वा॒ भुव॒नात्य॒न्या ॥६॥

भा०—( इन्द्राग्नी ) उक्त दोनों वायु और अग्नि तत्व दोनों के समान गुण वाले पूर्वोक्त जन ( पृतना हवेषु ) सैन्यों द्वारा किये जाने वाले युद्धों में ( महित्वा ) अपने महान् सामर्थ्य से ( चर्षणिभ्यः ) समस्त मनुष्यों से बढ़ जाते हैं। वे ( पृथिव्याः प्र ) अपने महान् पराक्रम और सामर्थ्य से पृथिवी से भी बढ़ जाते हैं। ( दिवः च प्र ) वे दोनों अपने महान् पराक्रम से सूर्य से भी अधिक हों। वेग में वे दोनों (सिन्धुभ्यः प्र) नदी प्रवाहों से भी अधिक वेगवान् हों। गम्भीरता और गुरुता में (गिरिभ्यः प्र ) पर्वतों से भी अधिक बड़े हों। ( विश्वा अन्या भुवना अति ) वे समस्त भुवनों, लोकों और उत्पन्न होने वाले पदार्थों से शक्ति और गुणों में अधिक हों।

आ भ॑रतं॒ शिक्ष॑तं वज्रबाहू अ॒स्माँ इ॑न्द्राग्नी अवतं॒ शची॑भिः ।
इ॒मे नु ते र॒श्मयः॒ सूर्य॑स्य॒ येभिः॑ सपि॒त्वं पि॒तरो॑ न॒ आस॑न् ॥ ७ ॥

भा०—ये ( सूर्यस्य रश्मयः ) सूर्य की रश्मियां ही हैं ( येभिः ) जिन से ( पितरः सपित्वं आसन् ) समस्त जीवों के पालक ओषधिगण,

तथा कृषक गण समान रूप से अन्नादि खाद्य फल उत्पन्न करते हैं उसी प्रकार ( ते ) वे ही ( इमे नु ) ये ( सूर्यस्य रश्मयः ) सूर्य की रश्मियों के समान ज्ञान के प्रकाश हैं ( येभिः ) जिनके साथ मिल कर ( नः ) हमारे ( पितरः ) पालक गुरुजन ( सपित्वम् आसन् ) समान पद, स्थान, मान, आदर, सत्कार प्राप्त करते हैं। (तेभिः) उनके आश्रय पर ही रहे। हे ( इन्द्राग्नी ) सूर्य के समान तेजस्विन् अग्नि के प्रकाशक आप दोनों भद्र पुरुषो ! ( वज्रबाहू ) बल, वीर्य तथा शस्त्र शक्ति को अपने वश में रखते हुए आप दोनों ( अस्मान् आ भरतम् ) हमें खूब समृद्ध करो। ( नः शिक्षतम् ) हमें सब प्रकार से शिक्षा दो और ( शचीभिः ) उत्तम कर्मों और ज्ञानों से ( अवतम् ) रक्षा करो।

**पुरंदरा शिक्षतं वज्रहस्तास्माँ इन्द्राग्नी अवतं भरेषु। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥ ८ ॥ २९ ॥**

भा०—हे ( इन्द्राग्नी ) ऐश्वर्यवन् ! ज्ञानवन् ! आप दोनों (पुरंदरा) शत्रुओं के गढ़ों को तोड़ने हारे, ( वज्रहस्ता ) शत्रु को निवारण करनेवाले शस्त्रास्त्र बल तथा विज्ञान को अपने हाथ में अर्थात् वश में धारण करने वाले होकर ( अस्मान् ) हमें (भरेषु) यज्ञों और संग्रामों में ( अवतम् ) रक्षा करें। ( तन्नो० इत्यादि ) पूर्ववत्। एकोनत्रिंशद् वर्गः ॥

## [ ११० ]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१, ४ जगती। २, ३, ७ विराड् जगती। ६, ८ निचृज्जगती। ५ निचृत्त्रिष्टुप्। ९ त्रिष्टुप्। नवर्चं सूक्तम्।

**ततं मे अपस्तदु तायते पुनः स्वादिष्ठा धीतिरुचथाय शस्यते। अयं समुद्र इह विश्वदेव्यः स्वाहाकृतस्य समु तृप्णुत ऋभवः ॥ १ ॥**

भा०—( मे ) मेरा ( अपः ) उत्तम ज्ञान और कर्म ( ततम् )

अति विस्तृत होकर ( पुनः ) फिर भी ( तत् उ ) उसी प्रकार पूर्ववत् (तायते) अधीन द्रव्यों और शिष्यों की रक्षा करता फैलाता और गुरुपरम्परा से शिष्यादि को उत्पन्न करता है, ( स्वादिष्ठा ) अति स्वादुयुक्त, मधुर ( धीतिः ) रसधारा के समान ज्ञानधारा ( उचथाय ) प्रवचन अर्थात् उपदेश के लिये अथवा अध्याप्य शिष्य के हितार्थ ( शस्यते ) उपदेश की जाती है (अयं) यह आश्चर्यकारी विद्वान् पुरुष (विश्वदेव्यः) समस्त दिव्य रत्नों से भरे ( समुद्रः ) समुद्र के समान ( विश्वदेव्यः ) उत्तम गुणों और विद्या के प्रकाशों से परिपूर्ण है। हे ( ऋभवः ) आप्त, सत्य ज्ञान, वेद से सुशोभित होने वाले विद्वान् योग्य पुरुषो! आप लोग ( स्वाहाकृतस्य ) उत्तम उपदेश-प्रद वाणी द्वारा उपदेश किये गये ज्ञानरस से ( सम् तृप्णुत उ ) अच्छी प्रकार स्वयं तृप्त होओ और अन्यों को भी तृप्त करो।

**आभोगयं प्र यदिच्छन्त ऐतनापाकाः प्राञ्चो मम के चिदापयः।**
**सौधन्वनासश्चरितस्य भूमनागच्छत सवितुर्दाशुषो गृहम् ॥ २॥**

भा०—हे (अपाकाः) पाक यज्ञों के न करनेहारे अथवा हे (अपाकाः) परिपक्व ज्ञान और अनुभव और निश्चय वाले विद्वान् पुरुषो! ( प्राञ्चः ) नवागत, कम उमर के लोगों की अपेक्षा अधिक प्राचीन, वृद्ध तथा (प्राञ्चः) आगे, ऊँचे मान योग्य पदों पर जाने वाले ( केचित् ) कुछ एक ( मम आपयः ) मेरे प्रिय आप्त बन्धु होकर आप लोग ( आभोगयं ) सब तरफ़ समस्त जीवों के रक्षा करने और सुख उपयोग करने में सर्व-श्रेष्ठ बल और ज्ञान की इच्छा करते हो तो ( एतन ) आओ, आगे बढ़ो। ( चरितस्य भूमना सौधन्वनासः यथा सवितुः गृहम् गच्छन्ति ) जिस प्रकार अन्तरिक्ष में उत्पन्न होने वाले वायु के महान् बल से प्रेरित होकर सूर्य के अधीन रहते हैं और ( सौधन्वनासः चरितस्य भूमना दाशुषः सवितुः गृहम् ) जिस प्रकार उत्तम धनुर्धारी पुरुष अपने पराक्रम की

अधिकता से सूर्य के समान तेजस्वी दानशील राजा, अमात्य या सेनापति के पद या स्थान को प्राप्त होते हैं उसी प्रकार आप लोग ( सौधन्वनासः ) उत्तम ज्ञान करने योग्य विद्या विज्ञान से युक्त होकर ब्रह्मचारीगण जिस प्रकार समावर्त्तन के बाद ( सवितुः गृहम् ) अपने उत्पादक पिता के घर में आजाते हैं उसी प्रकार आप ज्ञानवान् पुरुष भी ( दाशुषः ) समस्त सुखों के देनेवाले, समस्त ज्ञानैश्वर्यों के देनेवाले आश्चर्य के समान ज्ञान के सूर्य (सवितुः) समस्त जगत् के उत्पादक परम प्रभु परमेश्वर के (गृहम्) घर अर्थात् शरण को ( आगच्छत ) प्राप्त हो।

सौधन्वनासः—सु-धन्वन्। रिविधायि गत्यर्थः (भ्वादिः) अतः कनिन्। धन्वेति अन्तरिक्षनामसु पदनामसु च पठ्यते।

**तत्स॑वि॒ता वो॑ऽमृत॒त्वमासु॑व॒दगो॑ह्यं॒ यच्छ्र॒वय॑न्त॒ ऐत॑न।**
**त्यं चि॑च्चम॒सम॑सु॑रस्य॒ भक्ष॑ण॒मेकं॒ सन्त॑मकृणु॒ता चतु॑र्वयम् ॥ ३ ॥**

भा०—हे विद्वान् पुरुषो ! ( सविता ) सूर्य जिस प्रकार ( अमृतत्वम् ) अमृत, चेतनता, जीवन या अन्न और प्राण को (आसुवत्) प्रदान करता है, ( श्रवयन्तः ) अन्न की कामना करते हुए कृषक जन खेत जाते हैं। (असुरस्य) प्राणों के पोषण में रत प्राणी के (भक्षणं चमसम्) खाने योग्य अन्न को खेत में बो बोकर ( एकं सन्तं चतुर्वयम् अकृण्वत ) एक गुना अनाज को चौगुना कर लेते हैं उसी प्रकार ( सविता ) आचार्य ज्ञानों का उत्पादन करने वाला विद्वान् और सबको उत्पन्न करने वाला परमेश्वर ( वः ) आप लोगों को ( तत् ) वह ( अगोह्यं ) कभी न छिपाने योग्य सूर्य के प्रकाश के समान अगोप्य, प्रकट, उज्ज्वल ( अमृतत्वम् ) अमृतस्वरूप, आत्म तत्व और परम ज्ञान ( आसुवत् ) प्रदान करे ( यत् ) जिसको ( श्रवयन्तः ) स्वयं गुरुमुखों द्वारा श्रवण करने और अन्यों को श्रवण कराने की इच्छा करते हुए (आ एतन) आगे बढ़ो और हम जिज्ञासु गृहस्थों के पास आओ। ( चमसं चित् ) अन्न के समान ग्रहण करने योग्य, पवित्र

( त्वं ) इस ( असुरस्य ) प्राणों में रमण करने वाले, प्राणायाम के अभ्यासी, योगी पुरुष के ( भक्षणम् ) प्राप्त करने या भोगने योग्य जीवन-सुख या ज्ञान को ( एकं सन्तं ) एक को ( चतुर्वयम् ) चौगुना ( आकृणुत ) करो । अर्थात् (१) अपने बल को बढ़ाओ, और जीवन की १०० वर्ष की आयु को ४०० वर्षतक की करने का यत्न करो । ( २ ) अथवा ज्ञान को ( एकं सन्तं ) एक ही ( चतुर्वयम् = चतुर्धा व्याप्तम् ) चार प्रकार से करके अध्ययन करो, एक ईश्वरीय ज्ञान वेद को ऋग्, यजु, साम, अथर्व रूप से अध्ययन करो। अथवा ( एकं सन्तं चतुर्वयम् ) एक ही जीवन रूप यज्ञ को चार आश्रम भेद से ४ भागों में बाँट दो। अथवा ( एकं सन्तं ) एक ही जीवन को धर्मार्थ, काम, मोक्ष इन चार पुरुषार्थों से युक्त करो ।

**विष्ट्वी शमी तरणित्वेन वाघतो मर्तासः सन्तो अमृतत्वमानशुः ।**
**सौधन्वना ऋभवः सूरचक्षसः संवत्सरे समपृच्यन्त धीतिभिः ॥४॥**

भा०—( वाघतः ) ज्ञान विज्ञानों से युक्त वाणी को धारण करने वाले, ( मर्तासः ) मरणशील, ( सन्तः ) होकर भी ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले ( सौधन्वनाः ) उत्तम कोटि के ब्रह्मज्ञानी पुरुष ( शमी विष्ट्वी ) शान्तिदायक कर्मों का आचरण करके ( अमृतत्वम् ) अमृतस्वरूप मोक्ष को ( आनशुः ) प्राप्त करते हैं । और वे (सूरचक्षसः ) सूर्य के समान तेजस्वी, दीर्घदर्शी होकर ( संवत्सरे ) वर्ष में सूर्य के समान ही ( धीतिभिः ) ज्ञानों और नाना कार्यों से नाना सुखों को ( सम् अपृच्यन्त ) प्राप्त करते हैं ।

**क्षेत्रमिव वि ममुस्तेजनेन एकं पात्रमृभवो जेहमानम् ।**
**उपस्तुता उपमं नाधमाना अमर्त्येषु श्रव इच्छमानाः ॥ ५ ॥२०॥**

भा०—जिस प्रकार ( श्रवः इच्छमानाः ) अन्न को चाहने वाले किसान लोग (तेजनेन क्षेत्रम् इव) सरकण्डे की डण्डी से खेत मापते या तीखी

फाली से खते बनाते हैं और (ऋभवः) शिल्पी लोग (उपमं नाधमानाः) नमूने के समान दूसरा पात्र बनाने की इच्छा करते हुए (एकं पात्रम्) एक वर्त्तन को (तेजनेन विममुः) सींक के बने पैमाने से माप लेते या (तेजनेन) तीक्ष्ण शस्त्र छेनी आदि से गढ़कर बना लेते हैं उसी प्रकार (अमर्त्येषु) विनाश न होने वाले नित्य पदार्थों में (श्रव इच्छमानाः) श्रवण, गुरुपदेश अर्थात् सत्य ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा करते हुए (उपस्तुताः) उसके अति समीप तक पहुंच कर उसका साक्षात् कर, हस्तामलकवत् उसका वर्णन करने वाले (ऋभवः) सत्य ज्ञान के ज्ञाता विद्वान् पुरुष (उपमं) उन अविनाशी पदार्थों के सदृश उपमान को (नाधमानाः) दृष्टान्त के रूप में चाहते हुए (तेजनेन) अति तीक्ष्ण ज्ञान से उसको डण्डी से क्षेत्र को मापने के समान (विममुः) विविध प्रकार से ज्ञान करते हैं और पूर्वोक्त पात्र के समान ही (उपमं नाधमानाः) सदृश धर्मों वाले दृष्टान्त को चाहते हुए (जेहमानम्) प्रयत्नशील (एकं) एक अद्वितीय देह में चक्षु आदि प्राणों से भिन्न (पात्रं) सबके पालक आत्मा को और ब्रह्माण्ड में (जेहमानं) सबके सञ्चालक, प्रयत्नशील (एकं पात्रं) समस्त जगत् के पालक एकमात्र, अद्वितीय परमेश्वर को (विममुः) विविध प्रकारों से ज्ञान करते हैं। राष्ट्र के पक्ष में—(अमर्त्येषु श्रवः इच्छमानाः) साधारण जनों से भिन्न विशेष पुरुषों में ही यश या ऐश्वर्य की स्थापना करने की इच्छा करते हुए (उपस्तुताः) विद्वान् जन (उपमं) उस यश ऐश्वर्य के योग्य पुरुष को ही (नाधमानाः) ऐश्वर्यवान् करते हुए (ऋभवः) सत्य ज्ञान और विशाल सामर्थ्य से तेजस्वी पुरुष (जेहमानं एकं पात्रम्) प्रयत्नशील उपयोगी साहसी एक पालक को (तेजनेन) तीक्ष्ण शस्त्रास्त्र बल से (विममुः) विविध उपायों से उसको प्रमुख नायक बनाते हैं (३) सूर्य के पक्ष में—(ऋभवः) किरण गण (श्रवः) अन्न उत्पन्न करना चाहते हुए समीप प्राप्त होकर (उपमं) अपने समान तेजस्वी सूर्य को चाहते हुए

( तेजनेन ) अपने तीक्ष्ण तापसे एक सर्वपालक सूर्य को ( क्षेत्रम् इव ) अपने उत्पत्ति-स्थान क्षेत्र के समान विविध प्रकार से ज्ञान कराते हैं।

आ म॑नी॒षाम॒न्तरि॑क्षस्य॒ नृभ्यः॑ स्रु॒चेव॑ घृ॒तं जु॑हवाम वि॒द्मना॑ ।
त॒र॒णि॒त्वा ये पि॒तुर॑स्य सश्चि॒र ऋ॒भवो॒ वाज॑मरुहन्दि॒वो रजः॑ ॥६॥

भा०—( ऋभवः ) खूब प्रकाशमान किरणें जिस प्रकार ( वाजम् ) पृथिवी आदि लोक पर ( अरुहन् ) अन्नों को उत्पन्न करते हैं, वे (दिवः रजः ) आकाशस्थ लोकों तक भी प्राप्त होते हैं और ( ये ) जो ( तरणित्वा ) अति शीघ्र ही, ( अस्य ) इस जगत् को ( पितुः ) अन्न आदि पालक या जीवनप्रद पदार्थ को प्राप्त कराते हैं और जो ( अन्तरिक्षस्य ) अन्तरिक्ष के बीच में स्थित रह कर ( नृभ्यः ) मनुष्यों के हित ( स्रुचा इव ) स्रुच् से जैसे घृत अग्नि पर दिया जाता है उसी प्रकार ( घृतं सश्चिरे ) जल की वर्षा करते हैं हम उन किरणों के ज्ञान के लिये (विद्मना) ज्ञानपूर्वक ( मनीषाम् ) अपनी बुद्धि को ( आ जुहवाम ) लगावें। ( २ ) उसी प्रकार (ऋभवः) सत्य ज्ञान से प्रकाशित विद्वान् जन ( वाजम् अरुहन् ) ऐश्वर्य को प्राप्त करते हैं, वे ( दिवः रजः ) सूर्य के समान तेजस्वी लोकों या पदों को ( सश्चिरे ) प्राप्त होते हैं। (ये तरणित्वा ) जो शीघ्र ही ( अस्य पितुः ) इस प्रजागण को पालनकारी साधन प्राप्त कराते हैं। और ( अन्तरिक्षस्य स्रुचा इव घृतम् ) आकाश से बरसते बादल से जल के समान ( स्रुचा घृतम् ) वाणी द्वारा ज्ञान का उपदेश करते हैं उनके अधीन हम ( विद्मना ) ज्ञानपूर्वक ( मनीषाम् ) स्तुति या अपनी पूजा को या बुद्धि को ( आ जुहवाम ) प्रदान करें।

ऋ॒भुर्न॒ इन्द्रः॒ शव॑सा॒ नवी॑यानृ॒भुर्वाजे॑भि॒र्वसु॑भि॒र्वसु॑र्द॒दिः ।
यु॒ष्माकं॑ देवा॒ अव॒साह॑नि प्रि॒ये३॒॑ऽभि ति॑ष्ठेम पृत्सु॒तीरसु॑न्वताम् ॥७॥

भा०—( नः ) हमारा ( इन्द्रः ) ऐश्वर्यवान् शत्रु संहारक राजा और

सेनापति एवं आचार्य ( ऋभुः ) तेज से सूर्य के समान खूब प्रकाशित होने वाले और सत्य ज्ञान से प्रकाशित होकर ( नवीयान् ) सदा नये से नया अर्थात् नये से नये, उत्तम से उत्तम विचारों वाला हो। वह ( ऋभुः ) विद्वान् ही ( वाजेभिः ) ज्ञानों, ऐश्वर्यों और संग्रामों से और ( वसुभिः ) चक्रवर्ती राज्य आदि ऐश्वर्यों से युक्त होकर स्वयं ( वसुः ) सब को बसाने वाला और उन में तेजस्वी होकर बसने वाला और ( ददिः ) समस्त सुखों का देने वाला, दानशील हो। हे ( देवाः ) विद्वान् और विजयेच्छु पुरुषो ! ( युष्माकं अवसा ) आप लोगों के ज्ञान और रक्षण सामर्थ्य से (प्रिये अहनि) आप लोगों के प्रिय दिवस में अर्थात् अनुकूल और अभिमत दिवस में हम लोग (असुन्वताम्) ऐश्वर्य और अभिषेकादि के विरोधी शत्रुओं की ( पृत्सुतीः ) सेनाओं के ( अभितिष्ठेम ) मुकाबले पर डटें, उनकी विजय करें।

**निश्चर्मण ऋभवो गामपिंशत् सं वत्सेनासृजता मातरं पुनः।**
**सौधन्वनासः स्वपस्यया नरो जिव्री युवाना पितराकृणोतन ॥८॥**

भा०—हे ( ऋभवः ) सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाले विद्वान् पुरुषो ! जिस प्रकार शिल्पी लोग ( चर्मणः गाम् निर् अपिंशत ) चाम की गाय को भी अपने उत्तम क्रिया कौशल से वास्तविक गाय के समान रूपवान् आकार बना देते हैं उसी प्रकार आप लोग भी ( चर्मणः ) उत्तम आचरण द्वारा ( गाम् ) वेद वाणी को ( निर् अपिंशत ) सब प्रकार से अङ्ग २ से रूपवान्, क्रियासमृद्ध करो। ( वत्सेन मातरम् ) गोपाल जन जिस प्रकार बछड़े से उसकी माता को या लोग बच्चे से उसकी माता को मिला देते हैं उसी प्रकार हे विद्वान् लोगो ! आप लोग भी ( वत्सेन ) विद्याओं का उपदेश करने हारे विद्वान् से ( स्वपस्यया ) उत्तम ज्ञान, अध्ययनाध्यापन, वेदारम्भ आदि संस्कार द्वारा ( मातरम् ) ज्ञानकुशल विद्यार्थी को ( पुनः सम् असृजत ) बार २ संयुक्त करो। ( वत्सेन ) मन से

( मातरं पुनः असृजत ) प्रमाता आत्मा को उत्तम वेग संयुक्त करो। ( वत्सेन मातरं पुनः सम् असृजत ) अन्तेवासी शिष्य से उपदेशकारी आचार्य को युक्त करो, ( वत्सेन मातरं ) वसने वाले जीव से सब जगत् के मापक, निर्माता परमेश्वर को (स्वपस्यया) उत्तम योग क्रिया द्वारा युक्त करो। और हे ( सौधन्वनासः ) उत्तम ज्ञानवान् पुरुषो ! आप लोग ( स्वपस्यया ) उत्तम कर्माचरण से ही ( जिव्री ) दीर्घजीवन से युक्त या जराजीर्ण ( पितरौ ) माता पिता दोनों को ( युवानौ ) युवा बलवान् ( अकृणोतन ) करो, अथवा ( स्वपस्यया युवानौ पितरौ जिव्री अकृणोतन ) उत्तम २ चरणों द्वारा ही जवान माता पिता को वृद्ध और दीर्घजीवन वाला कर। ( ३ ) युद्ध वीर पुरुष ( चर्मणः ) चाम से ( गाम् ) बाण फेंकने की तांत या धनुष् की डोरी बनावें। ( पुनः ) फिर ( मातरं ) शब्द करने वाली कसी डोरी को ( वत्सेन ) बाण से संयुक्त करें। ( सौधन्वनासः ) उत्तम धनुर्धर लोग उत्तम क्रियाकौशल से ( जिव्री ) जीवनयुक्त ( युवाना ) जवान हृष्ट पुष्ट हो ( पितरौ ) पालकों को सभाध्यक्ष सेनाध्यक्ष पद पर नियुक्त करें।

वाजेभिर्नो वाजसातावविड्ढ्यृभुमाँ इन्द्र चित्रमा दर्षि राधः।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥६॥३१॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! आचार्य ! तू ( ऋभुमान् ) विद्यावान् सत्यज्ञान से प्रकाशित विद्वानों का स्वामी होकर ( वाजसातौ ) बल और ज्ञान की प्राप्ति के निमित्त ( नः ) हमें ( वाजेभिः ) अपने ज्ञानों सहित ( आविड्ढि ) प्राप्त हो। और ( चित्रम् राधः ) संग्रह करने योग्य ज्ञान को (आ दर्षि) प्रदान कर। ( २ ) उसी प्रकार ( ऋभुमान् ) तेजस्वी पुरुषों से युक्त राजा सूर्य के समान होकर संग्राम के कार्य में ( वाजेभिः ) वीर्यवान् पुरुषों, वेगवान् अश्वों से हमें प्राप्त हो। अद्भुत संग्रह योग्य ऐश्वर्य प्रदान करे। ( तन्नो मित्रो० ) इत्यादि पूर्ववत्। इत्येकत्रिंशो वर्गः॥

## [ १११ ]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ ऋभवो देवता ॥ छन्दः—१—४ जगती । ५ त्रिष्टुप् ॥
पञ्चर्चं सूक्तम् ॥

**तक्षन्रथं सुवृतं विद्मनापसस्तक्षन्हरी इन्द्रवाहा वृषण्वसू ।
तक्षन्पितृभ्यामृभवो युवद्वयस्तक्षन्वत्साय मातरं सचाभुवम् ॥१॥**

भा०—( विद्मनापसः ) विज्ञान सहित क्रिया उत्पन्न करने में कुशल पुरुष ( सुवृतं रथं ) सुख से जाने वाले रथ को ( तक्षन् ) बनावें । वे ही ( वृषण्वसू ) उत्तम प्रबन्ध से युक्त अन्य कल पुर्जों को धारने वाले (इन्द्र-वाहा ) बिजुली को धारण करने वाले ( हरी ) रथ को वेग से दूर लेजाने में समर्थ दो यन्त्रों को भी ( तक्षन् ) बनावें । ( ऋभवः ) ज्ञानवान् पुरुष ( पितृभ्याम् ) अपने पालक माता पिताओं के सुख के लिये अपने (युवद् वयः तक्षन्) अपनी जवानी की उमर को उनकी सेवा योग्य बनावें। और ( ऋभवः ) ज्ञानवान् पुरुष ( वत्साय ) बच्चों के पालने के लिये ( मातरं ) माता को ( सचाभुवम् ) सदा साथ रहने में समर्थ और शक्ति से युक्त बनावें ( २ ) अथवा—( विद्मनापसः ) ज्ञानपूर्वक सोच समझ कर आचरण करने वाले बुद्धिमान् पुरुष ( रथं ) अपने रमण साधन रथ के समान देह को ( सुवृतं ) उत्तम व्यवहारों और आचरणों से युक्त, उत्तम चेष्टाओं के करने में चतुर, फुर्तीले रथ के समान उत्तम चाल चलन वाला बनावें। बाह्य ज्ञानेन्द्रिय और कर्मेन्द्रियों दोनों को बलवान् करें । जिस-से वे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवान् आत्मा को धारण करने में समर्थ और ( वृष-ण्वसू ) बलवान् सुखवर्षक प्राणों को धारण करने वाले हों। और (पितृभ्याम्) पालनकारी प्राण अपान के अभ्यास द्वारा (वयः युवत् तक्षन् ) अपने जीवन को दीर्घ जीवन वाला सदा जवान बनावें । ( वत्साय मातरं सचाभुवं तक्षन् ) बच्चे के लिये माता के समान मन को बलवान् करने के लिये

उस के प्रमाता आत्मा या उपदेष्टा गुरु आचार्य और परमेश्वर को सदा संग रहने वाला करें। परमेश्वर को सदा साथ का सहायक बनावें। (२) शिल्पी लोग उत्तम रथ बनावें। ऐश्वर्यवान् राजा आदि को वहन करने वाले (वृषण्वसू) वृषाण अर्थात् अण्डकोशों से युक्त बलवान् घोड़ों को युक्त करें। अपने मां बाप, राजा प्रजा, भूमि और भूपति दोनों के लिये अपनी जवानी को लगावें। प्रजारूप वत्स के लिये इस माता रूप गो को सदा संयुक्त करें। राजन् दुधुक्षसि यदि क्षितिधेनुमेनां तेनाद्यवत्समिव लोकमिमं पुषाण।

**आ नो॑ य॒ज्ञाय॑ तक्षत ऋभु॒मद्वयः॒ क्रत्वे॒ दक्षा॑य सुप्र॒जाव॑ती॒मिष॑म्।**
**यथा॒ क्षया॑म॒ सर्व॑वीरया वि॒शा तन्नः॒ शर्धा॑य धासथा॒ स्वि॑न्द्रि॒यम्॥२॥**

भा०—हे विद्वान् पुरुषो! आप लोग (नः) हमारे (वयः) जीवन को (यज्ञाय) उत्तम वैदिक यज्ञ या पूर्णायु रूप यज्ञ प्राप्त करने के लिये (ऋभुमत्) सत्य ज्ञान के प्रकाश से युक्त अथवा अति बलवान् प्राण से युक्त (आतक्षत) करो। और (क्रत्वे) उत्तम ज्ञान और (दक्षाय) बल की प्राप्ति के लिये (सुप्रजावतीम्) उत्तम सुखजनक प्रिय सन्तानों से युक्त (इषम्) अन्नादि समृद्धि को (आतक्षत) सब प्रकार से तैय्यार करो। (यथा) जिससे हम लोग (सर्ववीरया विशा) सब प्रकार के शत्रुओं को कंपा देने वाले वीर पुरुषों से युक्त प्रजा से युक्त होकर (सुक्षयाम) सुख से रहें (नः) हमारा (तत् इन्द्रियम्) वह बल और ऐश्वर्य (शर्धाय) शत्रुनाशक बल की वृद्धि के लिये (सुधासथ) अच्छी प्रकार सुख से धारण करो। अथवा (सुप्रजावतीम् इषम्) हम उत्तम प्रजा से युक्त कामना को ज्ञान और बल की वृद्धि के लिये करें। और (सर्ववीरया विशा) समस्त पुत्रों सहित स्त्री के साथ सुख से रहें। (इन्द्रियं शर्धाय सु धासथ) इन्द्रियों को बल वृद्धि के लिये अच्छी प्रकार दमन करें।

आ त॑क्षत सा॒तिम॒स्मभ्य॑मृभवः सा॒तिं रथा॑य सा॒तिमर्व॑ते नरः ।
सा॒तिं नो॒ जैत्रीं॒ सं म॑हेत वि॒श्वहा॑ जा॒मिमजा॑मिं॒ पृत॑नासु स॒क्षणि॑म् ॥३॥

भा०—हे ( ऋभवः ) विद्वान् अधिक धनाढ्य पुरुषो ! आप लोग (अस्मभ्यम्) हमारे लिये (सातिम्) उत्तम भोग योग्य, सुखजनक नाना पदार्थ भली प्रकार (आतक्षत) बनाओ । हे (नरः) नायक पुरुषो आप लोग (रथाय) रथ प्राप्त करने के लिये और (अर्वते) अश्व प्राप्त करने के लिये (सातिं आतक्षत) भोग योग्य धन पैदा करो । (जामिम्) बन्धु और (अजामिम्) उससे भिन्न शत्रु को भी ( पृतनासु ) संग्रामों में ( सक्षणिम् ) जीत लेने वाले ( जैत्रीं ) विजय देने वाले (नः सातिं) हमारे धन सामग्री को (विश्वहा) सब दिन सब कोई ( सं महेत ) आदर करे ।

ऋ॒भु॒क्षण॒मिन्द्र॒मा हु॑व ऊ॒तय॑ ऋ॒भून्वाजा॑न्म॒रुतः॒ सोम॑पीतये ।
उ॒भा मि॒त्रावरु॑णा नू॒नम॒श्विना॒ ते नो॑ हिन्वन्तु सा॒तये॑ धि॒ये जि॒षे ॥४॥

भा०—( ऊतये ) ज्ञान और रक्षा के लिये मैं ( ऋभुक्षणम् ) सत्य ज्ञान से प्रकाशमान विद्वान् पुरुषों के बसाने वाले उनके आश्रय, अति तेजस्वी पद पर विराजमान् आचार्य और राजा को ( इन्द्रम् ) 'इन्द्र' (आहुवे) स्वीकार करता और कहता हूं । और ( सोमपीतये ) ऐश्वर्य के प्राप्त करने के लिये (ऋभून्) अति बल से और सत्य ज्ञान से प्रकाशित शक्तिशाली और विद्वान् पुरुषों को ( वाजान् ) वेगवान् , बलवान्, ऐश्वर्यवान् और ( मरुतः ) वायु के समान बलवान् विद्वान रूप से ( आहुवे ) प्राप्त करूं । ( उभा ) दोनों ( मित्रा वरुणा ) स्नेही मित्र और सर्वश्रेष्ठ ( अश्विना ) अश्वारोही राजा और सेनापति, देह में प्राण और अपान और गृह में दोनों स्त्री पुरुष ( ते ) वे सब ( नः ) हम लोगों को ( सातये ) सुखों को प्राप्त करने ( धिये ) ज्ञान और कर्मों के सम्पादन करने और ( जिषे ) शत्रुओं का विजय करने के लिये ( नः ) हमें ( हिन्वन्तु ) प्रेरित करें ।

ऋभुर्भराय स शिशातु सातिं समर्यजिद्वाजो अस्माँ अविष्टु।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः ॥५॥३२॥

भा०—( ऋभुः ) बड़े भारी धन, बल और सत्य ज्ञान से प्रकाशित होने वाला तेजस्वी पुरुष ( भराय ) पोषण करने, यज्ञ करने और संग्राम करने के लिये ( सं शिशातु ) शत्रुओं का नाश करे और ( अस्मान् संशिशातु ) हमें खूब तीक्ष्ण करे। और ( समर्यजित् ) संग्रामों का विजय करने हारा पुरुष ( वाजः ) बलवान्, वेगवान् होकर ( अस्मान् ) हमारी ( अविष्टु ) रक्षा करे। ( तन्नः मित्रः ) इति पूर्ववत् ।इति द्वात्रिंशो वर्गः॥

## [ ११२ ]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ आदिमे मन्त्रे प्रथमपादस्य द्यावापृथिव्यौ द्वितीयस्य अग्निः शिष्टस्य सूक्तस्याश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, २, ६, ७, १३, १५, १७, १८, २०, २१, २२ निचृज्जगती। ४, ८, ९, ११, १२, १४, १६, २३ जगती। १९ विराड् जगती। ३, ५, २४ विराट् त्रिष्टुप्। १० भुरिक् त्रिष्टुप्। २५ त्रिष्टुप् च ॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम् ॥

ईळे द्यावापृथिवी पूर्वचित्तयेऽग्निं घर्मं सुरुचं यामन्निष्टये।
याभिर्भरे कारमंशाय जिन्वथस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥१॥

भा०—हे ( द्यावापृथिवी ) भूमि और सूर्य के समान राजा और प्रजावर्ग दोनों का ( ईळे ) वर्णन करता हूं। ( पूर्वचित्तये इष्टये घर्मं सुरुचं अग्निम् ) प्रथम चयन की हुई इष्टि अर्थात् याग साधन के लिये जिस प्रकार प्रदीप्त कान्तिमान अग्नि को यजमान और उस की पत्नी दोनों प्राप्त करते हैं उसी प्रकार ( द्यावापृथिवी ) सूर्य और पृथिवी के समान प्रजावर्ग दोनों ( पूर्वचित्तये ) पूर्व के विद्वानों और विजयशील राजाओं द्वारा सञ्चित ज्ञान और ऐश्वर्य के ( इष्टये ) प्राप्त करने के लिये ( यामन् ) राज्य

तन्त्र के व्यवस्थापन के कार्य और शत्रु पर प्रयाण करने के कार्य में (यामन् अग्निम् ) अन्धकार मय मार्ग में दीपक के समान ( पूर्वचित्तये ) पहलेही से समस्त बातों के जान लेने के लिये ( घर्मम् ) अति तेजस्वी ( सुरुचं ) उत्तम, प्रजा के अच्छा लगने वाले कान्तिमान्, मनोहर ( अग्निम् ) अग्रणी नायक पुरुष को प्राप्त करते हैं। हे ( अश्विना ) हे राज प्रजावर्गो ! हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( याभिः ऊतिभिः ) जिन रक्षाओं के निमित्त या जिन-रक्षा साधनों से युक्त होकर ( भरे ) संग्राम में ( अंशाय ) अपने भाग को प्राप्त करने के लिये ( कारम् ) कार्यकुशल पुरुष को (जिन्वथः) सुप्रसन्न करते और उसकी शरण जाते हो ( ताभिः ऊतिभिः ) उन रक्षा आदि साधनों से ही आप दोनों ( सु आगतम् ) अच्छी प्रकार आओ ।

**युवोर्दानाय सुभरा असश्चतो रथमा तस्थुर्वचसं न मन्तवे ।**
**याभिर्धियोऽवथः कर्मन्निष्टये ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२॥**

भा०—( सुभराः ) उत्तम रीति से ज्ञान को धारण करने हारे (असश्चतः ) विषय भोगादि से आसक्त न होने वाले त्यागी पुरुष ( मन्तवे ) ज्ञान प्राप्त करने के लिये ( वचसं न ) जिस प्रकार ज्ञान के उत्तम प्रवक्ता के पास ( आतस्थुः ) उपस्थित होते हैं उसी प्रकार ( सुभराः ) उत्तम रीति से युद्ध करने वाले या उत्तम ऐश्वर्यों को धारण करने वाले (असश्चतः) कहीं भी आश्रय न पाते हुए प्रजाजन ( दानाय ) शत्रुओं के नाश करने और ऐश्वर्य के दान लेने के लिये ( युवोः ) तुम दोनों के ( रथम् ) विजयशील रथ-बल पर अथवा ( युवोः रथम् ) आप दोनों के स्थायी राज्य-शासन पर ( आतस्थुः ) आश्रय करते, स्थिरता प्राप्त करते हैं। उस समय हे ( अश्विना ) राष्ट्र के भोक्ता दो मुख्य अधिकारियो, राजा अमात्य, राजा रानी, राजा सेनापति आदि युगल पुरुषो ! आप दोनों ( याभिः ) जिन रक्षा आदि उपायों से ( इष्टये कर्मन् ) परस्पर की संगति के कार्य में ( धियः अवथः ) धारण करने योग्य प्रजाओं की रक्षा करते हो ( ताभिः

ऊतिभिः ) उनही उपायों से ( सु आ गतम् उ ) आप दोनों हमें सुख-पूर्वक प्रसन्नता से आओ ।

**युवं तासां दिव्यस्य प्रशासने विशां क्षयथो अमृतस्य मज्मना ।**
**याभिर्धेनुमस्वं पिन्वथो नरा ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥३॥**

भा०—( दिव्यस्य अमृतस्य प्रशासने मज्मना विशां क्षयथः ) उस उत्तम तेजस्वी, अमर आत्मा के उत्तम शासन में जिस प्रकार प्रजाओं—देहों में प्राण और अपान दोनों रहते हैं ( अस्वं धेनुं पिन्वथः ) अन्यों से न प्रेरित होने वाली, अदम्य या नित्य, वाणी को बलवान् बनाते हैं उसी प्रकार हे ( अश्विना ) स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों भी ( दिव्यस्य ) ज्ञानप्रकाश में कुशल ( अमृतस्य ) अमर अविनाशी परमेश्वर के ( प्रशासने ) उत्तम शासन में ( मज्मना ) बलपूर्वक ( विशां क्षयथः ) प्रजाओं के बीच में निवास करो । इसी प्रकार हे मुख्य राजा रानी, राजा अमात्य, राजा सेना-पति आदि युगलो! आप दोनों भी ( दिव्यस्य ) राजसभा में कुशल ( अमृतस्य ) दीर्घजीवी, अमर यशस्वी सब के उत्तम शासन या आदेश के भीतर ( तासां विशां ) उन प्रजाओं के हित के लिये ( क्षयथः ) उन के बीच में निवास करो । आप दोनों ( अस्वं ) अयोग्य पुरुषों से शासन न होने योग्य, अथवा पूर्व कुछ भी पुत्र रत्नादि न उत्पन्न करने हारा । धारण करने योग्य, बाद में गर्भ धारण करने में समर्थ, कुमारी कन्या या गौ के समान अन्नादि रत्नों को दान कराने वाली भूमि को ( याभिः पिन्वथः ) नाना ऐश्वर्यों से सेचन करते हो, उस को परिपुष्ट करते हो ( ताभिः ऊतिभिः ) उन रक्षादि उपायों से आप ( आसुतम् ) अच्छी प्रकार प्राप्त होवो । 'अस्वं धेनुम्'—इस असू धेनु का विवरण देखो अथर्ववेद में वशा सूक्त ।

**याभिः परिज्मा तनयस्य मज्मना द्विमाता तूर्षु तरणिर्विभूषति ।**
**याभिस्त्रिमन्तुरभवद्विचक्षणस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥४॥**

भा०—( परिज्मा ) सर्वत्र सब पदार्थों को अपने वेग से उथल पुथल और प्रेरित करने में समर्थ वायु ( तनयस्य ) अपने से उत्पन्न अग्नि के ( मज्मना ) बल से ( द्विमाता ) पृथिवी और आकाश दोनों को धारण करने वाला और ( तूर्षु ) अति वेगवान् पदार्थों में ( तरणिः ) सब से अधिक शीघ्रगामी ( विभूषति ) होकर रहता है। उसी प्रकार ( परिज्मा ) सब तरफ़ आक्रमण करने हारा दिग्विजयी पुरुष अपने ( तनयस्य ) राज्य-प्रसारक सैन्य-बल के ( मज्मना ) बल से ( द्विमाता ) राज-वर्ग और प्रजा-वर्ग दोनों पर शासनकारी या ( द्विमाता ) माता पिता दोनों को आदर करने वाला और ( तूर्षु ) हिंसाकारी शत्रुओं पर (तरणिः) वेग से आक्रमण करने वाला या सूर्य के समान वेगवान् तेजस्वी होकर (याभिः) जिन नाना रक्षादि व्यवहारों से ( विभूषति ) विशेष शोभा को धारण करे। और ( याभिः ) जिन उत्तम उपायों से ( त्रिमन्तुः सन् ) कर्म, उपासना और विज्ञान इन तीनों की विद्या अर्थात् त्रैविद्या, वेदों को जानने वाला अथवा अरि, मित्र और उदासीन तीनों को अपने वश करने वाला, ( विचक्षणः ) विलक्षण, अतिचतुर, कुशल, विद्वान् ( अभवत् ) होता है अथवा जिनसे (त्रिमन्तुः) माता, पिता और गुरु का मान्यकर्त्ता पुरुष विद्वान् होजाता है। ( ताभिः ऊतिभिः ) उनहीं उपायों सहित हे ( अश्विनौ ) अश्विगणों ( आ-गतम् ) आओ।

याभी॒ रे॒भं निवृ॑तं सि॒तम॒द्भ्य उद्व॑न्दन॒मैर॑यतं॒ स्व॑र्दृ॒शे। याभि॒ः कण्वं॒ प्र सिषा॑सन्त॒माव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्वि॒ना ग॑तम् ॥५॥३३॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् आचार्य और शिक्षक पुरुषो! माता, पिता और योग्य स्त्री पुरुषो! आप दोनों ( याभिः ऊतिभिः ) जिन रक्षा आदि उपायों और ज्ञान-वाणियों से ( रेभम् ) स्तुतिशील, ( निवृतम् ) सब प्रकार के अपनाये हुए, विनीत एवं उपवीत अथवा ( निवृतम् ) सब कष्टों, अज्ञानों या दुःखों से घिरे हुए ( सितम् ) शुद्धाचारी, ( वन्दनम् )

अभिवादनशील पुत्र और शिष्य को ( स्वःदृशे ) परम ज्ञानमय परमेश्वर या परम सुख का दर्शन करने के लिये ( उत् ऐरयतम् ) उत्तम पद की ओर प्रेरणा करते हैं, उसे उत्पन्न करते हैं और ( याभिः ) जिन ज्ञान, रक्षा आदि उपायों से ( सिषासन्तं कण्वं ) ज्ञानवान् और ऐश्वर्य के इच्छुक बुद्धिमान् पुरुष को ( प्र आवतम् ) और आगे बढ़ाते हो, ( ताभिः ऊतिभिः सु आगतम् ) उन उपायों से हमें प्राप्त होवो। ( २ ) परमेश्वरपक्ष में— प्राण और अपान दोनों ( रेभं ) स्तुतिकर्त्ता, ( निवृतम् ) वासनाओं से या अज्ञान से घिरे, ( सितम् ) कर्म बंधनों में बंधे ( वन्दनम् ) स्तुतिकारी उपासक आत्मा को ( स्वः दृशे उत् ऐरयतम् ) परमात्मा के दर्शन के लिये ऊपर उठाते हैं। ( ३ ) राजा और सेनापति ( रेभं ) प्रार्थना करने वाले, ( सितम् ) शत्रुओं के कारागार में बंधे, ( वन्दनम् ) वन्दी बने हुए पुरुष को उबारते हैं। इति त्रयस्त्रिंशो वर्गः॥

**याभि॒रन्त॑कं॒ जस॑मान॒मार॑णे भु॒ज्युं याभि॑रव्य॒थिभि॑र्जिजि॒न्वथुः॑।**
**याभिः॑ क॒र्कन्धुं॑ व॒य्यं॑ च॒ जिन्व॑थ॒स्ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना ग॑तम्॥६॥**

भा०—( आरणे ) प्रत्यक्ष आमने सामने शत्रु सेना के आजाने पर होने वाले युद्ध में ( जसमानं ) शत्रुओं पर आघात करने वाले ( अन्तकम् ) प्रजा के दुःखों और शत्रुओं का अन्त कर देने वाले पुरुष को ( याभिः ) जिन उपायों से और ( भुज्युम् ) प्रजा के पालक, बड़े ऐश्वर्य के भोक्ता सम्पन्न पुरुष को ( याभिः अव्यथिभिः ) जिन पीड़ा या कष्ट से बचाने वाले उपायों से ( जिजिन्वथुः ) प्रसन्न और पुष्ट, सन्तुष्ट करते हो और ( याभिः ) जिन उपायों से ( कर्कन्धुम् ) कर्म कर शिल्पियों को भृति आदि द्वारा बांधने वाले, बड़े एंजिनीयर और ( वय्यं च ) वस्त्रादि बनाने वाले, शिल्पज्ञ, उत्तम कारीगरों को ( जिन्वथः ) सन्तुष्ट करते हो ( ताभिः ऊतिभिः अश्विना आगतम् ) हे पूर्वोक्त राजप्रजावर्गो ! आप दोनों उन उपायों से एक दूसरे के उपकारक होवो।

याभिः शुचन्तिं धनसां सुषंसदं तप्तं घर्ममोम्यावन्तमत्रये ।
याभिः पृश्निगुं पुरुकुत्समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥७॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! राजा और विद्वान् जनो ! (याभिः) जिन उपायों से ( शुचन्तिम् ) प्रजाजनों के हृदयों को और नगरों के निवास भूमि को शुद्ध पवित्र करने और प्रकाश से जगमगा देने वाले जनों को ( धनसां ) ऐश्वर्यों के दान देने वाले ( सुसंसदम् ) उत्तम सभा के अध्यक्ष को, ( तप्तं ) सन्तप्त पुरुष को और ( घर्मम् ) तेजस्वी पुरुष को ( अत्रये ) इस राष्ट्र में बसने वाले जन समूह के हित के लिये ( अवतम् ) सब प्रकार से सुरक्षित करते हो । और (याभिः) जिन उपायों से (पृश्निगुम्) नाना प्रकार की गौओं के पालक या अन्तरिक्ष में जाने वाले वैमानिक वर्ग और ( पुरुकुत्सम् ) नाना शस्त्रास्त्रों के स्वामी, शस्त्रागार के रक्षक वर्गों की ( आ अवतम् ) रक्षा करते हो ( ताभिः आगतम् ) उन सब उपायों सहित तुम दोनों हमें प्राप्त होवो ।

याभिः शचीभिर्वृषणा परावृजं प्रान्धं श्रोणं चक्षस एतवे कृथः ।
याभिर्वर्तिकां ग्रसितामर्मुञ्चतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥८॥

भा०—( याभिः ) जिन रक्षा आदि उपायों से, ( शचीभिः ) शक्ति शाली सेना और वेद-वाणियों और उत्तम कर्मों से हे ( वृषणा ) समस्त सुखों के वर्षा करने हारे सभा-सेनाध्यक्षो ! आप दोनों ( परावृजम् ) धर्म-मार्ग से पराङ्मुख जाने वाले ( अन्धम् ) चक्षुहीन, अन्धे, अज्ञानी पुरुष को ( चक्षसे ) सम्यग् दर्शन करने के योग्य ( प्र कृथः ) अच्छी प्रकार बना देते हो और ( याभिः ) जिन ( शचीभिः ) उत्तम कर्मों से ( श्रोणं ) पङ्गु, लगड़े को ( एतवे ) चलने में समर्थ ( प्र कृथः ) अच्छी प्रकार कर देते हो । और जिन शक्तियों से आप दोनों ( ग्रसिताम् ) ठगों की शिकार बनी ( वर्त्तिकाम् ) बटेरी के समान अति दीन प्रजा को

छुड़ाते हो (ताभिः ) उन २ उपायों से युक्त आप दोनों ( आ गतम् ) हमें भी प्राप्त होइये ।

याभिः सिन्धुं मधुमन्तमसश्चतं वसिष्ठं याभिरजरावजिन्वतम् ।
याभिः कुत्सं श्रुतर्यं नर्यमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥६॥

भा०—( याभिः ) जिन विज्ञान, दीप्ति आदि उपायों और प्रयोगों से ( मधुमन्तम् ) अन्न और जल से बने ( सिन्धुम् ) गतिशील प्राण का (असश्चतं) स्वयं ज्ञान करते हो और अन्यों को उसका अनुभव कराते हो। अथवा, जिन उपायों से (सिन्धुम्)समुद्र के समान आनन्द-रसों के सागर महान् आत्मा को ( मधुमन्तम् ) मधुर रस से पूर्ण रूप में जान लेते हो, और आप दोनों ( अजरौ ) कभी स्वयं जीर्ण न होकर प्राण अपान रूप से ( याभिः ) जिन उपायों से ( वसिष्ठं ) सब प्राणों में मुख्य रूप से बसने वाले आत्मा को ( अजिन्वतम् ) बल प्रदान करते हो। और ( याभिः ) जिन उपायों से आप दोनों ( कुत्सं ) बलशाली ( श्रुत्-अर्यम् ) विज्ञान शास्त्रों के सुनने वाले, अतिविद्वान् अथवा गुरुमुख से श्रवण करने योग्य वेदोपदेश के स्वामी (नर्यं) सब लोगों के हितकारी पुरुष के समान (कुत्सं) वाणी के स्वामी, ( श्रुतर्यं ) श्रोत्र के स्वामी और ( नर्यं ) शरीर के नायक अन्य प्राणों के स्वामी आत्मा को ( आ अवतं ) सब प्रकार से रक्षा करते हो ( ताभिः ) उन उपायों से ( अश्विना ) हे प्राण और अपान ! हमें भी ( सु आगतम् ) आओ, हमें ज्ञान प्राप्त कराओ । (२) विद्वानों, शिल्पियों के पक्ष में—जिन विज्ञान के उपायों से ( सिन्धुं मधुमन्तम् ) समुद्र को भी मधुर सुखदायी बनाते हो, या जिन उपायों से जल से भरे समुद्र के पार जाते हो, ( याभिः ) जिन उपायों से सबसे श्रेष्ठ राजा को प्राप्त होते हो, जिन उपायों से बलवान्, वेगवान् नरों के नायक पुरुष को प्राप्त होते हो, उन्ही सब उपायों, ज्ञानों सहित हमें प्राप्त होवो ।

याभिर्विश्पलां धनसामथर्व्यं सहस्रमीळ्ह आजावजिन्वतम् ।
याभिर्वशमश्व्यं प्रेणिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १०।३४

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् शिल्पी जनो ! ( याभिः ) जिन विज्ञान के उपायों से ( धनसाम् ) ऐश्वर्यों को उत्पन्न करने वाली ( अथर्व्यम् ) कभी न मारी जाने वाली, दृढ़, ( विश्पलाम् ) प्रजाओं के पालक को अपने ऊपर प्रभु रूप में स्वीकार करने वाली विशाल सेना या सेनापति को ( सहस्रमीढ़े ) सहस्रों सुखों और ऐश्वर्यों के प्राप्त कराने वाले (आजौ) संग्राम में (अजिन्वतम्) तृप्त करते हो अर्थात् सेनाओं को शस्त्रास्त्र, रथ आदि आवश्यक उपकरणों से सुसज्जित करते हो और ( याभिः ) जिन उपायों और क्रियाओं सहित ( वशम् ) राष्ट्र पर वश करने वाले (अश्व्यं) अश्व सेनाओं के स्वामी, ( प्रेणिम् ) सबके आज्ञापक सेनापति को ( आ अवतम् ) प्राप्त होते हो। ( ताभिः ) उन सहित ही हमें भी प्राप्त होवो। अध्यात्म में—प्राण, अपान जिन सामर्थ्यों से ( विश्पलाम् ) अन्तः-प्रविष्ट प्राणों के पालक, ( धनसाम् ) ऐश्वर्यों के भोक्ता ( अथर्व्यम् ) अविनाशी आत्मा को तृप्त, सुखी करते हैं, वे दोनों जिन बलों से सबके वशी, ( अश्व्यम् ) प्राण के पति ( प्रेणिम् ) सबके प्रेरक आत्मा को प्राप्त हों उन सामर्थ्यों से हमें भी प्राप्त हों। इति चतुस्त्रिंशो वर्गः ॥

याभिः सुदानू औशिजाय वणिजे दीर्घश्रवसे मधु कोशो अक्षरत् ।
कक्षीवन्तं स्तोतारं याभिरावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ११

भा०—हे ( सुदानू ) उत्तम रीति से देने हारे विद्वान् शिल्पियो ! ( याभिः ) जिन उपायों और साधनों से ( औशिजाय ) विद्वान् पुरुष के सन्तानों के लिये, ( वणिजे ) व्यवहारशील वैश्य प्रजावर्ग के लिये और ( दीर्घ-श्रवसे ) दीर्घ काल तक गुरुओं से उपदेश श्रवण करने वाले अथवा बहुत अधिक ज्ञान, धनादि के स्वामी के हित के लिये ( कोशः ) मेघ के समान राजा और विद्वान् गुरु का धन और ज्ञान का अक्षय कोश ( मधु )

मधुर जल के समान ज्ञान और सुख का ( क्षरति ) वर्षण करता है। और ( याभिः ) जिन साधनों सहित आप दोनों ( कक्षीवन्तं स्तोतारं ) सर्व सहायकों से युक्त विद्वान् पुरुष को प्राप्त हैं उनही सहित हमें भी प्राप्त होइये।

याभी रसां क्षोदसोद्नः पिपिन्वथुरनश्वं याभी रथमावतं जिषे।
याभिस्त्रिशोक उस्रिया उदाजत ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १२

भा०—( याभिः ) जिन ( ऊतिभिः ) विज्ञान युक्त साधनों से ( रसाम् ) पृथ्वी को तथा नदी को ( उद्नः क्षोदसा ) जल के प्रवाह से ( पिपिन्वथुः ) आप दोनों मेघों के समान पूर्ण कर देते हो और (याभिः) जिन विज्ञान साधनों से ( अनश्वम् ) विना घोड़े के ( रथम् ) रथ को ( जिषे ) विजय करने के लिये ( आ अवतम् ) यन्त्रादि साधनों से अच्छी प्रकार चला देते हो ( त्रिशोकः ) तीनों भुवनों में तेजस्वी गुण, कर्म, स्वभाव तीनों में उज्वल पुरुष, अथवा अग्नि, विद्युत्, सूर्य तीनों तेजों को जानने हारे वैज्ञानिक, अग्नि, जल, विद्युत् तीनों के तत्वज्ञ पुरुष ( याभिः ) जिन उपायों से ( उस्रियाः ) ऊपर जाने वाली जलधाराओं, किरणों और विद्युत् की धाराओं को ( ऊद् 'आजतम् ) उठाने में समर्थ होते हैं ( ताभिः नः सुआगतम् ) उन सब साधनों सहित हमें प्राप्त होवो।

याभिः सूर्यं परियाथः परावति मन्धातारं क्षैत्रपत्येष्वावतम्।
याभिर्विप्रं प्र भरद्वाजमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम्॥१३॥

भा०—( याभिः ) जिन साधनों और उपायों से ( मंधातारम् ) ज्ञान को धारण करने वाले, (सूर्यम्) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को (परियाथः ) प्राप्त होते हो, या जिन उपायों से ( मंधातारम् = इमं-धातारम् ) इस समस्त विश्व के धारक ( सूर्यम् ) सूर्य को सब प्रकार से ज्ञान करते हो। और जिन उपायों से ( क्षैत्रपत्येषु ) खेतों, भूमियों अन्नों, जीवों के उत्पादक स्थावर जंगम की उत्पादकभूमियों का ज्ञान करते हो और (याभिः)

जिन उपायों से (भरद्-वाजम्) अन्न, ऐश्वर्य और संग्राम तीनों को प्राप्त होने वाले कृषिज्ञ, वणिक् और योद्धा पुरुष को (आ अवतम्) प्राप्त होते, उसकी रक्षा करते हो (ताभिः०) उन सब साधनों से आप दोनों मुख्य और गौण शिल्पी आदि विद्वान् जन हमें भली प्रकार प्राप्त हों।

याभिर्म॒हाम॑ति॒थिग्वं॑ कशो॒जुवं॒ दिवो॑दासं शंबर॒हत्य॒ आव॑तम्।
याभिः॑ पू॒र्भिद्ये॑ त्र॒सद॑स्यु॒माव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना ग॑तम् ॥१४॥

भा०—(याभिः ऊतिभिः) जिन रक्षा साधनों और उपायों से आप दोनों (शम्बरहत्ये) मेघ को आघात कर छिन्न भिन्न कर देने वाले सूर्य और वायु के समान (शम्बर-हत्ये) प्रजा के शान्ति सुख के नाशक दुष्ट पुरुषों के नाश करने के कार्य में (महाम्) बड़े भारी (अतिथिग्वम्) अतिथि जनों के आश्रय और उनके प्रेम और सत्कार से प्राप्त होने वाले, (कशोजुवं) उनको अर्घपाद्य, आचमनीय आदि जलों द्वारा तृप्त करने वाले और प्रजा को भी कूप, नहर आदि द्वारा वर्षा धाराओं से मेघों के समान तृप्त करने वाले (दिवोदासं) सूर्य के समान तेज, ज्ञान प्रकाश के देने और धारण करने वाले पुरुष को (आ अवतम्) प्राप्त होते हो। (पूर्भिद्ये) शत्रुओं के नगरों को तोड़ने आदि युद्ध कार्य में (याभिः) जिन साधनों से (त्रसद्-दस्युम्) दुष्टों के हराने वाले वीर पुरुषों को (आ अवतं) प्राप्त होते हो (ताभिः) इन ही साधनों सहित हमें भी प्राप्त होवो।

याभि॑र्व॒म्रं वि॑पिपा॒नमु॑पस्तु॒तं क॒लिं याभि॑र्वि॒त्तजा॑निं दुव॒स्यथः॑।
याभि॒र्व्य॑श्वमु॒त पृथि॒माव॑तं॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना ग॑तम् १५।३५

भा०—(याभिः ऊतिभिः) जिन साधनों और साधनाओं से (वम्रं) वैद्यजन वमन करने वाले और (विपिपानं) विविध ओषधादि रसों के पालक पुरुष की रक्षा करते हैं उसी प्रकार (उपस्तुतम्) उत्तम गुणों से युक्त प्रशंसित (वम्रं विपिमानं) वमन अर्थात् प्राप्त ज्ञान को अन्यों के प्रति उपदेश करने वाले गुरु और विविध विद्याओं के ज्ञान-रस को पान करने वाले

शिष्य की रक्षा करते और उनको प्राप्त होते हो और ( याभिः ) जिन साधनों से ( कलिं ) ज्ञानवान्, ( वित्तजानिम् ) नव वधू को प्राप्त करने वाले पुरुष को अथवा—( कलिं ) धन-राशियों को गिनने में कुशल ( वित्तजानिम् ) धन को अपनी स्त्री के समान पालने वाले धनाढ्य पुरुष की रक्षा करते हो ( उत ) और ( याभिः ) जिन उपायों से और ( व्यश्वम् ) अश्व के मर जाने पर केवल रथ वाले, असहाय पुरुष और ( व्यश्वं ) विविध अश्वों और अश्वारोही जनों के स्वामी और ( पृथिम् ) अति विस्तृत राष्ट्र के स्वामी को ( दुवस्यथः ) सेवा, परिचर्या करते हो। ( ताभिः० ) उन सब साधनों से हमें भी प्राप्त होवो। इति पञ्चत्रिंशो वर्गः॥

याभि॒र्नरा श॒यवे॒ याभि॒रत्र॑ये॒ याभिः॑ पु॒रा मन॑वे गा॒तुमी॒षथुः॑ ।
याभिः॒ शारी॒राज॑तं॒ स्यूम॑रश्मये॒ ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना ग॑तम् १६

भा०—( याभिः ) जिन ज्ञान-साधनों और रक्षा के उपायों सहित ( नरा ) नायक पुरुषो ! आप दोनों ( शयवे ) सुख से सोते हुए प्रजाजन और ( शयवे ) सबको शान्तिदायक सुख से शयन कराने वाले राजवर्ग को ( अत्रये ) विविध दुःखों से रहित और इस राष्ट्र में शासक रूप से विद्यमान, ( मनवे ) मननशील पुरुष और प्रजापति राजा को ( गातुम् ) जाने के मार्ग, विज्ञान, भूमि आदि ( ईषथुः ) प्राप्त कराते हो। ( याभिः ) जिन उपायों सहित (शारीः) बाणों की पंक्तियों और शरधारी या शत्रुहन्ता सेनाओं को (स्यूमरश्मये) किरणों से ओत प्रोत, सूर्य के समान तेजस्वी और प्रजाओं के शासन मर्यादाओं को बांधने वाले शासक पुरुष की रक्षा और राष्ट्र-हित के लिये ( आ अवतम् ) शत्रुओं की तरफ़ चलाते हो, उन साधनों सहित हमें भी प्राप्त होवो।

याभिः॒ पठ॑र्वा॒ जठ॑रस्य म॒ज्मना॒ग्निर्नादी॑देच्चि॒त इ॒द्धो अ॒ज्मन्ना ।
याभिः॒ शर्या॑त॒मव॑थो महाध॒ने ताभि॑रू॒ षु ऊ॒तिभि॑रश्विना ग॑तम् ।१७।

भा०—(याभिः) जिन साधनों और रक्षा के उपायों सहित (जठरस्य)

भुक्त पदार्थों को अपने भीतर धारण कर लेने वाले पेट की (अग्निः) सब कुछ पचा लेने वाले आग के समान सब भुक्त अर्थात् अधीन देशों को (मज्मना) अपने महान् बल से ( आदीदेत् ) चमकाता है और जिन साधनों से युक्त होकर ( चितः इद्धः अग्निः न ) सञ्चित काष्ठों में लगे और भड़के हुए चिताग्नि के समान जलते हुए ( अज्मन् ) संग्राम में वीर भटों को अपने तेज से भस्म करने वाला, ( पठर्वा ) पठनशील विद्यार्थियों को प्राप्त करने वाले आचार्य और ( पठर्वा ) वेग से जाने वाले अश्वों का स्वामी सेनापति ( आ ) आगे बढ़ता है, और ( याभिः ) जिन साधनों से युक्त होकर ( महाधने ) संग्राम में ( शर्यातम् ) हिंसक पुरुषों पर चढ़ाई करने वाले शरों और शास्त्रास्त्रों सहित आक्रमण करने वाले सेनापति की ( अवथः ) रक्षा करते हो ( ताभिः० ) उन सहित होकर तुम दोनों नायक पुरुष हमें भी प्राप्त होवो। पठर्वा—पतद् अर्वा। पृषोदरादित्वात् साधुः। थत्वंछान्दसम्। पठतो ऋच्छति वा।

**याभिरङ्गिरो मनसा निरण्यथोऽग्रं गच्छथो विवरे गोअर्णसः।**
**याभिर्मनुं शूरमिषा समावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १८**

भा०—हे ( अंगिरः ) विद्वन्! ( मनसा ) ज्ञानपूर्वक तू अन्यों को ज्ञान करा। हे ( अश्विना ) सेनाध्यक्ष और सैनिक जनो! आप दोनों ( याभिः ) जिन उपायों और रक्षा-साधनों से ( निरण्यथः ) खूब युद्ध करने में समर्थ होते हो और जिन उपायों से आप दोनों (गो-अर्णसः विवरे) सूर्य की किरणों के प्रकाश और जल को प्रकट करने में सूर्य और विद्युत् के समान तथा ( गो-अर्णसः ) ज्ञान वाणियों को विशद ज्ञान करने कराने के लिये गुरु शिष्य के समान पृथिवी के ऐश्वर्य को विविध प्रकार से प्राप्त करने के लिये ( अग्रं गच्छथः ) मुख्य पद पर या संग्राम भूमि में आगे बढ़ते हो। ( याभिः ) जिन साधनों से ( मनुम् ) मननशील या शत्रुओं के रोकने और थामने में समर्थ, मुख्य युद्ध विद्या के ज्ञाता, ( शूरम् ) शूरवीर

सेनापति को ( इषा ) प्रेरने योग्य बाण आदि तथा सेना आदि बल से ( सम् आ अवतम् ) अच्छी प्रकार रक्षा करते हो (ताभिः) उन (ऊतिभिः) रक्षा-साधनों सहित ( आ गतम् ) हमें प्राप्त होवो ।

याभिः पत्नीर्विमदाय न्यूहथुरा घ वा याभिररुणीरशिक्षतम् ।
याभिः सुदास ऊहथुः सुदेव्य१न्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् १९

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग ( याभिः ) जिन ( ऊतिभिः ) उत्तम ज्ञानपूर्वक किये रक्षा-साधनों से ( वि-मदाय ) विविध प्रकार के आनन्द प्राप्ति के लिये ( पत्नीः ) पतियों के साथ यज्ञ द्वारा संयोग करने वाली पत्नी जनों को ( नि-ऊहथुः ) विवाहित करते या गृहस्थ में प्रवेश कराते हो और ( याभिः ) जिन उपायों से ( अरुणीः ) तेजस्विनी, ब्रह्मचारिणी कन्याओं को ( अशिक्षतम् ) शिक्षा प्रदान करते हो । और ( याभिः ) जिन उपायों से ( सुदासे ) उत्तम दानशील पुरुष को ( सुदेव्यम् ) उत्तम देने योग्य, ज्ञान और द्रव्य ( ऊहथुः ) प्राप्त कराते हो (ताभिः) उन उपायों सहित आप दोनों हमें (आ गतम् ) प्राप्त होवो ।

याभिः शन्ताती भवथो ददाशुषे भुज्युं याभिरवथो याभिरध्रिगुम् ।
ओम्यावतीं सुभरामृतस्तुभं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २०।३६

भा०—हे ( अश्विना ) दो मुख्य अधिकारियो ! राजा, अमात्य आदि जनो ! तुम दोनो ! ( याभिः ) जिन रक्षासाधनों और उपायों से ( ददाशुषे ) नित्य ज्ञान और द्रव्य के देने वाले प्रजाजन और विद्वान् जनके हित के लिये (शंताती भवथः) शान्ति और सुखकारक होते हो, और (याभिः भुज्युम् अवथः ) जिन उपायों और साधनों से सुख सामग्री, ऐश्वर्य के भोक्ता और पालक पुरुष की रक्षा करते हो, ( याभिः अध्रिगुम् ) जिन से पृथ्वी के स्वामी अध्यक्ष ऐश्वर्यवान् राजा की रक्षा करते हो और ( ऋत-स्तुभम् ) सत्य ज्ञान के उपदेष्टा पुरुष और सत्यज्ञान और अन्न के धारण करने वाली ( ओम्यावतीम् ) रक्षणशील पुरुषों की उत्तम विद्या या

नीति से युक्त ( सुभराम् ) उत्तम रीति से प्रजा के भरण पोषण करने वाली नीति की जिन उपायों से रक्षा करते हो (ताभिः उ आ गतम् ) उन उपायों से आप हमें प्राप्त होवें । इति षट्त्रिंशो वर्गः ॥

याभिः कृशानुमसने दुवस्यथो जवे याभिर्यूनो अर्वन्तमावतम् ।
मधु प्रियं भरथो यत्सरड्भ्यस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् ॥२१॥

भा०—( याभिः ) जिन ( ऊतिभिः ) रक्षा साधनों, ज्ञानपूर्वक उपायों और नीतियों से आप दोनों ( कृशानुम् ) अग्नि के समान तेजस्वी तथा शत्रु पक्ष को कृश, दुर्बल करने वाले सेनापति पुरुष की ( असने ) शत्रुओं को उखाड़ फेंकने के संग्राम आदि कार्य में ( दुवस्यथः ) परिचर्या करते हो, उसके अधीन रह कर उसकी आज्ञा पालन करते हो और ( जवे ) वेग के संग्राम और शीघ्र गमन आदि कार्य में ( याभिः ) जिन उपायों से ( यूनः ) जवान पुरुषों और ( अर्वन्तम् ) वेगवान् अश्वों और अश्वारोही सेनादल की ( आवतम् ) रक्षा करते हो और ( यत् ) जिन उपायों से ( सरड्भ्यः ) वेग से आगे बढ़ने वाले वीरों को ( सरड्भ्यः मधु ) मधु मक्षिकाओं को मधु के समान उनको स्थिर रूप से बांधे रखने वाले ( प्रियं मधु ) प्रिय अन्न ( भरथः ) प्रदान करते हो ( ताभिः ) उन उपायों सहित ( आगतम् ) हमें प्राप्त होवो ।

याभिर्नरं गोषुयुधं नृषाह्ये क्षेत्रस्य साता तनयस्य जिन्वथः ।
याभी रथाँ अवथो याभिरर्वतस्ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २२

भा०—हे ( अश्विना ) मुख्य पुरुषो ! आप दोनों ( याभिः ) जिन उपायों से ( नृषाह्ये ) नायक वीर पुरुषों से विजय करने योग्य ( साता ) संग्राम में ( गोषुयुधम् ) भूमियों के विजय के लिये युद्ध करने वाले ( नरं ) नायक पुरुष को बढ़ाते हो और जिन साधनों से ( क्षेत्रस्य तनयस्य साता ) खेत के समान सन्तति उत्पन्न करने वाली स्त्री और पुत्र के लाभ करने के

निमित्त ( नरं ) पुरुष को ( जिन्वथः ) प्रसन्न और शक्तिशाली करते हो ( याभिः रथान्, अवथः ) जिन उपायों से रथों की रक्षा करते हो और ( याभिः अर्वतः ) जिन उपायों से अश्वों और रथारोही, अश्वारोही पुरुषों को (अवथः) रक्षा करते हो ( ताभिः आगतम् ) उन्हीं सब साधनों सहित हमें प्राप्त होवो ।

याभिः कुत्समार्जुनेयं शतक्रतू प्र तुर्वीतिं प्र च दभीतिमावतम् ।
याभिर्ध्वसन्तिं पुरुषन्तिमावतं ताभिरू षु ऊतिभिरश्विना गतम् २३

भा०—( याभिः ) जिन साधनों से ( आर्जुनेयम् ) ऐश्वर्य के अर्जन करने और शत्रु का मुकाबला करने वाले सेनाध्यक्ष के ( कुत्सम् ) शस्त्रास्त्र, सेनाबल की आप दोनों ( शतक्रतू ) सैकड़ों प्रज्ञाओं, कर्मों से युक्त होकर ( आवतम् ) रक्षा करते हो और जिन उपायों से ( तुर्वीतिम् ) शत्रु के नाशक और ( दभीतिम् च ) और शत्रुओं का वध करने वाले की ( प्र अवतम् ) खूब अच्छी प्रकार रक्षा करते और या उसको आगे बढ़ाते हो ( याभिः ) जिन उपायों से ( ध्वसन्तिम् ) शत्रु के नयरों को ध्वंस करने वाले और (पुरु-सन्तिम् ) बहुत ऐश्वर्य देने वाले की रक्षा करते हो (ताभिः) उन उपायों सहित ( आगतम् ) हमें प्राप्त होवो ।

अप्नस्वतीमश्विना वाचमस्मे कृतं नो दस्रा वृषणा मनीषाम् ।
अद्यूत्येऽवसे नि ह्वये वां वृधे च नो भवतं वाजसातौ ॥ २४ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! या दो मुख्य पुरुषो ! सभा-सेनाध्यक्षो ! आप दोनों (अस्मे) हमारे हित के लिये ( अप्नस्वतीम् वाचम् ) उत्तम कर्म या क्रियायोग का उपदेश करने वाली वाणी का (कृतम्) उपदेश करो। हे ( दस्रा ) दुःखों, दुष्ट पुरुषों और शत्रु का विनाश करने हारे मुख्य पुरुषो ! हे ( वृषणा ) सुखों का वर्षण करने वाले, और बलवान् पुरुषो ! आप दोनों हमारे हित के लिये ( अप्नस्वतीम् मनीषाम् ) उत्तम कर्मों का उपदेश करनेवाली बुद्धि या मानस शक्ति या प्रेरणा को करो । ( वां ) तुम दोनों

को मैं ( अघ्न्ये ) प्रकाशरहित अन्धकारमय मार्ग में ( अवसे ) प्रकाश करने के लिये और ( अघ्न्ये अवसे ) द्यूत आदि छल कपट के व्यवहार से रहित धर्ममार्ग में गमन कराने के लिये ( नि ह्वये ) नित्य बुलाता हूं। और ( नः ) हमें ( वाजसातौ वृधे च ) ज्ञान, ऐश्वर्य प्राप्ति और संग्राम के विजय कार्य में वृद्धि करने के लिये ( भवतम् ) होवो।

द्युभि॑र॒क्तुभि॒ः परि॑ पातम॒स्मानरि॑ष्टेभिरश्विना॒ सौभ॑गेभिः। तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑ति॒ः सिन्धु॑ः पृथि॒वी उ॒त द्यौः ॥२५॥३७॥७॥

भा०—हे ( अश्विना ) दो मुख्य पुरुषो ! आप दोनों ( द्युभिः अक्तुभिः ) दिनों और रातों ( अस्मान् ) हमें ( अरिष्टेभिः ) न नाश करने योग्य, कल्याणकारी, ( सौभगेभिः ) उत्तम २ ऐश्वर्यों से ( परिपातम् ) सब प्रकार से रक्षा करो। (तन्नः० इत्यादि पूर्ववत्) इति सप्तत्रिंशो वर्गः ॥

इति सप्तमोऽध्यायः।

---

## अथाष्टमोऽध्यायः।

## [ ११३ ]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः ॥ १—२० उषा देवता। द्वितीयस्यार्द्धर्चस्य रात्रिरपि ॥ छन्दः—१, ३, ६, १२, १७ निचृत् त्रिष्टुप्। ६ त्रिष्टुप्। ७, १८—२० विराट् त्रिष्टुप्। २, ५ स्वराट् पंक्तिः। ४, ८, १०, ११, १५, १६ भुरिक् पंक्तिः। १३, १४ निचृत्पंक्तिः ॥ विंशत्यृचं सूक्तम् ॥

इ॒दं श्रेष्ठं॒ ज्योति॑षां॒ ज्योति॒राग॑च्चि॒त्रः प्र॑के॒तो अ॑जनिष्ट॒ विभ्वा॑। यथा॒ प्रसू॑ता सवि॒तुः स॒वायँ॑ ए॒वा रात्र्यु॒षसे॒ योनि॑मारैक् ॥ १ ॥

भा०—( यथा ) जिस प्रकार ( प्रसूता ) पुत्र प्रसव करनेवाली स्त्री ( सवितुः ) पुत्रोत्पादक पुरुष के ( सवाय ) पुत्र के उत्पन्न करने के लिये ( योनिम् आरैक् ) गर्भाशय को रिक्त करती है। अथवा—( सवितुः

सवाय ) उत्पादक पति के ऐश्वर्य वृद्धि और ( उषसे ) कामना करने योग्य पति के बसने के लिये ( योनिम् आरैक् ) गृह को बनाती है और जिस प्रकार ( रात्री ) रात्रि ( सवितुः सवाय ) सूर्य के उत्पन्न या उदय होने के लिये और ( उषसे ) उषाकाल के लिये ( योनिम् ) स्थान ( आरैक् ) प्रकट करती है । उसी प्रकार (प्रसूता) समस्त जगत् को उत्पन्न करनेवाली (रात्री) समस्त जीवों को रमण कराने वाली, प्रलय दशा, ( सवितुः ) सर्वजगदुत्पादक परमेश्वर के ( सवाय ) ऐश्वर्य को प्रकट करने के लिये और (एवा) उसी प्रकार ( उषसे ) दिन में सन्धि वेला के समान सर्ग और प्रलय के बीच के सन्धि वेला को प्रकट करने के लिये भी ( योनिम् आरैक् ) आश्रय रूप काल को प्रकट करती है । और जिस प्रकार ( ज्योतिषां ज्योतिः ) समस्त तेजस्वी पदार्थों में उत्तम तेजस्वी सूर्य ( आगात् ) उदय होता है ( चित्रः ) अद्भुत, या चेतना या चिद् रूप में रमण करनेवाला ( प्रकेतः ) उत्तम ज्ञानवान् पुरुष ( विभ्वा ) महान् परमेश्वर के साथ मिलकर ( अजनिष्ट ) सुख, ऐश्वर्य और आनन्द से युक्त हो जाता है ( इदं श्रेष्ठं ) यह साक्षात् सर्वश्रेष्ठ ( ज्योतिषां ज्योतिः ) सब ज्योतियों में परम ज्योति, प्रकाशस्वरूप ब्रह्म ( आगात् ) प्रकट होता है ।

रुशद्वत्सा रुशती श्वेत्यागादारैगु कृष्णा सदनान्यस्याः ।
समानबन्धू अमृते अनूची द्यावा वर्णं चरत आमिनाने ॥ २ ॥

भा०—( रुशद्-वत्सा रुशती ) लाल बछड़े वाली लाल गाय या ( श्वेत्या ) श्वेत वर्ण की गौ के समान ( रुशत्-वत्सा ) अति देदीप्यमान सूर्य रूप बछड़े को साथ लिये हुए ( रुशती ) लाल आभा वाली ( श्वेत्या ) उषा ( आगात् ) आती है । और फिर ( अस्याः सदनानि ) इसी के स्थानों को ( कृष्णा उ ) काली वर्ग वाली गौ के समान काली अन्धकार वाली रात्रि भी (आरैक्) आती है, या (कृष्णा) काली अन्धकार वाली रात्रि (अस्याः सदनानि) उसके लिये स्थान (आरैक्) त्यागती, प्रदान करती है ।

उसको अपने विश्राम स्थान देकर चली जाती है। रात्रि और दिन दोनों ( समान बन्धू ) समान पद के स्नेह से बंधे हुए दो सहोदर भाई या मित्र या बहनों के समान रहती हुई ( अमृते ) कभी नाश न होनेवाली ( अनूची ) एक दूसरे के पीछे आती हुईं ( द्यावा ) अपने २ प्रकाश सूर्य और चन्द्र नक्षत्रादि के प्रकाशों से प्रकाशित होती हुई परस्पर (आमिनाने) एक दूसरे को दूर हटाती हुईं एक दूसरे का नाश करती हुई ( वर्णं चरतः ) अपना २ स्वरूप प्रकट करती हैं।

**स॒मा॒नो अध्वा॒ स्वस्रो॑रन॒न्तस्तम॒न्यान्या॑ चरतो दे॒वशि॑ष्टे।**
**न मे॑थेते॒ न त॑स्थतुः सु॒मेके॒ नक्तो॒षासा॒ सम॑नसा॒ विरू॑पे ॥ ३ ॥**

भा०—( स्वस्रोः ) दो बहनों या दो भाई बहनों के समान एक साथ विचरने वाले ( नक्तोषासा ) दिन और रात्रि दोनों का ( अध्वा ) मार्ग ( समान ) एकसा और ( अनन्त ) अनन्त है। वे दोनों ( देवशिष्टे ) ज्ञानवान् गुरु से अनुशासित दो शिष्यों के समान, राजा से आज्ञा किये दो भृत्यों के समान, देव अर्थात् प्रकाशमान सूर्य से शासित होकर या परमेश्वर के शासन में स्थित होकर ( अन्या-अन्या चरतः ) एक दूसरे के पीछे होकर चलते हैं। वे दोनों ( सुमेके ) सुन्दर अंगों वाले भाई बहनों के समान ( न मेथेते ) परस्पर संग भी नहीं करते, ( न तस्थतुः ) एक स्थान पर ठहरते भी नहीं। वे दोनों ( समनसा ) एक समान चित्त वाले दो मित्रों के समान होकर भी ( विरूपे ) एक दूसरे से भिन्न रूप वाले तमः प्रकाश स्वरूप हैं।

**भास्व॑ती ने॒त्री सू॒नृता॑ना॒मचे॑ति चि॒त्रा वि दुरो॑ न आवः।**
**प्रार्प्या॒ जग॒द्व्यु॑ नो रा॒यो अ॑ख्यदु॒षा अ॑जीग॒र्भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ ४ ॥**

भा—( भास्वती ) उत्तम कान्तिवाली, ( सूनृतानां नेत्री ) उत्तम धन, ज्ञान, यश और ऐश्वर्य की ( नेत्री ) प्राप्त कराने वाली, ( चित्रा ) विविध व्यवहार और कान्तियों से चित्र एवं पूजनीय विदुषी के समान

प्रतीत होती है । जो ( नः ) हमारे लिये ( दुरः ) गृह के द्वारों के समान दुःखों के वारक साधनों या तमो निवारक प्रकाशों को ( वि आवः ) विशेष रूप से प्रकट करती है । वह ( जगत् प्रार्प्य ) समस्त जगत् को हमारे अर्पण कर के ( नः ) हमें ( रायः ) ऐश्वर्य ( वि अख्यत् ) प्रकाशित करती है और ( विश्वा भुवना ) समस्त लोकों को ( अजीगः ) अपने भीतर लील लेती है ।

जिह्मश्ये३चरितवे मघोन्याभोगय इष्टये राय उ त्वं ।
दभ्रं पश्यद्भ्य उर्विया विचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥५॥१॥

भा०—( उषा ) सब पापों को भस्म कर देने वाली (मघोनी) उषा किसी पुरुष को (जिम्हश्ये) टेढ़े मेढ़े सोने के लिये (चरितवे) और किसी को उठकर काम पर जाने के लिये और किसी को (आभोगये) सब प्रकार के भोग सुखोंको प्राप्त करने और किसी को ( इष्टये ) यज्ञ दान करने के लिये और ( त्वं उ राये ) किसी को धन प्राप्त करने के लिये और ( दभ्रं ) अति सूक्ष्म पदार्थों या सूक्ष्म तत्व को या भीतरी दहराकाश को देखने वाले अध्यात्म साधकों को ( उर्विया ) उस महान् परमेश्वर का ( विचक्षे ) विशेष रूप से साक्षात् कराने के लिये ( विश्वा भुवना ) समस्त लोकों को ( अजीगः ) प्रकट करती है । इति प्रथमो वर्गः ॥

क्षत्राय त्वं श्रवसे त्वं महीया इष्टये त्वमर्थमिव त्वमित्यै ।
विसदृशा जीविताभिप्रचक्ष उषा अजीगर्भुवनानि विश्वा ॥ ६ ॥

भा०—( उषा ) प्रभात ( त्वं क्षत्राय ) एक को धन, राज्यैश्वर्य प्राप्त करने के लिये ( त्वं श्रवसे ) एक को अन्न तथा ज्ञान प्राप्त करने के लिये ( त्वं महीयै इष्टये ) एक को बड़े भारी यज्ञ करने के लिये ( त्वं अर्थम् इत्यै इव ) और एक को धनादि प्राप्त करने के लिये और ( विसदृशा जीविता ) नाना प्रकार के जीवनोपायों को ( अभिप्रचक्षे ) प्रकट

करने के लिये ( विश्वा भुवनानि अजीगः ) समस्त उत्पन्न पदार्थों और लोकों को व्यापती और प्रकट करती है।

**एषा दिवो दुहिता प्रत्यदर्शि व्युच्छन्ती युवतिः शुक्रवासाः।**
**विश्वस्येशाना पार्थिवस्य वस्व उषो अद्येह सुभगे व्युच्छ ॥ ७॥**

भा०—( एषा ) यह ( दिवः दुहिता ) सूर्य की पुत्री के समान उषा, ( शुक्रवासाः ) शुद्ध उजले वस्त्रों को धारण करने वाली ( युवतिः ) युवति स्त्री के समान ( शुक्रवासाः ) शुद्ध प्रकाश को धारण करती हुई ( वि उच्छन्ती ) विविध प्रकाशों को प्रकट करती हुई ( प्रति अदर्शि ) दिखाई देती है। वह ( विश्वस्य पार्थिवस्य वस्वः ) समस्त पृथ्वी पर के ऐश्वर्य की ( ईशाना ) स्वामिनी सी है। हे ( सुभगे ) उत्तम ऐश्वर्य वाली विदुषी के समान प्रभातवेले! तू (अद्य इह) आज इस जगत् में (वि उच्छ) विविध गुणों के समान प्रकाशों को प्रकट कर। युवती कन्या विद्वान् तेजस्वी कामना युक्त पुरुष की इच्छा पूर्ण करने वाली होने से 'दिवः दुहिता' है। शुद्ध वीर्यों या वस्त्रों को धारण करने से 'शुक्रवासा': है। ऐश्वर्यवती, सौभाग्यवती होने से 'सुभगा' है।

**परायतीनामन्वेति पाथ आयतीनां प्रथमा शश्वतीनाम्।**
**व्युच्छन्ती जीवमुदीरयन्त्युषा मृतं कं चन बोधयन्ती ॥ ८॥**

भा०—यह उषा ( परायतीनां ) पूर्व ही गुजरी हुई उषाओं के ( पाथः अनु एति ) मार्ग का अनुसरण करती है और ( शश्वतीनां ) अनन्त काल तक ( आयतीनां ) आगे आने वाली उषाओं में से ( प्रथमा ) सबसे पहली है। वह ( वि-उच्छन्ती) प्रकट होती हुई ( जीवम् ) जीवित संसार को ( उत् ईरयन्ती ) जगाती, उठाती हुई ( कंचन मृतम् ) मानो किसी भी मरे मुर्दे पुरुष को ( बोधयन्ती इव ) जगाती, चेतन करती हुई सी प्रकट होती है। इसी प्रकार विदुषी स्त्री अपने से पूर्व की या (परायतीनां)

परम पद परमेश्वर तक प्राप्त होने वाली विदुषी स्त्रियों के चले मार्ग का अनुगमन करें । वह ( आयतीनां ) आगे आने वाली, अपने से छोटे उम्र की स्त्रियों में प्रमुख रहे । ( जीवम् ) पुरुष को उन्नति मार्ग में प्रेरित करती हुई, अपने गुणों को प्रकाश करती हुई, मुर्दे में जान सी फूंकती हुई अकर्मण्य पुरुष को भी कर्मण्य और साहसी बनावे ।

**उषो यद॒ग्निं स॒मिधे॑ च॒कर्थ॒ वि यदाव॒श्चक्ष॑सा सूर्य॑स्य ।**
**यन्मानु॑षान्य॒क्ष्यमा॑णाँ॒ अजी॑ग॒स्तद्दे॒वेषु॑ चकृषे भ॒द्रमप्नः॑ ॥ ९ ॥**

भा०—( उषः ) हे उषः ! ( या ) जो तू ( समिधे ) अच्छी प्रकार प्रज्वलित करने के लिये (अग्निं) अग्नि अर्थात् सूर्य को (चकर्थ) उत्पन्न करती है और ( सूर्यस्य चक्षसा ) सूर्य के प्रकाश से ( यत् ) जो तू ( वि-आवः ) विविध पदार्थों को प्रकट करती है । ( यत् ) और जो तू ( मानुषान् यक्ष्यमाणान् ) यज्ञ करने वाले मनुष्यों को ( अजीगः ) व्यापती है उनको प्रेरित करती है ( तत् ) वह तू ( देवेषु ) विद्वान् पुरुषों में ( भद्रम् अप्नः चकृषे ) सुखकारी, उत्तम कार्य करती है । स्त्री के पक्ष में—स्त्री यज्ञाग्नि को प्रज्वलित करती है, सूर्य के समान तेजस्वी विद्वान् पुरुष के ज्ञान प्रकाश से सब पदार्थों का ज्ञान कराती और ( यक्ष्यमाणान् ) गृहस्थादि यज्ञ के करनेवाले पुरुषों को ( अजीगः ) उबारती है । इन कार्यों से वह ( देवेषु ) विद्वानों के बीच ( भद्रम् अप्नः ) उत्तम सुखकारी कार्य ही करती है ।

**किय॒त्या यत्स॒मया॒ भवा॑ति॒ या व्यू॒षुर्याश्च॑ नू॒नं व्यु॒च्छान् ।**
**अनु॒ पूर्वाः॑ कृपते वावशा॒ना प्र॒दीध्या॑ना॒ जोष॑म॒न्याभि॑रेति ॥१०॥२॥**

भा०—( याः उषाः ) जो उषाएं ( वि ऊषुः ) प्रकट हुई और ( याः च ) जो ( नूनं ) अभी तक ( वि ऊच्छान् ) प्रकट होती हैं वे सब ( कियति समया आभवाति ) कितने काल तक हो रहती हैं ? अर्थात् उनका स्थितिकाल दीर्घ नहीं होता । यह उषा भी ( वावशाना ) दीप्ति-मती होकर ( पूर्वाः अनु ) पूर्व की उषाओं के समान ही ( कृपते ) प्रकट

होती है। और (प्र दीध्याना) अच्छी प्रकार गुण रूप किरणों से चमकती हुई (अन्याभिः) आगे आने वाली अन्य उषाओं से (जोषम् एति) अनुकरण की जाती है। ठीक इसी प्रकार ( याः च वि ऊषुः ) जो स्त्रियां पतियों के साथ रहती हैं, ( याः च वि उच्छान् ) जो अपने यौवनादि गुणों को प्रकट करती हैं, उनमें से प्रत्येक स्त्री का उषाकाल अर्थात् कमनीय कन्या रहने का काल (कियति समया) कितनी देर तक है? अर्थात् बहुत न्यून है। (वावशाना) पति की कामना करती हुई वह (पूर्वा अनु कृपते) अपने से पूर्व की स्त्रियों के चले सत्मार्ग पर उनका अनुकरण करती हुई कार्य करने में समर्थ होती है। और स्वयं गुणों में उज्ज्वल होकर अन्य स्त्रियों सहित प्रेम को प्राप्त होती है। इति द्वितीयो वर्गः ॥

ई॒युष्टे ये पूर्व॑तरा॒मप॑श्यन्व्यु॒च्छन्ती॑मु॒षसं॒ मर्त्या॑सः ।
अ॒स्माभि॑रू॒ नु प्र॑ति॒चक्ष्या॑भू॒दो ते य॑न्ति॒ ये अ॑प॒रीषु॒ पश्या॑न् ॥११॥

भा०—( ये ) जो ( मर्त्यासः ) मनुष्य ( पूर्वतराम् ) पूर्व प्रकट होने वाली ( उच्छन्तीम् ) खिलती हुई ( उषसम् ) उषा को ( अपश्यन् ) देखते हैं ( ते ईयुः ) वे सुख को प्राप्त होते हैं। ( ये अपरीषु ) जो आगे आने वाली उषाओं में भी ( पूर्वतराम् पश्यान् ) पूर्व की खिली उषा को देखें ( ते यन्ति ) वे भी सुख को प्राप्त होते हैं। ( अस्माभिः उ नु ) हमें भी वह ( प्रतिचक्ष्या अभूत् ) प्रत्यक्ष साक्षात् हो। हम भी सुख को प्राप्त हों।

या॒व॒यद्द्वे॑षा ऋत॒पा ऋ॑ते॒जाः सु॑म्ना॒वरी॑ सू॒नृता॑ ई॒रय॑न्ती ।
सु॒म॒ङ्ग॒लीर्बिभ्र॑ती दे॒ववी॑तिमि॒हाद्यो॑षः॒ श्रेष्ठ॑तमा॒ व्यु॑च्छ ॥ १२ ॥

भा०—हे ( उषः ) प्रभात वेला के समान तेज और कान्ति को धारण करनेवाली उत्तम स्त्रि! तू ( यावयद्-द्वेषाः ) समस्त अप्रीतिकारक, द्वेषोत्पादक कर्मों को दूर करती हुई, ( ऋतपाः ) सत्य व्यवहार का पालन करने वाली, ( ऋतेजाः ) सत्य व्यवहार, ज्ञान, यज्ञ, अन्न और ऐश्वर्य

के निमित्त गुणों में विख्यात होने वाली, ( सुम्नावरी ) उत्तम सुखों को देने वाली और ( सूनृता ) उत्तम शुभ वाणियों को ( ईरयन्ती ) उच्चारण करती हुई, ( देव-वीतिम् ) विद्वानों की उपदिष्ट विशेष नीति या कान्ति या धारण करने योग्य यज्ञोपवीत आदि चिह्न को ( बिभ्रती ) धारण करती हुई ( इह अद्य ) यहां, इस गृह में आज ( श्रेष्ठतमा ) सब से उत्तम स्त्री होकर (वि-उच्छ) प्रकट हो। विवाहादि में कन्या 'सुमङ्गली' होती है। वह गोभिल के अनुसार यज्ञोपवीतिनी होती है।

शश्वत्पुरोषा व्युवास देव्यथो अद्येदं व्यावो मघोनी।
अथो व्युच्छादुत्तराँ अनु द्यूनजरामृता चरति स्वधाभिः॥ १३॥

भा०—( उषा ) कमनीय गुणों से युक्त पापों को नाश करती हुई उषा के समान ( देवी ) उत्तम गुणों से युक्त स्त्री ( शश्वत् ) निरन्तर ( पुरा ) पहले के समान ( वि उवास ) विविध गुणों को प्रकट करे और सुख पूर्वक निवास करे, ( अथो ) और वह ( अद्य ) अब भी ( मघोनी ) ऐश्वर्य से युक्त होकर ( इदं वि आवः ) इस लोक को प्रकाशित करे। ( अथो ) और वह ( उत्तरान् द्यून् अनु वि उच्छात् ) आगे आने वाले दिनों भी विशेष गुणों को प्रकाशित करे। और ( अजरा अमृता ) जरा अर्थात् आयु की हानि न करती हुई मृत्यु के दुःखों से रहित होकर आत्मरूप से अपने को अमृत जानती हुई ( स्वधाभिः ) स्वयं धारण किये धर्मों, उत्तम पदार्थों तथा 'स्व' अर्थात् शरीर को धारण करनेवाले अन्न आदि पदार्थों सहित ( चरति ) जीवन सुख-प्राप्त करे। उषा काल रूप से या प्रवाह से अजर, अमृत, नित्य है।

व्य१ञ्जिभिर्दिव आतास्वद्यौदप कृष्णां निर्णिजं देव्यावः।
प्रबोधयन्त्यरुणेभिरश्वैरोषा याति सुयुजा रथेन॥ १४॥

भा०—( उषा ) उषा जिस प्रकार ( दिवः ) सूर्य के ( अञ्जिभिः ) किरणों से ( आतासु ) दिशाओं में ( वि अद्यौत् ) विशेष रूप से प्रकाश

करती है उसी प्रकार कमनीय स्त्री भी ( दिवः अञ्जिभिः ) अपने तेजस्वी पति के ज्ञानप्रकाशक विशेष गुणों से ( आतासु ) समस्त क्रियाओं और विद्याओं में विशेष रूप से चमके। ( देवी ) प्रकाश करने वाली उषा जिस प्रकार ( कृष्णां निर्णिजम् ) रात्रि के अन्धकारमय रूप को ( अप आवः ) दूर कर देती है, या ( कृष्णाम् अप ) रात्री को दूर करके ( निर्णिजम् आवः ) सब पदार्थों के उज्वल रूप को प्रकट करती है उसी प्रकार ( देवी ) उत्तम स्त्री भी ( कृष्णाम् ) राजस मलिनता को दूर करके ( निर्णिजं आवः ) अपने शुद्ध कान्तिमय सुन्दर रूप को प्रकट करे, स्वच्छ रहे। ( उषा अरुणेभिः अश्वैः प्रबोधयन्ती ) उषा जिस प्रकार अरुण किरणों से सबको जगाती हुई ( सुयुजा रथेन ) उत्तम सहयोगी आदित्य के साथ ( याति ) गमन करती है उसी प्रकार कमनीय गुणों से युक्त कन्या भी ( अरुणेभिः ) अपने अनुराग युक्त गुणों से ( प्रबोधयन्ती ) सबको उत्तम ज्ञान कराती हुई और ( अरुणेभिः अश्वैः सुयुजा रथेन याति ) लाल घोड़ों सहित जुते हुए रथ से तथा अनुराग युक्त गुणों वाले उत्तम सहयोगी तथा रमणकारी पति पुरुष से युक्त होकर ( याति ) संसार-मार्ग में यात्रा करे।

आ वहन्ती पोष्या वार्याणि चित्रं केतुं कृणुते चेकिताना।
ईयुषीणामुपमा शश्वतीनां विभातीनां प्रथमोषा व्यश्वैत् ॥१५॥३॥

भा०—( उषा ) उषा जिस प्रकार ( पोष्या वार्याणि ) पोषण करने योग्य, वृद्धि करने योग्य और वरने, स्वीकार करने योग्य ऐश्वर्यों को (आवहन्ती ) लाती हुई ( चेकिताना ) सबको जगाती हुई ( चित्रं ) आश्चर्यजनक ( केतुं ) प्रकाश ( कृणुते ) करती है और वह (ईयुषीणां शश्वतीनां) अनादि काल से आने वाली समस्त उषाओं की ( उपमा ) उपमा, अर्थात् उनके समान धर्मों को धारण करती हुई और (विभातीनां) विशेष सूर्य की दीप्ति से युक्त आगामी उषाओं में ( प्रथमा ) प्रथम होकर ( वि अश्वैत् )

व्याप्त होती है उसी प्रकार ( पोष्या वार्याणि आवहन्ती ) पोषण योग्य ऐश्वर्यों, धनों को सब प्रकार से धारण करती हुई ( चेकिताना ) स्वयं ज्ञान लाभ करती हुई ( चित्रं केतुं कृणुते ) आश्चर्यजनक ज्ञान प्रकट करे। वह ( शश्वतीनां ईयुषीणाम् उपमा ) बहुत सी पूर्व काल की, अपने से पूर्व उत्पन्न सच्चरित्र स्त्रियों के समान उत्तम गुणों को धारण करने वाली, सर्वोपमायोग्य हो और ( विभातीनां प्रथमा ) विशेष विद्या और कान्ति में चमकती हुई स्त्रियों में भी प्रथम, सब से श्रेष्ठ होकर ( वि अश्वैत ) विविध प्रकार से विख्यात हो। इति तृतीयो वर्गः ॥

उदीर्ध्वं जीवो असुर्न आगादप प्रा गात्तम आ ज्योतिरेति ।
आरैकपन्थां यातवे सूर्यायागन्म यत्र प्रतिरन्त आयुः ॥ १६ ॥

भा०—हे मनुष्यो ! आप लोग ( उत् ईर्ध्वम् ) उठो ! उन्नति मार्ग पर चलो ! आलस्य छोड़ कर उठ जाओ। प्रभात काल में ( नः ) हमें ( असुः जीवः ) शरीर का संचालन करने वाला जीवात्मा ( आगात् ) आता है वह पुनः सोने के बाद जागृत रूप में प्रकट होता है। ( तमः ) अन्धकार, मोह ( अपगात् ) दूर हटता है और ( ज्योतिः ) प्रकाशमान् सूर्य ( आ एति ) आगे बढ़ा चला आता है। वह उषा ( सूर्याय) सूर्य के ( यातवे ) गमन करने के लिये ( पन्थाम् आरैक् ) मार्ग छोड़ती जाती है। हम भी ( अगन्म ) उसे प्राप्त हों ( यत्र ) जहां विद्वान् जन ( आयुः प्रतिरन्त ) जीवन की वृद्धि करते हैं। अथवा हम भी ( सूर्याय अगन्म ) उस सूर्य को प्राप्त करें ( यत्र ) जिसके आश्रय होकर प्राणी गण ( आयुः प्रतिरन्त ) समस्त जीवन सुख से व्यतीत करते हैं। इसमें उपासक के अध्यात्म ज्योति के उदय का भी वर्णन है।

स्यूमना वाच उदियर्ति वह्निः स्तवानो रेभ उषसो विभातीः ।
अद्या तदुच्छ गृणते मघोन्यस्मे आयुर्नि दिदीहि प्रजावत् ॥१७॥

भा०—(विभातीः) विशेष दीप्ति वाली उषाओं के आने पर (वह्निः)

ज्ञानों को धारण करने वाला ( रेभः ) विद्वान् , ( स्तवानः ) स्तुति करता हुआ ( स्यूमना ) एक दूसरे से सम्बद्ध और उत्तम ज्ञानों से ओत प्रोत ( वाचः ) वेद वाणियों को ( उत् इयर्त्ति ) प्रकट करता है। उसी प्रकार ( उषसः विभातीः ) विशेष दीप्ति से युक्त प्रभातों में नित्य ही ( वह्निः रेभः स्तवानः ) स्त्री को विवाहने वाला पुरुष विद्वान् होकर गुणों का वर्णन करता हुआ ( स्यूमना वाचः इयर्ति ) सुखजनक वाणियों को बोला करे। ( मघोनी ) उषा जिस प्रकार ( गृणते ) स्तुति करने वाले के हृदय में ज्ञान का प्रकाश करती है और उपासक ध्यानी के स्तवन करते २ प्रभात का प्रकाश कर देती है उसी प्रकार हे उत्तम स्त्रि ! तू भी ( मघोनी) ऐश्वर्यवती होकर ( गृणते ) सुख-कर प्रीति युक्त वचन कहने वाले पति के सुख के लिये ( अद्य ) आज दिन ( तत् उच्छ ) वह २ नाना प्रकार के गुण प्रकट कर और ( अस्मे ) हमारे सुख के लिये ( प्रजावत् ) उत्तम सन्तति से युक्त (आयुः) अपने जीवन को और अन्नादि को ( निदिदीहि ) प्रकाशित कर ।

या गोम॑तीरु॒षसः॒ सर्व॑वीरा व्यु॒च्छन्ति॑ दा॒शुषे॒ मर्त्या॑य ।
वा॒योरि॑व सू॒नृता॑नामुद॒र्के ता अ॑श्व॒दा अ॑श्नवत्सोम॒सुत्वा॑ ॥ १८ ॥

भा०—( दाशुषे मर्त्याय ) अपने को उपासना में भगवान् के प्रति सर्वात्मना अर्पण कर देने वाले पुरुष के हित के लिये ( याः ) जो (गोमतीः उषसः ) किरणों से युक्त उषाएं ( सर्ववीराः ) सब प्राणों से युक्त या सबों को प्रेरित करने हारी होकर ( वि उच्छन्ति ) प्रकट होती हैं और उसके दुःखों को दूर करती हैं। ( ताः ) उन ( अश्वदाः ) व्यापक सूर्य या प्राण को देने वाली, उसको प्रकट करने वाली उषाओं को ( वायोः इव ) वायु या प्राण के समान ( सूनृतानाम् ) उत्तम स्तुति वाणियों के (उदर्के) उच्चारण करते २ सूर्य के उदय होजाने पर ( सोम-सुत्वा ) परमेश्वर का उपासक ( अश्नवत् ) भोग करे। अर्थात् प्राणायाम और स्तुति भजन

कीर्त्ति तथा मन्त्रोच्चारण करते २ ध्यानी पुरुष को प्रभातवेला में सूर्योदय हो जावे और इस प्रकार वह उषाओं का सुख प्राप्त करे। ( २ ) इसी प्रकार ( दाशुषे मर्त्याय ) सुख देने वाले पति पुरुष को ( उषसः ) कमनीय कन्याएं भी ( सर्ववीराः ) सब वीर पुत्रों से युक्त ( गोमतीः ) पशु आदि सम्पदा से युक्त होकर ( वि उच्छन्ति ) विविध सुखों को प्रकट करती और दुःखों को दूर करती हैं। और ( सोमसुत्वा ) वीर्य का पालन करने वाला ब्रह्मचारी या ऐश्वर्यवान् पुरुष ही ( वायोः इव ) ज्ञानवान् गुरु के समान ( सूनृतानाम् उदर्के ) वेद वाणियों को उत्तम रीति से प्राप्त करके स्नातक हो जाने पर ( ताः अश्वदाः अश्नवत् ) उन अश्वादि पशुओं को देने और पालने वाली स्त्रियों को पति रूप में प्राप्त हो। एकवचन और बहुवचन का प्रयोग जात्याख्या में है।

माता देवानामदितेरनीकं यज्ञस्य केतुर्बृहती विभाहि।
प्रशस्तिकृद् ब्रह्मणे नो व्युच्छा नो जने जनय विश्ववारे॥ १९॥

भा०—यह उषा ( देवानाम् ) सूर्य की किरणों की ( माता ) प्रथम प्रकट करने वाली है। और वह ( अदितेः ) सूर्य का ( अनीकम् ) मुख है। वह ( यज्ञस्य ) यज्ञ की ( केतुः ) झण्डे के समान ज्ञापन करने वाली है। वह ( ब्रह्मणे ) परमेश्वर की ( प्रशस्ति कृत् ) उत्तम स्तुतियों को प्रकट करती है। वह सबसे वरण करने और सेवन करने योग्य होने से 'विश्व वारा' है। इसी प्रकार हे ( विश्ववारे ) सबसे वरण करने योग्य, श्रेष्ठ या सब उत्तम पदार्थों और सुखों को चाहने वाली स्त्रि! तू ( देवानाम् माता ) उत्तम विद्वान् तेजस्वी पुत्रों की माता हो। ( अदितेः अनीकम् ) पुत्र की सेना के समान रक्षक और माता पौर पिता दोनों का मुख अर्थात् दोनों में मुख्य हो। और ( यज्ञस्य ) गृहस्थ रूप यज्ञ की ( केतुः ) चेताने वाली, ( बृहती ) गुणों में विशाल और सुखों की वृद्धि करने हारी होकर ( विभाहि ) प्रकट हो। तू ( ब्रह्मणे ) वेदज्ञ विद्वान् तथा परमेश्वर के

लिये ( प्रशस्तिकृत् ) उत्तम स्तुति युक्त वचन कहने वाली ( नः व्युच्छ ) हमारे दुःखों को दूर कर और ( नः ) हमें ( जने जनय ) समस्त जनों में प्रसिद्ध या सन्तानयुक्त कर।

यच्चित्रमप्न उषसो वहन्तीजानाय शशमानाय भद्रम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः।२०।४

भा०—( उषसः ) प्रभात बेलाएं जिस प्रकार (ईजानाय) यज्ञ करने वाले तथा ईश्वरार्चना करने वाले, ( शशमानाय ) स्तुतिशील पुरुष के सुख के लिये ( चित्रम् अप्नः ) अद्भुत रूप, उत्तम स्तुति योग्य कर्म को और ( भद्रम् ) सुख और कल्याणजनक ज्ञान को ( वहन्ति ) प्राप्त करती हैं उसी प्रकार ( उषसः ) कामनानुकूल स्त्रियां ( ईजानाय ) अपने साथ संग करने वाले ( शशमानाय ) प्रशंसित, गुणवान् पुरुष के लिये ( चित्रम् ) आश्चर्यजनक ( अप्नः ) पुत्र और ( भद्रम् ) कल्याण और सुखमय जीवन को ( वहन्ति ) प्राप्त करती हैं। (तन्नः० इत्यादि) पूर्ववत्। इति चतुर्थो वर्गः॥

[ ११४ ]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः॥ रुद्रो देवता॥ छन्दः—१ जगती। २, ७ निचृज्जगती। ३, ६, ८, ९ विराड् जगती च। १०, ४, ५, ११ भुरिक् त्रिष्टुप् निचृत् त्रिष्टुप्॥ एकादशर्चं सूक्तम्॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्र भरामहे मतीः।
यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वं पुष्टं ग्रामे अस्मिन्ननातुरम्॥१॥

भा०—विद्वान् राजा का वर्णन करते हैं। ( रुद्राय ) दुष्टों को रुलाने वाले, अन्यों को ज्ञान का उपदेश करने वाले तथा ४४ वर्ष के ब्रह्मचारी, ( तवसे ) बलवान्, (कपर्दिने) केश जटा वाले पूर्ण युवा, (क्षयद्-वीराय) दोषनाशक वीर पुरुषों के स्वामी, या शत्रुओं के नाशकारी या ऐश्वर्य युक्त वीर गणों के स्वामी, राजा या सभाध्यक्ष के गुण वर्णन के लिये हम

( इमाः मतीः ) इन मनन करने योग्य ज्ञान-वाणियों को ( प्र भरामहे ) धारण करते हैं। जिससे ( द्विपदे चतुष्पदे ) दोपाये और चौपायों के सुख के लिये ( शम् असत् ) सुख कल्याण हो। और ( अस्मिन् ग्रामे ) इस ग्राम या जनपद में ( विश्वं ) सब कोई ( पुष्टं ) हृष्ट पुष्ट और ( अनातुरम् ) दुःख, रोग, शोक आदि से कभी पीड़ित न हो।

मृळा नो रुद्रोत नो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधेम ते।
यच्छं च योश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम तव रुद्र प्रणीतिषु ॥२॥

भा०—हे ( रुद्र ) दुष्ट शत्रुओं को रुलाने वाले! संसार के दुःखों को दूर करने वाले! अध्यात्म ज्ञान के उपदेश देने हारे! आचार्य! ज्ञानरोधक अविद्या आदि के नाशक! प्रभो! ( नः मृड ) हमें सुखी कर। ( उत ) और ( नः ) हमें ( मयः कृधि ) सुख प्रदान कर। ( क्षयद्वीराय ) शत्रु सेना के वीरों के नाश करने वाले ( ते ) तेरा ( नमसा ) अन्न, बल, वीर्य, पदाधिकार, मान, आदर द्वारा (विधेम) हम सत्कार करें। ( मनुः ) मननशील विवेकी ( पिता ) पालक राजा हमें ( यत् ) जो कुछ भी ( शं ) शान्तिदायक और ( योः च ) दुःखों का नाशक साधन ( आयेजे ) प्रदान करता है हम ( तत् ) उसको ( अश्याम ) ओषधि के समान उपयोग करें। हे ( रुद्र ) दुःखों को दूर भगाने हारे हम ( तव ) तेरी उत्तम ( प्रणीतिषु ) नीतियों में चलें।

अश्याम ते सुमतिं देवयज्यया क्षयद्वीरस्य तव रुद्र मीढ्वः।
सुम्नायन्निद्विशो अस्माकमा चरारिष्टवीरा जुहवाम ते हविः ॥३॥

भा०—हे (रुद्र) रुद्र! उपदेशों के देने हारे! हे ( मीढ्वः ) प्रजाओं पर सुखों की वर्षा करने हारे! हम लोग ( क्षयद्-वीरस्य ) वीर पुरुषों को बसाने वाले ( ते ) तेरी ( सुमतिं ) शुभ मति को ( देवयज्याय ) विद्वान् पुरुषों के सत्संग द्वारा ( अश्याम ) प्राप्त करें। तू ( अस्माकम् )

हमारी ( विशः ) प्रजाओं को ( सुम्नयन् ) सुखी करता हुआ ( इत् ) ही ( आचर ) सर्वत्र विचरण कर । और हम ( अरिष्टवीराः ) सुखी, अहिंसित वीर पुरुषों और पुत्रों के साथ ( ते हविः आजुहवाम ) तेरे लिये अन्न आदि कर प्रदान करें ।

त्वेषं वयं रुद्रं यज्ञसाधं वंकुं कविमवसे नि ह्वयामहे ।
आरे अस्मद्दैव्यं हेळो अस्यतु सुमतिमिद्वयमस्या वृणीमहे ॥ ४ ॥

भा०—( वयं ) हम लोग ( त्वेषं ) विद्या, न्याय और तेज से देदीप्यमान, तेजस्वी ( यज्ञसाधम् ) युद्ध के विजयी और प्रजा पालन रूप उत्तम कर्म के साधक (वंकुम्) अति कुटिल, टेढ़े, शत्रुओं से कभी पराजित न होने हारे, ( कविम् ) दूरदर्शी पुरुष को ( नि ह्वयामहे ) अपने सुख दुःख आदि निवेदन करें । वह ( दैव्यम् ) विद्वानों के (हेळः) क्रोध अथवा अनादर आदि करने वाले पुरुषों को ( अस्मत् आरे अस्यतु ) हमसे दूर करे । ( वयम् ) हम ( अस्य ) इस शत्रुरोधक वीर पुरुष की ( सुमतिम् ) शुभ मति, धर्मानुकूल प्रज्ञा और बल को प्राप्त हों ।

दिवो वराहमरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा नि ह्वयामहे ।
हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्याणि शर्म वर्म च्छर्दिरस्मभ्यं यंसत् ॥५॥५॥

भा०—ज्ञान, न्याय, तथा तेज से प्रकाशित व्यवहार से ( वराहम् ) श्रेष्ठ गुणों का उपदेश करने वाले मेघ के समान निष्पक्षपात और उत्तम सात्विक आहार करने हारे ( अरुषं ) रोष रहित, अति देदीप्यमान, तेजस्वी (कपर्दिनम्) पूर्ण ब्रह्मचारी, जटिल, विद्वान् अथवा सुन्दर मुकुटधारी, (त्वेषं) सूर्य के समान दीप्तिमान्, ( रूपं ) रुचिकर, सुन्दर रूपवान् पुरुष को ( निह्वयामहे ) आदरपूर्वक निवेदन करें । वह ( हस्ते ) अपने हाथ में वैद्य के समान ( वार्याणि भेषजा ) रोगों के समान शत्रुओं का वारण करने वाले साधनों, कष्टों के नाशक, स्वीकार करने योग्य ऐश्वर्यों और उत्तम उपायों को ( बिभ्रत् ) धारण करता हुआ ( अस्मभ्यम् ) हमें ( शर्म,

वर्म ) सुख, शरण, कवच और ( छर्दिः ) गृह और शस्त्रास्त्र साधन ( यंसत् ) प्रदान करे । इति पञ्चमो वर्गः ॥

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ।
रास्वा च नो अमृत मर्तभोजनं त्मने तोकाय तनयाय मृळ ॥६॥

भा०—(पित्रे वचः यथा वर्धनम्) पिता का आशीर्वचन जिस प्रकार पुत्रों को बढ़ाने हारा होता है उसी प्रकार हे ( अमृत ) मरणादि क्लेश से रहित ज्ञानवन् ! विद्वन् ! ( पित्रे ) पालक ( रुद्राय ) ज्ञानोपदेष्टा गुरु का ( इदं वचः ) यह वचन, उपदेश ( मरुतां वर्धनम् ) वीर, वायु के समान बलवान् आलस्य रहित शिष्यों को बढ़ाने वाला ( उच्यते ) कहा जाता है । हे विद्वन् ! ( नः त्मने ) हमारे अपने देह, ( तोकाय ) पुत्र और ( तनयाय ) पौत्र आदि के सुख के लिये ( स्वादोः स्वादीयः ) स्वादु से भी स्वादु, आनन्दप्रद ( मर्त्तभोजनं रास्व ) मनुष्यों के भोगने योग्य ऐश्वर्य प्रदान कर और ( नः मृड ) हमें सुखी कर ।

मा नो महान्तमुत मा नो अर्भकं मा न उक्षन्तमुत मा न उक्षितम् ।
मा नो वधीः पितरं मोत मातरं मा नः प्रियास्तन्वो रुद्र रीरिषः ॥७॥

भा०—हे ( रुद्र ) दुष्टों के रुलाने वाले ! न्यायाधीश ! राजन् ! एवं रोगों को दूर करने वाले वैद्यजन ! तू ( नः ) हमारे में से ( महान्तम् ) विद्या और बल में बड़े का ( मा वधीः ) विनाश मत कर । ( नः अर्भकं मा वधीः ) हममें से छोटे बालक को मत विनष्ट होने दे । ( नः उक्षन्तं मा वधीः ) हममें से वीर्य सेचन में समर्थ युवा पुरुष को नष्ट मत कर । ( नः उक्षितम् मावधीः ) हममें से जो जीव निषेक द्वारा गर्भाशय में स्थित है उनको नष्ट मत होने दे । ( नः पितरं उत मातरम् मा वधीः ) हमारे पिता और माता को मत मार । ( नः ) हमारे ( प्रियाः तन्वः ) प्रिय शरीरों को ( मा रीरिषः ) मत पीड़ित होने दे ।

good mantra very badly commentated.

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मानो अश्वेषु रीरिषः।
वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे॥८॥

भा०—हे ( रुद्र ) दुष्टों के रुलाने हारे राजन् ! तू ( नः ) हमारे ( तोके तनये ) पुत्र और पौत्र आदि संतति पर ( मा रीरिषः ) हिंसा का प्रयोग मत कर। (नः आयौ मा) हमारे जीवन पर आघात मत कर। (नः गोषु, नः अश्वेषु मा रीरीषिः) हमारी गौओं और हमारे घोड़ों पर भी हिंसा का प्रयोग मत कर। उनको मत मार और मत मरने दे। (भामितः) क्रोध, मन्यु वाला उत्साही तू ( नः ) हममें से ( वीरान् ) वीरों को (मा वधीः) मत मार। हम ( हविष्मन्तः ) उत्तम अन्न, कर तथा उत्तम कर्मों वाले होकर ( त्वाम् सदम् इत् ) तुझे सदा ही ( हवामहे ) यह प्रार्थना करते हैं।

उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे।
भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे॥ ६॥

भा०—( पशुपाः इव ) पशुओं का पालक ग्वाला जिस प्रकार समस्त दुग्ध आदि पदार्थ तथा पशुसमूहों को भी स्वामी को ही प्रदान करता है इसी प्रकार हे ( पितः ) पालक राजन् ! गुरो ! प्रभो ! ( ते ) तेरे ही लिये ( स्तोमान् ) इन स्तुति-वचनों तथा ग्राह्य पदार्थों को मैं ( उप अकरम ) तुझे समर्पित करता हूं। हे ( मरुतां पितः ) विद्वान् पुरुषों के पालक राजन् ! शिष्यों के पालक गुरो ! तू (अस्मे) हमें (सुम्नम्) सुख, सुखकारक ज्ञान और ऐश्वर्य ( रास्व ) प्रदान कर। ( ते सुमतिः ) तेरी शुभ मति ( भद्रा ) कल्याणकारक और ( मृडयत्-तमा ) सबसे अधिक सुखजनक है ( अथ ) और इसी कारण ( वयम् ) हम लोग ( तव अवः ) तेरी रक्षा और ज्ञानैश्वर्य को ( इत् ) ही ( वृणीमहे ) चाहते हैं।

आरे ते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मे ते अस्तु।
मृळा च नो अधि च ब्रूहि देवाधा च नः शर्म यच्छ द्विबर्हाः॥१०॥

भा०—हे (क्षयद्-वीर) वीर पुरुषों को अपने आश्रय में बसाने हारे! (ते) तेरे राष्ट्र में रहने वाले (गोघ्नम्) गाय आदि पशु के हत्यारे और पुरुषों के हत्यारे पुरुष को तू (आरे) दूर कर। (अस्मे ते) इस प्रकार हम और तुझ राजा दोनों को (सुम्नं अस्तु) सुख प्राप्त हो। हे (देव) प्रजाजन को सुख देने वाले राजन्! तू (नः मृड) हमें सुखी कर। (अधि ब्रूहि च) गुरु के समान सर्वोपरि शासक होकर उपदेश कर। (अध) और तू (द्विबर्हाः) ऐहिक और पारमार्थिक दोनों सुखों को बढ़ाने वाला, या राजवर्ग प्रजावर्ग दोनों का वर्धक, दोनों का स्वामी, या ज्ञान कर्म दोनों का स्वामी होकर (नः च) हमें भी (शर्म यच्छ) शरण, सुख प्रदान कर।

अवो॑चाम॒ नमो॑ अस्मा अव॒स्यवः॑ शृ॒णोतु॑ नो॒ हवं॑ रु॒द्रो म॒रुत्वा॑न्।
तन्नो॑ मि॒त्रो वरु॑णो मामहन्ता॒मदि॑तिः॒ सिन्धुः॑ पृथि॒वी उ॒त द्यौः॥११।६॥

भा०—(अवस्यवः) रक्षा और ज्ञान के चाहने वाले हम लोग (अस्मै) इस शरण प्रद और ज्ञानप्रद राजा और आचार्य के मान के लिये सदा (नमः अवोचाम) आदर सत्कार सूचक पद 'नमस्ते' आदि का उच्चारण करें। (मरुत्वान्) विद्वान् वीर पुरुषों और ज्ञानेच्छु शिष्यों का स्वामी (रुद्रः) दुष्टों का रोदनकारी राजा और उत्तम उपदेशदाता आचार्य (नः हवं शृणोतु) हमारी प्रार्थना सुने। (तत् नः० इत्यादि) पूर्ववत्॥ इति षष्ठो वर्गः॥

## [ ११५ ]

कुत्स आङ्गिरस ऋषिः॥ सूर्यो देवता॥ छन्दः—१, २, ६ निचृत् त्रिष्टुप्। ३ विराट् त्रिष्टुप्। ४, ५ त्रिष्टुप्॥ षड्‌र्चं सूक्तम्॥

चि॒त्रं दे॒वाना॒मुद॑गा॒दनी॑कं॒ चक्षु॑र्मि॒त्रस्य॒ वरु॑णस्या॒ग्नेः।
आप्रा॒ द्यावा॑पृथि॒वी अ॒न्तरि॑क्षं॒ सूर्य॑ आ॒त्मा जग॑तस्त॒स्थुष॑श्च॥१॥

भा०—(सूर्यः) सूर्य जिस प्रकार (देवानाम्) किरणों का (अनी-

कम् ) समूह रूप, तेजोमय है । वह ( मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चित्रं चक्षुः ) मित्र अर्थात् वायु, प्राण, वरुण अर्थात् मेघ या जल और अग्नि इन सबको आश्चर्य-कर रूप से दिखाने वाला, सबका प्रकाशक चक्षु के समान ( उत् अगात् ) सबका साक्षी रूप सा होकर उदय को प्राप्त होता है और वह ( द्यावा पृथिवी अन्तरिक्षं ) आकाश, पृथिवी और वायुमण्डल सबको, प्रकाश से पूर देता है और ( जगतः तस्थुषः च आत्मा ) जंगम और स्थावर दोनों के जीवन के समान है । (२) उसी प्रकार परमेश्वर (देवानां) समस्त तेजस्वी पदार्थों और विद्वानों का ( चित्रं चक्षुः ) आश्चर्यकारी प्रकाशक, ज्ञान-दर्शक और मार्गदर्शक, चक्षु के समान सर्वसाक्षी है । वह ( अनीकम् ) बलस्वरूप एवं चक्षु आदि से ग्रहण भी नहीं किया जाता है । वह ( मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः ) प्राण, अपान, जाठर, तथा वायु जल और अग्नि सब का ( चित्रं चक्षुः ) अद्भुत द्रष्टा और प्रवर्त्तक है । वह ( सूर्यः ) सबका प्रेरक होकर ( द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं आ अप्राः ) आकाश पृथिवी और अन्तरिक्ष तीनों लोकों में व्याप रहा है । वह ही ( जगतः तस्थुषः च आत्मा ) स्थावर जंगम सब में व्यापक, सबका अन्तर्यामी है ।

**सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात् ।**
**यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम् ॥२॥**

भा०—( मर्यः रोचमानां देवीं योषां न ) विवाह काल में जिस प्रकार पुरुष अपने रुचि की, प्रेमपात्री स्त्री के ( पश्चात् अभि एति ) पीछे २ चलता है उसी प्रकार ( रोचमानां ) कान्ति वाली, ( उषसं देवीं ) प्रकाश-मयी उषा के ( पश्चात् ) पीछे २ ( सूर्यः अभि-एति ) सूर्य भी चलता है । ( यत्रा ) जिसके आश्रय पर ( देवयन्तः नरः ) नाना सुखों की कामना करने वाले विद्वान् पुरुष ( भद्राय ) कल्याणकारी पुरुष के हाथ ( भद्रम् ) उसको सुखकारी स्त्री रूप ऐश्वर्य (प्रति) प्रदान करके (युगानि) युग अर्थात् जोड़े ( वितन्वते ) बना देते हैं । (२) इसी प्रकार जिस सूर्य का

आश्रय लेकर (देवयन्तः नरः) विद्वान् गणितज्ञ जन, ( भद्राय भद्रं प्रति ) भले को भले पदार्थ प्रदान करते हुए (युगानि वितन्वते) पांच २ संवत्सरों की गणना से कृत, त्रेता, द्वापर, कलि आदि युगों की कल्पना करते हैं।

**भद्रा अश्वा हरितः सूर्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः ।**
**नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः॥३॥**

भा०—जिस प्रकार ( सूर्यस्य ) सूर्य के ( हरितः ) नील या श्याम वर्ण के ( अश्वाः ) किरणें ( भद्राः ) विशेष ज्वरादि, नाशक होने से प्राणियों को सुखकारक होते हैं और ( चित्राः ) चित्र विचित्र वर्ण वाले ( एतग्वाः ) शबल वर्ण अर्थात् रक्त नील पीतादि वर्ण के मिश्रित किरण भी ( अनुमाद्यासः ) उक्त नील वर्ण के किरणों के अनुसार ही प्राणियों को अधिक हर्षोत्पादक होते हैं। वे ( नमस्यन्तः ) नीचे झुकते हुए ( दिवः ) पृथिवी के और आकाश के ( पृष्ठम् आ अस्थुः ) पृष्ठ पर सब तरफ पड़ते हैं वे ही ( द्यावा पृथिवी ) आकाश और पृथ्वी सर्वत्र ( सद्यः यन्ति ) शीघ्र ही फैल जाते हैं। उसी प्रकार ( सूर्यस्य ) सूर्य के समान तेजस्वी राजा के ( अश्वाः ) वेगवान् अश्वारोही जन और तेजस्वी आचार्य के ( अश्वाः ) विद्याओं में वेग से आगे बढ़ने वाले विद्यार्थी जन ( भद्राः ) कल्याणकारी, सुखजनक, सुसभ्य और ( हरितः ) नील वस्त्र को धारण करने वाले या मृगचर्म से, श्याम वर्ण या पीत वर्ण सब ( चित्राः ) आश्चर्य जनक, ( एतग्वाः ) अपने गमन करने योग्य नियत मार्ग पर जाने वाले होकर ( अनुमाद्यासः ) सभी द्वारा अनुमोदन या अभिनन्दन करने योग्य हों। वे ( नमस्यन्तः ) बड़ों को नमस्कार आदर सत्कार करते हुए (दिवः) ज्ञान और तेज के ( पृष्ठम् ) उच्च पद तक ( आ अस्थुः ) प्राप्त होते हैं। ( सद्यः ) शीघ्र ही ( द्यावापृथिवी ) सूर्य और पृथ्वी के समान दम्पति होकर गृहस्थ आश्रम को ( परियन्ति ) प्राप्त होते हैं। अथवा, वे राज-प्रजा वर्ग को व्याप लेते हैं।

तत्सूर्यस्य देवत्वं तन्महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै ॥ ४ ॥

भा०—( सूर्यस्य ) सूर्य का जिस प्रकार ( तत् देवत्वं तत् महित्वम् ) स्वतः प्रकाशित होकर अन्यों को प्रकाश देना और महान् सामर्थ्य वाला होना यही ( तत् ) अनुपम है। वह ( कर्त्तोः मध्या ) लोक-व्यवहार के कार्यों के चलते रहने पर भी बीच में ( विततं संजभार ) अपने विस्तृत प्रकाश को संहार कर लेता है। ( यदा इत् ) सूर्य जब भी ( सधस्थात् ) एक ही स्थान से ( हरितः अयुक्त ) किरणें फैलाता है और दिन को प्रकट करता है और ( आत् ) बाद में ( रात्री ) रात्रि-काल ( सिमस्मै वासः तनुते ) सब पर अपना काले वस्त्र के समान अन्धकार रूप आवरण फैला देती है उसी प्रकार ( सूर्यस्य ) सबके प्रेरक परमेश्वर का ( देवत्वम् ) देवत्व भी ( तत् ) वह बड़ा अलौकिक है। परम प्रकाश और अक्षय दान सामर्थ्य भी बड़ा अद्भुत है और ( महित्वं तत् ) उसका महान् सामर्थ्य भी अलौकिक है कि ( कर्त्तोः मध्या ) बनाये हुए इस जगत् के बीच में ( विततं ) विस्तृत इस लोक को भी ( संजभार ) संहार कर देता है अर्थात् रचे लोकों का प्रलय कर देता है। (यदाइत्) जब वह एक तरफ ( हरितः ) अन्धकार को दूर करने वाले प्रकाशमान सूर्यों को ( अयुक्त ) स्थापित करता है तो भी दूसरी ओर ( आत् ) अनन्तर (रात्री) महा प्रलय रात्रि ( सिमस्मै ) समस्त जगत् पर पुनः सबको आवरण करने वाले अन्धकार को भी फैला देती है।

तन्मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद्रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति ॥ ५ ॥

भा०—( मित्रस्य ) मित्र, वायु ( वरुणस्य ) आकाश को आवरण करने वाले वरुण अर्थात् मेघ को अथवा मित्र, दिन और वरुण, रात्री इन दोनों को (अभिचक्षे) दिखाने या प्रकट करने के लिये ( सूर्यः ) सूर्य जिस

प्रकार ( द्योः उपस्थे ) आकाश में स्थिर होकर ( रूपं कृणुते ) अपने तेजो मय रूप को प्रकट करता है उसी प्रकार ( सूर्यः ) सबका प्रेरक और उत्पादक परमेश्वर (मित्रस्य वरुणस्य अभिचक्षे) मित्र अर्थात् मरण से त्राण करने वाली जीवन या सृष्टि और वरुण अर्थात् वारण करनेवाले मृत्यु या प्रलय को प्रकट करने के लिये ( रूपं कृणुते ) अपने तेज को प्रकट करता है। (अस्य) इस परमेश्वर का सूर्य के समान ( रुशत् ) देदीप्यमान ( पाजः ) चिन्मय सामर्थ्य भी ( अनन्तम् ) अनन्त, निःसीम है। ( अन्यत् ) रात्रि के अन्धकार के समान (कृष्णम्) काला, या सबको आकर्षण करने वाला, या परमाणु २ को छिन्न भिन्न करने वाला संहारक बल भी ( अनन्तम् ) अनन्त है। जिसको ( हरितः ) सूर्य की किरणों के समान तीव्र वेग से गति करने वाली शक्तियां ( सं भरन्ति ) धारण करती हैं।

**अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्। तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिंधुः पृथिवी उत द्यौः॥६॥७।१६**

भा०—( अद्य ) आज हे ( देवाः ) विद्वान् पुरुषो ! आप लोग ( सूर्यस्य उदिता ) सूर्य के उदय के समान हृदय में सर्वोत्पादक परमेश्वर के ज्ञानोदय हो जाने पर ( अवद्यात् ) निन्दनीय ( अंहसः ) पाप से भी ( निः पिपृत ) सर्वथा मुक्त हो जाओ। (तन्नो मित्रो०) इत्यादि पूर्ववत्।

इति सप्तमो वर्गः॥ इति षोडशोऽनुवाकः॥

## [ ११६ ]

कक्षीवानृषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१, १०, २२, २३ विराट् त्रिष्टुप्। २, ८, ९, १२, १३, १४, १५, १८, २०, २४, २५ निचृत् त्रिष्टुप्। ३, ४, ५, ७, २१ त्रिष्टुप्। ६, १६ १९ भुरिक् पंक्तिः। ११ पंक्तिः। १७ स्वराट् पंक्तिः॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम्॥

**नासत्याभ्यां बर्हिरिव प्र वृञ्जे स्तोमाँ इयर्म्यभ्रियेव वातः। यावर्भगाय विमदाय जायां सेनाजुवा न्यूहतू रथेन॥१॥**

भा०—( नासत्याभ्याम् ) जिनका विज्ञान कभी असत्य न हो ऐसे सत्य विद्या, विज्ञान वाले प्रमुख शिल्पियों के उपकार के लिये मैं राजा स्तोमान् ) मार्ग में आये पर्वत वृक्ष आदि बाधक पदार्थों को, तथा ( स्तोमान् ) शत्रु जन-समूहों को ( बर्हिः इव ) घास के समान ( प्र वृञ्जे ) काट गिराऊं । और ( अभ्रिया इव वातः ) वायु जिस प्रकार मेघस्थ जलों को प्रेरता है, छिन्न भिन्न कर देता है उसी प्रकार मैं (स्तोमान् इयर्मि) जन-समूहों को अपनी आज्ञा के बल पर चलाऊं। (यौ) जो वे दोनों सत्य विज्ञान वाले ( अर्भगाय ) अति अधिक ऐश्वर्यवान्, ( विमदाय ) विशेष हर्षोत्पादक युवा पुरुष के लिये ( जायां ) उसकी स्त्री को ( सेनाजुवा ) सेना को अपने साथ संचालन करने वाले ( रथेन ) रथ से ( नि ऊहतुः ) सुरक्षित रूप से ले जाते हैं। (२) अथवा—(नासत्याभ्याम् बर्हिः इव स्तोमान् प्रवृञ्जे ) असत्य व्यवहार रहित या नासिका के समान प्रमुख स्थान पर स्थित दोनों सेनाध्यक्षों के साथ मैं शत्रु गण को ( बर्हिः इव ) कुश तृण के समान काट गिराऊं। और (वातः अभ्रिया इव स्तोमान् इयर्मि) मेघों को वायु के समान सैनिक संघों को सञ्चालित करूं। ( यौ सेनाजुवा ) जो वे दोनों सेना के सञ्चालक होकर ( रथेन विमदाय जायां इव ) रथ से विशेष हर्षोत्पादक प्रिय पति के लिये उसकी बधू के समान ( अर्भगाय जायां ) अति ऐश्वर्यवान् राजा के निमित्त सर्वोत्पादक सर्वाश्रय भूमि को ( रथेन ) रथ सेना के बल से ( नि ऊहतुः ) प्राप्त कराते हैं ।

वीळुपत्मभिराशुहेमभिर्वा देवानां वा जूतिभिः शाशदाना ।
तद्रासभो नासत्या सहस्रमाजा यमस्य प्रधने जिगाय ॥ २ ॥

भा०—हे ( नासत्या ) सेना के नासिका या प्रमुख स्थान पर स्थित, कभी असत्य न देखने वाले चक्षुओं के समान अध्यक्ष पुरुषो ! आप दोनों ( वीडुपत्मभिः ) बलवान् चक्रों या पैरों वाले ( आशुहेमभिः ) शीघ्र गतिशील रथों से ( वा ) और ( देवानां ) युद्ध-विजिगीषु पुरुषों की

( जूतिभिः ) वेगवती सेनाओं से ( शाशदाना ) शत्रु सेनाओं को छिन्न भिन्न करते हो। ( तत् ) तब ( रासभः ) घोर गर्जनकारी तोप आदि यन्त्र (यमस्य) सर्व नियामक राजा के ( प्रधने आजा ) प्रचुर धन देने वाले संग्राम में ( सहस्रम् जिगाय ) सहस्रों को विजय करे। अथवा ( यमस्य सहस्रम् ) उपराम को प्राप्त हुए शत्रु के सहस्रों सेना बलों का विजय करे।

**तुग्रो॑ ह भु॒ज्युम॑श्विनोदमे॒घे र॒यिं न कश्चि॑न्ममृ॒वाँ अवा॑हाः।**
**तमू॑हथुर्नौ॒भिरा॑त्म॒न्वती॑भिरन्तरिक्ष॒प्रुद्भि॒रपो॑दकाभिः ॥ ३ ॥**

भा०—( कश्चित् ममृवान् ) जैसे कोई मरता हुआ पुरुष अपने जीवन रक्षा के लिये ( रयिम् अव अहाः ) धन का त्याग कर दे, उस समय जिस प्रकार दो नाविक (अन्तरिक्षप्रुद्भिः) जलों पर चलने वाली और ( अपोद-काभिः) पानी को भीतर न जाने देने वाली, सुदृढ़ नावों से पार उतार देते हैं। इसी प्रकार (तुग्रः) शत्रु हिंसक और प्रजापालक पुरुष भी रण में (ममृवान्) मरने पर उतारू होकर ( भुज्युम् ) अपने भोक्ता या पालक ( रयिम् ) राष्ट्र रूप ऐश्वर्य को ( उद-मेघे ) समुद्र के समान संकट दशा में त्याग देता है। ऐसी दशा में ( अश्विना ) शीघ्रगामी अश्वों और रथों के स्वामी अध्यक्ष जन ( तम् ) उसको ( आत्मन्वतीभिः ) अपने आत्मिक बल और विचार और मन्त्रणा युक्त ( नौभिः ) वाणियों रूप नावों से ( ऊहथुः ) उठा लें, उसे संकट से पार करें।

**ति॒स्रः क्षप॒स्त्रिरहा॑ति॒व्रज॑द्भि॒र्नास॑त्या भु॒ज्युमू॑हथुः पत॒ङ्गैः।**
**स॒मु॒द्रस्य॒ धन्व॑न्ना॒र्द्रस्य॑ पा॒रे त्रि॒भी रथैः॑ श॒तप॑द्भिः॒ षळ॑श्वैः ॥४॥**

भा०—( तिस्रः क्षपः ) तीन रात और ( त्रिः अहा ) तीन दिन लगातार ( अति व्रजद्भिः ) अति वेग से चलने वाले ( पतङ्गैः ) अश्वों के समान वेग से जाने वाले ( शतपद्भिः ) सैकड़ों चरणों वाले और ( षड् अश्वैः ) छः अश्व अर्थात् वेगवान् यन्त्र कलाओं से युक्त ( त्रिभिः

रथैः ) समुद्र, रेता और कीचड़ तीनों प्रकार की भूमियों में अथवा जल, स्थल और अन्तरिक्ष तीनों स्थानों पर चलने वाले ( त्रिभिः ) तीनों प्रकार के ( रथैः ) रथों से (नासत्या) सदा सत्य विज्ञान वाले दो विद्वान् ( भुज्युम् ) समस्त राष्ट्र के पालक और भोक्ता स्वामी तथा भोग्य ऐश्वर्य को ( समुद्रस्य ) समुद्र के, ( धन्वन् ) रेगिस्तान और अन्तरिक्ष के तथा ( आर्द्रस्य ) जल से युक्त कीचड़ वाले स्थल के ( पारे ) पार ( ऊहथुः ) पहुंचाया करें । अध्यात्म में—'भुज्यु' आत्मा है । 'अश्व' शरीर में लगे मन सहित पांच इन्द्रियें हैं । शत सौ वर्ष हैं । 'नासत्य' नसिकास्थ प्राण अपान हैं । तीन रात, तीन दिन बाल्य, यौवन और जरावस्था तथा उनके प्रारम्भ के तीन काल शैशव, नव यौवन, नई-बुढौती हैं । समुद्र धन्व और आर्द्र तीनों ज्ञान, कर्म और उपासना हैं ।

अ॒ना॒र॒म्भ॒णे तद॑वीरयेथामनास्था॒ने अ॑ग्रभ॒णे स॑मु॒द्रे ।
यद॑श्विना ऊ॒हथु॑र्भु॒ज्युमस्तं॑ श॒तारि॑त्रां ना॒वमा॑तस्थि॒वांस॑म् ॥५॥८॥

भा०—( यत् ) जो ( अश्विनौ ) विद्यावान् शिल्पवान् पुरुष ( शतारित्राम् ) सैकड़ों चक्षुओं वाली ( नावम् आतस्थिवांसम् ) नाव पर बैठे हुए ( भुज्युम् ) ऐश्वर्य के भोक्ता स्वामी तथा भोग्य ऐश्वर्य को ( अस्तं ऊहथुः ) घर लाते हैं ( तत् ) वे वस्तुतः ( अनारम्भणे ) अवलम्बन रहित (अनास्थाने) आश्रय के स्थल से रहित और (अग्रभणे) सहायता के लिये भी जहां कुछ पकड़ा न जा सके ऐसे (समुद्रे) समुद्र में (अवीरयेथाम्) पराक्रम करते हैं । (२) अध्यात्म में—'शतारित्रा' नाव शत-वर्ष जीवी देह है । उस पर बैठे हुए आत्मा कर्म फल भोक्ता को प्राण और अपान या गुरु और परमेश्वर 'अस्त' अर्थात् परम शरण मोक्ष तक पहुंचाते हैं तो वे दोनों उस आत्मा को ऐसी दशा में पहुंचाते हैं जहां प्रथम आरम्भ अर्थात् कर्म का उदय न हो, द्वितीय अनास्थान अर्थात् देह में स्थिति न हो, तृतीय अग्रभण अर्थात् कर्म का बन्धन न हो ऐसे समुद्र अर्थात् रस-सागर आनन्द-मय

समुद्र में वे उस आत्मा को प्रेरित करते हैं। अथवा यह जगत् कामनामय समुद्र है, जो 'अनारम्भण' है अर्थात् इसमें कुछ करते नहीं बनता, अनास्थान' अर्थात् कोई आश्रय या शरण नहीं, 'अग्रभण' अर्थात् शाखावलम्ब या हस्तावलम्ब नहीं हैं। इत्यष्टमो वर्गः॥

**यमश्विना दुदथुः श्वेतमश्वमघाश्वाय शश्वदित्स्वस्ति।**
**तद्वां दात्रं महि कीर्तेन्यं भूत्पैद्वो वाजी सदमिद्धव्यो अर्यः॥ ६॥**

भा०—हे ( अश्विना ) शीघ्रगामि रथों के सञ्चालन करने में कुशल शिल्पियो ! तुम दोनों ( अघाश्वाय ) कभी न मरने वाले अश्व के स्वामी, राजा को ( यम् श्वेतं अश्वम् ) जो श्वेत, चमकता हुआ, या अति बलशाली मार्गगामी साधन ( ददथुः ) देते हो ( तत् शश्वत् इत् ) वह सदा अनादि सिद्ध, सदाकाल के लिये ( स्वस्ति ) कल्याणदायक हो, वह ( वां ) तुम दोनों का ( महि ) बहुत बड़ा ( कीर्त्तेन्यम् ) कीर्त्तिजनक ( दात्रं भूत् ) दान है। उसीसे ( वाजी ) वेग से जाने वाला साधन ( पैद्वः ) सुख से स्थानान्तर पहुंचने में समर्थ होता है और ( सदम् इत् ) सदा ही ( अर्यः हव्यः ) वणिग् जन या स्वामी ग्राह्य पदार्थों को लेने में समर्थ होता है। अथवा ( वाजी सद्मित् पैद्वः हव्यः अर्यः भूत् ) वेगवान् होकर शीघ्र ही अपने गृह पहुंच कर स्वामी स्तुति योग्य होता है। (२) अध्यात्म में—'अघाश्व' अमृत चेतन जीव है। प्राणापान का अभ्यास उसको 'श्वेत अश्व' अर्थात् शुक्र, व्यापक, अनादि सिद्ध, आनन्दमय ब्रह्म का साक्षात् कराता है। वह बड़ा स्तुत्य ज्ञान प्रदाता, ( वाजी ) ज्ञानैश्वर्यवान् अपने प्राप्तव्य पद को पहुंचा हुआ, कृतकृत्य आत्मा 'पैद्व' है। और (अर्यः) सबका स्वामी परमेश्वर ही सदा ( हव्यः ) अर्थात् उपास्य और शरण योग्य है।

**युवं नरा स्तुवते पज्रियाय कक्षीवते अरदतं पुरंन्धिम्।**
**कारोतराच्छफादश्वस्य वृष्णः शतं कुम्भाँ असिञ्चतं सुरायाः॥७॥**

भा०—हे (नरा) सन्मार्ग पर ले जाने वाले शिक्षक विद्वान् पुरुषो ! ( युवं ) आप दोनों ( स्तुवते ) यथार्थ विद्याभ्यास करनेवाले, (पज्रियाय) ज्ञान प्राप्त करने के मार्ग में विद्यमान, ( कक्षीवते ) अश्व के समान कसे कसाये, सदा कटिबद्ध, या कक्ष में यज्ञोपवीत धारण करने वाले शिष्य जन को ( पुरन्धिम् ) बहुत अधिक ज्ञान धारण करने में समर्थ बुद्धि का ( अरदतम् ) प्रदान करते हो । हे दोनों नायक पुरुषो ! ( अश्वस्य शफात् इव ) घोड़े के खुर के आकार के बने ( वृष्णः ) मेघ के समान जल नीचे बरसाने वाले ( कारोतरात् ) कारोतर अर्थात् छनने से ( सुरायाः ) जल के समान सुख शान्ति और आनन्द देनेवाली विद्या रूप रस के ( शतं कुम्भान् ) सैकड़ों कलसे ( असिञ्चतम् ) सेचन करो, अर्थात् उसे विद्या-स्नातक और व्रतस्नातक करो । ब्रह्मचर्यपूर्वक नियम से शिक्षा प्राप्त करने वाले गुरुजन बहुत ज्ञान दें और बाद में सहस्र-धारा-स्नान के लिये अश्व के खुराकार छनने से जल के शतघटों से राज्याभिषेक के समान अभिषेक कराकर विद्यास्नातक और व्रतस्नातक बनावें। (२)यद्वा—(वृष्णः अश्वस्य शफात् ) वर्षणशील, व्यापनशील मेघ के समान ज्ञान का वर्षण करनेवाले, विद्या में पारंगत आचार्य का उपदेश रूप ( कारोतरात् ) बड़े भारी शुद्ध ज्ञान और आचार शिक्षा को छान पवित्र कर देने वाला छनना है, उससे ( सुरायाः ) सुख और आनन्द के देनेवाली शिक्षा के मानो सैकड़ों कुम्भों से उसका स्नान करावें । राजा के पक्ष में—(नरा) दो वीर सेना और सभा के नायक (पज्रिया) वेग से शत्रु पर आक्रमण करने वाले अथवा (पज्रिया) उच्च पद प्राप्त होने योग्य अधिकार के योग्य (कक्षीवते) बगल में पेटी आदि वस्त्र धारण करने वाले, राज्यरक्षा के लिये सन्नद्ध पुरुष को ( पुरन्धिम् अरदतम् ) नगर को धारण करने, उस पर शासन करने का सामर्थ्य और अधिकार प्रदान करें । और उस पर (वृष्णः अश्वस्य शफात् कारोतरात् ) बलवान् अश्व के खुर के आकार वाले छानने

से ( सुरायाः शतं कुम्भान् ) जल के सैकड़ों कलसों से ( असिञ्चतम् ) राज्य-अभिषेक करें । अश्व के खुर के आकार का छनना बनाने का अभिप्राय केवल बलवान् अश्वारोही सेना के बल पर राज्यलक्ष्मी प्राप्त कराना है । 'सुरा' अर्थात् जलधारा सुख से रमण करने योग्य राज्यलक्ष्मी का प्रतिनिधि है । ( ३ ) अध्यात्म में—प्राण और अपान दोनों कक्षीवान् नामक मुख्य प्राण को देह रूप पुर के धारण पोषण का बल प्रदान करते हैं । वह सदा गतिशील होने से 'पज्रिय' है । देह में हृदय और फुफ्फुसों का जोड़ा अश्वके खुरों के आकार का होने से वही रक्त शोधक छनना है उससे सुरा उत्तम जीवन प्रद रस-धारा रक्त के सहस्रों, कुम्भ अर्थात् कोष्ठ या सैलों से सेचित किये जाते हैं । अधिदैवत पक्ष में—(४) आकाश पृथिवी दोनों अश्वी हैं। वे दोनों (पज्रियाय) प्रकाशमय किरणों से युक्त आकाश में गति करनेवाले सूर्य को ब्रह्माण्ड पालन का सामर्थ्य देते हैं । ( वृष्णः अश्वस्य ) वर्षणशील मेघ के ( शफात् ) संघ से जल के सैकड़ों घड़े मानो छलनी से सहस्र धारा के रूप में बरसाते हैं ।

हिमेनाग्निं घ्रंसमवारयेथां पितुमतीमूर्जमस्मा अधत्तं ।
ऋबीसे अत्रिमश्विनावनीतमुन्निन्यथुः सर्वगणं स्वस्ति ॥ ८ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) आकाश और पृथिवी या दिन रात्रि तुम दोनों मिलकर (हिमेन) शीतल जल से ( अग्निम् ) अग्नि को और ( हिमेन घ्रंसम् ) शीतल जल से ही दिन के परितापको वृष्टि द्वारा ( अवारयेथाम्) निवारण करते हो । तुम दोनों ही कारग क्रम से ( अस्मै ) इस प्राणि-वर्ग को ( पितुमतीम् ) अन्न से युक्त ( ऊर्जम् ) बल, पराक्रम और सम्पत्ति ( अधत्तम् ) प्रदान करते हो । ( ऋबीसे ) पृथ्वी पर ( अवनीतम् ) नीचे गिरे हुए ( सर्वगणम् ) सब प्रकार के भूखसे पीड़ित (अत्रिम्) भोक्ता जीव-गण को और भोगने योग्य अन्नादि ओषधि गण को ( उत् निन्यथुः ) ऊपर

उठाते हो, जीवन प्रदान करते और जल द्वारा सेचित कर हरा भरा करते हो। (२) नायकों के पक्ष में—हे वीरनायको! तुम दोनों (हिमेन अग्निम्) हिम से अग्नि के निवारण करने के समान (हिमेन) शत्रुहनन करने के साधन सेनाबल से (घ्रंसम्) संतापकारी शत्रु को वारण करो। (अस्मै) इस प्रजाजन को (पितुमतीम् ऊर्जम्) पालक बल से युक्त पराक्रम प्रदान करो। (ऋबीसे) तेज के नष्ट हो जाने पर भी (अवनीतम् अत्रिम्) उत्साह, धन और प्रज्ञा तीनों बल से रहित राजा को भी (सर्वगणं) समस्त अनुयायी गणों सहित (स्वस्ति उत् निन्यथुः) कुशल से उन्नत पद पर पहुंचा दो। (३) प्राण और अपान दोनों आहित अग्नि के समान देह के संताप को कम करते, अन्न रस वाली पुष्टि देते, (ऋबीसे) उदर में स्थित अन्न को सब प्राणों सहित शरीर के कल्याण के लिये ऊपर उठाते हैं।

**परावतं नासत्यानुदेथामुच्चाबुध्नं चक्रथुर्जिह्मबारम्।**
**क्षरन्नापो न पायनाय राये सहस्राय तृष्यते गोतमस्य ॥ ९ ॥**

भा०—हे (नासत्या) सत्य विज्ञान के नियमों से युक्त सूर्य और वायु तुम दोनों (उच्चा बुध्नम्) ऊपर आकाश में मूल आधार वाले, (अवतम्) सब के रक्षा करने वाले मेघ को (परानुदेथाम्) दूर दूर देशों तक ले जाते हो और उसको (जिह्मबारम्) तिरछे जल वाला (चक्रथुः) बना देते हो। (तृष्यते) प्यासे प्राणी वर्ग और ओषधि वर्ग को (पायनाय) पिलाने के लिये और (गोतमस्य) पृथिवी के स्वामी के (सहस्राय राये) अनेक ऐश्वर्य, धन धान्य उत्पन्न करने के लिये (आपः न क्षरन्) अनेक जल धाराएं भी फूट निकलती हैं। (२) राजा के पक्ष में—वे दोनों प्रमुख नायक (अवतम्) रक्षाकारी सैन्य बल को दूर तक भेजें और उसको उच्च अधिकारियों के आश्रय में बद्ध करके (जिह्मवारं चक्रथुः) कुटिल शत्रु के वारण करने में समर्थ करें। (तृष्यते पायनाय आपः न)

प्यासे को पिलाने के लिये जिस प्रकार जल बहते हैं उसी प्रकार ( गो-तमस्य राये सहस्राय क्षरन् ) वे वीर जन अपने श्रेष्ठ राजा के सहस्रों ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये वेग से गमन करें ।

जुजुरुषो नासत्योत वव्रिं प्रामुञ्चतं द्रापिमिव च्यवानात् ।
प्रातिरतं जहितस्यायुर्दस्रादित्पतिमकृणुतं कनीनाम् ॥ १० ॥ ६ ॥

भा०—( च्यवानात् ) युद्ध में भाग जाने वाले भीरु से (द्रापिम् इव) जिस प्रकार सेनापति कवच छुड़ा लेता है । उसी प्रकार हे ( नासत्या ) सत्य नियमों के व्यवस्थापक राष्ट्र और दो नायक विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( जुजुरुषः ) आयु समाप्त करने वाले वृद्ध ( च्यवानात् ) संसार भोगते हुए मरणोन्मुख पुरुष से ( वव्रिम् ) विभाग करने योग्य धन सम्पत्ति को ( प्र मुञ्चतम् ) मरने से पूर्व ही छुड़ा कर अगले आने वाले सन्तान को प्रदान करो । ( जहितस्य आयुः ) त्यागी पुरुष की ( आयुः ) जीवन को ( प्र तिरतम् ) उत्तम रीति से बढ़ाओ । हे ( दस्रा ) दुःखों के नाश करने वाले ! तुम दोनों (कनीनाम् ) उस पुरुष की कन्याओं के लिये योग्य ( पतिम् ) पति का ( अकृणुतम् ) प्रबन्ध करो । इति नवमो वर्गः ॥

तद्वां नरा शंस्यं राध्यं चाभिष्टिमन्नासत्या वरूथम् ।
यद्विद्वांसा निधिमिवापगूळ्हमुद्दर्शतादूपथुर्वन्दनाय ॥ ११ ॥

भा०—हे ( नरा ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! गृहस्थ के नायक नायिकाओ ! तुम दोनों ( नासत्या ) परस्पर कभी असत्याचरण न करते हुए ( दर्शतात् ) दर्शनीय सुन्दर स्त्री रूप से ( वन्दनाय ) स्तुति योग्य पुत्र लाभ करने लिये ( यत् अपगूढम् निधिम् इव ) खूब गहरे छिपे जिस ख़ज़ाने को ( उत् ऊपथुः ) वपन कर प्राप्त करते हो ( तत् ) वह ( वां ) तुम दोनों का (शंस्यं) प्रशंसा करने योग्य, (अभिष्टिमत् ) उत्तम एषणा से युक्त ( वरूथम् ) दुःखों से बचाने वाला और वरणीय, श्रेष्ठ, ( राध्यम् ) प्राप्त करने योग्य धन के समान हो ।

तद्वां नरा सनये दंसं उग्रमाविष्कृणोमि तन्यतुर्न वृष्टिम् ।
दध्यङ् ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्र यदीमुवाच ॥१२॥

भा०—हे ( नरा ) सन्मार्ग में लेजाने वाले उपदेशक और अध्यापक जनो ! ( तन्यतुः ) घोर शब्दकारी विद्युत् जिस प्रकार वृष्टि को प्रकट करती है उसी प्रकार मैं ( दध्यङ् आथर्वणः ) धारण करने योग्य ऐश्वर्यों को प्राप्त राजा किसी प्रकार की भी हिंसा न करने वाले शमादि युक्त मां बाप और प्रजापालक गुरुओं का शिष्य होकर ( वां ) आप दोनों स्त्री पुरुष वर्गों को ( सनये ) ज्ञान और ऐश्वर्य प्रदान करने के लिये ( अश्वस्य शीर्ष्णा ) अश्व सैन्य या भोक्ता राजा होने के प्रमुख अधिकार से ( उग्रम् दंसः ) अति उग्र, प्रबल अज्ञान और पाप के नाशक ज्ञान और दण्ड प्रयोग का भी (आविष्कृणोमि) प्रयोग करूं, ( यत् ) जैसे ( दध्यङ् ) ज्ञान का धारण करने वाला ( अथर्वणः ) अथर्ववेद का ज्ञाता विद्वान् ( वाम् ) तुम दोनों को ( अश्वस्य शीर्ष्णा ) सकल विज्ञानों में पारंगत आचार्य के ( शीर्ष्णा ) मुख्य पद से ( वाम् ) तुम दोनों को ( मधु ) मधुर आनन्द-जनक ज्ञान का ( प्र उवाच ) प्रवचन करता है । अर्थात् प्रशान्त, वेदविद् विद्वान् जिस प्रकार प्रमुख होकर ज्ञान प्रदान करे उसी प्रकार राष्ट्र की ऐश्वर्य की वृद्धि के लिये राजा अपने दण्ड आदि उग्र कर्म को भी मेघ के समान निष्पक्षपात होकर (अश्वस्य शीर्ष्णा) अश्व बल तथा राष्ट्र में व्यापक, भोक्ता राजा होने के मुख्य बल से करे । राजा जब अपने मधु रूप पृथिवी राज्य को प्रजावर्गों को सौंप देता है तब भी उसका भोक्ता होने का मुख्य पद लुप्त हो जाता है और इसी प्रकार ब्रह्मज्ञानी शिष्य वर्गों को अपना पूर्ण ज्ञान देकर अपने बराबर बना देता है तब वह भी उनको स्नातक बना देने से उनके प्रति गुरु का कार्य नहीं करता । इसी को अलंकार से अश्वियों को अश्व के शिर से उपदेश करना और पुनः उसका छेदन करना कहा गया है ।

अजोहवीन्नासत्या करा वां महे यामन्पुरुभुजा पुरन्धिः।
श्रुतं तच्छासुरिव वध्रिमत्या हिरण्यहस्तमश्विनावदत्तम् ॥१३॥

भा०—हे ( नासत्या ) कभी असत्य आचरण न करने वालो ! और हे मुख पर नासिका के समान यशस्वी, मुख्य पद पर विराजमान ! ( वां ) आप दोनों को ( करा ) कार्यकुशल और ( पुरुभुजा ) बहुत सी प्रजाओं और राष्ट्रों के पालने और बहुत सी भुजाओं अर्थात् योद्धा वीर जनों सहित बलवान् जानकर ( पुरन्धिः ) पुर की रक्षा करने वाली संस्था (महे यामन्) बड़े भारी युद्ध यात्रा के काल में ( अजोहवीत् ) बुलाती और ( करः ) मुख्य कार्यकर्त्ता रूप में स्वीकार करती है। आप दोनों ( शासुः इव ) गुरु के उपदेश के समान अथवा शासक राजा के समान ही (वध्रिमत्याः) बढ़ी हुई शक्ति से सम्पन्न उस राजसभा के ( तत् ) उस शासन को ( श्रुतं ) श्रवण करो। हे (अश्विनौ) अश्व बल के स्वामी, आप दोनों उसको ( हिरण्यहस्तम् ) हित और रमणीय हाथ अर्थात् अवलम्ब अथवा ( हिरण्यहस्तम् ) सुवर्णादि धन को हाथ में रखने वाले वैश्य वर्ग को अथवा सुवर्ण के समान कान्तिमान् हनन साधन से, या बल के स्वामी तेजस्वी पुरुष को आश्रय रूप से ( अदत्तम् ) प्रदान करो। राजसभा की शक्ति बहुत बढ़ जाने पर उसके सभापति या राजा का बल कम होता है। इसलिये वह 'वध्रिमती' है। क्योंकि उसका पति नपुंसक के समान उदासीन और बल-हीन है। ऐसी दशा में दो प्रमुख अधिकारी सभा के कार्यों को वैश्य वर्ग के धन के बल पर चलावें। उस राजसभा में धनाढ्यों का ही बल रहता है।

आस्नो वृकस्य वर्तिकामभीके युवं नरा नासत्यामुमुक्तम्।
उतो कविं पुरुभुजा युवं ह कृपमाणमकृणुतं विचक्षे ॥ १४ ॥

भा०—हे ( नरा ) नायक पुरुषो ! ( नासत्या ) कभी असत्य मार्ग पर न जाने वाले प्रमुख पुरुषो ! जिस प्रकार ( वर्त्तिकाम् ) वार २ आने

वाली उषा को ( वृकस्य ) घेर लेने वाले अन्धकार के मुख से छुड़ाकर ( विचक्षे ) पदार्थों के प्रकाश करने वाले सूर्य को प्रकट करते हो और जिस प्रकार कोई नर नारी भेड़ियों के मुख से बटेरी को छुड़ा कर किसी दयाशील की रेख देख में उसे धर दे उसी प्रकार ( युवम् ) तुम दोनों ( वृकस्य ) भेड़िये के समान पीठ पीछे से आक्रमण करने वाले डाकू लोगों के ( आस्नः ) प्रजा के खा जाने वाले मुख अर्थात् अत्याचार से (अभीके) परस्पर प्रतिद्वन्द्विता के अवसर पर, व ( वर्त्तिकाम् ) नाना वृत्तियों, व्यवसायों और उद्योगों से गुजर करने वाली, बटेरी के समान निर्बल दुःखी प्रजा को ( अमुमुक्तम् ) सदा छुड़ाते रहो। ( उतो ) और हे ( पुरुभुजा ) बहुतों को पालने और भोगने में समर्थ ( युवं ) आप दोनों ( विचक्षे ) विविध न्याय व्यवहारों को देखने के लिये अध्यक्ष पद पर ( कृपमाणम् ) प्रजा पर कृपा और अनुग्रह करने वाले और समर्थ ( कविम् ) दूरदर्शी विद्वान्, प्रज्ञावान् पुरुष को ( अकृतम् ) नियुक्त करो।

**च॒रित्रं॒ हि वेरि॒वाच्छे॑दि प॒र्णमा॒जा खे॒लस्य॒ परि॑तक्म्यायाम्।**
**स॒द्यो जङ्घा॒माय॑सीं वि॒श्पला॑यै॒ धने॑ हि॒ते सर्त॑वे॒ प्रत्य॑धत्तम्॥१५॥१०**

भा०—(परितक्म्यायाम्) रात्रि में, या अन्धकारमयी अज्ञान दशा में, संकटावस्था में ( खेलस्य ) भोग विलास की क्रीड़ा करने वाले राजा का ( चरित्रम् ) शील और और चरित्र या आगे बढ़ने वाला क़दम ( वेः इव पर्णम् ) पक्षी के पंख के समान ( अच्छेदि ) कट जाता है। उस समय हे विद्वान् पुरुषो ! आप दोनों (विश्पलायै) प्रजावर्ग की पालन करने वाली नीति की रक्षा के लिये, ( धने हिते ) ऐश्वर्य प्राप्ति और प्रजाहित के निमित्त और ( सर्त्तवे ) आगे बढ़ने के लिये (सद्यः) शीघ्र ही ( आयसीं जंघाम् ) लोहे की बनी, शत्रु को मारने वाली सशस्त्र सेना को, गाड़ी में लगे लोहे के पहिये के समान ( प्रति अधत्तम् ) संयोजित करो। इति दशमो वर्गः॥

शतं मेषान्वृक्ये चक्षदानमृज्राश्वन्तं पितान्धं चकार ।
तस्मा अक्षी नासत्या विचक्ष आधत्तं दस्रा भिषजावनर्वन् ॥१६॥

भा०—जो ( पिता ) प्रजा के मा बाप के समान पालक पद पर बैठ कर भी प्रजा पालक राजा (वृक्ये) चोर सरकार को बनाये और दृढ़ रखने के लिये (शतं मेषान्) सैकड़ों प्रतिस्पर्द्धी विद्वान् सभासदों को भी (चक्षदानं ) शासन करने में समर्थ ( ऋजाश्वम् ) सरल स्वभाव के पुरुष को ( अन्धम् चकार ) अन्धकार में रक्खे और पीड़ित करे तो ( नासत्या ) सदा सत्य व्यवहार के करने वाले मुख्य नायक पुरुष ( दस्रा भिषजौ ) दुःखों और दुष्ट पुरुषों के नाशक, उत्तम वैद्यों के समान ( अनर्वन् तस्मै ) ज्ञानरहित, वेचारे उसके ( अक्षी अधत्तम् ) राजव्यवहार को देखने वाली आँखें प्रदान करें जिससे प्रजा का नाश न हो।

आ वां रथं दुहिता सूर्यस्य कार्ष्मेवातिष्ठदर्वता जयन्ती ।
विश्वे देवा अन्वमन्यन्त हृद्भिः समु श्रिया नासत्या सचेथे ॥१७॥

भा०—( दुहिता अर्वता कार्ष्मं इव ) कन्या जिस प्रकार विवाह काल में विद्वान् पुरुष के साथ काठ के पीढ़े या रथ पर बैठती है ठीक उसी प्रकार (सूर्यस्य दुहिता) सूर्य की पुत्री के समान उषा (अर्वता) गतिशील सूर्य के प्रकाश के साथ (जयन्ती) अन्धकार पर विजय पाती हुई (वां रथं अतिष्ठत्) हे दिन रात्रि ! तुम्हारे उत्तम रमणीय रूप पर विराजती है। इसी प्रकार, हे ( नासत्या ) मुख्य स्थान पर विराजने वाले दो प्रमुख पुरुषो ! सर्वाज्ञापक राजा के समस्त मनोरथों और बल को पूर्ण करने वाली ( जयन्ती ) विजयशील सेना ( अर्वता ) अश्व के सैन्य से युक्त होकर भी ( वां ) तुम दोनों के (रथं) रथ नामक सैन्य पर ( अतिष्ठत् ) आश्रित रहती है। ( विश्वे देवाः ) सभी विद्वान् और विजयेच्छु योद्धा जन (हृद्भिः) हृदयों से ( अनु अमन्यन्त ) आप दोनों को अनुमति दें। आप दोनों

( श्रिया ) शोभा या लक्ष्मी से ( सचेथे ) युक्त होकर रहो । (२) गृहस्थ-पक्ष में—(सूर्यस्य दुहिता उषा इव दुहिता जयन्ती काष्मं इव अर्वता रथम् अतिष्ठत् ) सूर्य की उषा के समान उत्तम तेलस्विनी बाप की बेटी, काठ के पीढ़े के समान उच्च घोड़े से जुते रथ पर विराजे । अथवा (अर्वता) विद्वान् पुरुष से युक्त गृहस्थ रूप रथ पर विराजे, हे (नासत्या) परस्पर असत्य आचरण न करने वाले वर वधू ! (वां विश्वे देवा अनुमन्यन्त) तुम दोनों को समस्त पुरुष अनुमति दें। तुम दोनों (श्रिया संसचेथे) लक्ष्मी विद्वान् शोभा से युक्त होकर रहो।

यदयातं दिवोदासाय वर्तिभरद्वाजायाश्विना हयन्ता ।
रेवदुवाह सचनो रथो वां वृषभश्च शिंशुमारश्च युक्ता ॥ १८ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) अश्व सेना के स्वामी दो मुख्य सेनापति और सैन्यवर्गो ! आप दोनों ( यद् ) जब ( दिवोदासाय ) युद्ध की कामना करने और शत्रु के नाश करने वाले के लिये और (भरद्वाजाय) पुष्ट और वेगवान् योद्धाओं के स्वामी के लिये ( हयन्ता ) वेग से जाते हुए ( रेवत् ) ऐश्वर्य से युक्त ( वर्त्तिः ) गृह या व्यवहार पद को प्राप्त होते हो तब ( वां ) तुम दोनों को ( सचनः ) परस्पर आश्रित ( रथः ) रथ ( वृषभः ) मेघ के समान समस्त सुखों का वर्षण करने वाला और (शिंशु-मारः च ) दुःष्ट शत्रुओं का नाश करने वाला होकर ( युक्ता वां ) परस्पर संयुक्त हुए आप दोनों को ( उवाह ) धारण करता है । ( २ ) हे वर वधू गृहस्थ जनो ! तुम दोनों ( हयन्ता ) समान रूप से जाते हुए ज्ञान प्रकाश के देने वाले विद्वान् और अन्नादि से भरण पोषण करने वाले माता पिता के हित के लिये ( रेवत्-वर्त्तिः ) धन धान्य, सम्पन्न गृह को प्राप्त होते हो तब (सचनः) एक दूसरे के सब अंगों से पूर्ण, गृहस्थ रूप रमण का साधन, रथ ( युक्ता वां ) एक दूसरे से विवाह बंधन में बंधे हुए आप दोनों को ( उवाह ) धारण करे । वह गृहस्थ रूप रथ वृषभः सुखों का वर्षक और ( शिंशुमारः च ) दुखों का नाशक हो ।

र॒यिं सु॑क्ष॒त्रं स्व॑प॒त्यमायुः॑ सु॒वीर्यं॑ नासत्या॒ वह॑न्ता।
आ ज॒ह्नावीं॒ सम॑नसोप॒ वाजै॒स्त्रिरह्नो॑ भा॒गं दध॑तीमयातम् ॥ १९ ॥

भा०—हे ( नासत्या ) सदा सत्य पालन करने वाले प्रमुख राजपुरुषो ! हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( रयिम् ) ऐश्वर्य, ( सुक्षत्रम् ) उत्तम क्षात्रबल, उत्तम राज्यव्यवस्था, ( सु-अपत्यम् ) उत्तम सन्तान, (आयुः) दीर्घ जीवन और अन्न, ( सुवीर्यम् ) उत्तम वीर्य बल ( वहन्ता ) धारण करते हुए ( समनसा ) और एक दूसरे से समान चित्त वाले होकर ( भागं ) अपने सेवन करने योग्य ऐश्वर्य को धारण करने वाली ( जह्नावीम् ) शत्रुओं पर हथियार छोड़ने वाले सेनापति की, या वेतन भृति आदि देने वाले राजा की सेना को देखने भालने के लिये ( वाजैः ) वेगवान् अश्वों और भृत्यों सहित (अह्नः त्रिः उप अयातम्) दिन में तीन २ वार आवें। ( २ ) गृहस्थ स्त्री पुरुष ( भागं दधतीं ) सुखादि देने वाली ( जह्नावीं ) वीर्य दान देने वाले पति की सन्तति को दिन में तीन वार प्राप्त हों। उनकी देख भाल तीन वार कर लिया करें, उनको भोजनादि से सन्तुष्ट किया करें।

परि॑विष्टं जाहु॒षं वि॒श्वतः॑ सीं सु॒गेभि॒र्नक्त॑मूहथू॒ रजो॑भिः।
वि॒भि॒न्दुना॑ नासत्या॒ रथे॑न॒ वि पर्व॑ताँ अजर॒यू अ॑यातम् ॥२०॥११॥

भा०—हे ( नासत्या ) दो प्रमुख नायको ! आप दोनों ( जाहुषं ) गन्तव्य, प्रयाण करने योग्य स्थान को ( विश्वतः सीम् ) सब ओरों से ( परि विष्टम् ) घेर लेओ और ( सुगेभिः ) सुख से गमन करने योग्य ( रजोभिः ) मार्गों से अपने सैन्य को ( नक्तम् ) रात रात में ( ऊहथुः ) लेजाओ। ( विभिन्दुना ) विविध प्रकार से ( पर्वतान् ) पर्वतों के समान अचल शत्रुओं को भी भेद डालने वाले ( रथेन ) रथ सैन्य से युक्त होकर ( अजरयू ) अपने जीवन और बल की हानि करते हुए ( अयातम् ) प्रमाण करो। ( २ ) हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनों इस भोग्यसुख को

प्राप्त होवो। सुखदायक ( रजोभिः ) राजस सुखों से रात्रि काल व्यतीत करो। पर्वतों के समान विशाल कष्टों के भी तोड़ने वाले ( रथेन ) बल, वीर्य या गृहस्थ के परस्पर रमण साधन उपायों से जरा रहित होकर संसार की यात्रा करो।

**एकस्या वस्तोरावतं रणाय वशमश्विना सनये सहस्रा।**
**निरहतं दुच्छुना इन्द्रवन्ता पृथुश्रवसो वृषणावरातीः ॥ २१ ॥**

भा०—( अश्विना ) हे शीघ्र तर जानेवाले सैन्य के प्रमुख नायको! दोनों तुम (सहस्रा सनये) हज़ारों सुखों के देने वाले ऐश्वर्य को प्राप्त करने के लिये ( एकस्याः वस्तोः ) एक २ दिन के (रणाय) युद्ध के लिये ( वशम् आ अवतम् ) वशकारी, सर्व नियामक और जितेन्द्रिय पुरुष को सुरक्षित रक्खो। ( इन्द्रवन्तौ ) ऐश्वर्यवान् राजा के बल से बढ़ कर ( वृषणा ) अस्त्रों की शत्रुओं पर वर्षा करते हुए ( दुच्छुनाः ) दुःखदायी, सुख के नाशक, ( पृथुश्रवसः ) विशाल ऐश्वर्यवाली ( अरातीः ) अदानशील शत्रु सेनाओं को ( निर् अहतम् ) अच्छी प्रकार नाश करो। ( २ ) स्त्री पुरुष सहस्रों सुखों के भोगने और एक दिन के भी ( रणाय ) रमण करने के लिये ( वशम् आवतम् ) वश अर्थात् इन्द्रिय संयम का पालन करें। बलवान् होकर ( पृथुश्रवसः ) अति ज्ञान धन वाले ( दुच्छुनाः ) दुष्ट सुखों के नाशक ( अरातीः ) सुख न देने वाली दुश्चेष्टाओं को परे मार भगावें।

**शरस्य चिदार्चत्कस्यावतादा नीचादुच्चा चक्रथुः पातवे वाः।**
**शयवे चिन्नासत्या शचीभिर्जसुरये स्तर्यं पिप्यथुर्गाम् ॥ २२ ॥**

भा०—( चित् ) जिस प्रकार ( नीचात् ) नीचे, गहरे ( अवतात् ) कूप से भी ( पातवे ) पान करने के लिये ( वाः उच्चा ) जल ऊपर निकाल लिया जा है। उसी प्रकार ( शरस्य ) हिंसा के व्यसनी ( नीचात् ) निकृष्ट कोटि के पुरुष के ( अवतात् ) रक्षण सामर्थ्य से भी (पातवे) प्रजा

पालन के लिये ( वाः ) शत्रुओं का वारण ( चक्रथुः ) करो । उसी प्रकार ( आर्चत्कस्य ) पूज्य, विद्वान् पुरुष के ( उच्चा ) उत्कृष्ट कोटि के ( अवतात् ) ज्ञान रक्षण सामर्थ्य रूप ( अवतात् ) मेघ से ( वाः चक्रथुः ) जल के समान शान्तिदायक, दुःखवारक ज्ञान प्राप्त करो । हे ( नासत्या ) प्रमुख नायको ! तुम दोनो ( चित् ) जिस प्रकार ( शयवे स्तर्यम् ) सोने वाले के लिये बिस्तर बिछाया जाता है उसी प्रकार ( जसुरये ) शत्रुओं के नाश करने वाले के लिये ( शचीभिः ) अपनी सेनाओं के बल पर ( स्तर्यम् ) विस्तृत ( गाम् ) भूमि को ( पिप्पथुः ) बढ़ाओ, प्रदान करो । ( २ ) इसी प्रकार स्त्री पुरुष कुए से जल के समान शत्रु हिंसक और विद्वान् के रक्षण तथा ज्ञान सामर्थ्य से वरणीय, दुःखवारक बल और ज्ञान प्राप्त करें । सोने वाले को बिस्तर और ( जसुरये ) अज्ञान नाशक विद्वान् को ( गाम् ) शुभ वाणी और उत्तम गौ प्रदान करें ।

**अवस्यते स्तुवते कृष्णियाय ऋजूयते नासत्या शचीभिः ।**
**पशुं न नष्टमिव दर्शनाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय ॥ २३ ॥**

भा०—हे ( नासत्या ) सत्य ज्ञान और व्यवहार वाले विद्वान् प्रमुख पुरुषो ! आप दोनों ( अवस्यते ) अपने रक्षण और ज्ञान चाहने वाले, ( स्तुवते ) स्तुतिशील, विद्वान्, ( कृष्णियाय ) सबके चित्तों के आकर्षक, या दुःखों के विनाश करने में समर्थ, ( ऋजूयते ) धर्म मार्ग पर चलने हारे, सरल, ( विश्वकाय ) सर्व हितकारी पुरुष को ( दर्शनाय ) व्यवहारों को यथार्थ रूप से देखने के लिये ( शचीभिः ) अपनी शक्तियों और ज्ञान वाणियों द्वारा (विष्णाप्वम्) व्यापक, ज्ञानशील विद्वानों से प्राप्त होने वाला ज्ञान ( नष्टं पशुं न ) खोये हुए पशु के समान ( ददथुः ) प्रदान करो । इसी प्रकार माता पिता दोनों भी अपनी रक्षा चाहने वाले, स्तुतिशील मनोहर, धर्मात्मा, सर्वहितकारी पुत्र या शिष्य को प्रभु के दर्शन के लिये]

खोये पशु के समान ( विष्णाप्वं पशुं ) व्यापक परमेश्वर तक पहुंचाने वाले सर्व दर्शक ज्ञान प्राप्त करावें।

दश रात्रीरशिवेना नव द्यूनवनद्धं श्रथितमप्स्वन्तः।
विप्रुतं रेभमुदनि प्रवृक्तमुन्निन्यथुः सोममिव स्रुवेण ॥ २४ ॥

भा०—( सोमम् ) सोम रस को यज्ञ पात्र में से जिस प्रकार आहुति देने वाला ( स्रुवेण ) स्रुवा से ऊपर उठा लेता है उसी प्रकार सेना और सभा के दोनों नायक ( रेभम् ) विद्वान्, आज्ञापक ऐश्वर्य लक्ष्मी से सम्पन्न, ( सोमम् ) राजा को ( अशिवेन ) अमंगलकारी पाप से ( अवनद्धं ) बंधे हुए, ( अप्सु अन्तः ) प्रजाओं के बीच अपने कार्यों में ( श्रथितम् ) शिथिल हुए ( उदनि ) जल में ( विप्रुतम् ) बहते हुए नाव के समान ( विप्रुतम् ) विप्लव अर्थात् धर्म नाश में प्रवृत्त, ( प्रवृक्तम् ) सन्मार्ग से प्रच्युत हुए, राजा को ( दश रात्रीः नवद्यून् ) दस रात्र और नौ दिन में ( उत् निन्यथुः ) उन्नत करें। अर्थात् उसको इतने दिनों का अवसर उठने के लिये दें। ( २ ) इसी प्रकार ( सोमं रेभम् ) विद्वान् पुरुष जब ( अशिवेन अवनद्धं ) अमङ्गल, अशुचि प्रसूतक या शव के अशौच से युक्त हो तब उसको जलों में निहला कर दस रात्रि और नव दिन के बाद शुद्ध कर लें। ( ३ ) गृहस्थ स्त्री पुरुष ( अशिवेन ) भ्रष्ट, जरायु से बंधे, गर्भगत जलों में लिपटे, बालक को जल में स्नान करा लेने पर भी दस रात और ९ दिन के बाद ऊपर उठावें अर्थात् सूतक में भी बालक को दश रात्रि के बाद पुनः स्नान द्वारा स्वच्छ कर नामकरण करें। शवाशौच में भी दश रात्र में जलादि में स्नान कराके शुद्ध करें।

प्र वां दंसांस्यश्विनाववोचमस्य पतिः स्यां सुगवः सुवीरः।
उत पश्यन्नश्नुवन्दीर्घमायुरस्तमिवेज्जरिमाणं जगम्याम् ॥२५॥१२॥

भा०—हे ( अश्विन ) उक्त मुख्य पुरुषो! नायको! एवं स्त्री

पुरुषो ! मैं ( अस्य पतिः ) इस राष्ट्र, गृह और देह का पालक राजा ( वां दंसांसि ) आप दोनों के कर्त्तव्यों का ( अवोचम् ) वर्णन करता हूं। मैं (सुगवः) सुखप्रद, उत्तम भूमि और गौ आदि सम्पत्ति का स्वामी ( सुवीरः ) उत्तम पुत्रों और वीर भृत्यों का स्वामी ( स्याम् ) होऊं। (उत) और ( पश्यन् ) चक्षुओं से देखता हुआ और ( दीर्घम् आयुः अश्नुवन् ) दीर्घायु का भोग करता हुआ मैं ( अस्तम् इव ) गृह के समान ( जरिमाणं ) बुढ़ापे की दशा को ( जगम्याम् ) प्राप्त होऊं। ( २ ) अध्यापक और उपदेशक के पक्ष में—मैं शिष्य ( सुगवः ) उत्तम ज्ञान-वाणियों और उत्तम इन्द्रियों का और ( सुवीरः ) उत्तम प्राणों का साधक होकर दीर्घ आयु होकर ( पश्यन् ) ज्ञान का दर्शन करता हुआ ( जरिमाणम् ) उपदेश देने वाले गुरु को और ( जरिमाणम् ) सब दुःखों के नाश करने वाले परमेश्वर को प्राप्त होऊं॥ इति द्वादशो वर्गः॥

## [ ११७ ]

कक्षीवानृषिः॥ अश्विनौ देवते॥ छन्दः—१ निचृत् पंक्तिः। ६, २२ विराट् पंक्तिः। २१, २५, ११ भुरिक् पंक्तिः। २, ४, ७, १२, १६, १७, १८ १९ निचृत् त्रिष्टुप्। ८, ९, १०, १३–१५, २०, २३ विराट् त्रिष्टुप्। ३, ५, २४ त्रिष्टुप्॥ धैवतः॥ पञ्चविंशत्यृचं सूक्तम्॥

मध्वः सोमस्याश्विना मदाय प्रत्नो होता विवासते वाम्।
बर्हिष्मती रातिर्विश्रिता गीरिषा यातं नासत्योप वाजैः॥ १॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्या पारंगत, मनस्वी, विद्वान् पुरुषो ! या राजा रानी ! (मध्वः) मधुर अन्न तथा ( सोमस्य ) ओषधि रस के समान आनन्दप्रद ऐश्वर्य के ( मदाय ) आनन्द लाभ तथा दमन करने के लिये ( प्रत्नः ) अति वृद्ध, ज्ञानानुभवी ( होता ) 'होता' नामक योग्य पुरुषों

को योग्य कार्याधिकार सौंपने हारा विद्वान् पुरुष ( वाम् ) आप दोनों के प्रति ( आ विवासते ) सब बात खोल कर कहता है। आप का ( बर्हिष्मती रातिः ) दान प्रजा के सुख वृद्धि करने वाला हो। ( गीः ) और आप दोनों की वाणी ( विश्रिता ) विविध विद्वानों तथा अधिकारी वर्गों द्वारा सेवन की जाने योग्य हो। हे ( नासत्या ) प्रमुख पुरुषो ! आप दोनों ( वाजैः ) ऐश्वर्यों सहित हमें ( इषा ) सेना और अन्नादि समृद्धि और अनुकूल इच्छा सहित ( उप यातम् ) प्राप्त होवो।

यो वामश्विना मनसो जवीयान्रथः स्वश्वो विश आजिगाति।
येन गच्छथः सुकृतो दुरोणं तेन नरा वर्तिरस्मभ्यं यातम् ॥ २ ॥

भा०—हे ( नरा अश्विना ) उत्तम नायक विद्वान् जनो ! ( यः ) जो ( वाम् ) आप दोनों का ( मनसः ) मन से भी ( जवीयान् ) अधिक वेग वाला ( रथः ) युद्ध क्रीडा करने वाला, ( स्वश्वः ) उत्तम अश्वों से युक्त रथ ( विशः ) प्रजाओं को ( आजिगाति ) प्राप्त होता है, अथवा प्रजाओं के मुख से आपकी प्रशंसा कराता है और (येन) जिससे आप दोनों (सुकृतः) शुभ कर्म करने वाले के ( दुरोणं ) घर तक ( गच्छथः ) जाते हो ( तेन ) उसही रथ से ( अस्मभ्यं ) हमारे ( वर्त्तिः ) गृह पर भी ( यातम् ) आया करो। ( २ ) अध्यात्म में—प्राण अपान दोनों का मन से भी अधिक वेगवान् अर्थात् व्यापक, उत्तम प्राण आदि अश्वों सहित रथ आत्मा है। रमण कर्त्ता और रस स्वरूप होने से 'रथ' है, प्राणादि से युक्त होने से 'स्वश्व' है। मन से भी तीव्र जाने का अभिप्राय आत्मा का ज्ञानमार्ग में तीव्र होने का है। तद् धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत्। ईश उप० ॥ वह स्वयं उत्तम कर्त्ता होने से 'सुकृत' है और वह पुण्यात्मा के हृदय में प्रकट होता है।

ऋषिं नरावंहसः पाञ्चजन्यमृबीसादत्रिं मुञ्चथो गणेन।
मिनन्ता दस्योरशिवस्य माया अनुपूर्वं वृषणा चोदयन्ता ॥ ३ ॥

भा०—हे ( नरा ) नायक पुरुषो ! या राजदम्पती ! आप दोनों ( ऋबीसात् ) प्रकाशरहित, अन्धकारमय ( अंहसः ) पाप, अज्ञान से ( ऋषिम् ) वेद शास्त्रज्ञ ( पाञ्चजन्यम् ) पांचों जन ब्राह्मण आदि चार वर्ण तथा तद्-वाह्य इन सब मनुष्य मात्र के हितकारी, ( अत्रिम् ) विविध तापों और विविध बन्धनों से रहित पुरुष को ( गणेन सह ) उनके गण सहित ( मुञ्चथः ) बन्धन से छुड़ाओ । और ( अशिवस्य दस्योः ) अमङ्गल जनक, अकल्याणकारी ( दस्योः ) प्रजा के नाशकारी दुष्ट पुरुष के (मायाः) छल कपट के जालों को (मिनन्ता) नाश करते हुए ( अनुपूर्वम् ) पूर्व के सत् सिद्धान्तों के अनुकूल ( वृषणा ) बलवान् होकर ( चोदयन्ता ) प्रेरित करते हैं । ( २ ) अध्यात्म में—संसार बंधन 'ऋबीस' है । पांच प्राणों से युक्त भोक्ता चेतन प्रात्मा 'अत्रि' है । प्राण गण 'गण' हैं । आत्म स्वरूप, सर्वप्रपञ्चोपशम, अमात्र 'शिव' है। तद्विपरीत अनात्म प्रत्यय 'अशिव माया' है । प्राण अपान का अभ्यास उसको दूर करता है । देखो ऋ० १ । ११६ । ८ ॥

अश्वं न गूळ्हमश्विना दुरेवैर्ऋषिं नरा वृषणा रेभमप्सु ।
सं तं रिणीथो विप्रुतं दंसोभिर्न वां जूर्यन्ति पूर्व्या कृतानि ॥४॥

भा०—हे ( वृषणा अश्विना ) समस्त सुखों के वर्षक विद्वान् स्त्री पुरुषो ! एवं मुख्य अधिकारियो ! ( दुरेवैः ) दुःखदायी, दुर्गम मार्गों के अनवरत चलने आदि से पीड़ित, भय खाकर ( विप्रुतं ) भगे हुए ( गूढं अश्वं न ) छुपे हुए अश्व को जिस प्रकार यत्न से आश्वासन पूर्वक खोजकर युक्ति से रथ आदि में पुनः लगाते हैं उसी प्रकार (गूढं) अति गंभीर (ऋषिम्) ज्ञान के द्रष्टा, (विप्रुतम् ) विविध ज्ञानों में निष्णात, (अप्सु रेभम् ) कार्यों और ज्ञानों में या आप्त जनों के बीच विद्वान्, प्रवचनकारी आचार्य ( तं ) उत्तम पुरुष को ( दंसोभिः ) विविध कार्यों से ( सं रिणीथः ) प्राप्त करो । ( वां ) आप लोगों के प्रति ( पूर्व्या ) पूर्व के विद्वानों के ( कृतानि )

किये ज्ञानोपदेश ( न जूर्यन्ति ) नष्ट नहीं होते। ( २ ) अध्यात्म में— गूढ़ भोक्ता आत्मा, अश्व के समान है। वही द्रष्टा होने से 'ऋषि', स्तुतिकर्त्ता होने से 'रेभ' है। कर्म बंधनों से 'विप्रुत' अर्थात् विविध योनियों में चला जाता है। उसको ( दंसोभिः ) नाना कर्मानुष्ठानों द्वारा प्राप्त करो।

**सुषुप्वांसं न निर्ऋतेरुपस्थे सूर्यं न दस्रा तमसि क्षियन्तम्।**
**शुभे रुक्मं न दर्शतं निखातमुदूपथुरश्विना वन्दनाय ॥ ५ ॥ १३ ॥**

भा०—हे ( दस्रा ) प्रजा के दुःखों को दूर करने वाले, दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले, ( अश्विना ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! एवं प्रमुख नायको ! ( सुसुप्वांसं न ) सोते हुए पुरुष को जिस प्रकार जगा के खड़ा कर दिया जाता है उसी प्रकार ( निर्ऋतेः उपस्थे ) भूमि की पीठ पर मानो सोते हुए, ( निखातम् ) उसमें गड़े हुए, मिट्टी के नीचे पड़े अन्न को ( उद् ऊपथुः ) बीज वपन द्वारा उगाओ। ( तमसि क्षियन्तं ) अन्धकार में छुपे हुए ( सूर्यं न ) सूर्य के समान तेजस् या चेतना, आयु और जीवन देने वाले अन्न को उत्पन्न करो। और ( निखातं दर्शतं ) भीतर गड़े, दर्शनीय ( रुक्मं न ) दीप्तियुक्त सुवर्ण को जैसे (शुभे) शोभा अर्थात् शरीर भूषा के लिये खना जाता है उसी प्रकार देह में रुचि और दीप्ति को उत्पन्न करने वाले अन्न को भूमि से बीज वपन द्वारा प्राप्त करो। (२) इसी प्रकार स्त्री पुरुष भी अपने ही उत्पादक रमणकारी अंगों में सोते हुए से, अर्थात् गुप्त अन्धकार में रहते सूर्य के समान राजस तामस कर्म में निगूढ़, छुपे सुवर्ण के समान गुप्त जीवात्मा को बालक रूप में ( वन्दनाय ) अपनी कीर्त्ति के लिये ( उद् ऊपथुः ) वीर्य निषेक अर्थात् बीज वपन द्वारा उत्पन्न करें। (३) इसी प्रकार साधक स्त्री पुरुष भी भीतर सोते हुए अर्थात् गूढ़, (तमसि क्षियन्तं) तामस-आवरण में छुपे सूर्य के समान, स्वप्रकाश, सुवर्ण के समान कान्तिमान् आत्मा को ( वन्दनाय ) उत्तम स्तुति के लिये चुनें और उसका ज्ञान करें। रुक्माभं स्वप्नधीगम्यं तं विद्यात् शुक्रममृतम्। उप०। देखो० सू० ११६।११॥१३॥

तद्वां नरा शंस्यं पज्रियेण कक्षीवता नासत्या परिज्मन्।
शफादश्वस्य वाजिनो जनाय शतं कुम्भाँ असिञ्चतं मधूनाम् ॥६॥

भा०—हे ( नासत्या नरा ) असत्याचरण से रहित सभा सेनाध्यक्षो ! उत्तम स्त्री पुरुषो ! ( पज्रियेण ) ज्ञान करने योग्य, शास्त्रों में विद्वान् ( कक्षीवता ) उत्तम नियम व्यवस्था में बद्ध पुरुष, ( वां ) तुम दोनों को ( तत् शंस्यम् ) उस ज्ञान का उपदेश करे जिससे ( वाजिनः ) वेगवान् ( अश्वस्य ) अश्व या अश्व सेना के ( शफाद् ) वेगवान् शत्रु शमनकारी आक्रमण से ही ( जनाय ) राष्ट्रवासी जन के सुख के लिये ( परिज्मन् ) मार्ग २ में ( मधूनां ) मधुर सुखकारी पदार्थों के ( शतं कुम्भान् ) जलों के घटों के समान सैकड़ों पात्र ( आसिञ्चतम् ) आप दोनों प्रदान करो। विशेष देखो सू० ११६। मन्त्र०। मेघ से जलके समान और घड़ों के जल से छिड़काव के समान राजा अपने पराक्रम से ऐश्वर्य सुख बरसा दे।

युवं नरा स्तुवते कृष्णियाय विष्णाप्वं ददथुर्विश्वकाय।
घोषायै चित्पितृषदे दुरोणे पतिं जूर्यन्त्या अश्विनावदत्तम्॥ ७ ॥

भा०—( नरा ) हे नायक, मुख्य उत्तम पुरुषो ! ( युवं ) आप दोनों ( स्तुवते ) यथार्थ उपदेश करने में समर्थ, ( कृष्णियाय ) बीज बपन के समान शिष्य-भूमियों, ज्ञान वपन करने में कुशल ( विश्वकाय ) सर्वोपकारक पुरुष को ( विष्णाप्वं ) विशेष स्नातक पद ( ददथुः ) प्रदान करो। हे ( अश्विना ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग ( पितृ-सदे ) पालक पिता के आश्रय पर रहने वाली ( घोषायै ) विकृत शब्द न करने वाली, अति उत्तम वेद की विदुषी स्त्री के लिये ( दुरोणे ) गृह बसाने के निमित्त ( जूर्यन्त्या ) जरावस्था तक पहुंचने के लिये ( पतिम् ) योग्य पालक पुरुष (अदत्तम्) प्रदान करो। विशेष देखो सू० ११।६ मंत्र १०, ७, २३॥

युवं श्यावाय रुशतीमदत्तं महः क्षोणस्याश्विना कण्वाय।
प्रवाच्यं तद्वृषणा कृतं वां यन्नार्षदाय श्रवो अध्यधत्तम्॥ ८ ॥

भा—हे ( वृषणा ) सुखों के वर्षण करने हारे, ( अश्विना ) प्रमुख राज्य के भोक्ता पुरुषो ! आप दोनों ( श्यावाय ) ज्ञानवान् पुरुष को ( रुशतीम् ) दीप्ति से युक्त तेजस्विनी विद्या का ( अदत्तम् ) दान करो। (क्षोणस्य) उपदेश करने वाले अध्यापक या एक स्थान में गुरु के अधीन रह कर विद्याभ्यास करने वाले, अन्तेवासी, ब्रह्मचारी, (कण्वाय) ज्ञानवान् पुरुष के लिये ( महः ) महान् सामर्थ्य और तेज प्रदान करो। और ( यत् ) जो आप दोनों (नार्षदाय) नायक तथा प्रजा के पुरुषों के ऊपर शासक रूप से विराजने वाले अध्यक्ष और आचार्य को ( प्रवाच्यम् ) प्रवचन करने योग्य ( कृतम् ) सुसम्पन्न (श्रवः) ज्ञान और यश ( अधि अधत्तम् ) प्रदान करते हो ( वां तत् ) वह भी तुम दोनों का ही श्रेष्ठ काम है। ( २ ) अध्यात्म में—आत्मा ही चेतन और ज्ञानवान् होने से 'श्याव', देह में निवास करने से 'क्षोण', प्रकाश स्वरूप होने से 'कण्व', प्राण रूप देह के नायकों पर अधिष्ठाता होने से 'नार्षद' है। ज्ञान दीप्ति 'रुशती' है। ब्रह्म ज्ञान 'महः' है। आत्मज्ञान 'श्रवः' है। वह गुरुपदेश से प्राप्त होने से 'प्रवाच्य' है।

पुरू वपींस्यश्विना दधाना नि पेदव ऊहथुराशुमश्वम्।
सहस्रसां वाजिनमप्रतीतमहिहनं श्रवस्यं तरुत्रम् ॥ ६ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् शिल्पियो ! ( पुरु ) बहुत से ( वपींसि ) रूपों या पदार्थों को ( दधाना ) बनाते हुए ( पेदवे ) दूर जाने के लिये ( सहस्रसाम् ) अति बल को धारण करने वाले, ( वाजिनम् ) वेगवान्, ( अप्रतीतम् ) अदृश्य या बेरोक, अतुल्य बल, ( अहिहनम् ) आगे आने वाली रोक अर्थात् डाट [ पिस्टन ] पर धक्का मारने वाले ( श्रवस्यम् ) श्रवण करने योग्य, शब्दकारी ( तरुत्रम् ) दूर तक पहुंचा देने वाले, ( आशुं ) शीघ्रगामी ( अश्वम् ) अश्व अर्थात् अग्नि या विद्युत को ( ऊहथुः ) भगाओ। ( २ ) हे स्त्री पुरुषो ! तुम दोनों नाना प्रकार के रूप या ऐश्वर्यों को धारण करके भी ( पेदवे )

परम पद प्राप्त करने के लिये ( सहस्रसां ) सहस्रों उपदेश देने वाले ( वाजिनम् ) ज्ञानवान्, ( अप्रतीतम् ) अति गूढ़, ( अहिहनम् ) अज्ञान नाशक, ( श्रवस्यम् ) वेद ज्ञान में कुशल, (तरुत्रम्) संसार से तराने वाले आचार्य और परमेश्वर का ( ऊहथुः ) अवलम्बन करो। उसको अपने सब कार्यों में और हृदय में धारण करो।

एतानि वां श्रवस्या सुदानू ब्रह्माङ्गूषं सदनं रोदस्योः।
यद्वां पज्रासो अश्विना हवन्ते यातमिषा च विदुषे च वाजम् १०।१४

भा०—हे ( सुदानू ) उत्तम दानशील ( अश्विनौ ) ऐश्वर्य के भोक्ता स्त्री पुरुषो ! ( वां ) तुम दोनों के (एतानि) ये (श्रवस्या) सब कार्य श्रवण करने योग्य, प्रशंसा करने योग्य तथा अन्नादि उत्पादन और प्रदान सम्बन्धी, अथवा यशोजनक या वेदोक्त ज्ञान के अनुसार हों। ( रोदस्योः सदनं ब्रह्म ) सूर्य और पृथिवी का एक मात्र आश्रय वह महान् परम ब्रह्म ही (आङ्गूषम्) समस्त विद्याओं का विज्ञापक अनादि गुरु है। और (रोदस्योः) परस्पर उपदेश लेने और देने वाले और एक दूसरे के ऊपर आश्रित सूर्य पृथिवी के समान गुरु शिष्य और स्त्री पुरुष इन दोनों के ( सदनम् ) सब कार्यों का आश्रय भी ( ब्रह्म ) वही परमेश्वर और ज्ञानमय वेद ( आङ्गूषम् ) सब विज्ञानों का विज्ञान कराने हारा है। हे ( अश्विना ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! ( यत् ) क्यों ( पज्रासः ) ज्ञानवान् पुरुष ही ( वां ) आप दोनों को उस ( ब्रह्म वाजं ) परम ब्रह्म और वेद का ज्ञान ( हवन्ते ) उपदेश करते हैं इसलिये आप दोनों ( विदुषे ) विद्वान् पुरुषों को देने के लिये (इषा च) अन्न आदि इच्छानुकूल पदार्थों के साथ ( यातम् ) प्राप्त होवो (च) और (वाजम्) ज्ञान प्राप्त करो और अन्न का दान करो ॥१४॥

सूनोर्मानेनाश्विना गृणाना वाजं विप्राय भुरणा रदन्ता।
अगस्त्ये ब्रह्मणा वावृधाना सं विश्पलां नासत्यारिणीतम् ॥११॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप दोनों ( भुरणा )

पालन पोषण करने में समर्थ (सूनोः) पुत्र के (मानेन) समान (गृणाना) उपदेश किये जाकर (विप्राय) मेधावी, ज्ञानवान् पुरुष को (वाजं रदन्ता) अन्न प्रदान करते हुए, (अगस्त्ये) ज्ञान देने में कुशल पुरुष तथा वेदोक्त कर्म के आश्रय रह कर (ब्रह्मणा) वेद और ब्रह्मचर्य द्वारा (वावृधाना) बढ़ते हुए, (नासत्या) कभी असत्याचरण न करते हुए (विश्पलां) प्रजा वर्ग के पालन करने वाली नीति को (सम् रिणीतम्) अच्छी प्रकार चलाओ। [२] इसी प्रकार (अश्विना) राष्ट्र के दो प्रमुख नायक या राजा रानी दोनों (विप्राय) विविध ऐश्वर्यों से राज्य को पूरने वाले विद्वान् वर्ग के लिये (सूनोः मानेन) सर्व प्रेरक सूर्य के ज्ञान से, या पुत्र के समान मान कर (गृणाना) उपदेश और आज्ञा वचन कहते हुए (वाजम्) सुवर्ण, रजत, रत्न आदि ऐश्वर्य और अन्न को (रदन्ता) भूमि से खन कर प्राप्त करते हुए, (अगस्त्ये ब्रह्मणा) सूर्य के आश्रय पर जल से, और ज्ञानी पुरुष के आश्रय पर ब्रह्म ज्ञान से बढ़ते हुए, प्रजा पालन की नीति को सदा सत्य स्वभाव, न्यायवान् होकर पालन करें।

कुह यान्ता सुष्टुतिं काव्यस्य दिवो नपाता वृषणा शयुत्रा।
हिरण्यस्येव कलशं निखातमुदूपथुर्दशमे अश्विनाहन् ॥ १२ ॥

भा०—हे (दिवः) ज्ञान विज्ञान युक्त सूर्य के समान प्रकाशमान, (काव्यस्य) परम मेधावी परमेश्वर के रचे हुए वेदमय ज्ञान को अथवा (दिवः) तेजोमय वीर्य, ब्रह्मचर्य को (नपाता) कभी नष्ट न करते हुए (वृषणा) बलवान् वीर्य सेचन में समर्थ युवा (अश्विना) स्त्री पुरुषो! आप दोनों (सुस्तुतिं यन्ता) उत्तम स्तुति को या कीर्ति को प्राप्त करते हुए, यशस्वी होकर (हिरण्यस्य) सुवर्ण के भरे (निखातं कलशम् इव) गड़े हुए कलसे के समान (कुह शयुत्रा) किस शयन स्थान पर या (कुह) किस आश्रम में और किस महान् उद्देश्य के निमित्त (शयुत्रा) शयन करते हुए (दशमे अहन्) दसवें दिन (हिरण्यस्य) हित और रमण योग्य,

एवं आत्मा के ( निखातं ) गुप्त रूप से छुपे ( कलशं ) षोडशकला युक्त आत्मा रूप बीज को ( उद् ऊपथुः ) उत्तम रूप से बीज वपन करते हो। रजो दर्शन से दसवें दिन अर्थात् स्नान से पांचवीं रात्रि गर्भाधान करने पर सन्तान अति उत्तम होती है यह गर्भ विज्ञान वादियों का सिद्धान्त है। किस आश्रम में? यह प्रश्न है। गृहस्थ में। यह उत्तर है। [ २ ] राष्ट्र के प्रमुख पालक भी ( दिवः नपाता ) न्याय प्रकाश और राजसभा को स्थिर रखने वाले, बलवान् ( शयुत्रा ) सुख से होती हुई प्रजा को पालन करने वाले होकर सुवर्ण से भरे कलसे के समान ( दशमे अहनि ) दसवें दिन ( कुह निखातम् उदूपथुः ) किस आश्रय पर उदवपन करते हैं अर्थात् समस्त शक्ति का वपन करते हैं? उत्तर है राजा या विद्वानों के आश्रय पर नव दिनों के अनन्तर दसवें दिन राज्याभिषेक होता है। [ ३ ] ( दिवः नपाता ) सूर्य के पुत्र के समान दिन और रात्रि से उत्पन्न हिरण्य कलश के समान तेजस्वी सूर्य को उत्पन्न करते हैं।

युवं च्यवा॑नमश्विना॒ जर॑न्तं॒ पुन॒र्युवा॑नं चक्रथुः॒ शची॑भिः।
यु॒वो रथं॑ दुहि॒ता सूर्य॑स्य स॒ह श्रि॒या ना॑सत्यावृणीत ॥ १३ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) शरीर और आत्मा के बल से युक्त, अश्व के समान हृष्ट पुष्ट युवा स्त्री पुरुषो! ( युवं ) आप दोनों ( च्यवानं ) ज्ञान प्राप्त करने वाले (जरन्तम्) उपदेश प्राप्त करते हुए बालक को (शचीभिः) विद्या और कर्मों के उपदेशों से ( युवानं चक्रथुः ) युवा, जवान करो। तब हे ( नासत्या ) हे सदा सत्य स्वभाव के स्त्री पुरुषो! (सूर्यस्य दुहिता) उत्तम तेजस्वी उत्पादक पिता की पुत्री ( युवोः ) तुम दोनों के बीच में ( श्रिया सह ) अति शोभा के सहित ( रथं ) रमण योग्य पति को ( अवृणीत ) वरण करे। [ २ ] हे ( अश्विना नासत्या ) प्रमुख न्यायकारी नायक पुरुषो! आप दोनों ( च्यवानं ) शत्रु को संग्राम में पराजित करने वाले आज्ञापक, युवा बलवान् पुरुष को (शचीभिः युक्तं चक्रथुः) शक्तियों

और और अधिकारों से युक्त करो। ( सूर्यस्य दुहिता ) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को सब ऐश्वर्यों को दोहन या पूर्ण करने वाली पृथ्वी निवासिनी प्रजा अपनी (श्रिया सह) राज्य समृद्धि सहित ( रथम् ) महारथ पुरुष को अपना स्वामी ( अवृणीत ) वरण करे।

युवं तुग्राय पूर्व्येभिरेवैः पुनर्मन्यावभवतं युवाना।
युवं भुज्युमर्णसो निः समुद्राद्विभिरूहथुर्ऋज्रेभिरश्वैः ॥ १४ ॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! आप दोनो ! ( युवाना ) युवा, बलवान् और परस्पर संगत होकर ( तुग्राय ) शत्रुओं के नाशकारी, बल सम्पादन करने के लिये पालने योग्य, अथवा बलवान् पुत्र उत्पन्न करने के लिये (पूर्व्येभिः) पूर्व के विद्वानों से उपदेश किये ( एवैः ) ज्ञानों, उपायों और मार्गों से ( पुनर्मन्यौ अभवतम् ) पुनः मननशील या पुनः परस्पर सम्मत होवो और ( युवं ) तुम दोनों ( अर्णसः समुद्रात् ) जल से भरे समुद्र से ( भुज्युम् ) भोग योग्य रत्नादि ऐश्वर्य और व्यापार योग्य पदार्थ या परस्पर के सुख को ( विभिः ) विमानों और गतिशील नौकाआदि साधनों से और (ऋज्रेभिः अश्वैः) सधे हुए सुशील अश्वों से, या उत्तम कार्य में लगी इन्द्रियों से ( नि-ऊहथुः ) देश से देशान्तर ले जाया करो। ( २ ) अथवा—पूर्व के आचार्यों से दिखाये या सनातन से चले आये वेद ज्ञानों द्वारा पुनः मननशील होकर युवा होवें। और ( अर्णसः समुद्रात् ) जल के समुद्र से ( भुज्युम् ) भोग्य रत्नादि के समान स्त्री पुरुष जन ( ऋज्रेभिः विभिः अश्वैः ) ऋजु, सरल धर्म मार्ग में चलने वाले ज्ञानेन्द्रियों और कर्मेन्द्रियों से युक्त होकर ( भुज्युम् ) पालने योग्य वीर्य या ब्रह्मचर्य को ( निर् ऊहथुः ) धारण करें, या परस्पर भोग्य गृहस्थ कर्म का वहन करें।

अजोहवीदश्विना तौग्र्यो वां प्रोळ्हः समुद्रमव्यथिर्जगन्वान्।
निष्टमूहथुः सुयुजा रथेन मनोजवसा वृषणा स्वस्ति ॥१५॥१५॥

भा०—हे ( अश्विना ) स्त्री पुरुषो ! एक दूसरे के हृदय में व्यापक!

एक दूसरे से सुखों के भोग करने हारे (वां) तुम दोनों में से (प्रोढः) प्रत्येक विवाहित पुरुष (अव्यथिः) बिना व्यथा या पीड़ा के ही ( समुद्रं जगन्वान् ) समुद्र के पार जाने हारा है। वह ( प्रोढः ) उत्तम रीति से गृहस्थ का भार उठाने में समर्थ होकर ही ( तौग्र्यः ) पालन करने योग्य पुत्रों को उत्पन्न करने में समर्थ होकर ( अजोहवीत् ) आहुति करे, अर्थात् वीर्याधान करे। तब दोनों ( वृषणा ) वीर्य निषेक करने और धारण करने में बलवान् होकर ( मनोजवसा ) मन के वेग से जाने वाले ( रथेन ) रमण करने योग्य गृहस्थ रूप रथ, या परस्पर के सुख से ( सु-युजा ) परस्पर उत्तम रीति से युक्त होकर ( स्वस्ति ) कुशलपूर्वक ( तम् ) उस गृहस्थ कार्य का ( निर् ऊहथुः ) निर्वाह करें। इति पञ्चदशो वर्गः ॥

**अजोहवीदश्विना वर्तिका वामास्नो यत्सीममुञ्चतं वृकस्य ।**
**विजयुषा ययथुः सान्वद्रेर्जातं विष्वाचो अहतं विषेण ॥ १६ ॥**

भा०—हे ( अश्विना ) सेना और सभा के मुख्य अध्यक्ष पुरुषो ! ( वृकस्य आस्नः ) भेड़िये के मुख से जिस प्रकार कोई दयालु पुरुष बटेरी को छुड़ा दे उसी प्रकार भेड़िये के स्वभाव वाले प्रजाभक्षक शासक के ( आस्नः ) मुख या भक्षण कर जाने वाले रक्त शोषक उपायों से आप दोनों ( यत् ) जब २ भी प्रजागण को ( अमुञ्चतम् ) छुड़ाते हो तब २ वह प्रजा ( वर्त्तिका ) सुख से व्यवहार और व्यापार से रहने वाली या उद्योग धन्धों से जीने वाली प्रजा आप दोनों को ( अजोहवीत् ) उत्तम नामों से पुकारती है। और आप दोनों ( जयुषा ) विजयशील रथादि साधन से तथा शत्रु जयकारी उपाय से ( अद्रेः सानु ) पर्वत के शिखर के समान ऊंचे से ऊंचे पद तक ( वि ययथुः ) विशेष प्रकार से पहुंचते हो। और तब ( विश्वाचः ) सब तरफ़ फैली शत्रु सेना के ( जातम् ) रक्खे पदार्थों के ( विषेण ) विष के समान घातक और दूषक पदार्थ से तथा ( विष्वाचः ) विविध दिशाओं में फैले प्रजाजन के ( जातम् ) प्रत्येक

पदार्थ या बच्चे २ तक को (विषेण) अपने व्यापक राज्य प्रबन्ध से (अहतम्) प्राप्त होते हो। उसको अपने वश कर लेते हो। (२) वर्त्तिका नाम उषा को दिन और रात्रि दोनों (वृकस्य) विशेष दीप्ति वाले सूर्य के मुख से पृथक् करते हैं (अद्रेः सानु) उदयाचल के शिखर पर प्रतिदिन विजय-शील, प्रमुख रथ या स्वरूप से जाते हैं। (विश्वाचः) विविध देशों में व्याप्त अन्धकार के (जातं) प्रभाव को (विषेण) व्यापक तेज से (अहतम्) विनष्ट करते हैं। (३) इसी प्रकार वृक स्वभाव से तुम माता पिता अपनी सुवृत्त, शीलसम्पन्न पति के अधीन रहनेवाली कन्या को बचाओ। ऐसी (वर्त्तिका वाम् अजोहवीत्) वह कन्या तुम से प्रार्थना करती है। अपने विजयी रथ से पर्वत के उच्च शिखर तक चढ़ा मेघ जिस प्रकार जल से सब पदार्थों पर बरसता है उसी प्रकार (विषेण) व्यापन गुण से (विश्वाचः) सब देशों के पुरुषों को मिल जावो।

शतं मेषान्वृक्यें मामहानं तमः प्रणीतमशिवेन पित्रा।
आक्षी ऋज्राश्वे अश्विनावधत्तं ज्योतिरन्धाय चक्रथुर्विचक्षे॥१७॥

भा०—(अशिवेन पित्रा) जिस अमङ्गलकारी, प्रजा के कल्याणकारी (पित्रा) प्रजापालक राजा द्वारा (तमः प्रणीतम्) घोर अन्धकार करता है, (वृक्ये) विविध फोड़ फाड़ करनेवाली एवं चोर स्वभाव की राजसभा या शासन व्यवस्था के निमित्त (शतं मेषान्) सौ प्रतिस्पर्धी विद्वानों या आयु के १०० वर्षों को शेरनी के लिये सौ भेड़ों के समान (मा महानम्) बलि देने वाले राजा को हे (अश्विनौ) मुख्य अध्यक्ष जनो आप दोनों (अक्षी) दो आंखे प्रदान करो। और (अन्धाय) आंख से अन्धे पुरुष के लिये (विचक्षे) विविध प्रकार से देखने के लिये (ज्योतिः) सूर्य और चन्द्र की सूर्यातप और चन्द्र तप दोनों के समान शान्तिदायक ज्ञान और संतापदायक दण्ड व्यवस्था करने वाले और उन दोनों को दो आंखों के समान दो अध्यक्ष

( अक्षी चक्षुः ) प्रदान करो । ( ऋज्राश्वे ) ऋजु अर्थात् धर्म मार्ग में जाने वाले सरल अकुटिल धर्मात्मा राजा के अधीन ( आधत्तम् ) रक्खो ।

शुनमन्धाय भरमह्वयत्सा वृकीरश्विना वृषणा नरेति ।
जारः कनीन इव चक्षदान ऋज्राश्वः शतमेकं च मेषान् ॥ १८ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् प्रमुख पुरुषो ! हे ( वृषणा ) सुखों की प्रजा पर वर्षा करने हारे ! हे ( नरा ) नायको ! ( इति ) इस प्रकार से ( अन्धाय ) अन्धे राज्यकर्त्ता पुरुष को ही जो राज व्यवस्था ( शुनम् ) सुख और ( भरम् ) प्रजा के भरण पोषण का कार्य ( अह्वयत् ) करने को कहती है (सा) वही ( वृकीः ) वृक अर्थात् भेड़िया या बाघ के समान प्रजा का नाश करनेवाली होती है । इसलिये ( ऋज्राश्वः ) ऋजु अर्थात् धर्म मार्ग पर चलने वाले इन्द्रियों का स्वामी, जितेन्द्रिय राजा सदा ( जारः ) सूर्य के समान ( कनीनः ) दीप्तिमान् होकर ( शतम् एकं च ) सौ और एक अर्थात् १०१ मेष अर्थात् वर्षों तक ( चक्षदानः ) प्रकाशमान, तेजस्वी रहकर प्रजा को ( शुनम् ) सुख और ( भरम् ) उसके भरण पोषण ( अह्वयत् ) करने के लिये आज्ञाएं देवे । मेष राशि का भोग करना सूर्य का एक वर्ष भोगना कहाता है । इसी कारण १०० या १०१ मेष का १०० या १०१ वर्ष ही ग्रहण करना उचित है । ( २ ) ( कनीनः जार इव ) युवति कन्या का उसकी पूर्ण आयु अर्थात् जरावस्था तक पहुंचने वाला युवा पुरुष पति जिस प्रकार (ऋज्राश्वः सन्) जितेन्द्रिय होकर १०१ वर्षों तक ( शुनं भरम् अह्वयत् ) सुख पूर्वक उसका भरण पोषण करता है । उसी प्रकार वह धर्मात्मा राजा भी प्रजा का अपनी पूर्णायु तक पालन करे ।

मही वामूतिरश्विना मयो भूरुत स्रामं धिष्ण्या सं रिणीथः ।
अथा युवामिदह्वयत्पुरन्धिरागच्छतं सीं वृषणाववोभिः ॥ १९ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) समस्त राज्य, ऐश्वर्य और गृहस्थ के सुखों

को भोगने वाले प्रमुख स्त्री पुरुषो ! ( वाम् ) आप दोनों की (मही ऊतिः) बड़ी भारी रक्षणशक्ति, ( मयोभूः ) प्रजा को सुख प्रदान करने वाली होती है। आप दोनों ( धिष्ण्या ) बुद्धिमान् होकर ( स्रामं ) त्रुटिभाग को ( सं रिणीथः ) सुसंगत कर दिया करो। ( अथ ) और ( पुरन्धिः ) पुर अर्थात् राष्ट्र या नगर को धारण करने वाला तथा पालन पोषण करने की शक्ति, कर्म और प्रज्ञा वाला राजा या विद्वान् पुरुष ( इदं ) इस प्रकार आप दोनों को ( अह्वयत् ) उपदेश करे कि ( युवाम् ) तुम दोनों ( अवोभिः ) अपने रक्षण और ज्ञान सामर्थ्यों से ( सम् अगच्छतम् ) सुसंगत होकर रहो, परस्पर मिलकर रहो।

अधे॑नुं दस्रा स्त॒र्यं१॒॑ विष॑क्ता॒मपि॑न्वतं श॒यवे॑ अश्विना॒ गाम्।
यु॒वं शची॑भिर्वि॒म॒दाय॑ जा॒यां न्यू॑हथुः पुरुमि॒त्रस्य॒ योषा॑म् ॥२०॥१६॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् और प्रमुख स्त्री पुरुषो एवं अधिकारी जनो ! हे ( दस्रा ) दुष्ट पुरुषों के नाश करने हारो ! आप दोनों ( शयवे ) सोने वाले, अर्थात् राज्य-कार्य में प्रमाद करने वाले राजा के लिये (अधेनुं) दूध न देने वाली (स्तर्यं) वन्ध्या गौ के समान ऐश्वर्य या भोग्य पदार्थों के न देने वाली (स्तर्यं) विस्तृत, या वन्ध्या, या प्रसवघातिनी, या हिंसाशील राजद्रोहिणी, ( विषक्ताम् ) विरुद्ध मार्ग में या विद्रोह में लगी, विपरीत हुई ( गाम् ) पृथिवी या राष्ट्रभूमि को ( अपिन्वतम् ) नाना ऐश्वर्यों से सम्पन्न करो। अर्थात् द्रोहियों को नाश करके जैसे अन्नोत्पादक सूखी भूमि को जल से सींच कर हरा भरा किया जाता है वैसे ही उसको सुख समृद्ध करो। ( विमदाय जायाम् इव ) विशेष हर्ष से युक्त पुमान् पुरुष के गृहस्थ धर्म के लिये जिस प्रकार जाया अर्थात् सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ स्त्री को उससे विवाहित कर दिया जाता है उसी प्रकार ( योषाम् ) सेवन करने योग्य भूमि को भी ( शचीभिः ) नाना शक्तियों से वश करके (पुरुमित्रस्य) बहुत से मित्र राजाओं से सहायवान् राजा के अधीन ( नि उहथुः ) नियम

पूर्वक प्राप्त कराओ। प्रमादी राजा की प्रजाएं विद्रोह करती हैं। उनको बल-वान् सेनापति और सभापति शान्त करें और ऐश्वर्य सम्पन्न करें। बहुमित्र राजा के अधीन उसको सुशासन में रक्खें।

यवं वृकेणाश्विना वपन्तेषं दुहन्ता मनुषाय दस्रा।
अभि दस्युं बकुरेणा धमन्तोरु ज्योतिश्चक्रथुरार्याय ॥ २१ ॥

भा०—पूर्वोक्त रूप से फल न देने वाली राष्ट्रभूमि को समृद्ध करने का उपाय बतलाते हैं—हे ( अश्विना ) विद्वान् स्त्री पुरुषो, एवं प्रमुख अधि-कारियो ! आप दोनों जन ( वृकेण ) भूमि को विशेष रूप से खोदने वाले हल यन्त्र से भूमि को खन कर ( यवं ) यव आदि धान्य ( वपन्ता ) बोते हुए (मनुषाय) मनुष्य वर्ग के खाने पीने के लिये (इषं) इच्छानुरूप अन्न और वृष्टि जल को प्रदान करते हुए और ( बकुरेण ) तेजोमय आग्नेयास्त्र से ( दस्युं ) प्रजा के नाश करने वाले, दुष्ट डाकू वर्ग को ( अभिधमन्ता ) सब प्रकार से संताप देते हुए, ( आर्याय ) श्रेष्ठ प्रजा वर्ग के हित के लिये ( ज्योतिः ) सूर्य के समान तेजस्वी पुरुष को शासक ( चक्रथुः ) बनावो। ( २ ) अथवा—( वृकेण ) शत्रुओं को काट गिरा देने वाले शस्त्र से (यवं) जौ के समान ( यवम् ) दूर करने योग्य शत्रु पक्ष को ( वपन्ता ) छेदन करते हुए और मनुष्य वर्ग के हितार्थ ( इषं ) सेना बल को ( दुहन्ता ) पूर्ण करते हुए ( बकुरेण दस्युं धमन्ता ) चमचमाते आग्नेयास्त्र से दुष्टों को भस्म करते हुए ( आर्याय ) श्रेष्ठ राजा के पुत्र के समान प्रजाजन की वृद्धि के लिये ( ज्योतिः चक्रथुः ) तेज और न्याय का प्रकाश करो।

आथर्वणायाश्विना दधीचेऽश्व्यं शिरः प्रत्यैरयतम्।
स वां मधु प्र वोचदृतायन्त्वाष्ट्रं यद्दस्रावपिकक्ष्यं वाम् ॥ २२ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) अश्व सेना और विद्वत्सभा के स्वामी वीर सेना और विद्वत् सभा के नायक अध्यक्ष पुरुषो ! आप दोनों ( आथर्व-

णाय ) न हिंसा करने वाले, प्रजापालक और शान्तिविधायक, प्रजापति के पद पर कार्य करने वाले, ( दधीचे ) राष्ट्र को धारण करने के सामर्थ्य को प्राप्त विद्वान्, बलवान् पुरुष को ही (अश्व्यं शिरः) अश्व सेना और राष्ट्र का मुख्य पद ( प्रति ऐरयतम् ) प्रदान करो। और हे ( दस्रा ) शत्रुओं के नाश करने में कुशल पुरुषो ! ( सः ) वह मुख्य पुरुष ( ऋतयन् ) ऐश्वर्य की कामना करता हुआ ( वां ) आप दोनों को ( त्वाष्ट्रं ) शिल्पियों से बनाये गये ( मधु ) मधुर एवं शत्रुओं का पीड़न और स्तम्भन करने वाला बल, या शस्त्रास्त्र साधन तथा ऐश्वर्य और ज्ञान ( प्रवोचत् ) प्राप्त कराता है। और ( यत् ) जितना भी ( अपिकक्ष्यं ) कक्षाओं में उत्तरोत्तर बढ़ता हुआ ज्ञान है उसका भी उपदेश करता है। [२] अथवा—( सः ) वह ( ऋतयन् ) सत्य ज्ञान और न्याय शासन चाहता हुआ ( त्वाष्ट्रं मधु प्रवोचत् ) सूर्य या विद्युत् के समान तेजस्वी शासन या आज्ञा और आचार्य के समान ज्ञान का उपदेश करे। (अपिकक्ष्यम् ) गुरु जिस प्रकार उत्तरोत्तर कक्षाओं में कहने योग्य ज्ञान की वृद्धि करता है उसी प्रकार उत्तरोत्तर बढ़ते हुए अधिकारी युक्त श्रेणियों में प्राप्त होने योग्य शासनाधिकार और तदुपयोगी ज्ञान भी प्रदान करे। 'दधीचे'—इन्द्रियं वै दधि। तै० २। १। ५६। दधि हैवास्य लोकस्य रूपम्। श० ७। ५। १। ३॥ सोमो वै दधि। कौ० ८। ९॥ वाङ् वै दध्यङ् आथर्वणः॥ श० ६। ४। २। ३॥ 'आथर्वणाय'—प्राणो वा अथर्वा श० ६। ४। २। २॥ अथ अर्वाङ् एव मेतासु अप्सु अन्विच्छ। गो० पू० १। ४॥

सदा कवी सुमतिमा चके वां विश्वा धियो अश्विना प्रावतं मे।
अस्मे रयिं नासत्या बृहन्तमपत्यसाचं श्रुत्यं रराथाम्॥ २३॥

भा०—हे (कवी) दूरदर्शी विद्वान् और विदुषी स्त्री पुरुषो ! मैं (वाम्) आप दोनों की ( सुमतिम् ) शुभ कर्मानुकूल मति, ज्ञान और अनुमति को ( आचके ) प्राप्त करूं। (मे) मुझे ( विश्वा धियः ) समस्त कर्मों, ज्ञानों

और रक्षा आदि अनुग्रह का आप लोग (प्र अवतम्) प्रदान करें। हे (नासत्या) सदा सत्य व्यवहारशील स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (अस्मे) हमें (अपत्य साचं) पुत्र पौत्रादि को प्राप्त होने वाले (बृहन्तम्) बड़े भारी (श्रुत्यम्) प्रसिद्ध और श्रवण या गुरूपदेश द्वारा प्राप्त होने योग्य वेदज्ञानमय (रयिम्) ऐश्वर्य का (रराथाम्) प्रदान करें।

हिरण्यहस्तमश्विना रराणा पुत्रं नरा वध्रिमत्या अदत्तम्।
त्रिधा ह श्यावमश्विना विकस्तमुज्जीवस ऐरयतं सुदानू ॥ २४ ॥

भा०—हे (अश्विनौ) विद्वान् और विदुषी स्त्री पुरुषो ! आप दोनों (वध्रिमत्या) बढ़ती हुई विद्या के (पुत्रं) पुत्र अर्थात् उसके पालन, अभ्यास और सेवन करने वाला, (हिरण्यहस्तम्) ऐश्वर्य को अपने हाथ में या वश में करने हारा पुरुष (अदत्तम्) प्रदान करो। हे (नरा) मार्गदर्शी विद्वान् नायक जनो ! हे (सुदानू) उत्तम ज्ञान और ऐश्वर्य के देने हारो ! (त्रिधा) मन, वाणी, काय तीनों प्रकार से (विकस्तम्) विशेष विकास को प्राप्त होने वाले (श्यावं) विद्वान् पुरुष को (जीवसे) दीर्घ जीवन के लिये या राष्ट्र में जीवन जागृति की वृद्धि के लिये (उद् ऐरयतम्) उत्तम शिक्षा दो या उत्तम पद पर स्थापित करो। [ २ ] इसी प्रकार राष्ट्र के प्रधान नायक पुरुष भी स्वतन्त्र रूप से कुछ न कर सकने वाले सभापति से युक्त सभा के पुत्र या पालक रूप से ऐश्वर्यवान् पुरुष को और बढ़ती हुई राष्ट्रशक्ति के पालक को हित और रमणीय, उत्तम हनन साधनों से सम्पन्न वीर पुरुष को नियत करें। राष्ट्र में (जीवसे) जीवन की जागृति और प्राणरक्षा के लिये (त्रिधा विकस्तम्) प्रज्ञा, उत्साह, प्रभु शक्ति या धन काम बल और प्रज्ञा इन तीनों में प्रबल पुरुष को (उत् ऐरयत) उत्तम, प्रधान पद प्राप्त करावें।

एतानि वामश्विना वीर्याणि प्र पूर्व्याण्यायवोऽवोचन्।
ब्रह्म कृण्वन्तो वृषणा युवभ्यां सुवीरासो विदथमा वदेम ॥२५॥१७॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्यावान् स्त्री पुरुषो ! सभा-सेनाध्यक्षो ! तथा गुरु शिष्यो ! (एतानि) ये नाना प्रकार के (वीर्याणि) वीर जनों के योग्य बल और वीर्य द्वारा साधने योग्य, ( पूर्व्याणि ) पूर्व के विद्वानों तथा सब से पूर्व विद्यमान परमेश्वर या वेद द्वारा प्रतिपादित हैं जिन को (आयवः ) विद्वान् जन ( प्र अवोचन् ) शिष्यों को उपदेश किया करें । हे ( वृषणा ) सुखों के वर्षक, बलवान् पुरुषो ! हम लोग ( सुवीरासः ) उत्तम पुत्रों, प्राणों और पुरुषों से सहायवान् होकर ( ब्रह्म कृण्वन्तः ) ऐश्वर्य और वेद ज्ञान का सम्पादन करते हुए ( विदथम् ) विज्ञान का (आवदेम) सर्वत्र उपदेश करें ।

## [ ११८ ]

कक्षीवानृषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ११ भुरिक् पंक्तिः । २, ५, ७ त्रिष्टुप् । ३, ६, ९, १० निचृत् त्रिष्टुप् । ४, ८ विराट् त्रिष्टुप् ॥ एकादशर्चं सूक्तम् ॥

**आ वां रथो अश्विना श्येनपत्वा सुमृळीकः स्ववाँ यात्वर्वाङ् ।**
**यो मर्त्यस्य मनसो जवीयान्त्रिबन्धुरो वृषणा वातरंहाः ॥ १ ॥**

भा०—हे ( अश्विना ) हे राज प्रजा के प्रमुख पुरुषो ! ( वां ) आप दोनों का वह ( रथः ) रथ ( श्येनपत्वा ) बाज के समान वेग से जाने हारा, ( स्ववान् ) अपने भृत्यों से युक्त, ( सुमृडीकः ) उत्तम रीति से सुखप्रद होकर ( अर्वाङ् आयातु ) सदा हमारे प्रति आवे और जावे । ( यः ) जो ( त्रिबन्धुरः ) तीन स्थानों पर बन्धा हुआ, ( वातरंहाः ) वायु के वेग से जाने हारा होकर ( मर्त्यस्य मनसः जवीयान् ) मनुष्य के मन से भी अधिक वेग से जाने हारा है । [ २ ] अध्यात्म में—हे प्राण और अपान ! बुद्धि और आत्मन् ! (वांरथः) तुम दोनों का यह रमण साधन रथ देह 'श्येन' अर्थात् चेतन ज्ञानवान् आत्मा के कारण चेतन, ज्ञानकर्त्ता और गति-

मान् होने से 'श्येनपत्वा' है। सुखदायी होनेसे 'सुमृडीक' है। और आत्मा अपने ही प्राणों से युक्त होने और स्वप्रकाश होने से 'स्ववान्' है। वह प्रत्यक्ष होता है। प्राण उदान और व्यान में या शिर, छाती और नाभि में बंधा होने से 'त्रिबन्धुर' है। प्राणों या मरुत् ( Metobolic Force ) के वेग से गतिमान् होने से 'वातरंहा' है मन के बल से ही यह वेगवान् है।

**त्रिबन्धुरेण त्रिवृता रथेन त्रिचक्रेण सुवृता यातमर्वाक्।**
**पिन्वतं गा जिन्वतमर्वतो नो वर्धयतमश्विना वीरमस्मे ॥ २ ॥**

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् शिल्पी जनो ! आप ( त्रिबन्धुरेण ) तीन प्रकार के बन्धनों से युक्त, ( त्रिवृता ) तीन प्रकार के आवरणों से युक्त, ( त्रिचक्रेण ) तीन कला युक्त चक्रों से युक्त, ( सुवृत्ता ) उत्तम मनुष्यों या गतियों या श्रृङ्गारों से युक्त, ( रथेन ) रथ से ( अर्वाक् आयातम् ) भूमि के ऊपर नीचे, समीप और दूर आया जाया करो। आप दोनों ( नः ) हमारे ( गाः पिन्वतम् ) गौओं या भूमियों को जल से सेचन किया करो। ( अर्वतः जिन्वतम् ) अश्वों की वृद्धि करो। और ( अस्मे वीरम् ) हमारे वीर जनों और पुत्र जन को ( वर्धयतम् ) खूब बढ़ाओ। अध्यात्म में—मस्तक, मेरुदण्ड और मांसपेशियें इन तीन प्रकार के बन्धन होने से या त्रिविध गुणों के बन्धन होने से देह 'त्रिबन्धुर' है। आत्मा, मन और प्राण तीन प्रकार के कारक पदार्थों से या आत्मा, मन और इन्द्रिय इन तीन से वह त्रिचक्र है। सुख से पदार्थों को भोगने से 'सुवृत' है। प्राण और अपान या माता और पिता जन हमारे वेदवाणियों, भूमियों और ज्ञानेन्द्रियों को तथा कर्मेन्द्रियों, विद्वानों और पशुओं को बढ़ावें।

**प्रवद्यामना सुवृता रथेन दस्राविमं शृणुतं श्लोकमद्रेः।**
**किमङ्ग वां प्रत्यवर्तिं गमिष्ठाहुर्विप्रासो अश्विना पुराजाः ॥ ३ ॥**

भा०—हे ( अश्विना ) विदुषी विद्वान् स्त्री पुरुषो ! ( दस्रौ ) दुःखों

और दुष्ट पुरुषों के नाश करने वाले ( प्रवद्-यामना ) उत्तम मार्ग से और उत्तम चाल से चलने वाले रथ से ( सुवृता ) उत्तम सुख साधनों से युक्त, ( रथेन ) रथ और रमण साधनों से युक्त होकर भी ( अद्रेः ) पर्वत के समान उत्तम और उन्नत पद पर जाते हुए से भी ( इमं श्लोकं श्रृणुतम् ) इस वेद वाणी का श्रवण किया करो। (अङ्ग अश्विना) हे विद्वान् स्त्री पुरुषो! ( वां प्रति ) आप दोनों के प्रति ( पुराजाः विप्रासः ) पूर्व काल में उत्पन्न विद्वान, पूर्व पुरुष, ( किम् अवर्त्तिम् आहुः ) क्या कुछ असम्भव, या कुछ निन्दनीय वाणी कहते रहे ? नहीं, कुछ भी नहीं। अथवा—हे स्त्री पुरुषो! तुम ( अद्रेः ) आदर करने योग्य मेघ के समान सर्वदाता, प्रमुख विद्वान् नायक की (श्लोकं श्रृणुतम्) वाणी, गुरुवाणी, वेद या मेघ ध्वनि का श्रवण करो।

**आ वां श्येनासो अश्विना वहन्तु रथे युक्तास आशवः पतङ्गाः।**
**ये अप्तुरो दिव्यासो न गृध्रा अभि प्रयो नासत्या वहन्ति॥ ४॥**

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् शिल्पीजनो! आप दोनों को ( रथे युक्तासः ) रथ में लगे हुए ( याशवः ) अति शीघ्रगामी ( पतङ्गाः ) सूर्य के समान दीप्ति वाले, अति वेग से जाने वाले (श्येनासः) श्येन पक्षी के समान युद्ध भूमि में झपट कर दौड़ने वाले, सरपट घोड़े या विद्युत् आदि यन्त्र ( वहन्तु ) दूर देश में पहुंचावे। ( ये ) जो ( अप्तुरः ) अन्तरिक्षों और जलों में वेग से जाने वाले ( गृध्राः ) गीध के समान लम्बे पक्ष वाले और लम्बी उड़ान लगाने वाले ( प्रयः अभि ) उत्तम गन्तव्य प्राप्ति स्थान या ठिकाने तक (वहन्ति) लेजाते हैं।

**आ वां रथं युवतिस्तिष्ठदत्र जुष्ट्वी नरा दुहिता सूर्यस्य।**
**परि वामश्वा वपुषः पतङ्गा वयो वहन्त्वरुषा अभीके॥ ५॥१८॥**

भा०—हे ( नरा ) नायक पुरुषो! ( सूर्यस्य दुहिता ) सूर्य की कन्या उषा के समान कान्तिमती और सूर्य के समान तेजस्वी नायक की समस्त

कामनाओं को पूर्ण करने हारी ( वां ) तुम दोनों ( जुष्टी ) प्रेमयुक्त या ऐश्वर्यों का सेवन करती हुई ( युवतिः ) युवति स्त्री लिये ( वां ) तुम दोनों के बने ( रथम् ) रथ पर ( आ अतिष्ठत् ) प्रथम बैठे । ( वाम् ) तुम दोनों को ( वपुषः ) बड़े २ डील वाले ( अरुषाः ) किरणों के समान लाल रंग के बड़े तेजस्वी ( वयः ) गतिशील ( पतंगाः ) घोड़े ( वाम् ) तुम दोनों को ( परिवहन्तु ) ढो ले जावें । अथवा—(वपुषः जोष्ट्री युवतिः) उत्तम रूप को चाहने वाली वरवर्णिनी युवति ही तुम स्त्री-पुरुषों में से प्रथम रथ पर चढ़े ।

उद्वन्दनमैरतं दंसनाभिरुद्रेभं दस्रा वृषणा शचीभिः ।
निष्टौग्र्यं पारयथः समुद्रात्पुनश्च्यवानं चक्रथुर्युवानम् ॥ ६ ॥

भा०—( वृषणा ) नाना सुख प्रदान करने हारे, एवं निषेक आदि करने हारे माता पिता जनो ! आप लोग ( दंसनाभिः ) उत्तम आचरणों से ( वन्दनम् ) नित्य अभिवादनशील तथा उत्तम स्तुति करने हारे पुत्र या शिष्य को ( उत् ऐरतम् ) ऊपर उठाओ । हे ( दस्रा ) अन्धकार और दुर्गुणों को नाश करने हारे आप दोनों ( शचीभिः ) उत्तम वाणियों, शक्तियों और कर्मों द्वारा ( रेभम् ) अध्ययनशील शिष्य को (उत् ऐरतम्) उत्तम पद पर प्राप्त कराओ और ( समुद्रात् ) यात्री को जहाजी जिस प्रकार समुद्र से पार उतार देता है उसी प्रकार ( तौग्र्यंम् ) पालने योग्य पुत्रादि हितकारी पिता आदि को भी ( निः पारयथः ) निर्विघ्न पार करो । और ( युवानं ) युवा पुरुष को ( च्यवानं चक्रथुः ) इस लोक से छोड़ कर जाने वाला वृद्ध दीर्घायु करो । अथवा—( च्यवानं युवानं चक्रथुः ) संसार यात्रा करने वाले को बलवान् करो ।

युवमत्रयेऽवनीताय तप्तमूर्जमोमानमश्विनावधत्तम् ।
युवं कण्वायापिरिप्ताय चक्षुः प्रत्यधत्तं सुष्टुतिं जुजुषाणा ॥ ७ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे नायको ! सन्मार्ग पर लेजाने हारो ! आप दोनों ( अवनीताय ) विनय से अपने अधीन

सन्मार्ग पर लेजाने योग्य, उपनीत, (अत्रये) माता पिता, भाई तीनों सम्बन्धियों से रहित शिष्य को ( तप्तम् ) तप से प्राप्त होने योग्य ( ओमानम् ) रक्षा, ज्ञान और तेज दायक ( ऊर्जम् ) पराक्रम, वीर्य और ब्रह्मचर्य ( अधत्तम् ) धारण कराओ और ( युवं ) तुम दोनों ( अपिरिप्ताय ) खूब लिप्त, विषय तृष्णा में फंसे हुए ( कण्वाय ) विद्वान् पुरुष को ( सुस्तुतिं जुजुषाणा) उत्तम स्तुति प्रार्थना को स्वीकार करते हुए (चक्षुः प्रति अधत्तः) सन्मार्ग देखने योग्य शास्त्र रूप चक्षु ( प्रति अधत्तम् ) प्रदान करो ।

युवं धेनुं शयवे नाधितायापिन्वतमश्विना पूर्व्याय ।
अमुञ्चतं वर्तिकामंहसो निः प्रति जङ्घां विश्पलाया अधत्तम्॥८॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! एवं नायक पुरुषो ! आप दोनों (शयवे) अज्ञान निद्रा में सोने वाले और ( नाधिताय ) ऐश्वर्य युक्त अथवा प्रार्थनाशील ( पूर्व्याय ) उत्तम पूर्व पुरुषों से युक्त अथवा पूर्व शुभ संस्कारों से युक्त पुरुष के उद्धारक ( धेनुम्) वेद वाणी को ( अपिन्वतम्) काम धेनु के समान ज्ञान-रस देने वाली बना देते हो, उसको उपदेश करते हो । और ( अंहसः ) पापाचार से ( वर्त्तिकाम् ) उद्योग आदि से निर्वाह करनेवाली प्रजा को ( अमुञ्चतम् ) छुड़ाओ । और ( विश्पलायाः ) प्रजाओं के पालन करने की नीति को ( जंघां ) दुष्टों के हनन करने की शक्ति ( अधत्तम् ) प्रदान करो ।

युवं श्वेतं पेदव इन्द्रजूतमहिहनमश्विनादत्तमश्वम् ।
जोहूत्रमर्यो अभिभूतिमुग्रं सहस्रसां वृषणं वीड्वङ्गम् ॥ ९ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग ( पेदवे ) दूर या विजयार्थ जाने हारे वीर पुरुष को ( श्वेतम् ) तेजस्वी, ( इन्द्रजूतम् ) विद्युत् द्वारा चलने वाला, ( अहिहनम् ) आगे आये शत्रु को मारने वाला, ( जोहूत्रम् ) संग्राम में शत्रुओं को ललकारने वाला (अर्यः)

शत्रु को ( अभिभूतिम् ) पराजित करनेवाला ( उग्रम् ) भयजनक बलवान्, ( सहस्रसाम् ) सहस्रों ऐश्वर्यों का देनेवाला, ( वृषणम् ) शत्रुओं पर शरों की और प्रजा पर सुखों की वर्षा करने वाला ( वीड्वङ्गम् ) दृढ़ अङ्गों वाला ( अश्वम् ) शीघ्रगामी, पृथ्वी राज्य के भोगने में और पालने में और उसे व्याप लेने में समर्थ सैन्य बल ( अदत्तम् ) प्रदान करो ।

**ता वां नरा स्ववसे सुजाता हवामहे अश्विना नाधमानाः ।**
**आ न उप वसुमता रथेन गिरो जुषाणा सुविताय यातम् ॥१०॥**

भा०—हे ( सुजाता ) उत्तम विद्या आदि शुभ गुणों में विख्यात ( अश्विना ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! हे ( नरा ) सन्मार्ग पर चलाने हारे नायक पुरुषो ! हम लोग ( नाधमानाः ) ऐश्वर्यवान् और ऐश्वर्य की याचना करते हुए, ( ता वां ) उन प्रसिद्ध आप दोनों को ( सु अवसे ) उत्तम ज्ञान और रक्षा के लिये ( हवामहे ) अपना प्रमुख स्वीकार करते हैं । आप लोग ( गिरः जुषाणा ) उत्तम ज्ञान-वाणियों का सेवन करते हुए ( नः ) हमारे पास ( वसुमता रथेन ) ऐश्वर्य से पूर्ण रथ, या रमण साधनों से ( सुविताय ) सुख, ऐश्वर्य की वृद्धि करने और उत्तम मार्ग में ले जाने के लिये ( नः उपयातम् ) हमें प्राप्त होवें ।

**आ श्येनस्य जवसा नूतनेनास्मे यातं नासत्या सजोषाः ।**
**हवे हि वामश्विना रातहव्यः शश्वत्तमाया उषसो व्युष्टौ ।११।१६।**

भा०—हे ( नासत्या ) कभी परस्पर असत्य आचरण न करनेहारे ! ( अश्विना ) विद्वान्, सबल, ऐश्वर्य के भोक्ता स्त्री पुरुषो ! एवं नायक जनो ! ( वाम् ) आप दोनों को मैं ( सजोषाः ) सप्रेम ( रातहव्यः ) अन्न और उत्तम स्वीकार करने योग्य वचनों को प्रदान कर ( शश्वत्तमायाः उषसः ) अनादि काल से चली आनेवाली उषा या प्रभातवेला के ( व्युष्टौ ) खिल जाने पर प्रातः समय ( हवे ) आदर पूर्वक नमस्कार करता हूं । और बुलाता हूं । आप दोनों ( श्येनस्य जवसा ) बाज पक्षी के समान वेग से

( अस्मे ) हमारे गृह पर ( नूतनेन ) नये रथ से ( आयातम् ) आइये, पधारिये । विद्वान् स्त्री पुरुषों को इसी प्रकार आदर से निमन्त्रित करना चाहिये ।

## [ ११६ ]

१—१० कक्षीवान्दैर्घतमस ऋषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, ४, ६ निचृज्जगती । ३, ७ १७ जगती । ८ विराड्जगती । २, ५, ६ भुरिक् त्रिष्टुप् ॥

**आ वां रथं पुरुमायं मनोजुवं जीराश्वं यज्ञियं जीवसे हुवे ।**
**सहस्रकेतुं वनिनं शतद्वसुं श्रुष्टीवानं वरिवोधामभि प्रयः ॥ १ ॥**

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! मैं ( वां ) आप दोनों के ( पुरुमायं ) बहुत अधिक बुद्धि से बनाये गये, बहुतसी आश्चर्यकारी घटनाओं को करने वाले अद्भुत, ( मनोजुवं ) मन के समान वेग से जाने वाले, ( जीराश्वं ) अति वेगवान् अश्व से युक्त, ( यज्ञियं ) यज्ञ योग्य देश में जाने वाले, ( सहस्रकेतुम् ) सहस्रों ध्वजा से युक्त, ( वनिनं ) सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों से पूर्ण, ( शतद्वसुम् ) सैकड़ों ऐश्वर्यों वाले, ( श्रुष्टीवानम् ) शीघ्र गतियों से जाने वाले, ( वरिवोधाम् ) धनैश्वर्य के धारण और प्रदान करने वाले, ( रथम् ) रथ के समान इस रमण करने के साधन स्वरूप देह का ( प्रयः अभि ) उत्कृष्ट गमन को लक्ष्य करके ( हुवे ) वर्णन करता हूं । ( २ ) देहपक्ष में—यह देह ( पुरुमायम् ) रचना में बहुत आश्चर्यकारी रचनाओं से पूर्ण है । ( मनोजुवम् ) मन की प्रेरणा से चलने वाला है । (जीराश्वम् ) जीव ही इसमें अश्व अर्थात् भोक्ता रूप से विराजने वाला है । ( यज्ञियम् ) यज्ञ अर्थात् उपासना करने योग्य परमेश्वर के भजन करने के लिये बना है । (३) अथवा यह देह यज्ञ अर्थात् परस्पर सुसंगत अंगों से बना है, वा यज्ञ, अर्थात् पञ्चाहुति द्वारा निर्मित है । और (जीवसे) पूर्ण जीवन भोगने के लिये मैं ( हुवे ) उसे स्वीकार या धारण करता हूं । और यह

रथ रूप देह ( सहस्रकेतुम् ) अनेक ज्ञान करने वाले ज्ञान-तन्तुओं या ज्ञान-साधनों से युक्त है । ( वनिनम् ) नाना भोग योग्य सामर्थ्यों से या भोक्ता आत्मा और इन्द्रियों से सम्पन्न है । ( शतद्वसुम् ) सौ बरस तक वास करने योग्य है । ( श्रुष्टीवानम् ) वह शीघ्र गतियों से युक्त या अन्न का भोक्ता या सुखों से पूर्ण है । ( वरिवोधाम् ) सेवन करने योग्य ऐश्वर्यों को धारण करने वाला है । वह ( प्रयः अभि ) अन्न के आश्रय पर रहता है ।

ऊर्ध्वा धीतिः प्रत्यस्य प्रयामन्यधायि शस्मन्त्समयन्त आ दिशः ।
स्वदामि घर्मं प्रति यन्त्यूतय आ वामूर्जानी रथमश्विनारुहत् ॥२॥

भा०—हे ( अश्विना ) विद्वान् स्त्री पुरुषो ! ( प्र यामन् ) रथ के उत्तम मार्ग में जिस प्रकार रथ की ( ऊर्ध्वा धीतिः अधायि ) ऊंची स्थिति रक्खी जाती है उसी प्रकार ( अस्य ) इस देह और आत्मा के ( धीतिः ) धारण पोषण का कार्य ( प्रयामन् ) उत्तम मोक्ष मार्ग में जाने के लिये ( प्रति अधायि ) प्रतिक्षण रक्खा जावे । और जिस प्रकार ( दिशः सम् अयन्त ) रथ पर सवार होने से शीघ्र ही दिशाएं या दूर देश भी प्राप्त हो जाते हैं उसी प्रकार ( अस्य शस्मन् ) इसको शासन करने के निमित्त (दिशः) उपदेश करने वाले गुरुजन ( आ सम्-अयन्त ) भली प्रकार प्राप्त हों । मैं जिज्ञासु पुरुष ( घर्मं ) गुरु से प्राप्त, अति प्रदीप्त, उज्ज्वल ज्ञान-रस का मेघ से गिरते जल के समान ( स्वदामि ) उत्तम रीति से उपभोग करूं । ( ऊतयः ) ज्ञान प्रदाता और रक्षक जन ( प्रतियन्ति ) प्रतिक्षण प्राप्त हों । और ( वाम् ) आप दोनों के ( रथम् ) रमण करने योग्य रथ के समान गृहस्थ आश्रम को ( ऊर्जानी ) अन्न सम्पत्ति और पराक्रम शक्ति ( आ अरुहत् ) सब तरफ़ से प्राप्त हो ।

सं यन्मिथः पस्पृधानासो अग्मत शुभे मखा अमिता जायवो रणे ।
युवोरह प्रवणे चेकिते रथो यदश्विना वहथः सूरिमा वरम् ॥ ३ ॥

भा०—( यत् ) जब ( मिथः पस्पृधनासः ) परस्पर एक दूसरे से स्पर्धा करते हुए, एक दूसरे को युद्ध में विजय करने के लिये यत्नशील होकर ( मखाः ) आदरणीय, ( अमिताः ) अपरिमित या अपराजित ( जायवः ) विजयशील वीर पुरुष ( शुभे रणे ) रण में या किसी अन्य सुन्दर रमणीय उत्सव आदि के शुभ अवसर पर ( सम् अग्मत ) एकत्र होते हैं और ( यत् ) जब हे ( अश्विना ) विद्वान् नायको वा स्त्री पुरुषो! आप दोनों ( वरं ) श्रेष्ठ ( सूरिम् ) विद्वान् धार्मिक तथा प्रतिष्ठित पुरुष को ( आवहथः ) प्राप्त होते हो तब ( प्रवणे ) उत्तम रीति से सेवने योग्य रणस्थल और सभा भवन में भी ( युवोः अह ) आप दोनों के ही ( रथः ) उत्तम रथ ( चेकिते ) विशेष रूप से युद्ध आदि विद्या में कुशल जाना जाय।

युवं भुज्युं भुरमाणं विभिर्गतं स्वयुक्तिभिर्निवहन्ता पितृभ्य आ।
यासिष्टं वर्तिर्वृषणा विजेन्य१न्दिवोदासाय महि चेति वामवः॥४॥

भा०—हे ( वृषणा ) प्रजा पर सुखों की और शत्रुओं पर शरों की वर्षा करने में कुशल नायको! अथवा बलवान् वीर्यवान् स्त्री पुरुषो! (युवं) आप दोनों ( विभिः ) विद्वानों और वेगवान् अश्वारोहियों से युक्त, (भुज्युं) सबके पालक और ( भुरमाणं ) सबके भरण पोषण करने हारे नायक को ( स्वयुक्तिभिः ) अपने नाना उपायों से ( पितृभ्यः ) पालक जनों के हित के लिये ( नि वहन्ता ) विशेष रूप से अपने ऊपर धारण करते हुए ( विजेन्यम् ) विशेष जय प्राप्त कराने वाले ( वर्त्तिः ) प्रयत्न ( यासिष्टं ) करें। और ( दिवोदासाय ) ज्ञान प्रकाश देने वाले पुरुष के लिये (वाम्) आप दोनों की (महि अवः चेति) बड़ी भारी रक्षा जानी जाती है।

युवोरश्विना वपुषे युवायुजं रथं वाणी येमतुरस्य शर्ध्यम्। आ वां पतित्वं सख्याय जग्मुषी योषा वृणीत जेन्या युवां पती॥५॥२०॥

भा०—हे ( अश्विना ) स्त्री पुरुषो! ( युवोः ) आप दोनों के ( युवा

युजं ) आप दोनों के ही परस्पर प्रेम और इच्छा पूर्वक मिल कर एक हो जाने वाले, ( शर्ध्यम् ) बलपूर्वक धारण करने योग्य, ( रथम् ) रमणकारी, आनन्ददायक गृहस्थ रूप रथ को ( अस्य वाणी ) इस गृहस्थ तत्व के विषय में उपदेश करने में कुशल विद्वान् आचार्य और पुरोहित तुम दोनों को ( वपुषे ) उत्तम रीति से वीजवपन द्वारा सन्तान उत्पन्न करने के लिये ( येमतुः ) विवाहित करते हैं, तुम दोनों को गृहस्थ के कर्त्तव्य में बांधते हैं। ( वां ) तुम दोनों का इस गृहस्थ में ( पतित्वम् ) स्वामित्व समान रूप से हो। इस कार्य में ( सख्याय जग्मुषी ) हे पुरुष तेरे सखा भाव में जाने वाली, तेरा मित्र होकर रहने वाली ( जेन्या योषा ) पुरुष के हृदय को जीतने वाली, अथवा सन्तान उत्पन्न करने में समर्थ वधू ही ( अवृणीत ) वरण करे। तब ( युवां ) तुम दोनों ( पती ) एक दूसरे के पति पत्नी होकर रहो। अथवा—तब ( युवां जेन्या पती ) तुम दोनों एक दूसरे का हृदय जीतने वाले अथवा सन्तानोत्पादक पति पत्नी होकर रहो। [ २ ] सभा सेनाध्यक्षों या नायकों के पक्ष में—हे (अश्विना) प्रमुख नायको ! ( युवोः युवायुजं ) तुम दोनों के ही जुड़ने वाले (शर्ध्यम्) बलपूर्वक संग्राम करने योग्य ( रथं ) रथ को ( वाणी ) आज्ञाकारी दो उपदेश सारथी ही ( वपुषे ) शत्रुओं को खण्ड २ कर देने के लिये (अस्य) इस राष्ट्र के हित के लिये ( येमतुः ) नियम में चलावें। ( सख्याय जग्मुषी योषा ) मित्र भाव को प्राप्त होने वाली स्त्री के समान सेना और सभा ( वां पतित्वं अवृणीत ) तुम दोनों का पति रूप से वरण करे। ( युवां जेन्या पती ) तुम दोनों विजयशील सभा और सेना के स्वामी होकर रहो।

युवं रेभं परिषूतेरुरुष्यथो हिमेन घर्मं परि तप्तमत्रये।
युवं शयोरवसं पिप्यथुर्गवि प्र दीर्घेण वन्दनस्तार्यायुषा ॥ ६ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! ( युवं ) आप दोनों ( रेभं ) उत्पन्न

होते ही शब्द करने वाले, रोने वाले बालक को ( परिसूतेः ) प्रसव क्रिया के भी पूर्व से ही ( उरुष्यथः ) खूब रक्षा करो। और ( अत्रये ) इस लोक में आये नव बालक के ( परितप्तम् ) परिताप, ज्वर आदि दुःख को ( हिमेन घर्मम् ) शीतल जल या छाया से घाम के समान दूर करो। ( युवं ) तुम दोनों स्त्री पुरुष ( शयोः गवि ) शयनशील शिशु की ( गवि ) इन्द्रियों में अथवा ( गवि ) गाय के समान दूध पिलाने वाली उसकी उत्पादक माता में ( अवसं ) बालक की रक्षा करने वाले दूध की ( पिप्यथुः ) वृद्धि करो और ( वन्दनः ) स्तुत्य गुणों से युक्त, अभिवादनशील बालक ( दीर्घेण आयुषा ) दीर्घ जीवन से ( प्र तारि ) युक्त होकर बड़ा हो। [२] इसी प्रकार हे विद्वान् शिक्षक स्त्री पुरुषो! आप दोनों (रेभम्) उपदेश करने योग्य शिष्य की रक्षा करो। (अत्रये) मां, बाप, भ्राता अथवा विविध तापों से रहित बालक को ( तप्तं ) तपस्या द्वारा युक्त हो जाने पर शीतल जल के समान शान्तिदायक ज्ञानमय विद्योपदेश से स्नान कराओ। ( शयोः ) शान्ति और कल्याण के इच्छुक शिष्य के ( गवि अवसं ) वाणी में ज्ञान की वृद्धि करो। ( वन्दनः दीर्घेण आयुषा प्र तारि ) अभिवादन शील दीर्घ आयु हो। [ ३ ] इसी प्रकार हे नायक जनो! (रेभम्) प्रार्थी पुरुष को उपद्रवों से बचाओ। ( अत्रये ) इस राष्ट्र में बसी प्रजा के ( तप्तं ) संताप को शान्तिदायक उपाय से दूर करो। सोने वाले अचेत प्रजाजन के रक्षा के उपाय और बल को ( गवि ) पृथ्वी पर बढ़ाओ। स्तुति योग्य वन्दनीय गुरुजन दीर्घायु हों।

युवं वन्दनं निर्ऋतं जरण्यया रथं न दस्रा करणा समिन्वथः।
क्षेत्रादा विप्रं जनथो विपन्यया प्र वामत्र विधते दंसना भुवत्॥७॥

भा०—( जरण्यया = चरण्यया युक्तं रथं न ) जिस प्रकार उत्तम गति से जाने वाले रथ को प्राप्त कर ( दस्रा ) शत्रुओं के नाशकारी रथी और सारथी दोनों ( सम् इन्वथः ) परस्पर मिल कर दूर देश तक चले

जाते हैं इसी प्रकार हे (दस्रा) दर्शनीय रूप वाले एवं एक दूसरे के दुःखों को दूर करने वाले स्त्री पुरुषो ! ( करणा ) कार्य करने में कुशल होकर ( जरण्यया ) उपदेश करने योग्य वेदवाणी से युक्त ( वन्दनं ) नित्याभिवादन योग्य ( निर्ऋतं ) निरन्तर सत्य ज्ञान के उपदेष्टा विद्या वृद्ध पुरुष को संसार की दूर यात्रा पार करने के लिये ( सम् इन्वथः ) सत्संग करो । हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग ( क्षेत्रात् ) उत्पत्ति स्थान गर्भाशय से बालक के समान ( विप्रम् ) विविध विद्याओं में पूर्ण शिष्य को ( आजनथः ) उत्पन्न करो । और ( विपन्यया ) विशेष स्तुति योग्य वाणी से ( वाम् ) तुम दोनों को ( दंसना विधते ) नाना कर्मों का उपदेश करने वाले विद्वान् की प्रतिष्ठा ( प्रभुवत् ) अच्छी प्रकार रहो । [ २ ] बालक के पक्ष में—जब तुम दोनों ( करणा ) गृहस्थ के करने वाले स्त्री पुरुष ( समिन्वथः ) परस्पर संगत होवो तब तुम दोनों ( वन्दनं ) स्तुति योग्य (जरण्यया निर्ऋतं) जरण्या अर्थात् जरायु के साथ बाहर आये ( विप्रम् ) विविध गुणों से पूर्ण ( रथं ) रमणीय बालक को ( क्षेत्रात् आजनथः ) क्षेत्र अर्थात् गर्भाशय से उत्पन्न करो । और तब ( वाम् ) तुम दोनों की ( विपन्यया ) विशेष व्यवहारकुशलता से ( अत्र विधते ) इस कार्य में ( दसना ) नाना कार्यों को करने वाले की ( प्र भुवत् ) प्रभुत्व या प्रतिष्ठा हो ।

**अगच्छतं कृपमाणं परावति पितुः स्वस्य त्यजसा निबाधितम् ।**
**स्वर्वतीरित ऊतीर्युवोरह चित्रा अभीके अभवन्नभिष्टयः ॥ ८ ॥**

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग ( स्वस्य पितुः ) अपने पालक माता पिता के ( त्यजसा ) त्याग से ( निबाधितम् ) खिन्न एवं ( कृपमाणं ) आप दोनों की स्तुति या विद्याध्ययन करते हुए बालक या शिष्य को प्राप्त करें । अथवा—हे राज प्रजावर्गो ! (स्वस्य पितुः सकाशात् परावति कृपमाणम् ) अपने पालक जन गुरु आदि से विद्या प्राप्त करके दूर देश में स्थित, कृपाशील, ( त्यजसा ) सर्व सुखों के त्याग द्वारा

( नि बाधितम् ) पीड़ित, तपस्वी पुरुष को ( अगच्छतम् ) प्राप्त होओ। ( इतः ) इस विद्वान् तपस्वी पुरुष से ही ( अह ) निश्चय से ( युवोः ) तुम दोनों को ( स्वः वतीः ) सुखदायिनी ( चित्राः ) आश्चर्यजनक (ऊतीः) ज्ञान, उपाय और ( अभीष्टयः ) अभीष्ट सिद्धियें भी ( अभीके अभवन् ) प्राप्त हों। यदि स्त्री पुरुषों को पुत्र न प्राप्त होता हो तो वे किसी ऐसे बालक को जिसको उसके मां बाप छोड़ चुके हों और आश्रय चाहता हो अपना पुत्र बना लें और उससे ही उन के सब अभीष्ट मनोरथ सिद्ध हो सकते हैं।

उत स्या वां मधुमन्मक्षिकारपन्मदे सोमस्यौशिजो हुवन्यति।
युवं दधीचो मन आ विवासथो था शिरः प्रति वामश्व्यं वदत् ॥६॥

भा०—हे राज प्रजावर्गो! जिस प्रकार (मदे) अति हर्ष में मस्त होकर ( मक्षिका ) मधु मक्षिका ( रपत् ) कूंजती है उसी प्रकार ( औशिजः ) कान्तिमान् तेजस्वी परमेश्वर या आचार्य का पुत्र या शिष्य, साधक विद्वान् ( सोमस्य ) सोम, परम ज्ञान और आनन्द रस के ( मदे ) परम हर्ष या ( सोमस्य मदे = दमे ) ब्रह्मचर्य पूर्वक वीर्य के दमन या पालन में साव-धान होकर ( वां ) तुम दोनों को ( मधुमत् ) मधुर ज्ञान का ( रपत् ) व्यक्त वाणी द्वारा उपदेश करे। और आप से आप (मधुमत्) मधुर अन्नादि पदार्थ ( हुवन्यति ) प्राप्त करे। ( युवं ) आप दोनों वर्ग ( दधीचः ) सकल विद्याओं को धारण करने वाले शिष्यों को प्राप्त होने योग्य, या धारणीय गुणों को प्राप्त आचार्य विद्वान् उपदेष्टा के ( मनः ) मनन करने योग्य ज्ञान का ( आविवासथः ) सब प्रकार से सेवन करो। ( अथ ) और वह ( वाम् प्रति ) तुम दोनों के प्रति ( अश्व्यं शिरः ) विद्या से युक्त मस्तक के समान उन्नत और मुख्य पद प्राप्त करके ( वदत् ) उपदेश करे। विशेष व्याख्या देखो सू० ११६ मं० १२॥

युवं पेदवे पुरुवारमश्विना स्पृधां श्वेतं तरुतारं दुवस्यथः ।
शर्यैरभिद्युं पृतनासु दुष्टरं चर्कृत्यमिन्द्रमिव चर्षणीसहम् ॥१०।२१॥

भा०—हे स्त्री पुरुषो ! हे राज प्रजावर्गो ! हे ( अश्विना ) राष्ट्र में मुख्य पदों के भोक्ता नायक पुरुषो ! आप दोनों ( पेदवे ) उच्चतम आसन को प्राप्त करने वाले राजा के और प्राप्त हुए राष्ट्र के हित के लिये ( पुरुवारम् ) बहुतसे प्रजाजनों से वरण करने योग्य और बहुत से शत्रुओं का वारण करने वाले, ( स्पृधां ) परस्पर स्पर्धा करने वाले, प्रतिस्पर्धी शत्रुओं के ( तरुतारम् ) पार पहुंचा देने वाले, (श्वेतम्) अति अधिक वेग से आक्रमण करने वाले, ( शर्यैः अभिद्युम् ) शत्रुहिंसक बाणादि अस्त्र शस्त्रों को चलाने में कुशल, वीर योद्धाओं से, किरणों से सूर्य के समान तेजस्वी विजयशील योद्धा ( पृतनासु दुस्तरं ) संग्रामों में पराजित न होने वाले, ( चर्षणीसहम् ) समस्त शत्रु मनुष्यों को पराजय करने में समर्थ, ( इन्द्रम् इव ) बलशाली राष्ट्रपति या सूर्य के समान ही ( चर्कृत्यम् ) शासन-कार्य या अन्धकार को दूर करने में कुशल पुरुष या सैन्य वर्ग को ( दुवस्यथः ) प्रदान करो ।

इन समस्त अश्वि-सूक्तों में अध्यात्म तथा ईश्वरोपासनापरक रहस्यों को विस्तार भय से नहीं दर्शाया है । उनको कहीं २ दिखाये संकेतों से ही जान लेना चाहिये ॥ इत्येकविंशो वर्गः ॥

## [ १२० ]

औशिक्पुत्रः कक्षीवानृषिः ॥ अश्विनौ देवते ॥ छन्दः—१, १२ पिपीलिकामध्या निचृद्गायत्री । २ भुरिग्गायत्री । १० गायत्री । ११ पिपीलिकामध्या विराड्गायत्री । ३ स्वराट् ककुबुष्णिक् । ५ आर्ष्युष्णिक् । ६ विराडार्ष्युष्णिक् । ८ भुरिगुष्णिक् । ४ आर्ष्यनुष्टुप् । ७ स्वराडार्ष्यनुष्टुप् । ९ भुरिगनुष्टुप् । द्वादशर्चं सूक्तम् ॥

का रा॑धद्धोत्रा॑श्विना वां को वां जोष॑ उभयो॑ः ।
कथा वि॑धात्यप्र॑चेताः ॥ १ ॥

भा०—हे ( अश्विना ) जाया-पति भाव से रहने वाले स्त्री पुरुषो ! ( उभयोः जोषे ) दोनों के परस्पर प्रेम व्यवहार में ( वाम् ) तुम दोनों में से कौन है जो ( होत्रा ) अपने को सब प्रकार से समर्पण करती हुई ( राधत् ) कार्य सिद्ध करती है ? और (कः) कौन है जो ( होत्रा ) सर्वात्मना स्वीकार करने वाला होकर ( राधत् ) कार्य साधता है । अथवा ( का कः च ) कौन स्त्री और कौन पुरुष ( होत्रा ) प्रदान और आदान के कार्यों को करता और करती है । इस बात का खूब ज्ञान सम्पादन करो । क्योंकि ( वां ) तुम दोनों में से ( अप्रचेताः ) कोई भी ज्ञानरहित मूढ़ होकर ( कथा विधाति ) किस प्रकार से परस्पर का गृहस्थ कार्य करने में समर्थ हो सकता है ? इसलिये गृहस्थ के दोनों अंगों को अपने २ कर्त्तव्यों का ज्ञान होना चाहिये । ( २ ) हे ( अश्विनौ ) युद्ध विद्या में निपुण वीर नायको ! या सेनापति और सैन्य वर्गो ! ( वां ) आप दोनों में से ( का ) कौन तो ( होत्रा ) शत्रुबल को वश करने में समर्थ होती है और तुम दोनों में से (उभयोः जोषे) परस्पर मिल कर करने योग्य राज-सेवा के कार्य में तुम दोनों में से ( कः ) कौन प्रमुख होकर (राधत्) शत्रुओं को वश करने में समर्थ है । (अप्रचेताः) युद्ध विद्या और सेना सञ्चालन के कार्यों से अनभिज्ञ मूढ़ पुरुष दोनों ही कार्यों को बिना जाने (कथा) किस प्रकार उक्त कार्य ( विधाति ) खूबी से कर सकता है ? (३) हे आत्मन्! (का होत्रा वां राधत् ) कौनसी वेदवाणी तुम दोनों की आराधन करती है । ( उभयोः जोषे ) जब दोनों का परस्पर प्रेम है तो ( वां कः राधत् ) तुम दोनों में से कौन किस को प्राप्त होता है । ( अप्रचेताः कथा विधाति ) अज्ञानी किस प्रकार से इस तत्व का वर्णन कर सकता है ।

विद्वांसाविद्दुरः पृच्छेदविद्वानित्थापरो अचेताः ।
नू चिन्नु मर्ते अक्रौ ॥ २ ॥

भा०—( अविद्वान् ) अविद्वान्, विद्याहीन, या शूद्र भृत्य ( विद्वांसौ इत् ) विद्वान्, जानकार स्त्री पुरुषों या मालिक मालकिनी से जाकर ( दुरः पृच्छेत् ) जिस प्रकार बड़े महल के दरवाज़े पूछता है उसी प्रकार ना जानकार मूर्ख पुरुष ( विद्वांसौ इत् ) विद्वान् ज्ञानी पुरुषों को प्राप्त होकर उन से ही इस देहबन्धन या संसारबन्धन से मुक्त होने के ( दुरः ) द्वारों को ( पृच्छेत् ) पूछे इसी प्रकार सेनाध्यक्षों से ही नाजानकार नवसिखुआ दुर्ग और व्यूहों के द्वारों को या शत्रु के वारण करने के उपायों को पूछे । ( इत्था ) इस प्रकार से ( अपरः ) जो पर या उत्कृष्ट नहीं, वह जीव पर अर्थात् उत्कृष्ट परमेश्वर की अपेक्षा अपर है। और आत्मा की अपेक्षा अपर देहादि भी (अचेताः) चेतना और ज्ञान से रहित है। ( नू चित् नु ) ठीक इसी प्रकार ( अक्रौ मर्त्ते ) क्रिया में अकुशल पुरुषसमूह में भी समझना चाहिये कि क्रिया का जानने वाला पुरुष विद्वान् और अकुशल अविद्वान् होता है।

ता विद्वांसा हवामहे वां ता नो विद्वांसा मन्म वोचेतमद्य ।
प्रार्चद्दयमानो युवाकुः ॥ ३ ॥

भा०—हम ( ता ) उन दोनों ( विद्वांसा ) विद्वान् पुरुषों को (हवामहे ) आदरपूर्वक स्वीकार करें और ( ता ) वे आप दोनों ही ( अद्य ) आज, अब, नित्य (नः) हमें ( मन्म ) मनन करने योग्य ज्ञान का ( वोचेतम् ) उपदेश करें। ( युवाकुः ) तुम दोनों का सच्चा प्रिय पुरुष या सबको विद्योपदेश से मिलाने हारा, उपदेष्टा पुरुष ( दयमानः ) सब पर दयालु होकर ( प्र अर्चत् ) तुम दोनों का सत्कार करे।

वि पृच्छामि पाक्या३न देवान्वषट्कृतस्याद्भुतस्य दस्रा ।
पातं च सह्यसो युवं च रभ्यसो नः ॥ ४ ॥

भा०—हे (दस्त्रा) दुःखों के विनाश करने हारे ! आप दोनों (पाक्या) परिपक्व विज्ञान वालों से ही मैं इस ( अद्भुतस्य ) अद्भुत, आश्चर्यकारी ( वषट्कृतस्य ) वषट्कार, यज्ञ-आहुति या आदान प्रतिदान, सृष्टिगत सर्ग और प्रलय के विषय में, अन्य विद्वानों के समान ( विपृच्छामि ) विविध प्रश्न पूछता हूं । ( युवं ) आप दोनों ( सह्यसः ) सहनशील, शत्रु पराजयकारी और ( रभ्यसः ) अति वेगवान्, शीघ्रकारी ( नः ) हम सबकी ( पातं च ) रक्षा भी करो ।

**प्र या घोषे भृगवाणे न शोभे यया वाचा यजति पज्रियो वाम् । प्रैषयुर्न विद्वान् ॥ ५ ॥ २२ ॥**

भा०—(यः) जो वाणी ( भृगवाणे घोषे वा ) भृगु अर्थात् इन्द्रियों के धारण और दमन करने वाले सूर्य और अग्नि के समान तेजस्वी पुरुष के तुल्य आचरण करने वाले, सर्व पापनाशक (घोषे ) वेद जो अति उत्तम प्रभुवाक्य रूप से विद्यमान सर्वोपरि मान्य है उससे मैं भी (प्रशोभे) सुशोभित होऊं । और ( यया वाचा ) जिस वाणी से हे विद्वान् पुरुषो ! ( पज्रियः ) उत्तम ज्ञानों और प्राप्तव्य परमपद के प्राप्त करने में कुशल ( इषयुः न विद्वान् ) वाण चलाने में सिद्धहस्त, लक्ष्यवेध में चतुर पुरुष के समान अपने उद्देश्य तक पहुंचने वाला ( विद्वान् ) विद्वान् ( वाम् यजति ) आप दोनों का सत्संग करता है उससे भी मैं ( प्र शोभे ) खूब सुशोभित होऊं । इति द्वाविंशो वर्गः ॥

**श्रुतं गायत्रं तकवानस्याहं चिद्धि रिरेभाश्विना वाम् । आक्षी शुभस्पती दन् ॥ ६ ॥**

भा०—हे ( शुभस्पती ) शोभाकारी और तेजस्वी, उत्तम ज्ञान के पालक, जल के पालक मेघ के समान ज्ञानवर्षक, प्रमुख विद्वान् स्त्री पुरुषो!

( तकवानस्य ) ज्ञानवान्, विद्यावान् पुरुष का ( श्रुतम् ) श्रवण करने योग्य ( गायत्रम् ) गायन करने वाले की नित्य अज्ञानपूर्वक कुपथ में पड़ जाने से रक्षा करने हारे, ( आक्षी ) आँखों के समान मार्ग दिखाने वाले ( अहं-चित् हि ) मैं भी ( वाम् ) आप दोनों के ज्ञान को ( आदन् ) प्राप्त करूं।

युवं ह्यास्तं महो रन्युवं वा यन्निरततंसतम्।
ता नो वसू सुगोपा स्यातं पातं नो वृकादघायोः ॥ ७ ॥

भा०—हे ( वसू ) राष्ट्र को बसाने और घर को बसाने वाले नायको और स्त्री पुरुषो ! विद्वानो ! ( युवं हि ) निश्चय से आप दोनो ( महः रन्) बड़े भारी पूजनीय ज्ञान और रक्षा और ऐश्वर्य के देने वाले ( आस्तम्) होवो। ( वा ) और ( यत् युवं ) जो आप दोनों ( निर् अततंसतम् ) हमें सब प्रकार से विद्या आदि शुभ गुणों और वस्त्र आभूषणादि से भी अलं-कृत करते हो ( ता ) वे आप दोनों ( नः सुगोपा स्यातम् ) हमारे उत्तम रक्षक और उत्तम वेदवाणियों और इन्द्रियों और गवादि पशुओं और भूमियों के पालक रक्षक होवो। और (नः) हमें ( अघायोः ) हमपर पापा-चार हत्या आदि अपराध करने वाले ( वृकात् ) भेड़िये के समान छल से आक्रमण करने वाले, दुष्ट पुरुष से ( पातम् ) रक्षा करो।

मा कस्मै धातमभ्यमित्रिणे नो मा कुत्रा नो गृहेभ्यो धेनवो गुः।
स्तनाभुजो अशिश्वीः ॥ ८ ॥

भा०—हे राज्यकर्त्ता पुरुषो ! विद्वान् स्त्री पुरुषो ! आप लोग (नः) हमें ( कस्मै ) किसी भी ( अमित्रिणे ) मित्र जनों से रहित, सबके शत्रु, स्नेह-शून्य, अकारण वैरी पुरुष के स्वार्थ के लिये ( मा अभिधातम् ) कभी न धरें, या उसको हमारा पता न करें। ( नः ) हमारे ( गृहेभ्यः ) घरों से (धेनवः) दुधार गौवें ( अकुत्र ) अन्यत्र कहीं, संकट के स्थान में (मा गुः)

न जावें। और ( स्तनाभुजः ) स्तनों द्वारा बच्छों और बच्चों के पालने वाली गौवें और माताएं (अशिश्वीः) शिशु रहित ( मा ) न हों।

दुहीयन्मित्रधितये युवाकु राये च नो मिमीतं वाजवत्यै ।
इषे च नो मिमीतं धेनुमत्यै ॥ ९ ॥

भा०—हे विद्वान् स्त्री पुरुषो ! एवं नायको ! अध्यक्ष जनो ! (युवाकु) दुःखों को दूर करने और सुखों के प्राप्त करने के लिये और ( मित्रधितये ) स्नेही, मित्र जनों के पालन करने के लिये ये सब गौएं, भूमियें और माताएं ( दुहीयन् ) अपना दूध, अन्न और स्नेह प्रदान करती हैं। आप दोनों भी हमें ( नः ) हमारे ( राये ) ऐश्वर्य की वृद्धि और ( वाजवत्यै ) अन्नादि देने वाली भूमि को प्राप्त और सदुपयोग करने के लिये (मिमीतम्) विशेष ज्ञान का उपदेश करें। और (नः) हमें ( धेनुमत्यै इषे च ) गौओं से पूर्ण अन्न समृद्धि प्राप्त करने के लिये ( नः मिमीतम् ) सदा प्रेरणा और प्रोत्साहन देते रहो।

अश्विनोरसनं रथमनश्वं वाजिनीवतोः ।
तेनाहं भूरि चाकन ॥ १० ॥

भा०—( अश्विनोः ) शिल्प विद्याओं में कुशल, ( वाजिनीवतोः ) बलवती, वेगवती क्रिया के उत्पन्न करने में कुशल शिल्पियों के बनाये ( अनश्वं रथम् ) विना अश्व के चलने वाले रथ, विमान, मोटर गाड़ी आदि रमण करने योग्य आनन्दप्रद यान को मैं राजा और प्रजावर्ग ( असनम् ) प्राप्त करूं। और ( तेन ) उस यान आदि ऐश्वर्य से ( अहं ) मैं ( भूरि ) बहुत अधिक ( चाकन ) तेजस्वी होऊं। ( २ ) अध्यात्म में—इस देह में प्राण और अपान ये दो अश्वी हैं जो वाज अर्थात् अन्न शक्ति के स्वामी होने से वाजिनीवान् हैं। उनके इस देह रूप अश्वरहित रथ का मैं आत्मा भोग करता हूं। और उससे बहुत ( चाकन ) कामनाएं पूर्ण करता हूं।

(३) इसी प्रकार मुख्य राजा अपने अधीन सभा और सेना के दो अध्यक्षों के हाथ शक्ति देकर उनके विना अश्व अर्थात् विना भोक्ता के रथ अर्थात् उत्तम व्यवस्थित राष्ट्र का भोग स्वतः करे और उससे खूब तेजस्वी हो।

अयं समह मा तनूह्याते जनाँ अनु ।
सोमपेयं सुखो रथः ॥ ११ ॥

भा०—हे ( समह ) आदर सत्कार से युक्त विद्वन् ! ( अयम् ) यह ( सुखः ) सुखदायक ( रथः ) रमण करने, आनन्द विहार करने योग्य और वेग से जाने वाला रथ है। वह ( जनान् अनु ) अन्य जनों तक भी ( ऊह्यते ) पहुंचाया जाता है। अर्थात् उसमें बैठ कर अन्यों तक पहुंचा जाता है। अथवा—उसमें विराजे पति पत्नी या वर वधू (जनान् अनु ऊह्यते) अन्यों जनों तक पहुंचाए जाते हैं। ऐसा ही एक रथ (सोमपेयम् ) जिससे ऐश्वर्य का, सुखप्रद रसपान के समान उपभोग हो सके ( मा तनु ) मुझे भी बनादे। ( २ ) भक्त ईश्वर को कहता है—हे ( समह ) महान् शक्ति वाले ! प्रभो ! ( अयम् रथः ) यह देह रमण करने से 'रथ' है। अथवा यह आत्मा रस स्वरूप होने से 'रथ' है। यह ( सुखः ) सुख प्रद हो, इसमें 'ख' अर्थात् इन्द्रियें सुख, शान्तिजनक हों, वे दुःखदायी न हों। इससे (सोम-पेयम् ) परमैश्वर्य, ब्रह्मानन्दरूप रस का पान करने के साथ २ दोनों उपास्य और उपासक इस आत्मा में ( जनान् अनु ) उत्पन्न होने वाले आनन्दों को लक्ष्य करके ही धारण किये जाते हैं। वैसा ही यह सुखप्रद देह या आत्मा ( मा तनु ) मेरा भी कर दे।

अध स्वप्नस्य निर्विदेऽभुञ्जतश्च रेवतः ।
उभा ता बस्रि नश्यतः ॥ १२ ॥ २३ ॥ १७ ॥

भा०—(अध) और मैं (स्वप्नस्य) निद्रा, आलस्य करने वाले आलसी तथा ( अभुञ्जतः रेवतः चः ) स्वयं ऐश्वर्य का भोग और अन्यों का पालन

न करने वाले धनवान् पुरुष इन दोनों से ( निः विदे ) उदासीन हूं, दोनों को निरुपयोगी, निकम्मा समझता हूं, क्योंकि ( ता उभा ) वे दोनों ( वस्त्रि) शीघ्र ही या सुखनाशक होने से ( नश्यतः ) स्वयं नष्ट हो जाते हैं। इति त्रयोविंशो वर्गः ।

इति सप्तदशोऽनुवाकः ॥

## [ १२१ ]

औषिजः कक्षीवानृषिः ॥ विश्वेदेवा इन्द्रश्च देवता ॥ छन्दः—१, ७, १३ भुरिक् पंक्तिः । २, ८, १० त्रिष्टुप् । ३, ४, ६, १२, १४, १५ विराट् त्रिष्टुप् । ५, ६, ११ निचृत् त्रिष्टुप् ॥ पञ्चदशर्चं सूक्तम् ॥

**कदित्था नॄँः पात्रं देवयतां श्रवद्गिरो अङ्गिरसां तुरण्यन् ।**
**प्र यदानड् विश आ हर्म्यस्योरु क्रंसते अध्वरे यजत्रः ॥ १ ॥**

भा०—( नॄन् ) समस्त मनुष्यों और नायकों का ( पात्रम् ) पालक राजा ( तुरण्यन् ) त्वरावान् उत्सुक होकर ( देवयतां अङ्गिरसाम् ) उत्तम राजा को हृदय से चाहने वाले, तेजस्वी विद्वान् पुरुषों की ( गिरः ) वाणियों और उपदेशों को (इत्था) इस प्रकार से ( कत् ) कब श्रवण करे ? [उत्तर] ( यत् ) जब ( यजत्रः ) सत्संग करने वाला स्वामी ( हर्म्यस्य इव ) बड़े महल या अन्तः पुर के समान ( विशः ) प्रजाओं के (अध्वरे ) पालन रूप उत्तम कार्य में ( प्र आनड् ) प्रतिष्ठा प्राप्त करे और ( ऊरु क्रंसते ) बहुत अधिक ऊंचे पद पर क़दम बढ़ावें । प्रायः ऊंचे राज्यादि पद को पाकर, पुरुष गर्वी होकर विद्वानों का वचन नहीं सुनता, परन्तु उसी अव-

सर पर उसे विद्वानों का वचन उत्सुक होकर श्रवण करना चाहिये। (२) अध्यात्म में—( यजत्रः ) परमेश्वर से संग करने वाला मुमुक्षु जब ( विशः ) अपने प्रवेश योग्य प्राणों पर (प्र आनाड्) वश प्राप्त करले और (हर्म्यस्येव) महल के ऊंचे अखण्ड्य रक्षा स्थान के समान (अध्वरे ) उस अविनाशी, पालक, परमेश्वर तक पहुंचता है तब भी ( नृः पात्रम् ) प्राणों का पालक जितेन्द्रिय होकर वह ( अंगिरसां देवयतां गिरः तुरण्यन् श्रवद् ) ज्ञानवान् ईश्वरभक्तों की वाणियों का श्रवण किया करे।

स्तम्भीद्ध द्यां स धरुणं प्रुषायदृभुर्वाजाय द्रविणं नरो गोः ।
अनु स्वजां महिषश्चक्षत व्रां मेनामश्वस्य परि मातरं गोः ॥ २ ॥

भा०—जिस प्रकार (ऋभुः) बहुत अधिक तेजस्वी सूर्य (द्यां स्तम्भीत्) आकाशस्थ पिण्डों को आकर्षण बल से थामता है। और ( गोः ) पृथिवी के ऊपर ( वाजाय ) अन्न की उत्पत्ति के लिये ( द्रविणं ) ऐश्वर्य रूप से ( धरुणम् ) सब प्राणियों के जीवन धारक जल को ( प्रुषायत ) मेघ द्वारा बरसाता है उसी प्रकार ( ऋभुः नरः ) तेजस्वी, सत्य ज्ञान और ऐश्वर्य से चमकने वाला पुरुष ( द्यां स्तम्भीत् ) ज्ञानवान् तेजस्वी पुरुषों की राज-सभा को वश करे। ( वाजाय ) ऐश्वर्य की वृद्धि और संग्रामों के विजय के लिये ( द्रविणम् प्रुषायद् ) धन को मेघ के समान भृत्यों पर बरसा दे अथवा ( द्रविणं प्रुषायत् ) द्रुतगति से जाने वाले अपने सैन्य को या शस्त्रास्त्र को शत्रु पर बरसा दे। ( महिषः ) महान् शक्ति वाला सूर्य जिस प्रकार ( स्वजाम् ) अपने ही से उत्पन्न या प्रकट होने वाली ( व्राम् ) वरण करने योग्य कन्या के समान अपने प्रकाशों से जगत् को ढक देने वाली उषा को ( अनु चक्षत ) प्रकाशित करता है और उसके बाद स्वयं भी प्रकट होता है इसी प्रकार ( महिषः ) पृथ्वी के विशाल राज्य का भोक्ता नृपति भी ( स्वजां ) अपने सामर्थ्य या प्रभुत्व से प्रकट होने

वाली, ( व्रां ) अपने प्रभु को स्वयं चुनने वाली प्रजा को ( अनुचक्षत ) अपने अनुकूल देखे, उस पर अनुग्रह करे। और जिस प्रकार ( अश्वस्य मेनाम् ) सूर्य के व्यापक प्रकाश के नाश करने वाली ( गोः ) भूमि की ( मातरं ) माता के समान पालन करने वाली और अन्धकार मय गोदमें लेने वाली रात्रि को ( परि चक्षत ) अपने पीछे छोड़ जाता है उसी प्रकार राजा भी ( अश्वस्य ) समृद्ध राष्ट्र और राष्ट्रपति के ( मेनाम् ) मुख्य वाणी या शासन को या शत्रु नाशक सेना या मान्य करने योग्य व्यवस्था को ( गोः ) समस्त पृथ्वी के ( परि ) ऊपर ( मातरम् ) माता के समान राष्ट्र का पालन और रक्षा करने वाला ( परिचक्षत ) नियत करता है।

नक्षद्धवमरुणीः पूर्व्यं राट् तुरो विशामङ्गिरसामनु द्यून्।
तक्षद्वज्रं नियुतं तस्तम्भद् द्यां चतुष्पदे नर्याय द्विपादे ॥ ३ ॥

भा०—( राट् ) प्रकाशमान् सूर्य जिस प्रकार ( पूर्व्यम् ) पूर्व दिशा में प्रकट होने वाले ( हवम् ) देने योग्य प्रकाश को देता और ( अरुणीः नक्षत् ) प्रकाशमान् उषाओं को व्यापता है उसी प्रकार जो तेजस्वी पुरुष ( पूर्व्यम् हवम् ) पूर्व के विद्वानों से किये और उपदेश किये गये ( हवम् ) देने और आदरपूर्वक ग्रहण करने योग्य न्याय और ज्ञान को प्रकट करता और ( अरुणीः ) सबके चित्त को लुभाने वाली उत्तम धार्मिक नीतियों को ( नक्षत् ) वर्त्तता है और जो ( तुरः ) अति शीघ्रकारी, वायु के समान वेग से शत्रु पर जाने वाला ( अनु द्यून् ) सब दिनों (नियुतं वज्रं नक्षत्) बड़े प्रबल वज्र या अशनि प्रपात के समान सदा स्थिर, नियुक्त दृढ़ शस्त्रास्त्र बल को तीक्ष्ण करके शत्रु पर प्रहार करता है और ( चतुष्पदे ) चौपाये पशुओं के ( नर्याय ) साधारण मनुष्यों के बीच नायकों के और (द्विपादे) दोपाये भृत्य आदि सेवक जनों के हित के लिये ( द्यां तस्तम्भद् ) सूर्य के प्रकाश के समान न्याय और विद्या के प्रकाश तथा राजसभा और विद्व-

त्सभा को स्थापित करता है वही ( अंगिरसां विशा ) तेजस्वी अग्नियों के बीच सूर्य के समान विद्वान्, तेस्वजी और वीर पुरुषों में और प्रजागण में ( राट् ) राजा सम्राट् है।

अस्य मदे स्वर्यं दा ऋतायापीवृतमुस्रियाणामनीकम्।
यद्ध प्रसर्गे त्रिककुम्निवर्तदप द्रुहो मानुषस्य दुरो वः ॥ ४ ॥

भा०—सूर्य जिस प्रकार ( अपीवृतम् ) अन्धकार से आवृत ( उस्रियाणाम् स्वर्यं अनीकम् ) तेजोमय, तापदायक रश्मियों के समूह को (ऋताय दाः) प्रकाश और वृष्टि जल के प्रयोजन से भूमिपर फैलाता है उसी प्रकार राष्ट्रपति ( अस्य ) इस प्रजाजन के हर्ष के लिये या इस प्रजाजन के ( मदे = दमे ) दमन और शासन के निमित्त और ( ऋताय ) सत्य न्याय के प्रकाश, ऐश्वर्य और अन्नादि समृद्धि की वृद्धि के लिये ( अपीवृतम्) सुखों से युक्त, या अन्यों से अज्ञात (उस्रियाणां) शासन वाणियों के ( स्वर्यं ) उपदेश प्रद, ( अनीकम् ) समूह को और ( अपीवृतम् ) सुरक्षित, ( उस्रियाणां ) उत्तम वेग से जाने वाली सेनाओं के ( स्वर्यं अनीकम् ) शत्रुओं को तापदायी सैन्य बल को ( दाः ) प्रदान करता है, प्रकट करता है। और जिस प्रकार ( त्रिककुप् ) तीनों लोकों में श्रेष्ठ, सर्वोच्च सूर्य ( प्रसर्गे निवर्त्तत् ) अपने उत्तम प्रकाश को प्रकट करके अन्धकार को दूर करता है और जिस प्रकार ( त्रिककुप् ) माता पिता और आचार्य इन तीनों में सर्वश्रेष्ठ अर्थात् वेदत्रयी का विद्वान्, आचार्य ( प्रसर्गे ) अपने उत्कृष्ट सर्ग विद्योपदेश काल में संशय युक्त अज्ञान को दूर करता है उसी प्रकार ( यत् ह ) जो पुरुष निश्चय से ( प्रसर्गे ) अपने उत्तम राष्ट्र के बनाने के कार्य में या युद्धादि में ( त्रिककुप् ) शत्रु, मित्र, उदासीन तीनों में सर्वश्रेष्ठ होकर अथवा प्रज्ञा, उत्साह और प्रभुत्व तीनों में श्रेष्ठ होकर ( मानुषस्य द्रुहः ) राष्ट्रवासी, मनुष्यों के द्रोहकारी दुष्ट पुरुषों को दूर करता है वही

( दुरः अवः ) राष्ट्र, नगर तथा सुख समृद्धि के नाना द्वारों को घरके द्वारों के समान खोल देता है ।

**तुभ्यं पयो यत्पितरावनीतां राधः सुरेतस्तुरणे भुरण्यू ।**
**शुचि यत्ते रेक्ण आयजन्त सबर्दुघायाः पय उस्रियायाः ॥५॥२४॥**

भा०—( यत् ) जिस प्रकार ( भुरण्यू ) भरण पोषण करने वाले ( पितरौ ) माता पिता ( तुरणे ) जल्दी मचाने वाले, अधीर बालक के लिये ( सुरेतः ) उत्तम वीर्योत्पादक ( पयः ) दूध और ( राधः ) धन ( अनीताम् ) प्राप्त कराते हैं, अथवा माता पिता जिस प्रकार बालक को ( सुरेतः ) उत्तम जल और ( पयः ) पुष्टिकारक अन्न और ( राधः ) धन प्रदान करते हैं उसी प्रकार हे राजन् ( पितरौ ) राष्ट्र के पालक मां बाप के समान राजा-प्रजावर्ग या सभाध्यक्ष और सेनाध्यक्ष ( भुरण्यू ) राष्ट्र के और तेरे भरण पोषण करने में समर्थ होकर ( तुरणे ) अति क्षिप्रकारी और शत्रुओं के नाश करने में समर्थ ( तुभ्यम् ) तुझ राजा की पुष्टि के लिये ( सुरेतः ) उत्तम जल से युक्त ( पयः ) पुष्टिकारक अन्न और ( सुरेतः पयः ) वीर्यवर्धक दुग्ध और ( राधः ) धनैश्वर्य ( अनीताम् ) प्राप्त करावें । और ( यत् ) जिस प्रकार गो-पालक या विद्वान् जन ( सबर्दुघायाः ) सर्वपोषक, दूध देने वाली ( उस्रियायाः ) गौ के (शुचि-पयः) शुद्ध, पवित्र दूध को ( आ अयजन्त ) सब तरफ़ से ले लेते हैं और उससे यज्ञ करते हैं उसी प्रकार वे विद्वान् जन ( सबर्दुघायाः ) समस्त प्रजा को समान रूप से भरण पोषण करनेवाले अन्न को दोहन करनेवाली ( उस्रियायाः ) मातृ-भूमि के ( पयः ) पुष्टिकारक अन्न के समान (शुचि रेक्णः ) शुद्ध ईमानदारी से प्राप्त धन को ( ते ) तेरे हित के लिये ( आ अयजन्त) स्वीकार करें, प्राप्त करें, तुझे प्रदान करें। इति चतुर्विंशो वर्गः ॥

**अध प्र जज्ञे तरणिर्ममत्तु प्र रोच्यस्या उषसो न सूरः ।**
**इन्दुर्येभिराष्ट स्वेदुहव्यैः स्रुवेण सिञ्चञ्जरणाभि धाम ॥ ६ ॥**

भा०—( उषसः सूरः न ) उषा के समीप सूर्य जिस प्रकार अति अधिक प्रकाश के सहित ( प्ररोचि॰) प्रकाशित होता है उसी प्रकार राजा ( अस्याः ) इस (उषसः) शत्रु को सन्ताप देने वाली सेना, तथा कमनीय गुणों से युक्त प्रजा और भूसम्पत्ति के योग से ( तरणिः ) सब दुःखों से स्वयं पार होने और अन्यों को पार करनेहारा होकर विद्वान् पुरुष और तेजस्वी राजा ( प्र जज्ञे ) उत्तम रीति से प्रसिद्ध हो । और (प्र ममत्तु) खूब प्रसन्न और तृप्त हो । और (प्र रोचि) अच्छी प्रकार प्रकाशित और सर्वप्रिय हो । वह ( इन्दुः ) ऐश्वर्यवान् होकर ( येभिः ) जिन ( स्व-इदु-हव्यैः) अपने तेजः सामर्थ्यों, ऐश्वर्यों को देनेवाले सहयोगियों के साथ ( आष्ट ) वह राज्यैश्वर्य का भोग करता है उन्हीं के बल से ( स्रुवेण ) स्रुवा से (सिञ्चन्) सिंचे यज्ञाग्नि के समान और ( स्रुवेण ) इस प्रजाजन से ( अभिषिञ्चन् ) अभिषेक को प्राप्त होता हुआ ( धाम ) राष्ट्र को धारण करने वाले तेज और बल, राज्यैश्वर्य का भी (आष्ट) भोग करे । और (जरणा) स्तुत्य कर्मों और ऐश्वर्यों को (आष्ट) प्राप्त करे । अथवा—( स्रवेण अभि धाम सिञ्चन् जरणा आष्ट ) उन ऐश्वर्यप्रद सहयोगियों के द्वारा ही स्रवणशील जल आदि से इस राष्ट्रभूमि को कृषि आदि के लिये सींचता हुआ लोकोपकारक स्तुत्य कर्मों को करे और उत्तम ऐश्वर्यों का भोग करे ।

**स्विध्मा यद्वनधितिरपस्यात्सूरो अध्वरे परि रोधना गोः ।**
**यद्ध प्रभासि कृत्व्याँ अनु द्यूनन॑र्विशे पश्विषे तुराय ॥ ७ ॥**

भा०—( यद् ) जिस प्रकार ( सूरः ) सूर्य ( स्विध्मा ) उत्तम दीप्ति वाला ( वन-धितिः ) सेवन करने योग्य वृष्टि-जलों को धारण करने में समर्थ होकर (अध्वरे) अन्तरिक्ष में ( परि ) सब ओर ( गोः ) रश्मिसमूह का ( रोधना ) निरोधन अथवा ( गोः ) पृथ्वी के स्तम्भन आदि ( अपस्यात् ) कार्य करता है और जिस प्रकार ( सूरः ) विद्वान्

पुरुष ( स्विध्मा ) उत्तम तेजस्वी होकर ( वनधितिः ) भजन या सेवन करने योग्य एकमात्र प्रभु को ही अपने हृदय में धारण करता हुआ (गोः) इन्द्रियगण के ( रोधना ) नाना प्रकार के निरोध अर्थात् संयम के कार्यों को ( परि अपस्यात् ) अच्छी प्रकार करता है । उसी प्रकार ( सूरः ) सूर्य समान तेजस्वी राजा भी ( स्विध्मा ) उत्तम दीप्ति युक्त अग्नि के समान सुतीक्ष्ण और ( वनधितिः ) वन अर्थात् सेवन करने योग्य भोग्य ऐश्वर्यों को धारण करने वाला होकर ( गोः ) भूमि के ( अध्वरे ) हिंसा रहित धर्म कार्य और प्रजा पालन के कार्य में ( रोधना ) संयम करने के उपायों को ( परि अपस्यात् ) अच्छी प्रकार अनुष्ठान करे । और जिस प्रकार (सूरः) सूर्य ( अनु द्यून् ) दिन प्रतिदिन, निरन्तर ( कृत्व्यान् अनु ) उत्तम अन्धकारों दूर करने वाले प्रकाश के किरणों से ( प्रभासि ) चमकता है उसी प्रकार हे विद्वान् पुरुष ! प्रतिदिन (कृत्व्यान् अनु) अपने कर्तव्य कर्मों के अनुरूप ही (प्रभासि) अच्छी प्रकार प्रकाशित हो और (अनर्विशे) शकट से नगर में प्रवेश करने वाले, ( पश्विषे ) पशुओं को चाहने वाले और ( तुराय ) वेग से यानादि से जाने वाले के लिये ( प्रभासि ) अच्छी प्रकार प्रकाशित हो । अर्थात् इनकी वृद्धि कर ।

**अ॒ष्टा म॒हो दि॒व आदो॒ हरी॑ इ॒ह द्यु॑म्ना॒साह॑म॒भि यो॑धा॒न उत्स॑म् ।**
**हरिं॒ यत्ते॑ म॒न्दिनं॑ दु॒क्षन्वृ॒धे गोर॑भस॒माद्रि॑भिर्वा॒ताप्य॑म् ॥ ८ ॥**

भा०—जिस प्रकार ( महः दिवः ) महान् आकाश या प्रकाश का (अष्टा) भोक्ता या व्यापक सूर्य (उत्सम् अभि योधानः) जल बरसाने वाले मेघ के साथ युद्ध करता हुआ ( हरी आदः ) अपने आकर्षण और प्रकाश या प्रकाश और ताप दोनों को अपने वश रखता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू ( महः दिवः ) बड़े भारी तेज, विद्वत्सभा या विजयशालिनी सेना का ( अष्टा ) भोक्ता, वीर सभापति और सेनापति ( इह ) इस राष्ट्र में या

संग्राम में ( उत्सं ) ऊपर उठते हुए, ( द्युम्नासाहम् ) ऐश्वर्य को विजय करते हुए शत्रु के ( अभि योधानः ) मुकाबले पर युद्ध करता हुआ ( हरी आदः ) दोनों अश्वों को अपने वश कर। और ( यत् ) जिस प्रकार याज्ञिक लोग ( वाताप्यम् ) प्राण के बल से प्राप्त करने योग्य, थका देने वाले, ( मन्दिनं हरिम् ) तृप्ति करने वाले, हर्षोत्पादक, हरे सोमोषधि रस को ( गोरभसम् ) गौ के दूध से मिश्रित करके ( अद्रिभिः ) प्रस्तरों से ( दुक्षन् ) कूटकर रस प्राप्त करते हैं उसी प्रकार सेनापते ! राजन् ! ( ते वृधे ) तेरी वृद्धि के लिये वे वीर गण ( मन्दिनं ) अति प्रसन्न करने वाले ( हरिं ) वेगवान् ( वाताप्यम् ) वायु वेग से प्राप्त होने वाले, अति शीघ्रगामी, ( गोरभसम् ) सेनापति की आज्ञा पर ही वेग से जाने वाले ( हरिम् ) वेगवान् अश्वबल को ( अद्रिभिः ) मेघों के समान शस्त्रास्त्रवर्षी पुरुषों द्वारा अथवा ( अद्रिभिः ) न दीर्ण होने वाले, दृढ़ अभेद्य पर्वतों के समान अचल महारथियों द्वारा ( दुक्षन् ) दोहते हैं, उनको पूर्ण करते हैं।

त्वमा॑य॒सं प्रति॑ वर्तयो॒ गोर्दि॒वो अश्मा॑न॒मुप॑नीत॒मृभ्वा॑ ।
कुत्सा॑य॒ यत्र॑ पुरुहूत व॒न्वञ्छुष्ण॑मन॒न्तैः प॑रि॒यासि॑ व॒धैः ॥ ६ ॥

भा०—हे राजन् ! सेनापते ! जिस प्रकार सूर्य ( गोः दिवः अश्मान ) आकाश और पृथिवी पर व्यापने वाले, ( उपनीतं ) समीप आये मेघ को ( ऋभ्वा ) बहुत अधिक प्रकाश या वेगवान् वायु से खूब चलाता है उसी प्रकार तू भी ( ऋभ्वा ) विज्ञानवान् शिल्पी से ( उपनीतं ) प्राप्त कराये हुए ( अश्मानम् ) शिला के समान अभेद्य और ( आयसं ) लोह के बने शस्त्रास्त्र को ( गोः दिवः ) भूमि और अकाश के बीच ( प्रतिवर्तयः ) चला। ( दिवः अश्मानम् ) भूमि और विजयलक्ष्मी के लाभ कराने वाले (आयसं) फौलाद के बने शस्त्रास्त्र समूह को ( प्रति ) शत्रुओं के प्रति (वर्त्तयः) चला। हे (पुरुहूत) बहुत से शत्रुओं से ललकारे जाने वाले ! अथवा

बहुतसी प्रजाओं द्वारा रक्षार्थ बुलाये जाने वाले सेनापते! ( कुत्साय ) जल-वृष्टि के लिये जिस प्रकार सूर्य ( शुष्णम् ) पृथ्वी पर के जल को सुखा देने वाले ताप को ( वन्वन् ) धारण करता हुआ ( अनन्तैः ) असंख्य किरणों से प्रकाशित होता है। उसी प्रकार हे सेनापते! तू (कुत्साय) काट गिरा देने योग्य शत्रुओं को नाश करने के लिये या शत्रुओं से काटी जाने वाली प्रजा की रक्षा के लिये ( शुष्णम् वन्वन् ) शत्रु के शोषणकारी बल को धारण करता हुआ या शोषणकारी शत्रु को ( वन्वन् ) विनाश करता हुआ ( अनन्तैः वधैः ) अनन्त, असीम, असंख्य शस्त्रों और वीर भटों के साथ ( परि यासि ) प्रयाण कर। [ २ ] आचार्य के पक्ष में—हे ( पुरुहूत ) बहुत सी प्रजाओं से आदर पाने योग्य विद्वन् ( ऋभ्वा ) सत्य ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित होने वाले आचार्य द्वारा ( उपनीतम् ) उपनयन किये गये ( गोः दिवः ) वेदवाणी और तेज तथा ब्रह्मचर्य के (अश्मानम् ) सेवन करने वाले एवं चट्टान के समान दृढ़, सहिष्णु ( आयसम् ) फौलादके समान बलवान् पुरुष को ( प्रतिवर्त्तयः ) गृहस्थाश्रम के प्रति समावर्त्तन कर ( यत्र ) जिस ब्रह्मचारी पर या जहां तू ( कुत्साय ) बुरी आदतों के तोड़ने के लिये, या बल वीर्य के प्राप्त करने के लिये, या वेद सूक्तों को पढ़ने वाले शिष्यों के हित के लिये, ( शुष्णं वन्वन् ) बल को धारण करता हुआ ( अनन्तैः ) अनन्त प्रकारों के ( वधैः ) ताड़ना आदि उपायों से ( परियासि ) प्राप्त होता है।

कुत्सः—इत्येतत् कृन्ततेः। ऋषिः कुत्सो भवति कर्त्ता स्तोमानामित्यौपमन्यवः॥

पुरा यत्सूरस्तमसो अपीतेस्तमद्रिवः फलिगं हेतिमस्य। शुष्णस्य चित्परिहितं यदोजो दिवस्परि सुग्रथितं तदादः॥ १०॥ २५॥

भा०—( यत् ) जिस प्रकार ( तमसः अपीतेः ) अन्धकार का नाश

कर देने से ( सूरः ) सूर्य ( फलिगान् आदः ) मेघ को भी सर्व प्रकार से छिन्न-भिन्न करता है और ( शुष्णस्य ) मेघ का ( यत् ओजः दिवः परि ) जो ओज आकाश या सूर्य पर ( सुग्रथितम् ) दृढ़ता से बँध जाता है ( तत् आदः ) उसको भी तू छिन्न-भिन्न करता है उसी प्रकार हे (अद्रिवः) पर्वतों से युक्त भूमि के स्वामिन् ! अथवा मेघ के समान शस्त्रास्त्रवर्षी वीर ! महारथी पुरुषों के नायक ! और पर्वत के समान अचल दुर्भेद्य सैन्यबल से युक्त एवं वज्र के धारक ! राजन् ! सेनापते ! तू ( पुरा ) पहले के समान ही ( सूरः ) विद्वान्, समस्त सैन्य का सञ्चालक होकर ( तमसः ) प्रजा को कष्टदायी, ( अपीतेः ) नाशकारी ( अस्य ) इस शत्रु दल के ( तम् ) उस ( फलिगम् हेतिम् ) फलेवाले शस्त्र को ( आ अदः ) छिन्न-भिन्न कर और ( शुष्णस्य ) प्रजा के पोषणकारी शत्रु का ( यत् ) जो ( दिवः परि ) भूमि पर ( परिहितं ) फैला हुआ ( ओजः ) तेज, पराक्रम ( सुग्रथितम् ) अच्छी प्रकार दृढ़ता से स्थित हो ( तत् ) उसको भी ( आ अदः ) सब प्रकार से छिन्न-भिन्न कर । इति पञ्चविंशो वर्गः ॥

अनु॑ त्वा म॒ही पाज॑सी अच॒क्रे द्यावा॒क्षामा॑ मदतामिन्द्र॒ कर्म॑न् ।
त्वं वृ॒त्रमा॒शया॑नं सि॒रासु॑ म॒हो वज्रे॑ण सिष्वपो व॒राहु॑म् ॥ ११ ॥

भा०—जिस प्रकार ( द्यावाक्षामा ) आकाश और पृथ्वी दोनों, ( मही ) विशाल ( पाजसी ) बलवती और ( अचक्रे ) स्थिर, स्वतः कार्य करने में असमर्थ होकर भी सूर्य के प्रकाश कार्य में प्रसन्न और तृप्त हो जाते हैं उसी प्रकार हे वीर राजन् ! ( द्यावाक्षामा ) तेजस्वी राजवर्ग और भूमि के समान आश्रयरूप प्रजावर्ग ! दोनों ( मही ) आदरणीय और बड़े ( पाजसी ) बलवान् और चरणों के समान आश्रय स्वरूप ( अचक्रे ) चक्ररहित रथ के समान शिथिल, एवं स्वतः अपनी शक्ति से रहित अथवा स्वतः इच्छा रहित होकर ( कर्मन् ) राज्यपालन और शत्रु उच्छेद के काम

में ( त्वाम् मदताम् ) तेरे साथ २ प्रसन्न हों। हे राजन् ! तू जिस प्रकार ( आशयाने वृत्रं ) चारों तरफ़ फैले हुए और सूर्य को घेरनेवाले ( वराहुम् ) मेघ को सूर्य ( महः वज्रेण ) बड़े भारी अन्धकारवारक प्रकाश या विद्युत् से ( सिरासु ) नदी धाराओं में (सिष्वपः) सुला देता है अर्थात् जल रूप से बरसा देता है उसी प्रकार हे राजन् ! (त्वं) तू ( आशयानं ) अपने राष्ट्र के चारों ओर घेरे पड़े हुए, ( वृत्रम् ) बढ़ते हुए ( वराहुम् ) श्रेष्ठ, धार्मिक व्यवहारों और जनों के नाशकारी शत्रुदल को ( सिरासु ) शरीर की मर्म नाड़ियों का आघात करने वाले ( महः ) बड़े प्रबल ( वज्रेण ) अपने शस्त्रास्त्र से ( सिष्वपः ) सुलादे, मार गिरा।

त्वमिन्द्र नर्यो याँ अवो नॄन्तिष्ठा वातस्य सुयुजो वहिष्ठान्।
यं ते काव्य उशना मन्दिनं दाद्वृत्रहणं पार्यं ततक्ष वज्रम् ॥१२॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! जिस प्रकार सूर्य ( नॄन् ) शरीर संचालक प्राणों की रक्षा करता और ( वहिष्ठान् ) शरीर को वहन या धारण करने वाले (वातस्य सुमुजः) वायु के साथ उत्तम रीति से संयुक्त हुए प्राणों को (अवः) पर वश करता है उसी प्रकार हे राजन् ! ( नर्यः) समस्त नायकों और प्रजा वासी पुरुषों का हितकारी, उनमें सर्वश्रेष्ठ होकर (यान् नॄन्) जिन नायक पुरुषों को ( अवः ) सुरक्षित रखता है। तू उन ही ( वहिष्ठान् ) राष्ट्र-कार्यों का अच्छी प्रकार वहन करने वाले (वातस्य सुयुजः) वायु या प्राण के उत्तम गुणों को धारण करने वाले, उनके उत्तम साथियों और वेगवान् अश्वों के समान राष्ट्र के राज्यरूप रथ के संचालक पुरुषों पर, अश्वों पर सारथी या महारथी के समान ( तिष्ठ ) विराज, उन पर शासन कर। और ( वन्दिनं ) सब के हर्षदायक ( वृत्रहणं ) शत्रुनाशक ( पार्यम् ) संग्राम में पालन करने वाले और उससे पार उतारने वाले ( वज्रम् ) शत्र के वर्जन या धारण करने में समर्थ ( यं ) शस्त्रास्त्र या सैन्य

बल को ( काव्यः ) मेघावी पुरुषों द्वारा शिक्षित पुत्र व शिष्य ( उशनाः ) सर्व वशीकार में समर्थ, वशी पुरुष ( ते ) तुझको ( दात् ) प्रदान करता है, उपदेश करता है। तू उसको ( ततक्ष ) सदा तीक्ष्ण कर, उसको सदा तैयार रख। आधिभौतिक पक्षमें—ये 'काव्य उशना' अर्थात् गर्जनकारी मेघ से सम्पन्न कान्तिमान् विद्युत् ही जिस मेघछेदक बल को ( दात् ) प्रदान करे उसको सूर्य ही अपने तेज से तीक्ष्ण करता है। अर्थात् विद्युत् की अग्नि भी सूर्य की ही रूपान्तरित अग्नि है।

त्वं सूरो॑ ह॒रितो॑ रामयो॒ नॄन्भर॑च्च॒क्रमेत॑शो॒ नायमि॑न्द्र ।
प्रास्य॑ पा॒रं न॑व॒तिं ना॒व्या॑ना॒मपि॑ क॒र्तम॑वर्त॒योऽय॑ज्यून् ॥१३॥

भा०—( सूरः ) सूर्य जिस प्रकार ( हरितः रमयः ) किरणों को फेंकता और ( हरितः रमयः ) समस्त दिशाओं को रमण कराता, सुखी और हर्षित करता है और (हरितः रमयः) हरे वृक्ष लता आदि को रमणीय, अर्थात् हरा भरा करता है, उसी प्रकार हे राजन्! तू भी ( सूरः ) सबका प्रेरक, ऐश्वर्यवान् तेजस्वी होकर ( हरितः नॄन् रमयः ) वेगवान् अश्वों को, ज्ञानवान् विद्वानों को, समस्त दिशावासी प्रजाओं को और तीव्र वेगवान् वायु के समान आक्रमणकारी वीर नायकों और वीर भटों को सञ्चालित कर, प्रसन्न कर, युद्ध क्रीडा करा। हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन्! ( एतशः चक्रं न ) सूर्य जिस प्रकार चक्र अर्थात् समस्त ज्योतिश्चक्र या ग्रहचक्र को ( भरत् =हरत् ) धारण करता, सञ्चालित करता और व्यापता है और ( एतशः चक्रं न ) वेगवान्, बलवान् अश्व जिस प्रकार रथ के चक्र या चक्रवान् रथ को धारता और ले जाता है उसी प्रकार (अयम्) यह राजा (चक्रम् भरत्) राष्ट्र के कार्य कर्तृगण को पालित पोषित और सञ्चालित करे और ( चक्रम् भरत् ) द्वादश राजचक्र को अपने शौर्य, वीर्य और नीति द्वारा धारण करे और सञ्चालित करे। हे ऐश्वर्यवन्! जिस प्रकार सूर्य मनुष्य जीवन के ९०

वर्ष रूप नाव से पार करने योग्य बड़ी नदियों के ( पारं प्र-अस्यति ) पार मनुष्यों को डालता है और उनको ( अयज्यून् ) यज्ञ करने या वीर्य दान करने में असमर्थ या वृद्धावस्था से अशक्त कर देता है उसी प्रकार हे राजन् ! तू शत्रुओं को ( नाव्यानां नवतिं ) नाव से पार करने योग्य बड़ी बड़ी ९० नदियों के भी ( पारं ) पार ( प्र अस्य ) मार भगा । [२] अथवा—(नाव्यानां पारं) नाव से तरने योग्य नदियों के पार (नवतिं) नौका को ( प्र-अस्य ) अच्छी प्रकार चलवा । अथवा ( नाव्यानां ) प्रेरण करने योग्य सेनाओं के ( पारं ) पालन करने में समर्थ ( नवतिं ) उत्तम आज्ञापक पुरुष को ( प्र-अस्य ) उत्तम पद पर स्थापित कर । इसी प्रकार ( नाव्यानां पारं ) स्तुति योग्य विद्वान् पुरुषों के पालक ( नवतिं ) अति स्तुत्य पुरुष को ( प्र-अस्य ) स्थापित कर । और ( अयज्यून् ) जिस प्रकार विद्युत् जल न देने वाले मेघों को (कर्तम्) काट २ कर या ( कर्तम् ) गढ़े में नीचे (अवर्तयः) जल बना कर गिरा देता है । उसी प्रकार हे राजन्! तू भी ( अयज्यून् ) अदानशील, कर आदि न देने वाले तथा सन्धि द्वारा मेल न रखने वाले शत्रुओं का ( कर्तम् अपि अवर्तयः ) कूए या गहरे गढ़ों में रख। अथवा ( कर्तम् ) काट २ कर उनको ( अपि अवर्तयः ) विनाश कर ।

'नवतिं नाव्यानाम्'—णु स्तुतौ इत्यतो डौ प्रत्यय औणादिकः । नौः । तस्मात् अतिरौणादिको नवतिः । नौति स्तौति, उपदिशति, प्रेरयति, स्तूयते उपदिश्यते, प्रेर्येते वा इति नौः, नवतिश्च । तेषु साधुः नाव्यस्तेषाम् नाव्यानाम् । अथवा नावा तार्या नाव्या नद्यः, तासाम् ।

त्वं नो॑ अ॒स्या इ॑न्द्र दु॒र्हणा॑याः पा॒हि व॑ज्रिवो दुरि॒ताद॒भीके॑ ।
प्र नो॒ वाजा॑न्र॒थ्यो॒३ अश्व॑बुध्यानि॒षे य॑न्धि॒ श्रव॑से सू॒नृता॑यै ॥१४॥

भा०—हे ( इन्द्र ) ऐश्वर्यवन् ! हे ( वज्रिवः ) वीर्यवन् ! उत्तम

शत्रुवारक नीति और साम आदि उपायों के स्वामिन् ! राजन् ! प्रभो ! परमेश्वर ! ( त्वं ) तू ( नः ) हमें ( अस्याः ) इस ( अभीके ) संग्राम में भी ( दुर्हणायाः ) दुःख से या कठिनता से नाश करने योग्य, दुःसाध्य शत्रु-सेना से, या दरिद्रय आदि विपत्ति से और ( दुरितात् ) दुष्टाचार और दुर्गति से ( पाहि ) बचा । और ( रथ्यः ) रथारोहियों में सबसे कुशल, महारथी होकर ( नः ) तू हमारे ( अश्वबुध्यान् ) सूर्य के आश्रय पर होने वाले अन्नों को मेघ के समान, अश्व सैन्य के आश्रय पर प्राप्त होने वाले ( वाजान् ) ऐश्वर्यों तथा संग्रामों को ( श्रवसे ) कीर्ति और ऐश्वर्य और ( सूनृताय ) उत्तम अन्नादि समृद्धि, वेदवाणी तथा धन प्राप्ति के लिये ( प्र यन्धि ) अच्छी प्रकार प्रदान कर [ २ ] मेघ के पक्ष में—जलों को देने से मेघ 'इन्द्र' है । विद्युत् युक्त होने से वह 'वज्रवान्' है । वह दुःख से नाश होने वाली दुष्काल, दारिद्रय आदि जनपीड़ा से हमें बचावे । वह रस या जलमय होने से या वेगवान् होने से 'रथ्य' है । सूर्य अश्व हैं उसके आश्रय पर होने वाले अन्न आदि पदार्थ 'अश्वबुध्न्य वाज' हैं । उनको अन्न और जल की वृद्धि के लिये प्रदान करें । [ ३ ] अथवा—हे ऐश्वर्य-वन् ! राजन् ! हमें ( अश्वबुध्यान् वाजान् यन्धि ) तू हमें वेग वाले पदार्थों के जानने वाले विद्वान् प्राप्त करा ।

**मा सा ते॑ अ॒स्मत्सु॑म॒तिर्वि द॑स॒द्वाज॑प्रमहः॒ समिषो॑ वरन्त । आ नो॑ भज मघव॒न्गोष्व॒र्यो मंहि॑ष्ठास्ते सध॒मादः॑ स्याम ॥१५॥२६॥८॥१॥**

भा०—(सा ते) वह तेरी कृपा से प्राप्त हुई ( सुमतिः ) शुभ, उत्तम पूजनीय, ज्ञानमय मति ( अस्मत् ) हमसे ( मा ) कभी न ( विदसत् ) विनष्ट हो । हे ( वाजप्रमहः ) अन्नों और ऐश्वर्यों को उत्तम कोटि को देने वाले तथा विज्ञानवान् पुरुषों द्वारा उत्तम रीति से पूजने योग्य ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् राजन् ! और परमेश्वर ! ( इषः ) हमारी समस्त कामनाएं

और इष्ट प्रजाएं भी तुझे ( सं वरन्त ) एकत्र होकर वरण करें । हे ( मघवन् ) ऐश्वर्यवन् ! तू ( अर्यः ) सबका स्वामी है । तू ( नः ) हमें ( गोषु ) भूमियों, उत्तम वाणियों तथा इन्द्रियगणों के आश्रय पर ( आ भज ) उत्तम २ सुख प्रदान कर । ( ते ) तेरी कृपा से हम सब (मंहिष्ठाः) अति दानशील और वृद्धिशील होकर ( सधमादः ) एक साथ मिल कर आनन्द सुख से रहने और अन्नादि से तृप्त होने वाले (स्याम) होवें । इति षड्विंशो वर्गः ॥

इत्यष्टमोऽध्यायः ॥

## इति प्रथमोऽष्टकः

इति प्रतिष्ठितविद्यालंकार-मीमांसातीर्थविरुदोपशोभित श्रीमत्पण्डित-जयदेवशर्म-विरचिते ऋग्वेदस्यालोकभाष्ये प्रथमोऽष्टकः समाप्तः ॥

# शुद्धाशुद्ध पत्र

| पृ० | पं० | अशुद्ध रूप | शुद्ध रूप |
|---|---|---|---|
| ९ | ११ | जिगा त | जिगाति |
| ५० | १० | ज्ञान वासियों के | ज्ञानवाणियों के |
| ६४ | ११ | आत्मा नस्तु | आत्मनस्तु |
| ६७ | ७ | इणा | इळा |
| १४५ | ९ | शानवान् | ज्ञानवान् |
| १६८ | १५ | मार्त्तः | मर्त्तः |
| १७७ | ८ | देहांत में | देहांग में |
| २६२ | २४ | वर्गः ॥ | वर्गः ॥ इत्यष्टमोनुवाकः ॥ |
| २६३, २६५, २६७, २६९ २७१, माथे की पंक्ति में | | अ० ८ । | अ० ९ । |
| ३१३ | १९ | वंकुतारधि | वंकुतराधि |
| ३५१ | १६ | परिनणसः | परिनसः । |
| ४११ | ९ | कारः पाद | कार पाद |
| ४६३ | ७ | अनिर्दैवता | अग्निर्दैवता । |
| ५१७ | २४ | अभियुक्त | प्रयुक्त |
| ५२७ | २० | देनता | देवता |
| ५८८ | २० | उन मेव वसी | उनमें बसी |
| ५८८ | २२ | ( विरोधमानं ) | ( विरोचमानं ) |
| ६३८ | २० | ० ० | कुत्स आंगिरस ऋषिः । इन्द्रो देवता । ...नवर्चं सूक्तम् ॥ |
| ६८७ | १३ | याभिधियो | याभिर्धियो |

इसी प्रकार की अन्यान्य अशुद्धियां भी रह जानी सम्भव हैं जिनको विज्ञ जन सुधार लेंगे—ग्रन्थकार ।

463